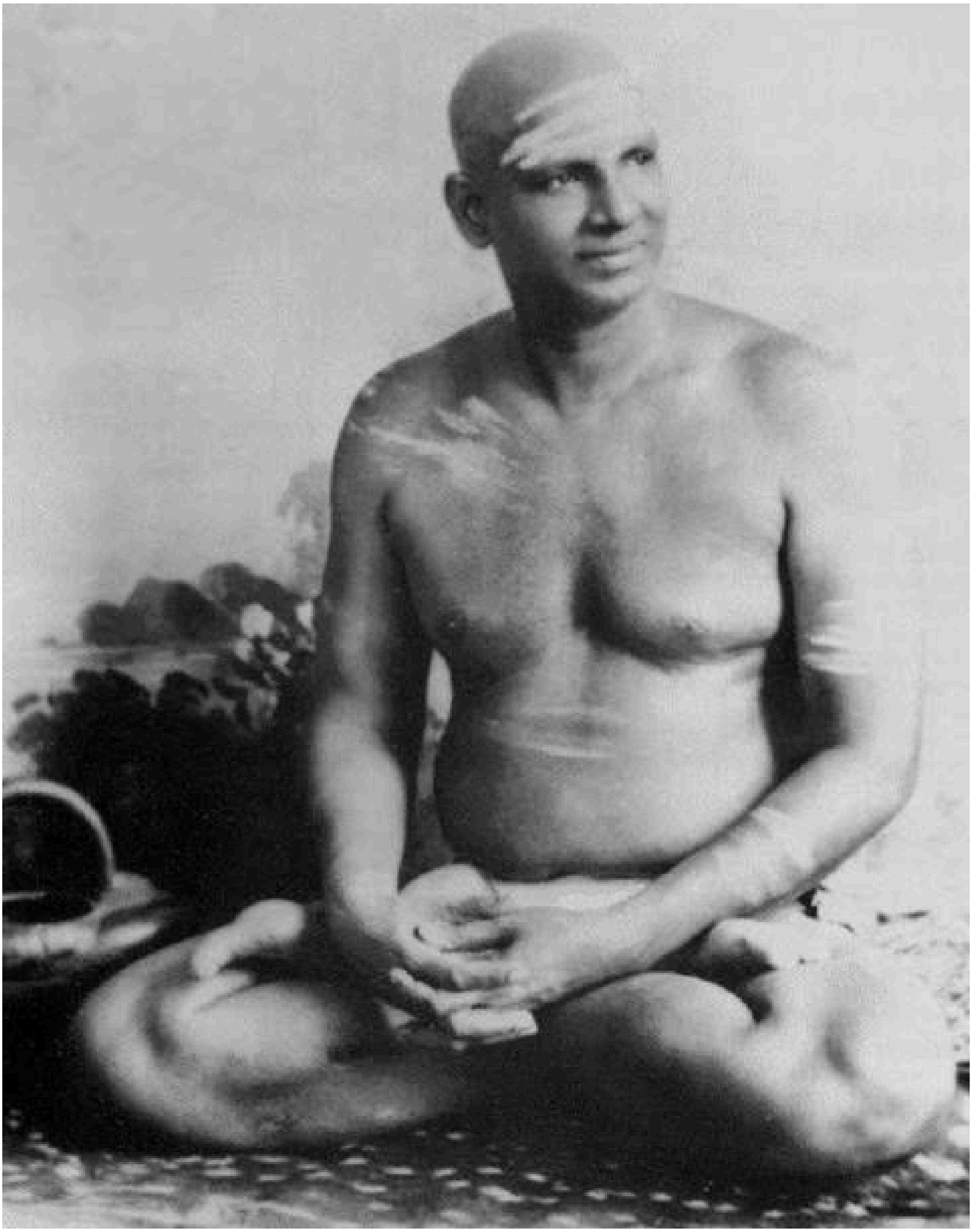



श्रीमद्भगवद्गीता
स्वामी शिवानन्द

श्रीमद्भगवद्गीता

मूलसंसूकृत पाठ ़शब्दार्थअनुवादऔरव्याख्या

श्री स्वामी शवानन्द सरस्वती

अनुवाशदका
श्रीमती गुलशन सचदेव

प्रकाशक
द शिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय ़शवानन्दनगर-२४९१९२
शिला ़: शटहरीगढ़वाल ़उत्तराखण्ड (शहमालय),भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org
प्रर्म शहन्दी संस्करण : २००५
शितीय शहन्दी संस्करण : २०१६
(१००० प्रशतयााँ)

ISBN 81-7052-175-0
HS25

PRICE: 425/-

'द शिवाइन लाइफ सोसायटी, शवानन्दनगर' के शलए
स्वामी पद्मनाभानन्द ािरा प्रकाशत तर्ा उन्हीं ंके ािरा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकिोमी प्रेस, पो. शवानन्दनगर, शि. शटहरी-गढ़वाल ,
उत्तराखण्ड श्पन२४९१९२में मुशित।
For online orders and Catalogue visit: disbooks.org

समशपथत

भगवान् व्यास

एवं

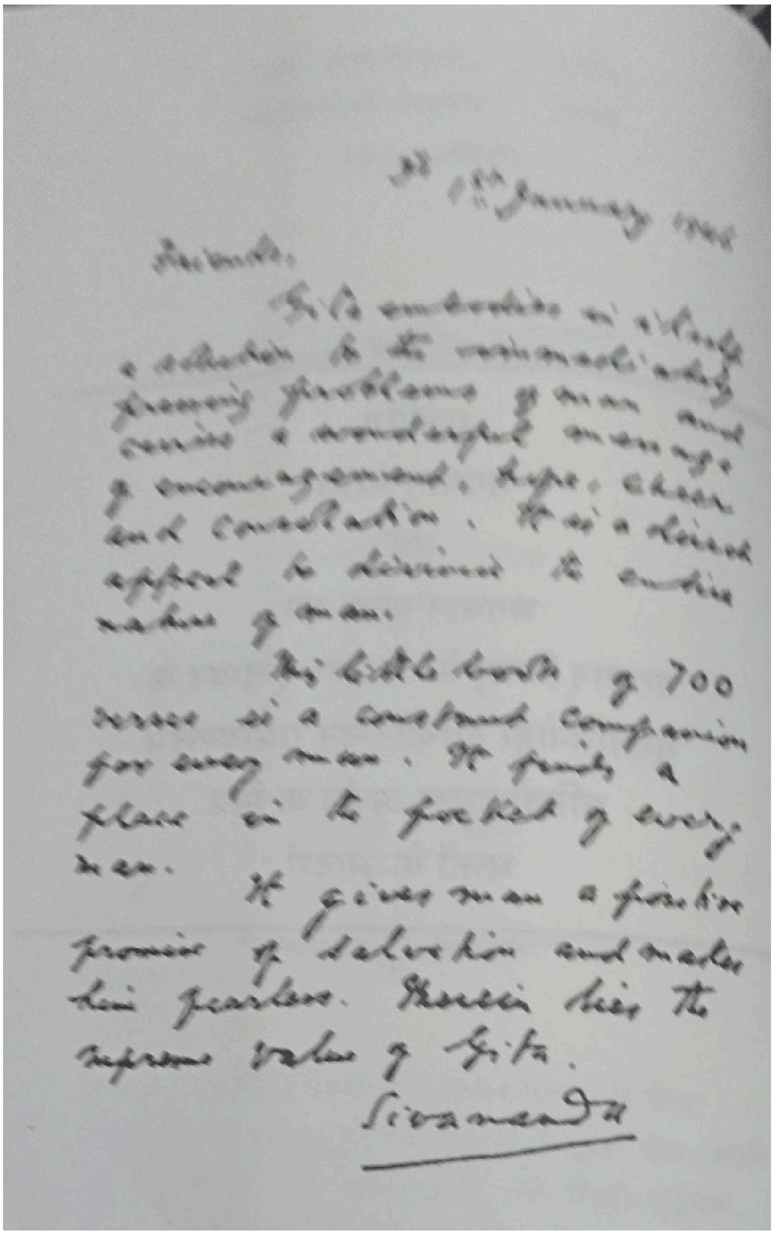
भगवान् कृष्ण को

भगवान् शवषुणु के अवतार वृन्दावन के

मुरलीमनोहर देवकीनन्दन राधावल्लभ

पशततोद्धारक श्रिुथन के शमत्र

भक्ों ◌ंके आदशथ


3rd 18th January 1948

Friends,

Gita embodies in itself a solution to the innumerable vexing pressing problems of man and carries a wonderful message of encouragement, hope, cheer and consolation. It is a direct appeal to divinise the entire nature of man.

This little book of 700 verses is a constant companion for every man. It finds a place in the pocket of every man.

It gives man a positive promise of salvation and makes him fearless. Therein lies the supreme value of Gita.

Sivananda

आमुख

भगवान् कृष्ण और अिुथन के मध्य शुभ संवाद अर्वा उपशदष्ट िीवन की पररभाषा ही भगवद्गीता है। इस अपूवथ ग्रन्थ का अनुवाद लगभग सभी भाषाओं ांमें हो चुका है। शवश्व-भर के दाशथशनक (तत्त्ववेत्ता), सन्तगण और

अध्यात्मवादी इस ग्रन्थ से आकृष्ट हुए हैं। मानवता पर सम्भाशवत सभी कालों ंकी समस्याओं ंका समाधान इसमें शनशहत है, यही भगवद्गीता की मशहमा है। परम पूज्य श्री स्वामी शवानन्द िी महारिा दशथन, धमथ और भगवद्गीता पद्धशत के महान् अर्थप्रदशथक हैं। सवाथशधक आशधकाररक उपलब्ध टीकाओं ंमें ही उनकी टीका को प्रशस्य स्ान प्राप्त है।

द शिवाइन लाइफ सोसायटी के प्रारम्भम्भक काल में यह ग्रन्थ छह भागों ंकी शृंखला में प्रकाशत हुआ शिसके समस्त खण्ड पृर्क् पृर्क् रे। योग-साधकों ंका शहतशचन्तन करते हुए पश्चात् काल में इस ग्रन्थ को एक समग्र, बृहत् स्वरूप शदया गया। अनेक संस्करण मुशित होने के पश्चात् कुछ काल के शलए यह ग्रन्थ अनुपलब्ध रहा। साधकों ंके कल्याण हेतु इसे पुनः प्रकाशत शकया गया है। इसे यर्ासम्भव शुद्ध स्वरूप देने का हमारा पूणथ प्रयास रहा है। हमें पूणथ शवश्वास है शक साधक और सामान्य पाठकवृन्द इससे प्रशस्य रूप में लाभाम्भित होंगें।

ुलाई १२, १९९५ **-द डिवाइन लाइफ सोसायटी**

शवश्व-प्रार्थना

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव!
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सवथव्यापक, सवथशम्भक्मान् और सवथज्ञ हो ।
तुम सम्भिदानन्दघन हो । तुम सबके अन्तवाथसी हो ।

हमें उदारता, समदशथता और मन का समत्व प्रदान करो।

श्रद्धा, भम्भक् और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्याम्भत्मक अन्तःशम्भक् का वर दो,
शिससे हम वासनाओं ंका दमन कर मनोिय को प्राप्त हों ं।
हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और िेष से रशहत हों।ं
हमारा हृदय शदव्य गुणों ंसे पररपूररत करो।

हम सब नाम-रूपों ंमें तुम्हारा दशथन करें।
तुम्हारी अचथना के ही रूप में इन नाम-रूपों ंकी सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही मशहमा का गान करें।
तुम्हारा ही कशलकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही शनवास करें।

-स्वामी डिवानन्द

प्रार्थनाएँ

व्यास-वन्दना

नमोऽसुतु ते व्यास शवशालबुद्धे फुल्लारशवन्दायतपत्रनेत्र।
येन त्वया भारततैलपूणथः प्रज्वाशलतो ज्ञानमयः प्रदीपः ।।

हे व्यास! भगवन्! आपको प्रणाम ! आपकी बुम्भद्ध शवशाल है। आपके नेत्र पूणथ शवकशसत कमल की पंखुशियों ंके समान बृहत् हैं। आपने महाभारत रूपी तेल से पूणथ ज्ञान का दीपक प्रज्वशलत शकया।

गुरु-वन्दना

गुरुर्ब्रह्मा गुरुशवथष्णुगुथरुदेवो महेश्वरः।

गुरुः साक्षात् परं ब्र्ह्म तस्ैमै श्रीगुरवे नमः ।।

गुरु सृशष्टकताथ ब्र्ह्मा है, गुरु पालनकताथ शवषु्णु है, गुरु संहारकताथ महेश्वर है। शनशश्चत रूप से गुरु साक्षात् ब्र्ह्मस्वरूप है। गुरु को प्रणाम ।

ध्यानमूलं गुरोमूथशतथः पूिामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोवाथकं्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ।।

गुरु की मूशतथ ध्यान का मूल है, गुरु के चरण पूिाहथ हैं, गुरु की वाणी मन्त्र रूप है और गुरु की कृपा मोक्षप्रदा है।

कृष्ण-वन्दना

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोशवन्दाय नमो नमः ।।

गो-रक्षक, नन्द गोप के शप्रय, देवकी को आह्लाशदत करने वाले वसुदेव-पुत्र श्री कृष्ण को पुनः-पुनः साष्टाङ्ग प्रणाम !

हे कृष्ण ! अब तुम मेरे शप्रय सखा हो। आपके हृदय में मेरे शलए दया का भाव है। अब मुझे अपनी शदव्य लीलाओं ंऔर वेदान्त के रहस्यों ंका बोध कराओ। आपने गीता में कहा है- "मैं वेदान्तकृत् और वेदशवत् हाँ।" आप मेरे सविो गुरु हो। वेदान्त की दुबोध समस्याओं ंको मेरे शलए स्पष्ट करो। मुझे सरल पाठ पढ़ाओ । कृपया बताओ-सविो अैत म्भस्र्शत, अैत समाशध में म्भस्र्त, ब्र्ह्मशनष्ठ, ब्र्ह्मज्ञानी शुकदेव ने परीशक्षत को 'भागवत' का उपदेश क्यों ंशदया? सायुज्य अवस्र्ा का आनन्द लेने वाले भक्, असम्प्रज्ञात समाशध में म्भस्र्त योगी और अैत-अवस्र्ारूप-समाशध में लीन ज्ञानी के अनुभवों ंमें क्या अन्तर है? िीवनु्मुम्भक् और शवदेहमुम्भक्, तुरीया और तुरीयातीत, क्षरपुरुष और अक्षरपुरुष एवं पुरुषोत्तम-इनमें क्या अन्तर है?

हे कृष्ण, आप मेरे हृदय में शनवास करते हो, मेरे मन के साक्षी हो और मेरे प्राणों ंके स्वामी हो; अतः मैं शवमलात्मन् हो कर आपसे स्पष्ट बात करता हाँ। मैं आपसे कुछ भी नहीं ंशछपा सकता; क्योंशंक मेरे मन से प्रभूत सभी शवचारों ंके आप साक्षी हो । मुझे आपसे कोई भय नहीं।ं अब मेरे सखा हो आप । मेरे सार् अिुथन की भााँशत आचार करो। मैं गाऊाँगा, नृत्य करूाँगा। आप वंशी बिाओ । आओ! शमल कर माखन-शमश्री खायें। आओ! गीत गायें। मुझे गीता का ज्ञान दो। पुनः आपके मुखारशवन्द से मुझे साक्षात् श्रवण करने दो।

हे दशथनातीत प्रभो! मेरे आराध्य देव! इस शवशाल ब्र्ह्माण्ड में अनन्त आकाश से ले कर मेरे पग तले की कु्षि घास पयथन्त आपकी व्याम्भप्त और सूक्ष्म प्रवेशन है। इन सब नाम-रूपों ंके आप आधार हैं। आप मेरी आाँख के तारे औ हृदय के शदव्य पे्रम हैं। आप मेरे प्राणों ंके प्राण, मेरे आत्मा के आत्मा, इम्भिय और बुम्भद्ध के प्रकाशक, हृदय के मधुर संगीत-अनहत नाद और स्रू्ल, सूक्ष्म तर्ा कारण शरीरों ंके सारतत्त्व हैं।

मैं तो केवल आपको ही इस सृशष्ट के स्वामी और मेरे तीनों ंशरीरों ंके शनयन्ता के रूप में िानता हाँ। भगवन् ! बारम्बार आपको प्रणाम करता हाँ। आप ही मेरे केवल आधार हो। हे पे्रम और करुणा के सागर! आपके प्रशत मेरी पूणथ श्रद्धा है। उत्थान करो। उद्धाशसत करो। ज्ञानोद्दीप्त करो। पर्-प्रदशथन करो। रक्षा करो। मेरे आध्याम्भत्मक पर् की बाधाओं ंको दूर करो। अज्ञान रूपी अशवद्या का आवरण हटा दो। हे िगद्गुरु ! इस संसार के, इस िीवन

के और इस शरीर के कष्ट अब और अशधक सहन नहीं ंहोते, क्षण-भर को भी नहीं ं! मुझे शीघ्र शमलो, प्रभो! मैं आपसे शमलने को लालाशयत हो रहा हाँ, िशवत हो रहा हाँ, सुनो भगवन् सुनो, मेरी उत्कट आन्तररक पुकार को सुनो। अत्याचारी मत बनो प्रभो! दीनबनुधु हो आप तो ! अधम-उद्धारक हो! पशतत पावन हो !

हे से्नेह और करुणा के आराध्य देव ! हे ज्ञान और आनन्द के मूल स्रोत! आप हमारे नेत्र के नेत्र हो, श्रोत्र के श्रोत्र हो, प्राण के प्राण हो, मन के मन हो, आत्मा के आत्मा हो। आप दृग्गोचर िष्टश हो, अशुरुत श्रोता हो, अशचन्त्य शचन्तक हो और अशवशदत वेत्ता हो । आपसे प्रार्थना है-हमें सब आसम्भक्यों ंसे मुक् कर दो, हमें ज्ञान दो, पशवत्रता दो, प्रकाश दो।

शप्रय प्रभो! प्राणनार्! शवभु शवश्वनार् ! हमारी प्रार्थना स्वीकार करो। हमारा मागथ प्रशस्त करो। इस संसार के दलदल से हमें उबारो। हमें तेिस्वी बनाओ। हमारी रक्षा करो। हम केवल आपकी ही आराधना करते हैं, आपकी पूिा करते हैं, आपका ही ध्यान करते हैं और आपके ही शरणागत हैं।

प्रस्तावना
गीता की मशहमा

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् कृष्ण और अिुथन के मध्य संवाद रूप में महाभारत के भीष्म पवथ में शनरूशपत है। इस ग्रन्थ में अठारह अध्याय और सात सौ संसृ्कत श्लोक समाशवष्ट हैं। इन श्लोकों ंमें महत्त्वपूणथ (शवचायथ) शवषय संके्षेप में संवृत शकया गया है। कुरुके्षेत्र के युद्धस्थल में भगवान् कृष्ण ने अिुथन के सार् अत्यन्त मनोहारी, उपदेशात्मक संलाप में शनगूढ़, उतृ्कष्ट, आत्मोद्धारक आध्याम्भत्मक सत्यों ंको अनावृत शकया और अिुथन को योग, वेदान्त, भम्भक् और कमथ के शवरल रहस्यों ंका ज्ञान शदया। भगवान् कृष्ण के सभी उपदेश शवस्तरशः मानव-कल्याण हेतु पश्चात्काल में भगवद्गीता के रूप में भगवान् वेदव्यास िारा शलशपबद्ध शकये गये। िीवन में दैशनक आचार-व्यवहार, आध्याम्भत्मक उत्कषथ तर्ा आत्म-साक्षात्कार हेतु मानवता, श्री व्यास िी की अत्यन्त ऋणी है शिन्ोंनें इस शदव्य गीत को उनके समक्ष प्रसु्तुत शकया । श्रद्धायुक् संयत मनुष्य ही 'गीता' का पूणथ लाभ उठा सकते हैं िो शक आत्मा का शवज्ञान है।

शहन्दू पंचाङ्ग के अनुसार मागथशीषथ मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी को समस्त भारत में इस अद्भुत ग्रन्थ के प्रशंसकों ंऔर पे्रशमयों ंिारा गीता–यन्ती मनायी िाती है। इसी शदन संसार के समक्ष सञ्जय ने इस ग्रन्थ को प्रकाशत शकया ।

शवश्व के साशहत्य में गीता के समान पे्ररक एवं उतृ्कष्ट ग्रन्थ अन्य नहीं ंहै। शहन्दू धमथ के सारभूत प्रधान शनयम अत्यन्त स्पष्ट रूप से गीता में वशणथत हैं। यह प्रज्ञा का स्रोत है। आपका पर्-प्रदशथक है। परम गुरु है। अक्षय आध्याम्भत्मक कोष है। आनन्द का शनझथर है। ज्ञान का रत्नाकर है। यह ग्रन्थ शदव्य काम्भन्त और शवभूशत से पररपूणथ है।

गीता वेदों ंका सार है। उपशनषदों ंका शनष्कषथ है। सभी कालों ंमें सभी प्रकार के लोगों ंके शलए यह एक सावथभौम शास्त्र है। उन्नत शवचारों ंऔर योग, भम्भक्, वेदान्त तर्ा कमथ के व्यावहाररक आदेशों ंसे युक् यह अशितीय ग्रन्थ है। शनगूढ़ शवचारों ंऔर अन्तदृथशष्ट के सवोि शखर का स्पशथबोध है यह अद्भुत ग्रन्थ। इस संसार के शत्रशवध

तापों ंसे म्भक्लष्ट आत्माओं ंको यह ग्रन्थ शाम्भन्त और समाश्वासन प्रदान करता है अर्ाथत् आध्याम्भत्मक (शरीर से उत्पन्न होने वाली पीड़ा), आशधभौशतक (प्राशणयों ंसे उत्पन्न) एवं आशधदैशवक (देवकृत्) पीड़ा ।

भगवद्गीता शदव्य सुधा है। यह शचन्तामशण (शचन्तन मात्र से कामनापूशतथ करने वाली मशण) है, कल्पतरु और कामधेनु है िो कल्पना मात्र से इच्छापूशतथ करती है। आप इसमें से मनोवांशछत वसुतु ले सकते हैं। यह आनन्त्य शास्त्र है। यह मशरूम की भााँशत अल्पकाशलक नहीं ंहै। मैं गीता को सदा अपने पास रखता हाँ। यह सबके शलए सहचरी (vade mecum) पुम्भस्तका है। शाम्भन्त, आनन्द, सुख, प्रज्ञा, आत्मा, ब्र्ह्म, पुरुष, धाम, शनवाथण, परम पद, गीता-ये सभी पयाथयवाची हैं।

गीता अमृत का महापयोशध है। यह उपशनषदोपम वृक्ष का शदव्य अमर फल है। इस अलौशकक ग्रन्थ में कमथ, भम्भक् और ज्ञान दशथन का तर्ा इनके संयोगात्मक शववरण का शनष्पक्ष स्पष्टीकरण शमलता है। भगवद्गीता शवश्व-भर में मुंलि सुगम्भन्ध शवकीणथ करने वाला शवरल और अशतशोभन पुष्प है। सभी उपशनषद् मानो गाय हैं, श्री कृष्ण उपशनषद् रूपी गायों ंके दोग्धा हैं, अिुथन बछड़ा है शिसने आत्म-ज्ञान रूपी दुग्ध का सवथप्रर्म पान शकया िो समस्त मानवता और अिुथन के कल्याणार्थ शदव्य 'गोपाल' श्री कृष्ण िारा 'गीता' के रूप में दुहा गया। गीता िारा न केवल अिुथन प्रतुयुत् प्रत्येक व्यम्भक् की शंकाओं ंऔर समस्याओं ंका समाधान होता है। देवकीनन्दन, गोकुल के गोप-शमत्र भगवान् कृष्ण की िय हो! हृदय की पशवत्रता और ध्यान िारा िो गीतामृत पान करता है वह अमृतत्व, शाश्वत आनन्द, शचर-शाम्भन्त और अक्षय्य सुख का अनुभव करता है।

शिस प्रकार सघन अगाध सागर की गहराई अमूल्य रत्नों ंका भण्डार है उसी प्रकार गीता में अगशणत आध्याम्भत्मक रत्न शनशहत हैं। श्रद्धा और शवश्वास के सार् आपको गीता रूपी रत्नाकर में गहन अवगाहन करना होगा। तभी तो आप आध्याम्भत्मक मुक्ा-मशणयााँ चयन कर पायेंगे। गीता के सूक्ष्म गहन ज्ञान को भी तभी आप समझ पायेंगे।

सभी कालों ंके शलए गीता एक अनुपम शास्त्र है। शहन्दू धमथ के प्रामाशणक शास्त्र 'प्रस्र्ानत्रयी' की श्रेणी में गीता को माना िाता है। गीता, िीवन की महत्ता को दशाथने वाला आत्मा का अमर गीत है। भगवान् कृष्ण िारा शदये गये गीता के उपदेश समस्त संसार के शलए अनुकरणीय हैं। यह योग का शवशष्ट ग्रन्थ है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल है। संसृकृत भाषा का प्रारम्भम्भक ज्ञान रखने वाला व्यम्भक् भी इसका अध्ययन कर सकता है। इसमें चार प्रकार के योग शनरूशपत हैं-कमथयोग, भम्भक्योग, रियोग और ज्ञानयोग ।

अि तक गीता पर असंख्य टीकायें उपलब्ध हैं। प्रत्येक श्लोक पर एक खण्ड शलखा िा सकता है। कमथ में आस्र्ा रखने वाला व्यस्त व्यम्भक् श्री बालगङ्गाधर शतलक की टीका (गीता-रहस्य) से लाभाम्भित हो सकता है, भम्भक् भाव से पूणथ व्यम्भक् श्रीधर की टीका पढ़े और तकथशील व्यम्भक् श्री शंकराचायथ की टीका से लाभ उठा सकता है।

इस अलौशकक ग्रन्थ पर सैकड़ों ंटीकायें उपलब्ध हैं। गीता एक सागर है। श्री शंकर, श्री रामानुि और श्री मध्वाचायथ ने गीता पर अपनी-अपनी व्याख्या की है और इस प्रकार दशथन के अपने मत प्रशतपाशदत शकये। कोई भी व्यम्भक् गीता-शसनुधु में गहन अवगाहन कर के शदव्य ज्ञान रूपी अमूल्य मोती ला सकता है और व्याख्या रूप में प्रसुतुत कर सकता है। गीता का स्तवन हो ! गीता के भगवान् का स्तवन हो!

गीता के उपदेश उदार, सावथभौशमक और उतृकृष्ट हैं। इसके उपदेश शकसी शवशेष िाशत, मत, धमथ, आयु, स्र्ान अर्वा देश के शलए नहीं ंप्रतुयुत् समस्त शवश्व के शलए हैं। उपशनषदों ंपर आधाररत ये उपदेश ऋशषयों ंके

सनातन ज्ञान का कोष हैं। इसकी शवधा (पद्धशत) सबके शलए बोधगम्य है। मानव मात्र के शलए इसमें सान्त्वना, शाम्भन्त, स्वाधीनता, मोक्ष और पूणथत्व का सन्देश है।

परमहंसों ं(यशत, संन्यासी) के शलए गीता मानसरोवर झील है और शपपासु साधकों ंके शलए क्रीिा का शवषय है । यह आनन्द-पयोशध है शिसमें सत्योिषक हषोल्लास और मस्ती में प्लवन (तरण) करते हैं। यशद स्पशथमशण (पारस) शकसी लोहे के टुकिे को एक कोण से भी स्पशथ कर ले तो पूणथ लौह-खण्ड स्वणथ में पररवशतथत हो िाता है। इसी भाँशत आप शकसी एक श्लोक के भाव में भी मग्न रहेंगे, तो शनस्सन्देह आप शदव्यत्व में रूपान्तररत हो िायेंगे।

दैशनक स्वाध्याय हेतु केवल गीता का अध्ययन ही पयाथप्त है। इसमें सभी समस्याओं ंका समाधान आपको शमलेगा। शितना अशधक श्रद्धा और शवश्वास से आप इसका अध्ययन करेंगे उतना ही अशधक गूढ़ ज्ञान, सूक्ष्म अन्तदृथशष्ट और स्पष्ट, यराथ शचन्तन आपका होगा। गीता के एक श्लोक के भाव में लीन रहने पर भी आपके समस्त दु:खों ंका अन्त होगा, आप िीवन के लक्ष्य-अमरत्व और शाश्वत शाम्भन्त प्राप्त करेंगे।

गीता का संवाद समूपूणथ शवश्व के शलए है। मनुष्यिाशत के प्रधान भाग के शलए है। कुरुक्षेत्र के मैदान में यह ज्ञान भगवान् कृष्ण िारा अिुथन को आि से पाँच सहस्र वषथ पूवथ शदया गया रा।

भगवान् के अशतररक् अन्य कोई ऐसे अभूतपूवथ, अद्भुत ग्रन्थ को प्रकाश में नहीं ंला सकता। पाठकों ंका पर् प्रशस्त करने वाला, परमानन्द की प्राम्भप्त में उन्नायक, सहायक और शाम्भन्तप्रद यह ग्रन्थ आि भी िीवन्त है। ज्ञान-स्वरूप, मोक्षदायक परमात्मा के अम्भस्तत्व का यह साक्षात् प्रमाण है।

समूपूणथ शवश्व ही एक युद्धक्षेत्र है। वास्तशवक कुरुक्षेत्र तो आपके भीतर है। महाभारत का युद्ध अभी भी आपके भीतर पूणथ उग्रता से चल रहा है। अशवद्या धृतराष्टर है। िीवात्मा अिुथन है। हृदय-गुहा में शवराशित भगवान् कृष्ण सारशर् हैं। शरीर आपका रर् है। इम्भियाँ अश्व हैं। मन, अहंभाव, इम्भियाँ,

संस्कार, वासनायें, इच्छायें, रागिेष, काम, ईष्याथ, लोभ, अशभमान और दम्भ (कपट) आपके घोर शत्रु हैं।

अध्ययनार्थ प्रकाशदीप

गीता में सूक्ष्म गूढ़ ज्ञान शनशहत है, अतः आपको महती श्रद्धा, अनन्य भम्भक् और अत्यन्त शुशचता से शकसी पारंगत शविान् अर्वा ब्ह्म-शनष्ठ गुरु के साशन्नध्य में इसका अध्ययन करना चाशहए। गीता के सत्यार्थ करतल पर रखे फल की भाँशत तभी प्रकट होंगें। स्वामी मधुसूदन सरस्वती, स्वामी शंकरानन्द और श्री शंकराचायथ िैसे प्रबुद्ध ज्ञाशनयों ंकी टीकायें आपके शलए अतीव उपयोगी रहेंगी।

सांसाररक लोग शकतने ही बुम्भद्धमान् क्यों ंन हों,ं गीता के मूल उपदेश को ग्रहण नहीं ंकर सकते। वे अनावश्यक वाद-शववाद और शनरर्थक तकथ में फाँस िाते हैं। वे शमथ्यावाद और उपदेशों ंके शछिान्वेषण में लग िाते हैं। अज्ञानी पुरुष यही कहेंगे-"श्लोकों ंमें अन्तरंग सम्बन्ध नहीं ंहै। वे अव्यवम्भस्त रूप से संहत शकये गये हैं। उनमें पुनरावृशत्त है।" यशद वे शकसी शविान् से श्रद्धा और शवश्वास के सार् गीता का अध्ययन करें, तो उनके समस्त सन्देह नष्ट हो िायेंगे। उन्हें यह ज्ञान भी हो िायेगा शक सभी अध्यायों ंमें सभी श्लोकों ंका अन्योन्य शनकट सम्बन्ध है। उपशनषदों ंमें और गीता में पुनरावृशत्त उपयुक् है। मन पर गम्भीर स्ायी प्रभाव िालने के शलए ऐसा शकया िाता है।

भगवान् कृष्ण चेतना के शवशभन्न स्तरों ंसे वचन कहते हैं। गीता में 'अव्यक्' शब्द कहीं ंतो मूल प्रकृशत के भाव में आया है और कहीं–कहीं ंपरब्ह्म के अर्थ में भी प्रयोग शकया गया है। अतः श्लोकों ंका वास्तशवक अर्थ िानने

के शलए मनीषी शक्षक की सहायता आवश्यक है। कठोपशनषद् में 'इष्टका:' शब्द का अर्थ देवता है। हठ योग में कहा है- “गङ्गा और यमुना के संगम पर एक युवती कन्या है।" इसका शवशष्ट अर्थ है- “इ्डा और शपंगला के मध्य सुषुम्ना नाड़ी है।" गुरु के शबना ऐसे शब्दों ंका अर्थ समझना कशठन है। इसी प्रकार से गुरु के शबना गीता के श्लोकों ंका अर्थ-बोध दुगथम है। अन्यर्ा आप उस व्यम्भक् के समान ही रहेंगे ो भोिन करने वाले व्यम्भक् ारा 'सैन्धव' माँगने पर घोड़ा ले आया; क्योंशंक सैन्धव शब्द का अर्थ घोड़ा भी है और नमक भी।

गीता में समिय

मनुष्य तीन मूल घटकों ंका योग है-संज्ञान, भाव और इच्छा। मानव-प्रकृशत शत्रशवध है-शक्रयाशील, भावुक और ज्ञानशम्भक् सम्पन्न । अतः तीन प्रकार के योग आचशक्षत हैं-ज्ञानयोग ो आत्म-शवश्ेलेषण करने वाले शचन्तनशील प्रकृशत के मनुष्य के शलए है। भम्भक्योग भावुक लोगों ंके शलए और कमथयोग शक्रयाशील (राशसक) व्यम्भक्यों ंके शलए है। एक योग अन्य योग की भाँशत ही प्रभावपूणथ है।

गीता में तीन मागों के शसद्धान्त के शनदेशन हैं, वे हैं-ज्ञान मागथ, भम्भक् मागथ और कमथ मागथ । गीता के उपदेशों ंके अनुसार तीनों ंमें कोई शवरोध नहीं ंहै। कमथ, भम्भक् और ज्ञान दशथन को गीता अद्‌भुत रूप से सूत्रबद्ध करती है। पूणथत्व की प्राम्भप्त हेतु तीनों ंमें अनुरूपता लाना अत्यन्त आवश्यक है। तदर्थ आपके पास श्री शंकर का मम्भस्तष्क, भगवान् बुद्ध का हृदय और राा िनक का हस्त होना आवश्यक है। इस शरीर रूपी रर् के तीन घोड़े- कमथ, भाव और बुम्भद्ध में सामञ्जस्य हो, तभी यह रर् सहि रूप से चलेगा और आप अपने लक्ष्य तक अशचरेण सुरशक्षत पहुँच सकते हैं। अपनी अन्तरात्मा में तभी आप आनम्भन्दत हो सकते हैं। केवल तभी आप 'सोऽहम्' का गीत गा सकते हैं। केवल तभी आप 'अनन्त' के सार् समस्वर हो सकते हैं। केवल तभी आप आत्मा का अनहत नाद श्रवण कर सकते हैं और आत्मा के मधुर सङ्गीत का रसपान कर सकते हैं। स्वधमथ का पालन करते हुए पूणथत्व, मोक्ष अर्वा चरम लक्ष्य की प्राम्भप्त ही गीता का प्रमुख उपदेश है। भगवान् कृष्ण अिुथन से कहते हैं-अतः अनासक् भाव से कतथव्य कमथ करो; क्योंशंक आसम्भक् रशहत हो कर कमथ करने से मनुष्य परब्र्ह्म को प्राप्त होता है।

सामवेद के महावाक्य **'तत्-त्वम्-अडस'** (तत्त्वमशस) अर्ाथत् 'वह तुम हो' की व्याख्या के आधार पर गीता तीन भागों ंमें शवभक् है। इस शवचारधारा के अनुसार प्रर्म छह अध्याय कमथयोग और 'त्वम्' पद की प्रकृशत का शनरूपण करते हैं। इसके पश्चात् के छह अध्याय भम्भक्योग और 'तत्' पद का दशथन कराते हैं। अम्भन्तम छह अध्याय ज्ञानयोग और 'अशस' पद का ज्ञान कराते हैं ो 'ीव-ब्र्ह्म-ऐक्य' संस्र्ापन करने में समर्थ है।

गीता के अठारह अध्याय असमम्भित रूप से सूत्रबद्ध नहीं ंहैं। एक अध्याय का दूसरे के सार् शनकट का सम्बन्ध है। अिुथन की शवषादपूणथ अवस्र्ा में दूसरे अध्याय के उपदेशों ंसे उसके नेत्र खुले और आत्मा की शनत्यता को प्रदीप्त करने वाले वचनों ंसे उसे पुनः शम्भक् और साहस शमला। तब अिुथन ने कमथयोग और कमथफल-त्याग का अवबोध शकया। उसने इम्भियों ंऔर मन का संयम तर्ा एकाग्रता और ध्यान की शवशधयों ंको सीखा । तदुपरान्त भगवान् कृष्ण ने अिुथन को शवश्व-रूप-दशथनार्थ तैयार करने के शलए उसके समक्ष शवशवध शवभूशतयों ंका शववरण शदया। अिुथन ने अशतशोभन (देदीप्यमान) शवश्व दशथन का अनुभव शकया। तब उसने ीवनुमुक् की प्रकृशत को समझा। उसे क्ेषेत्र ज्ञान, तीन गुणों ंके ज्ञाता और पुरुषोत्तम का ज्ञान हुआ। इसके पश्चात् अिुथन ने शदव्य शवभूशतयों,ं तीन प्रकार की श्रद्धा और अन्त में संन्यासयोग के सार का ज्ञान ग्रहण शकया। शिस प्रकार शकसी शवद्यार्ी को शवश्वशवद्यालय में ज्ञान शदया ाता है, उसी प्रकार भगवान् कृष्ण ने अिुथन को आध्याम्भत्मक शवश्वशवद्यालय में आत्म-ज्ञान प्रदान शकया। अिुथन की शवशभन्न शंकायें र्ीं।ं भगवान् कृष्ण ने उसकी सभी शंकाओं ंका एक-एक करके शनवारण शकया। योग के एक सोपान से दूसरे सोपान तक आरोहण हेतु उन्ोंनें अिुथन को प्ेररत शकया। अन्ततः अिुथन ने सवोि सोपान पर अपना पग रखा, आत्म-ज्ञान प्राप्त शकया और हशषथत हो कर बोला-"हे मेरे प्रभो! मेरा

मोह नष्ट हो गया है। आपकी कृपा से मुझे ज्ञान हो गया है। अब मैं कृतसंकल्प हाँ। मेरे सन्देह पूणथतया नष्ट हो गये हैं। अब मैं आपके वचन का पररपालन करूाँगा।"

रागि्ेष और अहंभाव का शवनाश करके आप िीवनुमुक् हो सकते हैं। इच्छाओं, ं तृष्णाओं, ं अवशष्ट संस्कारों ंऔर संकल्पों ंका शवनाश करके आप मुक् संन्यासी हो सकते हैं। एवंशवध, शनि सम्भिदानन्द स्वरूप में प्रशतशष्ठत रहते हुए आप रािा िनक की भााँशत संसार के शक्रया-कलापों ंमें रत भी रह सकते हैं। आप तब कमथ-बन्धन में नहीं ंपिंगे और कमथ आपको दूशषत नहीं ंकरेंगे; क्योंशंक ब्र्ह्मज्ञान से कताथपन का भाव नष्ट हो चुका है। यही गीता का सार है।

दो शवधाएाँ

उपशनषदों ंके ऋशष गौरव से घोषणा करते हैं शक वास्तशवक पुरुष सवथव्याप्त, अमर आत्मा है िो इस शरीर, मन और िगत् का आधार है और पााँच कोषों–ंअन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, शवज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष का भी आश्रय है।

दुग्ध में नवनीत और काष्ठ में अशग्न की भााँशत इस शरीर में शनशहत स्वयंज्योशतत आत्मा का साक्षात्कार ही इस िीवन का लक्ष्य है। आत्मा अन्तयाथमी है। शरीर रूपी भवन का वह अदृश्य शासक अर्वा गुप्त स्वामी है।

सतत गहन ध्यान िारा उस अक्षय्य, अमत्यथ, भावातीत आत्म तत्त्व की प्राम्भप्त ही सत्य धमथ है। शाश्वत आत्मा में िीवन ही वास्तशवक िीवन है। भूत, भशवष्य और वतथमान से अतीत, आशद, अन्त और मध्य से परे उस आत्म तत्त्व के न तो खण्ड हैं और न ही अवयव, न वह स्थूल है, न सूक्ष्म, ऐसे परम तत्त्व के सार् ऐक्य भाव पूणथ िीवन ही वास्तशवक िीवन है।

पुरातन ऋशषयों ंने इस रहस्यमय अलौशकक आत्म तत्त्व को शदव्य ज्ञानचक्षुओं ंसे आत्मसात् शकया और उसी आत्म-ज्ञान की ज्योशत से संसार के पदार्ों को उिागर शकया। यह आत्म-बोध की साक्षात् प्रमाण की शवशध है।

संगीत, प्रकृशत, कला और शवज्ञान के िारा आप ज्ञान-शगरर-शखर तक आरोहण कर सकते हैं। यह अप्रत्यक्ष शवशध है। आप कायथ से कारण तर्ा अन्ततः कारण रशहत कारण परब्र्ह्म इम्भियातीत सत्य को प्राप्त कर सकते हैं। हमारे पाश्चात्य वैज्ञाशनकों ंका प्रयोिन यशद मनुष्य को भौशतक सुख प्रदान करना ही है तो वे मानो अन्धकार में कुछ टटोलने का प्रयास कर रहे हैं। शवज्ञान का लक्ष्य अिेषण, परीक्षण, शनरूपण, शवश्लेषण और अध्ययन िारा प्रकृशत के शनयमों ंतर्ा अणु, परमाणु ऊिाथ, गशत तर्ा शारीररक और मानशसक प्रपंच (दृश्य िगत्) के आत्यम्भन्तक सत्य का आधार खोिना है। सिा वैज्ञाशनक तो केवल वेदान्ती है। सत्य के प्रशत उसकी खोि की शवधा पृर्क् है। िो वैज्ञाशनक पहले यह कहते र्े-"इस संसार से परे कुछ नहीं ंहै", अब वही घोषणा करते हैं- "शितना अशधक मैं इस दृश्य िगत् का ज्ञान करता हाँ, उतना अशधक मैं भ्रशमत होता हाँ। बुम्भद्ध प्रमेय और भावशून्य है। इस पररवतथनशील प्रपंच से परे कूटस्र् बोधगम्य शम्भक् है। चक्रावशतथन् िीवन्त शवद्युत् कणों ंके पीछे म्भस्र, गशतशून्य शम्भक् है िो बुम्भद्ध और िगत् से अतीत है।" उपशनषदों ंका ब्र्ह्म वेदान्त का आत्मा है िो प्रकृशत के शनयमों ंका अशधष्ठाता है। "समुपगमन (approach) की मेरी शवधा उत्तरकालीन है अर्ाथत् कायथ से कारण की ओर। वेदान्ती शवधा पूवथकालीन है अर्ाथत् कारण से कायथ की ओर उपगमन । दोनों ंका लक्ष्य एक है।"

दो मार्गोंका सन्धान

शवषुणु पुराण में भगवान् शवषुणु की उतूकृष्ट रूप से गुणसुतुशत की गयी है और भगवान् शशव को गौण स्नान शदया गया है। शव पुराण में भगवान् शव का स्तवन मुख्य है और भगवान् हरर का गौण । देवी भागवतम् में देवी को सविो स्नान प्राप्त है और भगवान् शशव तरा भगवान् हरर को गौण । साधक के हृदय में अपने इष्टदेव के प्रशत प्रगाढ़, अटूट श्रद्धा उत्पन्न करने के शलए ऐसा शकया िाता है। शशव, हरर और देवी एक ही हैं। वे तो भगवान् के शवशभन्न स्वरूप हैं। शशव को हरर से और हरर को शव से गौण समझना मूखथता है।

एवंशवध, एक स्नान पर भगवान् कृष्ण कमथयोग की श्लाघा करते हैं-**"कमम संन्यासात्कममयोगो डवडिष्यते**"-"शनशश्चत रूप से कमथयोग कमथ-संन्यास से श्ेरेष्ठतर है" (५/२) । अन्य स्नान पर वे योग को सविो स्नान देते हुए कहते हैं-"योगी तपस्वी से श्ेरेष्ठ है, वह ज्ञाशनयों ंसे भी श्ेरेष्ठ माना िाता है; कमथयोगी से भी श्ेरेष्ठ है। अतः हे अिुथन ! तू योगी बन िा" (६/४६) । एक अन्य स्नान पर भगवान् भम्भक्योग की प्रशंसा करते हुए कहते हैं- "वह परम पुरुष तो हे पार्थ, केवल अनन्य भम्भक् िारा ही प्राप्य है" (L / R * R) । एक अन्य स्नान पर वे ज्ञानयोग की सुतुशत में कहते हैं- "यह सभी उदार हैं; शकनुतु ज्ञानी तो मेरा आत्म-स्वरूप है, आत्मवत् वह मुझमें म्भरुत है िो शक अम्भन्तम लक्ष्य है" (७/२२)।

अनभ्यस्त नव-साधक इन श्लोकों ंको पढ़ कर भ्रशमत हो िायेगा; शकनुतु गहन शचन्तन शकया िाये, तो भ्रम के शलए कोई स्नान नहीं ंरहता। साधक के हृदय में शनि मागथ-शवशेष के प्रशत आस्ना िागृत करने के शलए भगवान् कृष्ण ने प्रते्येक योग की प्रशंसा की है। स्मरण रहे, गीता समस्त शवश्व के शलए पठनीय ग्रन्थ है। यह केवल अिुथन के शलए ही नहीं ंसुनायी गयी। प्रते्येक योग समान रूप से प्रभावपूणथ और प्रबल है।

गीता का सार

गीता पुनः-पुनः साधक को अनासक् वृशत्त अंकुररत करने का प्रबल उपदेश देती है। बारम्बार गीता का यही सने्देश शमलता है शक संसार में ऐसे रहना चाशहए िैसे िल में कमल-पत्र–ल से सवथरा अप्रभाशवत। िो मनुष्य अनासक् भाव से सभी कमथ प्रभु को समशपथत करके करता है, वह िल में कमल-पत्र की भाँशत पाप से अप्रभाशवत रहता है, **"पद्मपत्रडमवाम्भसा**" (५/२२) ।

मोह आसम्भक् का कारण है। आसम्भक् रिस् गुण का प्रशतफल है। अनासम्भक् सत्त्व से उत्पन्न होती है। आसम्भक् आसुरी सम्पदा है। अनासम्भक् दैवी सम्पदा है। आसम्भक् अज्ञान, स्वार्थ और मोह से होती है। आसम्भक् मृतुयु का कारण है। अनासम्भक् ज्ञान है। अनासम्भक् से मोक्ष-प्राम्भप्त होती है। वसुतुतः अनासम्भक् का अभ्यास कठोर अनुशासन है। इसका अभ्यास पुनः-पुनः करना होगा। सम्भव है चलना सीखते हुए शशु की भाँशत आप शगर पड़ें; शकनुतु प्रफुल्ल हृदय से, मुस्कराते हुए आपको पुनः उठना पड़ेगा। असफलतायें अवरोध नहीं ंहैं, वे तो सोपान हैं सफलता के। आत्मस् होने का प्रयास करो । अपनी ही आत्मा में म्भरुत रहो। अपनी पररशध में रहो। सतत आत्म-शचन्तन करो। स्वभावतः ही सभी आसम्भक्याँ नष्ट हो िायेंगी। भौशतक आसम्भक्यों ंके शवनाश हेतु आत्मा अर्वा परमात्मा से आसम्भक् प्रबल प्रशतकारक का कायथ करती है। अनासक् व्यम्भक् ही दूसरों ंसे पे्रेम कर सकता है। उसके पास शदव्य पे्रेम है। अतः आसम्भक् रशहत हो कर शनरन्तर कमथ में रत रहना कतथव्य है; क्योंशंक आसम्भक् रशहत हो कर कमथ करने से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त होता है।

अध्याय तेरह, चौदह और पिह ज्ञानयोग को प्रशतपाशदत करते हैं। शिसे प्रकृशत और पुरुष का ज्ञान है, तीन गुण और उनके व्यापार का ज्ञान है और माया रूपी अद्‌भुत संसार-वृक्ष का ज्ञान है, वह प्रकृशत और उसके गुणों ंका अशतक्रमण कर के अनासम्भक् और आत्म ज्ञान के ख्िग से इस अनोखे बद्धमूल (संसार) वृक्ष को काट कर िन्म-मृतुयु के बन्धन से मुक् करने वाले आत्म-साक्षात्कार की सद्यः अनुभूशत कर सकता है। अध्याय पिह
आत्मा को पे्ररेरत करने वाला है। इसमें वेदान्त का सार शनशहत है। इस प्रवचन को अवधारण करने वाला व्यम्भक् अशचरेण मोक्ष-प्राम्भप्त करता है। वह परब्र्ह्म के अनश्वर धाम को पहुाँचता है। इन बीस श्लोकों ंको कण्ठस् करो और भोिन से पूवथ इनका उिारण करो। भोिन ग्रहण करने से पूवथ सभी संन्यासी इसका गान करते हैं।

अध्याय अठारह पुनः-पुनः पढ़ने योग्य है। समूपूणथ गीता शास्त्र का सार इसमें शनशहत है। गीता-ज्ञान रूपी अनुपम शैल-पाद का यह सवोि शखर है। यह अमूल्य हार का मुकुट मशण है। इसी में प्रर्म सत्रह अध्यायों ंके उपदेशों ंके सार संक्ेषेप में आचशक्षत हैं।

दूसरे अध्याय के श्लोकों ंमें १९,२०,२३ और २४ नम्बर के श्लोकों ंकी अनवरत सूमृशत और अभ्यास आप पर अमरत्व की वृशष्ट करेंगे और भय तर्ा देहाध्यास (शरीर और आत्मा में ऐक्य भाव) का शनवारण करेंगे।

'ये डि संस्पिमजा भोगा...' (५ /२२) , **'इन्द्रियारे्थेषु वैराग्यम्**..." (१३/ ८) और **'डवषयेन्द्रिय संयोगात्**...' (१८/३८) की शक्षाओं ंका सतत अभ्यास और सूमृशत वैराग्य लाने में सक्षम हैं।

अध्याय २ के श्लोक ७१ और अध्याय ४ के श्लोक ३९ परम शाम्भन्त के देने वाले हैं। अध्याय ५ के श्लोक २७ और २८, अध्याय ६ के श्लोक ११ से १४ और २६, अध्याय ८ के श्लोक ८,१२,१३ और १४, अध्याय ९ को श्लोक ३४, अध्याय १२ के श्लोक ८ से १० और अध्याय १८ के श्लोक ५१ से ५३ आत्म-साक्षात्कार हेतु अध्यात्म-साधना-योग-साधना में पर् प्रदशथत करते हैं। अध्याय २ श्लोक ११ से गीता-दशथन प्रारम्भ होता है। अध्याय १८ का श्लोक ६६ गीता में सवाथशधक महत्वपूणथ है- "सब धमों को त्याग कर एक मेरी शरण में आ िाओ, शोक मत करो, मैं तुम्हें सब पापों ंसे मुक् करूाँगा।" भगवान् कृष्ण से अिुथन कहते हैं- "मेरा हृदय लघुता से आहत है, मेरा मन शंकंकतथव्यशवमूढ़ हो गया है। मैं आपसे पूछता हाँ-शनशश्चत रूप से मेरे शलए िो श्ेरेयस्कर हो, वह बात कशहए। मैं आपका शशष्य हाँ, आपकी शरण में आया हाँ, मुझे उपदेश दीशिए।" अध्याय २ के श्लोक ७ में अिुथन िारा पूछे गये इस प्रश्न का उत्तर भगवान् कृष्ण अध्याय १८ के श्लोक ६६ में देते हैं। समूपूणथ गीता का सार अध्याय १८ के श्लोक ६५ और ६६ में अन्तशनथशहत है।

अध्याय १८ के श्लोक ६५ में 'नवधा भम्भक्' का सार शनशहत है। मनोवृशत्तयों ंके दमन की साधना यही है। पुनः पुनः भगवान् पर मन एकाशग्रत करने से सभी सांसाररक शवचार नष्ट हो िाते हैं। भम्भक्योग को कदाशचत् ही राियोग से पृर्क् शकया िा सकता है। ये दोनों ंयोग एकरूप हैं। महशषथ पतञ्जशल कहते हैं शक भगवान् के प्रशत भम्भक् से ही समाशध की अवस्र्ा प्राप्त हो सकती है- 'ईश्वरप्रशणधानाि' अर्ाथत् आत्म-समपथण से। शक्रयायोग और राियोग के शनयम में ईश्वर के प्रशत समपथण भाव अत्यन्त महत्त्वपूणथ है। 'मन्मना भव' का अशभप्राय है-मन को लीन करना। यह राियोग साधना है। भम्भक्योग कहाँ समाप्त होता है और राियोग कहाँ प्रारम्भ होता है, यह कहना कशठन है। राियोग भम्भक्योग का पूरक है। भम्भक्योग और राियोग के मध्य कोई सीमारेखा अर्वा दृढ़ शनयम नहीं ंहै। राियोगी एक भक् भी है और भक् एक राियोगी है। केवल नाम शभन्न हैं। भ्रशमत और शनराश अवस्र्ा से ग्रस्त अिुथन को प्रोत्साशहत करने के शलए भगवान् कृष्ण अिुथन को आश्वस्त करने के शलए ये वचन कहते हैं- “तुम मुझे प्राप्त होओगे। मैं तुम्हें सत्य वचन कहता हाँ, तुम मुझे शप्रय हो।" अध्याय अठारह के श्लोक ६५ के इन उपदेशों ं का पालन करो। शिसने इन चार महान् उपदेशों ंका पालन कर शलया, वह असमय अप्रशतज्ञ समपथण भाव लाने में सक्षम होगा।

अगला श्लोक आत्म-समपथण का भाव दशाथता है। अिैत वेदान्ती के अनुसार इसकी व्याख्या इस प्रकार होगी- "व्यशष्टभाव को त्याग दो। तुम मोक्ष प्राप्त करोगे । तुम िीवनुमुक् हो िाओगे।" भम्भक्पन्थ का आचायथ इस प्रकार व्याख्या करेगा - "सभी कमथ और कमथफल भगवान् के चरणों ंमें अशपथत कर दो। भगवान् तुम्हें मुक् करेंगे।" यहााँ धमथ का अर्थ इम्भिय-धमथ से नहीं ंहै; क्योंशंक िीवनुमुक् भी देखता है, सुनता है, स्वाद लेता है और इसी प्रकार अन्य कायथ करता है, शकनुतु वह ये सब साक्षीभाव में (िष्टा बन कर) करता है। इम्भियों ंके कमथ में वह स्वयं को एकरूप नहीं ंकर लेता। अिुथन की शिज्ञासा का शनयत उत्तर भगवान् कृष्ण इस श्लोक में देते हैं।

सवमधमामन्पररत्यज्य मामेकं िरणं व्रज ।
अिं त्वा सवमपापेभ्यो मोक्षडयष्याडम मा िुचः ।।

और अिुथन की शिज्ञासा री- "मेरा हृदय लघुता से आहत है। मैं शंकंकतथव्यशवमूढ़ हो गया हाँ। मैं आपसे पूछता हाँ, शनशश्चत रूप से मेरे शलए िो श्रेयस्कर हो, उसे कशहए। मैं आपका शशष्य हाँ, आपकी शरण में आया हाँ, मुझे उपदेश दीशिए।"

योग-वेदान्त पर अशधक पुस्तकों ंके अध्ययन की आवश्यकता नहीं ंहै। यशद उन दो श्लोकों ंके भाव में आप लीन रह सकते हैं तो अमृतत्व, शाश्वत आनन्द और आत्म-ज्ञान की प्राम्भप्त होगी।

“अहंभाव त्याग कर शनष्काम भाव से कमथ करो। कमथ और उसके फल भगवान् की सन्तशत मान कर उन्ें समशपथत कर दो। मन और अहंता भगवान् को दे कर िीवन को शदव्य बनाओ। मन और बुम्भद्ध उन्ें दे कर िीवन को आध्याम्भत्मक बना लो (**मन्द्रित, युक्त, मत्परः**) । भगवान् पर मन एकाग्र करो । उनके प्रशत भम्भक्भाव अशिथत करो। सब प्राशणयों ंके कल्याण में लग िाओ (सवथभूत शहते रतः) । सवथस्व भगवान् को अशपथत कर दो, तभी उनकी सत्ता में प्रवेश पा सकोगे।" समूपूणथ गीता में यही स्वर झंकृत हो रहा है।

गीता में साधना शनम्न श्लोकों ंमें शनरूशपत है :

कममयोग-२/४८; ४/२०,२१, २२ और २४

भन्द्रक्तयोग -९/२७,३४; १२/८; १८/५२,५३ और ५४

जपयोग-८/१४

अभ्यासयोग - १२/९

ठियोग-८/१० और १२

राजयोग-६/२५ और २६

ज्ञानयोग-३/२८; ५/८ और ९

रक्षण

गीता का अध्ययन, कुछ लोग उसमें शनशहत उपदेशों ंमें शच्छिोषण अर्वा आलोचनात्मक दृशष्टकोण ले कर करते हैं। शकन्तु प्रगाढ़ श्रद्धा और शवश्वास के सार् यशद अध्ययन शकया िाये, तो गीता के उपदेश बोधगम्य हो सकते हैं।

एक व्यम्भक् ने समाचार-पत्र में आलोचनात्मक आक्षेप इस प्रकार शदया- "गीता पावन ग्रन्थ कदाशप नहीं ंहै। यह तो शहंसा का पाठ पढ़ाती है। भगवान् कृष्ण ने अिुथन को अपने सम्बम्भन्धयों ंऔर गुरुिनों ंकी शहंसा के शलए आज्ञा दी ।" ऐसा प्रतीत होता है, इस समालोचक को गीता का ज्ञान ही नहीं ंर्ा। वह शवरोचन की भााँशत है शिसने प्रिापशत से आध्याम्भत्मक शक्षा तो ग्रहण की, परन्तु अपनी कुशटल मशत के कारण शरीर को ही आत्मा मान शलया। शनशश्चत रूप से वह आशमष (दैशहक) दशथन का अनुयायी होगा। वह गीता के दाशथशनक पक्ष की गम्भीरता को समझने में सक्षम नहीं ंहै; क्योंशंक उसकी बुम्भद्ध स्थूल और दुभेद्य होने के कारण सत्य को ग्रहण नहीं ंकर सकती । आध्याम्भत्मक ज्ञान की प्राम्भप्त हेतु उसने गीता नहीं ंपढ़ी, प्रत्युत् आक्रामक दृशष्टकोण से उसका अध्ययन शकया है। यशद वास्तव में उसने इन शनम्न तीन श्लोकों ंका महत्त्व िान शलया होता तो व्यर्थ की आलोचना न की होती । वे श्लोक हैं-

"िो इस आत्मा को मारने वाला समझता है और िो इसे मरा हुआ मान लेता है, वे दोनों ंही अज्ञानी हैं; क्योंशंक न तो वह मारता है और न ही मरता है (२/१९)

"अतः उठो । वे मेरे िारा पहले ही मारे िा चुके हैं। तुम तो मात्र बाह्य शनशमत्त बन िाओ।" (११/३३)

"िो व्यम्भक् अहंभाव (कतृथत्वभाव) से मुक् है, इन लोगों ंको मार कर भी शिसकी बुम्भद्ध प्रभाशवत नहीं ंहोती, वह न तो मारता ही है और न ही कमथ-बन्धन में आता है।" (१८/१७) सावथभौम सत्ता इन संकीणथ मूल्यों ंसे अतीत है।

साधक यशद आप्तकाम है, उसे भौशतक सुखों ंकी अब कामना नहीं ंहै, उसका शचत्त शान्त है, उसके मन की अशुम्भद्ध नष्ट हो चुकी है और वह शनमथल मन हो गया है, तो शकसी भी सन्त पुरुष की शक्षायें उसके हृदय को भेद कर ऐसे प्रभाशवत करती हैं िैसे शुद्ध, स्वच्छ और श्वेत वस्त्र को रंगीन िल । यही कारण है शक श्रवण, शनशदध्यासन और ध्यान से पूवथ साधक से शववेक, वैराग्य, शम (मनोशनग्रह), दम (इम्भियशनग्रह), उपरशत (शवषयभोग से उदासीनता) का अभ्यास अपेशक्षत है। सत्य और भगवत्साक्षात्कार के पर् पर चलने वाले साधकों ंसे अनुशासन और मानस-शुम्भद्ध पूवाथपेशक्षत हैं।

परमात्मा के स्वभाव का िब कहीं ंवणथन शकया िाता है वहााँ भी वे लोग शिनकी बुम्भद्ध पाप रशहत और पशवत्र नहीं ंहोती, अशवश्वास और आशंका के शकार हो िाते हैं िैसा शक इि और शवरोचन के सार् हुआ। इसशलए उपशदष्ट ज्ञानोदय तो केवल उसी व्यम्भक् में होता है शिसने इसी िन्म में अर्वा पूवथ–िन्म में तपश्चयाथ से अघमषथण कर शलया हो। श्रुशत कहती है-"शिस महान् पुरुष की गुरु-भम्भक् उतनी ही अशधक है शितनी भगवान् के प्रशत, उसको यह सब ज्ञान शनिात्मा में ही प्रकाशत हो िाता है।"

कुछ लोग अपनी रसना को शान्त करने के शलए गङ्गा नदी में मछली पकड़ते हैं और अपना बुरा कमथ उशचत शसद्ध करने के शलए गीता का सहारा लेते हैं-"उसे शस्त्र काट नहीं ंसकते और अशग्न िला नहीं ंसकता" (२/२३)। कैसा अद्भुत दशथन है! असुर भी शास्त्र को उद्धृत कर सकते हैं। ये लोग शवरोचन के मतानुयायी हैं। वे अधम, मोहग्रस्त शनकृष्ट मनुष्य हैं। वे गीता का ज्ञान नहीं ंसमझ सकते; क्योंशंक उनका शववेक आसुरी वृशत्तयों ंको अपनाने के कारण भ्रशमत हो गया है। भगवान् करे, उन्हें सूक्ष्म और पशवत्र (शनमथल) बुम्भद्ध प्राप्त हो! गीता के

उपदेशों ंको सम्यक् प्रकार से समझने और उसी भाव में िीवन यापन करने के शलए उनें् आभ्यन्तर, आध्याम्भत्मक शम्भक् और शववेक प्राप्त हो!

कुछ अज्ञानी मनुष्यों ंका कर्न है-"कृष्ण भगवान् नहीं ंहैं। वे अवतार नहीं ंहैं। वे वासनायुक् गोपालक रे्शिन्ोंनें काम-वासना में गोशपयों ंके सार् क्रीिा की।" भगवान् कृष्ण की उस समय आयु क्या र्ी? क्या वे सात वषथ के बालक नहीं ंर्े? लेशमात्र भी काम-वासना उनमें हो सकती र्ी क्या? रासलीला और माधुयथभाव (भक् और भगवान् के मध्य पे्रम भाव), सविो भम्भक् की पराकाष्ठा, आत्म-शनवेदन अर्वा भगवान् के प्रशत पूणथ आत्म-समपथण के रहस्य को कौन िान सकता है? नारद, शुकदेव, चैतन्य, मीरा, हफीज़, रामानन्द, सम्भखयााँ अर्वा गोशपयााँ ही इस रासलीला की मशहमा और रहस्य को िान सके । तदर्थ सम्भखयााँ ही प्रशशशक्षत र्ीं।ं क्या बालावस्र्ा में भगवान् कृष्ण ने चमत्कार नहीं ंशदखाये ? क्या उन्ोंनें यह नहीं ंदशाथया शक वे स्वयं ही भगवान् शवष्णु के अवतार र्े? क्या शैशव काल में उन्ोंनें अपनी माताश्री को अपना अलौशकक रूप नहीं ंशदखाया ? क्या उन्ोंनें काशलय नाग के फण पर ख़िे हो कर उसे वशीभूत नहीं ंशकया? क्या उन्ोंनें स्वयं को अगशणत कृष्ण रूपों ंमें गुशणत नहीं ंशकया ? गोशपयााँ कौन र्ीं?ं कृष्ण को सवथत्र देखने वाली और स्वयं में कृष्ण के दशथन करने वाली वे गोशपयााँ भगवदुन्मत्त नहीं ंर्ीं?ं मुरली की धुन उनें् शदव्य आनन्द अर्वा पावन तादात्म्यता में पहुाँचा देती र्ी। वे देहाध्यास से अतीत र्ीं।ं

भगवान् के शलए शमथ्या अपवाद करने और दोषदृशष्ट रखने वालों ंकी शनयशत क्या होगी? "मेरी अनुत्तम, अशवनाशी, परा प्रकृशत को न िानते हुए बुम्भद्धहीन मनुष्य मुझ अव्यक् को व्यक् भाव में आया समझते हैं" (७/२४)

“समस्त प्राशणयों ंके महान् स्वामी अर्ाथत् मुझको मनुष्य रूप में अवतररत देख कर मेरी परात्पर प्रकृशत से अनशभज्ञ मंदधी मनुष्य मेरा उपहास करते हैं। आशाशून्य, कमथशून्य, ज्ञानशून्य वे लोग शवशक्षप्त हो कर छाशद्मक, क्रूर (पशुतुल्य) और आसुर प्रकृशत वाले हो िाते हैं" (९/११,१२) । “अज्ञानान्धकार से आवृत वे असत्य को सत्य मान कर पदार्ों को शवपरीत भाव में देखते हैं। ऐसे आसुरी वृशत्त वाले न तो कमथ की पररभाषा िानते हैं, न त्याग की, न शुशचता की, न सदाचार की और न ही वे सत्य को िानते हैं, न ऋिुता को। शंकंकतथव्यशवमूढ़ ऐसे मनुष्यों ंको मैं आसुरी योशनयों ंमें िालता हाँ। मुझे न प्राप्त हो कर वे आवागमन के चक्र में फाँस िाते हैं और शनम्न योशनयों ंको प्राप्त होते हैं" (१६/१९,२०)।

अनेक शवचारशून्य व्यम्भक् यह शंका करते हुए कहते हैं-"इतने अल्प समय में भगवान् ने समर भूशम में अिुथन को गीता कैसे सुना दी? असम्भव, ऐसा नहीं ंहो सकता?" यह शंका अनुशचत है। यह सब तो अिुथन को शुरुशत-प्रकाश हुआ । भगवान् कृष्ण ने अिुथन को सहिावबोध हेतु शदव्य चकु्षु प्रदान शकया। सवथज्ञ, सवथशम्भक्मान् प्रभु कुछ भी करने में समर्थ हैं। उनकी कृपा हो तो मूक वाचाल बन िाये और पंगु पहाि़ पर चढ़ िाये ।

शवप्रशतपन्न(शवरुद्ध) श्लोकों ंका समाधान

एक शवपक्षी शलखता है- "गीता के तीसरे अध्याय के ३३वें श्लोक में कहा गया है-'एक ज्ञानी पुरुष भी अपनी प्रकृशत के अनुरूप ही कायथ करता है। सभी प्राणी प्रकृशत का अनुसरण करते हैं। संयम क्या करेगा?' िब प्रकृशत ही सवेसवाथ है, तो हमें मन तर्ा इम्भियों ंको वश में करने के शलए प्रयत्न करने की आवश्यकता ही क्या है? िब प्रकृशत ही सवाथशधक शम्भक्शाली है, पराशित करने में समर्थ है, तो साधना उसे पराभूत कैसे कर सकती है?"

अगले श्लोक में भगवान् कृष्ण शवशेष रूप से राग-िेष पर शविय पाने का उपदेश देते हैं। साधना से प्रकृशत को संयत शकया िा सकता है। गीताध्ययन करते समय केवल एक श्लोक के अर्थ में ही नहीं ंअटक िाना

चाशहए । इसे तो न केवल उसी अध्याय के पूवथ और पश्चात् के श्लोकों ंसे सम्बद्ध करना होगा, प्रतुयुत् पूवथ के अध्याय भी ध्यान में रखने होंगें। शवरुद्ध शवषयों ंका सम्बन्ध बनाना होगा। तभी आपको समुशचत उत्तर प्राप्त होगा।

भगवान् के आदेश की अवहेलना करके िो लोग कतथव्य कमथ को त्याग कर शान्त बैठ िाते हैं, वे ऐसे त्याग से लाभाम्भित नहीं ंहो सकते। तीसरे अध्याय ३०वें श्लोक में भगवान् का आदेश है-"सवथ कमथ मेरे समपथण करके, आत्मस्(एकाग्रशचत्त) हो कर, आशा और ममत्व को त्याग कर, मानशसक तनाव से मुक् हो कर (हे अिुथन), तुम युद्ध करो अरा्थत् अपने कतथव्य का पालन करो।" यह माया तो ज्ञानी पुरुषों ंके शलए भी अिेय है; शफर सांसाररक मनुष्य के शलए तो इसे िीतना और भी दुष्कर है। उनके शलए शबना ज्ञान प्राप्त शकये कमथ-त्याग अपेशक्षत नहीं ंहै। वे माया के भाँवर में फाँस िायेंगे। उनके शलए इम्भियशनग्रह अर्वा संयम का कोई प्रयोिन नहीं।ं सांसाररक मनुष्य रागिेष से दूर नहीं ंरह सकते।

ज्ञाशनयों ंमें अवशष्ट साम्भत्त्वक वासनायें भी, िो शरीर को म्भस्रर रखती हैं, प्रकृशत के गुण-त्रय-सत्त्व, रिस् और तमस् के अनुरूप ही कायथ करते हैं। समाशध की यर्ार्थ अवस्ा में न होने पर ये तीन गुण ज्ञाशनयों ंको भी प्रभाशवत करते हैं। उन्ें इस शरीर से अर्वा अन्य भोग-शवषयों ंमें आसम्भक् नहीं ंहोती; अतः वे मानशसक रूप से प्रभाशवत नहीं ंहोते। वे अपनी आत्मा में ही पररतुष्ट और प्रशान्त होंगें। अनवाप्त शवषयों ंको प्राप्त करने की उनमें आकाङ्क्षा नहीं ंहोगी और न ही वे प्राप्त की हाशन (लोप) पर शोक करेंगे।

आलोचक कहता है- "गीता के १८वें अध्याय के ६१वें श्लोक में भगवान् कृष्ण कहते हैं- 'हे अिुथन! भगवान् सभी प्राशणयों ंके हृदय में शनवास करते हैं और कुम्हार के चक्र पर आरूढ़ पात्र की भााँशत अपनी माया से सबको भ्रशमत करते हैं।' तो क्या मनुष्य पूणथ रूप से परतन्त्र है? क्या वह शतनके की भााँशत इधर से उधर ठुकरा शदया िाता है? क्या उसे कमथ की कोई स्वतन्त्रता नहीं ंहै?"

भगवान् कृष्ण अिुथन को अनुनीत करने का और उसकी शंकाशनवारण का यर्ोशचत प्रयास करते हैं शिससे शक वह अपने कमथ में संलग्न हो िाये। वे अिुथन से काम लेना चाहते हैं; इसीशलए शनतान्त असहाय अवस्ा में वे उपदेश देते हैं। छठे अध्याय के ५वें श्लोक में भगवान् कृष्ण पुरुषार्थ का उपदेश देते हुए कहते हैं- "उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्-आत्मा से आत्मा का उद्धार करना है। आत्मा को अवसाद की म्भस्शत में नहीं ंले िाना।"

प्रकृशत के वश में होने के कारण स्वाभाशवक गुणों ंका पररत्याग नहीं ंहो सकता। कभी भी कतथव्य-कमथ की उपेक्षा नहीं ंकरनी चाशहए। भगवान्, अन्तःकरण के स्वामी, व्यशष्ट आत्मा के अनुशासक हैं। अशवद्या के नाश होने पयथन्त मनुष्य अपने धमथ (कतथव्य-कमथ) से बाँधा रहता है। अिुथन क्षशत्रय है; अतः भगवान् चाहते हैं शक वह युद्ध में प्रवृत्त हो । अन्यत्र भगवान् कहते हैं : "श्रे्रेयान् स्वधमथः" -अपना कतथव्य ही कल्याणप्रद है (१८/४७) ।

एक आलोचक का कर्न १५वें अध्याय के ७वें श्लोक में भगवान् कृष्ण कहते हैं- 'इस िीविगत् में अमर आत्मा मेरा ही अंश है िो प्रकृशत में अवगुंशठत मन सशहत छह इम्भियों ंको आकृष्ट करता है।' यह स्पष्ट है शक िीवि ब्र्ह्म का अंश है, तो हम िीव को ब्र्ह्म का तिूप कैसे कह सकते हैं? अिैत शसद्धान्त त्रुशटपूणथ है।"

७वें अध्याय के १७वें श्लोक में भगवान् कहते हैं- "शनशश्चत रूप से ज्ञानी मेरे समान है।" यहााँ वे तिूपता की बात कर रहे हैं। अिैत शसद्धान्त समुशचत ही है। सविो साक्षात्कार अिैत म्भस्शत है। अशधकारी के अनुरूप ही भगवान् उपदेश करते हैं। अिैत दशथन कशतपय सूक्ष्म बुम्भद्ध वाले ही ग्रहण कर सकते हैं। अन्य साधकों ंकी रुशच का ध्यान रखते हुए अन्य दशथनों ंकी व्याख्या वे अन्य स्ानों ंपर करते हैं। पूणथत्व के दृशष्टकोण से न तो िीव की सत्ता है और न साक्षात्कार की। वसुतुतः एक ब्र्ह्म ही का केवल अम्भस्तत्व है। िैत (dualism), शवशशष्टैत (qualified

monism), शुद्ध अिैत (pure monism) साक्षात्कार की सीढ़ी के पृर्क् पृर्क् सोपान हैं। सत्य यही है शक साररूप में िीव और ब्रह्म एक हैं। िैतवादी और शवशशष्टािैतवादी अन्ततः अिैत के लक्ष्य अर्वा एकत्व के साक्षात्कार को ही प्राप्त करते हैं। भ्रम में न पड़ें। शवचारों को स्पष्ट करें और समुशचत शवचारधारा के प्रकाश में ज्ञान प्राप्त करें।

उपसंहार

पाश्चात्य देशवाशसयों िारा भारत देश को गीता के कारण महान् गौरव प्राप्त हुआ है। एक बार महात्मा गान्धी लन्दन के एक बड़े पुस्तकालय में गये और ग्रन्थाध्यक्ष से पूछा- "कौन-से आध्याम्भत्मक ग्रन्थ का सवाथशधक शनष्कासन होता है?" अध्यक्ष ने कहा- "गीता।" संसार भर में गीता को ख्याशत प्राप्त है। सभी साधकों को इस शवश्वशवख्यात ग्रन्थ के समूपूणथ अठारह अध्याय कण्ठस्र् कर लेने चाशहए। शनत्य स्वाध्याय और प्रशतशदन दो श्लोक कण्ठस्र् कर लेने से लगभग दो वषों में यह कायथ सम्पन्न हो सकता है।

भारत ही नहीं प्रत्युत् शवश्व की समस्त पाठशालाओं और शवश्वशवद्यालयों में गीता का अध्ययन अशनवायथ होना चाशहए। समस्त शवद्यालयों और शवश्वशवद्यालयों में गीता को पाठ्यपुस्तक (Textbook) का स्र्ान शमलना चाशहए। उनके अध्ययन क्रम (curriculum) में इसे प्रशतशष्ठत करना चाशहए। शक्षा की प्रत्येक प्रणाली में इसे महत्त्वपूणथ स्र्ान उपलब्ध होना चाशहए। लौशकक ज्ञान के सार्-सार् शिसमें नैशतक और आध्याम्भत्मक ज्ञान भी शदया िाता है, वही शक्षा-पद्धशत सुदृढ़, व्यावहाररक, शवषयबोधगम्य और पूणथ मानी िाती है।

आपमें से प्रत्येक को इस उत्कृष्ट, माशमथक ग्रन्थ का अध्ययन सावधानी से करना चाशहए। यह परम शाम्भन्त, अमृतत्व और शाश्वत आनन्द की वृशष्ट करने वाला ग्रन्थ है।

शवश्वास का दीप िलाओ । शाम्भन्त की इस अद्भुत पताका को वायु में ऊँचा लहराने दो। अनासम्भक् का महान् कवच धारण करो। शववेक का अलौशकक शस्त्र उठाओ। 'सोऽहम्', 'शवोऽहम्', शंकंवा 'राधेश्याम', 'सीताराम' का अमर गीता गाओ । ॐ ॐ के प्रणव बैण्ड के सार् वीरतापूवथक आगे बढ़ो । साहस का अनोखा शंख बिाओ । शंका, अशवद्या, आसम्भक्, अहं आशद शत्रुओं का शवनाश करके आत्मा के अनन्त साम्राज्य में प्रवेश करो। शदव्य अमृतरस का आस्वादन करो। अमृतत्व का सुधारस पान करो।

भगवान् गणेश, भगवान् सुब्रह्मण्यम्, भगवान् राम, देवी सीता, श्री सरस्वती, श्री भगवान् व्यास, श्री आशद शंकराचायथ, पद्मपादाचायथ, हस्तामलकाचायथ, त्रोटकाचायथ, सुरेश्वराचायथ, श्री ज्ञानदेव, श्री स्वामी शवश्वानन्द, श्री स्वामी शवष्णुदेवानन्द, ब्रह्मशवद्या के समस्त गुरुओं, सन्तों, आचाययों, भगवद्गीता के समस्त टीकाकारों को मेरा मौन प्रणाम, शिनकी अहेतुकी कृपा और आशीवाथद के कारण ही मैं भगवद्गीता पर टीका शलखने में समर्थ हुआ। आप सबको उनका आशीवाथद प्राप्त हो!

भगवीता की िय हो! भगवान् कृष्ण की िय हो शिन्होंने मनुष्यों के कल्याणार्थ अर्वा उन्हें मोक्ष शदलाने के शलए गीता का ज्ञान शवश्व के समक्ष रखा ! आप सब पर उनकी कृपा-वृशष्ट हो ! गीता तुम्हारा लक्ष्य, आदशथ और केि हो ! गीता का शनत्य अध्ययन करने वाला पुरुष धन्य है ! दुगना धन्य वह पुरुष है िो गीता के भाव में िीता है ! शतगुना धन्य वह है शिसने गीता-ज्ञान का साक्षात्कार कर आत्म-ज्ञान प्राप्त कर शलया है !

ॐ तत् सत्!
ॐ िान्द्रतः ! िान्द्रतः ! िान्द्रतः !

-स्वामी डिवानन्द

डवषय-सूची

श्लोक में सन्द्रित िब्ों ंके
अर्थम उसी क्रम में डदये गये िैं और
अनुवाद में सिज गद्य-पद्यडत अपनायी गयी िै।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर्थ प्रर्थमोऽध्यायः

अिुथनशवषादयोगः

धृतराष्ट्र उवाच

धममक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।

मामकाः पाण्डवाश्चैव डकमकुवमत सञ्जय ।। १ ।।

शब्दार्थ : धमथक्षेत्रे -धमथभूशम में, कुरुक्षेत्रे-कुरुक्षेत्र में, समवेताः- एकशत्रत, युयुत्सवः-युद्ध की इच्छा वाले, मामकाः- मेरे (पक्ष के), पाण्डवाः- पाणुडु पुत्रों ने, च-और, एव-ही, शकम् -क्या, अकुवथत-शकया, सञ्जय-हे सञ्जय ।

धृतराष्ट्र ने किा

अनुवाद : हे सञ्जय, धमथक्षेत्र कुरुक्षेत्र में युद्ध की इच्छा से एकशत्रत मेरे और पाणुडु के पुत्रों ने क्या शकया ?

व्याख्या : धमथक्षेत्र-वह क्षेत्र अर्वा स्ान, िहााँ धमथ की रक्षा होती है ।

कुरुक्षेत्र-कौरवों के राज्य में होने के कारण यह स्ल कुरुक्षेत्र कहलाया।

सञ्जय वह है, शिसने इच्छा-अशनच्छा आशद िन्िं को िीत शलया है और शनष्पक्ष है।

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं वूयूढं दुयोधनस्तदा ।
आचायमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ।।२ ।।

बि्ार्थम : दृष्ट्वा-देख कर, तु-शनशश्चत रूप से, पाण्डवानीकम् -पाण्डवों की सेना को, वूयूढम् - वूयूह रचना, दुयोधनः दुयोधन, तदा-तब, आचायथम्-आचायथ, उपसङ्गम्य-समीप िा कर, रािा-रािा, वचनम्-वचन (शब्द), अब्र्वीत् - बोला।

सञ्जय ने किा

अनुवाद : पाण्डवों की सेना को वूयूह (सेना का शवन्यास शवशेष) में ख़िा देख कर रािा दुयोधन आचायथ के समीप िा किर यह वचन बोला।

पशै्यैतां पाणुडुपुत्राणामाचायम मितीं चमूम् ।
नूयूढां दुरुपदपुत्रेण तव डिष्येण धीमता ।।३ ।।

बि्ार्थम : पश्य-देखो, एताम् - इसे, पाणुडुपुत्राणाम् -पाणुडुपुत्रों की, आचायथ-हे आचायथ, महतीम् -महान्, चमूम् - सेना, वूयूढाम्-वूयूढाकार में व्यवम्भस्त, िुपदपुत्रेण िुपद के पुत्र िारा, तव शष्येण - आपके शशष्य के िारा, धीमता- बुम्भद्धमान् ।

अनुवाद : हे आचायथ, आपके बुम्भद्धमान् शशष्य िुपद के पुत्र (धृष्टद्युम्न) िारा वूयूह रचना में ख़िी की गयी पाणुडु पुत्रों की इस शवशाल सेना को देखो।

अत्र िूरा मिष्वासा भीमाजुमनसमा युडध ।
युयुधानो डवराटश्च दुरुपदश्च मिारर्थः ।।४।।

बि्ार्थम : अत्र-यहााँ, शूराः-वीर, महेष्वासाः - महान् धनुधथर, भीमाि्ुथनसमाः - भीम और अि्ुथन के समान, युशध-युद्ध में, युयुधानः - युयुधान, शवराटः-शवराट, च-और, ि्ुपदः ि्ुपद, च-और, महारर्ः - महारर्ी।

अनुवाद : "यहााँ (इस सेना में) भीम और अि्ुथन के समान महान् योद्धा और धनुधथर हैं। युयुधान (सात्यशक), शवराट् और ि्ुपद िैसे महारर्ी हैं।

व्याख्या : महारर्ः - पररभाषा की दृशष्ट से इसका अर्थ है वह योद्धा िो युद्धशवज्ञान में कुशल हो और अकेला ही दश सहस्र धनुधथरों ंसे लि़ने की क्षमता रखता हो ।

धृष्ट्केतुशे्चेडकतानः काडिराजश्च वीयमवान् ।
पुरुडजतुकुन्द्रतभोजश्च िैब्यश्च नरपुङ्गवः ।।५ ।।

बि्ार्थम : धृष्टकेतुः- धृष्टकेतु, चेशकतानः- चेशकतान, काशरिाः-काशी नरेश, च-और, वीयथवान् वीर, पुरुशित् - पुरुशित, कुम्भन्तभोिः-कुम्भन्तभोि, च-और, शैब्यः-शशशव का पुत्र, च-और, नरपुङ्गवः- मनुष्यों ंमें श्ेरेष्ठ ।

अनुवाद : "धृष्टकेतु, चेशकतान और बलशाली काशी नरेश, पुरुशित् और कुम्भन्तभोि तर्ा नरश्ेरेष्ठ शैब्य ।

युधामनुयुश्च डवक्रात उत्तमौजाश्च वीयमवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सवम एव मिारर्ाः ।।६ ।।

बि्ार्थम : युधामनुयुः युधामनुयु, च-और, शवक्रान्तः-शम्भक्शाली, उत्तमौिाः उत्तमौिस्, च-और, वीयथवान् वीर, सौभिः सुभिा का पुत्र, िौपदेयाः िौपदी के पुत्र, च-और, सवे-सभी, एव-ही, महारर्ाः- महान् योद्धा ।

अनुवाद : "शम्भक्शाली युधामनुयु और वीर उत्तमौिा, सुभिा का पुत्र (अशभमनुयु) तर्ा िौपदी के पााँचों ंपुत्र-यह सब महारर्ी हैं।

अस्माकं तु डवडिष्ट्ा ये ताडिबोध डिजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञारं्थं तान्ब्रवीडम ते ।।७ ।।

बि्ार्थम : अस्माकम् -हमारे, तु-भी, शवशष्टाः-सवथश्ेरेष्ठ, येि्ो, तान्-उनका, शनबोधि्ानलो, ि्शिोत्तम-ब्ाह्मण श्ेरेष्ठ, नायकाः-नायक, मम-मेरी, सैन्यस्य-सेना के, संज्ञार्थम् -सूचना के शलए, तान् उनको, ब्वीशम बताता हाँ, ते-आपको ।

अनुवाद : "हे ब्ाह्मण श्ेरेष्ठ ! हमारी सेना में भी िो उतूकृष्ट नायक हैं उनें आप िान लीशिए, आपकी सूचना के शलए मैं उनके नाम बताता हाँ।

भवान्भीष्मश्च कणमश्च कृपश्च सडमडतञ्जयः ।
अश्वत्थामा डवकणमश्च सौमदडत्तस्तर्ैथैव च ।।८ ।।

बि्ार्थम : भवान् - आप, भीष्मः-भीष्म, च-और, कणथः-कणथ, च-और, कृपः -कृपाचायथ, च-और, सशमशतञ्जयः - युद्ध में
शवियी, अश्वत्थामा-अश्वत्थामा (िोणाचायथ का पुत्र), शवकणथः - शवकणथ, च-और, सौमदशत्तः सोमदत्त का पुत्र, तर्ा- इस प्रकार, एव-ही, च-और।

अनुवाद : "आप और भीष्म, कणथ और संग्राम-शविेता कृपाचायथ, अश्वत्थामा,शवकणथ और सोमदत्त का पुत्र भूररश्रवा

अन्ये च बिवः ि्ूरा मदर्थे त्यक्तजीडवताः ।
नानिास्त्रप्रिरणाः सवे युद्धडविारदाः ॥९ ॥

बि्ार्थम : अन्ये-अन्य (दूसरे), च और, बहवः अनेक, शूराः शूरवीर, मदर्े -मेरे शलए, त्यक्ीशिवताः- िीवनोत्सगथ करने को उद्यत, नानाशस्त्रप्रहरणाः -नाना प्रकार के शस्त्रों ्ंसे सुसम्भित, सवे-सब, युद्धशवशारदाः - युद्ध कला में शनपुण।

अनुवाद : "और भी अनेक ऐसे योद्धा हैं िो युद्धकला में शनपुण तर्ा नाना प्रकार के शस्त्रों ्ंसे सुसम्भित हैं। वे सब मेरे शलए प्राण त्यागने को तैयार हैं।

अपयामप्तं तदस्माकं बलं भीष्माडभरडक्षतम् ।
पयामप्तं न्द्रत्वदमेतेषां बलं भीमाडभरडक्षतम् ॥१० ॥

बि्ार्थम : अपयाथप्तम् - अपयाथप्त, तत्-वह, अस्माकम् -हमारी, बलम् -सेना, भीष्माशभरशक्षतम् - भीष्मशपतामह िारा रशक्षत, पयाथप्तम् - पयाथप्त, तु–ब शक, इदम् यह, एतेषाम् - उनकी, बलम् -सेना, भीमाशभरशक्षतम् - भीम िारा रशक्षत ।

अनुवाद : "भीष्मशपतामह के संरक्षण में हमारी सेना अपयाथप्त (अप्रचुर) है िब शक भीम िारा रशक्षत उनकी सेना पयाथप्त (प्रचुर) है।

व्याख्या : टीकाकारों ्ंने इस श्लोक की व्याख्या शभन्न-शभन्न रूप से की है। श्रीधर स्वामी के अनुसार 'अपयाथप्तम्' का अर्थ है- अप्रचुर अर्वा अल्प िब शक आनन्दशगरर इस शब्द को 'असीशमत' भाव में लेते हैं।

अयनेषु च सवेषु यर्ाभागमवन्द्रथर्थताः ।
भीष्ममेवाडभरक्षतु भवतः सवम एव डि ॥११ ॥

बि्ार्थम : अयनेषु -चक्रवूयूहों ्ंमें (सेना के), च-और, सवेषु सभी, यर्ाभागम् - अपने-अपने भाग (स्र्ान और दल) के अनुरूप, अवम्भस्र्ताः -ख़िे रह कर, भीष्मम् -भीष्म की, एव-केवल, अशभरक्षनुतु-रक्षा करें, भवन्तः - आप सब, सवे-सभी, एव-ही, शह-शनशश्चत रूप से।

अनुवाद : "इसशलए आप सब अपने-अपने स्र्ान पर म्भस्र्त रह कर सेना के सभी वूयूहों ्ंमें सब ओर से केवल भीष्मशपतामह की ही रक्षा करें।"

तस्य संजनयन्हषं कुरुवृद्धः डपतामिः ।
डसंनिादं डवनद्योैः ि्ंखंदध्मौ प्रतापवान् ॥१२ ॥

बि्ार्थम : तस्य-उसका (दुयोधन का), संनियन् -बढ़ाते हुए, हषथम् -हषथ, कुरुवृद्धः-कौरवों ्ंमें वयोवृद्ध, शपतामहः- शपतामह, शसंहनादम् - शसंह की गिथना, शवनद्य -गरि कर, उिैः- उि्स्वर से, शंखम् -शंख, दध्मौ-बिाया, प्रतापवान् - प्रतापी ।

अनुवाद : कुरुवृद्ध महातिेस्वी शपतामह भीष्म ने दुयोधन के हृदय में हषथ उत्पन्न करने के शलए शसंह के समान गरि कर उि स्वर से अपना शंख बिाया।

ततः िंखाश्च भेयमश्च पणवानकगोमुखाः ।
सिसैवाभ्यिन्यत स िब्सुतुमुलोऽभवत् ।।१३ ।।

बिार्थम : ततः-तत्पश्चात्, शंखाः-शंख, च-और, भेयथः भेरी (दुंदुशभ), च-और, पणवानकगोमुखाः-ढोल, मृदङ्ग और सींगं (शृङ्ग), सहसा एव-अकस्मात् ही, अभ्यहन्यन्त-उद्घोष हुआ, सः- वह, शब्दः- ध्वशन, तुमुलः- भयंकर, अभवत् रा ।

अनुवाद : तत्पश्चात् (भीष्म का अनुसरण करते हुए), शंख, दुंदुशभ, ढोल, मृदङ्ग और शृङ्ग बिोंं का सहसा ही उद्घोष हुआ। वह नाद अत्यन्त भयंकर रा।

ततः श्वेतैिमयैयुमक्ते मिडत स्यन्दने न्द्रथर्थतौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव डदव्यौ िंखौ प्रदध्मतुः ।।१४।।

बिार्थम : ततः-तत्पश्चात्, श्वेतैः- श्वेत, हयैः-घोिोंं से, युक्ते युक्, महशत-शवशाल, स्यन्दने-रर् में, म्भस्तौ-बैठे हुए, माधवः- माधव (कृष्ण), पाण्डवः-पाण्डव (पाण्डुपुत्र), च-और, एव-ही, शदव्यौ-शदव्य, शंखौ शंख, प्रदध्मतुः बिाये ।

अनुवाद : तदुपरान्त, श्वेत घोिोंं से युक् अशतशोभन (शवशाल) रर् में शवराशित माधव (कृष्ण) और पाण्डुपुत्र (अिुथन) ने अपने-अपने शदव्य शंखों ंसे नाद शकया।

पाञ्चजन्यं हृषीकेिो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ मिािंखं भीमकमाम वृकोदरः ।।१५।।

बिार्थम : पाञ्चिन्यम् -पाञ्चिन्य नामक शंख, हृषीकेशः इम्भियों ंके स्वामी (कृष्ण), देवदत्तम् - देवदत्त (शंख का नाम), धनञ्जयः-कुबेर को िीतने वाले (अिुथन), पौण्डरम् -पौण्डर नामक शंख, दध्मौ-बिाया, महाशंखम् -महान् शंख, भीमकमाथ-भयंकर कायथ करने वाले, वृकोदरः- भीम (भेशिये के समान उदर वाला)।

अनुवाद : भगवान् कृष्ण ने पाञ्चिन्य शंख बिाया, अिुथन ने देवदत्त और भयानक कमथ करने वाले, अशत भोिी भीम ने पौण्डर शंख बिाया ।

अनतडवजयं राजा कुतीपुत्रो युडधडिरः ।
नकुलः सिदेवश्च सुघोषमडणपुष्पकौ ।।१६ ।।

बिार्थम : अनन्तशवियम् - अनन्तशविय नामक शंख, रािा-रािा, कुन्तीपुत्रः कुन्तीपुत्र, युशधशष्ठरः- युशधशष्ठर, नकुलः- नकुल, सहदेवः सहदेव, च-और, सुघोषमशणपुष्पकौ-सुघोष और मशणपुष्पक (शंख)।

अनुवाद : कुन्तीपुत्र रािा युशधशष्ठर ने अनन्तशविय नामक शंख बिाया और नकुल तरा सहदेव ने सुघोष और मशणपुष्पक शंख बिाये।

काश्यश्च परमेष्वासः डिखण्डी च मिारर्थः ।

धृष्ट्द्युम्नो डवराटश्च सात्यडकश्चापराडजतः ||१७ ||

बि्ार्थम : काश्यः-काश्य (काशी नरेश), च-और, परमेष्वासः-उतूकृष्ट धनुधथर, शखण्डी-शखण्डी, च-और, महारर्ः महान् योद्धा, धृष्टद्युम्नः- धृष्टद्युम्न, शवराटः-शवराट, च-और, सात्यशकः-सात्यशक (युयुधान, श्रीकृष्ण का सारर्ी), च-और, अपराशितः - अिेय ।

अनुवाद : महान् धनुधथर काश्य (काशी नरेश), महान् योद्धा शखण्डी, धृष्टद्युम्न, शवराट और अिेय सात्यशक ने,

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सवमिः पृडर्थवीपते ।
सौभद्रश्च मिाबाहः िंखान्दधुमुः पृर्थकृपृर्थक् ।।१८ ।।

बि्ार्थम : ुपिदः िुपद, िौपदेयाः - िौपदी के पुत्र, च और, सवथशः-सब, पृशर्वीपते-हे पृशर्वीपशत, सौभिः-सुभिा का पुत्र (अशभमनुयु), च-और, महाबाहुः-शवशाल भुिाओं ंवाला, शंखान्-शंख, दधुमुः बिाये, पृर्क् पृर्क् अलग-अलग।

अनुवाद : हे वसुन्धरा के स्वामी! िुपद और िौपदी के सभी पुत्रों ंने तर्ा महाबाहु अशभमनुयु ने पृर्क् पृर्क् शंख बिाये ।

व्याख्या : इस शंखनाद ने युद्ध के आरम्भ होने की घोषणा की।

स घोषो धातमराष्ट्राणां हृदयाडन व्यदारयत् ।
नभश्च पृडर्थवीं ंचैव तुमुलो व्यनुनादयन् ।।१९।।

बि्ार्थम : सः-उस, घोषः -नाद ने, धातथराष्टराणाम् - धृतराष्टर के पुत्रों ंके, हृदयाशन-हृदय, व्यदारयत्-शवदीणथ कर शदये, नभः- आकाश, च-और, पृशर्वीम् -पृशर्वी को, च-और, एव-भी, तुमुलः- भयानक, व्यनुनादयन् - प्रशतध्वशनत करते हुए।

अनुवाद : पृशर्वी लोक और द्युलोक को प्रशतध्वशनत करते हुए उस भयानक शंखनाद ने धृतराष्टर के पक्ष के सैशनकों ंके हृदय शवदीणथ कर शदये।

अर्थ व्यवन्द्रथर्थतान् दृष्ट्वाधातमराष्ट्रान्कडपध्वजः ।
प्रवृत्ते िस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ।।२० ।।
हृषीकेिं तदा वाक्यडमदमिा मिीपते ।

बि्ार्थम : अर्-अब, व्यवम्भस्तान् - वूयूह में स्थिे हुए, दृष्ट्वा देख कर, धातथराष्टरान् - धृतराष्टर के पक्ष को, कशपध्विः-हनुमान् िी के शचत्र से शचशत्रत पताका, प्रवृत्ते-प्रारम्भ करने को उद्यत, शस्त्रसंपाते-शस्त्र चलाने के शलए, धनुः-धनुष, उद्यम्य-उठा कर, पाण्डवः -पाणुडुपुत्र, हृषीकेशम् -हृषीकेश (कृष्ण) को, तदा-तब, वाक्यम्-वचन, इदम्-यह, आह-कहा, महीपते- हे रािन्।

अनुवाद : कशपध्वि से सुशोशभत रर् पर आसीन अिुथन धृतराष्टर के पक्ष की सेना को वूयूह में स्थिा देख कर शस्त्रास्त्र चलाने को उद्यत हुआ और अपने धनुष को उठा कर भगवान् कृष्ण से बोला- हे महीपते!

अजुमन उवाच

सेनयोरुभयोममधे्ये ररं्थं थर्थापय मेऽचु्युत ।।२१ ।।
यावदेताडिरीक्षेऽ यौद्धकामानवन्द्रथर्थतान् ।
कैममया सि योद्धव्यमन्द्रस्मन्रणसमुद्यमे ।।२२ ।।

बि्र्थम : सेनयोः सेनाओं ंके, उभयोः दोनों, ं मधे्ये-बीच में, रर्म् रर् को, स्ापय-ख़िा करें, मे-मेरे, अचु्युत-अचु्युत (सदा एकरस, कृष्ण), यावत् ि ब तक, एतान् - इन्ें, शनरीक्षे-देख लूाँ, 3784 - 4 योद्धकामान् युद्ध की इच्छा वाले, अवम्भस्र्तान् -म्भस्र्त, कैः-शकन के सार्, मया-मेरे ि ारा, सह-सार्, योद्धव्यम् - युद्ध करना है, अम्भस्मन् - इसमें, रणसमुद्यमे-रण के प्रयास में अर्वा युद्ध प्रारम्भ होने की तैयारी में।

अजुमन ने कि

अनुवाद : हे कृष्ण ! कृपया मेरे रर् को दोनों ंसेनाओं ंके मध्य ख़िा कर दें शिससे मैं युद्ध प्रारम्भ होने की इस वेला में युद्ध की आकाङ्क्षा वाले लोगों ंको देख सकूाँ और िान सकूाँ शक मुझे शकन के सार् युद्ध करना है।

योत्स्यमानानवेक्षेऽ य एतेऽत्र समागताः ।
धातमराष्ट्रस्य दुबुमदे्धेयुमदे्धे डप्रयडचकीषमवः ।।२३ ।।

बि्र्थम : योत्स्यमानान् - युद्ध की इच्छा वालों ंको, अवेक्षे-देख लूाँ, अहम् -मैं, ये िो, एते-वे, अत्र-यहााँ (कुरुक्षेत्र में), समागताः- एकशत्रत, धातथराष्टरस्य-धृतराष्टर के पुत्र, दुबुथदे्धेः- दुष्ट बुम्भद्ध वाले, 46 - 9% शप्रयशचकीषथवः- शहत चाहने वाले ।

अनुवाद : दुष्ट बुम्भद्ध दुयोधन का शहत चाहने वाले युद्ध की कामना से यहााँ आये हुए लोगों ंको देख लूाँ।

सञ्जय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेिो गुिाकेिेन भारत ।
सेनयोरुभयोममधे्ये थर्थापडयत्वा रर्थोत्तमम् ।।२४ ।।

बि्र्थम : एवम् - इस प्रकार, उक्ः-कहे गये, हृषीकेशः-कृष्ण, गुिाकेशेन-गुिाकेश के िारा (अिुथन, शिसने शनिा को वश में कर शलया), भारत-है भारत (भरतवंशी धृतराष्टर), सेनयोः - सेनाओं ंके, उभयोः - दोनों, ं मधे्ये-बीच में, स्ापशयत्वा ख़िा करके, रर्ोत्तमम् -सवोतृ्कष्ट रर् को ।

सञ्जय ने कि

अनुवाद : हे भारत! अिुथन िारा इस प्रकार कहे िाने पर भगवान् कृष्ण ने उस सवोतृ्कष्ट रर् को दोनों ंसेनाओं ंके मध्य ख़िा कर के-

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सवेषां च मिीडक्षताम् ।
उवाच पार्थम पश्यैतान् समवेतानु्कुरूडनडत ।। २५ ।।

बि्र्थम : भीष्मिोणप्रमुखतः - भीष्म और िोण के समक्ष, सवेषाम् -सब के, च-और, महीशक्षताम् - रािाओं ंके, उवाच-कहा, पार्थ-हे अिुथन, पश्य-देखो, एतान् -इन्हें, समवेतान् - एकशत्रत हुए, कुरून् कुरुवंशयों ंको, इशत-इस प्रकार।

अनुवाद : भीष्म, िोण और सभी रािाओं ंके समक्ष कहा- हे अिुथन (पृर्ापुत्र), यहााँ एकशत्रत कुरुवंशयों ंको देखो।

तत्रापश्यन्द्रथर्थतान्पार्थमः डपतृनर्थ डपतामिान्।
आचायामन्मातुलान्ब्रातृनुपुत्रान्पौत्रान्सखींस्तर्था ।। २६ ।।

बि्र्थम : तत्र-वहााँ, अपश्यत्-देखा, म्भस्र्तान् -म्भस्र्त, पार्थः-अिुथन ने, शपतृन् -शपतरों ंको, अर्-भी, शपतामहान् -शपतामहों ंको, आचायाथन् - गुरुिनों ंको, मातुलान् मामाओं ंको, भ्रातृन् - भाइयों ंको, पुत्रान् -पुत्रों ंको, पौत्रान् -पौत्रों ंको, सखीन् -शमत्रों ंको, तर्ा और।

अनुवाद : अिुथन ने वहााँ (सेनाओं ंके मध्य) शपता, शपतामह, गुरुिन, मामा, भ्राता, पुत्र, पौत्र तर्ा शमत्रगणों ंको देखा।

श्विुरानुसुहृदशै्चैव सेनयोरुभयोरडप।
तान्समीक्ष्य स कौतेयः सवामन्बबनूधूनवन्द्रथर्थतान् ।। २७ ।।
कृपया परयाऽऽडवष्टो डवषीदडिदमब्रवीत्।

बि्र्थम : श्वशुरान् -श्वसुरों ंको, सुहृदः-शुभशचन्तक (शमत्र), च-और, एव-भी, सेनयोः सेनाओं ंमें, उभयोः दोनों ं(में), अशप-भी, तान् उन्हें, समीक्ष्य-देख कर, सः वह, कौन्तेयः कुन्ती पुत्र अिुथन, सवाथन् सभी, बनूधून् सम्बन्धी, अवम्भस्र्तान् -वूयूह में खिे हुए, कृपया-दया भाव से, परया-गहन, आशवष्टः- अशभभूत, शवषीदन्-व्याकुल हो कर, इदम् यह, अब्र्वीत् कहा।

अनुवाद : (अिुथन ने) श्वसुरों ंऔर शुभशचन्तकों ंको भी दोनों ंसेनाओं ंके मध्य देखा। उन सभी बनुधु-बान्धवों ं(सम्बम्भन्धयों)ं को (समक्ष) खिा देख कर अिुथन का हृदय िशवत हो उठा और वह व्याकुल हो कर बोला-

अजुमन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपन्द्रथर्थतम् ।।२८ ।।

शब्दार्थ : दृष्ट्वा -देख कर, इमम्-इन्हें, स्विनम् -स्विनों ंको, कृष्ण-हे कृष्ण (श्याम वणथ, िो आकृष्ट करता है), युयुत्सुम-लिने को आतुर, समुपम्भस्र्तम् - खिे हुए।

अनुवाद : युद्ध की इच्छा से आये हुए इन सम्बम्भन्धयों ंको देख कर हे कृष्ण,

अजुमन ने किा

सीदन्द्रत मम गात्राडण मुखं च पररिुष्यडत।
वेपरुथुश्च िरीरे मे रोमिषमश्च जायते ।।२९ ।।

बि्र्थम : सीदम्भन्त-शशर्ल हो रहे हैं, मम-मेरे, गात्राशण-अङ्ग, मुखम् -मुख, च-और, पररशुष्यशत-सूख रहा है, वेपरुः कम्पन, च-और, शरीरे शरीर में, मे मेरे, रोमहषथः-रोमांच, च-और, ियते-हो रहा है।

अनुवाद : मेरे अंग शशर्ल हो रहे हैं, मुख सूख रहा है, शरीर कााँप रहा है और रोंगटे ख़िे हो रहे हैं।

गाण्डीवं संसते िस्तात्त्वक्ैचैव पररदह्यते ।
न च िक्नोम्यवथर्थातुं रमतीव च मे मनः ।। ३० ।।

बि्र्थम : गाण्डीवम् - गाण्डीव, संसते-शगरा िा रहा है, हस्तात् - हार् से, त्वक् त्वचा, च-और, एव-भी, पररदह्यते-लि रही है, न नहीं, ं च-और, शक्नोशम-समर्थ हाँ, अवस्र्ातुम् - ख़िे होने में, भ्रमशत इव-भ्रशमत सा हो रहा है, च-और, मे मेरा, मनः मन ।

अनुवाद : गाण्डीव (धनुष) हार् से छूटा िा रहा है, सारी त्वचा भी िल रही है, मन भ्रशमत सा हो रहा है और अब मैं ख़िा रहने में भी असमर्थ हाँ।

डनडमत्ताडन च पश्याडम डवपरीताडन किेव ।
न च श्ेरेयोऽनुपश्याडम ित्वा स्वजनमािवे ।। ३१ ।।

बि्र्थम : शनशमत्ताशन-लक्षण (शुभाशुभ), च-और, पश्याशम देखता हाँ, शवपरीताशन-अशुभ, केशव-हे केशव, न-नहीं, ं च-और, श्ेरेयः-कल्याण, अनुपश्याशम -देखता हाँ, हत्वा-मार कर, स्विनम्-अपने लोगों ंको, आहवे- युद्ध में।

अनुवाद : हे केशव ! इस युद्ध में अपने ही सम्बम्भन्धयों ंको मार कर मुझे शकसी का कल्याण होता तो दृशष्टगत नहीं ं हो रहा, प्रतुयुत् मुझे अपशकुन (अशुभ लक्षण) शदखायी दे रहे हैं।

व्याख्या : केशव का अर्थ है-सुन्दर, संवशधथत बालों ंवाला।

न काङ्क्षे डवजयं कृष्ण न च राज्ंयं सुखाडन च ।
डकं नो राजे्येन गोडवन्द डकं भोगैजीडवतेन वा ।। ३२ ।।

बि्र्थम : न-नहीं, ं काङ्क्ष-कामना करता हाँ, शवियम् - शविय, कृष्ण-हे कृष्ण, न-नहीं, ं च-और, राज्ंयं -राज्य, सुखाशन -सुख, च-और, शकम् -क्या, नः- हमें, राजे्येन-राज्य से, गोशवन्द- हे गोशवन्द, शकम् -क्या, भोगैः- भोगों ंसे, िीशवतेन-िीविन से, वा-अर्वा ।

अनुवाद : हे कृष्ण ! न तो मुझे शविय की अशभलाषा है, न राज्य की और न ही सुखों ंकी। हे गोशवन्द ! हमें राज्य से अर्वा सुख-भोग से क्या लाभ ? पुनश्च इस िीवन से भी क्या प्रयोिन ?

येषामरे्थे काडङ्क्षतं नो राज्ंयं भोगाः सुखाडन च ।
त इमेऽवन्द्रथर्थता युदे्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनाडन च ।। ३३ ।।

बि्र्थम : येषाम् शिनके, अर्-शलए, **काङ्क्षतं** राज्यम् -राज्य, भोगाः-सुख-भोग, सुखाशन-समस्त सुख, च-और, ते-वे, इमे-ये, अवम्भस्ताः-ख़िे हैं, युदे्धे -रणके्षेत्र में, प्राणान् - प्राणों ंको, त्यक्त्वा-त्याग कर, धनाशन-सम्पशत्त, च-और।

अनुवाद : शिनके शलए हम राज्य, भोग और सुखों ंकी आकाङ्क्षा करते हैं, वे सब अपने िीवन और सम्पशत्त का मोह त्याग कर युद्ध में आ ख़िे हैं।

आचायामः डपतरः पुत्रास्तरै्थैव च डपतामिाः ।
मातुलाः श्विुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्द्रन्धनस्तर्था ।।३४ ।।

बि्ार्थम : आचायाथः -गुरुिन, शपतरः-शपतृगण, पुत्राः-पुत्र, तर्ा-तर्ा, एव-ही, च-और, शपतामहाः-शपतामह, मातुला :- मामा, श्वशुराः -श्वशुर, पौत्राः-पौत्र, श्यालाः-साले, सम्बम्भन्धनः-सम्बन्धी, तर्ा-और, अन्य।

अनुवाद : गुरुिन, शपतृगण, पुत्र, शपतामह, मामा, श्वशुर, पौत्र, श्याले (साले) और अन्य सम्बन्धी-

एतिा िुडमच्छाडम घ्नतोऽडप मधुसूदन ।
अडप तै्रैलोक्यराज्यस्य िेतोः डकं नु मिीकृते ।। ३५ ।।

बि्ार्थम : एतान् -इन्हें, न-नहीं,ं हनुतुम्-मारने के शलए, इच्छाशम -इच्छा करता हाँ, घ्नतः अशप-मारे िाने पर भी, मधुसूदन-हे मधुसूदन (मधु राक्षस का वध करने वाले), अशप-भी, तै्रैलोक्यराज्यस्य-तीनों ंलोकों ंके राज्य, हेतोः के शलए, शकम् -कैसे, नु-शफर, महीकृते-धरा (के राज्य) के शलए।

अनुवाद : हे मधुसूदन! मैं इन्हें मारने की इच्छा नहीं ंरखता, भले ही वे मुझे मार िालें। तीनों ंलोकों ंके राज्य के शलए भी मैं ऐसी इच्छा नहीं ंकर सकता शफर इस धरती के साम्राज्य की तो बात ही क्या?

डनित्य धातमराष्ट्राः का प्रीडतः स्यािनादमन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हतै्वैतानातताडयनः ।।३६ ।।

बि्ार्थम : शनहत्य-मार कर, धातथराष्टरान् - धृतराष्टर के पुत्रों ंको, नः हमें, का-क्या, प्रीशतः -सुख, स्यात् -होगा, िनादथन-हे िनादथन, पापम् -पाप, एव--केवल, आश्रयेत् - लगेगा, अस्मान् -हमें, हत्वा-मार कर, एतान् -इनको, आतताशयनः - दुष्टों ंको ।

अनुवाद : धृतराष्टर के पुत्रों ंको मार कर हे िनादथन, हमें कौन से सुख की प्राम्भप्त होगी? इन दुष्टों ंकी हत्या से तो हम केवल पाप के ही भागी बनेंगे।

व्याख्या : िनादथन-ऐश्वयथ-समृम्भद्ध और मोक्ष के शलए िो सबका आराध्य है-कृष्ण ।

आततायी–िो दूसरों ंके घर को आग लगा देता है, दूसरों ंको शवष देता है, ख्ग ले कर मारने को उद्यत रहता है, धन लूटता है, भूशम का अपहरण करता है, और िो दूसरे की पत्नी पर अशधकार िमाता है। दुयोधन ने ये सभी दुष्कमथ शकये र्े।

तस्मािााम वयं िन्तुं धातमराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं डि कर्ं थं ित्वा सुन्द्रखनः स्याम माधव ।। ३७ ।।

बिार्थम : तस्मात् - इसशलए, न-नहीं,ं अहाथः- युक्, वयम् -हम सब, हनुतुम् -मारने के शलए, धातथराष्टरान् - धृतराष्टर के पुत्रों ंको, स्वबान्धवान्-अपने सम्बम्भन्धयों ंको, स्विनम् -सम्बन्धी (शमत्रगण), शह-शनश्चय से, कर्म् -शकस प्रकार, हत्वा -मार कर, सुम्भखनः-सुखी, स्याम-होंगें, माधव- हे माधव ।

अनुवाद : अतः अपने ही भाई-बन्धु, धृतराष्टर के पुत्रों ंको मारना हमारे शलए युक् नहीं ंहै; क्योंशंक हे माधव, अपने ही लोगों ं(शप्रयिनों)ं को मार कर हम सुखी कैसे हो सकते हैं?

यद्यप्येते न पश्यन्द्रत लोभोपितचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं डमत्रद्रोि च पातकम् ।।३८ ।।

बिार्थम : यद्यशप -यद्यशप (यशद+अशप), एते-ये, न-नहीं,ं पश्यम्भन्त- देखते हैं, लोभोपहतचेतसः- लोभ के वशीभूत शचत्त वाले, कुलक्षयकृतम् -कुल के नष्ट होने पर, दोषम् -पाप को, शमत्रिोहे-शमत्र के सार् िोह करने में, च-और, पातकम् -पाप को।

अनुवाद : यद्यशप लोभ से अशभभूत शचत्त वाले ये लोग न तो कुल के शवनाश में कोई दोष देख रहे हैं और न ही शमत्रिोह में कोई पाप मान रहे हैं।

करं्थं न जे्ञेयमस्माडभः पापादस्माडिवडतमतुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यन्द्रिजमनादमन ।।३९ ।।

बिार्थम : कर्म् -क्यों,ं न-नहीं ं, जे्ञेयम्-समझना चाशहए, अस्माशभः- हमें (हमारे िारा), पापात् -पाप से, अस्मात् -इस, शनवशतथतुम् - शनराकरण हेतु, कुलक्षयकृतम् -कुल के शवनाश से उद्भूत, दोषम् -बुराई, प्रपश्यम्भद्भः-स्पष्ट देखते हुए, िनादथन-हे िनादथन ।

अनुवाद : शकनुतु हे िनादथन, कुल के शवनाश से उत्पन्न होने वाली बुराइयों ंको हम तो स्पष्ट देख रहे हैं तो इस पाप को दूर करने का ज्ञान हमें तो होना चाशहए।

व्याख्या : शनयम का अज्ञान कोई व्यपदेश (बहाना) नहीं ंहै; शकनुतु शवलासवत् पापी चररत्र महान् अपराध है, हमें ऐसा करना उशचत नहीं ंहै िो शक उनसे अशधक बुम्भद्धमान् हैं।

कुलक्षये प्रणश्यन्द्रत कुलधमामः सनातनाः ।
धमे नषे्टे् कुलं कृत्स्नमधमोऽडभभवतुयुत ।।४० ।।

बिार्थम : कुलक्षये-कुल के शवनाश में, प्रणश्यम्भन्त-नष्ट हो िाते हैं, कुलधमाथः-पाररवाररक धाशमथक परम्परायें, सनातनाः-शाश्वत, धमथ-धमथ, नषे्टे -नष्ट होने पर, कुलं कृत्स्नम् -समस्त कुल, अधमथः-अधमथ, अशभभवशत-हावी हो िाता
है, उत-शनशश्चत रूप से ।

अनुवाद : कुल का शवनाश होने पर उस कुल के शाश्वत धाशमथक शवशध-शवधान नष्ट हो िाते हैं। धमथ नष्ट होने पर समस्त कुल में अधमथ का साम्राज्य हो िाता है।

व्याख्या : शास्त्र की आज्ञा के अनुरूप पररवार में शकया िाने वाला यज्ञाशद कतथव्य कमथ ही धमथ है।

अधमामडभभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्द्रत कुलन्द्रस्त्रयः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वाष्र्णेय जायते वणमसंकरः ।।४१ ।।

बिार्थम : अधमाथशभभवात् - (अधमथ+अशभभवात्) अधमथ का प्रसार होने से, कृष्ण-हे कृष्ण, प्रदुष्यम्भन्त-दूशषत हो ियेंगी, कुलम्भस्त्रयः-कुल की म्भस्त्रयाँ, स्त्रीषु-म्भस्त्रयों ं में, दुष्टासु-दुष्ट होने पर, वाणेय - हे वाष्र्णेय, ियते-उत्पन्न होता
है, वणथसंकरः िशत-शमश्रण।
अनुवाद : हे कृष्ण! अधमथ के प्रसार से कुलीन म्भस्त्रयाँ भ्रष्ट हो ियेंगी और म्भस्त्रयों ंके भ्रष्ट होने पर हे वाष्र्णेय (वृष्णी वंशी), पूर्क् िशतयों ंका शमश्रण हो ियेगा।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्द्रत डपतरो ह्येषां लुप्तडपण्डोदकडक्रयाः ।।४२ ।।

बिार्थम : संकरः- िशत-शमश्रण, नरकाय-नरक के शलए, एव-ही, कुलघ्नानाम् -कुलघाशतयों ंके, कुलस्य-पररवार के, च-और, पतम्भन्त-शगर िते हैं, शपतरः-पूवथि, शह-शनश्चय से, एषाम् -इनके, लुप्तशपण्डोदकशक्रयाः- (श्राद्ध में शपतरों ंको शदया िने वाला) चावल के शपण्ड का दान और िल के अपथण की शक्रया का लुप्त होना।

अनुवाद : वणथसंकर कुल तरा् कुल को नष्ट करने वालों ंके शलए नरक का िार है; क्योंशंक उनके पूवथिों ंकी आत्मायें शपण्डदान और िल-तपथण की शक्रया लुप्त होने पर अन्न–िल से वंशचत हो कर शगर िाती हैं।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वणमसंकरकारकैः ।
उत्साद्यते जाडतधमामः कुलधमामश्च िाश्वताः ।।४३ ।।

बिार्थम : दोषैः -दोषों ं (बुराइयों)ं से, एतैः-इन (के कारण), कुलघ्नानाम् -कुल को नष्ट करने वालों ं के, वणथसंकरकारकैः- िाशत-शमश्रण के हेतुक, उत्साद्यन्ेते-नष्ट हो िाते हैं, िाशतधमाथः- िाशतधमथ, कुलधमाथः- कुल में होने
वाले धशमथक अनुष्ठान, च-और, शाश्वताः- सनातन ।
अनुवाद : कुलघाशतयों ंके िारा शकये गये, वणथसंकर के हेतुक, दोषों ंसे, सनातन िाशतधमथ और कुलधमथ नष्ट हो िाते हैं।

उत्सिकुलधमामणां मनुष्याणां जनादमन ।
नरकेऽडनयतं वासो भवतीत्यनिुशुरुम ।।४४ ।।

बिार्थम : उत्सन्नकुलधमाथणाम् -शिनके कुलधमथ (पारम्पररक अनुष्ठान) नष्ट हो चुके हों,ं मनुष्याणाम् - मनुष्यों ंके, निादथन-हे िनादथन, नरके-नरक में, अशनयतम् -शचरकाल तक, वासः - शनवास, भवशत - होता है, इशत-इस प्रकार, अनुशुशुरुम-हमने सुना है।

अनुवाद : हे िनादथन ! हमने सुना है शक शिनके पररवारों ंमें कुलधमथ शवनष्ट हो िाते हैं, उनका शचरकाल पयथन्त नरक में वास होता है।

अिौ बत मित्पापं कतुं व्यवडसता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन िंतुं स्वजनमुद्यताः ।।४५ ।।

बि्ार्थम : अहो बत-हा, आश्चयथ, महत्-महान्, पापम् -पाप, कतुथम् -करने के शलए, व्यवशसताः-तैयार, वयम् -हम, यत् - शक, राज्यसुखलोभेन राज्य के सुख के लोभवश, हनुतुम्-मारने के शलए, स्विनम् -अपने लोगों ंको, उद्यताः-उद्यत् ।

अनुवाद : आश्चयथ! शकतने दुःख की बात है शक राज्यसुख भोग के लोभवश हम अपने इष्ट-बनुधुओं ंको मारने का इतना बि्ा पाप करने को तैयार हैं।

यडद मामप्रतीकारमिसं्त्रं िस्त्रपाणयः ।
धातमराष्ट्रा रणे िनुयुस्तने्मे के्षेमतरं भवेत् ।।४६ ।।

बि्ार्थम : यशद यशद, माम् -मुझे, अप्रतीकारम् - शवरोध का भाव न रखने वाला (मुझको), अशस्त्रम् -शबना शस्त्र के, शस्त्रपाणयः- हार् में शस्त्र ले कर, धातथराष्टराः धृतराष्टर के पुत्र, रणे समरभूशम में, हनु्युः- मार िालें, तत्-वह, मेमेरे शलए, के्षेमतरम् - अशधक कल्याणकारी, भवेत् -होगा।

अनुवाद : यशद धृतराष्टर के शस्त्रधारी पुत्र रण में मुझ अप्रतीकारी (अशवरोधी) और शनःशस्त्र को मार भी िालें, तो वह भी मेरे शलए अशधक श्रे्रेयस्कर होगा।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वाऽजुमनः संखे्ये रर्थोपथर्थ उपाडवित् ।
डवसृज्यसिरंचापं िोकसंडवग्नमानसः।।४७ । ।

बि्ार्थम : एवम् - इस प्रकार, उक्त्वा-कह कर, अिुथनः-अिुथन, संखे्ये-रण में, रर्ोपसे्-रर् पर, उपाशवशत्-बैठ गया, शवसृज्य-छोि् कर, सशरम् - बाण सशहत, चापम् - धनुष को, शोकसंशवग्नमानसः - शोकसंतप्त मन से ।

सञ्जय ने किा

अनुवाद : रणके्षेत्र में इस प्रकार कह कर अपने धनुष-बाण को एक ओर रख कर अिुथन, शोकाकुल मन से रर् के पृष्ठ भाग में बैठ गया।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषतु्सु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्ते्र श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
अजुमनडवषादयोगो नाम प्रर्थमोऽध्यायः ।।
।। इडत अजुमनडवषादयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर्थ डितीयोऽध्यायः

सांख्ययोगः

सञ्जय उवाच

तं तर्था कृपयाऽडवष्टमशुरुपूणामकुलेक्षणम् ।
डवषीदतडमदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ।।१ ।।

बिार्थम : तम्-उसे, तरा- इस प्रकार, कृपया करुणा से, आशवष्टम् वशीभूत, अशुरुपूणाथकुलेक्षणम् - अशुरुपूणथ नेत्रों ंसे और आकुल, शवषीदन्तम्-शोकातुर, इदम् - यह, वाक्यम्-वचन, उवाच-कहा, मधुसूदनः- मधुसूदन ने ।

सञ्जय ने कहा

अनुवाद : करुणिाथ, शवषादयुक् (शोकातुर) और अशुरुपूणथ नेत्रों ंवाले अिुथन से मधुसूदन (मधु राक्षस का वध करने वाले कृष्ण) ने इस प्रकार कहा ।

श्री भगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलडमदं डवषमे समुपन्द्रथर्थतम् ।
अनायमजुष्टमस्वर्ण्मकीडतमकरमजुमन ।।२।।

बिार्थम : कुतः कहाँ से, त्वा-तुम्हें, कश्मलम्-अवसाद (मन की म्भखन्नता), इदम्-यह , शवषमे संकट काल में, समुपम्भरुतम्-आ गया, अनायथिुष्टम् - अनायथ िारा आचररत, अस्वण्यथम् -स्वगथ में न ले िाने वाला, अकीशतथकरम् - अपयश देने वाला, अिुथन-हे अिुथन ।

अनुवाद : हे अिुथन, इस संकट काल में तुम्हारे मन में यह अवसाद कहाँ से उत्पन्न हो गया है? न तो यह आयथिनों ं का आचरण है, न स्वगथ को देने वाला है और न ही यश की प्राम्भप्त कराने वाला है

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थम नैतत्त्वयुयुपपद्यते ।

कुषुद्रं हृदयदौबमल्यं त्यक्त्वोडत्ति परतप ।।३।।

शब्दार्थ : क्लैब्यम् -नपुंसकता, मा स्म गमः मत प्राप्त करो, पार्थ-अिुथन, न -नहीं,ं एतत्-यह, त्वशय-तुम्हें, उपपद्यते-उशचत, कुषिुम् - अधम, हृदयदौबथल्यम् -हृदय की दुबथलता को, त्यक्त्वा त्याग कर, उशत्तष्ठ-ख़िे हो िाओ, परन्तप - हे शतुरुदमन करने वाले।

अनुवाद : (इस समय) हे पार्थ, नपुंसकता को प्राप्त होना तुम्हारे शलए शोभनीय नहीं ंहै। हे शतुरु को संतप्त करने वाले (अिुथन), हृदय की इस कुषिु दुबथलता को त्याग कर ख़िे हो िाओ।

अजुमन उवाच

कर्ंथं भीष्मर्मिं संखेये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुडभः प्रडतयोत्स्याडम पूजिाामवररसूदन ।।४॥

बिार्थम : कर्म् -कैसे, भीष्मम् - भीष्म को, अहम् -मैं, संखेये-युद्ध में, िोणम् िोण को, च-और, मधुसूदन-मधुसूदन, इषुशभः बाणों ंसे, प्रशतयोत्स्याशम -शवरुद्ध युद्ध करूाँगा, पूिाहौ–ाँआराध्य, अररसूदन-शतुरु का नाश करने वाले (कृष्ण)।

अजुमन ने किा

अनुवाद : हे मधुसूदन, मैं युद्ध में भीष्म और िोण के शवरुद्ध कैसे ल़ि सकता हाँ क्योंशंक हे अररसूदन ! वे दोनों ंही मेरे शलए वन्दनीय हैं।

गुरूनित्वा डि मिानुभावान्
श्रेयो भोकुंतुं भैक्ष्यमर्पी लोके ।
त्विार्थमकामांसुतु गुरूडनैव
भुञ्जीय भोगान् रुडधरप्रडदग्धान् ।।५ ।।

बिार्थम : गुरून् गुरुिनों ंको, अहत्वा-न मार कर, शह-शनश्चयेन, महानुभावान् -महापुरुषों ंको, श्रेयः-कल्याणकारी, भोकुम् - भोग करना, भैक्ष्यम् -शभक्षा, अशप-भी, इह-यहााँ, लोके-लोक में, हत्वा-मार कर, अर्थकामान् अर्थ (धन) की कामना वाले, तु-शनशश्चत रूप से, गुरून् - गुरुिनों ंको, इह -यहााँ, एव-ही, भुञ्जीय-भोगना, भोगान् - भोगों ंको (सुखों ंको), रुशधरप्रशदग्धान् रक्रंशित ।

अनुवाद : इन प्रशस्त वन्दनीय आचायों का हनन करने की अपेक्षा तो शभक्षा का अन्न स्वीकार करना शनशश्चत रूप से श्रेयस्कर है। शवत्तैषणावश (ऐश्वयथ भोग की इच्छा से) गुरुिनों ंका वध कर के इस लोक में भी तो मैं रक्रंशित भोगों ंका ही भोग करूाँगा।

न चैतडिद्मः कतरिो गरीयो
यिा जयेम यडद वा नो जयेयुः ।
यानेव ित्वा न डजजीडवषाम-
स्तेऽवन्द्रथर्थताः प्रमुखे धातमराष्ट्राः ।।६ ।।

बि्ार्थम : न-नहीं,ं च-और, एतत्-यह, शवद्मः- (हम) िानते हैं, कतरत् क्या, नः- हमारे शलए, गरीयः - श्ेरेष्ठतर, यत्ि्ो, वा-अर्वा, िियेम-हम िीतें, यशद-यशद, वा-अर्वा, नः- हमें, िियेयुः वे िीतें, यान् -शिन्ें, एव-ही, हत्वा-मार कर, न-नहीं,ं शििीशवषामः- िीशवत नहीं ंरहना चाहते, ते-वे, अवम्भस्ताः -ख़िे हैं, प्रमुखे-समक्ष, धातथराष्टराः- धृतराष्टर के पुत्र ।

अनुवाद : हम उन पर शविय प्राप्त करें अर्वा वे हमें िीत लें-इन दोनों ंमें श्ेरेष्ठतर क्या है, हम तो यह भी नहीं ं ानिते। पुनरशप, शिन्ें मारकर हम िीशित रहने की अशभलाषा नहीं ंरखते, वे ही धृतराष्टर के पुत्र हमारे समक्ष ख़िे हैं।

कापमण्दोषोपितस्वभावः
पृच्छाडम त्वां धममसंमूढचेताः ।
यच्छेरयः स्याडिडश्चतं बूरूडि तन्मे
डिष्यसे्तेऽिं िाडध मां त्वां प्रपिम् ।।७ ।।

बि्ार्थम : कापथण्यदोषोपहतस्वभावः- (भावुकता में) करुणा दोष से अशभभूत स्वभाव वाला, पृच्छाशम-पूछता हाँ, त्वाम्-आपको, धमथसंमूढचेताः कतथव्य के प्रशत भ्रशमत शचत्त वाला, यत्ि्ो, श्ेरेयः-कल्याणकारी, स्यात् -हो, शनशश्चतम् -शनश्चय से, रूबूशह-कहें, तत्-वह, मे—मेरे शलए, शष्यः-शशम, ते-आपका, अहम् -मैं, शाशध-शशक्षा दें, माम्-मुझे, त्वाम् आपकी, प्रपन्नम् - शरणागत हाँ।

अनुवाद : मेरा हृदय करुणा रूपी दुबथलता से ग्रस्त है, कतथव्य के प्रशत मेरा मन भ्रान्त है (मूढ़ है), मैं आपसे पूछता हाँ, शनशश्चत रूप से शिसमें मेरा कल्याण शनशहत हो, वही उपदेश मुझे दीशिए। मैं आपका शशष्य हाँ और आपकी शरण में आया हाँ।

न डि प्रपश्याडम ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणडमन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्ंधं
राज्ंयं सुराणामडप चाडधपत्यम् ।।८ ।।

बि्ार्थम : न शह-नहीं,ं प्रपश्याशम-देखता हाँ, मम-मेरा, अपनुद्यात् -दूर करें, यत्ि्ो, शोकम्-शोक, उच्छोषणम् -सुखाने वाला, इम्भियाणाम् - इम्भियों ंको, अवाप्य-प्राप्त करके, भूमौ धरा पर, असपत्नम् -शनिथन्, ऋद्धम् -समृद्ध, राज्यम् राज्य, सुराणाम् - देवताओं ंका, अशप-भी, च-और, आशधपत्यम् स्वाशमत्व ।

अनुवाद : मैं इस धरा का शनिथन् राज्य और देवों ंपर स्वाशमत्व भी क्यों ंन प्राप्त कर लूाँ; परनुतु मुझे ऐसा कोई लक्षण नहीं ंशदखायी दे रहा, शिससे इम्भियों ंको सुखाने वाला मेरा यह शोक दूर हो सके।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेिं गुिाकेिः परतप ।
न योत्स्य इडत गोडवन्दमुक्त्वा तूष्णीं ंबभूव ि ।।९।।

बि्ार्थम : एवम् - इस प्रकार, उक्त्वा-कह कर, हृषीकेशम् -कृष्ण को, गुिाकेशः अिुथन (नीदं को ि ीतने वाला), परन्तप-शतुरु का नाश करने वाला, न-नहीं, ं योत्स्ये-लिूंगा, इशत-ऐसा, गोशवन्दम् - गोशवन्द को, उक्त्वा-कह कर, तूष्णीम् -मौन, बभूव ह - हो गया।

सञ्जय ने कहा

अनुवाद : हृषीकेश (इम्भियों ंके स्वामी कृष्ण) को परन्तप (शतुरु का नाश करने वाले), गुिाकेश (शनिा को ि ीतने वाला) अिुथन ने इस प्रकार कहा- "हे गोशवन्द, मैं युद्ध नहीं ंकरूँगा", और मौन हो गया।

तमुवाच हृषीकेिः प्रिसडिव भारत ।
सेनयोरुभयोममधे्ये डवषीदतडमदं वचः ।।१० ।।

बि्ार्थम : तम् - उसे, उवाच-कहा, हृषीकेशः - कृष्ण ने, प्रहसन् -हाँसते हुए, इव-मानो, भारत-हे भारत, सेनयोः सेनाओं ंके, उभयोः दोनों, ं मधे्ये मध्य में, शवषीदन्तम् -शनराश (शोकाकुल), इदम् - यह, वचः- वचन ।

अनुवाद : हे भरतवंशी (धृतराष्टर), दोनों ंसेनाओं ंके मध्य शोकशनमग्न अिुथन से भगवान् कृष्ण ने, मानो हाँसते हुए, ये शब्द कहे।

श्री भगवानुवाच

अिौच्यानन्विोचसं्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासुंश्च नानुिोचन्द्रत पन्द्रण्डताः ।।११ ।।

बि्ार्थम : अशोच्यान् - शिनके शलए शोक नहीं ंकरना चाशहए, अिशोचः-शोक शकया, त्वम्-तुमने, प्रज्ञावादान् - ज्ञानपूणथ वचन, च-और, भाषसे-कहते हो, गतासून् -मृत, अगतासून्ि ीशवत, च-और, न नहीं, ं अनुशोचम्भन्त-शोक करते हैं, पम्भण्डताः - बुम्भद्धमान् ।

श्री भगवान् ने कहा

अनुवाद : तुमने उनके शलए शोक शकया ि ो शोक करने के योग्य नहीं ंहैं। पुनरशप, तुम बुम्भद्धमानों ंि ैसी बातें करते हो । शविान् लोग ि ीशवत अर्वा मृत के शलए शोक नहीं ंकरते।

व्याख्या : इस श्लोक से गीता-दशथन प्रारम्भ होता है।

भीष्म और ि ोण के शलए शचन्ता करना उशचत नहीं ंहै; क्योंशंक वे अपनी वास्तशवक प्रकृशत से शाश्वत हैं और गुणवान् तर्ा सिररत्र हैं। यद्यशप तुम पाम्भण्डत्यपूणथ वचन बोल रहे हो, तर्ाशप तुम अज्ञान में हो; क्योंशंक तुम उनके शलए शोक कर रहे हो, ि ो शनत्य होने के कारण शोक करने योग्य नहीं ंहैं। आत्मज्ञान से युक् व्यम्भक् ही शविान् कहलाते हैं। वे मृत अर्वा ि ीशवत व्यम्भक् के शलए शोक नहीं ंकरते; क्योंशंक वे ि ानते हैं शक आत्मा अिर, अमर और अिन्मा है। वे यह भी ि ानते हैं शक मृतुयु का तो अम्भस्तत्व ही नहीं ंहै; क्योंशंक सूक्ष्म शरीर का स्रूल शरीर से पृर्क् होना ही मृतुयु कहलाता है। पंचभूतों ंसे शनशमथत शरीर से पदार्ों का शवश्लेषण और पंचतत्त्वों ंका अपने मूल स्रोत को ि ाना ही मृतुयु है। शरीर की पररवतथनशील प्रकृशत और आत्मा की शनत्य प्रकृशत को अिुथन भूल गया र्ा। अज्ञानवश वह अपने गुरुिनों ंऔर सम्बम्भन्धयों ंके सार् अपने सम्बन्ध को शनत्य मान बैठा र्ा। वह भूल गया र्ा शक

वतथमान िीवन के यह िागशतक सम्बन्ध पूवथकृत् कमों के पररणाम स्वरूप रे्। इन कमों के क्षय होने पर सभी सम्बन्ध समाप्त हो िाते हैं और दूसरा शरीर धारण करने पर नये कमथ अंकुररत होते हैं।

पूवथकृत् कायथ कमथ कहलाता है और कमथ के शिस भाग ने वतथमान अवतरण को िन्म शदया, वह प्रारब्ध कमथ कहा िाता है।

न त्वेवािं जातु नासं न त्वं नेमे जनाडधपाः ।
न चैव न भडवष्यामः सवे वयमतः परम् ।।१२।।

ब्रािाथम : न-नहीं, तु-शनशश्चत रूप से, एव-ही, अहम् मैं, िातु-शकसी काल में, न-नहीं, आसम्-र्ा, न नहीं, त्वम्-तुम, ननहीं, इमे-ये, िनाशधपाः-शासक (रािा), न-नहीं, च-और, एव-ही, ननहीं, भशवष्यामः- होंगें, सवे-सब, वयम् -हम, अतः- अब से आगे, परम् बाद में।

अनुवाद : ऐसा नहीं है शक शकसी काल में मैं नहीं र्ा, तुम नहीं रे् अर्वा ये रािा नहीं रे् और ऐसा समय भी नहीं आयेगा, िब हम सब पुनः नहीं होंगें।

व्याख्या : यहााँ भगवान् कृष्ण आत्मा की अमरता अर्वा आत्मा की शनत्य प्रकृशत का वणथन कर रहे हैं। भूत, वतथमान और भशवष्य तीनों कालों में आत्मा का अम्भस्तत्व रहता है। भौशतक शरीर को त्यागने के उपरान्त भी मनुष्य की सत्ता रहती है। इससे परे भी िीवन है।

देडिनोऽन्द्रस्मन्यर्था दि कौमारं यौवनं जरा ।
तर्था दीतरप्रान्द्रप्तधीरस्तत्र न मुह्यडत ।।१३ ।।

ब्रािाथम : देशहनः देहधारी (आत्मा) का, अम्भस्मन् - इसमें, यर्ा-िैसे, देहे शरीर में, कौमारम् -कुमारावस्र्ा (बाल्यावस्र्ा), यौवनम् - यौवन, िरा-वृद्धावस्र्ा, तर्ा-वैसे ही, देहान्तरप्राम्भप्तः अन्य शरीर की प्राम्भप्त, धीरः- धैयथवान्, तत्र-उस पर, न-नहीं, मुह्यशत-शोक करता है।

अनुवाद : शिस प्रकार से िीवात्मा इस शरीर से कुमार, यौवन और वृद्धावस्र्ा की ओर अग्रसर होता है, उसी प्रकार से (पररवतथन क्रम में) नव-देह की प्राम्भप्त करता है। धीर पुरुष इस पर मोह नहीं करते।

व्याख्या : इस शरीर में िैसे बाल्यावस्र्ा से युवावस्र्ा और युवावस्र्ा से वृद्धावस्र्ा आने में कोई बाधा नहीं आती, वैसे ही 'अहम्' के सातत्य में मृतुयु से कोई बाधा नहीं पड़ती। बाल्यावस्र्ा के अवसान (समाम्भप्त) काल में आत्मा मृत नहीं हो िाता। शनशश्चत रूप से, ऐसा भी नहीं शक युवावस्र्ा में इसका पुनिथन्म होता हो। शिस प्रकार से आत्मा बाल्यकाल से युवा और युवा से वृद्धावस्र्ा पयथन्त अपररवशतथत रूप से आगे बढ़ता है, उसी प्रकार से एक से दूसरे शरीर में स्र्ानान्तरण भी अपररवशतथत रूप से होता है। अतः बुम्भद्धमान् इसके शलए शोक नहीं करता।

मात्रास्पिामसुतु कौतेय िीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापाडयनोऽडनत्यास्तांन्द्रस्तडतक्षस्व भारत ।।१४ ।।

ब्रािाथम : मात्रास्पशाथः- इम्भिय-शवषय-संयोग, तु-शनश्चयेन, कौन्तेय-हे अिुथन, शीतोष्णसुखदुःखदाः-सरदी, गरमी और सुख-दुःख देने वाले, आगमापाशयनः आने-िाने वाले (शिनका आशद भी है और अन्त भी), अशनत्याः- अशनत्य (क्षणभङ्गुर), तान् - उन्हें, शतशतक्षस्व-सहन करो, भारत-हे भारत !

अनुवाद : हे कुन्तीपुत्र, इम्भिय-शवषयों ंके संयोग तो उत्पशत्त-शवनाशशील तर् अशनत्य हैं और सरदी-गरमी एवं सुख-दुःख के देने वाले हैं। इन्हें सहन करो।

व्याख्या : शीत एक काल में सुखद है, तो दूसरे काल में दुःखद । उष्णता शीतकाल में सुखद है; शकन्तु ग्रीष्मतुथ में दुःखद । वही शवषय एक समय में सुख प्रदान करता है और दूसरे समय में दुःखद हो िाता है। इसशलए सुख-दुःख और सरदी-गरमी देने वाले इम्भिय-संयोग तो बनते-शबगिते रहते हैं। अतः वे प्रकृशत से ही अशनत्य हैं। शवषयों ंका सम्बन्ध नेत्र, कणथ, नाशसका, त्वचा आशद इम्भियों ंसे होता है और (इनसे प्राप्त) प्रत्यक्ष ज्ञान (sensations), शराओं ं िारा मन तक पहुँचाया िाता है शिसका स्र्ान मम्भस्तष्क अर्वा बुम्भद्ध में है। सुख-दुःख की अनुभूशत मन को होती है। सुख-दुःख और शीत-उष्णता को सहन कर के मनुष्य को मन की सनुतुशलत अवस्र्ा का शवकास करना चाशहए। (शनरूपण-V.22)

यं डि न व्यर्थयन्त्येते पुरुषं पुरुषषमभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।१५ ।।

बि्ार्थम : यम्-शिसको, शह-शनशश्चत रूप से, न व्यर्यम्भन्त - शवचशलत सः वह, नहीं ंकरते, एते-ये, पुरुषम् -मनुष्य को, पुरुषथभ-हे पुरुषश्रेठ, समदुःखसुखम् -सुख-दुःख में समान, धीरम् - धीर पुरुष को, अमृतत्वाय-अमृतत्व के शलए, कल्पते-योग्य है।

अनुवाद : हे पुरुषश्रेष्ठ (अिुथन), शिस धीर पुरुष को सुख और दुःख शवचशलत नहीं ंकरते, वही शनशश्चत रूप से मोक्ष का अशधकारी है।

व्याख्या : देहाध्यास अर्वा आत्मा का शरीर के सार् एकत्व ही सुख-दुःख का हेतु है। सवथव्यापक अमृत स्वरूप आत्मा तत्त्व से अशभन्नता स्र्ाशपत करने पर मनुष्य सुख-दुःख आशद िन्िों ंसे मुक् हो िाता है (उनसे प्रभाशवत नहीं ं होता) ।

शतशतक्षा अर्वा सहनशीलता से आत्मशम्भक् का शवकास होता है। सुख-दुःख अर्वा शीत-उष्म (ताप) को शान्त भाव से सहन करना ज्ञान-मागथ के साधक के लक्षण हैं। यह षट्सम्पत् में से एक है। यह सम्यक्-ज्ञान की अवस्र्ा है। शतशतक्षा स्वयं में तो मोक्षप्रद नहीं ंहै; शकन्तु शववेक और अनासम्भक् के संयोग से यह आत्म-ज्ञान अर्वा अमृतत्व प्रदान करने का कारण बन िाती है। (शनरूपण –XVIII.53)

नासतो डवद्यते भावो नाभावो डवद्यते सतः ।
उभयोरडप दृष्टोऽतस्त्वनयोस्तत्त्वदडिमडभः ।।१६ ।।

बि्ार्थम : न-नहीं,ं असतः-असत् का, शवद्यते-है, भावः - अम्भस्तत्व, न-नहीं,ं अभावः अभाव, शवद्यते-है, सतः-सत् का, उभयोः दोनों ंका, अशप-भी, दृष्टः देखा गया, अन्तः- अम्भन्तम सत्य, तु-शनश्चय से, अनयोः इन दोनों ंका, तत्त्वदशथशभः
सत्य का दशथन करने वालों ंके िारा।
अनुवाद : असत् का अम्भस्तत्व नहीं ंहै और सत् का अभाव नहीं ंहै। दोनों ंकी वास्तशवकता तत्त्वदशथयों ं(ज्ञाशनयों)ं िारा देखी गयी है।

व्याख्या : अपररवतथनशील एक-रस आत्मा शनत्य वतथमान है। सार-रूप में सत्य केवल यही है। नाम-रूप का यह क्षशणक िगत् शनत्य पररवतथशील है। अतः असत्य है। िीवनुमुक् इस संसार रूप मृग-मरीशचका और आत्मा की शाश्वत सत्ता के प्रशत सदा िागरूक रहता है। अपने ज्ञान-चक्षुओं से वह आत्मा का प्रत्यक्ष-ज्ञान करता है। रिु रूपी सत्य का ज्ञान होने पर रिु में सपथ की भाँशत यह संसार उसके शलए शवलुप्त हो िाता है। सब नाम-रूपों में अब वह अन्तशनथशहत सार-तत्त्व का दशथन करता है अराथत् अम्भस्त-भाशत-शप्रय अर्वा सत्-शचत्-आनन्द (सम्भिदानन्द) को ही सवथत्र देखता है। इसीशलए उसे तत्त्वदशी अर्वा सत्य का ज्ञाता कहा िाता है।

पररवतथनशील पदार्थ अशनत्य हैं और सदा सम रस शनत्य हैं।

अडवनाडि तु तडिन्द्रद्ध येन सवमडमदं ततम् ।
डवनिामव्ययस्यास्यनकडश्चत् कतुमिमडत।।१७। ।

बि्ार्थम : अशवनाश-शवनाश रशहत, तु-शनश्चयेन, तत्-उसे, शवम्भद्ध- िानो, येन-शिसके िारा, सवथम्-समस्त, इदम् -यह, ततम्-व्याप्त, शवनाशम् -शवनाश, अव्ययस्य अस्य-इस अशवनाशी का, न-नहीं, कशश्चत्-कोई, कतुथम् -करने के शलए, अहथशत-समर्थ है।

अनुवाद : शिससे यह सारा (िगत्) व्याप्त है, केवल उसे ही तुम शवनाश रशहत िानो। उस अशवनाशी का शवनाश करने में कोई समर्थ नहीं है।

व्याख्या : ब्र्ह्मन् अर्वा आत्मन् आकाश की भाँशत सवथत्र सभी पदारों में व्याप्त है। पात्र को यशद तोि शदया िाये, तो उसके भीतर अर्वा बाहर के आकाश का शवनाश करना असम्भव है। इसी भाँशत सभी पदार्थ अर्वा शरीर नष्ट भी हो िायें, तब भी उनमें व्याप्त ब्र्ह्मन् अर्वा आत्मन् को नष्ट नहीं शकया िा सकता। यह िीवन्त सत्य है-सत् ।

ब्र्ह्मन् के खण्ड नहीं हो सकते। वह नूयूनाशधक नहीं हो सकता । सम्पशत्त क्षय हो िाने पर लोग गतश्रीक (बरबाद) हो िाते हैं। परन्नुतु ब्र्ह्मन् के शवषय में ऐसा कुछ नहीं होता, वह तो अव्यय है, क्षय रशहत है। इसशलए आत्मा का शवनाश कोई नहीं कर सकता। यह शनत्य शवद्यमान है। सवथदा पूणथ है। आप्तकाम है। पूणथ सत् है। अशनवथचनीय है।

अतवत इमे दिा डनत्यस्योक्ताः िरीररणः ।
अनाडिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।१८ ।।

बि्ार्थम : अन्तवन्तः नश्वर, इमे-ये, देहाः-शरीर, शनत्यस्य - शाश्वत के, उक्ाः-कहे गये हैं, शरीररणः-िीवात्मा के, अनाशशनः अशवनाशी के, अप्रमेयस्य-पररमाण रशहत, तस्मात् - इसशलए, युध्यस्व-युद्ध करो, भारत- है भारत ।

अनुवाद : शनत्य, अशवनाशी, अप्रमेय शरीरधारी िीवात्मा के ये शरीर नश्वर हैं, ऐसा कहा िाता है। इसशलए हे अिुथन, तुम युद्ध करो।

व्याख्या : भगवान् कृष्ण अिुथन को सवथव्याप्त, शाश्वत आत्मा की प्रकृशत को अनेक प्रकार से समझाते हुए उसके अज्ञान से उत्पन्न शोक, मोह और भ्रम को दूर करते हुए उसे युद्ध करने के शलए प्रेररत करते हैं।

य एनं वेडत्त िातारं यश्चैनं मन्यते ितम् ।
उभौ तौ न डवजानीतो नायं िन्द्रत न िन्यते ।।१९ ।।

बि्ार्थम : यः ि◌ो, एनम्-इसे, वेशत्त–ि◌नता है, हन्तारम् - मारने वाला, यः ि◌ो, चऔर, एनम्-इसे, मन्यते-मानता है, हतम् - मरा हुआ, उभौ वे दोनों,◌ं तौ वे दोनों,◌ं ननहीं,◌ं शविानीतः- ि◌नते, न नहीं,◌ं अयम्-यह, हम्भन्त-मारता है, न-नहीं,◌ं हन्यते - मारा ि◌ाता है।

अनुवाद : ि◌ो व्यम्भक् इस ि◌ीवात्मा को मारने वाला समझता है और ि◌ो इसे मृत समझता है, वे दोनों ◌ंइसे नहीं ◌ं ि◌निते; क्योंशंक ि◌ीवात्मा न तो मारता है, न ही मरता है।

व्याख्या : ि◌ीवात्मा अकताथ है, शनशवथकार है। मरने के कमथ का न तो यह हेतु (कताथ) है और न ही शवषय। देहाध्यास अर्वा अहं के कारण ि◌ो स्वयं को 'मारने वाला' अर्वा 'मृत' समझता है, वह वास्तव में आत्मा की वास्तशवक प्रकृशत से अनशभज्ञ है। आत्मा अशवनाशी है। यह तीनों ◌ंकालों ◌ंमें शवद्यमान है। यह सत् (Existence) है। शरीर का शवनाश होने पर आत्मा का शवनाश नहीं ◌ंहोता। शकसी भी अवस्र्ा में शरीर तो पररवतथनशील है। इसे (आत्मा को) तो दूसरा शरीर धारण करना है। यह अशनवायथ सत्य है। शकनुतु आत्मतत्त्व इससे प्रभाशवत नहीं ◌ंहोता। श्लोक १९, २०, २१, २३ और २४ आत्मा की शनत्यता का वणथन करते हैं। (शनरूपण-XVIII.17)

न जायते डप्रयते वा कदाडच-
यिं भूत्वा भडवता वा न भूयः ।
अजो डनत्यः ि◌ाश्वतोऽयं पुराणो
न ि◌न्यते ि◌न्यमाने ि◌रीरे ।।२० ।।

बि्ार्थम : न-नहीं,◌ं ि◌ायते–ि◌न्म लेता है, शम्रयते-मरता है, वा-अर्वा, कदाशचत् कभी भी, न-नहीं,◌ं अयम्-यह (आत्मा), भूत्वा हो कर, भशवता-होगा, वा-अर्वा, ननहीं,◌ं भूयः पुनः, अि◌ः- ि◌न्म रशहत, शनत्यः- शाश्वत, शाश्वतः - अपररवतथनशील, अयम्-यह, पुराणः- पुरातन, न नहीं,◌ं हन्यते-मारा ि◌ाता है, हन्यमाने-मारा ि◌ाने पर, शरीरे-शरीर में।

अनुवाद : ि◌न्म-मरण से रशहत यह आत्मा न तो कभी ि◌न्म लेता और न ही कभी मरता है। ऐसा भी नहीं ◌ंशक एक बार उत्पन्न हो कर इसका पुनः अम्भस्तत्व न होगा। यह तो अि◌न्मा, अनाशद, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे ि◌ाने पर आत्मा नहीं ◌ंमरता ।

व्याख्या : यह आत्मा ि◌न्म, भाव (अम्भस्तत्व), शवकास, पररवतथन, क्षय और मृतुयु, इन छह भाव-शवकारों ◌ंसे शून्य है। अखण्ड होने के कारण यह पररमाण में लघु नहीं ◌ंहोता। न यह बढ़ता है, न घटता है। यह सदा सम रहता है। ि◌न्म-मृतुयु तो भौशतक शरीर के ही गुण हैं। सवथव्यापक शाश्वत आत्मा का तो ि◌न्म और मृतुयु स्पशथ भी नहीं ◌ंकर सकते ।

वेदाडवनाडिनं डनत्यं य एनमजमव्ययम् ।
करं्थ स पुरुषः पार्थम कं घातयडत ि◌न्द्रत कम् ।।२१ ।।

बि्ार्थम : वेद–ि◌नता है, अशवनाशशनम् - शवनाश रशहत को, शनत्यम् - शाश्वत, यः ि◌ो, एनम्-इसको, अि◌म् - ि◌न्म रशहत, अव्ययम् - अपररवतथनशील, कर्म् -कैसे, सः-वह, पुरुषः- मनुष्य, पार्थ-अि◌ुथन, कम् - शकसे, घातयशत-मरवाता है, हम्भन्त-मारता है, कम् - शकसे ।

अनुवाद : ि◌ो मनुष्य इसे शवनाश रशहत, शनत्य, अि◌न्मा और शनशवथकारी मानता है, वह मनुष्य हे अि◌ुथन, कैसे शकसी को मरवा सकता है अर्वा मार सकता है?

व्याख्या : ज्ञानोद्दीप्त साधु प्रत्यक्ष ज्ञान अर्वा आध्याम्भत्मक अनुभव ािरा अशवकारी, अशवनाशी आत्मा का बोध कर लेता है। वह न तो मारने का कमथ कर सकता है और न ही मरवा सकता है।

वासांडस जीणामडन यर्था डविाय
नवाडन गृह्णाडत नरोऽपराडण ।
तर्था ािरीराडण डविाय जीणाम-
न्यन्याडन संयाडत नवाडन दिी ।।२२ ।।

बि्र्थम : वासांशस-वस्त्र, ाीणाथशनाीणथ-शीणथ (फटे-पुराने), यर्ााैसे, शवहाय-त्याग कर, नवाशन-नये, गृह्णाशत-धारण करता है, नरः मनुष्य, अपराशण-अन्य, तर्ा-वैसे, शरीराशण-शरीर, शवहाय-त्याग कर, ाी णाथशन-पुराने, अन्याशन-अन्य, संयाशत-धारण करता है, नवाशन-नये, देही-देहधारी आत्मा ।

अनुवाद : शिस प्रकार से कोई व्यम्भक् ाीणथ-शीणथ वस्त्रों ंको उतार कर नवीन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार यह देहधारी आत्मा पुराना शरीर त्याग कर नया शरीर धारण करता है।

नैनं डिन्दन्द्रत ािस्त्राडण नैनं दिडत पावकः ।
नचैनं क्लेदयन्त्यापोनिोषयडतमारुतः।।२३ । ।

बि्र्थम : न -नहीं, ं एनम् -इसे (आत्मा को), शछन्दम्भन्त-काट सकते हैं, शस्त्राशण-शस्त्र, न-नहीं, ं एनम्-इसे, दहशत-लिाता है, पावकः- अशग्न,न-नहीं, ं च-और, एनम्-इसे, क्लेदयम्भन्त-शभगो सकता है, आपः- ाल, न-नहीं, ं शोषयशत-सुखा सकता है, मारुतः - वायु ।

अनुवाद : शस्त्र इसे काट नहीं ंसकते, अशग्न ािला नहीं ंसकती, ाल इसे शभगो नहीं ंसकता और वायु सुखा नहीं ं सकता।

व्याख्या : आत्मा अखण्ड है। इसके खण्ड नहीं ंहैं। यह अतीव सूक्ष्म है। यह अनन्त है, अतः तलवार इसे काट नहीं ं सकती, अशग्न ािला नहीं ंसकती, ाल इसे गला नहीं ंसकता और वायु सुखा नहीं ंसकता।

अचे्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽष्यि एव च ।
डनत्यः सवमगतः थर्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।।२४ ।।

बि्र्थम : अचे्छेद्यःन कटने वाला (शिसे छेदा न ाा सके), अयम् - यह (आत्मा), अदाह्यः- शिसे ािलाया न ाा सके, अयम्-यह, अक्लेद्यः गीला न शकया ाा सके, अशोष्यः सुखाया न ाा सके, एव-ही, च- और, शनत्यः-शनत्य, सवथगतः सवथव्यापक, स्र्ाणुः-अपररवतथनशील, अचलः-अचल (गशतहीन), अयम्-यह, सनातनः शाश्वत ।

अनुवाद : न तो यह आत्मा कटने योग्य है, न इसे ािलाया ाा सकता है, न शभगोया ाा सकता है और न ही इसे सुखाया ाा सकता है। यह शनत्य, सवथव्याप्त, म्भरुर, अचल और शाश्वत है।

व्याख्या : आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है। यह मन और वाणी की पहुाँच (उपगमन) से परे है। इस सूक्ष्म आत्मा का बोध अतीव दुष्कर है। अमर आत्मा की प्रकृशत का व्याख्यान और शवशे्लेषण भगवान् कृष्ण अनेक प्रकार के दृष्टान्तों ंसे करते हैं, ताशक समान्य ान इस ज्ञान को ग्रहण कर सकें।

इस आत्मा को तलवार काट नहीं ंसकती, अतः यह शाश्वत है। क्योंशंक यह शाश्वत है, इसशलए यह सवथव्यापक भी है। सवथव्यापक होने के कारण यह मूशतथवत् म्भस्र्र है। म्भस्र्र है, इसशलए अचल है। अचल है, इसी कारण शनत्य शवद्यमान है। इसीशलए इसका कोई कारण नहीं ंहै (यह स्वयंभू है)। नवीन भी नहीं ंहै। यह सनातन है, पुरातन है, शाश्वत है।

अव्यक्तोऽयमडचन्त्योऽयमडवकायोऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं डवडदत्वैनं नानुिोडचतुमिमडस ।। २५ ।।

बि्र्थम : अव्यक्ः- अप्रकट, अयम् - यह (आत्मा), अशचन्त्यः - कल्पनातीत, अयम् - यह, अशवकायथः - अपररवतथनशील, अयम् - यह, उच्यते- कहा िाता है, तस्मात् - इसशलए, एवम् - इस प्रकार, शवशदत्वा–िान कर, एनम् इसको, ननहीं,ं अनुशोशचतुम् - शोक करने के शलए, अहथशस योग्य हो ।

अनुवाद : यह आत्मा अव्यक् है, अशचन्त्य और अशवकारी है। इस प्रकार से इसे िान कर तुम्हें शोक नहीं ंकरना चाशहए।

व्याख्या : आत्मा दृम्भिषय (दृशष्ट का शवषय) नहीं ंहै। भौशतक चकुषु से इसका दशथन असम्भव है। अतः यह आत्मा अप्रकट है। नेत्रों ंसे दशथनीय शवषय शचन्तन का शवषय बन िाता है; शकनुतु इसे नेत्रों ंसे नहीं ंदेखा िा सकता। अतः यह अशचन्त्य है। दूध को छाछ में शमला शदया िाये, तो उसका स्वरूप पररवशतथत हो िायेगा। शकनुतु दुग्ध की भााँशत इस आत्मा का स्वरूप नहीं ंबदलता । इसीशलए यह अशवकारी और अपररवतथनशील है। अतः इस प्रकार से आत्मा को समझ कर तुम्हें शोक नहीं ंकरना चाशहए। वह भी तुम्हारे शलए सोचना उशचत नहीं ंशक तुम उनको मारने वाले हो और वे तुम्हारे िारा मारे गये हैं।

अर्थ चैनं डनत्यजातं डनत्ंयं वा मन्यसे मृतम् ।
तर्थाडप त्ंवं मिाबािो नैवं िोडचतुमिमडस ।। २६ ।।

बि्र्थम : अर्-अब, च-और, एनम्- इसे (आत्मा को), शनत्यिातम् - शनत्य िन्म लेने वाला, शनत्यम्-सदा, वा-यशद, मन्यसे मानते हो, मृतम्-मरा हुआ, तर्ाशप-शफर भी, त्वम्-तुम, महाबाहो -शूरवीर, न-नहीं,ं एवम् - इस प्रकार, शोशचतुम्-शोक के शलए, अहथशस-योग्य हो ।

अनुवाद : पुनरशप, हे अिुथन, यशद तुम इसे शनत्य िन्म लेने और मरने वाला समझते हो, तब भी तुम्हें शोक करना उशचत नहीं ंहै।

व्याख्या : तकथ के शलए भगवान् कृष्ण यहााँ लोकशप्रय सम्भावना का आलम्बन लेते हैं। मान लो, शरीर के अम्भस्तत्व में आने पर आत्मा पुनः-पुनः िन्म लेता है और शरीर के मरने पर पुनः-पुनः मरता है, तर्ाशप हे महाबाहो (शूरवीर अिुथन), तुम्हें इस प्रकार शोक नहीं ंकरना चाशहए; क्योंशंक मृतक के शलए िन्म लेना अशनवायथ है और िन्म लेने वाले के शलए मृतुयु अपररहायथ है। यह सृशष्ट का अटल एवं कठोर शनयम है।

जातस्य डि धुर्वो मृतुयुधुर्वं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपररिायेऽर्थे न त्ंवं िोडचतुमिमडस ।।२७ ।।

बि्ार्थम : ितस्य–िन्म लेने वाले की, शह-शनशश्चत रूप से, धिुरुवः-शनशश्चत, मृतिुयुः मृतिुयु, धिुरुवम् -शनशश्चत, िन्म–िन्म, मृतस्य-मृत का, च-और, तस्मात् - इसशलए, अपररहायेि–ो टल न सके, अर्थ-के शलए, न-नहीं, ं त्वम् -तुम, शोशचतुम्-शोक करने के शलए, अहथशस योग्य हो।

अनुवाद : िन्म लेने वाले की मृतिुयु सुशनशश्चत है और मरने वाले का िन्म सुशनशश्चत है। शिसका कोई शनराकरण ही नहीं ंहै अर्ाथत् िो बात टल नहीं ंसकती, उसके शलए तुम्हें शोक नहीं ंकरना चाशहए।

व्याख्या : मृत का िन्म शनशश्चत और िन्म लेने वाले की मृतिुयु शनशश्चत है। िन्म और मृतिुयु तो अपररहायथ (अटल) है। अतः अपररहायथ के शलए शोक उशचत नहीं ं।

अव्यक्तादीडन भूताडन व्यक्तमध्याडन भारत ।
अव्यक्तडनधनान्येव तत्र का पररदेवना ।।२८ ।।

बि्ार्थम : अव्यक्ादीशनि–न्म से पूवथ अप्रकट, भूताशन-समस्त प्राणी, व्यक्मध्याशन-मध्य में प्रकट, भारत-हे अिुथन, अव्यक्शनधनाशन-अन्त में भी अप्रकट, एव-ही, तत्र-वहााँ, का-क्या, पररदेवना-शोक ।

अनुवाद : समस्त प्राणी (सृशष्ट के) आशद में अप्रकट रहते हैं और मध्य में प्रकट रूप में होते हैं। अन्त में हे अिुथन, पुनः अप्रकट हो िाते हैं। इस प्रकार से शोक करने का कोई कारण ही नहीं ंहै।

व्याख्या : भौशतक शरीर पंचतत्त्वों ंका संघात (संयोग) है। पंचतत्त्वों ंका एवंशवध संघात होने पर ही यह भौशतक नेत्रों ं िारा दशथनीय है। मृतूयूपरान्त शरीर के पंचतत्त्व शवघशटत हो िाते हैं और अपने-अपने मूल स्रोत की ओर उपगमन करते हैं। तब यह अदृश्य होता है। अतः मध्य काल में शरीर दृशष्टगोचर हो िाता है। मोहवश ही पुत्र, शमत्र, आचायथ, शपता, माता, पत्नी, भ्राता और स्वसा (बहन) आशद सम्बन्ध बनते हैं। शिस प्रकार एक नदी में शलाखण्ड शमलते और शबछिुते रहते हैं, इसी प्रकार माता-शपता, पुत्र और बनुधिुनों ंका इस संसार में संयोग-शवयोग होता रहता है। यह संसार तो एक बहुत बि्ा पशर्कार्श्रम है। पशर्कों ंका संयोग-शवयोग तो यहााँ होता रहता है।

प्रारम्भ और अन्त में पात्र की सत्ता नहीं ंहोती । प्रारम्भ और अन्त में देखने पर शवचार करना चाशहए शक यह पात्र तो मात्र भ्राम्भन्त है, इसका अम्भस्तत्व क्षशणक है। एवंशवध आशद और अन्त में शरीरों ंका अम्भस्तत्व नहीं ंहोता और िो आशद और अन्त में नहीं ंहै, मध्य में भी वह भ्रम हो सकता है। शवचार कर के अनुभव करने का प्रयास करना चाशहए शक वसुतुतः मध्य में भी शरीर का अम्भस्तत्व नहीं ंहै।

शरीर की इस प्रकृशत और इस पर आधाररत सभी सम्बन्धों ंको समझने वाला व्यम्भक् शोक नहीं ंकरेगा।

आश्चयमवत्पश्यडत कडश्चदेन-
माश्चयमविदडत तर्ैथैव चान्यः ।
आश्चयमवैनमन्यः शृणोडत
शिुरुत्वाप्येनं वेद न चैव कडश्चत् ।।२९ ।।

बि्ार्थम : आश्चयथवत् - आश्चयथ की भााँशत, पश्यशत-देखता है, कशश्चत् -कोई, एनम् - इसे (आत्मा को), आश्चयथवत्-आश्चयथ की भााँशत, वदशत-बोलता है, तर्ा-वैसे, एव-ही, च-और, अन्यः- अन्य, आश्चयथवत् - आश्चयथ की भााँशत, च-और,
एनम्-इसे, अन्यः - अन्य, शृणोशत-सुनता है, शिुरुत्वा-सुन कर, अशप-भी, एनम्-इसे, वेदि–ानता है, न-नहीं, ं च-और, एव-ही, कशश्चत् -कोई।

अनुवाद : इस आत्मा को कोई (पुरुष) तो आश्चयथ की भााँशत देखता है, अन्य इसके शलए आश्चयथ की भााँशत वचन कहता है, कोई और आश्चयथ की भााँशत इसका श्रवण करता है और श्रवण कर के भी इसे कोई समझ नहीं ंपाता ।

व्याख्या : इस श्लोक की शववेचना इस प्रकार भी की िा सकती है। िो इस आत्मा का दशथन, वाचन और श्रवण करता है, वह अद्‌भुत व्यम्भक् है। ऐसा व्यम्भक् शवरल ही होता है। सहस्रों ंमें कोई एक ही ऐसी शनष्ठा वाला होता है। अतः उशचत ही कहा है शक आत्मा को समझना अत्यन्त दुष्कर है।

दीी डनत्यमवध्योऽयं दि सवमस्य भारत ।
तस्मात्सवामडण भूताडन न त्वं िोडचतुमिमडस ।। ३० ।।

बिार्थम : देही-अन्तशनथवशसत (आत्मा), शनत्यम् सदा, अवध्यः- अवध्य (शिसे मारा न िा सके), अयम्-यह, देहे-शरीर में, सवथस्य-सबके, भारत-हे भारत, तस्मात्-इसशलए, सवाथशण-समस्त, भूताशन-प्राणी, न-नहीं,ं त्वम् -तुम, शोशचतुम् - शोक करने के शलए, अहथशस -योग्य हो ।

अनुवाद : प्रत्येक प्राणी का अन्तःस् आत्मा शनत्य अवध्य है; इसशलए हे अिुथन, तुम्हें शकसी भी प्राणी के शलए शोक नहीं ंकरना चाशहए।

व्याख्या : शकसी भी प्राणी का शरीर तो नष्ट हो सकता है; पर आत्मा का शवनाश नहीं ंहो सकता। अतः तुम्हें शकसी के शलए भी शोक नहीं ंकरना है, चाहे वे भीष्मशपतामह हों ंअर्वा कोई अन्य भी क्यों ंन हो।

स्वधममडप चावेक्ष्य न डवकम्न्द्रितुमिमडस ।
धमामन्द्रद्ध युद्धाच्छेरयोऽन्यत्क्षडत्रयस्य न डवद्यते ।। ३१ ।।

बिार्थम : स्वधमथम् - अपने कतथव्य को, अशप भी, च-और, अवेक्ष्य-देख कर, न-नहीं,ं शवकम्भम्पतुम् - शवचशलत होना, अहथशस चाशहए, धमाथत् -धमथ से, शह-शनश्चय से, युद्धात् - युद्ध की अपेक्षा से, श्रेयः-कल्याणप्रद, अन्यत् अन्य, क्षशत्रयस्य-क्षशत्रय का, न शवद्यते-नहीं ंहै।

अनुवाद : अपने कतथव्य को देखते हुए भी तुम्हें शवचशलत नहीं ंहोना चाशहए, क्योंशंक क्षशत्रय के शलए धमथयुद्ध से बढ़ कर कोई और श्रेष्ठतर कायथ नहीं ंहै।

व्याख्या : अब भगवान् कृष्ण अिुथन को युद्ध में प्रेररत करने के शलए सांसाररक तकथ देते हैं। अभी तक तो भगवान् कृष्ण अिुथन को आत्मा की अमरता के शवषय में उपदेश करते हुए उसे दाशथशनक तकथ दे रहे र्े। अब वे अिुथन से कहते हैं-"हे अिुथन, युद्ध तो क्षशत्रय का प्रर्म कतथव्य है। उस कतथव्य से तुम्हें शवमुख नहीं ंहोना चाशहए। एक क्षशत्रय के शलए धमथयुद्ध से बढ़ कर और कुछ भी प्रशस्य नहीं ंहै। योद्धा को तो (युद्ध में) लिना ही शोभा देता है।

यदृच्छया चोपपिं स्वगमिारमपावृतम् ।
सुन्द्रखनःक्षडत्रयाः पार्थमलभतेयुद्धमीदृिम् ।। ३२। ।

बिार्थम : यदृच्छया-स्वेच्छया (स्वयं ही), च-और, उपपन्नम् - प्राप्त हुए, स्वगथिारम् स्वगथलोक का िार, अपावृतम्-खुला हुआ, सुम्भखनः सुखी, क्षशत्रयाः-क्षशत्रय लोग, पार्थ-हे अिुथन, लभन्ते-प्राप्त करते हैं, युद्धम् - युद्ध, ईदृशम् - इस प्रकार का ।

अनुवाद : हे अिुथन, स्वगथ लोक के खुले िार की भााँशत स्वयं-प्राप्त युद्ध के इस प्रकार के संयोग को प्राप्त कर क्षशत्रय धन्य हो िाते हैं।

व्याख्या : शास्त्र का कर्न है शक यशद कोई क्षशत्रय धमथ की रक्षा के शलए युद्ध करता हुआ प्राण त्याग देता है, तो सद्यः स्वगथ को प्राप्त करता है।

अर्थ चेत्त्वडममं धम्यम संग्रामं न कररष्यडस ।
ततः स्वधमम कीडतं च डित्वा पापमवाप्स्स्यडस ।। ३३ ।।

बि्ार्थम : अर्-अतः, चेत्-यशद, त्वम्-तुम, इमम् -इस, धम्यथम् - धमथ के, संग्रामम् - युद्ध को, न-नहीं, ं कररष्यशस करोगे, ततः-तब, स्वधमथम् - अपने कतथव्य को, कीशतथम्-यश को, च-और, शहत्वा-खो कर, पापम् -पाप को, अवाप्स्स्यशस-प्राप्त करोगे ।

अनुवाद : शकनुतु यशद तुम इस धमथयुद्ध में प्रवृत्त नहीं ंहोते, तो अपने कतथव्य और यश से चुयुत हो कर पाप के भागी बनोगे ।

व्याख्या : भगवान् कृष्ण अिुथन को उसके िारा अशिथत कीशतथ का स्मरण कराते हुए कह रहे हैं शक यशद इस समय वह युद्ध नहीं ंकरेगा, तो कीशतथ खो देगा । भगवान् शशव से युद्ध कर के अिुथन ने यश पाया र्ा। एक बार अिुथन यात्रा के शलए शहमालय की ओर बढ़ा। पवथतारोही (शकरात) के रूप में आये भगवान् शशव से उसने युद्ध शकया और उनसे स्वगीय शदव्यास्त्र 'पशुपतास्त्र' प्राप्त शकया।

अकीडतं चाडप भूताडन कर्थडयष्यन्द्रत तेऽव्ययाम् ।
सम्भाडवतस्य चाकीडतममरणादडतररच्यते ।। ३४ ।।

बि्ार्थम : अकीशतथम् -अपयश, च-और, अशप-भी, भूताशन सब लोग, कर्शयष्यम्भन्त-कहेंगे, ते-तेरे शलए, अव्ययाम् - सदा के शलए, सम्भाशवतस्य-यशस्वी का, च-और, अकीशतथः-अपयश, मरणात् मरने से, अशतररच्यते-बढ़ कर है।

अनुवाद : शचरकाल पयथन्त सभी लोग तेरे अपयश का वणथन करेंगे और एक सम्माशनत व्यम्भक् के शलए अपयश मृतुयु से भी बढ़ कर है।

व्याख्या : संसार भी तेरी अकीशतथ का स्मरण कर तुम्हें सदा (सूमृशतयों ंमें) िीशवत रखेगा। एक सम्माशनत शूरवीर और सद्गुणों ंसे युक् महान् योद्धा के शलए अपमाशनत िीवन िीने से तो मृतुयु अशधक श्रेयस्कर है।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यते त्वां मिारर्ाः ।
येषां च त्ं बहमतो भूत्वा यास्यडस लाघवम् ।। ३५ ।।

बि्ार्थम : भयात् - भय से, रणात् - युद्धक्षेत्र से, उपरतम् -शवमुख, मंस्यन्ते-मानेंगे, त्वाम् - तुम्हें, महारर्ाः- महान् योद्धा, येषाम् - शिनके शलए, च-और, त्वम् तुम, बहुमतः आदरणीय, भूत्वा-हो कर, यास्यशस-पाओगे, लाघवम् लघुता को।

अनुवाद : महान् योद्धा सोचेंगे शक तुम भय के कारण युद्ध से शवमुख हो गये हो। शिनके शलए तुम आदर के योग्य रे्, वही योद्धा अब तुम्हें कुषिु समझेंगे ।

व्याख्या : दुयोधन तर्ा अन्य योद्धा शनशश्चत रूप से यही सोचेंगे शक तुम कणथ तर्ा अन्य वीरों ्के भय से युद्ध से भागे हो। गुरु िनों ्के प्रशत आदर और दया के भाव से तुम युद्ध से शवमुख हो रहे हो, ऐसा वे नहीं ्सोच सकते । तुम्हारे पौरुष, शौयथ और अन्य सद्गुणों ्के कारण दुयोधन सशहत अन्य योद्धाओं ्ने िो तुम्हें सम्मान शदया है, वह लघुता को प्राप्त होगा; क्योंशंक वे तुम्हें रण से भागने के कारण तुच्छ समझ कर तुम्हारा अपमान करेंगे।

अवाच्यवादांश्च बहून् वडदष्यन्द्रत तवाडिताः ।
डनन्दतस्तव सामर्थ्म ततो दुःखतरं नु डकम् ।। ३६ ।।

बि्र्थम : अवाच्यवादान् -कटु शब्द, च-और, बहन् बहुत, वशदष्यम्भन्त-बोलेंगे, तव-तुम्हारे, अशहताः-शत्रुरु, शनन्दन्तः - शनन्दा करते हुए, तव-तुम्हारे, सामथ्यथम् -शम्भक्, ततः- उसकी अपेक्षा, दुःखतरम् - अशधक दुःखद, नु-शनशश्चत रूप से, शकम्-क्या है।

अनुवाद : तुम्हारे शत्रुरु भी अनेक प्रकार से तुम्हारी क्षमता की शनन्दा करते हुए कटु वचन कहेंगे। इससे और अशधक दुःखद म्भरूशत क्या हो सकती है?

व्याख्या : वास्तव में ऐसे अपभाषण की अपेक्षा कोई और कष्ट इतना असह्य और वेदनाशील नहीं ्हो सकता।

तिो वा प्राप्स्स्यडस स्वगम डजत्वा वा भोक्ष्यसे मिीम् ।
तस्मादुडत्ति कौतेय युद्धाय कृतडनश्चयः ।। ३७ ।।

बि्र्थम : हतः मारा िाने पर, वा-अर्वा, प्राप्स्स्यशस-प्राप्त करोगे, स्वगथम् -स्वगथ को, शित्वा–ीत कर, वा-अर्वा, भोक्ष्यसे-भोगोगे, महीम् - पृथ्वी को, तस्मात् - इसशलए, उशत्तष्ठ-उठो, कौने्तेय-कुन्तीपुत्र, युद्धाय-युद्ध के शलए, कृतशनश्चयः - शनश्चय कर के।

अनुवाद : मारे िाने पर स्वगथलोक को प्राप्त करोगे और शविय प्राप्त करने पर धरती का राज्य भोगोगे। अतः हे कुन्तीपुत्र, उठो, युद्ध के शलए संकल्प करो।

व्याख्या : शकसी भी अवस्र्ा में शहत तो तुम्हारा ही होगा। इसशलए दृढ़संकल्प के सार् खिै हो िाओ -"या तो मैं शत्रुरु को िीत लूूँगा, अन्यर्ा (लिते हुए) प्राण त्याग दूूँगा।"

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्स्यडस ।। ३८ ।।

बि्र्थम : सुखदुःखे-सुख और दुःख में, समे-समभाव, कृत्वा कर के (रह कर), लाभालाभौ-लाभ और हाशन में, ियियौ–ीत और हार में, ततः-तत्पश्चात्, युद्धाय-युद्ध के शलए, युज्यस्व-संलग्न हो िाओ, ननहीं,् एवम् - इस प्रकार, पापम् -पाप को, अवाप्स्स्यशस-प्राप्त करोगे ।

अनुवाद : सुख-दुःख, लाभ-हाशन, िय-पराािय में समभाव रह कर अब तुम युद्ध के शलए तैयार हो िाओ, ऐसा करने से तुम्हें पाप नहीं ्लगेगा।

व्याख्या : यह समता योग अर्वा कमथ समीकरण (समशचत्तभाव) का शसद्धान्त है। मन की साम्यावस्ा में कमथ करने से मनुष्य उसके फल का भागी नहीं ंबनता। ऐसा कमथ िो मनोभावों ंसे ऊपर रह कर अर्ाथत् भावुकतापूणथ उतार-चढ़ावों ंसे पृर्क् रह कर शकया िाता है, मन-हृदय को पशवत्र करता है और भवबन्धन से मुक् करने वाला होता है। िागृत प्रयासों ंऔर सतत संघषथ के िारा मन की इस साम्यावस्ा को शवकशसत शकया िा सकता है।

एषा तेऽडभडिता सांख्ये बुन्द्रद्धयोगे न्द्रत्वमां शृणु ।
बुद्धयायुक्तो यया पार्थम कममबन्ं धं प्रिास्यडस ।।३९ ।।

बि्ार्थम : एषा यह, ते तुम्हारे शलए, अशभशहता-कही गयी, सांख्ये सांख्य में, बुम्भद्धः ज्ञान, योगे-योग में, तु-शनश्चय से, इमाम् इसको, शृणु-सुनो, बुद्धया बुम्भद्ध से, युक्: - युक् हो कर, यया-शिससे, पार्थ-हे पार्थ, कमथबन्धम् -कमथ के बन्धन को, प्रहास्यशस -त्याग दोगे।

अनुवाद : हे अिुथन, अभी मैंने सांख्य का ज्ञान तुम्हें शदया है। अब योग के शवषय में सुनो, शिस ज्ञान का श्रवण कर तुम कमथ के बन्धन से मुक् हो िाओगे।

व्याख्या : अब तक भगवान् कृष्ण ने अिुथन को ज्ञान शदया (सांख्य योग, वेदान्त अर्वा ज्ञानयोग का मागथ है िो शवधानों ंको और आत्म-साक्षात्कार के अन्य शवशध-शवधानों ंको प्रशस्त करता है। यह कशपल मुशन का सांख्य योग नहीं ंहै) । अब वे अिुथन को कमथयोग का रहस्य बताने लगे हैं, शिसे िान कर वह अर्वा अन्य कोई भी व्यम्भक् कमथबन्धन तिो़ कर मुक् हो सकता है।

कमथयोगी को कमथफल की आशा त्याग कर और कताथभाव से ऊपर उठ कर कमथ करना चाशहए। उसका कमथ सभी प्रकार के िन्द्िों ंसे िय-पराजय, हाशन-लाभ और सुख-दु:ख आशद से परे रह कर आसम्भक्भाव से रशहत होना चाशहए। अहंभाव से शून्य और अनासक् रह कर कमथ करने वाले का, धमथ-अधमथ और पाप-पुण्य स्पशथ भी नहीं ंकर सकते। कमथयोगी अपने समस्त कमथ ईश्वरापथण करके ईश्वर-प्रसाद ग्रहण करता है।

निेडभक्रमनािोऽन्द्रस्त प्रत्यवायो न डवद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धममस्य त्रायते मितो भयात् ।।४० ।।

बि्ार्थम : न-नहीं,ं इह-यहााँ (इस योग में), अशभक्रमनाशः - प्रयत्न का शवनाश, अम्भस्त-है, प्रत्यवायः - शवपरीत पररणाम की उत्पशत्त, न-नहीं,ं शवद्यते-है, स्वल्पम् -र्ि्ा, अशप-भी, अस्य-इस, धमथस्य कतथव्य का, त्रायते-रक्षा करता है, महतः महान् (से), भयात् भय से ।

अनुवाद : इस योग में कोई भी प्रयास शवफल नहीं ंहोता और न ही कोई बाधा आती है (अर्ाथत् शवपरीत पररणामों ं की उत्पशत्त अर्वा उल्लंघन नहीं ंहोते) । इस ज्ञान का र्ि्ा-सा पालन भी महान् भय से रक्षा करता है।

व्याख्या : यशद कोई धाशमथक अनुष्ठान अधूरा छि्ो शदया िाये, तो वह अनुष्ठान व्यर्थ है; क्योंशंक कताथ उसके फल से वंशचत रह िाता है। शकन्तुतु कमथयोग में ऐसा नहीं ंहै; क्योंशंक प्रते्येक कमथ हृदय की तत्काल शुम्भद्ध करता है।

कृशष में सम्भन्दग्धता है। कृषक भूशम िोतेगा, हल चलायेगा, बीि बोयेगा और यशद वषाथ न हो, तो फसल प्राप्त नहीं ंकर सकता । कमथयोग में ऐसा नहीं ंहै। अशनशश्चतता इसमें कदाशप नहीं ंहै। और भी, शकसी प्रकार की कोई हाशन होने का भी कोई प्रयोिन नहीं ंहै। औषध-उपचार में शचशकत्सक िारा अयुक् औषध शमलने पर शवपरीत

पररणाम हो सकते हैं; शकनुतु कमथयोग में ऐसा नहीं ंहै। कमथयोग के इस मागथ में अल्पमात्र भी शकया गया प्रयास न्मि-मृतुयु के महान् बन्धन से छुटकारा शदला सकता है। भगवान् कृष्ण यहााँ अिुथन में इस योग के प्रशत आस्ा उत्पन्न करने के शलए, उसे इसमें प्ेरेररत करने के शलए कमथयोग की प्रशंसा कर रहे हैं।

व्यवसायान्द्रिका बुन्द्रद्धरेकेि कुरुनन्दन ।
बहिाखा ह्यनताश्च बुद्धयोऽव्यवसाडयनाम् ।।४१ ।।

बिाथम : व्यवसायाम्भत्मका-दृढ़ संकल्प वाली, बुम्भद्धः बुम्भद्ध, एका-एक, इह-यहााँ, कुरुनन्दन- हे कुरु वंश के शप्रय, बहुशाखाः- अनन्त शाखाओं ंवाली (शवकीणथ), शह-शनशश्चत रूप से, अनन्ताः- अनन्त, च-और, बुद्धयः-शवचार, अव्यवसाशयनाम् -संकल्पशून्य व्यम्भक्यों ंके।

अनुवाद : हे कुरुनन्दन, यहााँ (इस कमथयोग मागथ में) दृढ़संकल्प बुम्भद्ध एक ही है; शकनुतु अशनशश्चत (चंचल) मन वालों ं के शवचार शवकीणथ और अनन्त होते हैं।

व्याख्या : इह लोक में, आनन्द सागर में अवगाहन हेतु सुशनशश्चत संकल्प एक ही है, वह है एकशचत् (अनन्य- मनस्क) संकल्प। यह अशितीय शवचार ज्ञान के सम्यक् स्रोत से उशदत होता है। योग का साधक मन की शवकीणथ रम्भश्मयों ं(शवचारों)ं को संहत (एकत्र) करता है। एकाग्रता, अनासम्भक् और शववेक से वह इन्ें एकस् करता है। वह मन की अम्भस्र और चंचल वृशत्त से मुक् होता है।

संसार रूपी पंक में िूबे हुए सांसाररक मनुष्य के पास एकाग्र वृशत्त नहीं ंहोती। वह अनन्त शवचारों ंका सत्कार करता है। उसका मन सदा चंचल और अम्भस्र रहता है।

यशद शवचार न रहें, तो संसार भी नहीं ंरहेगा। मन से अगशणत शवचारों ंका उद्भव होता है और इसी से संसार अम्भस्तत्व में आता है। शवचार, नाम और रूप अशभन्न हैं, इन्ें पृर्क् नहीं ंशकया िा सकता। यशद शवचारों ंको संयत कर शलया िाये, तो मन संयत हो िाता है और योगी मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

याडममां पुन्द्रष्पतां वाचं प्रवदन्त्यडवपडश्चतः ।
वेदवादरताः पार्थम नान्यदस्तीडत वाडदनः ।।४२ ।।

बिाथम : याम् -शिस, इमाम्-इस, पुम्भष्पताम् -पुष्पों ंिैसी आकषथक, वाचम् वाणी, प्रवदम्भन्त-कहते हैं, अशवपशश्चतः- अशववेकी, वेदवादरताः- वेद के कर्न में आनन्द लेने वाले, पार्थ- हे अिुथन, न-नहीं,ं अन्यत् - अन्य, अम्भस्त-है, इशत- इस प्रकार, वाशदनः-कहने वाले ।

अनुवाद : हे अिुथन, अशववेकी िन वेदों ंकी पुम्भष्पता (आकषथक) वाणी बोलते हुए वेदों ंके गुण-सुतुशतमय वाक्यों ंमें आनन्द लेते हैं और कहते हैं- 'इसके अशतररक् अन्य कुछ नहीं ंहै।'

व्याख्या : शववेकशून्य व्यम्भक् वेदों ंके कमथकाण्ड में अशधक आस्ा रखते हैं, शिसमें शकसी शवशेष फल-प्राम्भप्त हेतु शवशेष शवशध-शवधानों ंकी कमथशवशध और सुतुशत का वणथन है। स्वगथ के आनन्द का वणथन करने वाले इन वेदवाक्यों ंमें वे अत्यशधक अनुरक् हो िाते हैं। उनके अनुसार कमथकाण्ड के अनुष्ठानों ंसे प्रापणीय स्वशगथक सुखों ंसे परे अन्य कुछ भी नहीं ंहै।

वेदों ◌ंके दो भाग हैं-कमथकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। ब्राह्मण ग्रन्थ और संशहता कमथकाण्ड से सम्बद्ध हैं। ि◌ैशमनी का पूवथ मीमांसा मत इसी पर आधाररत है। इस मत के अनुयायी इहलोक के ऐश्वयथ और स्वगथ-सुख की प्राम्भप्त हेतु इस प्रकार के अनेक यज्ञाशद कमों का प्रशतपादन करते हैं। वे इसे ही मनुष्यि◌ीवन का सविो लक्ष्य मानते हैं। सामान्य ि◌न तो इसके स्तवन-पाठ से ही आकृष्ट हो ि◌ाते हैं। उपशनषद् और आरण्यक ग्रन्थ परब्रह्म की प्रकृशत का वणथन करते हैं और ज्ञान काण्ड के अन्तगथत हैं।

स्वगथ का ि◌ीवन भी अस्िायी है। पुण्य कमथ क्षीण होने पर मनुष्य को धरालोक पर लौटना पिता है। सहस्रों ◌ं यज्ञ करने पर भी आत्म-ज्ञान के शबना मोक्ष-प्राम्भप्त असम्भव है।

भगवान् कृष्ण, धरती का प्रभुत्व शदलाने वाले और स्वगथ तिा अन्य शम्भक्याँ प्रदान करने वाले वैशदक अनुष्ठानों ◌ंके प्रशंसक, मीमांसा शसद्धान्त को अपेक्षाकृत गौण बताते हैं; क्योंशंक वे आत्यम्भन्तक मोक्ष प्रदान करने वाले नहीं ◌ंहैं।

कामािानः स्वगमपरा जन्मकममफलप्रदाम् ।
डक्रयाडविेषबहलां भोगैश्वयमगडतं प्रडत ।।४३ ।।

बिार्थम : कामात्मानः- इच्छाओं ◌ंसे पूणथ, स्वगथपराः-स्वगथ-प्राम्भप्त ही शिनका लक्ष्य हो, ि◌न्मकमथफलप्रदाम् -कमों के पररणामस्वरूप नवि◌न्म की ओर ले ि◌ाने वाला, शक्रयाशवशेषबहुलाम् - शवशवध प्रकार की प्रचुर शक्रयाएँ, भोगैश्वयथगशतं प्रशत-इम्भियतुशष्ट, ऐश्वयथ और स्वाशमत्व-प्राम्भप्त के शलए।

अनुवाद : इच्छाओं ◌ंसे पूणथ, स्वगथ को अपना आत्यम्भन्तक लक्ष्य मान कर (वे ऐसी वाणी बोलते हैं ि◌ो कमथफल प्रदान करने वाली है), कमों के फलस्वरूप नया ि◌न्म प्रदान करने वाली है। इस प्रकार वे शवशवध शवशधयााँ शवशेष कमथकाण्डों ◌ंमें अपनाते हैं ि◌ो भौशतक सुख, साम्राज्य और प्रभुत्व देने वाली हैं।

भोगैश्वयमप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायान्द्रिकाबुन्द्रद्धःसमाधौनडवधीयते ।।४४। ।

बिार्थम : भोगैश्वयथप्रसक्तानाम् - इम्भिय-सुख और ऐश्वयथ में आसक् लोगों ◌ंकी, तया-उसके ि◌ारा, अपहृतचेतसाम् - शिनका शचत्त मोहग्रस्त हो गया हो, व्यवसायाम्भत्मका-दृढ़ शनश्चय वाली, बुम्भद्धः - बुम्भद्ध, समाधौ-समाशध में, न-नहीं,◌ं शवधीयते-म्भस्रर रहती है।

अनुवाद : (वेद की) इस शक्षा के ि◌ारा ि◌ो लोग सांसाररक भोगों ◌ंमें आसक् हो कर मोहग्रस्त हो गये हैं, उनकी शनश्चयाम्भत्मका (भले-बुरे का शववेक करने वाली) बुम्भद्ध समाशध में म्भस्रर नहीं ◌ंहो सकती ।

व्याख्या : प्रभुत्व और सुख-समृम्भद्ध के इचुछुक मन की एकाग्रता नहीं ◌ंप्राप्त कर सकते। वे एकाग्रशचत्त हो कर ध्यान में नहीं ◌ंबैठ सकते। वे तो अर्थ और सामथ्यथ-प्राम्भप्त की योिनाएँ बनाते रहते हैं। उनके मन सदा व्याकुल रहते हैं। उनमें तुलनात्मक बुम्भद्ध का अभाव रहता है।

तै्रगुण्यडवषया वेदा डनसै्त्रगुण्ी भवाजुमन ।
डनिमन्ब्िाो डनत्यसत्त्वथर्थो डनयोगक्ेषेम आिवान् ।।४५ ।।

बि्ार्थम : त्रैैगुण्यशवषयाः-तीन गुणों ंसे सम्बम्भन्धत, वेदाः वेद, शनखैगुण्यः-तीन गुणों ंसे परे, भव-हो िाओ, अि्ुथन-हे अि्ुथन, शनिथन्ि- िन्ि्ि िसे परे, शनत्यसत्त्वस्ः - शनत्य सत्त्व भाव में म्भस्त रहने वाले, शनयोगक्ेषेम: लाभ और संचय के भाव से मुक्, आत्मवान्-आत्मा में म्भस्त।

अनुवाद : वेद (प्रकृशत के) तीन गुणों ंका वणथन करते हैं। तुम इन तीनों ंगुणों ंसे ऊपर उठ िाओ। हे अि्ुथन, अिथन (लाभ) और रक्षण (संशचत अर्वा अशिथत धन की रक्षा) के भाव से तर्ा िन्ि्ि िसे मुक् हो कर सत्त्व में शवचरण करो तर्ा आत्मस्् हो िाओ।

व्याख्या : गुण िव्य भी हैं और गुण भी। प्रकृशत शत्रगुणात्मक है। सत्त्व गुण शुद्धता, प्रकाश और समिय का पररचायक है। रिस््, मोह और गशत (शक्रयाशीलता) है। तमस्् अन्धकार व ििता की ओर संकेत करता है। मान-अपमान, आदर-अनादर, िय-परािय, हाशन-लाभ, सुख-दुःख और शीतोष्ण यह िन्ि्ि के ििो हैं। िो मनुष्य अप्राप्त की प्राम्भप्त अर्वा प्राप्त की सुरक्षा में संलग्न रहता है, वह मन की शाम्भन्त नहीं ंप्राप्त कर सकता। वह सदा अशान्त रहता है। उसके शलए आत्मकेम्भित होना अर्वा ध्यान में लगना असम्भव है। वह सत्त्वगुण का अभ्यास नहीं ंकर सकता । अतः भगवान् कृष्ण अि्ुथन को अिथन-रक्षण के शवचार से मुक् हो कर शाश्वत सत्य में म्भस्त होने का उपदेश करते हैं। (शनरूपण -IX.20, 21)

यावानर्थम उदपाने सवमतः संपुलुतोदके ।
तावान्सवेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य डवजानतः ।।४६ ।।

बि्ार्थम : यावान्् -शितना, अर्थ:-प्रयोिन, उदपाने िलाशय में, सवथतः सवथत्र (सब ओर), संपुलुतोदके बाद में (सब ओर िल ही िल), तावान्् -उतना, सवेषु सब, वेदेषु वेदों ंमें, ब्ा्ह्मणस्य-ब्ा्ह्मण का, शविानतः ज्ञानी का ।

अनुवाद : सब ओर िल ही िल होने पर एक िलाशय का शितना महत्त्व रह िाता है, उतना ही महत्त्व अर्वा प्रयोिन एक ज्ञानी ब्ा्ह्मण का वेदों ंसे होता है।

व्याख्या : आत्म-साक्षात्कार के उपरान्त शकसी भी ऋशष-मुशन को वेदों ंसे कोई प्रयोिन नहीं ंरह िाता; क्योंशंक उन्ोंने आत्मा का अनन्त ज्ञान प्राप्त कर शलया है। इसका यह अर्थ कदाशप नहीं ंशक वेद शनरर्थक हैं। आध्याम्भत्मक पर्् पर अग्रसर होने के शलए नये साधकों ंके शलए वेदों ंका शवशेष महत्त्व है।

कममरे्णे्वाडधकारसे्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कममफलिेतुभूमाम ते सङ्गोऽस्त्वकममडण ।।४७ ।।

बि्ार्थम : कमथशण-कमथ में, एव-ही, अशधकारः अशधकार, ते तुम्हारा, मा-नहीं,ं फलेषु-फल में, कदाचन-कभी, मा कमथफलहेतुः भूः-कमथफल तुम्हारा उदे्देश्य न हो, मा-नहीं,ं ते तुम्हारा, सङ्गः- आसम्भक्, असुतु-हो, अकमथशण अकमथ
में।

अनुवाद : तुम्हारा अशधकार केवल कमथ करने का है, फल की इच्छा करने का कदाशप नहीं।ं तुम्हारा उदे्देश्य कमथ-फल की प्राम्भप्त न हो और न ही कमथ के त्याग (अकमथ) में तुम्हारा अनुराग हो।

व्याख्या : शकसी भी म्भस्शत में कृत कमों के फल की आकाङ्क्षा मत करो। यशद तुम ऐसा करते हो, तो फल भोगने के शलए आवागमन के चक्र में फाँसना प़िेगा। फल की इच्छा से शकया गया कमथ बन्धन में िालने वाला होता है।

अनासक् कमथ से हृदय पररमाशिथत होता है। हृदय-शुम्भद्ध से आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है और आत्म-ज्ञान िन्म-मृतुयु के बन्धन से मुक् कराता है।

ऐसा भी न हो शक तुम कमथ का त्याग इस भावना से करो शक िब फल ही नहीं ंलेना, तो कमथ कर के क्या करें।

उदार भाव में, कमथ का अशभप्राय है शक्रया । िाशत अर्वा िीवन में वणथ-व्यवस्ा है और आश्रम-व्यवस्ा के अनुरूप कतथव्य भी कमथ संज्ञक है। वेदों ं के कमथकाण्ड के अनुयाशययों ं (मीमांसकों)ं के अनुसार वेद-शवशहत यज्ञाशद कमथ भी 'कमथ' कहलाते हैं। कमथ का रहस्य गहन है। मनुष्य की संशचत वृशत्तयों ंकी शनयशत के आधार पर
उसका भावी िन्म शनधाथररत होता है।

योगथर्थः कुरु कमामडण सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
डसद्धयडसद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।४८ ।।

बि्ार्थम : योगस्ः योग में म्भस्त, कुरु-करो, कमाथशण-कमथ, सङ्गम् आसम्भक्, त्यक्त्वा-त्याग कर, धनञ्जय-अिुथन, शसद्धयशसद्धयोः- सफलता-शवफलता में, समः समभाव, भूत्वा - हो कर, समत्वम् समता, योगः योग, उच्यते-कहा िाता है।

अनुवाद :हेअिुथन, िय-पराजय की आसम्भक् त्याग कर योग में म्भस्त हो कर कमथ करो। मन का समत्व ही योग कहलाताहै।

व्याख्या :परमदेव के सार् योग में म्भस्त रह कर, सफलता और शवफलता से ऊपर उठ कर समभाव से उसी परमात्माकेशलएकमथ करो । समत्व ही योग है। कमथफल की इच्छा के त्याग िारा पररमाशिथत हृदय से प्राप्त आत्म-ज्ञान हीसफलताशसम्भद्ध) है। कमथफल की इच्छा से कृत कमथ िारा ज्ञान की प्राम्भप्त न होना शवफलता है। (शनरूपण - III.9; IV, 14, 20.)

दूरेण ह्यवरं कमम बुन्द्रद्धयोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ िरणमन्द्रन्वच्छ कृपणाः फलहेतवः ।।४९ ।।

बि्ार्थम : दूरेण-दूर से, शह-शनश्चय से, अवरम् - शनम्न श्रेणी को, कमथ-कमथ (कायथ), बुम्भद्धयोगात् - बुम्भद्धयोग की अपेक्षा, धनञ्जय - हे धनञ्जय, बुद्धौ-बुम्भद्ध में, शरणम् - शरण (आश्रय), अम्भिच्छ इच्छा करो, कृपणाः दयनीय, फलहेतवः- फल की आकाङ्क्षा वाले।

अनुवाद : हे अिुथन, बुम्भद्धयोग की अपेक्षा केवल कमथ कहीं ंअशधक शनम्नश्रेणी का माना िाता है। तुम बुम्भद्ध की शरण लो। फल की इच्छा रखने वाले तो कृपण हैं।

व्याख्या : समम्भित मन से शकया गया कमथ बुम्भद्धयोग है। बुम्भद्धयोग में म्भस्त महात्मा िय-पराजय से प्रभाशवत नहीं ं होता। वह कमथफल की कामना नहीं ंकरता। वह युक् (सम बुम्भद्ध) हो गया है। उसकी बुम्भद्ध आत्मस् हो गयी है। िहााँ शकसी प्रकार के कमथ के पररणाम स्वरूप शकसी भी फल की कामना नहीं ंहोती, ऐसे बुम्भद्धयोग की अपेक्षा सकाम कमथ अत्यन्त गशहथत है; क्योंशक यह िन्म-बन्धन का कारण है। (शनरूपण - VIII.18)

बुन्द्रद्धयुक्तो जिातीि उभे सुकृतदुष्कृते ।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कममसु कौैलम् ।। ५० ।।

बि्ार्थम : बुम्भद्धयुक्ः बुम्भद्धमान्, ि हाशत-त्याग देता है, इह-इस ि ीवन में, उभे दोनों, ं सुकृतदुषूकृते-अचे्छे-बुरे कमथ, तस्मात्-इसशलए, योगाय-योग के शलए, युज्यस्व-संलग्न हो ि ाओ, योगः-योग, कमथसु कमों में, कौशलम् - कुशलता,
शनपुणता ।
अनुवाद : बुम्भद्धमान् मनुष्य इसी िन्म में अचे्छे और बुरे कमों से मुम्भक् प्राप्त कर लेता है। इसशलए हे अिुथन, योग-मागथ का अनुसरण करो। योग में संलग्न हो िाओ। कमथ में कुशलता ही योग है।

व्याख्या : कमथफल के उदे्देश्य से शकये गये कमथ बन्धन का कारण होते हैं; क्योंशंक कमथफल भोगने के शलए मनुष्य को पुनः िन्म लेना पिेगा । समभाव में शकया गया कमथ अर्ाथत् बुम्भद्धयोग में आत्मस्र् हो कर कृत कमथ बन्धन का कारण नहीं ंहोता; क्योंशंक परमात्मा में म्भस्र्त बुम्भद्ध के कारण वह कमथ फल के भाव से मुक् है और वसुतुतः वह कमथ, कमथ ही नहीं ंहै। बन्धन में लाने वाले कमथ मन की साम्यावस्र्ा में शकये िाने पर अपनी प्रकृशत त्याग देते हैं। समत्व योग में शनपुण योगी सभी कमथ शदव्य अशभनेता ईश्वर को समशपथत कर देता है।

कममजं बुन्द्रद्धयुक्ता डि फलं त्यक्त्वा मनीडषणः ।
जन्मबन्धडवडनमुमक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।।५१ ।।

बि्ार्थम : कमथिम् -कमथ–शनत, बुम्भद्धयुक्ाः- ज्ञानी, शह-शनश्चय से, फलम् फल को, त्यक्त्वा-त्याग कर, मनीशषणः- बुम्भद्धमान्, िन्मबन्धशवशनमुथक्ाः- िन्म-बन्धन से मुक्, पदम् -धाम, गच्छम्भन्त–िाते हैं, अनामयम् - दुःख रशहत (सुखद) ।

अनुवाद : बुम्भद्धमान् मनुष्य, ज्ञान प्राप्त कर के, कमथफल का त्याग कर देते हैं और इस प्रकार िन्म-बन्धन से शवमुक् हो कर दुःखों ंसे परे परम धाम को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : कमथफल के प्रशत आसम्भक् पुनिथन्म का कारण है। कृत कमों का शुभाशुभ फल भोगने के शलए मनुष्य पुनः शरीर धारण करता है। यशद कोई मनुष्य कमथफल की इच्छा त्याग कर परमात्मा के शलए अर्वा उसी के ही शकसी प्रयोिन को पूणथ करने के शलए कमथ करता है, वह कमथ-बन्धन से मुक् हो कर िन्म के बन्धन से भी मुक् हो िाता है और शाश्वत धाम, आनन्दमयी अवस्र्ा का अशधकारी बनता है।

मन की साम्यावस्र्ा में रहने वाले महात्मा कमथफल का मोह त्याग कर शुभ-अशुभ कमों से बच िाते हैं।

श्लोक ४९, ५०, ५१ में बुम्भद्ध शब्द का संकेत सांख्य (ज्ञान) योग से है। इस आत्म-ज्ञान का सूयथ तब उशदत होता है, िब मन कमथयोग से पररमाशिथत हो िाता है।

यदा ते मोिकडललं बुन्द्रद्धव्यमडततररष्यडत ।
तदा गताडस डनवेदं श्रोतव्यस्य शु्रुतस्य च ।। ५२ ।।

बि्ार्थम : यदा–िब, ते-तुम्हारी, मोहकशललम् -मोह रूपी कीचि़ को, बुम्भद्धः बुम्भद्ध, व्यशततररष्यशत-तर िायेगी, तदा-तब, गन्ताशस-प्राप्त करोगे, शनवेदम् - शवरक् भाव को, श्रोतव्यस्य-सुनने योग्य के प्रशत, शु्रुतस्य-सुने हुए के प्रशत, च-और।

अनुवाद : िब तुम्हारी बुम्भद्ध मोह रूपी कलुषता को पार कर ियेगी, तब तुम श्रवण करने योग्य के प्रशत और श्रवण शकये हुए के प्रशत मुक्सङ्ग (उदासीन) हो िाओगे।

व्याख्या : आत्म-तत्त्व का अनात्मा में एकीकरण मोहकशलल है। शववेक-बुम्भद्ध आत्मा-अनात्मा में अभेद के कारण मोह-माया में फाँस िाती है और मन इम्भिय-शवषयों ंकी ओर भागता है। ऐसी अवस्ा में मनुष्य शरीर को ही आत्मा समझने की भूल कर बैठता है। मन पशवत्र होने पर मनुष्य शुरुत और अशुरुत के प्रशत उदासीन हो िाता है। इसका कोई प्रयोिन नहीं ंरह िाता। उन सबके प्रशत अर्ाथत् शास्त्रों ंके प्रशत उसमें उदासीनता आ िाती है। (शनरूपण-XVI.24)

शुरुडतडवप्रडतपिा ते यदा थर्थास्यडत डनश्चला ।
समाधावचला बुन्द्रद्धस्तदा योगमवाप्स्स्यडस ।।५३ ।।

बि्ार्थम : शुरुशतशवप्रशतपन्ना-सुने हुए के प्रशत शंकंकतथव्यशवमूढ़, ते तुम्हारी, यदा–िब, स्ास्यशत-म्भस्र हो ियेगी, शनश्चला-एकशनष्ठ, समाधौ-आत्मा में, अचला-म्भस्र, बुम्भद्धः बुम्भद्ध, तदा-तब, योगम्-योग को, अवाप्स्स्यशस-प्राप्त करोगे।

अनुवाद : वेद-शास्त्रों ंके श्रवण से शंकंकतथव्यशवमूढ़ हुई तुम्हारी बुम्भद्ध िब म्भस्र और आत्मस् हो ियेगी, तभी तुम्हें अन्तज्ञाथन व आत्म-साक्षात्कार होगा।

व्याख्या : प्रवृशत्त-मागथ और शनवृशत्त-मागथ में शवचारों ंके शवरोधाभास के कारण िो तुम्हारी बुम्भद्ध भ्रशमत हो गयी है, उसके शवक्षेप और शंका समाप्त होने पर तर्ा बुम्भद्ध के आत्मा में म्भस्र होने पर तुम्हें आत्म-ज्ञान होगा।

अजुमन उवाच

न्द्रथर्थतप्रज्ञस्य का भाषा समाडधथर्थस्य किेव ।
न्द्रथर्थतधीः डकं प्रभाषेत डकमासीत व्रजेत डकम् ।।५४ ।।

बि्ार्थम : म्भस्तप्रज्ञस्य-अचल बुम्भद्ध वाले (महात्मा की), का-क्या, भाषा-भाषा (लक्षण), समाशधस्र्स्य-परा चेतना में लीन पुरुष की, केशव-हे कृष्ण, म्भस्तधीः - म्भस्र बुम्भद्ध वाले, शकम् -कैसे, प्रभाषेत-बोलता है, शकम् -कैसे, आसीत-बैठता है, िेित-चलता है, शकम् -कैसे।

अजुमन ने किा

अनुवाद : हे केशव, म्भस्र बुम्भद्ध वाले समाशध (परा चेतना) में म्भस्त महात्मा के क्या लक्षण हैं? वह कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे शवचरण करता है?

व्याख्या : अिुथन भगवान् कृष्ण से यह िानने का इचुछुक है शक म्भस्रधीः पुरुष िो आत्मस् है, उसके लक्षण क्या हैं। वह कैसे बोलता है, कैसे बैठता है, कैसे चलता है।

अचल मशत पुरुष के लक्षण और आत्मा के उस म्भस्र ज्ञान को प्राप्त करने के उपाय इस अध्याय के श्लोक ५५ से ७२ तक वशणथत हैं।

म्भस्र बुम्भद्ध का ज्ञान भगवत्साक्षात्कार अर्वा ब्र्ह्मैक्य िारा प्रशतशष्ठत ज्ञान है। (शनरूपण-XIV.21, 27)

श्री भगवानुवाच

प्रजिाडत यदा कामान् सवामन् पार्थम मनोगतान् ।
आिने्येविना तुष्ट्ः न्द्रथर्थतप्रज्ञस्तदोच्यते ।। ५५ ।।

बि्ार्थम : प्रिहाशत-त्याग देता है, यदा–ि ब, कामान् इच्छाओं ंको, सवाथन् सभी, पार्थ- हे पार्थ, मनोगतान् - मन की, आत्मशन-आत्मा में, एव-ही, आत्मना आत्मा से, तुष्टः सनुतुष्ट, म्भरुतप्रज्ञः - म्भरूर बुम्भद्ध वाला, तदा-तब, उच्यते-कहा िाता है।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : हे पार्थ, िब मनुष्य मन की सवथ कामनाओं ंका त्याग कर देता है और आत्मा के िारा आत्मा में ही सनुतुष्ट रहता है, तब वह म्भरुतप्रज्ञ अर्ाथत् म्भरूर बुम्भद्ध वाला कहलाता है।

व्याख्या : इस श्लोक में भगवान् कृष्ण अिुथन के प्रश्न के प्रर्म भाग का उत्तर देते हैं।

यशद शकसी व्यम्भक् को शमश्री शमल िाये, तो क्या वह गिु की चाह करेगा ? कदाशप नहीं। ं यशद कोई आत्मा का आनन्द प्राप्त कर सकता है, तो क्या वह ऐम्भिक सुखों ंकी लालसा करेगा? नहीं, ं कदाशप नहीं। ं आत्मा में ही सनुतुष्ट महात्मा को, शिसकी बुम्भद्ध म्भरूर हो चुकी है, संसार के समस्त ऐश्वयथ भी व्यर्थ लगेंगे।

दुःखेष्वनुडिग्नमनाः सुखेषु डवगतसृ्पिः ।
वीतरागभयक्रोधः न्द्रथर्थतधीमुमडनरुच्यते ।।५६ ।।

बि्ार्थम : दुःखेषु दुःखों ंमें, अनुशिममनाः-अशवचशलत मन वाला, सुखेषु सुखों ंमें, शवगतसूपृहः- लालसा रशहत, वीतरागभयक्रोधः राग, भय, क्रोध से मुक्, म्भरुतधीः- म्भरूर बुम्भद्ध वाला, मुशनः - मुशन, उच्यते-कहा िाता है।

अनुवाद : शिसका मन कष्टों ंसे शवचशलत नहीं ंहोता, िो ऐम्भिक सुखों ंकी लालसा से मुक् है, िो आसम्भक्, भय और क्रोध से भी मुक् है, वह मुशन म्भरूर बुम्भद्ध वाला कहलाता है।

व्याख्या : भगवान् कृष्ण म्भरूर बुम्भद्ध वाले मुशन के लक्षण बताते हुए अिुथन के प्रश्न के दूसरे भाग का उत्तर देते हैं।

म्भरुतधी मुशन का मन शवपशत्त काल में अधीर नहीं ंहोता। वह आध्याम्भत्मक ताप (शरीर में होने वाले रोगों ं से), अशधदैशवक ताप (मेघगिथन, शवद्युत, तूफान, बाढ़ आशद) और अशधभौशतक ताप (शेर, चीता, सपथ, शबचूछ्र आशद) से अर्ाथत् तीनों ंतापों ंसे प्रभाशवत नहीं ंहोता । समृद्ध अवस्र्ा में वह इम्भिय-सुख की कामना नहीं ंकरता। (शनरूपण-IV.10)

यः सवमत्रानडभसे्निस्तत्तत्प्राप्य िुभािुभम् ।
नाडभनन्दडत न िेडष्ट् तस्य प्रज्ञा प्रडतडिता ।।५७ ।।

बि्ार्थम : यः िो, सवथत्र-सभी स्र्ान, अनशभसे्नेहः अनासक्, तत्-तत्-वह-वह, प्राप्य-प्राप्त कर के, शुभाशुभम् - शुभ और अशुभ, न नहीं, ं अशभनन्दशत-प्रसन्न होता है, न-नहीं, ं िेशष्ट–ि ष करता है, तस्य-उसकी , प्रज्ञा-बुम्भद्ध, प्रशतशष्ठता-म्भरूर है।

अनुवाद : ो सवथत्र, सब स्ान पर आसम्भक् रशहत है, शुभ अर्वा अशुभ फल शमलने पर ो न तो प्रसन्न होता है और न ही दु:खी होता है, उसकी प्रज्ञा प्रशतशष्ठत है (म्भस्र है) ।

व्याख्या : मुशन के पास मन का समत्व होता है। न तो सुख आने पर वह प्रसन्न होता है और न ही दु:ख आने पर शवचशलत होता है। आत्मा में प्रशतशष्ठत होने के कारण वह (संसार से) उदासीन रहता है। उसे अपने शरीर अर्वा ीविन से भी अनुराग नहीं ंहोता, क्योंशंक वह तो ब्ह्म में म्भस्त रहता है। कोई उसके शलए अच्छा करे, तो वह उसकी प्रशंसा नहीं ंकरता और बुरा करने वाले से वह िेष भी नहीं ंकरता। "म्भस्तधी मुशन कैसे बोलता है", अिुथन के प्रश्न का भगवान् ने इस प्रकार उत्तर शदया।

यदा संरिते चायं कूमोऽङ्गानीव सवमिः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्ेथेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रडतडिता ।।५८ ।।

बिार्थम : यदा–ब, संहरते-संहरण कर लेता है (समेट लेता है), च-और, अयम्यह, कूमथ:-कछुआ, अङ्गाशन अङ्गों ं को, इव-समान, सवथशः सब ओर से, इम्भियाशण-इम्भियााँ, इम्भियार्ेभ्यः - शवषयों ंसे, तस्य-उसकी, प्रज्ञा-बुम्भद्ध, प्रशतशष्ठता-म्भस्र ।

अनुवाद : चारों ंओर से अपने अङ्गों ंका संहरण कर लेने वाले कछुए की भााँशत िब कोई पुरुष इम्भियों ंके शवषयों ं से अपनी इम्भियों ंको शवमुख कर लेता है, तब वह म्भस्र बुम्भद्ध वाला, प्रशतशष्ठत प्रज्ञा वाला कहलाता है।

व्याख्या : इम्भियों ंका संहरण प्रत्याहार है। बाह्य शवषयों ंकी ओर भागना मन की स्वाभाशवक वृशत्त है। योगी पुनः पुनः मन को उसके शवषयों ंसे हटा कर आत्मा में म्भस्र करता है। प्रत्याहार की शम्भक् से युक् योगी शकसी सामूशहक स्ान पर भी इम्भियों ंको अन्तमुथख कर के पलक झपकते ही समाशध में प्रवेश कर सकता है। वह शकसी भी प्रकार के कोलाहल अर्वा ध्वशनयों ंसे शवचशलत नहीं ंहोता। युद्धके्षेत्र में भी प्रत्याहार िारा वह अपने कि, आत्मा में शवश्राम ले सकता है। प्रत्याहार का अभ्यासी संसार के शलए मृत है। बाह्य ऊशमथयों ं(तरङ्गों)ं से वह प्रभाशवत नहीं ंहोगा। आत्म-शम्भक् से वह शकसी भी समय अपनी इम्भियों ंको पूणथ रूप से वशीभूत करने में समर्थ है। वे तो मानो उसकी आज्ञाकारी सेशवकाएाँ हैं अर्वा साधन मात्र हैं।

डवषया डवडनवतमते डनरिाारस्य देडिनः ।
रसवजम रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा डनवतमते ।।५९ ।।

बिार्थम : शवषयाः - इम्भियों ंके शवषय, शवशनवतथन्ते-शवमुख हो िाते हैं, शनराहारस्य-शितेम्भिय के, देशहनः-उस पुरुष के, रसविथम् - आसम्भक् को पीछे छोिते हुए (रस का त्याग), रस:-रस (आनन्द), अशप-भी, अस्य-उसके, परम् - उतृकृष्ट, दृष्ट्वा-देख कर, शनवतथते-समाप्त हो िाता है।

अनुवाद : शितेम्भिय पुरुष के शवषय तो शनवृत हो िाते हैं; शकनुतु उन शवषयों ंमें आसम्भक् बनी रहती है। म्भस्तप्रज्ञ पुरुष की तो आसम्भक् भी ब्ह्मसाक्षात्कार कर के शनवृत्त हो िाती है।

व्याख्या : आत्म-ज्ञान ही सूक्ष्म वासनाओं ं(सुप्त वृशत्तयों)ं को पूणथ रूप से नष्ट कर सकता है। सूक्ष्म कामनाओं,ं आसम्भक्यों ंऔर शवषयों ंकी लालसा भी आत्म-ज्ञान होने पर शून्य हो िाती है। कठोर तप िारा इम्भियों ंके शवषय परावती हो िाते हैं; परनुतु महात्मा के हृदय में सुप्त रूप से उनका स्वाद, उनकी आकाङ्क्षा पुनरशप रह ही िाती है।

यततो ह्यडप कौतेय पुरुषस्य डवपडश्चतः ।
इन्द्रियाडण प्रमार्थीडन िरन्द्रत प्रसभं मनः ।।६० ।।

बि्ार्थम : यततः यत्न करते हुए, शह-शनशश्चत रूप से, अशप-भी, कौने्तेय-हे कुन्तीपुत्र, पुरुषस्य मनुष्य की, शवपशश्चतः बुम्भद्धमान् की, इम्भियाशण-इम्भियााँ, प्रमार्ीशन-प्रबल, हरम्भन्त-हर लेती हैं, प्रसभम् बलपूवथक, मनः मन ।

अनुवाद : हे अिुथन, सतत यत्न करते रहने पर भी ये चंचल इम्भियााँ बुम्भद्धमान् पुरुष के मन को हठात् हर लेती हैं।

व्याख्या : साधक को चाशहए शक प्रर्म तो वह अपनी इम्भियों ंको संयत करे । इम्भियों ंको घोिे की संज्ञा दी िाती है। घोिे को अपने पूणथ वश में करने की सामथ्यथ होने पर ही तुम अपने गन्तव्य तक पहुाँच सकते हो। असंयत घोिे तो तुम्हें मागथ में ही नीचे शगरा देंगे। इसी प्रकार से चंचल इम्भियााँ तुम्हें इम्भिय-शवषयों ंके भाँवर में फाँसा कर तुम्हारे आध्याम्भत्मक लक्ष्य-मोक्ष और शाश्वत शाम्भन्त के परम धाम से पतन करा देंगी। (शनरूपण -III.33; V.14)

ताडन सवामडण संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वि डि यसे्येन्द्रियाडण तस्य प्रज्ञा प्रडतडिता ।।६१ ।।

बि्ार्थम : ताशन-उन, सवाथशण-सब को, संयम्य-वशीभूत कर के, युक्ः लगा कर, आसीत -बैठना चाशहए, मत्परः- मुझ में ध्यान लगा कर, वशे-वश में, शह-शनश्चयेन, यस्य-शिसकी, इम्भियाशण-इम्भियााँ, तस्य-उसकी, प्रज्ञा-बुम्भद्ध, प्रशतशष्ठता- म्भस्र्र है।

अनुवाद : इम्भियों ंको वश में कर के मुझ में ध्यान लगा कर म्भस्र्रतापूवथक बैठना चाशहए; क्योंशंक बुम्भद्ध उसी की म्भस्र्र होती है शिसकी इम्भियााँ संयत हैं।

व्याख्या : शितेम्भिय बन कर शान्त मन से मुझ में शचत्त एकाग्र कर के आसन में बैठना चाशहए। इस प्रकार प्रशतशष्ठत योगी शिसने अपनी इम्भियों ंको वश में कर शलया है, शनस्सने्देह अत्यन्त म्भस्र्र है। वह आत्मा में म्भस्र्त है। श्री शंकराचायथ ने 'आसीत मत्परः' की व्याख्या इस प्रकार की है- "उसे यह ध्यान करते हुए बैठना चाशहए शक 'मैं उस (परमात्मा) से पृर्क् नहीं ंहाँ।" (शनरूपण -11.64)

ध्यायतो डवषयानुंपुंसः सङ्गसे्तेषूपजायते ।
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽडभजायते ।।६२ ।।

बि्ार्थम : ध्यायतः-शचन्तन करते हुए, शवषयान् - शवषयों ंका, पुंसः मनुष्य का, सङ्गः- आसम्भक्, तेषु उनमें, उपिायते-उत्पन्न होती है, सङ्गात् आसम्भक् से, सञ्जायते–िन्म लेती है, कामः-इच्छा, कामात् इच्छा से, क्रोधः क्रोध, अशभिायते - प्रकट होता है।

अनुवाद : शवषयों ंका शचन्तन करने पर उनके प्रशत आसम्भक् उत्पन्न होती है। आसम्भक् से इच्छा शवकशसत होती है और इच्छा से क्रोध उत्पन्न होता है।

व्याख्या : िब कोई मनुष्य शकसी सुन्दर, सुखद, मनोहारी वसुतु का शचन्तन करता है, तो उसके प्रशत उसके मन में आसम्भक् उत्पन्न होती है और उसे प्राप्त करने योग्य समझ कर वह उसे पाने की सृपृहा (अशभलाषा) करता है। उस पर अशधकार पाने का पूणथ प्रयास कर के वह उसकी प्राम्भप्त हेतु संघषथ करता है। शकसी कारणवश इच्छा पूणथ न

होने पर वह क्रोशधत हो उठता है। वसुतु-प्राम्भप्त में कोई उसकी राह में बाधा िाले, तो वह उते्तेशित हो उठता है, उससे िन् करता है और उसका वैरी हो िाता है। (शनरूपण - 11.64)

क्रोधिावडत सम्मोिः सम्मोिाथमृडतडवरमः ।
सृमृडतरंादि् बुन्द्रद्धनािो बुन्द्रद्धनािात्प्रणश्यडत ।।६३ ।।

बि्ाथर्म : क्रोधात् -क्रोध से, भवशत-होता है, सम्मोहः मोह, सम्मोहात् -मोह से, सूमृशतशवभ्रमः सूमृशतनाश, सूमृशतभं्रशात् सूमृशतनाश से, बुम्भद्धनाशः-शववेक का नाश, बुम्भद्धनाशात् - शववेक नष्ट होने पर, प्रणश्यशत नष्ट हो िाता है।

अनुवाद : क्रोध से मूढ़भाव (मोह) उत्पन्न होता है, मोह से सूमृशतलोप होता है, सूमृशतलोप से बुम्भद्धनाश और बुम्भद्धनाश से मनुष्य का ही शवनाश हो िाता है।

व्याख्या : क्रोध मोह का कारण है। क्रोध आने पर व्यम्भक् सदसद शववेक खो बैठता है। वह अपनी इच्छा के अनुरूप बोलेगा और कायथ करेगा। भावुकता और आसम्भक् उसके शवनाश का कारण बन िायेंगी और वह अज्ञानी िैसा व्यवहार करेगा।

रागिेषडवयुकै्तैसुतु डवषयाडनन्द्रियैश्चरन् ।
आिवश्यैडवमधेयाि प्रसादमडधगच्छडत ।।६४ ।।

बि्ाथर्म : रागिेषशवयुकै्ः राग (आसम्भक्) और िेष से मुक्, तु-शकनु्तु, शवषयान् शवषयों को, इम्भियैः इम्भियों के िारा, चरन् -शवचरण करता हुआ (भोगता हुआ), आत्मवश्यैः संयत, शवधेयात्मा संयमी पुरुष, प्रसादम् -शाम्भन्त, अशधगच्छशत-प्राप्त करता है।

अनुवाद : शकनु्तु संयमी पुरुष अपनी इम्भियों को वश में कर के, आसम्भक् और शवरम्भक् से मुक् रह कर शवषयों में शवचरण करता हुआ भी अर्ाथत् शवषयों को भोगता हुआ भी परमात्मा के प्रसाद को प्राप्त करता है।

व्याख्या : मन और इम्भियाँ प्रकृशतवश ही आसम्भक् और शवरम्भक् की दो धाराओं से िुडे हुए हैं। यही कारण है शक मन और इम्भियों को कुछ शवषयों से तो लगाव है और अन्य कशतपय शवषयों के प्रशत शवरक् भाव है। शकनु्तु एक अनुशाशसत मनुष्य अपने मन और इम्भियों को वशीभूत कर के ही शवषयों में शवचरता है। राग-िेष से ऊपर उठ कर आत्मा के प्रभुत्व में वह शाश्वत शाम्भन्त प्राप्त करता है। अनुशाशसत आत्मा की इच्छा-शम्भक् प्रबल होने के कारण मन और इम्भियाँ उसके आशधपत्य में रहती हैं। अनुशाशसत आत्मा, पे्रम और घृणा को त्याग कर केवल उन्हीं शवषयों का भोग करता है िो शरीर को चलाने के शलए अशनवायथ है। वह शास्त्र िारा शनशषद्ध शवषयों का उपभोग नहीं करता।

इस श्लोक में भगवान् कृष्ण अिुथन के चतुर्थ प्रश्न का उत्तर देते हैं-"म्भस्तप्रज्ञ कैसे शवचरण करता है?" (शनरूपण-III.7, 19, 25; XVIII.9)

प्रसादे सवमदुःखानां िाडनरस्योपजायते ।
प्रसिचेतसो ह्याशु बुन्द्रद्धः पयमवडतिते ।।६५ ।।

बि्ाथर्म : प्रसादे-शाम्भन्त में, सवथदुःखानाम् -सब दुःखों का, हाशनः-शवनाश, अस्य-उसके, उपिायते-हो िाता है, प्रसन्नचेतसः-प्रसन्न मन वाले, शह-क्योंशक, आशु-शीघ्र, बुम्भद्धः - बुम्भद्ध, पयथवशतष्ठते-म्भस्थर हो िाती है।

अनुवाद : उस शाम्भन्त में सब दुःख नष्ट हो िाते हैं; क्योंशंक प्रशान्त मन वाले की बुम्भद्ध शीघ्र ही आत्मस्त्र् (आत्मा में म्भस्र्र) हो िाती है।

व्याख्या : मन की शाम्भन्त होने पर शवषयों ंके पीछे भाग-दौि समाप्त हो िाती है। योगी को अपनी शववेक-बुम्भद्ध पर पूणथ अशधकार (प्रभुत्व) होता है। बुम्भद्ध आत्मा में म्भस्र्त हो िाती है। यह अत्यन्त म्भस्र्र हो िाती है। शरीर और मन के कष्ट समाप्त हो िाते हैं।

नान्द्रस्त बुन्द्रद्धरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः िान्द्रतरशान्तस्य कुतः सुखम् ।। ६६ ।।

शब्दार्थ : न-नहीं, ं अम्भस्त-है, बुम्भद्धः बुम्भद्ध, अयुक्स्य-अम्भस्र्र पुरुष की, ननहीं, ं च-और, अयुक्स्य-अम्भस्र्र की, भावना-ध्यान, ननहीं, ं च-और, अभावयतः- भावना रशहत (मनुष्य को), शाम्भन्तः शाम्भन्त, अशान्तस्य-शिसे शाम्भन्त न हो, कुतः-कहााँ से, सुखम् -सुख ।

अनुवाद : अयुक् मनुष्य में बुम्भद्ध और भावना का अभाव होता है। भाव के अभाव में न तो ध्यान एकाग्र हो सकता है और न ही शाम्भन्त शमल सकती है। शाम्भन्त के अभाव में सुख की कामना कैसे कर सकते हैं?

व्याख्या : ध्यानस्त्र् हुए शबना व्यम्भक् आत्म-ज्ञान नहीं ंप्राप्त कर सकता । अशनश्चयाम्भत्मका बुम्भद्ध से युक् मनुष्य ध्यानाभ्यास नहीं ंकर सकता। न तो उसमें आत्म-ज्ञान की तिप होती है और न ही मोक्ष के शलए उत्कट आकाङ्क्षा । ध्यान न करने वाला व्यम्भक् शाम्भन्त प्राप्त नहीं ंकर सकता और अशान्त व्यम्भक् सुख प्राप्त नहीं ंकर सकता।

इच्छा और तृष्णा (ऐम्भिक शवषयों ंकी शपपासा) शाम्भन्त की शत्रु है। भौशतक सुखों ंकी लालसा करने वाला शंकंशचन्मात्र भी सुख की अशभलाषा नहीं ंकर सकता । मन तो सदा अशान्त है, शवषयों ंकी ओर दौि रहा है। केवल इस तृष्णा के शान्त होने पर ही वास्तशवक शाम्भन्त का सुख प्राप्त शकया िा सकता है। तभी मन एकाग्र होगा, ध्यान में आनन्द आयेगा और आत्मा में म्भस्र्शत होगी।

इन्द्रियाणां डि चरतां यन्मनोऽनुडवधीयते ।
तदस्य िरडत प्रज्ञां वायुनार्वडमवाम्भडस ।।६७ ।।

शब्दार्थ : इम्भियाणाम् - इम्भियों ंमें, शह-शनश्चय से, चरताम् - शवचरण करते हुए, यत्-िो, मनः-मन, अनुशवधीयते- अनुसरण करता है, तत् - उसे, अस्य-उसकी, हरशत-हर लेती है, प्रज्ञाम् - शववेक-शम्भक् को, वायुः- वायु, नावम् नाव को, इव-समान, अम्भशसि-िल में।

अनुवाद : इतस्ततः भटकती इम्भियों ंका अनुगामी मन (मनुष्य की) बुम्भद्ध का उसी प्रकार हरण कर लेता है िैसे िल में पिी नौका को वायु (बहा) ले िाता है।

व्याख्या : इम्भियों ंके सङ्ग रमण करने वाला और सतत शवषय-वासनाओं ंका शचन्तन करने वाला मन मनुष्य के शववेक को पूणथतया नष्ट कर देता है। शिस प्रकार वायु नाव को अपने मागथ से दूर ले िाता है, उसी प्रकार मन साधक को आध्याम्भत्मक पर् से शवचशलत कर के भौशतक शवषयों ंकी ओर उन्मुख कर देता है।

तस्माद्यस्य मिाबािो डनगृिीताडन सवथशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रडतडिता ।। ६८ ।।

ब्शर्थम : तस्मात् - इसशलए, यस्य-शिसकी, महाबाहो -पराक्रमी अिुथन, शनगृहीताशन-संयत कर ली गयी हों,ं सवथशः- पूणथतया, इम्भियाशण-इम्भियााँ, इम्भियार्थेभ्यः- इम्भिय-शवषयों ंसे, तस्य-उसकी, प्रज्ञा-ज्ञान, प्रशतशष्ठता-म्भस्थर ।

अनुवाद : अतः हे अिुथन, ज्ञान उसका ही म्भस्थर है शिसकी इम्भियााँ शवषयों ंसे पराङ्मुख और संयत हैं।

व्याख्या : इम्भियााँ पूणथ रूप से संयत हों,ं तो मन वासनाओं ंके घने िंगल में उन्मत्त हो कर शवचरण नहीं ंकरता । वात रशहत स्थान पर दीपक की भााँशत यह म्भस्थर हो िाता है। तब योगी आत्मस्थ हो िाता है और उसकी बुम्भद्ध म्भस्थर हो िाती है। (शनरूपण-।II.7)

या डनिा सवमभूतानां तस्यां जागडतम संयमी ।
यस्यां जाग्रडत भूताडन सा डनिा पश्यतो मुनेः ।।६९ ।।

ब्शर्थम : या िो, शनशा-राशत्र, सवथभूतानाम् -सब प्राशणयों ंकी, तस्याम् उसमें, िागशतथ–िागता है, संयमी-संयत पुरुष,
यस्याम् - शिसमें, िाग्रशत–िागते हैं, भूताशन-प्राणी, सा-वह, शनशा-राशत्र, पश्यतः क्रान्तदशी (तत्त्वदशी) के शलए, मुनेः मुशन के शलए।
अनुवाद : समस्त प्राशणयों ंके शलए िो राशत्र है, उसमें शितेम्भिय पुरुष िागता है। शिसमें और प्राणी िागते हैं, वह आत्म-शनरीक्षण करने वाले मुशन के शलए राशत्र है।

व्याख्या : सांसाररक प्रपंच में उलझे हुए व्यम्भक्त के शलए िो वास्तशवकता है, वह मुशन के शलए भ्रम है और िो मुशन के शलए वास्तशवकता है, वह संसारी के शलए भ्रम है। मुशन आत्म-शनष्ठ होता है। यही उसका शदन है अर्ाथत् आत्मा में म्भस्थशत। वह भौशतक पररवेश से अनशभज्ञ रहता है। वह उसके शलए राशत्र है। सामान्य व्यम्भक्त अपनी सत्य प्रकृशत से अनशभज्ञ है। आत्मा में म्भस्थशत उसकी राशत्र है। वह तो ऐम्भिक शवषयों ंका सुख-भोग करता रहता है। यही उसका शदन है। उसके शलए आत्मा का कोई अम्भस्तत्व नहीं ंहै। मुशन के शलए शवश्व का कोई अम्भस्तत्व नहीं ंहै।

आत्म-ज्ञान से शून्य होने के कारण भौशतक िगत् के लोग घोर अन्धकार में पडे हैं। उनके शलए िो अन्धकार है, शितेम्भिय के शलए वह प्रकाश है। आत्मा और ब्रह्म संसार के शलए राशत्र के समान हैं; शकन्तु ज्ञानी तो उसमें पूणथतः िागृत है। वह प्रकाशों ंके प्रकाश का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर रहा है। वह ज्योशतमथय हो गया है। आत्मज्ञानी हो गया है।

आपूयमाणमचलप्रडतिं
समुद्रमापः प्रडविन्द्रत यित् ।
तित्कामा यं प्रडविन्द्रत सवे
स िान्द्रतमाप्नोडत न कामकामी ।।७० ।।

ब्शर्थम : आपूयथमाणम् -सवथतः पररपूणथ, अचलप्रशतष्ठम् -मयाथशदत, म्भस्थर, समुिम् -सागर, आपः- िल, प्रशवशम्भन्त-प्रवेश करते हैं, यित्–िैसे, तित्-वैसे, कामाः इच्छाएाँ, यम् - शिसमें, प्रशवशम्भन्त-प्रवेश करती है सवे-सब, सः वह, शाम्भन्तम् - शाम्भन्त को, आप्नोशत - प्राप्त करता है,न-नहीं,ं कामकामी-कामनाओं ंका इच्छुक ।

अनुवाद : शिस प्रकार सब ओर से पररपूणथ अचल, म्भस्र सागर में िला (उसे कुषुब्ध शकये शबना) प्रवेश कर िाते हैं, उसी प्रकार शिस मनुष्य में सब कामनाएँ उसे शवचशलत शकये शबना प्रवेश कर िाती हैं, वह शाम्भन्त को प्राप्त करता है, कामनाओं ंका इचु्छुक नहीं।ं

व्याख्या : सब ओर से िल से पररपूणथ समुि शिस प्रकार मयाथदा का उलं्लघन नहीं ंकरता, म्भस्र, शान्त बना रहता है, उसी प्रकार स्व-स्वरूप में म्भस्त पुरुष उसमें सब ओर से प्रवेश करने वाली कामनाओं ंसे प्रभाशवत नहीं ंहोता। ऐसा म्भस्तप्रज्ञ पुरुष ही शाम्भन्त और मोक्ष को प्राप्त करता है। शवषयों ंके भोग में आनन्द लेने वाला अर्वा कामेचु्छुक व्यम्भक् कदाशप शाम्भन्त प्राप्त करने का स्वप्न नहीं ंदेख सकता। (शनरूपण-XVIII. 53, 54)

डविाय कामान्यः सवामनुपुमांश्चरडत डनःसृ्पिः ।
डनममो डनरहंकारः स िान्द्रतमडधगच्छडत ।।७१ ।।

बि्ार्थम : शवहाय-त्याग कर, कामान्-इच्छाओं ंको, यः िो, सवाथन् -सब, पुमान् मनुष्य, चरशत- शवचरण करता है, शनःसृ्पहः-कामना रशहत, शनमथमः अहंभाव से शून्य, शनरहंकारः- अशभमान रशहत, सः- वह, शाम्भन्तम् - शाम्भन्त (को), अशधगच्छशत-प्राप्त करता है ।

अनुवाद : समस्त इच्छाओं ंका पररत्याग कर के, लालसा रशहत, ममत्व भाव से रशहत व अहंकारशून्य मनुष्य ही शाम्भन्त प्राप्त कर सकता है।

व्याख्या : आप्तकाम पुरुष शिसने सब इच्छाएँ त्याग दी हैं, िो 'मैं' और 'मेरा' भाव से ऊपर उठ गया है, िो िीवन की अशनवायथ आवश्यकताओं ंमें ही सनु्तष्ट है और उनकी भी शचन्ता नहीं ंकरता अर्वा उन आवश्यकताओं ंके प्रशत भी पूणथ रूप से अनासक् हो िाता है, वह शाश्वत शाम्भन्त अर्वा मोक्ष का अशधकारी होता है। (शनरूपण—II.55)

एषा ब्राह्मी न्द्रथर्थडतः पार्थम नैनां प्राप्य डवमुह्यडत ।
न्द्रथर्थत्वाऽस्यामतकालेऽडप ब्रह्मडनवामणमृच्छडत ।।७२ ।।

बि्ार्थम : एषा-यह, ब्ा्ह्मी-ब्ा्शिक (आध्याम्भत्मक), म्भस्र्शतः- अवस्ा्, पार्थ-हे पार्थ, न नहीं,ं एनाम्-इसे, प्राप्य-प्राप्त कर के, शवमुह्यशत-मोशहत होता है, म्भस्र्त्वा-म्भस्त हो कर, अस्याम् - इसमें, अन्तकाले-मृतुयु के समय, अशप-भी, ब्र्ह्मशनवाथणम् -ब्र्ह्म के सार् एकत्व, ऋच्छशत -प्राप्त करता है।

अनुवाद : हे पार्थ (अिुथन), यही ब्ा्ह्मी म्भस्र्शत (शाश्वत शदव्य अवस्ा्) है। इसे प्राप्त करने पर कोई मोह में नहीं ं फाँसता । इसमें प्रशतशष्ठत हो कर मनुष्य अन्त काल (मृतुयु के समय) में ब्र्ह्मैक्य (शनवाथण) प्राप्त करता है।

व्याख्या : पूवथ श्लोक में वशणथत अवस्ा्-सवथस्व त्याग और ब्र्ह्म में म्भस्र्शत ही ब्ा्ह्मी म्भस्र्शत है। इस अवस्ा् को प्राप्त करने के उपरान्त व्यम्भक् मोशहत नहीं ंहोता । मृतुयु के समय भी यशद वह इसी अवस्ा् में रहता है, तो मोक्ष प्राप्त करता है। यह कहना अशनवायथ नहीं ंशक िीवन-भर ब्र्ह्मभाव में म्भस्त रहने वाला व्यम्भक् ब्ा्ह्मी म्भस्र्शत अर्वा ब्र्ह्मशनवाथण की प्राम्भप्त करता है। (शनरूपण-VIII.5, 6)

शवद्यारण्य मुशन पंचदशी में कहते हैं शक यहाँ 'अन्तकाल' का अशभप्राय उस क्षण से है िो अशवद्यानाश अर्वा देह और देही के परस्पर न्यास की समाम्भप्त का है।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषतु्सु

ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
सांख्ययोगो नाम डितीयोऽध्यायः ।।
।। इडत सांख्ययोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर्थ तृतीयोऽध्यायः

कमथयोगः

अजुमन उवाच

ज्यायसी चेत्कममणस्ते मता बुन्द्रद्धजमनादमन ।
तन्द्रंतं्क कममडण घोरे मां डनयोजयडस किेव ।।१ ।।

बि्ार्थम : ज्यायसी-श्रेष्ठतर, चेत्-यशद, कमथणः-कमथ से, ते-आपके िारा, मता-समझी िाती है, बुम्भद्धः बुम्भद्ध, िनादथन-हें िनादथन, तत्-शफर, शकम् -क्यों,ं कमथशण-कमथ में, घोरे-भयंकर, माम्-मुझे, शनयोियशस लगाते हो, केशव-हे केशव ।

अजुमन ने किा

अनुवाद : हे कृष्ण, यशद आप सोचते हैं शक कमथ से ज्ञान श्रेष्ठतर है तो हे केशव, मुझे इस भयानक कमथ के शलए क्यों ं प्रेररत कर रहे हैं?

व्याख्या : अध्याय २ के श्लोक ४९, ५० और ५१ में भगवान् कृष्ण ने ज्ञानयोग के सन्दभथ में उत्कृष्ट वचन कहे हैं। वे पुनः अिुथन को युद्ध के शलए कह रहे हैं। इसी कारण से अिुथन भ्रशमत हो रहा है।

व्याडमश्रेणेव वाक्येन बुंद्ध्ं मोियसीव मे ।
तदेकं वद डनडश्चत्य येन श्रेयोऽमिापुनुयाम् ।।२ ।।

बि्ार्थम : व्याशमश्रेण-सम्भ्रशमत करने वाली, इव-मानो, वाक्येन-वाणी के िारा, बुम्भद्धम् बुम्भद्ध को, मोहयशस-मोशहत कर रहे हो, इव-मानो, मे—मेरी, तत्-वह, एकम् - एक, वद-बोलो, शनशश्चत्य-शनश्चय करके, येन-शिससे, श्रेयः आनन्द
(कल्याण), अहम् -मैं, आपुनुयाम् - प्राप्त करूँ ।

अनुवाद : भ्रशमत करने वाली आपकी इस प्रकट वाणी से मानो आप मेरी बुम्भद्ध को भ्रम में िाल रहे हैं। इसशलए शनशश्चत रूप से उस एक वचन को मेरे शलए कहें िो मेरे शलए कल्याणप्रद हो, शिससे मैं आनन्दमग्न हो सकूाँ।

व्याख्या : अिुथन भगवान् कृष्ण से कहते हैं- "ज्ञान अर्वा कमथ, इन दोनों ंमें से मुझे एक का उपदेश दीशिए, शिससे मैं सविो कल्याण, आनन्द अर्वा मोक्ष का अशधकारी बन सकूाँ।" (शनरूपण-V.1)

श्री भगवानुवाच

लोकेऽन्द्रस्मन्द्रन्ब्डिवधा डनिा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कममयोगेन योडगनाम् ।।३ ।।

बि्ार्थम : लोके-लोक में, अम्भस्मन् - इस (में), शिशवधा-दो प्रकार की, शनष्ठा-आस्र्ा, पुरा-पूवथकाल में, प्रोक्ा-कही गयी, मया-मेरे िारा, अनघ हे शनष्पाप, ज्ञानयोगेन -ज्ञानयोग के िारा, सांख्यानाम् - ज्ञाशनयों ंकी, कमथयोगेन कमथयोग के िारा, योशगनाम् - योशगयों ंकी।

श्री भगवान् ने कहा

अनुवाद : हे अनघ (शनष्पाप), इस लोक में, पूवथकाल में मैंने दो प्रकार की शनष्ठा का उपदेश शदया र्ा। उनमें सांख्य शनों ं(ज्ञानी अर्वा शचन्तनशील) की शनष्ठा तो ज्ञान-मागथ में है और योशगयों ंकी शनष्ठा कमथ-मागथ में है।

व्याख्या : सांख्यों ंका ज्ञानयोग भगवान् कृष्ण के िारा अध्याय २ के श्लोक ११ से ३८ और कमथयोग ४० से ५३ में वशणथत है।

पुरा प्रोक्ा का यह अशभप्राय भी हो सकता है शक 'सृशष्ट के आशदकाल में मैंने इन दोनों ंप्रकार के योगों ंका ज्ञान संसार को शदया र्ा।

साधन चतुष्टय और तीं सूक्ष्म बुम्भद्ध तर्ा साहशसक मेधा से युक् व्यम्भक् ही ज्ञान-मागथ (योग) का अनुसरण कर सकते हैं। कमथशील व्यम्भक् कमथयोग के शलए उपयुक् है।

साधन चतुष्टय हैं-शववेक, वैराग्य, षट्सम्पत् और मुमुकुषुत्व । षट् सम्पत् हैं-शम (मनोशनग्रह), दम (इम्भियशनग्रह), शतशतक्षा (सहनशीलता), उपरशत (शवषयों ंसे शवमुखता), श्रद्धा और समाधान ।
एक काल में दो योगों ंका अभ्यास सम्भव नहीं ंहै। कमथयोग शकसी लक्ष्य की प्राम्भप्त का साधन है। यह हृदय को पशवत्र करके साधक को ज्ञान-प्राम्भप्त के योग्य बनाता है। हृदय पशवत्र होते ही कमथयोगी को ज्ञानयोग अपना लेना चाशहए। शकसी भी प्रकार की बाह्य सहायता के शबना ज्ञानयोग साधक को सीधा उसके लक्ष्य तक पहुाँचाता है। (शनरूपण - V.5)

न कममणामनारम्भिौष्कम्यम पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव डसन्द्रं्ध समडधगच्छडत ।।४।।

बि्ार्थम : न-नहीं,ं कमथणाम् -कमों के, अनारम्भात् - प्रारम्भ न करने से, नैष्कम्यथम् -कमथ से मुम्भक्, पुरुषः- मनुष्य, अशु्नुते-प्राप्त करता है, न-नहीं,ं च-और, संन्यसनात् - त्याग से, एव-ही, शसम्भिद्धम् -शसम्भिद्ध (पूणथता), समशधगच्छशत - प्राप्त करता है।

अनुवाद : कोई भी मनुष्य कमथ के न करने से नैष्कम्यथता (शिसमें मनुष्य पर कमथ का कोई प्रभाव ही न प़िे, ऐसी अवस्ा) को प्राप्त नहीं ंहो सकता और न ही कमथ से संन्यास ले कर अर्ाथत् कमथ का त्याग कर के वह पूणथत्व को प्राप्त कर सकता है।

व्याख्या : नैष्कम्यथम् और शसम्भिद्ध पयाथयवाची शब्द हैं। नैष्कम्यथता अर्वा पूणथत्व को प्राप्त करके ज्ञानी पुरुष अपनी वास्तशवक प्रकृशत सम्भिदानन्द (सत्-शचत्-आनन्द) स्वरूप में म्भस्त होता है। शकसी लक्ष्य की पूशतथ हेतु कमथ की न तो उसकी कोई कामना होती है और न आवश्यकता। वह आप्तकाम होता है।

आत्म-ज्ञान के िारा मनुष्य शनष्कमथण्यता की अवस्ा को प्राप्त करता है। कमथत्याग कर के कोई मनुष्य केवल शान्त हो कर बैठ िाये, तो ऐसा नहीं ंहै शक उसने इस उतृ्कष्ट अवस्ा को प्राप्त कर शलया है। प्रपंचानुराग में फाँसा उसका मन तो कई प्रकार की यिोनाएँ बना रहा होगा। शवचार ही वास्तव में कमथ है। सकारात्मक शवचार, तृष्णा, इच्छा-अशनच्छा से मुक् ज्ञानी पुरुष ही नैष्कम्यथता की अवस्ा को पा सकता है।

आत्म-ज्ञान के शबना मात्र कमथ के त्याग िारा पूणथता अर्वा मोक्ष-प्राम्भप्त असम्भव है। (शनरूपण - XVIII.49)

न डि कडश्चत्क्षणमडप जातु डतित्यकममकृत् ।
कायमते ह्यविः कमम सवमः प्रकृडतजैगुमणैः ।।५।।

बि्ार्थम : न शह-नहीं,ं कशश्चत् -कोई, क्षणम् -क्षण, अशप-भी, िा तु-शनशश्चत रूप से, शतष्ठशत-रहता है, अकमथकृत्-शबना कमथ शकये, कायथते-शकया िाता है, शह-क्योंशंक, अवशः - शववश हो कर, कमथ-कमथ, सवथः- सब, प्रकृशतैः - प्रकृशत से उत्पन्न, गुणैः- गुणों ंके िारा।

अनुवाद : शनशश्चत रूप से कोई भी मनुष्य शबना कमथ शकये एक क्षण भी नहीं ंरह सकता; क्योंशंक प्रते्येक मनुष्य को प्रकृशत से उत्पन्न गुणों ंके कारण शववश हो कर कमथ करना ही प़िता है।

व्याख्या : सत्त्व, रिस् और तमस् प्रकृशत के तीन गुण हैं। सत्त्व- समिय, शुशचता अर्वा प्रकाश का प्रतीक है। रिस्-आसम्भक् अर्वा शक्रयाशीलता का प्रतीक है। तमस् - अन्धकार अर्वा ि़िता है। साम्भत्त्वक कमथ मोक्ष-प्राम्भप्त में सहायक होते हैं। रािशसक और तामशसक कमथ मनुष्य को संसार के बन्धन में िालते हैं।

आत्म-ज्ञानी को ये गुण प्रभाशवत नहीं ंकरते। वह इन गुणों ंसे परे हो िाता है, गुणातीत हो िाता है। अज्ञानान्धकार में प़िा व्यम्भक् शिसके पास स्व-आत्मा का प्रकाश नहीं ंहै अर्वा िो आत्म-ज्ञान से शून्य है और अशवद्या िारा अनुशाशसत है, असहाय रूप से गुणों ंमें शवचरण करने को बाध्य होता है। (शनरूपण - IV.16; XVIII.11)

कमेन्द्रियाडण संयम्य य आस्ेते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थामन्द्रन्वमूढािा डमर्थ्ााचारः स उच्यते ।।६ ।।

बिार्थम : कमेम्भियाशण-कमेम्भियों ंको, संयम्य-वशीभूत करके, यःि–ो, आसेृते-रहता है, मनसा-मन से, स्मरन्-स्मरण करता हुआ, इम्भियाराृथन् - इम्भियों ंके शवषयों ंको, शवमूढात्मा-भ्रशमत बुम्भद्ध वाला, शमथ्याचारः- दम्भी, सः- वह, उच्यते-कहा िाता है।

अनुवाद : िो मनुष्य (पाँच) कमेम्भियों ंको तो शनयम्भन्त्रत कर लेता है; परन्तुु मन से कमेम्भियों ंके शवषयों ंमें रमण करता रहता है, उनका शचन्तन करता है. ऐसा मनुष्य शमथ्या आचरण वाला कहलाता है, क्योंशंक वह भ्रम में पड़ा हुआ है।

व्याख्या : पाँच कमेम्भियाँ हैं-वाक्, पाशण, पाद, उपस्थ् और गुदा। ये सूक्ष्म तत्त्वों ंअर्वा रािशसक गुण के पाँच तन्मात्राओं ंसे अंकुररत होती हैं। वाक् (शब्द) आकाश तन्मात्रा से, पाशण-वायु तन्मात्रा से, पाद-अशध तन्मात्रा से, उपस्थ्-आपस् (िल) तन्मात्रा से और गुदा-पृथ्वी तन्मात्रा से उद्भुत है। वह मनुष्य पापाचारी है िो शान्त बैठ कर मन से इम्भिय-शवषयों ंका शचन्तन करता रहता है। वह स्वयं में भ्रशमत है। शनशश्चत रूप से सम्मोशहत है।

कमेम्भियों ंको संयत कर के शवचारों ंको शनयम्भन्त्रत करना भी अशनवायथ है। मन को भगवान् में लगाना चाशहए। एकाग्रता से ही मनुष्य सिा योगी बन सकता है और तभी आत्मानुभूशत सम्भव है।

यन्द्रस्त्वन्द्रियाडण मनसा डनयम्यारभतेऽजुमन ।
कमेन्द्रियैः कममयोगमसक्तः स डवडिष्यते ।।७ ।।

बिार्थम : यः ि–ो, तु-शकनुतु, इम्भियाशण-इम्भियों ंको, मनसा-मन से, शनयम्य-संयत कर के, आरभते-प्रारम्भ करता है, अिुथन-हे अिुथन, कमेम्भियैः- कमेम्भियों ंसे, कमथयोगम् -कमथयोग को, असक्ः - अनासक्, सः- वह, शवशशष्यते-उतृकृष्ट है।

अनुवाद : इम्भियों ंको संयत कर के िो मनुष्य अनासक् हो कर कमेम्भियों ंको कमथ में लगा कर स्वयं कमथयोग में प्रशतशष्ठत होता है, वह श्ेरेष्ठ है।

व्याख्या : हस्त, पाद, वाक् आशद कमेम्भियों ंसे कमथ करते हुए ज्ञानेम्भियों ंको मन से वशीभूत कर के, कमथफल त्याग कर और अहंकारशून्य हो कर िो मनुष्य कमथ करता है, वह शनस्सनेृदेह शमथ्याचारी (दम्भी) से कहीं ंअशधक श्ेरेष्ठ है। (शनरूपण-II. 64, 68; IV.21.)

नेत्र, कणथ, नाशसका, त्वचा और रसना पाँच ज्ञानेम्भियाँ हैं।

डनयतं कुरु कमम तृवं कमम ज्यायो ह्यकममणः ।
रीरयात्राडप च ते न प्रडसद्धयेदकममणः ।।८ ।।

बिार्थम : शनयतम् - शास्त्रशवशहत, कुरु-करो, कमथ-कमथ, त्वम् तुम, कमथ-कमथ, ज्यायः-श्ेरेष्ठतर, शह-क्योंशंक, अकमथणः-कमथ न करने की अपेक्षा, शरीरयात्रा-शरीर का शनवाथह, अशप-भी, च-और, ते-तुम्हारा, न-नहीं,ं प्रशसद्धयेत् सम्भव, अकमथणः - शबना कमथ के।

अनुवाद : तुम अपने शनयत कमथ करो; क्योंशंक अकमथ की अपेक्षा कमथ करना अशधक अच्छा है। और शफर, शबना कमथ शकये इस शरीर की यात्रा भी तो पूणथ नहीं ंहोती अराृथत् शरीर का शनवाथह करने के शलए कमथ करना अशनवायथ है।

व्याख्या : शनयत कमथ वह आवश्यक कतथव्य है शिसका पालन करना मनुष्य का धमथ है। शवशहत कमथ न करने पर दोष होता है। शवशहत कमों का पालन करने से शकसी पररणाम-शवशेष की प्राम्भप्त नहीं ्होती और इसके पालन से पुण्य शमलता हो, ऐसा भी नहीं ्है।

िीवन-शनवाथह के शलए ही सबको अनेक स्वाभाशवक और अशनवायथ कमथ करने पि़ते हैं। "मैं शबना कोई कमथ शकये रह सकता हाँ", ऐसा कहना अज्ञान है।

यज्ञार्थात्कममणोऽन्यत्र लोकोऽयं कममबन्धनः ।
तदर्ं्थं कमम कौतेय मुक्तसङ्गः समाचर ।।९ ।।

शब्दार्थम : यज्ञार्ाथत् - यज्ञ के शलए, कमथणः-कमथ का, अन्यत्र-अन्यर्ा, लोकः-संसार, अयम्-यह, कमथबन्धनः-कमथबन्धन, तदर्थम् - उसके शलए, कमथ-कमथ, कौन्ेतेय हे कुम्भन्तपुत्र, मुक्सङ्गः- अनासक् हो कर, समाचर-आचरण करो।

अनुवाद : यज्ञ के भाव से शकये िाने वाले कमों को छोि़ कर अन्य सभी कमथ भवबन्धन में िालने वाले हैं। इसशलए हे अिुथन, तुम अनासक् हो कर यज्ञ के रूप में अपना कमथ करो।

व्याख्या : शुद्ध भाव से शकया गया कोई भी शनष्काम और धाशमथक अनुष्ठान यज्ञ कहलाता है। वेद की तैशत्तरीय संशहता में शवशहत है : "यज्ञो वै शवष्णु"-"यज्ञ ही शवष्णु है"(१.७.४)। भगवान् के शलए शकया गया कोई भी कमथ बन्धन से मुक् करने वाला है। शवष्णु के शनशमत्त कमथ करने से मन शनमथल होता है। इस भाव का अभाव होने पर कमथ संसार-बन्धन में िालने वाला हो िाता है, वह कमथ अच्छा हो या बुरा। शुभ और अशुभ दोनों ्ही कमथ बन्धन के कारण हैं। (शनरूपण-II.48)

सियज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापडतः ।
अनेन प्रसडवष्यध्वमेष वोऽन्द्रस्त्वष्टकामधुक् ।।१०।।

शब्दार्थम : सहयज्ञाः -यज्ञों ्सशहत, प्रिाः-मनुष्यों ्को, सृष्ट्वा उत्पन्न करके, पुरा-पूवथकाल में, उवाच-कहा, प्रिापशतः-प्रिापशत ने, अनेन-इसके िारा, प्रसशवष्यध्वम् सन्तान वृम्भद्ध करो, एषः यह, वः तुम्हारी, अस्तु हो, इष्टकामधुक् - अभीष्ट-शसम्भद्ध वाली कामधेनु ।

अनुवाद : (सृशष्ट के) आशद काल में प्रिापशत ने मनुष्यों ्को यज्ञ सशहत उत्पन्न करके कहा- "इसके िारा तुम फलो, फूलो। सन्तान वृम्भद्ध करो। यह यज्ञ तुम्हारे शलए समस्त कामनाओं ्की पूशतथ करने वाली कामधेनु स्वरूप होगा।"

व्याख्या : प्रिापशत सृशष्टकताथ (ब्रह्मा) हैं। कामधुक्, कामधेनु का ही दूसरा नाम है। कामधेनु इन्द्र की गाय है शिससे प्रत्ेयेक व्यम्भक् अपनी अभीष्ट इच्छा की पूशतथ कर सकता है। (शनरूपण - VIII.4; IX.24, 27; X.25)

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयतु वः ।
परस्परं भावयतः श्रे्यः परमवाप्स्स्यर्थ ।।११ ।।

शब्दार्थम : देवान् -देवताओं ्को, भावयत-पोषण करो, अनेन-इसके िारा, ते वे, देवाः देव, भावयन्तु-पोषण करें, वः तुम्हारा, परस्परम् -एक-दूसरे का, भावयन्तः-पोषण करते हुए, श्रे्यः-कल्याण, परम् सविो, अवाप्स्स्यर्-प्राप्त करो।

अनुवाद : इसके ििारा तुम देवताओं ंका पोषण करो और वे देव तुम्हारा पोषण करें। इस प्रकार परस्पर, एक-दूसरे का सम्पोषण करते हुए तुम सविो कल्याण को प्राप्त करोगे।

व्याख्या : देव का अर्थ है-शदव्य, ज्योशतमथय । इस यज्ञ से तुम इिआशद देवताओं ंको प्रसन्न करो और देव गण वषाथ आशद के ििारा तुम्हें प्रसन्न रखेंगे। सविो कल्याणप्रद तो भव-बन्धन से मुक् करने वाला आत्म-ज्ञान है। स्वगथलोक की प्राम्भप्त भी परम कल्याण से अशभशहत हो सकती है। फल तो साधक की भावना पर शनभथर करता है।

इष्टान्भोगान्द्रन्ह वो देवादास्यते यज्ञभाडवताः ।
तैदमत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्क्ते से्तेन एव सः ।।१२ ।।

बि्ाथम : इष्टान् -वांशछत, भोगान् -पदार्थ, शह-शनशश्चत रूप से, वः-तुम्हें, देवाः देवगण, दास्यने्ते-देंगे, यज्ञभाशवताः यज्ञ से प्रसन्न, तैः उनके ििारा, दत्तान् शदये गये, अप्रदाय-शबना अपथण (भेंट) शकये, एभ्यः- उनके शलए, यः िो, भुङ्क्े-भोग करता है, से्तेनः-चोर, एव-शनशश्चत रूप से, सः वह ।

अनुवाद : यज्ञ से प्रसन्न हो कर देव गण तुम्हें इम्भच्छत पदार्थ प्रदान करेंगे। अतः उनके शलए अपथण शकये शबना िो मनुष्य उनके ििारा प्रदत्त पदार्ों का भोग करता है, वह शनशश्चत रूप से चोर है।

व्याख्या : िब देवता तुम्हारे यज्ञ से प्रसन्न होते हैं, वे तुम पर सवथ सुख अर्ाथत् धन-ऐश्वयथ-समृम्भद्ध, पशुधन और सन्तान आशद की वृशष्ट करते हैं।

देवताओं ंििारा शदये गये भोगों ंको िो स्वयं भोगता है अर्ाथत् िो बदले में उन्ें अशपथत शकये शबना अपने ही शरीर और इम्भियों ंकी तृष्णाओं ंकी पूशतथ करता है, वह शनस्सने्देह चोर है। वह तो देवों ंकी सम्पशत्त का िाकू है।

यज्ञडिष्टाडिनः सतो मुच्यते सवमडकन्द्रिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यािकारणात् ।।१३ ।।

बि्ाथम : यज्ञशष्टाशनः - यज्ञ के अवशेष का भोग करने वाले, सन्तः सन्त, मुच्यने्ते-मुक् हो िाते हैं, सवथशकम्भिषैः-सब पापों ंसे, भुञ्जते-उपभोग करते हैं, ते-वे, तु-शनश्चय से, अघम् -पाप, पापाः-पापी िन, येि–ो, पचम्भन्त-पकाते हैं, आत्मकारणात्-अपने शलए।

अनुवाद : यज्ञावशेष का उपभोग करने वाले सन्त िन सब प्रकार के पापों ंसे मुक् हो िाते हैं; शकनुतु िो पापी िन केवल अपने शलए ही पकाते हैं, वे पाप खाते हैं।

व्याख्या : पञ्चमहायज्ञ करने के उपरान्त िो मनुष्य यज्ञावशेष का उपभोग करते हैं, वे इन पााँच प्रकार के पापों ंसे बच िाते हैं िो पाप ज्ञान-अज्ञान में पााँच प्रकार के कीट आशद की शहंसा से लगते हैं, वे हैं- (१) ओखल-मूसल, (२) चक्की, (३) 37sqrt(17) -स्ान, (४) वह स्ान िहााँ पेय िल रखा िाता है, (५) झािू का स्ान। ये पााँच स्ान हैं, िहााँ प्रशतशदन िीवन-शहंसा होती ही है। पंच महायज्ञों ंके अनुष्ठान से ये पाप क्षीण हो िाते हैं। प्रते्येक गृशि (शहन्दू संसूकृशत के अनुसार प्रर्म तीन वणथ, शवशेषकर ब्ाह्मण) को ये यज्ञ अवश्य करने चाशहए।

(१) **देव-यज्ञ**-देव गणों ंके शलए यज्ञ में आहुशत देना िो उन्ें सनुतुष्ट करेगी।

(२) **ब्रह्म-यज्ञ अर्थवा ऋडष-यज्ञ**-ऋशषयों ंऔर ब्र्ह्म को सनुतुष्ट करने के शलए शास्त्रों ंका अध्ययन और अध्यापन।

(३) **डपतृ-यज्ञ-**शपतरों ंको सनुतुष्ट करने हेतु उनें् िल की आहुशत (अर्घ्य) देना ।

(४) **नृ-यज्ञ (अडतडर्थ-यज्ञ) -** अशतशर् और भूखे को भिोन कराना।

(५) **भूत-यज्ञ-**पशु-पशक्षयों ंको भिोन देना ।

ि्भिवन्द्रत भूताडन पजमन्यादिसम्भवः ।
यज्ञािवडत पजमन्यो यज्ञः कममसमुिवः ।।१४।।

बि्ार्थम : अन्नात् -अन्न से, भवम्भन्त - (उत्पन्न) होते हैं, भूताशन-भौशतक प्राणी, पिथन्यात् वषाथ से, अन्नसम्भवः-अन्न की उत्पशत्त, यज्ञात्-यज्ञ से, भवशत -होती है, पिथन्यः- वृशष्ट, यज्ञः -यज्ञ, कमथसमुद्भवः-कमथ से उत्पन्न ।

अनुवाद : अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं। अन्न वृशष्ट से उत्पन्न होता है। वृशष्ट यज्ञ से होती है और यज्ञ कमथ से होता है।

व्याख्या : यहाँ यज्ञ का अर्थ है-अपूवथ अर्वा सूक्ष्म तत्त्व अर्वा अव्यक् स्वरूप िो पररणाम की अशभव्यम्भक् और अनुष्ठान के मध्यकाल में यज्ञ धारण करता है। (कोई भी यज्ञ, अनुष्ठान के समय अर्वा पररणाम काल में िो अदृश्य रूप धारण करता है, वह अपूवथ है।)

कमम ब्रह्मोिवं डवन्द्रद्ध ब्रह्माक्षरसमुिवम् ।
तस्मात्सवमगतं ब्रह्म डनत्यं यज्ेञे प्रडतडितम् ।।१५ ।।

बि्ार्थम : कमथ-कमथ, ब्र्ह्मोद्भवम् - ब्र्ह्म से उत्पन्न, शवम्भद्ध–िानो, ब्र्ह्म-ब्र्ह्म, अक्षरसमुद्भवम् - अक्षर सवथगतम् सवथव्यापक, ब्र्ह्म-ब्र्ह्म, प्रशतशष्ठतम् - शवद्यमान रहता है। से उत्पन्न, तस्मात् - इसशलए, शनत्यम् -सदा, यज्ेञे-यज्ञ में,

अनुवाद : यह िान लो शक कमथ का उद्भव ब्र्ह्म से है और ब्र्ह्म अक्षर (अनश्वर) से उद्भूत है। अतः सवथव्यापक ब्र्ह्म सदा यज्ञ में ही प्रशतशष्ठत रहता है।

व्याख्या : ब्र्ह्म का अर्थ है-वेद। शिस प्रकार श्वास मनुष्य के मुख से शनकशसत होता है, उसी प्रकार वेद अशवनाशी, सवथज्ञ परमात्मा का श्वास है। वेद सदा यज्ञ में शवद्यमान रहता है अर्ाथत् मुख्यतः यह यज्ञ और उसके अनुष्ठान के शवशध-शवधान का शनरूपण करता है। (शनरूपण - IV. 24 से 32)

कमथ-कमथ, ब्र्ह्मोद्भवम् वेदों ंके आदेशों ंसे उत्पन्न ।

एवं प्रवडतमतं चक्रं नानुवतमयतीि यः ।
अघायुररन्द्रियारामो मोघं पार्थम स जीवडत ।।१६ ।।

बि्ार्थम : एवम् - इस प्रकार, प्रवशतथतम् -घुमाये िाते हुए, चक्रम् -चक्र का, न-नहीं,ं अनुवतथयशत - अनुसरण करता है, इह-यहाँ, यः िो, अघायुः-पापी, इम्भियारामः - इम्भियों ंमें रमण करने वाला, मोघम् - व्यर्थ ही, पार्थ पार्थ, सः वह, िीविशत–िीता है।

अनुवाद : हे पार्थ, ो मनुष्य इस प्रवशतथत सृशष्टचक्र के अनुकूल व्यवहार नहीं ंकरता, वह इम्भियों ंमें रमण करने वाला व्यर्थ ही ीता है।

व्याख्या : यह कमथ का चक्र है शिसे यज्ञ और वेद के आधार पर सृशष्टकताथ ने गशत प्रदान की है। उसका ीवन व्यर्थ है ो यज्ञाशद श्रेष्ठ कमथ और वेद-शवशहत आदेश का पालन न करते हुए ऐम्भिक शवषयों ंमें शलप्त रहता है। वह अपना ीवन ही व्यर्थ गँावा रहा है। वसुतुतः वह शनरर्थक ीवन व्यतीत कर रहा है।

ी भी व्यम्भक् इस शनयम का अनुसरण नहीं ंकरता और स्वारी् है, वह मानो पाप-कमथ कमा रहा है। परमात्मा के शनयम के शवरुद्ध चलना सबसे ब्िा अपराध है।

यस्त्विारडतरेव स्यादितृप्तश्च मानवः ।
अिन्येव च सतुष्ट्स्तस्य कायं न डवद्यते ।।१७ ।।

ब्िार्थम : यः–ो, तु-शकनुतु, आत्मरशतः- आत्मा में आनन्द लेने वाला, एव-ही, स्यात् -हो, आत्मतृप्तः- आत्मा में सनुतुष्ट, च-और, मानवः मनुष्य, आत्मशन-आत्मा में, एव-ही, च-और, सनुतुष्टः सनुतुष्ट, तस्य-उसका, कायथम् कायथ, न-नहीं,ं शवद्यते- है।

अनुवाद : शकनुतु उस मनुष्य के शलए कोई और कतथव्य करने को शशेष नहीं ंरहता ो आत्मा में सनुतुष्ट है, आत्मा से तृप्त है और आत्मा में ही आनन्द की अनुभूशत करता है।

व्याख्या : सुख-प्राम्भप्त हेतु ज्ञानी या मुशन बाह्य शवषयों ंपर शनभथर नहीं ंरहता। वह अपने में ही सनुतुष्ट रहता है, अपनी ही आत्मा में वह सुख, सन्तोष और आनन्द की खोि करता है। ऐसे योगी के शलए, शिसे आत्म-ज्ञान हो गया है, कुछ अन्य कतथव्य कमथ शेष नहीं ंरहता। वह कमथभाव से मुक् हो कर, कमथ की पूणथता को प्राप्त कर चुका है। वह आप्तकाम है, पूणथतया आत्म-सनुतुष्ट है। (शनरूपण -11.55)

नैव तस्य कृतेनार्थोनाकृतेनेि कश्चन ।
न चास्य सवमभूतेषु कडश्चदर्थमव्यपाश्रयः ।।१८ ।।

ब्िार्थम : न -नहीं ं, एव-ही, तस्य-उसके, कृतेन-कमथ से, अर्थः- अशभप्राय, ननहीं,ं अकृतेन-कमथ न करने से, इह-यहाँा, कश्चन-कोई, न-नहीं,ं च-और, अस्य-इसका, सवथभूतेषु सब प्राशणयों ंमें, कशश्चत् -कोई, अर्थव्यपाश्रयः शवषय पर शनभथरता।

अनुवाद : ऐसे महान् पुरुष का इस संसार में न तो कमथ करने का ही कोई प्रयोिन रहता है और न ही कमथ न करने का। वह शकसी शवषय के शलए शकसी प्राणी पर शनभथर नहीं ंरहता।

व्याख्या : एवंशवध, आत्मा में ही सनुतुष्ट महात्मा को कमथ से कोई प्रयोिन नहीं ंरहता । कमथ से उसका वसुतुतः कोई स्वार्थ शसद्ध नहीं ंहोता। अकमथ से उसको प्रत्यवाय दोष छू भी नहीं ंसकता। कमथ न करने से उसे कोई हाशन नहीं ं होती। वसुतु-शवशेष की प्राम्भप्त हेतु उसे शकसी पर शनभथर रहने की आवश्यकता नहीं।ं न ही शकसी प्राणी का अनुग्रह उसे चाशहए।

तस्मादसक्तः सततं कायम कमम समाचर ।

असक्तो ह्याचरन्कमम परमाप्नोडत पूरुषः ।।१९ ।।

बि्ार्थम : तस्मात् - इसशलए, असक्ः - शबना आसम्भक्, सततम् -शनरन्तर, कायथम् -कतथव्य कमथ, कमथ-कमथ, समाचर-करो, असक्ः - शबना आसम्भक्, शह-क्योंशंक, आचरन् करते हुए, कमथ-कमथ, परम् - परमात्मा को, आप्नोशत- प्राप्त करता है, पूरुषः-पुरुष ।

अनुवाद : इसशलए आसम्भक् रशहत हो कर तुम कतथव्य कमथ को करो; क्योंशंक आसम्भक् का त्याग कर के कमथ करने से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करता है।

व्याख्या : आसम्भक् रशहत हो कर यशद तुम भगवदर्थ (भगवान् के शलए) कमथ करोगे, तो हृदय की शुशचता से आत्म-साक्षात्कार करोगे। (शनरूपण- II.64, IV.19, 23; XVIII.49)

कममणैव डि संडसन्द्रद्धमान्द्रथर्थता जनकादयः ।
लोकसंग्रिमेवाडप संपश्यन्कतुमिमडस ।।२० ।।

बि्ार्थम : कमथणा-कमथ के ्ािा रा, एव-ही, शह-शनश्चय से, संशसम्भद्धम् पूणथत्व, आम्भरूताः- प्राप्त शकया, निकादयः- ्िनकाशद ने, लोकसंग्रहम् लोककल्याण, एव-ही, अशप-भी, संपश्यन् - देखते हुए, कतुथम् -करने के शलए, अहथशस
योग्य हो।

अनुवाद : ्िनक तर्ा अन्य लोग शनशश्चत रूप से कमथ के ्ािरा ही शसम्भद्ध को प्राप्त कर सके। लोकसंग्रह अर्ाथत् सामान्य ्िनों ्ंका पर््-प्रदशथन करने के दृशष्टकोण से भी तुम्हें कमथ करना चाशहए।

व्याख्या : संशसम्भद्ध का अर्थ है मोक्ष । ्िनक, अश्वपशत तर्ा अन्य रािाओं ्ंको आत्मा का पूणथ ज्ञान र्ा। पुनरशप निगण के समक्ष उदाहरण रखने के शलए उन्ोंनें कमथ शकया। लोगों ्ंको मागथ-दशथन कराने के शलए उन्ोंनें कमथ शकया।

यद्यदाचरडत श्‍रेस्तित्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवतमते ।।२१ ।।

बि्ार्थम : यद्यत््–्ो–्ो, आचरशत-आचरण करता है, श्‍रेष्ठः - श्‍रेष्ठ मनुष्य, तत््-तत््-वही-वही, एव-ही, इतरः-अन्य, निः लोग, सः वह (महापुरुष), यत््–्ो, प्रमाणम् - आदशथ उपम्भस्र्त करना, कुरुते-करता है, लोकः संसार (लोग), तत््-उसका, अनुवतथते-अनुसरण करता है।

अनुवाद : श्‍रेष्ठ पुरुष ्ैसा आचरण करते हैं, अन्य लोग भी वैसा करते हैं। वे ्ो प्रमाशणत कर देते हैं अर्ाथत् ्ो भी आदशथ प्रसुतुत करते हैं, अन्य लोग उसका अनुगमन करते हैं।

व्याख्या : मनुष्य एक सामाशिक प्राणी है। वह अनुकारक भी है। अपने शुभ-अशुभ शवचारों ्ंका शनणथय वह उनसे लेता है ्ो नैशतकता में उससे श्‍रेष्ठतर हैं। ्ैसा आचरण एक महापुरुष करता है, उसके अनुयायी उसका अनुसरण करने का प्रयास करते हैं। उसके चरणशचिों ्ंका अनुसरण उनका प्रयत्न होता है।

न मे पार्थामन्द्रस्त कतमवं्यं डत्रषु लोकेषु डकञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तवं्यं वतम एव च कममडण ।। २२ ।।

बिाथम : न-नहीं, ं मे-मेरे शलए, पार्थ-पार्थ (अिुथन), अम्भस्त-है, कतथव्यम् -करने योग्य कमथ, शत्रषु लोकेषु-तीनों ंलोकों ंमें, शकश्चन-कुछ भी, न-नहीं, ं अनवाप्तम् - अप्राप्त, अवाप्तव्यम् -प्रापणीय, वते-लगा रहता हाँ, एव-ही, चऔर, कमथशण-कमथ में।

अनुवाद : हे अिुथन, तीनों ंलोकों ंमें न तो मेरा कोई कतथव्य है और न ही ऐसी कोई वस्तुु है िो मुझे अप्राप्त हो और प्राप्त करनी हो । पुनरशप मैं स्वयं को कमथ में संलग्न रखता हाँ।

व्याख्या : मैं शवश्व-शनयन्ता हाँ; इसशलए व्यम्भक्गत क्षेत्र में मेरा कोई कतथव्य कमथ नहीं ंहै। मुझे कुछ प्राप्त नहीं ंकरना है; क्योंशंक मेरे पास दैवी सम्पदा है, समस्त ब्र्ह्माण्ड का ऐश्वयथ मेरे पास है, शफर भी मैं कमथ में बरतता हाँ।

तुम मेरा अनुसरण क्यों ंनहीं ंकरते? अपना दृष्टान्त दूसरों ंके समक्ष रख कर तुम सामान्य लोगों ंको अनुशचत मागथ पर चलने से रोकने का साहस क्यों ंनहीं ंकरते ? तुम यशद कोई आदशथ स्र्ाशपत करोगे, तो लोग तुम्हारा अनुसरण करेंगे; क्योंशंक तब तुम सद्गुण-सम्पन्न एक अग्रणी नेता बन िाओगे ।

यडद ह्यिं न वतेयं जातु कममण्यतन्द्रितः ।
मम वमामनुवतमते मनुष्याः पार्थम सवमिः ।।२३ ।।

बिाथम : यशद-यशद, शह-शनशश्चत रूप से, अहम् मैं, न -नहीं, ं वतेयम् - (कमथ में) व्यस्त रहाँ, िा तु-कभी, कमथशण-कमथ में, अतम्भितः-शनरालस्य, मम-मेरे, वत्र्म-पर्, अनुवतथन्ते-अनुसरण करते हैं, मनुष्याः- लोग, पार्थ- पार्थ, सवथशः -सब प्रकार से।

अनुवाद : हे अिुथन, यशद मैं सावधान हो कर कमथ में व्यस्त न रहाँ, तो सब मनुष्य भी सब प्रकार से मेरे मागथ का अनुसरण करेंगे।

व्याख्या : यशद मैं आलसी (अकमी) हो िाऊाँ, तो सब लोग मेरा अनुवतथन कर के मौन बैठ िायेंगे। वे तामशसक हो कर ििता को प्राप्त करेंगे।

उत्सीदेयुररमे लोका न कुयाम कमम चेदिम् ।
संकरस्य च कताम स्यामुपिन्याडममाः प्रजाः ।।२४ ।।

बिाथम : उत्सीदेयुः नष्ट हो िायें, इमे-ये, लोकाः लोक, ननहीं, ं कुयाथम् -करूाँ, कमथ-कमथ, चेत्-यशद, अहम् - मैं, संकरस्य–िाशतयों ंके अन्तशमथश्रण का, च-और, कताथ-बनाने वाला, स्याम् - बनूाँ, उपहन्याम् नष्ट करूाँ, इमाः ये सब, प्रिाः प्राणी।

अनुवाद : यशद मैं कमथ न करूाँ, तो इस संसार को नष्ट करने वाला बनूाँ। संकर (अव्यवस्र्ा) को उत्पन्न करने वाला और प्रिा का हनन करने वाला बन िाऊाँ।

व्याख्या : यशद मैं कमथ में शनरत न होता, तो लोक भी शनम्भिय हो िाते। वे वणाथश्रम धमथ का पालन न करते िो उन्हें अपने-अपने िीवन की चार अवस्र्ाओं ंमें क्रमशः करना होता । अतः िाशत भ्रम उत्पन्न होता और मुझे उन्हें नष्ट करना पिता ।

सक्ताः कममण्र्डविांसो यर्था कुवमन्द्रत भारत ।
कुयामर्डिडांस्तर्थासक्तडश्चकीषुमलोकसंग्रिम् ।।२५ ॥

बिार्थम : सक्ाः- आसक्, कमथशण-कमथ में, अशविांसः-अज्ञानी, यर्ा-िसे, कुवथम्भन्त-करते हैं, भारत-हे भारत, कुयाथत् -करे, शविान् -शविान्, तर्ा वैसे, असक्: अनासक्, लोकसंग्रहम्-लोककल्याण की । शचकीषुथः कामना करते हुए,

अनुवाद : हे भारत (अिुथन), शिस प्रकार से एक अज्ञानी पुरुष कमथ में आसक् हो कर कमथ करता है उसी प्रकार से एक शविान् पुरुष लोककल्याणार्थ आसम्भक्रशहत हो कर कमथ करे।

व्याख्या : फल की कामना से अशविान् कायथ करता है। वह कहता है-"अमुक कायथ करके मैं अमुक फल की प्राम्भप्त करूाँगा"; शकन्तु शविान् पुरुष िो आत्मज्ञानी है, अपने शलए कमथ नहीं ंकरता। उसे तो ऐसा कमथ करना चाशहए शक वह दूसरों ंके शलए दृष्टान्त बन िाये और लोग उससे शाम्भन्त, समिय, हृदय की शुशचता, शदव्य प्रकाश और ज्ञान प्राप्त करें। आत्मज्ञानी ही शविान् है। (शनरूपण - II 64; III 19; XVIII.49)

न बुन्द्रद्धभेदं जनयेदज्ञानां कममसडङ्गनाम् ।
जोषयेत्सवमकमामडण डविानुयुक्तः समाचरन् ।। २६ ।।

बिार्थम : न-नहीं,ं बुम्भद्धभेदम् -मन का शवचशलत होना, िनयेत्-उत्पत्र करे, अज्ञानाम् अज्ञाशनयों ंके, कमथसशङ्गनाम् -कमथ में आसक् मनुष्यों ंके िोषयेत् लगाये, सवथकमाथशण-सब कमथ, शविान् बुम्भद्धमान्, युक्: - युक्- समाचरन् आचरण करते हुए।

अनुवाद : शविान् पुरुष को चाशहए शक वह कमथ में आसक् अज्ञान व्यम्भक्यों ंके मन को शवचशलत न करे। स्वयं भम्भक्भाव से पररपूणथ हो कर वह युक् पुरुष दूसरों ंको सभी कमों के करने में पे्ररणा दे।

व्याख्या : एक अज्ञानी मनुष्य स्वयं से कहता है- "मैं यह काम करूाँगा और इसका फल भोगूाँगा।" शविान् मनुष्य उसके शवश्वास को न तोिे़ उससे अपेक्षा यही है शक वह अनासक् भाव से कमथ कर के उसके समक्ष उदाहरण प्रसुतुत करे। उसे चाशहए शक वह अज्ञानी को अनुशाशसत करे और उसे कमथ की उपेक्षा न करने का ज्ञान दे। आवश्यकता पिने पर उसे इस प्रकार (अनास कमथ) से प्राप्त सुख के इस लोक और परलोक के शवशवध रङ्ग बताये। समय सार् हृदय पशवत्र होने पर शविान् उनमें शनष्काम कमथयोग के बीि बो सकता है।

प्रकृतेः डक्रयमाणाडन गुणैः कमामडण सवमिः ।
अिेकारडवमूढािा कतामऽडिमडत मन्यते ।।२७ ।।

बिार्थम : प्रकृतेः-प्रकृशत के, शक्रयमाणाशन-शकये िा रहे, गुणैःगु के िारा, कमाथशण-कमथ, सवथशः-सब प्रकार से, अहंकारशवमूढात्मा-अहंकार भ्रशमत (मोशहत) मन वाला, कताथ-करने वाला, अहम् -मैं, इशत-ऐस मन्यते मानता है।

अनुवाद : सभी प्रकार से समस्त कमथ वसुतुतः प्रकृशत के गुणों ंसे सम् होते हैं; शकन्तु अहंभाव से मोशहत अर्वा मूढ़ हुआ व्यम्भक् स्वयं को ही क मान बैठता है।

व्याख्या : प्रकृशत अर्वा प्रधान वह अवस्ा और तमस्-ये तीनों ंगुण साम्यावस्ा में रहते हैं। इस साम्यावस्ा के है शिसमें सत्त्व, रिस् असनुतुलन से सृशष्ट प्रारम्भ होती है। शरीर, मन, इम्भियााँ आशद बनते हैं। अहंकार से भ्रशमत

व्यम्भक् शरीर, मन, इम्भियों ंऔर प्राण का आत्मा के सार् एकत्व मानने लगता है और शरीर तर्ा इम्भियों ंकी उपाशध का आत्मा में अध्यारोपण (शनक्षेप) करता है। अतः अज्ञानवश वह सोचता है- "मैं कताथ हाँ।" वस्तुतः प्रकृशत के गुण ही सब कमथ करते हैं। (शनरूपण - III.29; V.9; IX.9, 10; XIII.21, 24, 30, 32; XVIII.13, 14)

तत्त्वडवत्तु मिाबािो गुणकममडवभागयोः ।
गुणा गुणेषु वतमत इडत मत्वा न सिते ।।२८ ।।

बि्ार्थम : तत्त्वशवत् सत्य को िानने वाला, तु-लेशकन, महाबाहो-हे महाबाहु (अिुथन), गुणकमथशवभागयोः- गुण और कमथ के शवभाग के, गुणाः गुण (इम्भियों ंके रूप में), गुणेषु गुणों ंमें, वतथन्ते-रहते हैं, इशत-ऐसा, मत्वा-मान कर, न-नहीं,ं सिते आसक् होता है।

अनुवाद : शकन्तु हे शवशाल भुिा वाले अिुथन, गुण और कमथशवभाग के तत्त्व को िानने वाला तत्त्वशवद्, गुण (इम्भियााँ) गुणों ं(शवषयों)ं में ही बरत रहे हैं, कायथ कर रहे हैं, ऐसा िान कर उनमें आसक् नहीं ंहोता।

व्याख्या : आत्मा तीन गुणों ंऔर कमों से सवथर्ा पृर्क् है, इस तत्त्व को िानने वाला कमथ में आसक् नहीं ंहोता। गुण-शवभाग और कमथ-शवभाग का ममथ िान लेने के पश्चात् (गुण-कमथ के अन्योन्य शक्रयाकलाप िानने के पश्चात्) ज्ञानी भलीभााँशत समझ लेता है शक गुण स्वरूप इम्भियााँ गुण रूप शवषयों ंमें शवचरण करती हैं। अतः उसकी कमथ में आसम्भक् नहीं ंहोती। वह िानता है-"मैं अकताथ हाँ, मैं कताथ नहीं ंहाँ"। (शनरूपण-XIV.23)

प्रकृतेगुमणसमूमूढाः सिते गुणकममसु ।
तानकृत्स्नडवदो मन्दान्कृत्स्नडवि डवचालयेत् ।।२९ ।।

बि्ार्थम : प्रकृतेः - प्रकृशत के, गुणसमूमूढाः गुणों ंसे मोशहत, सिन्ते-आसक् होते हैं, गुणकमथसु गुणों ंके कायों में, तान्-उन, अकृत्स्नशवदः-अल्प ज्ञानी, मन्दान् -मूढ़, कृत्स्नशवत्-पूणथ ज्ञानी, न-नहीं,ं शवचालयेत् - शवचशलत न करे।

अनुवाद : प्रकृशत के गुणों ंके कारण सम्भ्रान्त व्यम्भक् उन गुणों ंसे उत्पन्न कमों में आसक् होते हैं। एक ज्ञानी पुरुष को चाशहए शक वह उन मूढ़ व्यम्भक्यों ंको शवचशलत न करे िो अल्प ज्ञान वाले हैं अर्वा िो प्रकृशत की प्ेरेरणा से सकाम कमथ करते हैं।

व्याख्या : अज्ञानी लोग फल की आकाङ्क्षा से कमथ करते हैं; शकन्तु आत्मा का ज्ञान रखने वाले बुम्भद्धमान् पुरुष से यह अपेशक्षत है शक वह अज्ञानी व्यम्भक्यों ंके श्रद्धा, शवश्वास और शवचारधारा को शवचशलत न करे, क्योंशक ऐसा करने से वे (अज्ञानी व्यम्भक्) कमथ को त्याग कर तमस् का शकार हो िायेंगे। वे आलसी, शनष्प्रयोिन िीवन यापन करेंगे। प्रारम्भ में उन्ें सकाम कमथ में प्रवृत्त करना चाशहए। धीरे-धीरे ज्ञानी पुरुष उन्ें शनष्काम कमथयोग में प्रवृत्त करें, उन्ें इच्छा रशहत कमथ के लाभों ंसे अवगत करायें िैसे आत्म-साक्षात्कार की ओर ले िाने वाली हृदय की पशवत्रता ।

मडय सवामडण कमामडण संन्यस्याध्याचेतसा ।
डनरीडनममो भूत्वा युध्यस्व डवगतज्वरः ।। ३० ।।

बि्ार्थम : मशय-मुझ में, सवाथशण-सब, कमाथशण-कमथ, संन्यस्य-त्याग कर, अध्यात्मचेतसा आत्म-केम्भित मन से, शनराशीः- शनष्काम भाव से, शनमथमः- अहंकारशून्य, भूत्वा हो कर, युध्यस्व-युद्ध करो, शवगतज्वरः- उिग रशहत हो कर ।

अनुवाद : समस्त कमथ मुझे समशपथत कर के, चेतना को आत्मा में म्भस्र्र कर के, आशा (इच्छा) और अहंकारशून्य हो कर, शनरुिग हो कर तुम युद्ध करो।

व्याख्या : समस्त कमथ मेरे अपथण कर दो। "मैं सब कमथ भगवान् के शलए करता हाँ", ऐसा शचन्तन करो।

ज्वर का अर्थ है-दु:ख, सन्ताप। (शनरूपण - V.10; XVIII.66)

ये मे मतडमदं डनत्यमनुडतिन्द्रत मानवाः ।
श्रद्धावतोऽनसूयतो मुच्यते तेऽडप कममडभः ।।३१ ।।

बि्ार्थम : ये िो, मे मेरी, मतम् -शशक्षा, इदम्-इस, शनत्यम् -सदा, अनुशतष्ठम्भन्त-अभ्यास (अनुपालन) करते हैं, मानवाः मनुष्य, श्रद्धावन्तः श्रद्धापूणथ हो कर, अनसूयन्त:-ईष्याथ रशहत हो कर, मुच्यने्ते-मुक् हो िाते हैं, ते-वे, अशप-भी, कमथशभः कर्मों से।

अनुवाद : सूपृहा रशहत हो कर, श्रद्धा युक् हो कर िो मनुष्य शनत्य मेरे इस उपदेश का अनुपालन करते हैं, वे कमथ-बन्धन से मुक् हो िाते हैं।

व्याख्या : श्रद्धा, एक मानशसक वृशत्त है, शवश्वास के अर्थ में। यह शवश्वास है अपनी आत्मा में, शास्त्रों ंमें और आध्याम्भत्मक गुरु के उपदेशों ंमें। यह श्रद्धा, सम्मान और नम्रता का उिभाव में सम्भम्मश्रण है।

ये त्वेतदभ्यसूयतो नानुडतिन्द्रत मे मतम् ।
सवमज्ञानडवमूढांस्तान्द्रन्वन्द्रद्ध नष्टानचेतसः ।।३२ ।।

बि्ार्थम : येि-ो, तु-शकनुतु, एतत् - यह, अभ्यसूयन्तः- दोषदृशष्ट रखते हुए, न-नहीं, ं अनुशतष्ठम्भन्त-अभ्यास करते हैं, मे-मेरे, मतम् उपदेश, सवथज्ञानशवमूढान् सब ज्ञान के प्रशत मूढ़ (भ्रशमत), तान् उन्हें, शवम्भद्धि-ानो, नष्टान् नष्ट हुए, अचेतसः - शववेकशून्य ।

अनुवाद : शकनुतु वे लोग िो मेरे उपदेशों ंमें दोषदृशष्ट रखते हैं और उनका पालन नहीं ंकरते, ऐसे शववेकशून्य और सभी प्रकार के ज्ञान में भ्रशमत लोगों ंको नष्ट हुआ िानो अर्ाथत् उनका शवनाश अपररहायथ है।

व्याख्या : दुराग्रही और सूलधी मनुष्य िो भगवान् के उपदेशों ंमें दोषदृशष्ट रखते हैं और उनकी शक्षाओं ंको आचरण में नहीं ंलाते, शनशश्चत रूप से शवनाश के अशधकारी हैं। वे अशोच्य हैं, शक्षातीत हैं और वास्तव में मूढ़ ही हैं।

सर्दृं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतोमनवानडप ।
प्रकृडतं यान्द्रत भूताडन डनग्रिः डकं कररष्यडत ।। ३३ ।।

बि्ार्थम : सदृशम् अनुसार (अनुरूप), चेष्टते-चेष्टा करता है, स्वस्याः-अपने, प्रकृतेः-प्रकृशत (स्वभाव) के, ज्ञानवान् बुम्भद्धमान्, अशप-भी, प्रकृशतम् - प्रकृशत को, याम्भन्त-अनुसरण करते हैं, भूताशन-प्राणी, शनग्रहः संयम, शकम् -क्या, कररष्यशत-करेगा ।

अनुवाद : एक ज्ञानी पुरुष भी अपने स्वभाव के अनुरूप चेष्टा करता है। सभी प्राणी अपनी प्रकृशत के वशीभूत हो कर ही कायथ करते हैं। इसमें शनग्रह (संयम) क्या करेगा?

व्याख्या : इस श्लोक को पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता है मानो मनुष्य के व्यम्भक्गत प्रयास का कोई आशय ही नहीं ं है। शकनुतु ऐसा नहीं ंहै। शनम्न श्लोक पढ़ो। इसमें स्पष्ट संकेत है शक रागि्ष से ऊपर उठ कर मनुष्य प्रकृशत पर शविय प्राप्त कर सकता है।

एक अज्ञानी और मोहग्रस्त व्यम्भक् ही अपनी शनम्न प्रकृशत और स्वाभाशवक प्रवृशत्तयों ंके प्रवाह में बहने लगता है। न तो उसे अपनी इम्भियों ंपर संयम है और न ही इच्छा-अशनच्छा की दो धाराओं ंपर । पुरुषार्थ चतुष्टय से समम्भित एक सत्योिषक, िो सतत ध्यानाभ्यास में रत है, सहि रूप से अपनी प्रकृशत को संयत कर सकता है। (शनरूपण - II.60; V.14; XVIII.59)

इन्द्रियस्ेयेन्द्रियस्यार्ेथे रागिेषौ व्यवन्द्रथर्थतौ ।
तयोनम विमागचे्छेत्तौ ह्यस्य पररपन्द्रिनौ ।। ३४ ।।

बिार्थम : इम्भियस्य इम्भियस्य-प्रत्येक इम्भिय के, अर्थ-शवषय में, रागिेषौ राग और िेष, व्यवम्भस्तौ - म्भस्त हैं, तयोः- उन दोनों ंके, न-नहीं,ं वशम् वश में, आगचे्छेत् - आना चाशहए, तौ-वे दोनों,ं शह-शनशश्चत रूप से, अस्य-इसके, पररपम्भन्थनौ-शतुरु हैं।

अनुवाद : ऐम्भिक शवषयों ंके प्रशत राग और िेष इम्भियों ंमें ही समाया रहता है। अतः मनुष्य को इन दोनों ंके वशीभूत नहीं ंहोना चाशहए; क्योंशक वे इसके शतुरु हैं।

व्याख्या : सुखद शवषय के शलए प्रत्येक इम्भिय का आकषथण होता है और इसके शवपरीत दु:खद अर्वा प्रशतकूल शवषय के प्रशत इम्भिय का शवकषथण होता है। रागि्ष की वृशत्तयों ंको संयत कर लेने पर, मनुष्य पर उनका प्रभाव नहीं ंरहता । यहाँ व्यम्भक्गत पुरुषार्थ की आवश्यकता है। पूवथकृत शुभाशुभ कमों से स्वयं उद्‌भूत सुप्त वृशत्तयाँ अर्वा समूपूणथ संस्कार िो मनुष्य की प्रकृशत (स्वभाव) के शलए उत्तरदायी हैं, मनुष्य को राग और िेष के दो वेगों ंसे उसके मागथ की ओर पे्रररत करती हैं। यशद कोई इन दो वेगों ंको वश में कर ले; शववेक, शवचार और आत्मिोषण से पे्रम और घृणा से ऊपर उठ िाये, तो वह प्रकृशत पर शवियी हो कर अमृतत्व और शाश्वत आनन्द का आनन्द ले सकता है। अब वह अपनी प्रकृशत के अशधकार में नहीं ंहोगा। अतः इम्भिय-शवषयों ंमें रागि्ष की भावना से स्वयं को मुक् करने का उपाय करना चाशहए।

श्ेरेयान्ब्स्वधमो डवगुणः परधमामत्स्वनुडितात् ।
स्वधमे डनधनं श्ेरेयः परधमो भयाविः ।।३५ ।।

बिार्थम : श्ेरेयान् -श्ेरेष्ठ, स्वधमथः - अपना धमथ (कतथव्य), शवगुणः गुण रशहत, परधमाथत् -दूसरे के धमथ से, स्वनुशष्ठतात्- भलीभाँशत शकये हुए, स्वधमे-अपने धमथ में, शनधनम् -मृतुयु, श्ेरेयः-कल्याणप्रद, परधमथः -दूसरे का धमथ, भयावहः भयप्रद ।

अनुवाद : भली प्रकार से पालन शकये िा रहे दूसरे के धमथ की अपेक्षा अपना धमथ दोषयुक् अर्वा अपूणथ रूप से पालन शकया िा रहा भी श्ेरेयस्कर है। अपने धमथ के शलए मृतुयु (का वरण) भी कल्याणकारी है; शकनुतु दूसरे का धमथ भय प्रदान करने वाला है।

व्याख्या : दूसरे के धमथ का उत्तृकृष्ट रूप से पालन करते हुए िशवत रहने की अपेक्षा दोषयुक् अपने धमथ के शलए प्राण त्यागना कहीं ंअशधक श्रेयस्कर है। दूसरे के धमथ में भय बना रहता है (वह मानो अन्धकूप है) । क्षशत्रय का धमथ (कतथव्य) न्यायपरायण युद्ध करना है। अिुथन को युद्ध करना ही है। यह उसका धमथ है। अपने धमथ को शनभाते हुए वह प्राणों ंसे हार् भी धो बैठे, तो उसके शलए यही कल्याणकारी है। वह स्वगथ लोक प्राप्त करेगा। उसे शकसी अन्य धमथ का पालन उशचत नहीं ंहै। इससे उसके अन्तमथन में शंका उत्पन्न होगी। युद्ध को त्याग कर संन्यास-मागथ का वरण उसके शलए शहतकर नहीं ंहै। (शनरूपण-XVIII.47)

अजुथन उवाच

अर्थ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरडत पूरुषः ।
अडनच्छिडप वाणेय बलाडदव डनयोडजतः ।।३६ ।।

बि्र्थम : अर्-अब, केन-शकसके िारा, प्रयुक्ः -प्ेरेररत हो कर, अयम् - यह, पापम् -पाप, चरशत-करता है, पूरुषः - मनुष्य, अशनच्छन् - इच्छा न होते हुए, अशप भी, वाष्र्णेय-हे वाष्र्णेय (कृष्ण), बलात् -हठपूवथक, इव-मानो , शनयोशितः- शनयुक् ।

अजुथन ने किा

अनुवाद : हे कृष्ण, इच्छा के शवरुद्ध मनुष्य को पाप कमथ करने के शलए कौन प्ेरेररत करता है, मानो उससे बलपूवथक करवाया िा रहा हो ?

व्याख्या : वृम्भष्ण वंश में उत्पन्न वाणेय कहलाता है। यह भगवान् कृष्ण का एक नाम है।

श्री भगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुिवः ।
मिानो मिापाप्मा डवद्धयेनडमि वैररणम् ।। ३७ ।।

बि्र्थम : कामः इच्छा, एषः- यह, क्रोधः क्रोध, एषः- यह, रिोगुणसमुद्भवः रिोगुण से उत्पन्न, महाशनः सवथभक्षक, महापाप्मा-महापापी, शवम्भद्ध–िानो, एनम् -इसे, इह-यहााँ, वैररणम्-शत्रुरु ।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : रिोगुण से उत्पन्न यह क्रोध और इच्छा ही सवथभक्षक और सवथपापमय हैं। इस लोक में इन्ें ही शत्रुरु मानो ।

व्याख्या : भगवान्-भग शब्द छह उपाशधयों ंसे युक् है, वे हैं-ज्ञान, वैराग्य, कीशतथ, ऐश्वयथ, श्री और बल। इन छह गुणों ं से युक् पुरुष, शिसे सृशष्ट के आशद और अन्त का भी ज्ञान है 'भगवान्' संज्ञा से शवशहत है।

इस संसार में पाप और दुष्कमथ की िनशन इच्छा है। क्रोध इच्छा का ही मूतथ रूप है। इच्छापूशतथ में बाधा ालिने वालों ंके प्रशत मनुष्य क्रोशधत होता है, िब उसकी इच्छा अपूणथ रह िाती है। इच्छा रिोगुण से उत्पन्न है। इच्छा उत्पन्न होने पर रिोगुण अंकुररत होता है िो मनुष्य को वस्तु-शवशेष की प्राम्भप्त हेतु कमथ में प्रेररत करता है। अतः यह िान लो शक इस धरा पर इच्छा ही मनुष्य की शत्रु है। (शनरूपण-XVI.21)

धूमेनाडव्रयते वडियमर्थाऽऽदिो मलेन च ।
यर्थोनावृतो गभमस्तर्था तेनेदमावृतम् ।।३८ ।।

शब्दार्थ : धूमेन धुएँ से, आशियते-ढक िाता है, वशिः- अशग्न, यर्ा-िैसे, आदशथः दपथण, मलेन -धूल से, च-और, यर्ा-िैसे, उिेन-ज़ेर से, आवृतः ढका रहता है, गभथः- गभथ, तर्ा-उसी प्रकार, तेन-उसके िारा, इदम् - यह, आवृतम् ढका है।

अनुवाद : शिस प्रकार अशग्न धुएँ से, दपथण धूल से और गभथ ज़ेर से ढके रहते हैं, उसी प्रकार यह (ज्ञान) उससे (रिोगुण से) ढका रहता है।

व्याख्या : 'इदम्' का अशभप्राय ब्ह्माण्ड अर्वा ज्ञान से है और 'तेन' का प्रयोग रिोगुण (इच्छा) के शलए हुआ है।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञाडननो डनत्यवैररणा ।
कामरूपेण कौतेय दुषूपूरेणानलेन च ।। ३९ ।।

शब्दार्थ : आवृतम् -ढका हुआ है, ज्ञानम्-ज्ञान, एतेन-इसके िारा, ज्ञाशननः- ज्ञाशनयों ंका, शनत्यवैररणा - शचरशत्रु से, कामरूपेण-कामरूप, कौन्तेय-हे कुन्तीपुत्र, दुषूपूरेण-कभी शान्त न होने वाली, अनलेन-आग के िारा, च- और।

अनुवाद : हे अिुथन, कभी शान्त न होने वाली अशग्न स्वरूप इच्छा से (िो कभी तृप्त नहीं ंहोती) ज्ञानी का ज्ञान आवृत रहता है। यही उसकी शचरशत्रु है।

व्याख्या : मनु कहते हैं-शवषय-भोग िारा इच्छाएँ न तो कभी पूणथ होती हैं और न ही शान्त होती हैं। आग में घी और सशमधा िालने पर िैसे वह और अशधक प्रज्वशलत हो उठती है, वैसे ही भोग्य-पदार्ों िारा इच्छा-पूशतथ करने पर तृष्णाएँ और अशधक िागृत होती हैं। धरती की समग्र भोग्य-सामग्री, समस्त अमूल्य धातुएँ, सारे पशु और सब सुन्दररयाँ यशद इच्छा करने वाले मनुष्य को उपलब्ध हो िायें, तब भी वे सब उसे सन्तोष नहीं ंदे सकते । तृष्णा िाग्रत होने पर अज्ञानी मनुष्य उसे अपना शमत्र समझता है। इम्भियों ंकी सन्तुशष्ट हेतु वह इच्छाओं ंकी पूशतथ करता है। शकन्तु ज्ञानी मनुष्य पररणाम भोगने से पूवथ ही अनुभव से िान लेता है शक इच्छाएँ तो उसे दुःख और शवपशत्त में िाल सकती हैं। अतः ज्ञानी के शलए तो ये शनत्य वैरी के समान हैं और अज्ञानी के शलए शमत्र हैं।

इन्द्रियाडण मनो बुन्द्रद्धरस्याडधिानमुच्यते ।
एतैडवमोियत्येष ज्ञानमावृत्य देडिनम् ।।४० ।।

शब्दार्थ : इम्भियाशण-इम्भियाँ, मनः- मन, बुम्भद्धः बुम्भद्ध, अस्य-इसका, अशधष्ठानम् वास-स्र्ान, उच्यते-कहा िाता है, एतैः- इनके िारा, शवमोहयशत-भ्रान्त करती है, एषः—यह, ज्ञानम्-ज्ञान को, आवृत्य ढक कर, देशहनम् - देहधारी (आत्मा को) ।

अनुवाद : इम्भियााँ, मन और बुम्भद्ध इसके आधार (वास-स्र्ान) कहे गये हैं। इन्हीं ंके िारा यह (इच्छा) देहधारी के ज्ञान को आवृत करती है और उसे भ्रशमत करती है।

व्याख्या : शतुरु के आश्रय-स्र्ल का ज्ञान हो िाये, तो उसे मारना सहि हो िाता है। एक बुम्भद्धमान् सेनानायक की भााँशत भगवान् कृष्ण अिुथन को इच्छाओं ंके आश्रय का संकेत देते हैं, शिससे वह उन पर आक्रमण कर अशत-शीघ्र उनका शवनाश कर सके।

तस्मात्त्वडमन्द्रियार्ण्यादौ डनयम्य भरतषमभ ।
पाप्मानं प्रजडि ह्येनं ज्ञानडवज्ञानननानम् ।।४१ ।।

ब्र्ाथम : तस्मात् - इसशलए, त्वम्-तुम, इम्भियाशण-इम्भियों ंको, आदौ-आरम्भ में, शनयम्य-संयत कर के, भरतषथभ - हे भरतश्ेष्ठ, पाप्मानम् -शवनाशकारी, प्रिशह-मार िालो, शह-शनशश्चत रूप से, एनम्-इसे, ज्ञानशवज्ञाननाशनम् - ज्ञान और शवज्ञान को नष्ट करने वाले ।

अनुवाद : अतः, हे भरतवंशयों ंमें श्ेष्ठ (अिुथन), पहले इम्भियों ंको वश में करो । तत्पश्चात् ज्ञान और शवज्ञान को नष्ट करने वाले इस पापी काम को मार िालो।

व्याख्या : शास्त्राध्ययन से प्राप्त ज्ञान, ज्ञान है। यह परोक्ष ज्ञान (indirect knowledge) है। शवज्ञान अपरोक्ष ज्ञान (direct knowledge) है िो व्यम्भक्गत अनुभव आत्म-साक्षात्कार से प्राप्त होता है। इम्भियों ंको वशीभूत कर के इच्छा को मार िालो।

इन्द्रियाडण परार्ण्याहरररन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तुपरा बुन्द्रद्धर्योबुद्धेःपरतस्तु सः ।।४२ । ।

ब्र्ाथम : इम्भियाशण-इम्भियों ंको, पराशण-श्ेष्ठतर, आहुः-कहते हैं, इम्भियेभ्यः इम्भियों ंसे, परम्-श्ेष्ठ, मनः-मन, मनसः मन से, तु-शकन्तु, परा-श्ेष्ठ, बुम्भद्धः बुम्भद्ध, यः- िो, बुद्धेः बुम्भद्ध की अपेक्षा, परतः -श्ेष्ठ, तु-शकन्तु, सः- वह (आत्म-तत्त्व है)।

अनुवाद : कहा िाता है शक इम्भियााँ (शरीर से) श्ेष्ठ हैं, मन इम्भियों ंसे श्ेष्ठ है, बुम्भद्ध मन से श्ेष्ठ है; शकन्तु बुम्भद्ध से भी श्ेष्ठ वह (आत्मा) है।

व्याख्या : ससीम, बाह्य, स्र्ूल, भौशतक शरीर की अपेक्षा इम्भियााँ सूक्ष्म, आन्तररक और शक्रया की शवपुल क्षेत्र वाली होने के कारण अशधक श्ेष्ठ हैं। मन इम्भियों ंकी तुलना में अशधक श्ेष्ठ है; क्योंशक मन की सहायता के शबना स्वतन्त्र रूप से इम्भियााँ कुछ भी नहीं ंकर सकतीं।ं पााँचों ंइम्भियों ंके शक्रयाकलाप मन के आधीन होते हैं। शववेक-शम्भक् से सम्पन्न होने के कारण बुम्भद्ध मन से श्ेष्ठ है। सम्भन्दग्धावस्र्ा में बुम्भद्ध ही मन की सहायता करती है। साक्षी आत्मा बुम्भद्ध से भी श्ेष्ठ है; क्योंशक बुम्भद्ध आत्मा से ही प्रकाश प्राप्त करती है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यािानमािना ।
जडि ितुरुं मिाबािो कामरूपं दुरासदम् ।।४३ ।।

ब्र्ाथम : एवम् - इस प्रकार, बुद्धेः- बुम्भद्ध की अपेक्षा, परम् - श्ेष्ठ, बुद्ध्वा िान कर, संस्तभ्य-म्भस्र्र कर के, आत्मानम् - आत्मा को, आत्मना-आत्मा से, िशह-मार िालो, शतुरुम्-शतुरु को, महाबाहो - हे महाबाहु, कामरूपम् इच्छा रूपी, दुरासदम् दुिेय ।

अनुवाद : एवंशवध, हे अिुथन, उसे िान कर, िो बुम्भद्ध से भी श्रेष्ठ है और आत्मा से आत्मा को संयत कर के, हे महाबाहु, तुम दुिेय काम रूपी शत्रुरु को िीत लो।

व्याख्या : शनम्न आत्मा को उि आत्मा से वश में करो। शनम्न मन को उि मन से िीत लो। काम को िीतना दुष्कर है, क्योंशक यह अत्यन्त िशटल और दुिेय है; शकन्तुतु सतत घोर साधना में रत शववेकी और अनासक् व्यम्भक् इसे सुगमता से िीत सकता है। काम रिस् का गुण है। यशद तुम अपने भीतर सत्त्व गुण की वृम्भद्ध करो, तो काम पर शविय प्राप्त कर सकते हो। सत्त्व के समक्ष रिस् नहीं ंशटक सकता। यद्यशप काम को िीतना कशठन है; परन्तुतु असम्भव कदाशप नहीं ंहै। इसकी सहि और सरल शवशध है–िप और प्रार्थना िारा अन्तयाथमी परमात्मा से शवनय करना।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषत्सुसु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णािुमनसंवादे
कममयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ।।
।। इडत कममयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर् चतुर्ोऽध्यायः

ज्ञानशवभागयोगः

श्री भगवानुवाच

इमं डववस्वते योगं प्रोक्तवानिमव्ययम् ।
डववस्वान्मनवे प्रिा मनुररक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।।१ ।।

बि्थ्मम : इमम्-इस, शववस्वते-शववस्वान् (सूयथदेव) के शलए, योगम् योग को, प्रोक्वान् -उपदेश शदया, अहम् -मैंने, अव्ययम् - अशवनाशी, शववस्वान् - शववस्वान् ने, मनवे-मनु के शलए, प्राह-उपदेश शदया, मनुः मनु, इक्ष्वाकवे इक्ष्वाकु को, अर्ब्वीत् -कहा ।

श्री भगवान् ने कहा

अनुवाद : मैंने इस अशवनाशी योग का ज्ञान शववस्वान् को शदया। शववस्वान् ने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को इस योग का ज्ञान शदया।

व्याख्या : शववस्वान् सूयथ का पयाथय है। इक्ष्वाकु मनु के पुत्र र्े और वे सूयथवंशी क्षशत्रयों ंके पूवथि र्े।

योग अशवनाशी कहा िाता है; क्योंशंक इसका फल अर्ाथत् मोक्ष (योग से प्राप्त) अशवनाशी है।

यशद राज्यों ंके शासक शपछले दो अध्यायों ंमें उपशदष्ट योग का अनुसरण करें, तो वे राज्य को न्यायपूवथक चला सकते हैं और ब्राह्मणों ंकी रक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं। इसीशलए सृशष्ट के आशद काल में मैंने यह योग सूयथदेव को शसखाया ।

एवं पररिाप्राप्तडममं राजषमयो डवदुः ।
सकालेनेिमितायोगो नष्ट्ःपरतप।।२।   ।

बिार्थम : एवम् -इस प्रकार, परम्पराप्राप्तम्-परम्परा से प्राप्त, इमम् -इस (योग को), रािषथयः रा-ऋशषयों ंने, शवदुः िाना, सः-वह, कालेन समय के सार्, इह-यहाँ, महता महान्, योगः- योग, नष्टः- नष्ट हो गया, परन्तप है परन्तप ।

अनुवाद : इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस ज्ञान को राशषथयों ंने िाना । वही योग का ज्ञान हे अिुथन, समय बीतने पर लुप्तप्राय-सा हो गया है।

व्याख्या : राशषथ-रािा होते हुए ऋशष-पद को भी प्राप्त शकया और इस योग को सीखा।

परन्तप-सूयथ की भाँशत अपने पराक्रम और शम्भक् से अिुथन अपने शत्रु का शवनाश करने में समर्थ र्ा; इसशलए उसका नाम 'परन्तप' पिा।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽडस मे सखा चेडत रिस्यं ह्येतदुत्तमम् ।। ३ ।।

बिार्थम : सः-वह, एव-ही, अयम्-यह, मया-मेरे िारा, ते तुम्हारे शलए, अद्य-आि, योगः योग, प्रोक्ः-कहा गया, पुरातनः पुरातन, भक्ः - भक्, अशस-हो, मे-मेरे, सखा-शमत्र, च-और, इशत-इस प्रकार, रहस्यम् -रहस्य, शह-क्योंशंक, एतत्-इस, उत्तमम् - श्रेष्ठ ।

अनुवाद : उसी पुरातन योग का ज्ञान आि मैंने तुम्हें शदया है; क्योंशंक तुम मेरे भक् हो और सखा हो। यह (योग) एक परम रहस्य है।

व्याख्या : इस योग में सूक्ष्म और गहन उपदेश शनशहत हैं। अतः यह परम (श्रेष्ठ) रहस्य है शिसे भगवान् ने उद्घाशटत शकया ।

अजुमन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म डववस्वतः ।
कर्थमेतडिजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवाडनडत ।।४।।

बि्ार्थम : अपरम् अवाथचीन (पश्चात् काल का), भवतः - आपका, िन्मि–न्म, परम् -पूवथ, िन्मि–न्म, शववस्वतः- शववस्वान् का, कर्म् -कैसे, एतत्-यह, शविानीयाम् समझ लूाँ, त्वम्-आपने, आदौ-आशदकाल में, प्रोक्वान् उपदेश शकया, इशत-इस प्रकार ।

अजुमन ने किा

अनुवाद : आपका िन्म तो सूयथदेव (शववस्वान्) के िन्म के पश्चात् हुआ। मैं कैसे यह मान लूाँ शक आपने यह योग (सूयथ को) आशदकाल में शदया र्ा।

व्याख्या : आपका िन्म तो उत्तरकाल में वसुदेव के घर में हुआ। शववस्वान् सृशष्ट के आशद में उत्पन्न हुआ। मैं कैसे मान िाऊाँ शक प्रारम्भ में आपने यह शवद्या सूयथदेव को प्रदान की। और यह भी शकस प्रकार िानूाँ शक आपने िो सूयथ को शवद्या दी, वही (भगवान्) मुझे अाि यह शवद्या दे रहे हैं। इसे समझना कशठन है। भगवन्, कृपा कर के मेरी इस शिज्ञासा को शान्त करें और सत्य को प्रकाशत करें।

श्री भगवानुवाच

बहूडन मे व्यतीताडन जन्माडन तव चाजुमन ।
तान्यिं वेद सवामडण न त्वं वेत्थ परतप ।।५ ।।

बि्ार्थम : बहशन बहुत, मे—मेरे, व्यतीताशन-बीत गये हैं, िन्माशनि–न्म, तव-तुम्हारे, च-और, अिुथन-हे अिुथन, ताशन-उन सबको, अह्म - मैं , वेदि–ानता हाँ, सवाथशण-सब, न-नहीं,ं त्वम् -तुम, वेत्थि–ानते, परन्तप हे परन्तप ।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : हे परन्तप (अिुथन), तुम्हारे और मेरे बहुत से िन्म हो चुके हैं। उन सबका ज्ञान मुझे है; पर तुम्हें नहीं।ं

व्याख्या : तुम्हें अन्तज्ञाथन (intuitional knowledge) नहीं ंहै। तुम्हारे पूवथ कमोवश तुम्हारा शदव्य चकु्षु अभी खुला नहीं ंहै। इसशलए तुम्हारी दशथन-शम्भक् सीशमत है और तुम्हें अपने पूवथि–न्मों ंकी सूमृशत नहीं ंहै। शकनु्तु मैं उनें् िानता हाँ; क्योंशंक मैं सवथज्ञ हाँ।

अजोऽडप सिव्ययिाा भूतानामीश्वरोऽडप सन् ।
प्रकृडतं स्वामडधिाय संभवाम्यिामायया ।। ६ ।।

बि्ार्थम : अिः-अिन्मा, अशप-भी, सन् -होते हुए, अव्ययात्मा-अशवनाशी प्रकृशत का, भूतानाम् -प्राशणयों ंका, ईश्वरः ईश्वर (स्वामी), अशप - भी, सन् -होते हुए, प्रकृशतम् -प्रकृशत को, स्वाम्-अपनी, अशधष्ठाय-म्भस्र्त हो कर, संभवाशम -प्रकट होता हाँ, आत्ममायया-अपनी माया से ।

अनुवाद : यद्यशप मैं अिन्मा हाँ, अशवनाशी हाँ, सब प्राशणयों ंका स्वामी हाँ; पुनरशप अपनी प्रकृशत में म्भस्र्त हो कर मैं अपनी माया से प्रकट होता हाँ।

व्याख्या : कमथ के बन्धन में आ कर मनुष्य िन्म धारण करता है। वह प्रकृशत के वश में है। वह प्रकृशत के तीन गुणों ं से भ्रशमत है, िब शक भगवान् ने माया को पूणथरूपेण अपने वश में कर रखा है। वे प्रकृशत के शासक हैं; इसशलए वे

प्रकृशत के गुणों ंके आधीन नहीं ंहैं। माया-शम्भक् के कारण यह आभास होता है शक उन्नोंनें िन्म शलया और शरीर धारण शकया; शकनुतु वास्तशवकता कुछ और है। उनका शरीर धारण करना एक आशवभाथव (अशभव्यम्भक्) है। उनकी सत्य प्रकृशत अर्वा शदव्यता पर इसका कोई प्रभाव नहीं ंप़िता । (शनरूपण-IX.8)

यदा यदा डि धममस्य ग्लाडनभमवडत भारत ।
अभ्युत्थानमधममस्य तदाऽऽनिं सृजाम्यिम् ।।७ ।।

बि्ार्थम : यदा यदा–बि–ब, शह-शनशश्चत रूप से, धमथस्य-धमथ की, ग्लाशनः- हाशन, भवशत होती है, भारत- हे भारत, अभ्युत्थानम् - उत्थान (वृम्भद्ध), अधमथस्य अधमथ का, तदा-तब, आत्मानम् -स्वयं को, सि्ाशम-प्रकट करता हाँ, अहम् मैं।

अनुवाद : हे अि्ुथन, (संसार में) िब–ब धमथ की हाशन और अधमथ का उत्थान होता है, तब-तब मैं प्रकट होता हाँ।

व्याख्या : धमथ, आलम्बन और संवधथन दोनों ंएक ही बार में प्रदान करता है। धमथ के शलए कोई दूसरा पयाथयवाची शब्द नहीं ंहै। मोक्ष प्रदान करने में सहायक धमथ है। मनुष्य को िो अनाचारी और धमथशवरुद्ध बनाता है, वह अधमथ है। मनुष्य का ऊध्वाथरोहण कर के ज्ञान और लक्ष्य की प्राम्भप्त धमथ कराता है। मनुष्य को आकृष्ट कर के सांसाररकता और अज्ञान के गम्भीर गतथ में अधमथ ही शगराता है।

पररत्राणाय साधूनां डवनिााय च दुषृ्कताम् ।
धममसंथर्ापनार्ामय संभवाडम युगे युगे ।।८ ।।

बि्ार्थम : पररत्राणाय-रक्षा के शलए, साधूनाम् सिनों ंकी, शवनाशाय-शवनाश के शलए, च-और, दुषृ्कताम् दुिथनों ंके, धमथसंस्र्ापनार्ाथय-धमथ की स्र्ापना करने के शलए, संभवाशम -(मैं) िन्म लेता हाँ, युगे युगेयुग-युग में।

अनुवाद : सिनों ंकी रक्षा के शलए, दुष्टों ंके शवनाश के शलए और धमथ की संस्र्ापना करने के शलए मैं युग-युग में प्रकट होता हाँ।

व्याख्या : साधूनाम् साधु वे हैं िो धमथ के अनुरूप अपना िीवन व्यतीत करते हैं, शरीर से मानवता की सेवा करते हैं; स्वार्थ, काम और लोभ से परे हैं और परमात्मा के शदव्य ध्यान में भम्भक्भाव से संलग्न रहते हैं।

दुषृ्कताम् दुषृ्कत् अर्वा दुष्ट वे हैं िो अधमथ का िीवन यापन करते हैं, समाि के शनयमों ंका उल्लंघन करते हैं, िो व्यर्थ हैं, कुशटल हैं, लोभी हैं, शहंसापरायण हैं, बलात् दूसरों ंकी सम्पशत्त पर अशधकार करते हैं और शवशभन्न प्रकार के वीभत्स कुकृत्य करते हैं।

जन्म कमम च मे डदव्यमेवं यो वेडत्त तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा दिं पुनजमन्म नैडत मामेडत सोऽजुमन ।।९।।

बि्ार्थम : िन्म–िन्म, कमथ-कमथ, च-और, मे-मेरे, शदव्यम् -शदव्य, एवम् इस प्रकार, यः–िो, वेशत्त–िानता है, तत्त्वतः तत्त्व से (वास्तव में), त्यक्त्त्वा-त्याग कर, देहम्-शरीर को, पुनः-शफर, िन्म–िन्म, ननहीं,ं एशत-प्राप्त करता है, माम् मुझे, एशत-प्राप्त करता है, सः- वह, अि्ुथन-हे अि्ुथन ।

अनुवाद : हे अिुथन, िो मनुष्य मेरे शदव्य िन्म और कमथ को तथ्य रूप में िान लेता है, वह प्राण त्यागने के उपरान्त पुनः िन्म नहीं लेता, प्रतुयुत् मुझे प्राप्त होता है।

व्याख्या : िन्म की अशभव्यम्भक् का आभास होने पर भी भगवान् िन्म-मरण से परे हैं। प्रकट रूप में दृढ़तापूवथक धमथ की संस्र्ापना में शक्रयाशील होते हुए भी वे सब प्रकार के कमथ से परे हैं। इस सत्य को िान लेने वाले का पुनिथन्म नहीं होता । आत्मज्ञान प्राप्त कर के वह िीवनुमुक् हो िाता है।

भगवान् का िन्म तो माया का एक खेल है। यह अप्राकृत है, शदव्य है, भगवान् की लीला है। मनुष्य रूप में दृशष्टगत होते हुए भी उनका शरीर शचन्मय होता है अर्ाथत् चेतन-स्वरूप होता है, पंचतत्त्वों से शनशमथत मानव-शरीर की भााँशत िि पदार्थ-सा नहीं होता।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाडश्रताः ।
बिवो ज्ञानतपसा पूता मिावमागताः ।।१०।।

बि्ार्थम : वीतरागभयक्रोधाः-अनुराग, भय और क्रोध से मुक्, मन्मयाः- मुझ में अनुरक्, माम्-मुझ में, उपाशश्रताः-आशश्रत, बहवः बहुत, ज्ञानतपसा-ज्ञान रूपी अशग्न से, पूताः - पररमाशिथत (पशवत्र हुए), मद्भावम् -मेरे भाव को, आगताः-प्राप्त हुए।

अनुवाद : राग, भय और क्रोध से मुक् हो कर, मुझमें लीन हो कर, मेरी शरण में आ कर, ज्ञान रूपी अशग्न में पशवत्र हो कर अनेक भक्ों ने मेरे भाव को प्राप्त कर शलया है।

व्याख्या : आत्मज्ञान का सूयथ उशदत होने पर ऐम्भिक शवषयों के प्रशत आसम्भक् समाप्त हो िाती है। यह ज्ञान होने पर शक मनुष्य का वास्तशवक स्वरूप शनत्य, अशवनाशी और शाश्वत आत्म-तत्त्व है तर्ा पररवतथन मात्र शरीर का गुण है, वह (मनुष्य) अभय हो िाता है। सवथर्ा आप्तकाम (इच्छाशून्य), स्वार्थ भाव से मुक् और सवथत्र आत्म-दशथन करने वाला भला क्रोध का शकार कैसे हो सकता है?

परब्ह्म में आशश्रत पुरुष उसी ब्ह्म का भक् हो िाता है। वह उसी में लीन हो िाता है अर्ाथत् ब्ह्मलीन अर्वा ब्ह्मशनष्ठ हो िाता है।

ज्ञानतपस्-ज्ञान की अशग्न । शिस प्रकार अशग्न रूई को िला देता है, उसी प्रकार ज्ञानतपस् समस्त सुप्त वृशत्तयों, वासनाओं, तृष्णाओं, संस्कारों, पापों और समस्त कमों को िला कर साधकों को पशवत्र कर देता है। (शनरूपण - II.56; IV.19 से 37 तक)

ये यर्ा मां प्रपद्यते तांस्तर्ैथैव भजाम्यिम् ।
मम वमामनुवतमते मनुष्याः पार्थम सवमिः ।।११।।

बि्ार्थम : येिो, यर्ा-शिस प्रकार, माम् -मुझे, प्रपद्यन्ते-भिते हैं, तान् उनको, तर्ा उसी प्रकार से, एव-ही, भिाशम भिता हाँ, अह्म - मैं, मम-मेरे, वमथ-मागथ का, अनुवतथन्ते-अनुसरण करते हैं, मनुष्याः मनुष्य, पार्थ-हे पार्थ, सवथशः सब प्रकार से।

अनुवाद : हे अिुथन, भक्गण शिस प्रकार से भी मेरा भिन करते हैं, मैं उसी प्रकार से उन्हें भिता हाँ अर्ाथत् वैसा ही फल प्रदान करता हाँ। सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरा ही अनुसरण करते हैं।

व्याख्या : शिस शकसी भाव अर्वा फल की आकाङ्क्षा से मनुष्य मेरा भिन करते हैं, उसी के अनुरूप मैं उन पर कृपा-दृशष्ट करता हाँ। सकाम भाव से यशद कोई मुझे स्मरण करता है, तो उसको अभीष्ट पदार्थ प्रदान करता हाँ। यशद कोई ज्ञान की इच्छा से शनष्काम भाव से मेरी आराधना करता है, तो उसे मोक्ष प्रदान करता हाँ। मैं शकसी के
सार् भी पक्षपात नहीं ंकरता । (शनरूपण—VII.21 और IX.23)

काङ्क्षतः कममणां डसन्द्रंदंध यजत इ देवताः ।
डक्षप्रं डि मानुषे लोके डसन्द्रद्धभमवडत कममजा ।।१२।।

बि्ार्थम : काङ्क्षन्तः इच्छा करते हुए, कमथणाम् -कमों की, शसम्भद्धम् -सफलता, यिने्ते-यज्ञ करते हैं, इह-इस लोक में, देवताः- देवता, शक्षप्रम् - शीघ्र, शह-क्योंशंक, मानुषे लोके-मनुष्य लोक में, शसम्भद्धः-सफलता, भवशत होती है, कमथिा-कमथ से उत्पन्न ।

अनुवाद : इस लोक में फल की इच्छा वाले मनुष्य देवताओं ंकी पि्ा करते हैं; क्योंशंक मनुष्य लोक में कमों का फल शीघ्र शमलता है।

व्याख्या : आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त कशठन है। इसके शलए पूणथ त्याग आवश्यक है। साधक को पुरुषार्थ-चतुष्टय (अध्याय ३ का श्लोक ३ देखें) और अन्य अनेक गुणों ंसे युक् होने पर भी सतत घोर ध्यान का अभ्यास आवश्यक होता है; शकनुतु सांसाररक (लौशकक) शसम्भद्ध शीघ्र और सहि ही प्राप्त हो िाती है।

वणाथश्रम और िाशत पर आधाररत वैशदक अनुष्ठान लौशकक मनुष्यों ंके शलए ही है।

चातुवमर्ण्म मया सृषं्टंगुणकममडवभागिः ।
तस्य कतामरमडप मां डवद्धयकतामरमव्ययम् ।।१३ ।।

बि्ार्थम : चातुवथण्यथम् - चार वणथ, मया-मेरे िारा, सृष्टम्-बनाये गये हैं, गुणकमथशवभागशः गुण और कमथ के भेद से,
तस्य-उसका, कताथरम् -कताथ, अशप-भी, माम् मुझको, शवम्भद्धि्ानो, अकताथरम्-अकताथ, अव्ययम् - अशवनाशी, अपररवतथनशील ।

अनुवाद : गुण और कमथ के आधार पर मैंने चार वणों की रचना की। इस (वणथ-व्यवस्ा) का सिृनकताथ होने पर भी तुम मुझे अकताथ ही िानो ।

व्याख्या : ब्ाह्मण, क्षशत्रय, वैश्य और शिू-ये चार वणथ गुण और कमों के अनुरूप बनाये गये हैं। ब्ाह्मण में सत्त्व गुण की प्रधानता होती है। वह संयम, शुशचता, ऋिुता, सरलता, भम्भक् आशद गुणों ंसे सम्पन्न होता है। क्षशत्रय में रिोगुण की अशधकता होती है। वह पराक्रम, ति, दृढ़ता, चातुयथ, उदारता और शासक स्वभाव से सम्पन्न होता है। वैश्य में रिोगुण मुख्य और तमोगुण गौण होता है। वह खेती-बाि़ी, पशुपालन और व्यापार आशद के अनुरूप गुणों ंसे युक् होता है। शिू में तमोगुण की प्रधानता रहती है और रिोगुण गौण रहता है। शिू अन्य तीन वणों की सेवा करता है। मानव-स्वभाव और वृशत्त गुणों ंकी शवशभन्नता से पररवशतथत होते हैं।

भगवान् कृष्ण वणथ-व्यवस्ा के सृष्टा होने पर भी अकताथ होने से सृष्टा नहीं ंहैं। वे संसार में शलप्त नहीं ंहैं। वसुतुतः कतृथत्वभाव तो माया वश है। माया ही सब-कुछ करती है। समाि में सुख-समृम्भद्ध का राज्य हो, इसके शलए

आवश्यक है शक चारों ंवणथ अपना-अपना कमथ दक्षतापूवथक करें, अन्यर्ा सवथत्र ल़िाई-झग़िा, कलह, भेद-भाव और संकीणथता का साम्राज्य हो ियेे। (शनरूपण-XVIII.41)

न मां कमामडण डलिन्द्रत न मे कममफले सृ्पिा ।
इडत मां योऽडभजानाडत कममडभनम स बध्यते ।।१४ ।।

बि्र्थम : न-नहीं,ं माम् -मुझे, कमाथशण-कमथ, शलम्पम्भन्त-शलप्त करते हैं, न-नहीं,ं मे—मेरी, कमथफले-कमथफल में, सृ्पहा-लालसा, इशत-इस प्रकार, माम् -मुझे, यःि–ो, अशभिानाशति–ानता है, कमथशभः-कमों से, न-नहीं,ं सः वह,
बध्यते-बाँधता है।
अनुवाद : कमथ मुझे शलप्त नहीं ंकरते और न ही मुझे शकसी कमथफल की कामना है। िो मुझे इस प्रकार से िान लेता है, वह बन्धन में नहीं ंआता।

व्याख्या : क्योंशंक न तो मुझमें अहंभाव है और न ही कमथफल की सृ्पहा; अतः मैं कमथ के बन्धन में नहीं ंआता। सांसाररक लोग सोचते हैं शक वे तो प्रशतशनशध हैं और वे कमथ करते हैं। शफर कमथ के फल की भी कामना करते हैं। इसीशलए उन्ें पुनः पुनः िन्म लेना प़िता है। यशद वे अनासक् हो कर अहंभाव और फल की आकाङ्क्षा का त्याग कर के कमथ करें, तो वे बन्धन में नहीं ंआयेंगे। वे िन्म-मरण से मुक् हो ियेंगे। (शनरूपण - IX.9)

एवं ज्ञात्वा कृतं कमम पूवैरडप मुमुकु्षडभः ।
कुरु कमैव तस्मात्त्वं पूवैः पूवमतरं कृतम् ।।१५ ।।

बि्र्थम : एवम् - इस प्रकार, ज्ञात्वाि–ान कर, कृतम् - शकया गया, कमथ-कमथ, पूववः- पूवथिों ंिारा, अशप-भी, मुमुकु्षशभ: -मोक्ष के शिज्ञासु साधकों ंिारा, कुरु-करो, कमथ-कमथ, एव-ही, तस्मात् - इसशलए, त्वम्-तुम, पूववः-पूवथिों ंिारा, पूवथतरम् -पूवथकाल में, कृतम् - शकया गया।

अनुवाद : इस शदव्य ज्ञान को पा कर ही पुरातन काल में मुमुकु्ष िनों ंने कमथ शकये; इसशलए तुम भी अपने पूवथकाल के पूवथिों ंकी भाँशत अनासक् भाव से कमथ करो और अपने कतथव्य का पालन करो।

व्याख्या : (हे अिुथन), तुम इस सत्य को िान कर ही अपने कतथव्य का पालन करो शक कमों के फल की सृ्पहा आत्मा में नहीं ंहो सकती और न ही आत्मा इसमें शलप्त होती है और कोई भी व्यम्भक् शनष्काम भाव से अहंकार और आसम्भक्शून्य हो कर कमथ करेगा, वह बन्धन में नहीं ंआयेगा।

यशद तुम्हारा हृदय अशुद्ध है, तो इसकी शुम्भद्ध के शलए कमथ करो। यशद तुमने आत्मज्ञान प्राप्त कर शलया है, तो संसार में पर-कल्याण हेतु कमथ करो। ऐसे ही कमथ प्राचीन काल में िनक आशद ने शकये। अतः तुम भी कतथव्य कमथ करो ।

डकं कमम डकमकमेडत कवयोऽप्यत्र मोडिताः ।
तते्ते कमम प्रवक्ष्याडम यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।।१६ ।।

बि्र्थम : शकम् -क्या, कमथ-कमथ, शकम् -क्या, अकमथ-अकमथ, इशत-इस प्रकार, कवयः बुम्भद्धमान्, अशप-भी, अत्र-इसमें, मोशहताः- भ्रशमत, तत्-वह, ते तुम्हें, कमथ-कमथ, प्रवक्ष्याशम बताऊँगा, यत्ि–ो, ज्ञात्वाि–ान कर, मोक्ष्यसे- (तुम) मुक् हो िाओगे, अशुभात्-दोषों ंसे।

अनुवाद : कमथ क्या है और अकमथ क्या है, इस शवषय में तो ज्ञानी िन भी भ्रशमत हैं। मैं तुम्हें कमथ के शवषय में ज्ञान दूँगा अर्ाथत् कमथ और अकमथ शवषय को समझाऊँगा । कमथ की प्रकृशत को िान कर तुम सब प्रकार के दोषों ंसे मुक् हो िाओगे (संसार के आवागमन के चक्र से छूट िाओगे) ।

कममणो ह्यडप बोद्धव्ं यं बोद्धव्ं यं च डवकममणः ।
अकममणश्च बोद्धव्ं यं गिना कममणो गडतः ।।१७ ।।

बि्ार्थम : कमथणः-कमथ का, शह-शनशश्चत रूप से, अशप -भी, बोद्धव्यम् बोध (ज्ञान) होना चाशहए, बोद्धव्यम्-बोध होना चाशहए, च-और, शवकमथणः - शनशषद्ध कमथ का, अकमथणः-अकमथ का, च-और, बोद्धव्यम् बोध होना चाशहए, गहना गहन, कमथणः-कमथ की, गशतः गशत ।

अनुवाद : शनशश्चत रूप से (शास्त्रशवशहत) कमथ की यर्ार्थ प्रकृशत (रहस्य) का ज्ञान होना चाशहए। शनशषद्ध कमथ और अकमथ का ज्ञान होना चाशहए। कमथ की गशत को समझना अत्यन्त कशठन है (कमथन् की गशत न्यारी)।

कममण्र्कमम यः पश्ेयेदकममडण च कमम यः ।
स बुन्द्रद्धमान् मनुष्ेयेषु स युक्तः कृत्स्नकममकृत् ।।१८ ।।

बि्ार्थम : कमथशण-कमथ में, अकमथ - अकमथ, यः िो, पश्ेयेत् देखे, अकमथशण-अकमथ में, च-और, कमथ-कमथ, यः िो, सः वह, बुम्भद्धमान् बुम्भद्धमान्, मनुष्ेयेषु मनुष्यों ंमें, सः-वह, युक्: योगी, कृत्स्नकमथकृत् -सब कमों का कताथ।

अनुवाद : कमथ में अकमथ और अकमथ में कमथ को देखने वाला, मनुष्यों ंमें ज्ञानी है। वह योगी है और सब कमों को करने वाला है।

व्याख्या : साधारण संभाषण की भाषा में हार्-पैर और शरीर की गशत (शक्रया) को कमथ कहा िाता है और शान्त हो कर शनम्भिय बैठना अकमथ कहलाता है।

यह तो कारक का शवचार है शक मैं कताथ हाँ, िो मनुष्य को संसार के बन्धन में िालता है। यशद यह शवचार न रहे, तो कमथ कमथ नहीं ंरह िाता। यह मनुष्य को बन्धन में नहीं ंिालेगा। यह कमथ में अकमथ है। यशद तुम प्रकृशत की गशतशवशधयों ंको साक्षी भाव से देखो और यह अनुभव करो शक 'प्रकृशत िारा ही सब कायथ हो रहे हैं, मैं तो अकताथ हाँ', शनष्काम आत्मा से (आत्मा में कोई शक्रया नहीं ंहोती) एकत्व स्र्ाशपत करो तो बस, कमथ चाहे कैसा और शकतना ही क्यों ंन करो, तब कमथ कमथ नहीं ंहोता। यह अकमथ है, कमथ में। इस प्रकार के अभ्यास से और भाव से कमथ अपनी बन्ध प्रकृशत को त्याग देता है।

कोई मनुष्य शान्त बैठा रहे, शनम्भिय बैठा रहे; शकन्तु यशद उसमें कताथपन का भाव रहता है, तो शान्त रहते हुए भी वह कमथ कर रहा है। यह अकमथ में कमथ है। चंचल मन सदा सशक्रय रहता है। यद्यशप मनुष्य चुपचाप बैठा हो, मन शक्रयाशील है, तो कमथ हो रहा है। मन के कमथ ही वास्तशवक कमथ हैं। क्षण-भर के शलए भी मनुष्य शबना कमथ शकये नहीं ंरह सकता; क्योंशंक प्रकृशतवश हो कर वह कमथ करने के शलए बाध्य हो िाता है। (शनरूपण – ।।।.5)

अकमथ, अहंभाव को भी प्ेरेररत करता है। शनम्भिय व्यम्भक् कहता है-“मैं शान्त बैठा हाँ, मैं कुछ नहीं ंकर रहा", कमथ की भााँशत अकमथ भी आत्मा पर शमथ्या रूप से आरोशपत है।

इस सत्य को िानने वाला सब कमों का कताथ है। उसने सब कमों का अन्त अर्ाथत् मोक्ष, ज्ञान अर्वा पूणथत्व को प्राप्त कर शलया है।

बि एक अशग्न नौका (steamer) चलती है, तो तट पर लगे गशतहीन वृक्ष मानो शवपरीत शदशा में चलते हुए शदखायी देते हैं। नौका में बैठे व्यम्भक् को ऐसा आभास होता है। इसके शवपरीत सुदूर शदशा में गशतशील पदार्थ ि़ि अर्वा गशतहीन से दृशष्टगोचर होते हैं। आत्मा के शवषय में भी इसी भाँशत कमथ को अकमथ में और अकमथ को कमथ में देखा िाता है।

आत्मा अकताथ है, शनम्भिय है। शरीर और इम्भियाँ कमथ करती हैं। अज्ञानी व्यम्भक् शरीर और इम्भियों ंके कमथ को शमथ्या रूप से अकताथ आत्मा में ही आरोशपत करते हैं। इसीशलए अज्ञानी सोचता है-"मैं कताथ हाँ।" वह आत्मा को कमथ का कताथ अर्वा प्रशतशनशध समझता है। यह भूल है, अज्ञान है।

शिस प्रकार से नौका में बैठे व्यम्भक् को तट पर ख़िे वृक्ष शवपरीत शदशा में गशत करते आभाशसत होते हैं, यद्यशप वे गशतहीन हैं, उसी प्रकार वसुतुतः कमथ आत्मा में नहीं ंहोता।

आत्म-साक्षात्कार होने पर िन्म-मरण के कारक इस अज्ञान का शवनाश हो िाता है।

यस्य सवे समारम्भाः कामसंकल्पवडजमताः ।
ज्ञानाडग्नदग्धकमामणं तमाहः पन्द्रण्डतं बुधाः ।।१९ ।।

बि्र्थम : यस्य-शिसके, सवे-समस्त, समारम्भाः-शास्त्रशवशहत कमथ, कामसंकल्पवशिथताः- इच्छा और संकल्प से रशहत, ज्ञानाशग्नदग्धकमाथणम् - शिसके कमथ ज्ञान रूपी अशग्न में िल गये हैं तम् -उसे, आहु: -कहते हैं , पम्भण्डतम् -
ज्ञानी, बुधाः-शविान् ।

अनुवाद : शिसके समस्त कमथ कामनाशून्य और संकल्पशून्य हैं और शिसके कमथ ज्ञान रूप अशग्न में भस्म हो चुके हैं, ऐसे साधु पुरुष को शविान् लोग भी पम्भण्डत कहते हैं।

व्याख्या : िनगण के समक्ष दृष्टान्त प्रसुतुत करने के भाव से ज्ञानी कमथ करता है। कमथ करते हुए भी वह कमथ नहीं ं करता; क्योंशंक वह शनःस्वार्थ है, क्योंशंक आत्मज्ञान के िारा उसने कमथ में अकमथ का ज्ञान प्राप्त कर शलया है और उसके समस्त कमथ ज्ञानाशग्न में दग्ध हो चुके हैं। ब्र्ह्मज्ञान शवशाल आध्याम्भत्मक अशग्न है िो शुभ-अशुभ सब प्रकार के कमथफल का भक्षण करती है और तीिद्दीप्त साधक को कमथ-बन्धन से मुक् करता है। पूणथ त्यागमय िीवन यापन करने वाला मुशन शरीर के शनवाथह के शलए अशनवायथ कमथ ही करता है। (शनरूपण -III.19; IV.10, 37)

त्यक्त्वा कममफलासङ्गंडनत्यतृप्तो डनराश्रयः ।
कममण्र्डभप्रवृत्तोऽडप नैवडकडश्चत्करोडत सः ।।२० ।।

बि्र्थम : त्यक्त्वा-त्याग कर, कमथफलासङ्गम् -कमथफल के प्रशत आसम्भक्, शनत्यतृप्तः - सदा सनुतुष्ट, शनराश्रयः - आश्रय रशहत, कमथशण-कमथ में, अशभप्रवृत्तः - प्रवृत्त, अशप - भी, न-नहीं, ं एव-ही, शकशञ्चत् -कुछ भी, करोशत- करता है,
सः- वह ।

अनुवाद : कमथफल के प्रशत आसम्भक् को त्याग कर, सवथदा तृप्त रह कर और शकसी का आश्रय न ले कर वह शक्रयाशील होते हुए भी कुछ नहीं ंकरता।

व्याख्या : साधक के मन में, कमथ में अकमथ के भाव को दृढ़ करने के शलए उसी तथ्य की पुनरावृशत्त की गयी है। वह ो शवश्व में दूसरों ंके कल्याण में लगा है, फलासम्भक्शून्य और अहंकारशून्य हो कर कमथ करता है, िनगण के समक्ष दृष्टान्त स्र्ाशपत करने के शलए कायथ करता है, वह सदा कमथ में रत रहते हुए भी वस्तुतः कुछ नहीं ंकरता; क्योंशंक वह आत्मज्ञानी है। उसने उस आत्मा से एकत्व स्र्ाशपत कर शलया ो कमथ से परे है।

क्योंशंक ब्र्ह्मन्, परम शपता परमात्मा, स्वयंभू है, समस्त कामनाएँ स्वतः ही शान्त हो ाती हैं, ब उसका ज्ञान हो ाता है। शिस प्रकार से एक रािा का अनुग्रह प्राप्त होने पर शकसी मनुष्य को शकसी भी वस्तु के शलए मन्त्री अर्वा सरकारी कायथकताथ पर शनभथर नहीं ंरहना प़िता, उसी प्रकार परमात्मा पर शनभथर रहने वाला व्यम्भक् सवथदा तृप्त रहता है, उसे शकसी अन्य पर शनभथर नहीं ंरहना प़िता । (शनरूपण-IV.41)

डनरीीयमतडचत्तिाा त्यक्तसवमपररग्रिः ।
ारीरं केवलं कमम कुवमिाप्नोडत डकन्द्रिषम् ।।२१ ।।

ब्र्िार्थम : शनराशीः- आशा रशहत (आप्तकाम), यतशचत्तात्मा-मन और बुम्भद्ध को वश में करने वाला, त्यक्सवथपररग्रहः-पररग्रह (स्वाशमत्व) का त्याग करने वाला, शारीरम् - शरीर के, केवलम् -केवल, कमथ-कमथ, कुवथन् -करता हुआ, न-नहीं,ं आप्नोशत -प्राप्त करता है, शकम्भिषम् -पाप (दोष) को।

अनुवाद : शकसी प्रकार की आकाङ्क्षा न रखते हुए, मन और बुम्भद्ध को संयत कर के सब प्रकार के पररग्रह (लोभ लालच-स्वाशमत्व) का त्याग करने वाला व्यम्भक् शरीर से कमथ करते हुए भी पाप का भागी नहीं ंबनता, उसे (कमथफल का) दोष नहीं ंलगता।

व्याख्या : ीविनुमुक् महापुरुष शरीर के शनवाथह के शलए अशनवायथ कमथ ही करता है, शेष समस्त कमों का त्याग कर देता है। वह समस्त भोग-सामग्री का भी त्याग कर देता है। अशुभ फल देने वाला वह कोई पाप कमथ नहीं ं करता । मुमुकुषु के शलए तो धमथ-कमथ भी पाप है; क्योंशंक वह भी उसे संसार के बन्धन में ालेगा। धमथ एक स्वणथ-पाश है। स्वणथ-पाश भी तो पाश (बन्धन) ही है। ज्ञानी पुरुष धमथ और अधमथ, शुभ और अशुभ तर्ा पाप और पुण्य से मुक् होता है। (शनरूपण-III.7)

यदृच्छालाभसतुष्टो न्द्वाितीतो डवमत्सरः ।
समः डसद्धावडसद्धौ च कृत्वाडप न डनबध्यते ।। २२ ।।

ब्र्िार्थम : यदृच्छालाभसनुतुष्टः- स्वतः प्राप्त वसुतु से सनुतुष्ट, न्र्तीतः सुखदुःखाशद न्र्ी ंसे परे, शवमत्सरः- ष रशहत, समः समान, शसद्धौ-सफलता में, अशसद्धौ-शवफलता में, च-और, कृत्वा कर के, अशप-भी, न-नहीं,ं शनबध्यते- बाँधता ।

अनुवाद : ो मनुष्य स्वतःप्राप्त लाभ में सनुतुष्ट रहता है, ो न्र्ी ंसे परे है और ईष्याथ रशहत है, शसम्भद्ध और अशसम्भद्ध अर्ाथत् सफलता और शवफलता में सम (म्भस्र्रधी) है, वह कमथ करते हुए भी उसके बन्धन में नहीं ंआता।

व्याख्या : स्वतःप्राप्त वसुतु में ज्ञानी पुरुष आनन्द में रहता है। चतुर्थ अध्याय के श्लोक १८ से २३ तक आत्म-ज्ञान के फल की पुनरुम्भक् है, ि (ज्ञान) कमथ से अतीत है। 'कमथ रशहत' आत्म-तत्त्व से एकत्व स्राशपत करने वाला योगी बन्धन में नहीं ंआता; क्योंशंक ि न्म-मृतुयु के बन्धन में िलने वाले उनके कमथ और उसके कारण ब्ह्म-ज्ञान की अशग्न में भस्म हो िाते हैं। आग में भस्म हो चुके बिी शिस प्रकार अंकुररत नहीं ंहोते, उसी प्रकार ज्ञानाशग्न में भस्म हुए
कमथ भावी िन्म लाने में असमर्थ होते हैं।
सामान्य लोग एक ज्ञानी को कमथ करते देख कर उसे कताथ, प्रशतशनशध, शक्रयाशील और बन्धन में पिा हुआ मान लेते हैं। यह उनकी भूल है। अपनी ही दृशष्ट में वह यर्ार्थतः प्रशतशनशध कदाशप नहीं ंहै। वह वास्तव में कोई कमथ नहीं ंकरता। वह अनुभव करता है और कहता है- "मैं तो कुछ भी नहीं ंकरता । प्रकृशत करती है अर्वा प्रकृशत के तीन गुण ही सब-कुछ करते हैं।

वह सदा म्भरूर रहता है; अतः शीत-उष्णता (सरदी-गरमी) सुख-दुःख, सफलता-शवफलता उसे प्रभाशवत नहीं ंकरते। शरीर के शनवाथह के शलए अशनवायथ सामग्री में भी उसकी आसम्भक् नहीं ंरहती। शरीर के पोषण के शलए भोिन अर्वा अन्य वसुतुएँ प्राप्त होने पर वह प्रसन्न नहीं ंहोता और अप्राम्भप्त पर दुःखी नहीं ंहोता। उसका कारण है शक वह अपनी मूल प्रकृशत सत्-शचत्-आनन्द (सम्भिदानन्द स्वरूप) में म्भरूत है। वह आनन्द के सागर में शहलोरें ले रहा है; इसीशलए वह शरीर और इसकी आवश्यकताओं ंके प्रशत उदासीन रहता है।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावन्द्रथर्थतचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कमम समग्रं प्रडवलीयते ।। २३ ।।

बि्ार्थम : गतसङ्गस्य-शिसकी आसम्भक् समाप्त हो चुकी है, मुक्स्य-मुक् पुरुष का, ज्ञानावम्भरूतचेतसः- शिसका शचत्त ज्ञान में म्भरूत है, यज्ञाय-यज्ञ के शलए, आचरतः - आचरण करते हुए, कमथ-कमथ, समग्रम् -समस्त, प्रशवलीयते-शवलीन हो िाता है।

अनुवाद : उस व्यम्भक् के समस्त कमथ शवलीन हो िाते हैं ि यज्ञ (परमात्मा) के शलए कमथ करता है, आसम्भक् रशहत है, मुक् है और शिसका शचत्त ज्ञान में म्भरूत हो गया है।

व्याख्या : आसम्भक् रशहत, कमथ-बन्धन से मुक्, ज्ञान में केम्भित शचत्त वाले और केवल परमात्मा को प्रसन्न करने के शलए अनुष्ठान करने वाले व्यम्भक् के समूपूणथ कमथ फल-सशहत शवलीन हो िाते हैं, शून्य हो िाते हैं। वसुतुतः वे कमथ होते ही नहीं ंहैं।

ब्रह्मापमणं ब्रह्मिडवब्रमह्माग्नौ ब्रह्मणा हतम् ।
ब्रह्मैव तेन गतव्ंयं ब्रह्मकममसमाडधना ।।२४ ।।

बि्ार्थम : ब्ह्म-ब्ह्म, अपथणम्-आहुशत, ब्ह्म-ब्ह्म, हशवः- हशव (घृशत), ब्ह्माग्नौ-ब्ह्म रूप अशग्न में, ब्ह्मणा-ब्ह्म के िारा, हुतम् - अशपथत शकया गया, ब्ह्म-ब्ह्म, एव-ही, तेन-उसके िारा, गन्तव्यम् - प्राप्त शकया िाता है, ब्ह्मकमथसमाशधना-ब्ह्म रूपी कमथ में लीन व्यम्भक् के िारा।

अनुवाद : ब्ह्म ही हव्य (आहुशत) है, ब्ह्म ही घृत है, ब्ह्म रूप अशग्न में अशपथत शकया िा रहा हव्य भी ब्ह्म है, वह सदा शनशश्चत रूप से ब्ह्म को ही प्राप्त होता है ि प्रत्येक कमथ में ब्ह्म को ही देखता है।

व्याख्या : यह ज्ञान-यज्ञ (wisdom-sacrifice) है शिसमें कमथ के साधन और सामग्री के भाव में ब्र्ह्मभाव का आदेश शदया गया है। इसमें कमथ भी ब्र्ह्म है और कमथ-फल भी ब्र्ह्म है। ऐसे भाव में प्रवेश पा लेने के पश्चात्, िैसा शक पूवथ-श्लोक (२३) में कहा है, सभी कमथ क्षीण हो िाते हैं।

आत्म-साक्षात्कार होने पर समूपूणथ िीवन मानो एक ज्ञान-यज्ञ हो िाता है शिसमें हव्य सामग्री, घृत, यज्ञकताथ, कमथ और लक्ष्य सभी ब्र्ह्म हैं। िो ब्र्ह्म पर इस शवशध से पूणथ ध्यान एकाशग्रत करेगा, शनशश्चत रूप से ब्र्ह्म को प्राप्त होगा।

आत्म-ज्ञानी िानता है शक हव्य, अशग्न, उपकरण शिसके िारा घृत अशग्न में िाला िाता है और वह स्वयं, इन सबका ब्र्ह्म के अशतररक् स्व-अम्भस्तत्व नहीं ंहै। अपरोक्षानुभव में ब्र्ह्म का ज्ञान होने पर योगी कमथ करते हुए भी मानो कताथ नहीं ंहै। ज्ञानी के शलए सब कमों का अभाव ही हो िाता है। (शनरूपण-III.15)

दैवमेवापरे यज्ंञं योडगनः पयुमपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ंञं यजे्ञेनैवोपजुह्वडत ।। २५ ।।

बि्र्थम : दैवम् -देवताओं ंसे सम्बम्भन्धत, एव-ही, अपरे अन्य, यज्ञम् यज्ञ, योशगनः-योगी, पयुथपासते-पिूा करते हैं, ब्र्ह्माग्नौ-ब्र्ह्म रूप अशग्न में, अपरे अन्य, यज्ञम्-यज्ञ, यजे्ञेन-यज्ञ के िारा, एव-शनशश्चत रूप से, उपिुह्वशत-अशपथत करते हैं।

अनुवाद : कुछ योगी िन देवाराधना रूप यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, अन्य योगी, शिन्ोंनें आत्म-ज्ञान प्राप्त कर शलया है, ब्र्ह्म रूपी अशग्न में आत्मा के िारा आत्मा को ही अशपथत कर शदया करते हैं।

व्याख्या : कमथयोग में भम्भक्भाव रखने वाले योगी देवताओं ंके शलए यज्ञ आशद अनुष्ठान शकया करते हैं। दूसरा यज्ञ है 'ज्ञान-यज्ञ' (wisdom-sacrifice) िो ज्ञाशनयों ंिारा शकया िाता है। इस यज्ञ में आहुशत आत्मा की दी िाती है। यहााँ यज्ञ का अशभप्राय आत्मा से है। उपाशधयााँ अर्वा मयाथशदत अनुबन्ध िैसे भौशतक शरीर, मन, बुम्भद्ध आशद, शिनका ब्र्ह्म में अज्ञानवश अध्यारोपण शकया िाता है, बोधातीत हो िाते हैं अर्ाथत् समाशध की अवस्र्ा प्राप्त करने पर इन सबका बोध नहीं ंरह िाता और िीवात्मा परमात्मा से एकरूप हो िाता है। आत्मा को ब्र्ह्म में अपथण करने का अशभप्राय है अपरोक्षानुभूशत करना शक 'आत्मा ब्र्ह्म से पृर्क् नहीं ंहै, एक है।' यह सिो ज्ञान है। ब्र्ह्मशनष्ठ योगी ऐसा ही यज्ञ करते हैं। अन्य सभी यज्ञों ंसे यह यज्ञ उतृ्कष्ट है।

श्रोत्रादीनीन्द्रियार्ण्न्ये संयमाडग्नषु जुह्वडत ।
बि्दीन्द्रन्वषयानन्य इन्द्रियाडग्नषु जुह्वडत ।। २६ ।।

बि्र्थम : श्रोत्रादीशन इम्भियाशण-श्रवणेम्भिय तर्ा अन्य इम्भियााँ, अन्ेये-अन्य, संयमाशग्नषु-संयम रूप अशग्न में, िुह्वशत-हवन करते हैं, शब्दादीन् शवषयान् - शब्दाशद इम्भिय-शवषय, अन्ेये-अन्य, इम्भियाशग्नषु-इम्भियों ंकी अशग्न में, िुह्वशत-यिन करते हैं।

अनुवाद : अन्य योगी िन संयम की अशग्न में श्रवणाशद इम्भियों ंका हवन करते हैं, िब शक और योगी इम्भियों ंकी अशग्न में शब्दाशद शवषयों ंका यिन करते हैं।

व्याख्या : कुछ योगी सतत इम्भिय-संयम में लगे रहते हैं। वे आत्मा के प्रकाश में इम्भियों ंको संहृत करके उन्‍ उनके शवषयों ंके सम्पकथ से रोकते हैं। यह भी एक प्रकार का यज्ञ है। अन्य योगी अपनी इम्भियों ंको पावन और अशनशषद्ध शवषयों ंकी ओर उनुमुख करते हैं। यह भी एक यज्ञ है।

सवामणीन्द्रियकमामडण प्राणकमामडण चापरे ।
आिसंयमयोगाग्नौ जुह्वडत ज्ञानदीडपते ।।२७ ।।

बिार्थम : सवाथशण-सब, इम्भियकमाथशण-इम्भियों ंके कमथ, प्राणकमाथशण- प्राणों ंके कमथ, चऔर, अपरे— अन्य,
आत्मसंयमयोगाग्नौ-आत्मसंयम रूप योग की अशग्न में, िुह्वशत-आहुशत देते हैं, ज्ञानदीशपते–ो ज्ञान िारा िलायी िाती है।
अनुवाद : अन्य साधक ज्ञान से उद्दीप्त आत्म-संयम की अशग्न में अन्य इम्भियों ंऔर प्राण की समस्त शक्रयाओं ंको समशपथत करते हैं।

व्याख्या : शिस प्रकार तेल से दीप िलाया िाता है, उसी प्रकार आत्मसंयम की योगाशग्न ज्ञान से प्रज्वशलत की िाती है। योगी िब अपने मन को आत्मा अर्वा ब्र्ह्म पर एकाग्र करता है, तब इम्भियााँ और प्राण अपनी शक्रया त्याग कर शशर्ल हो िाते हैं। इम्भियााँ और प्राण अपने कारण में शवलीन हो िाते हैं।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तर्थापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संडितव्रताः ।।२८ ।।

बिार्थम : िव्ययज्ञाः- वे लोग िो अपनी सम्पशत्त को यज्ञ में समशपथत करते हैं (सम्पशत्त का यज्ञ करने वाले लोग), तपोयज्ञाः- तपों ंका यज्ञ करने वाले, योगयज्ञाः योग का हवन करने वाले, तर्ा- इस प्रकार, अपरे अन्य, स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः स्वाध्याय और ज्ञान का यज्ञ करने वाले, च-और, यतयः यशत (वानप्रस्र्ी) अर्वा आत्म-संयत, संशतिताः-कठोर ितधारी ।

अनुवाद : अन्य अपनी भौशतक सम्पशत्त को, तपस्या को, योग को यज्ञ के रूप में समशपथत करते हैं, िब शक दृढ़ ितधारी और आत्म-संयमी मुशन िन अपने अध्ययन और ज्ञान का यिन करते हैं।

व्याख्या : दान के रूप में सुपात्र को सम्पशत्त दे कर कुछ लोग यज्ञ करते हैं। कुछ तपस्या में लीन हो िाते हैं, यही उनका यज्ञ है। अन्य कुछ अष्टाङ्गयोग अर्ाथत्‍ यम, शनयम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाशध का समपथण करते हैं। कुछ शास्त्राध्ययन करते हैं और इसे यज्ञ रूप में अशपथत करते हैं।

नोट : यम-पााँच महान्‍ ित, शनयम-सदाचार के पााँच शनयम, आसन मुिा, प्राणायाम-श्वास पर शनयन्त्रण, प्रत्याहार- इम्भियों ंको वश में करना, धारणा एकाग्रता, ध्यान-ध्यान, समाशध-तुयाथवस्र्ा ।

अपाने जुह्वडत प्राणं प्राणेऽपानं तर्थाऽपरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ।।२९ ।।

बिार्थम : अपाने-अपान वायु में (शनम्नगामी श्वास में), िुह्वशत-अशपथत करते हैं, प्राणम्‍ -प्राण को, प्राणे-भीतर आने वाले श्वास में, अपानम्-अपान को (बाह्य िाने वाले श्वास को), तर्ा- इस प्रकार, अपरे -अन्य, प्राणापानगती-बाहर

और भीतर की वायु अर्ाथत् अपान और प्राण की गशतयों ंको, रुद्ध्वा-रोक कर, प्राणायामपरायणाः केवल प्राणायाम में संलग्न अर्ाथत् श्वास-प्रश्वास पर संयम रखने का अभ्यास करने वाले ।

अनुवाद : अन्य योगी अपान वायु में प्राण वायु का हवन करते हैं और अन्य कोई प्राण में अपान का हवन करते हैं अर्ाथत् पूरक और रेचक प्राणायाम करते हैं। इस प्रकार श्वास-प्रश्वास की प्रशक्रयाओं ंको रोक कर अन्य प्राणायाम-परायण योगी िन (कुम्भक िारा) श्वास को संयत करते हैं।

व्याख्या : कुछ योगी पूरक (श्वास भीतर खीचंना) का अभ्यास करते हैं। अन्य रेचक (श्वास बाहर रोकना) का अभ्यास करते हैं और कुछ योगी कुम्भक (श्वास को रोकना) का अभ्यास करते हैं।

पााँच उप-प्राण एवम् अन्य प्राण, प्राणायाम के अभ्यास से मुख्य प्राण में लीन हो िाते हैं। प्राण का शनग्रह होने पर मन भी इतस्ततः भागना त्याग कर म्भस्र्र हो िाता है। इम्भियााँ भी सूक्ष्म हो कर प्राण में शवलीन हो िाती हैं। प्राण के सुफुरण मात्र से मन और इम्भियों ंकी प्रशक्रयाओं ंको वश में रखा िाता है। प्राण संयत हो िाये, तो मन, बुम्भद्ध और इम्भियााँ अपना कायथ छोि़ देती हैं।

अपरे डनयतिाारा: प्राणान्प्राणेषु जुह्वडत ।
सवेऽप्येते यज्ञडवदो यज्ञक्षडपतकल्मषाः ।।३० ।।

बि्र्थम : अपरे -अन्य लोग, शनयताहाराः- आहार को शनयशमत करने वाले, प्राणान् -प्राणों ंको, प्राणेषु-प्राणों ंमें, ुह्वशत-अशपथत करते हैं, सवे-सब, अशप-भी, एते-ये, यज्ञशवदः-यज्ञ के ज्ञाता, यज्ञक्षशपतकल्मषाः - शिनके पाप यज्ञ से नष्ट हो चुके हैं।

अनुवाद : अन्य लोग अपना आहार शनयशमत कर के प्राणों ंका प्राणों ंमें हवन करते हैं। ये सब यज्ञ के ज्ञाता हैं शिनके समस्त पाप यज्ञ िारा नष्ट हो चुके हैं।

व्याख्या : 'शनयताहाराः' का अशभप्राय है-शनयशमत अर्वा अल्पाहार करने वाले । वे सनुतुशलत भोिन करते हैं। आहार में कठोर शनयमों ंका पालन कर के वे कमेम्भियों ंकी प्रशक्रयाओं ंको शशर्ल कर के क्ुषुधा और वासना पर शविय प्राप्त करते हैं।

योगी अपनी प्राणवायु को वशीकृत (शनग्रहीत) प्राण में िाल देते हैं। इस प्रकार प्राण मुख्य प्राण में शवलीन हो िाता है।

उपयुथक् यज्ञ के अनुष्ठान से मन पररमाशिथत (शुद्ध) होता है और पापों ंका शवनाश होता है।

यज्ञडिष्टामृतभुजो यान्द्रत ब्रह्म सनातनम् ।
नायंलोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ।।३१। ।

बि्र्थम : यज्ञशष्टामृतभिुः- यज्ञावशेष रूप अमृत का पान करने वाले, याम्भन्त-प्राप्त होते हैं, ब्ह्म-ब्ह्म को, सनातनम् -सनातन, न-नहीं, ं अयम् यह, लोकः-लोक, अम्भस्त- है, अयज्ञस्य-यज्ञ न करने वाले का, कुतः कहााँ से, अन्यः-अन्य, कुरुसत्तम-कुरुश्ेरेष्ठ ।

अनुवाद : हे कुरुश्रेष्ठ अिुथन, अमृत समान यज्ञावशेष का सेवन करने वाले शाश्वत ब्र्ह्म को प्राप्त होते हैं। यज्ञ न करने वाले के शलए तो यह संसार ही (सुखद) नहीं ंहै, शफर परलोक की तो बात ही क्या?

व्याख्या : ऊपर वशणथत शास्त्रशवशहत यज्ञों ंका अनुष्ठान कर के मन शुद्ध होने पर आत्म-ज्ञान प्राप्त कर के समय के सार् योगी िन सनातन ब्र्ह्म को प्राप्त होते हैं। उनमें से शकसी भी यज्ञ का पालन न करने वाला इस दु:खमय लोक के शलए भी उपयुक् नहीं ंहै, शफर इससे श्रेष्ठतर लोक की वह कामना भी कैसे कर सकता है? (शनरूपण-III.13)

एवं बहडवधा यज्ञा डवतता ब्रह्मणो मुखे ।
कममजान्द्रन्वन्द्रद्धतान्सवामनेवंज्ञात्वा डवमोक्ष्यसे ।।३१।

बिार्थम : एवम् - इस प्रकार, बहुशवधाः- अनेक प्रकार के, यज्ञाः यज्ञ, शवतताः - शवस्तीणथ हैं (बताये गये हैं), ब्र्ह्मणः - ब्र्ह्म अर्वा वेद के, मुखे-मुख में, कमथिान् -कमथ से उत्पन्न, शवम्भद्धि–ानो, तान्-उन, सवाथन् -सबको, एवम् - इस प्रकार, ज्ञात्वाि–ान कर, शवमोक्ष्यसे मुक् हो िाओगे।

अनुवाद : इस प्रकार वेदों ंमें अनेक प्रकार के यज्ञों ंका वणथन है। उन्ें कमथ से उत्पन्न हुआ िानो । ऐसे ज्ञान प्राप्त कर के तुम बन्धन-मुक् हो िाओगे ।

व्याख्या : 'ब्र्ह्मणः' का अर्थ वेदों ंमें ऐसा भी शनरूशपत शकया गया है।

अनेक प्रकार के यज्ञ ब्र्ह्म के मुख में शवसूतृत हैं अर्ाथत् वेदों ंमें आचशक्षत हैं। उन्ें कमथ से उत्पन्न हुआ ही िानो; क्योंशंक आत्मा कमथ से परे है। यशद तुम्हें यह ज्ञान हो िाये शक इन कमों का तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं,ं वे कमथ तुम्हारे नहीं ंहैं और तुम कमथ रशहत (शनष्काम) हो, तो इस सम्यक् ज्ञान को प्राप्त कर शनशश्चत रूप से तुम संसार के बन्धन से मुक् हो िाओगे। (शनरूपण - IX.27; XIII.15)

श्रेयिाव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परतप ।
सवं कमामन्द्रखलं पार्थम ज्ञाने पररसमाप्यते ।। ३३ ।।

बिार्थम : श्रेयान् - अशधक अच्छा, िव्यमयात् िव्यमय (से), यज्ञात् यज्ञ से, ज्ञानयज्ञः- ज्ञान-यज्ञ, परन्तप - हे शतुरुओं

को सताने वाले, सवथम् सवथ, कमथ-कमथ, अम्भखलम् -पूणथ रूप से, पार्थ-अिुथन, ज्ञाने-ज्ञान में, पररसमाप्यते समाप्त होते हैं।

अनुवाद : हे अिुथन, िव्य (सामग्री) िारा शकये िाने वाले यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान-यज्ञ अशधक अच्छा है; क्योंशंक अन्ततोगत्वा सब कमथ पूणथतया ज्ञान में ही समाप्त होते हैं।

व्याख्या : भौशतक पदार्ों से शकये िाने वाले यज्ञ भौशतक कायों (effects) के कारण (cause) बनते हैं और उसका फल भोगने के शलए यज्ञकताथ को इस भौशतक िगत् में पुनः अवतररत होना पड़ता है। ज्ञान-यज्ञ मोक्षप्रद होता है। िैसे नशदयाँ समुि में शवलीन हो िाती हैं, उसी प्रकार समस्त कमों का अन्तभाथव ज्ञान में होता है। समस्त कमथ हृदय को पररमाशिथत करते हुए ज्ञानोदय की ओर अग्रसर करते हैं। आत्म-ज्ञान में ही कमों का अन्त है।

परमात्मा को समशपथत शकये गये फल सशहत सारे कमथ ब्र्ह्मज्ञान में शनशहत हैं। (शनरूपण-IX.15; X.25; XVIII.70)

तडिन्द्रद्ध प्रडणपातेन पररप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्द्रत ते ज्ञानं ज्ञाडननस्तत्त्वदडिमनः ।। ३४ ।।

ब्रि्थिम : तत् -वह, शवम्भद्धि–िनो, प्रशणपातेन-दण्डवत् प्रणाम िारा, पररप्रश्नेन-प्रश्न िारा, सेवया-सेवा के िारा, उपदेक्ष्यम्भन्त-उपदेश देंगे, ते-तुम्हें, ज्ञानम् ज्ञान, ज्ञाशननः- ज्ञानी िन, तत्त्वदशथनः सत्य को िानने वाले ।

अनुवाद : उस ज्ञान का उपदेश तुम्हें तत्त्वदशी (ज्ञानी) लोग देंगे। उसे तुम दण्डवत् प्रणाम िारा, प्रश्नोत्तर िारा और सेवा से प्राप्त करो।

व्याख्या : शास्त्रों ंमें पारंगत ब्र्ह्मश्रोशत्रय अर्वा ब्र्ह्मशनष्ठ गुरु के समीप िाओ। पूणथ भम्भक्भाव से सशवनय दण्डवत् प्रणाम करो। प्रश्न पूछो-"हे समादरणीय गुरुदेव ! बन्धन का कारण क्या है? मैं मुक् कैसे हो सकता हाँ? अज्ञान की प्रकृशत क्या है? ज्ञान की प्रकृशत क्या है? आत्म-साक्षात्कार हेतु अन्तरङ्ग साधना क्या है?" श्रद्धाभाव से गुरु की सेवा करो। शास्त्र में शनपुण होने पर भी आत्म-ज्ञानी न होने पर गुरु तुम्हें आत्म-ज्ञान नहीं ंदे सकता। उस ज्ञान को प्राप्त करने अर्वा ब्र्ह्मज्ञानी बनने के शलए तुम्हें ऐसे गुरु के पास ही िाना होगा िो शास्त्र-शनपुण भी हो और ब्र्ह्मज्ञानी भी हो। मात्र प्रशणपात से ज्ञान नहीं ंशमलेगा। उसमें दम्भ का आभास हो सकता है। गुरु में अपूवथ श्रद्धा और शवश्वास होना चाशहए । श्रद्धा और भम्भक्भाव से गुरु की सेवा करनी चाशहए, तब दम्भ के शलए स्र्ान नहीं ंरहेगा।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोमेवं यास्यडस पाण्डव ।
येन भूतान्यिेषेण द्रक्ष्यस्यािन्यर्थो मडय ।।३५ ।।

ब्रि्थिम : यत्–ि, ज्ञात्वा–िान कर, न -नहीं,ं पुनः -पुनः, मोहम् -मोह को, एवम् - इस प्रकार, यास्यशस-प्राप्त करोगे, पाण्डव- हे पाण्डव, येन-शिसके िारा, भूताशन-प्राणी, अशेषेण-सभी, िक्ष्यशस देखोगे, आत्मशन-(शनि) आत्मा में, अर्ो-भी, मशय - मुझमें।

अनुवाद : हे अिुथन, उस ज्ञान को प्राप्त करने पर तुम पुनः भ्रम में नहीं ंपड़ोगे। उस ज्ञान से तुम समस्त प्राशणयों ंको अपने भीतर और शफर मुझमें भी देखोगे ।

व्याख्या: पूवथ श्लोक में शनशदथष्ट आत्म-ज्ञान, िो प्रशणपात, पररप्रश्न और सेवा िारा ब्र्ह्मशनष्ठ गुरु से प्राप्त करना है, उस ज्ञान को प्राप्त कर लेने पर तुम पुनः भ्रशमत नहीं ंहोओगे। तुम तो उस मूल एकत्व का दशथन करोगे। अपरोक्षानुभूशत में, अर्वा अपनी आत्मा के आलोक में अर्वा भावातीत ज्ञान में तुम अनुभव करोगे शक सृशष्टकताथ से ले कर तृण पयथन्त समस्त प्राणी तुम्हारे भीतर हैं और मुझमें भी हैं। (शनरूपण - IX.15; XVIII.20)

अडप चेदडस पापेभ्यः सवेभ्यः पापकृत्तमः ।
सवं ज्ञानप्लवेनैव वृडजनं सतररष्यडस ।। ३६ ।।

ब्रि्थिम : अशप-भी, चेत्-यशद, अशस-हो, पापेभ्यः -पाशपयों ंसे, सवेभ्यः सभी (से), पापकृत्तमः-सवाथशधक पापी, सवथम् -सब, ज्ञानप्लवेन-ज्ञान रूपी नौका से, एव-ही, वृशिनम् -पाप, सन्तररष्यशस-पार कर िाओगे।

अनुवाद : यशद तुम अन्य पाशपयों ंसे भी अपेक्षाकृत अशधक पापी हो, तो भी शनशश्चत रूप से ज्ञान रूपी नौका िारा पाप के सागर से तर िाओगे।

व्याख्या : तुम आत्म-ज्ञान की नाव से पाप के सागर के पार पहुँच सकते हो। (शनरूपण-IX.30)

यरै्थैधांडस सडमद्धोऽडग्नभमस्मसातुकुरुते ऽजुमन ।
ज्ञानाडग्नः सवमकमामडण भस्मसातुकुरुते तर्था ।। ३७ ।।

बि्ार्थम : यरा्ि–से, एधांशस-ईंधन को, सशमद्धः िलती हुई, अशग्नः-अशग्न, भस्मसातुकुरुते-भस्म कर देता है, अिुथन-हे अिुथन, ज्ञानाशग्नः- ज्ञान रूपी अशग्न, सवथकमाथशण-सब कमों को, भस्मसातुकुरुते-भस्म कर देता है, तरा्-वैसे ही।

अनुवाद : हे अिुथन, शिस प्रकार से प्रज्ज्वशलत अशग्न ईंधन को भस्म कर देता है, उसी प्रकार ज्ञानाशग्न समस्त कमों को भस्म कर देता है।

व्याख्या : लिे हुए बिी शिस प्रकार अंकुररत नहीं ंहो सकते, उसी प्रकार ज्ञानाशग्न में दग्ध कमथ भी फल नहीं ंदे सकते अरा्थत् कमथ-फल को भोगने के शलए तब मनुष्य को इस संसार में पुनः नहीं ंआना पिे़गा। कमथ को भस्मसात् करना यही है। ज्ञानाशग्न में दग्ध हो कर कमथ अपनी शम्भक् खो देते हैं। ज्ञानोदय होने पर अशग्न में ईंधन की भाँशत ज्ञान में कमथ भस्म हो िाते हैं। िब अहंभाव शून्य को प्राप्त हो गया, कामनाएँ नहीं ंरहीं,ं फल की इच्छा शून्य हो गयी तो कमथ नहीं ंरहा । इसकी शम्भक् समाप्त हो गयी। शिन प्रारब्ध कमों के कारण यह शरीर सत्ता में आया है और प्रारब्ध कमथ का फल भोग रहा है, उन प्रारब्ध कमों को छोि़ कर अन्य सभी कमों को ज्ञानाशग्न भस्म करने में समर्थ है। शंकराचायथ अपनी अपरोक्षानुभूशत में तो प्रारब्ध कमों के भी भस्म होने की बात शलखते हैं।

वेद में भी स्पष्ट रूप से कमों के नष्ट होने का तथ्य बहुवचन में वशणथत है-"उसके कमथ नष्ट हो िाते हैं, िब परमात्मा का ज्ञान हो िाता है", स्वाभाशवक है, यहाँ प्रारब्ध कमथ से भी वेद का तात्पयथ रहा है।

पूवथकृत् कमों के फल, प्रशतशक्रया अर्वा कमथ तीन प्रकार के हैं। प्रारब्ध कमथ वे कमथ हैं शिनके कारण यह शरीर शमला है। संशचत कमथ वे अवशष्ट कमथ हैं िो भावी िन्म प्रदान करेंगे, वे हमारे ही िारा संशचत शकये गये हैं। आगामी अर्वा शक्रयमाण वे कमथ हैं िो इस िन्म में हम कर रहे हैं। यशद शदव्य आत्म-ज्ञान से संशचत और शक्रयमाण कमथ ही नष्ट होने की बात होती तो शिवचन का प्रयोग होता, बहुवचन का नहीं ं(संसूकृत व्याकरण में वचन तीन हैं- एक वचन, शिवचन और बहुवचन) । (शनरूपण - IV. 10-19)

न डि ज्ञानेन सदृिं पडवत्रडमि डवद्यते ।
तत्स्वयं योगसंडसद्धः कालेनािडन डवन्दडत ।। ३८ ।।

बि्ार्थम : न -नहीं,ं शह-शनस्सने्देह, ज्ञानेन-ज्ञान की अपेक्षा, सदृशम् -समान, पशवत्रम् - पशवत्र, इह-यहाँ (इस लोक में), शवद्यते-है, तत्-वह, स्वयम् स्वयम्, योगसंशसद्धः- योग में पारंगत (योगी), कालेन समय के सार्, आत्मशन-आत्मा में, शवन्दशत-प्राप्त करता है।

अनुवाद : शनःसने्देह, ज्ञान सदृश पशवत्र करने वाली इस संसार में दूसरी वसुतु नहीं ंहै। योग में पारंगत होने पर मनुष्य स्वयं ही उस ज्ञान को समय आने पर अपने भीतर प्राप्त कर लेता है।

व्याख्या : आत्म-ज्ञान के समान पशवत्र करने वाली अन्य कोई वसुतु नहीं ंहै। कमथयोग और ध्यानयोग में पूणथत्व प्राप्त कर लेने पर मनुष्य समय के सार् स्वयं ही उस आत्म-ज्ञान की अनुभूशत करता है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।

ज्ञानं लब्ध्वा परां ि ान्द्रतमडचरेणाडधगच्छडत ।। ३९ ।।

बि्ार्थम : श्रद्धावान्-श्रद्धायुक्, लभते - प्राप्त करता है, ज्ञानम् - ज्ञान को, तत्परः-तत्पर, संयतेम्भियः - इम्भियों ंको वश में करने वाला, ज्ञानम्-ज्ञान, लब्ध्वा-प्राप्त करके, पराम् -परम, शाम्भन्तम् - शाम्भन्त को, अशचरेण-शीघ्र ही, अशधगच्छशत -प्राप्त करता है।

अनुवाद : ज्ञान वही प्राप्त कर सकता है ि ो शवशितेम्भिय है अर्ाथत् शिसने इम्भियों ंको ि ीत शलया है, ि ो तत्पर (भम्भक्भाव से पूणथ है) है और श्रद्धा युक् है। ज्ञान प्राप्त कर लेने पर वह शीघ्र ही परम शाम्भन्त को प्राप्त करता है।

व्याख्या : श्रद्धा-शवश्वास से युक् व्यम्भक् ि ो सतत गुरु की सेवा में संलग्न है और उनके उपदेशों ंका श्रवण करता है तर्ा शिसने अपनी इम्भियों ंको वशीभूत कर शलया है, वह शनशश्चत रूप से ज्ञान प्राप्त करता है और परम शाम्भन्त की अर्वा मोक्ष की अनुभूशत करता है। अशचरेण परम शाम्भन्त प्राप्त्यर्थ ऊपर वशणथत तीनों ंगुणों ंकी महत्वाकांक्षा अशनवायथ है। मात्र एक ही गुण पयाथप्त नहीं ंहै। (शनरूपण-X.10,11)

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयाा डवनश्यडत ।
नायं लोकोऽन्द्रस्त न परो न सुखं्खं संशयािनः ।।४० ।।

बि्ार्थम : अज्ञः- अज्ञानी, च-और, अश्रद्दधानः-श्रद्धा रशहत, च-और, संशयात्मा-संशय युक्, शवनश्यशत - नष्ट हो ाता है, न-नहीं,ं अयम्-यह, लोकः लोक, अम्भस्त-है, न-नहीं,ं परः-परलोक, न-नहीं,ं सुख्खम् -सुख, संशयात्मनः- संशयालु का।

अनुवाद : अज्ञानी (शववेक रशहत), श्रद्धा रशहत, संशय युक् व्यम्भक् तो शवनाश को ही प्राप्त होता है। संशय करने वाले के शलए तो न यह लोक है, न परलोक है और न कहीं ंसुख ही है।

व्याख्या : आत्म-ज्ञान से शून्य व्यम्भक् अज्ञानी है, श्रद्धारशहत वह है शिसे न तो अपनी आत्मा में शवश्वास है, न शास्त्रों ं में, न ही गुरु के उपदेशों ंमें शवश्वास है।

संशय युक् व्यम्भक् संसार में सवाथशधक पापी है। उसकी दशा तो शोचनीय है। परलोक के शवषय में भी वह तो शंका से पूणथ है। संशय-बुम्भद्ध होने के कारण वह इस लोक में प्रमुशदत नहीं ंहो सकता। वह सुखी नहीं ंहै।

योगसंन्यस्तकमामणं ज्ञानसंडिडसंशयम् ।
आत्मवतं न कमामडण डनबध्नन्द्रत धनञ्जय ।।४१ ।।

बि्ार्थम : योगसंन्यस्तकमाथणम् - शिसने योग की शवशध से सारे कमों का त्याग कर शदया है, ज्ञानसंशछन्नसंशयम् - शववेक ि ारा शिसके संशय नष्ट हो चुके हैं, आत्मवन्तम् - आत्म-परायण, न-नहीं,ं कमाथशण-कमथ, शनबध्नम्भन्त-बाँधते हैं, धनञ्जय-हे धनञ्जय ।

अनुवाद : हे धनञ्जय (अिुथन), शिसने योग-शवशध से कमों से संन्यास ले शलया है, (आत्म) ज्ञान से शिसके संशय समाप्त हो गये हैं और ि ो आत्म-परायण हो गया है, उसे कमथ-बन्धन नहीं ंहोता।

व्याख्या : मधुसूदन सरस्वती 'आत्मवन्तम्' का अर्थ 'सदा ि ागरूक' (always watchful) करते हैं।

आत्म-ज्ञानी योग-शवशध से कमों का त्याग करता है अर्ाथत् समस्त कमथ परमात्मा को समशपथत कर के करता है। आत्म-तत्त्व का परमात्म-तत्त्व में एक होने का अनुभव प्राप्त कर लेने पर उसके समस्त संशय नष्ट हो िाते हैं। अब कमथ उसे बाँधते नहीं;ं क्योंशंक वे ज्ञानाशग्न में दग्ध हो चुके हैं और अब वह सदा आत्म–िागृशत में
आनन्द लेता है। (शनरूपण - II.48; III.9; IV.20)

तस्मादज्ञानसंभूतं हृथरं्थं ज्ञानाडसनाऽऽनिः ।
डितै्त्वैनं संयिं योगमाडतिोडत्ति भारत ।।४२ ।।

बि्ार्थम : तस्मात् - इसशलए, अज्ञानसंभूतम् - अज्ञान से उत्पन्न, हत्स्र्म् -हृदय में शनशहत, ज्ञानाशसना- ज्ञान की तलवार से, आत्मनः- आत्मा का, शछत्त्वा काट कर, एनम्-इस, संशयम्सने्देह, योगम् - योग का, आशतष्ठ-शरण लो, उशत्तष्ठ-उठो, भारत- हे अिुथन।

अनुवाद : इसशलए हे अिुथन, उठो, योग की शरण लो और अज्ञानवश हृदय में उत्पन्न सने्देह को आत्म-ज्ञान की तलवार से शछन्न-शभन्न कर दो।

व्याख्या : संशय मानशसक पीिा को िन्म देता है। यह अत्यन्त पापी है। यह अज्ञान से उत्पन्न है। इसे ज्ञान रूपी खि्ग से शनदथयतापूवथक मार िालो । हे अिुथन, अब उठो और युद्ध करो।

(यह अध्याय ज्ञानयोग, अभ्यासयोग अर्वा ज्ञानकमथसंन्यासयोग से भी अशभशहत है।)

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषतु्सु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
ज्ञानडवभागयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।
।। इडत ज्ञानडवभागयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर् पञ्चमोऽध्यायः
कमथसंन्यासयोगः

अजुमन उवाच

संन्यासं कममणां कृष्ण पुनयोगं च िंसडस ।

यच्छेरय एतयोरेकं तन्मे ब्रूरूडि सुडनडश्चतम् ।।१ ।।

बाि्र्थम : संन्यासम् -संन्यास, कमथणाम् -कमों का, कृष्ण-हे कृष्ण, पुनः पुनः, योगम् योग, च-और, शंसशस–प्रशंसा करते हो, यत्–ो, श्रेयः-कल्याणकारी, एतयो:- इन दोनों ंमें, एकम् -एक, तत्-वह, मे-मुझे, रूब्रूशह-बतायें, सुशनशश्चतम् -शनशश्चत रूपेण ।

अजुमन ने िा

अनुवाद : हे कृष्ण, आप कमों के त्याग की प्रशंसा करते हैं और पुनः योग की प्रशंसा करते हैं। मुझे शनशश्चत रूप से बताएँ, इन दोनों ंमें अशधक श्रेयस्कर क्या है।

व्याख्या : आप कमों के संन्यास का और शफर उनके अनुष्ठान का उपदेश करते हैं। इससे मैं भ्रशमत हो रहा हाँ। दोनों ंमें से िो अशधक श्रेयस्कर हो, वह मागथ मुझे प्रशस्त करें। एक ही समय में दोनों ंका आश्रय लेना मनुष्य के शलए सम्भव नहीं ंहै। योग का अशभप्राय यहााँ कमथयोग से है। (शनरूपण - III.2)

श्री भगवानुवाच

संन्यासः कममयोगश्च डनःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोसुतु कममसंन्यासात्कममयोगो डवडिष्यते ।।२।।

बाि्र्थम : संन्यासः-संन्यास, कमथयोग:-कमथ का योग, च-और, शनःश्रेयसकरौ- परम आनन्द की ओर ले िाने वाले, उभौ-दोनों,ं तयो:-उन दोनों ंमें से, तु-लेशकन, कमथसंन्यासात् -कमथ-त्याग से, कमथयोगः कमथयोग, शवशष्यते -अशधक अच्छा है।

श्री भगवान् ने िा

अनुवाद : संन्यास और कमथयोग दोनों ंही परम आनन्द की प्राम्भप्त कराने वाले हैं, पुनरशप, कमथ-संन्यास की अपेक्षा कमथयोग अशधक कल्याणप्रद है।

व्याख्या : संन्यास (कमथ का त्याग) अर्वा कमथयोग (कमाथनुष्ठान) दोनों ंही मोक्षप्रद हैं, आनन्ददायी हैं। यद्यशप दोनों ं मोक्ष की ओर ले िाने वाले हैं, तर्ाशप मोक्ष-प्राम्भप्त के दो साधनों ंमें से आत्मज्ञान-शून्य, कमथसंन्यास की अपेक्षा (शनष्काम भाव से) कमथयोग अशधक श्रेयस्कर है। इसमें शववेक-बुम्भद्ध से कमथ का संन्यास शनःसन्देह कमथयोग से श्रेष्ठ है। कमथयोग सरल है; अतः सभी के शलए अपेशक्षत है। (शनरूपण-III.3; V.5; VI.46)

ज्ञेयः स डनत्यसंन्यासी यो न िेडष्ट् न काङ्क्षडत ।
डनिमन्द्वाि डि मिाबािो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ।।३ । ।

बाि्र्थम : ज्ञेयः –िाना िायेसः- वहशनत्यसंन्यासी-सदासंन्यासीयःिो न नहींशिष्टि–ष करता है, न-नहीं,ं काङ्क्षशत-इच्छा करता है, शनिथन्िः - िन्द्वि ंसे मुक्त, शह-शनस्सन्देह, महाबाहो - हे महाबाहो (अिुथन), सुखम् - सहि ही, बन्धात् बन्धन से, प्रमुच्यते-मुक्त हो िाता है।

अनुवाद : हे अिुथन, िो मनुष्य समस्त िन्दिों से परे है, न शकसी से िेष करता है, न कोई कामना करता है और शिसमें सदा त्याग की भावना शवद्यमान रहती है, ऐसा मनुष्य सदा संन्यासी ही समझा िाना चाशहए। वह सहि ही सब प्रकार के बन्धन से मुक् हो िाता है।

व्याख्या : व्यवसाय न होने पर, शवपशत्त आने पर, पररवार की कलह के कारण, अज्ञानवश अर्वा आलस्यवश कमथ का त्याग करने वाला व्यम्भक् संन्यासी नहीं ंहोता। एक सिा संन्यासी दम्भी और कायर नहीं ंहोता ।

कमथरत रहने पर भी वह शनत्यसंन्यासी है, कमथयोगी है िो दुःख से घृणा नहीं ंकरता और दुःख देने वाले शवषयों ंके प्रशत भी उदार रहता है, न ही उसे सुख की अर्वा सुख देने वाले पदार्ों की कामना होती है। शकसी भी इम्भिय-शवषय के प्रशत उसमें न तो आसम्भक् रहती है और न ही अनासम्भक् । वह शीत-ग्रीष्म, दुःख-सुख, असफलता-सफलता, िय-पराि्य, हाशन-लाभ, मान-अपमान, यश-अपयश के िन्दिों से अतीत रहता है।

शकसी ने शवशधवत् संन्यास न शलया हो, शकन्तु उसमें ऊपर वशणथत मानशसक भावनाएँ हैं तो वह सदा संन्यासी ही माना िायेगा। आवश्यकता है तो बस कामना रशहत, अहंकार शून्य शुद्ध हृदय की । भौशतक पदार्ों का त्याग संन्यास नहीं ंहै। (शनरूपण –VI.1)

सांख्ययोगौ पृर्ग्बालाः प्रवदन्द्रत न पन्द्रण्डताः ।
एकमप्यान्द्रथर्थतः सम्यगुभयोडवमन्दते फलम् ।।४।।

बिार्थम : सांख्ययोगौ-सांख्य (ज्ञान) और योग (कमथयोग), पृर्क् -शभन्न, बालाः बालक (अल्पज्ञ), प्रवदम्भन्त-कहते हैं, न-नहीं, ं पम्भण्डताः - शविान्, एकम् -एक, अशप-भी, आम्भस्र्तः - म्भस्र्त, सम्यक् -पूणथतया, उभयोः दोनों ंका, शवन्दते-प्राप्त करता है, फलम् -फल ।

अनुवाद : ज्ञानयोग (सांख्य) और कमथयोग (योग) को अल्पज्ञ ही पृर्क् मानते हैं, पम्भण्डत (ज्ञानी) नहीं।ं इन दोनों ंमें से एक में भी पूणथतः म्भस्र्त होने पर व्यम्भक् दोनों ंका फल प्राप्त करता है।

व्याख्या : बालाः- अज्ञानी लोग, शिन्हें शास्त्रों ंका पुस्तकीय ज्ञान तो है; परन्तु वे आत्म-ज्ञान से वंशचत हैं। अल्पज्ञ ही ऐसा सोचते हैं शक सांख्य और योग का पृर्क् प्रभाव होता है और दोनों ंपृर्क् पररणाम के देने वाले हैं। शकन्तु बुम्भद्धमान् लोगों ंका कर्न है शक ये दोनों ंएक ही पररणाम-मोक्ष को देने वाले हैं। दोनों ंमें से एक में भी िो भलीभाँशत म्भस्र्त है अर्ाथत् िो सांख्ययोग अर्वा कमथयोग में पूणथतः शनष्ठावान् है, वह दोनों ंका फल प्राप्त करता है। अतः फल में शवशभन्नता नहीं ंहै, यही इस श्लोक का सार-तत्त्व है। (शनरूपण - V1.2)

यत्सांख्यैः प्राप्यते थर्थानं तद्योगैरडप गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यडत स पश्यडत ।।५ ।।

बिार्थम : यत्-िो, सांख्यैः-सांख्य के िारा, प्राप्यते-प्राप्त शकया िाता है, स्र्ानम् -स्र्ान, तत्-वह, योगैः- योशगयों ंके िारा, अशप -भी, गम्यते-पहुँचा िाता है, एकम् - एक, सांख्यम् -सांख्य (ज्ञान), च-और, योगम् योग, चऔर, यः- िो, पश्यशत - देखता है, सः वह, पश्यशत-वास्तव में देखता है।

अनुवाद : सांख्य अर्वा ज्ञानयोगी शिस धाम को पहुँचते हैं कमथयोगी भी उसी धाम को प्राप्त करते हैं। िो सांख्ययोग और कमथयोग को समान रूप से देखता है, वही वसुतुतः देखता है।

व्याख्या : संसार को त्याग कर ि◌ो ज्ञानयोग अर्वा वेदान्त-मागथ का अनुसरण करते हैं, वे सांख्ययोगी हैं। श्रवण (शुरुशत अर्वा उपशनषद् शास्त्रों ◌ंको सुनना), मनन (श्रवण शकये हुए का शचन्तन) और शनशदध्यासन (सतत गहन ध्यान)
िारा वे मोक्ष अर्वा कैवल्य की प्राम्भप्त करते हैं अर्ाथत् अपरोक्षानुभूशत करते हैं। शनष्काम सेवा करने वाले कमथयोगी, िी फिल की इच्छा त्याग कर भम्भक्भाव से कमथ करते हुए भगवान् को सब कमथ समशपथत कर देते हैं, वे हृदय-शुम्भद्ध, त्याग और पररणाम स्वरूप आत्मज्ञानोदय से सांख्ययोशगयों ◌ंकी भााँशत अपरोक्षानुभूशत से आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं। सांख्य और योग दोनों ◌ंको सम रूप से देखने वाला ही वास्तव में देखता है। (शनरूपण—XIII.24, 25; V.2)

संन्याससुतु मिाबािो दुःखमापुनुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुडनब्रमह्म नडचरेणाडधगच्छडत ।।६ ।।

बि्ार्थम : संन्यासः-त्याग, तु-लेशकन, महाबाहो - हे महाबाहो (अिुथन), दुःखम् - दुःख, आमुम् - पाने के शलए, अयोगतः - शबना योग के, योगयुक्:- योग में समम्भित, मुशनः-मुशन, यशत, ब्र्ह्म-ब्र्ह्म को, नशचरेण-शीघ्र ही, अशधगच्छशत - प्राप्त करता है।

अनुवाद : शकनुतु हे अिुथन, शबना योग के संन्यास ग्रहण करना दुष्कर है। योग में शनष्ठावान् यशत ही शीघ्र ब्र्ह्म को प्राप्त होता है।

व्याख्या : मुशन वह है ि◌ो मनन (ध्यान, आत्म-शवशे्लेषण) करता है। योग, शनष्काम भाव से परमात्मा को समशपथत शकया गया कमथ है।

ब्र्ह्म शब्द यहााँ संन्यास को संकेत करता है; क्योंशंक आत्म-ज्ञान में ही संन्यास (त्याग) शनशहत है। कमथयोग से पररषूकृत यशत, मुशन, ध्यान योगी और योग में समम्भित पुरुष अशवलम्ब ब्र्ह्म प्राम्भप्त करता है। यही सिा संन्यास है और यही आत्म ज्ञान के प्रशत भम्भक् है। अतः कमथयोग श्रेेष्ठतर है। नव साधक के शलए यह सुगम है। मन की शुम्भद्ध के िारा कमथयोग साधक को उितर योग के शलए पे्रेररत करता है।

योगयुक्तो डविुद्धिाा डवडजतिाा डजतेन्द्रियः ।
सवमभूतिाभूतिााकुवमिडपनडलप्यते।।७ ।   ।

बि्ार्थम : योगयुक्: कमथयोग के प्रशत शनष्ठावान्, शवशुद्धात्मा - पशवत्र मन वाला, शवशितात्मा-आत्मा का स्वामी, शितेम्भियः - इम्भियों ◌ंपर शविय पाने वाला, सवथभूतात्मभूतात्मा-अपनी आत्मा को सब प्राशणयों ◌ंकी आत्मा में देखने वाला, कुवथन् -करते हुए, अशप-भी, न-नहीं,◌ं शलप्यते-शलप्त होता ।

अनुवाद : ि◌ो कमथयोग में रत है, शिसका अन्तःकरण शवशुद्ध है, ि◌ो शितेम्भिय और आत्मा का स्वामी है तर्ा ि◌ो सवथभूतों ◌ंमें शनि आत्मा के दशथन करता है, वह योगी कमथ करते हुए भी उसमें शलप्त नहीं ◌ंहोता।

व्याख्या : ि◌ो योगयुक् है अर्ाथत् शिसने कमथयोग के िारा अपना अन्तःकरण शवशुद्ध कर शलया है, शिसने अपने शरीर और इम्भियों ◌ंको वश में कर शलया है, शिसकी आत्मा सभी प्राशणयों ◌ंकी आत्मा है, वह पुरुष परोपकार हेतु अर्वा ि◌नगण के समक्ष दृष्टान्त रखने हेतु कमथ करते हुए भी कमथ में आसक् नहीं ◌ंहोता। (शनरूपण-XVIII.17)

नैव डकंडचत्करोमीडत युक्तो मने्येत तत्त्वडवत् ।
पश्यन् शृण्वन्ब्सृ्पृिडञ्जघ्रिश्ननाच्छन्ब्स्वपन् श्वसन् ।।८ ।।

बि्ार्थम : न -नहीं,ं एव-ही, शंकंशचत्-कुछ भी, करोशम - करता हाँ, इशत-इस प्रकार, युक्ः- आत्म-केम्भित, मन्ेयेत-सोचे, तत्त्वशवत्-सत्य का ज्ञाता, पश्यन् देखता हुआ, शृण्वन् -सुनता हुआ, सूपृशन् -स्पशथ करता हुआ, शिघ्रन् -सूाँघता हुआ, अश्नन् - खाता हुआ, गच्छन् - िाता हुआ, स्वपन् सोता हुआ, श्वसन् श्वास लेता हुआ।
अनुवाद : "मैं कुछ भी नहीं ंकरता, ऐसा शचन्तन एक तत्त्वज्ञानी का होता है-दशथन करते हुए, श्रवण करते हुए, स्पशथ करते हुए, सूंघते हुए, भोिन करते हुए, गमन करते हुए, सोते हुए, श्वास लेते हुए,

प्रलपन्द्रन्वसृजन्बगृह्णिन्द्रन्मषडिडमषिडप ।
इन्द्रियाणीन्द्रियारे्थेषु वतमत इडत धारयन् ।।९ ।।

बि्ार्थम : प्रलपन् बात करते हुए, शवसृिन् - त्याग करते हुए, गृह्णन् - ग्रहण करते हुए, उम्भन्मषन् -पलक झपकते हुए, शनशमषन् बन्द करते हुए, अशप-भी, इम्भियाशण-इम्भियााँ, इम्भियारे्षु -इम्भिय-शवषयोंमें, वतथन्ेते-बरतते हैं, इशत-इस प्रकार, धारयन् - धारण करते हुए।

अनुवाद : बोलते हुए, त्याग करते हुए, ग्रहण करते हुए, नेत्र बन्द करते और खोलते हुए वह मान लेता है शक मात्र इम्भियों ंके शवषयों ंमें इम्भियााँ शक्रयाशील हैं।

व्याख्या : एक मुक्ात्मा इम्भियों ंकी प्रशक्रयाओं ंका सदा साक्षी बन कर रहता है; क्योंशंक उसने ब्र्ैमैक्य प्राप्त कर शलया है। वह सोचता है और कहता है- 'मैं नहीं ंदेखता, नेत्र देखते हैं; मैं नहीं ंसुनता, कणथ सुनते हैं; मैं नहीं ंसूाँघता, नाशसका सूाँघती है' इत्याशद। वह कमथ में अकमथ देखता है; क्योंशंक ज्ञान की अशग्न ने उसके समस्त कमथ दग्ध कर शदये हैं। (शनरूपण - XIV. 19-23)

ब्रह्मर्ण्याधाय कमामडण सङ्गं त्यक्त्वा करोडत यः ।
डलप्यते न स पापेन पद्मपत्रडमवाम्भसा ।।१०।।

बि्ार्थम : ब्र्ह्मशण-ब्र्ह्म में, आधाय-समशपथत कर के, कमाथशण-कमथ, सङ्गम् - आसम्भक्, त्यक्त्त्वा-त्याग कर, करोशत करता है, यः िो, शलप्यते-शलप्त होता है, न-नहीं,ं सः- वह, पापेन- पाप से, पद्मपत्रम् -कमल-पत्र, इव-भााँशत, अम्भसा–िल से।

अनुवाद : अनासक् हो कर परमात्मा को समशपथत कर के कमथ करने वाला मनुष्य िल में कमल-पत्र की भााँशत पाप से शलप्त नहीं ंहोता।

व्याख्या : अध्याय IV श्लोक १८,२०,२१,२२,२३,३७,४१; अध्याय V श्लोक १०, ११ और १२ - ये सभी एक ही सत्य को उद्घाशटत करते हैं। वह योगी िो कमथ-फल के प्रशत आसम्भक् त्याग कर, अहंकारशून्य हो कर परमात्मा को समशपथत कर के कमथ करता है, वह कमथ के बन्धन से मुक् रहता है। उसे तो मोक्ष का अनुराग भी नहीं ंहै। वह कमथ में अकमथ को देखता है। उसके समस्त कमथ ज्ञानाशग्न में िल िाते हैं। वह भव-बन्धन से (संसार-चक्र से) छूट िाता है। वह िन्म-मृत्यु के चक्र से मुम्भक् पा लेता है। उसका हृदय शवशुद्ध हो िाता है और उसे आत्म-ज्ञान की प्राम्भप्त होती है। आत्म-ज्ञान से वह मोक्ष प्राप्त करता है। ऊपर वशणथत १० श्लोकों ंका यही सार है। (शनरूपण-III.30)

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैररन्द्रियैरडप ।
योडगनः कमम कुवमन्द्रत सङ्गं त्यक्त्वाऽऽर्द्धिये ।।११ ।।

बि्ार्थम : कायेन-शरीर से, मनसा-मन से, बुद्ध्या-बुम्भद्ध से, केवलैः केवल, इम्भियैः - इम्भियों ंसे, अशप-भी, योशगनः-योगी, कमथ-कमथ, कुवथम्भन्त-करते हैं, सङ्गम्-आसम्भक्, त्यक्त्वा-त्याग कर, आत्मशुद्धये- अन्तःकरण की शुम्भद्ध के शलए।

अनुवाद : योगी िन (कमथयोगी) आसम्भक् को त्याग कर शरीर, मन, बुम्भद्ध और इम्भियों ंसे आत्मा की शुम्भद्ध के शलए कमथ करते हैं।

व्याख्या : योगी का अशभप्राय यहााँ कमथयोगी से है िो कमथयोग के पर् पर अशिग चल रहा है, अहंभाव से रशहत है, शनःस्वार्थ भाव से कायथ करने वाला है, फल की इच्छा को त्याग कर समशपथत भाव से कमथ करने वाला है।

केवलम् -केवल शरीर, मन, बुम्भद्ध और इम्भियों ंसे, अहंभाव और स्वार्थभाव त्याग कर कमथ करता है।

युक्तः कममफलं त्यक्त्वा िान्द्रतमाप्नोडत नैडिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो डनबध्यते ।।१२ ।।

बि्ार्थम : युक्ः योगी, कमथफलम् -कमथफल को, त्यक्त्वा-त्याग कर, शाम्भन्तम् - शाम्भन्त, आप्नोशत-प्राप्त करता है, नैशष्ठकीम् आत्यम्भन्तक, अयुक्ः िो परमात्मा से एक नहीं ंहै, कामकारेण-इच्छा से प्ेरेररत, फले-कमथफल में, सक्ः- आसक्, शनबध्यते-बााँधता है।

अनुवाद : योग में समम्भित युक् पुरुष कमथफल की आसम्भक् त्याग कर (भगवत्प्राम्भप्त रूप) शाश्वत शाम्भन्त को प्राप्त करता है और सकाम कमथ करने वाला अयुक् पुरुष फल की इच्छा से कमथ करता है और बन्धन में आता है।

व्याख्या : 'शाम्भन्तं नैशष्ठकीम्' का अशभप्राय है-शनष्ठा अर्वा भम्भक् से उत्पन्न शाम्भन्त। समत्वभाव से युक् पुरुष िो फल की कामना त्याग कर भगवदशपथत कर के कमथ करता है और कहता है- "मैं व्यम्भक्गत लाभ हेतु कमथ नहीं ं करता, प्रतुयुत् ईश्वर के शलए करता हाँ", वह शववेक-बुम्भद्ध में दृढ़ता, कमथ-त्याग, ज्ञान-प्राम्भप्त और हृदय की शुम्भद्ध-इन चार अवस्र्ाओं ंसे प्राप्त भम्भक्भाव से उद्भूत शाम्भन्त प्राप्त करता है। शकनुतु अयुक् पुरुष िो कामनाओं ंके िाल में फाँसा हुआ है और फल की आसम्भक् रखता है और कहता है- "मैंने अमुक-अमुक कमथ शकये हैं और उनका फल भी प्राप्त करूाँगा", वह शनस्सने्देह बन्धन में प़िता है।

सवमकमामडण मनसा संन्यस्यासे्ते सुखं विी ।
नविारे पुरे देिी नैव कुवमि कारयन् ।।१३ ।।

बि्ार्थम : सवथकमाथशण-समस्त कमथ, मनसा-मन से, संन्यस्य-त्याग कर, आसे्ते-रहता है, सुखम् -सुखपूवथक, वशी संयमी, नविारे-नौ िारों ंवाले, पुरे-नगर में, देही देह युक् आत्मा, न-नहीं,ं एव-ही, कुवथन् -करते हुए, न-नहीं,ं कारयन् -कराते हुए।

अनुवाद : मन से अर्ाथत् आन्तररक रूप से समस्त कमों का त्याग कर के, अपनी प्रकृशत को संयत कर के देहधारी आत्मा (शरीर और इम्भियों ंसे) न तो कमथ करता हुआ और न ही करवाता हुआ नव िारों ंवाली पुरी में सुख से शनवास करता है।

व्याख्या : समस्त कमथ-

(१) डनत्य कमम-ये अपररहायथ कतथव्य हैं। इनके करने से कोई पुण्य तो नहीं ाहोता; शकनुतु न करने से दोष अवश्य लगता है। सन्ध्यावन्दन आशद इसी श्रेणी में आते हैं।

(२) नैडमडत्तक कमम-शवशेष अवसर पर शकसी शनशमत्त से शकये िाने वाले कतथव्य िैसे शशु के िन्म पर अर्वा ग्रहण-काल में शकये िाने वाले अनुष्ठान आशद नैशमशत्तक कमथ कहे िाते हैं।

(३) काम्य कमम-ये कमथ अभीम्भित हैं। शकसी अशभलाषा िैसे वषाथ, पुत्र-प्राम्भप्त आशद को ले कर शकये िाने वाले

(४) डनडषद्ध कमम-चोरी करना, मशदरापान आशद कमथ शनशषद्ध कमथ हैं।

(५) प्रायडश्चत्त कमम-अशुभ कमथ (पाप कमथ) का फल शून्य करने हेतु शकये िाने वाले कमथ प्रायशश्चत्त कमथ हैं। शिस मनुष्य ने अपने अन्तःकरण को वश में कर शलया है, वह शववेक िारा सब कमों का त्याग कर देता है। वह कमथ में अकमथ देखता है और नव िार वाली इस नगरी में सुखपूवथक रहता है; क्योंशंक वह सब प्रकार के उिग, शचन्ता, उतुसुकता और भय से मुक् हो चुका है, उसका मन शान्त है और वह शाश्वत परम शाम्भन्त में आनन्द लेता है। इस नव िारों ाकी पुरी में आत्मा ही स्वामी है, रािा है और मन, इम्भियााँ अवचेतन मन तर्ा बुम्भद्ध प्रिा हैं।

अज्ञान में प्रिा संसारी मनुष्य कहता है- "मैं आरामकुसी पर आराम कर रहा हाँ", देहाध्यास से ऊपर उठा व्यम्भक् शिसने िान शलया है शक आत्मा पंच भौशतक शरीर से पृर्क् है, कहता है-"मैं शरीर में शवश्राम कर रहा हाँ।" (शनरूपण-XVIII. 17, 50)

न कतृमतं्वं न कमामडण लोकस्य सृजडत प्रभुः ।
न कममफलसंयोगं स्वभावसुतु प्रवतमते ।।१४ ।।

बिार्थम : न-नहीं,ा कतृथत्वम् -कताथपन, न -नहीं,ा कमाथशण-कमथ, लोकस्य इस लोक के, सृिशत सृिन करता है, प्रभुः भगवान्, ननहीं,ा कमथफलसंयोगम् -कमथ का फल के सार् संयोग, स्वभावः स्वभाव (प्रकृशत), तु-लेशकन, प्रवतथते-प्रवृत्त होता है।

अनुवाद : परमात्मा न तो शकसी को कताथ बनाता है और न ही शकसी को कमथ के शलए प्ेररत करता है। कमथ का फल के सार् संयोग भी प्रभु नहीं ाकरता। स्वभाव ही लोक में सब वसुतुओं ामें प्रवृत्त होता है।

व्याख्या : भगवान् कताथपन का सृिन नहीं ाकरते। वे शकसी को कमथ के शलए भी प्ेररत नहीं ाकरते। वे कभी शकसी से यह नहीं ाकहते- "यह करो या वह करो।" वे कमथ-फल का संयोग भी नहीं ाकरते। प्रकृशत ही बरत रही है सब ओर। (शनरूपण-III.33)

नादते्ते कस्यडचत्पापं न चैव सुकृतं डवभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्द्रत जतवः ।।१५ ।।

बिार्थम : न-नहीं,ा आदते्ते-लेता है, कस्यशचत् -शकसी का, पापम्पाप, ननहीं,ा च-और, एव-ही, सुकृतम् -पुण्य, शवभुः परमेश्वर, अज्ञानेन अज्ञान के िारा, आवृतम् ढका है, ज्ञानम्-ज्ञान, तेन-उससे, मुह्यम्भन्त-मोशहत होते हैं, िन्तवः -प्राणी।

अनुवाद : परमेश्वर न तो शकसी के पाप कमथ का आदान (लेना) करते हैं और न ही पुण्य कमथ का। अज्ञान के ्ारा ज्ञान आवृत है; इसीशलए प्राणी भ्रशमत हो ्ाते हैं।

व्याख्या : ज्ञान पर अज्ञान का आवरण चढ़ा हुआ है शिसके पररणामस्वरूप मनुष्य भ्रशमत हो रहा है। वह स्वयं को कताथ और भोक्ा मान कर सोचता है- "मैंने अमुक पुण्य कमथ शकये हैं; अतः इस प्रकार के फल की प्राम्भप्त होगी। स्वगथ का सुख शमलेगा और समृद्ध पररवार में ्न्म होगा।"

कस्यशचत् -शकसी का भी अर्ाथत् भक् का भी।

प्रकृशत और उसके कायथ (effect) शरीर, मन, प्राण अर्वा ्ीवन-शम्भक् और इम्भियों ्से एकत्व होने पर मनुष्य बन्धन में पड़ता है। हृदय में शवराशित, कमथ से अतीत अमर आत्मन् से सायुज्य प्राप्त कर लेने पर वह मोक्ष प्राम्भप्त करता है।

बि 'मैं' कमथ में प्रवृत्त ही नहीं ्होता, परमेश्वर पाप-पुण्य कमथ कैसे स्वीकार कर सकता है? (शनरूपण-V.29)

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाडितमिानः ।
तेषामाडदत्यवज्ज्ञानं प्रकाियडत तत्परम् ।।१६ ।।

बि्ार्थम : ज्ञानेन-ज्ञान से, तु-लेशकन, तत्-वह, अज्ञानम्-अज्ञान, येषाम् -शिनका, नाशशतम् - नष्ट हो गया, आत्मनः-ीवि का, तेषाम् उनका, आशदत्यवत् सूयथ की भाँशत, ज्ञानम् - ज्ञान, प्रकाशयशत-प्रकाशत होता है, तत्परम् सविो ।

अनुवाद : आत्म-ज्ञान से शिनका अज्ञान नष्ट हो ्ाता है, उनके शलए ज्ञान सूयथ की भाँशत उस परब्रह्म को प्रकाशत कर देता है।

व्याख्या : शिस प्रकार से देदीप्यमान सूयथ स्थूल भौशतक ्गत् को प्रकाशमय कर देता है, उसी प्रकार मानवीय दुःखों ्के मूल कारण अज्ञान का आत्म-ज्ञान ्ारा शवनाश होने पर यह ज्ञान सविो सत्ता परब्रह्म को प्रकाशत करता है।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तशन्नष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृशत्तं ज्ञानशनभूथतकल्मषाः ।।१७ ।।

बि्ार्थम : तद्बुद्धयः- भगवत्परायण बुम्भद्ध वाले, तदात्मानः-तरूप चेतना (आत्मा) वाले, तशन्नष्ठाः- उसी में प्रशतशष्ठत, तत्परायणाः- उसी परमेश्वर को परम लक्ष्य मानने वाले, गच्छम्भन्त–्ाते हैं, अपुनरावृशत्तम् - अपुनरावृशत्त हेतु अर्ाथत् पुनः न लौटने के शलए, ज्ञानशनभूथतकल्मषाः - ज्ञान से शिनकी अशवद्या का शवनाश हो गया है।

अनुवाद : शिनकी बुम्भद्ध तिूप हो गयी है, शिनका मन (आत्मा) तिूप हो गया है, उसी में ्ो म्भस्त हो गये हैं और शिनका परम उद्देश्य उसी परमात्मा की प्राम्भप्त करना है, ऐसे महापुरुष पुनः लौट कर न आने के शलए परम धाम को ्ाते हैं अर्ाथत् मोक्ष-प्राम्भप्त करते हैं, उनके पाप ज्ञान से धुल ्ाते हैं।

व्याख्या : वे अपने शवचार ब्रह्म पर केम्भित करते हैं। वे अनुभव करते हैं शक ब्रह्म ही उनका वास्तशवक आत्म-तत्त्व है। सतत, अनवरत ध्यान से वे उसमें म्भस्त हो ्ाते हैं। उनके शलए नाम-रूप का यह संसार लुप्त हो ्ाता है। वे केवल ब्रह्म में ही वास करते हैं। उनका केवल आश्रय ब्रह्म ही है। वे आत्मा में ही आनम्भन्दत रहते हैं। आत्मा में ही

सनुतुष्ट और प्रसन्न रहते हैं। ऐसे महापुरुषों ंकी संसार में पुनरावृशत्त नहीं ंहोतीक्योंशंक उनके समस्त पाप ब्र्ह्म-ज्ञान से नष्ट हो िाते हैं। (शनरूपण-IX.34)

डवद्याडवनयसंपिे ब्राह्मणे गडव िन्द्रस्तडन ।
ुडिन चैव श्वपाके च पन्द्रण्डताः समदडिमनः ।।१८ ।।

बि्ार्थम : शवद्याशवनयसंपन्ने - शवद्या और शवनम्रता से युक्, ब्र्ाह्मणे-ब्र्ाह्मण में, गशव गाय में, हम्भस्तशन-हार्ी में, शुशन-कुत्ते में, च-और, एव-ही, श्वपाके-चाण्डाल में, च-और, पम्भण्डताः - ज्ञानी िन, समदशशनः समदशी ।

अनुवाद : ज्ञानीिन सुशशक्षत और शवनम्र ब्र्ाह्मण में तर्ा गाय में, हार्ी में, शुशन (कुत्ते) में और चाण्डाल में भी समदृशष्ट रखते हैं।

व्याख्या : िीवनमुक् अर्वा ब्र्ाह्मण सवथत्र आत्म-तत्त्व के दशथन करता है; अतः वह समान दृशष्ट रखता है। ज्ञानी की यह महती शदव्य दृशष्ट अशनवथचनीया है। आत्मा अर्वा ब्र्ह्म तो सवथर्ा उपाशध रशहत, शनराकार, शुद्ध और सूक्ष्म स्वरूप है, उस पर शकसी प्रकार की कोई उपाशध का प्रभाव नहीं ंपिता । सूयथ का प्रशतशबम्ब गङ्गा, सागर अर्वा गन्दे नाले पर पिे, इससे सूयथ कदाशप प्रभाशवत नहीं ंहोता। सूयथ में कोई अन्तर नहीं ंआता। ऐसा ही परमात्मा के सार् है। उपाशधयााँ उसे प्रभाशवत नहीं ंकरतीं।ं आकाश शकसी पात्र में हो, कक्ष में हो अर्वा मेघ आशद में हो । आकाश तो आकाश ही है। इसी भााँशत ब्र्ह्म तो ब्र्ह्म ही है।

ब्र्ाह्मण साम्भत्त्वक है, गाय रािशसक है तर्ा हार्ी, कुत्ता और चाण्डाल तामशसक है। ज्ञानी सब में उसी एक आत्मा का दृशष्टकोण रखते हैं िो तीन गुणों ंऔर उनके स्वभाव से अतीत है। (शनरूपण - VI.8, 32; XIV.24)

इहैव तैडजमतः सगो येषां साम्ये न्द्रथर्थतं मनः ।
डनदोषं डि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मडण ते न्द्रथर्थताः ।।१९ ।।

बि्ार्थम : इह-यहााँ, एव-ही, तैः-उनके िारा, शितः- िीता गया है, सगथः पुनिथन्म अर्वा संसार, येषाम् - शिनका, साम्ये-साम्यावस्र्ा में, म्भस्र्तम् -म्भस्र्त, मनः-मन, शनदोषम् - दोष रशहत, शह-शनश्चय से, समम् समान, ब्र्ह्म-ब्र्ह्म, तस्मात्-इसशलए, ब्र्ह्मशण-ब्र्ह्म में, तेवे, म्भस्र्ताः- म्भस्र्त हैं।

अनुवाद : इस संसार में भी िन्म-मृतुयु पर शविय वही प्राप्त कर सकते हैं शिनका मन साम्यावस्र्ा में म्भस्र्त है। ब्र्ह्म तो समदृशष्ट है, शनशश्चत रूप से शनदोष है; इसीशलए वे ब्र्ह्म में म्भस्र्त हैं।

व्याख्या : मन की साम्यावस्र्ा आने पर मनुष्य िन्म-मृतुयु पर शवियी हो िाता है। वह बन्धन-मुक् हो कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। मन िब पूणथ रूप से समान दृशष्ट हो िाता है, तब वह ब्र्ह्म-साक्षात्कार करता है।

ब्र्ह्म सदा शनरंिन है और उपाशध रशहत है; इसीशलए वह कुत्ते और चाण्डाल आशद में भी रहने पर उनसे प्रभाशवत नहीं ंहोता। अतः वह शनशवथकार है, दोष रशहत है। वह एक है और सब में समान रूप से प्रशतशष्ठत है।

न प्रहृष्येन्द्रत्प्रयं प्राप्य नोडिजेत्प्राप्य चाडप्रयम् ।
न्द्रथर्थरबुन्द्रद्धरसमूमूढो ब्रह्मडवद्ब्रह्मडण न्द्रथर्थतः ।।२० ।।

बि्ार्थम : न-नहीं,ः प्रहृषे्येत् -प्रसन्न हो, शप्रयम् -शप्रय को, प्राप्य-प्राप्त कर के, न-नहीं,ः उशि्शैत्-दुःखी हो, प्राप्य-प्राप्त कर के, च-और, अशप्रयम् - अशप्रय (वसुतु) को, म्भस्रबुम्भद्धः - म्भस्र बुम्भद्ध वाला, असमूमूढः- असंभ्रशमत, ब्र्ह्मशवत् - ब्र्ह्मज्ञानी, ब्र्ह्मशण-ब्र्ह्म में, म्भस्तः - म्भस्त ।

अनुवाद : अभेद रूप से ब्र्ह्म में म्भस्त, ब्र्ह्मवेत्ता, ो अशंकंकतथव्यशवमूढ़ तर्ा म्भस्र बुम्भद्ध वाला है, ऐसा पुरुष शप्रय पदार्थ की प्राम्भप्त पर आनन्द नहीं ंमनाता और अशप्रय को प्राप्त कर के उशिग्न नहीं ंहोता।

व्याख्या : यहााँ ब्र्ह्मज्ञानी की अवस्र्ा वशणथत है। शिसने ब्र्ह्म के सार् एकत्व स्र्ाशपत कर शलया है, वह सदा समभाव रहता है, भ्रशमत नहीं ंहोता। ब्र्ह्म में आशश्रत होने के कारण उसने समस्त कमों का त्याग कर शदया है। शिसका मन चंचल है और शिसने स्वयं को शरीर और मन से एकरूप कर शलया है, वह सुख-दुःख की अनुभूशत करता है, शप्रय वसुतु की प्राम्भप्त पर हशषथत होता है और अशप्रय की प्राम्भप्त पर दुःखी होता है । (शनरूपण-VI.21,27,28;XIII.12 XIV.20)

बाह्यस्पैष्वसक्तिाा डवन्दत्यािडन यतुसुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तिाा सुखमक्षयमशुनुते ।।२१ ।।

बि्ार्थम : बाह्यस्पशेषु-बाह्य सम्पकों में, असक्ात्मा-अनासक् मन वाला, शवन्दशत-प्राप्त करता है, आत्मशन-आत्मा में, यत्ि्ो, सुखम् सुख, सः-वह, ब्र्ह्मयोगयुक्ात्मा ब्र्ह्म के योग में युक् आत्मा, सुखम् -सुख, अक्षयम् -कभी समाप्त न होने वाला, अशुनुते-प्राप्त करता है।

अनुवाद : शिसका शचत्त बाह्य शवषयों ंमें अनुरक् नहीं ंहै, वह अपनी आत्मा में ही आनन्द से रहता है। एकाग्रशचत्त हो कर परमात्मा के ध्यान में मग्न साधक अक्षय सुख को प्राप्त करता है।

व्याख्या : बाह्य शवषयों ंमें अनासक् शचत्त और ब्र्ह्म में एकाग्रशचत्त वाला साधक अपनी आत्मा में ही शदव्य आनन्द का उपभोग करता है।

ये डि संस्पिमजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यतवतः कौतेय न तेषु रमते बुधः ।।२२ ।।

बि्ार्थम : येि्ो, शह-शनश्चयेन, संस्पशथिाः-स्पशथ से समुद्भूत, भोगाः - भोग (सुख), दुःखयोनयः - दुःख देने वाले, एव-ही, ते-वे, आद्यन्तवन्तः- आशद और अन्त सशहत, कौन्तेय-कुन्ती-पुत्र अिुथन, न-नहीं,ः तेषु उनमें, रमते- आनन्द लेता है, बुधः - बुम्भद्धमान्।

अनुवाद : बाह्य संस्पशथ (इम्भिय-शवषयों ंके संयोग) से उत्पन्न सुख तो हे अिुथन, मात्र दुःख का हेतु है; क्योंशंक उनका आशद भी है और अन्त भी है अर्ाथत् वे शनत्य नहीं ंहैं। इसी कारण शववेकी पुरुष उनमें नहीं ंरमता ।

व्याख्या : मनुष्य सुख की खोि में भटकता है और बाह्य नश्वर पदार्ों में इसे ढूाँढ़ता है। सुख प्राप्त करने की अपेक्षा वह अपने ऊपर दुःखा का भार ही वहन कर लाता है।

ऐम्भिक-शवषयों ंसे मुख मोड़ लो। उनमें शंकंशचत् मात्र भी सुख का आभास नहीं ंहै। आनन्दस्वरूप अमर आत्मा में अन्तःकरण को लगा दो। इम्भियों ंके शवषय तो साशद और सान्त हैं। उनका शवयोग दुःख का कारण है। आशद और अन्त के मध्य काल में मनुष्य क्षशणक, शमथ्या शनःसत्त्व सुख का अनुभव करता है। यह क्षशणक सुख

अज्ञान के कारण है। दूसरे लोक में भी यही अनुभव होगा। शववेकी अर्वा आत्मज्ञानी इम्भिय-सुखों ंमें आनन्द नहीं ं लेगा। केवल अज्ञानी ही इनमें सुख का आभास करता है। (शनरूपण - II.14; XVIII.38)

क्निोतीीव यः सोढुं प्राक्शरीरडवमोक्षणात् ।
कामक्रोधिोवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ।।२३ ।।

बिार्थम : शक्नोशत-समर्थ है, इह-यहाँ (इस िगत् में), एव-ही, यःि-ो, सोढुम् -सहन करने में, प्राक् -पूवथ, शरीरशवमोक्षणात् - शरीर त्यागने से, कामक्रोधोद्भवम् -क्रोध और कामना से उद्भूत, वेगम्-वेग को, सः-वह, युक्ः समाशहत, सः वह, सुखी-सुखी, नरः- मनुष्य ।

अनुवाद : इसी लोक में िो मनुष्य शरीर त्याग करने से पूवथ इच्छा और क्रोध से उद्धत वेग को सहन करने में समर्थ है, वह योगी है, वह सुखी है।

व्याख्या : 'युक्' का अशभप्राय है- समम्भित अर्वा योग में दृढ़ संकल्प वाला अर्ाथत् आत्मस्र् ।

कामना और क्रोध शाम्भन्त के प्रबल शतुरु हैं। इन्हें मारना अत्यन्त कशठन है। इन शतुरुओं ंके शवनाश के शलए प्रबल प्रयास करना होगा।

साधारण अर्थ में काम सब प्रकार की इच्छाओं ंके शलए प्रयुक् होता है। शवशेष अर्थ में यह कुवासना अर्वा रताशभलाषा है।

इहैव का अर्थ है-इसी िीवन-काल में। कामेच्छा मन का संक्षोभ है िो रोमांच से और प्रसन्न वदन से प्रशतभाशसत होता है। क्रोध का वेग मन की उस शवफलता की ओर संकेत करता है िो आग्नेय (लाल) नेत्रों ंसे, स्वेद से, होंठं काटने से और शरीर के कम्पन से ज्ञात होता है (झलकता है)। इस श्लोक से यह स्पष्ट है शक संसार में सवाथशधक सुखी मनुष्य वही है शिसने इच्छा और क्रोध पर शविय पा ली है। शवपुल सम्पशत्त, सुन्दर स्त्री और सुन्दर बिे सुख प्रदान नहीं ंकर सकते । अतः पूणथ शम्भक् लगा कर इच्छा और क्रोध को समूल नष्ट कर िालो; क्योंशंक ये शाश्वत आनन्द के शतुरु हैं।

काम (इच्छा) शकसी सुखद और अनुकूल पदार्थ को प्राप्त करने की आकाङ्क्षा है िो सुख प्रदान करती है और िो दृश्य, श्रव्य अर्वा स्मरणीय है। क्रोध शकसी दुःखद और प्रशतकूल वसुतु के प्रशत प्रशतरोध है िो पीिा पहुँचाने वाला है और दृश्य, श्रव्य अर्वा स्मरणीय है।

योगी काम एवं क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग पर शनयंत्रण कर लेता है, राग और िेष अर्वा रुशचयों ंएवं अरुशचयों ंके संवेग को नष्ट कर देता है तर्ा अपने अन्तरतम में म्भस्र्त रहता हुआ मन की समता को प्राप्त कर लेता है, अतः वह सदैव प्रसन्न रहता है। (शनरूपण - VI.18)

योऽतः सुखोऽतरारामस्तर्ाथतज्योंडंतरेव यः ।
स योगी ब्रह्मडनवामणं ब्रह्मभूतोऽडधगच्छडत ।।२४ ।।

बिार्थम : यःि-ो, अन्तःसुखः - भीतर से सुखी, अन्तरारामः - अन्तर में रमण करने वाला, तर्ा-और, अन्तज्योंशंतः- भीतर से देदीप्यमान, एव-ही, यःि-ो, सः-वह, योगी-योगी, बर्ह्मशनवाथणम् -मोक्ष, बर्ह्मभूतः-स्वरूपशसद्ध हो कर, अशधगच्छशत-प्राप्त करता है।

अनुवाद : िो मनुष्य अपनी अन्तरात्मा में आह्लाशदत है, अन्तःकरण में ही रमण करता है और शिसने अपने भीतर ही ज्योशत प्राप्त कर ली है, ऐसा योगी ब्र्ह्मस्वरूप हो कर शनवाथण प्राप्त करता है।

व्याख्या : 'अन्तः' का अशभप्राय है- आत्मा में। वह ब्र्ह्मशनवाथण अर्वा मोक्ष इसी िन्म में प्राप्त करता है। वह िीविन्मुक् बन िाता है।

लभते ब्रह्मडनवामणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
डिन्नद्वैधा यतािानः सवमभूतडिते रताः ।।२५ ।।

ब्िार्थम : लभन्ते-प्राप्त करते हैं, ब्र्ह्मशनवाथणम् -परम आनन्द को, ऋषयः-ऋशष, क्षीणकल्मषाः - शिनके पाप नष्ट हो गये हैं, शछन्नद्वैधाः- शिनके िैत (संशय) शछन्न-शभन्न हो गये हैं, यतात्मानः-संयमी, सवथभूतशहते-समस्त प्राशणयों ंके कल्याण में, रताः-संलग्न ।

अनुवाद : वे ऋशष परम आनन्द की अनुभूशत करते हैं, मोक्ष प्राप्त करते हैं शिनके समस्त पाप नष्ट हो गये हैं, िैत (संशय) शछन्न-शभन्न हो गये हैं और िो मनसा अनुशाशसत हैं, संयमी हैं और सब प्राशणयों ंके कल्याण में आनन्द लेते हैं।

व्याख्या : अशग्नहोत्र (दैशनक यज्ञाशद अनुष्ठान) तर्ा अन्य यज्ञ शनष्काम भाव से करने पर पाप क्षीण होते हैं (देखें - III.13) । अैत ब्र्ह्म में सतत ध्यान से कमथ समाप्त होते हैं। ऐसा महापुरुष मनसा, वाचा, कमथणा शकसी को हाशन नहीं ंपहुँचाता; क्योंशंक वह परोपकार में लगा हुआ है और सबमें स्वात्मा के दशथन करता है। (शनरूपण –XII.4)

कामक्रोधडवयुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अडभतो ब्रह्मडनवामणं वतमते डवडदतािनाम् ।। २६ ।।

ब्िार्थम : कामक्रोधशवयुक्ानाम् -काम-क्रोध से शवमुक्, यतीनाम् - आत्म-संयत तपम्भस्वयों ंका, यतचेतसाम् - शिन्होंनें अपने शवचारों ंको संयत कर शलया है, अशभतः-सब ओर से, ब्र्ह्मशनवाथणम्-आत्म-साक्षात्कार, वतथते-होता है, शवशदतात्मनाम् - आत्म-ज्ञाशनयों ंका ।

अनुवाद : सब ओर से आनन्द की वृशष्ट उन तपम्भस्वयों ंपर होती है िो आत्म-संयमी हैं, शिन्होंनें काम-वासनाओं ं और क्रोध पर शविय प्राप्त कर ली है, शवचारधारा (मन) को वश में कर शलया है और आत्म-ज्ञान प्राप्त कर शलया है।

व्याख्या : वे पुरुष, शिन्होंनें श्रवण (शास्त्रों ंको सुनना), मनन (आत्म-शचन्तन), शनशदध्यासन (ध्यान) का अभ्यास शनष्काम भाव से शकया है, िो ब्र्ह्म में म्भस्र्त हैं, आत्म-ज्ञान के प्रशत दृदसंकल्प हैं, वे कैवल्य मोक्ष की प्राम्भप्त करते हैं। कमथयोग से क्रम-मुम्भक् का प्रसाद शमलता है, पहले मन की शुम्भद्ध, शफर ज्ञान, कमों का त्याग और अन्ततः मोक्ष की प्राम्भप्त होती है।

स्पिामन्कृत्वा बडिबामह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचाररणौ ।। २७ ।।

बि्ार्थम : स्पशाथन् बाह्य शवषयों ंको, कृत्वा-कर के, बशहः- बाहर, बाह्यान् बाहर के, चक्षुः - नेत्र (दृशष्ट), च-और, एव-ही, अन्तरे-मध्य में, ध्रुवोः - भौंहीं ंके, प्राणापानौ-नाशसका के भीतर चलने वाले और बाहर िाने वाले प्राण और अपान वायु, समौ-समान, कृत्वा-कर के, नासाभ्यन्तरचाररणौ-नाशसकाओं ंके भीतर चलने वाले ।

अनुवाद : शब्दाशद बाह्य शवषयों ंको बाहर ही रोक कर, दृशष्ट को भूरूमध्य पर केम्भित कर, नरुनों ंमें चलने वाली प्राण और अपान वायु को रोक कर,

व्याख्या : श्लोक २७ और २८ ध्यानयोग से सम्बद्ध हैं। बाह्य शवषय हैं- ध्वशन तरा् अन्य इम्भिय-शवषय। यशद मन बाह्य शवषयों ंका शचन्तन न करे, तो वे मन से लुप्त हो िाते हैं। इम्भियाँ ही िार हैं शिनके िारा ध्वशन आशद इम्भियों ंके शवषय मन में प्रवेश करते हैं।

यशद दृशष्ट को भूरूमध्य पर एकाशग्रत शकया िाये, तो नेत्र गोलक अचल और म्भस्रर हो िाते हैं। लयबद्ध श्वास ली िाती है। श्वास को तालबद्ध करना होगा। ऐसा करने से मन म्भस्रर हो िाता है। श्वास के लयबद्ध होने से मन तरा् समस्त प्रणाली में समत्व आ िाता है। (शनरूपण –VI.10, 14; VIII.10)

यतेन्द्रियमनोबुन्द्रद्धमुमडनमोक्षपरायणः ।
डवगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ।।२८ ।।

बि्ार्थम : यतेम्भियमनोबुम्भद्धः - शिसकी इम्भियाँ, मन और बुम्भद्ध (सदा) संयत हों, ं मुशनः योगी, मोक्षपरायणः- मोक्ष ही शिसका परम लक्ष्य हो, शवगतेच्छाभयक्रोधः- इच्छा, भय और क्रोध से मुक्, यः-िो, सदा-सदा, मुक्ः मुक्, एव-शनश्चय से, सः वह ।

अनुवाद : इम्भियाँ, मन और बुम्भद्ध को संयत कर, मोक्षपरायण अरा्थत् मोक्ष ही शिसका परम लक्ष्य है और शिसने इच्छा, भय और क्रोध को शवशित कर शलया है, ऐसा योगी शनशश्चत रूप से सदा मुक् है।

व्याख्या : इच्छा, भय और क्रोध पर शविय पा लेने पर मनुष्य पूणथ मानशसक शाम्भन्त प्राप्त करता है। इम्भियाँ, मन और बुम्भद्ध को वशीभूत कर के मुशन सतत ध्यानमग्न रहता है और परम आनन्द की प्राम्भप्त करता है।

काम, क्रोध और भय की वृशत्तयाँ िागृत होने पर मन अशान्त हो िाता है। कामना रशहत होने पर मन स्वतः ही भगवान् की ओर उनुमुख होता है। मोक्ष उसका सवो लक्ष्य बन िाता है।

मुशन वह है िो मनन, आत्म-शवशे्लेषण और ध्यान करता है।

भोक्तारं यज्ञतपसां सवमलोकमिेश्वरम् ।
सुहृदं सवमभूतानां ज्ञात्वा मां िान्द्रतमृच्छडत ।।२९ ।।

बि्ार्थम : भोक्ारम् - उपभोग करने वाला, यज्ञतपसाम् यज्ञों ंऔर तपों ंका, सवथलोकमहेश्वरम् -सब लोकों ंका महेश्वर, सुहृदम् -शमत्र, सवथभूतानाम् - सब प्राशणयों ंका, ज्ञात्वा–िान कर, माम्-मुझे, शाम्भन्तम्-शाम्भन्त, ऋच्छशत -प्राप्त
करता है।

अनुवाद : ि साधक मुझे सब यज्ञों ंऔर तपों ंका उपभोग करने वाला, समस्त लोकों ंका महान् से भी महानतम ईश्वर और सभी प्राशणयों ंका शहतशचन्तक शमत्र-इस प्रकार से िानता है, वह शाम्भन्त प्राप्त करता है।

व्याख्या : मैं समस्त यज्ञाशद और तपों ंका स्वामी हाँ। मैं ही उनका सिृनकताथ, लक्ष्य और उनका महेश्वर हाँ। मैं सब प्राशणयों ंका शमत्र हाँ। प्रशतफल की आशा शकये शबना उनका कल्याण करता हाँ। मैं ही उनके समस्त कमथफल का प्रणेता हाँ। उनके मन, शवचार और कमों का मौन साक्षी हाँ; क्योंशंक मैं उनके अन्तःकरण में वास करता हाँ। मुझे प्राप्त कर लेने पर वे भवबन्धन से मुक् हो िाते हैं, िागशतक कष्ट-पीिा से छुटकारा पा कर वे परम शाम्भन्त प्राप्त करते हैं। (शनरूपण -V.15; IX.24)

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषतुसु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
कममसंन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।।५ ।। ।।
इडत कममसंन्यासयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर् षष्ठोऽध्यायः

ध्यानयोगः

श्री भगवानुवाच

अनाडश्रतः कममफलं कायं कमम करोडत यः ।
स संन्यासी च योगी च न डनरडग्ननम चाडक्रयः ।।१ ।।

बि्र्थम : अनाशश्रतः - शनभथर न हो कर, कमथफलम् -कमथफल (पर), कायथ कमथ-कतथव्य कमथ, करोशत-करता है, यः-ि, सः- वह, संन्यासी संन्यासी, च-और, योगी-योगी, च-और, ननहीं,ं शनरशग्नः- यज्ञाशद न करने वाला, न-नहीं,ं च-और, अशक्रयः- (धाशमथक) अनुष्ठान न करने वाला।

श्री भगवान् ने कि

अनुवाद : कमथफल पर आशश्रत न रह कर, फल की इच्छा त्याग कर ो अपना कतथव्य कमथ करता है वही संन्यासी है और वही योगी है। अशग्न का और कमथ का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं ंहै।

व्याख्या : फल की इच्छा त्याग कर अशग्नहोत्र आशद शक्रयाएँ करने से मन शुद्ध होता है और ध्यानयोग के शलए साधन बनता है।

कायं कमथ-कतथव्य कमथ।

शनरशग्नः - शबना अशग्न के। शिसने अशग्नहोत्र आशद दैशनक शक्रयाओं ंका त्याग कर शदया है ो अशग्न की सहायता से की ाती हैं। अशक्रयः - शबना कमथ शिसने तपस् तर् अन्य परोपकार के कायथ ैसे धमथशाला (शवश्रामगृह) का शनमाथण, धमाथथथ शचशकत्सालय का शनमाथण, कुआँ खुदवाना, शनधथन को भोिन देना आशद, त्याग शदये हैं।

संन्यासी-शिसने कमथफल की इच्छा का त्याग कर शदया है।

योगी-म्भस्र्रधीः । ये दोनों ंशब्द यहाँ गौण अथथ में प्रयुक् हुए हैं, वसुतुतः उसे संन्यासी अथवा योगी अशभशहत करने के शलए नहीं।ं संन्यासी न तो अशग्नहोत्र करता है, न ही अन्य शक्रयाएँ । शकनुतु वास्तशवक त्याग के शबना इन्ें (अशग्नहोत्र और कमथ) त्यागना सिा संन्यास नहीं ंहै।

यं संन्यासडमडत प्राहयोगं तं डवन्द्रद्ध पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवडत कश्चन ।।२।।

बि्र्थम: यम् -शिसे, संन्यासम्-संन्यास, इशत-इस प्रकार, प्राहुः-कहते हैं, योगम् योग, तम्-उसे, शवम्भद्धि–ानो, पाण्डव-हे पाण्डव, न-नहीं,ं शह-शनश्चयेन, असंन्यस्तसंकल्पः - शिसने अपने संकल्पों ं(शवचारों)ं का त्याग नहीं ंशकया, योगी-योगी, भवशत-होता है, कश्चन-कोई भी।

अनुवाद : हे अिुथन, संन्यास ही योग है, ऐसा ानो । वसुतुतः संकल्पों ंका संन्यास (त्याग) शकये शबना कोई भी पुरुष योगी नहीं ंहोता ।

व्याख्या : भशवष्य की योिनाएँ बना कर उनके पररणाम का अनुमान करने वाली मन की शवचारणा-शम्भक् की शक्रया को संकल्प कहा ाता है। योिनाएँ बना कर कमथफल की आकाङ्क्षा करने वाला कभी कमथयोगी नहीं ंबन

सकता। कोई भी व्यम्भक्, ि◌ो कमथ में आस्र्ा रखता है, फल की इच्छा के त्याग शबना म्भरूरशचत्त योगी नहीं ◌ंबन सकता। फल का शवचार ही शनशश्चत रूप से मन को अशान्त करता है।

भगवान् कृष्ण कमथयोग की प्रशंसा करते हैं; क्योंशंक कमथयोग ध्यानयोग के शलए साधनस्वरूप अर्वा बशहरङ्गयोग है। कमथयोग ध्यानयोग के सोपान की सोपान-शला है। समय आने पर यह ध्यानयोग में प्रवृत्त करता है। कमथयोग के अभ्यास को बढ़ाने के शलए प्रोत्साहन हेतु कहा गया है शक कमथयोग भी संन्यास है। (शनरूपण-V.4)

आरुरुक्षोमुमनेयोगं कमम कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्ै्यैव ि◌मः कारणमुच्यते ।।३ ।।

बि्र्थम : आरुरुक्षोः- आरूढ़ होने की इच्छा वाला, मुनेः मुशन का, योगम् योग, कमथ-कमथ, कारणम् -कारण, उच्यते-कहा ि◌ाता है, योगारूढस्य-शिसने योग प्राप्त कर शलया है, तस्य-उसके शलए, एव-ही, शमः -शाम्भन्त को, कारणम् -कारण, उच्यते-कहा गया है।

अनुवाद : योगारूढ़ होने के इचुछुक मुशन के शलए शनष्काम कमथ ही साधन बताया गया है, शकनुतु योग प्राम्भप्त के उपरान्त उसी मुशन के शलए शम अर्ाथत् सब कमों का अभाव ही साधन बताया गया है।

व्याख्या : योगारूढ़ होने के शिज्ञासु के शलए ि◌ो दीघाथवशध तक न तो ध्यान में बैठ सकता है और न ही म्भरूरबुम्भद्ध हो सकता है, कमथ ही साधन बताया है। कमथ से मन पशवत्र होता है और म्भरूरतापूवथक अभ्यास के शलए अनुकूल हो िाता है। शनष्काम कमथ से म्भरूर (अशवचल) एकाग्रता और ध्यान में सहायता शमलती है।

ि साधक योगारूढ़ हो चुका है, उसके शलए शम अर्वा कमथ का त्याग (शनष्काम कमथ) ही साधन है।

शितना अशधक कुशलता से वह कमथ का त्याग करता है, उतना अशधक म्भरूर उसका मन होता है और उतनी शाम्भन्त उसे प्राप्त होती है। अब वह सहि रूप से मन को आत्मा में म्भरूत कर सकता है। "एक ब्र्ाह्मण के शलए आतै्मैक्य, सत्य, सिररत्र, म्भरूरता, समत्व, सरलता और सवथकमथत्याग के समान सम्पदा नहीं ◌ंहै।" (महाभारत, शाम्भन्त-पवथ, १७५.३८)

यदा डि नेन्द्रियारे्थेषु न कममस्वनुषिते ।
सवमसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ।।४ ।।

बि्र्थम : यदा–ब, शह-शनशश्चत रूप से, न-नहीं,◌ं इम्भियारे्षु - इम्भियों ◌ंके शवषयों ◌ंमें, 7-7 hat 6t . कमथसु-कमों में, अनुषिते-आसक् होता है, सवथसंकल्पसंन्यासी-समस्त संकल्पों ◌ंका पररत्यक्ा, योगारूढः- योगशनष्ठ, तदा-तब, उच्यते-कहा ि◌ाता है।

अनुवाद : समस्त संकल्पों ◌ंका त्याग कर देने पर ि◌ब मनुष्य की इम्भिय-शवषयों ◌ंअर्वा कमों में अनुरम्भक् नहीं ◌ंरह िाती, तब वह योगारूढ़ कहा ि◌ाता है।

व्याख्या : योगारूढ़-योग में म्भरूत । मन को पूणथरूपेण म्भरूर करके, इम्भिय-शवषयों ◌ंसे इसे पराङ्मुख कर के, कमों का अनुराग त्याग कर (see notes on कमथ - V.13) ध्वशन आशद तन्मात्राओं ◌ंकी आसम्भक् त्याग कर, उनकी शनरर्थकता को ि◌ान कर ि◌ब कोई योगी सब संकल्पों ◌ंका भी त्याग कर देता है और ि◌ान लेता है शक यही संकल्प सांसाररक शवषयों ◌ंके प्रशत शवशवध कामनाएँ ि◌ाग्रत करते हैं तभी वह योगारूढ़ कहलाता है।

शवषयों ंका शचन्तन मत करो। इच्छाएँ स्वयं ही मर िायेंगी। शवषय-शचन्तन से मुक् कैसे हों? ं आत्म-शचन्तन करो। भगवद्-शचन्तन करो। तभी शवषयों ंके शचन्तन से मुम्भक् शमल सकती है।

संकल्प-त्याग का अशभप्राय है-सब इच्छाओं ंऔर (सकाम) कमों का त्याग करना; क्योंशंक सभी इच्छाएँ संकल्प से उत्पन्न होती हैं। मनुष्य पहले सोचता है, शफर आकाशङ्क्षत वसुतु की प्राम्भप्त का साधन करता है।

"पुरुष िैसी कामना वाला होता है, वैसा ही संकल्प करता है और िैसे संकल्प वाला होता है, वैसा ही कमथ करता है।" (बृहदारण्यक उपशनषद्, ४.४.५)

सवथकमथ पररत्याग का भाव इच्छाओं ंके पररत्याग से आता है।

"हे काम! मैं िानता हाँ तुम्हारा मूल कहाँ है। तुम संकल्प (शवचार) से उद्भूत हो। मैं तुम्हारा शचन्तन नहीं ं करूँगा और तुम्हारा अम्भस्तत्व समूल नष्ट हो िायेगा।" (महाभारत, शाम्भन्त-पवथ, १७७.२५)

"वसुतुतः इच्छा, शवचार (संकल्प) से उत्पन्न होती है और शवचार से यज्ञ उत्पन्न होते हैं।" (मनुसूमृशत, ।।.2- काम्यो शह वेदाशधगमः कमथयोगश्च वैशदकः ।।)

उद्धरेदिनाऽऽनिं निाानमवसादयेत् ।
िौव ह्यािनो बनुधुरीव ररपुरािनः ।।५ ।।

बि्ार्थम : उद्धरेत् - उद्धार करो (ऊपर उठाओ), आत्मना-आत्मा के िारा, आत्मानम् - आत्मा का, न-नहीं, ं आत्मानम्-आत्मा का, अवसादयेत् -पतन करो, आत्मा-आत्मा, एव-ही, शह-वसुतुतः, आत्मनः- आत्मा का, बनुधुः-शमत्र, आत्मा-आत्मा, एव-ही, ररपुः-शतुरु, आत्मनः- आत्मा का।

अनुवाद : आत्मा के िारा ही आत्मा का उद्धार करो। इसका पतन मत होने दो। आत्मा ही आत्मा का बनुधु है और आत्मा ही आत्मा का शतुरु है।

व्याख्या : योगाभ्यास करो। मन और इम्भियों ंको शनयम्भन्त्रत करो। स्वयं का उत्थान करो और योगारूढ़ हो िाओ। योग को सुलभ करो। िीवन्त (शम्भक्युक्, शक्रयाशील) योगी की भाँशत यशस्वी बन कर चमको । संसार-सागर में अपना अधःपतन मत करो। आवागमन के भाँवर में मत फाँसो । सांसाररक मानशसकता वाले व्यम्भक् मत बनो। काम, लोभ और क्रोध के दास मत बनो। सांसाररकता से ऊपर उठो । शदव्य बनो। ब्र्ह्मत्व प्राप्त करो।

केवल तुम स्वयं ही अपने शमत्र हो । अपने शतुरु भी तुम स्वयं ही हो। सांसाररक शमत्र तुम्हारा सिा शमत्र नहीं ंहै; क्योंशंक वह तुममें अनुरक् है, तुम्हारा समय व्यर्थ करता है और तुम्हारे मागथ में बाधाएँ िालता है। वह शनतान्त स्वार्ी है। तुमसे कुछ लेने के भाव से ही वह तुमसे शमत्रता करता है। शनि स्वार्थ की वसुतु तुमसे प्राप्त न होने पर वह तुम्हारा त्याग कर देता है। इसीशलए वास्तव में वह तुम्हारा शतुरु ही है। से्नेहवश अर्वा भ्रमवश तुम अपने शमत्र में आसक् हो, तो यह तुम्हारे शलए संसार में बन्धन का कारण बनेगा।

शमत्र और शतुरु बाहर नहीं ंहैं। वे मन में ही वास करते हैं। मन ही शमत्र को शतुरु और शतुरु को शमत्र बनाता है। अतः आत्मा ही मनुष्य का बनुधु है और आत्मा ही शतुरु है। अशुद्ध मन तुम्हारा वास्तशवक शतुरु है; क्योंशंक यह तुम्हें संसार में बाँधता है और शुद्ध साम्भत्त्वक मन तुम्हारा शमत्र है; क्योंशंक यह तुम्हें मोक्ष-प्राम्भप्त में सहायक है।

बनुधुरािाऽऽनिस्तस्य येनिौविािा डजतः ।
अनिानसुतु ितुरुते्वे वतेतािौव ितुरुवत् ।।६ ।।

बिाथम : बनुधुः-शमत्र, आत्मा-आत्मा, आत्मनः- आत्मा का, तस्य- उसका, येन-शिसके िारा, आत्मा-आत्मा, एव-ही, आत्मना-आत्मा के िारा, शितः- िीता गया है, अनात्मनः - शिसने आत्मा को नहीं ंिीता, तु-लेशकन, शतुरुते्वे-शतुरुभाव
में, वतेत-रहता है (वतथता है), आत्मा-आत्मा, एव-ही, शतुरुवत् - शतुरु की भााँशत ।
अनुवाद : आत्मा, आत्मा का बनुधु उसके शलए है शिसने आत्मा से ही आत्मा को शवशित कर शलया है। शिसने स्वयं पर शनयन्त्रण प्राप्त नहीं ंशकया उसके शलए आत्मा शतुरुभाव में रह कर बाह्य शतुरु की तरह व्यवहार करता है।

व्याख्या : शनम्न मन पर शविय प्राप्त करो उितर मन के िारा। शनम्नतर मन तुम्हारा शतुरु है। उितर मन तुम्हारा शमत्र है। उितर मन से शमत्रता करने पर तुम शनम्नतर मन को सहि ही वश में कर सकते हो। शनम्नतर मन रिस् और तमस् से पररपूणथ है। उच्चच्चतर मन साम्भत्त्वक भाव से पूणथ है।

इम्भियााँ, मन और आत्मा को शनयम्भन्त्रत रखने वाला ही आत्मा का बनुधु है। शकनुतु यही आत्मा उसके शलए शतुरु बन िाता है शिसने अपने शनम्नतर मन और इम्भियों ंको वश में नहीं ंशकया। बाह्य शतुरु की भााँशत वह उसे हाशन पहुाँचाता है। शनम्नतर मन उसे मानो शनदथयता से घायल कर देता है। सविो आत्मा मूल आत्मा है। मन भी आत्मा है; शकनुतु गौण आत्मा है।

डजतािनः प्रिातस्य परमािा समाडितः ।
ितिौष्णसुखदुःखेषु तर्था मानापमानयोः ।।७ ।।

बिाथम : शितात्मनः स्वयं पर शविय पाने वाले का, प्रशान्तस्य- शान्तशचत्त वाले का, परमात्मा-परमात्मा, समाशहतः-समाशध में म्भस्त (सम्यक् प्रकार से म्भस्त), शीतोष्णसुखदुःखेषु सरदी-गरमी, सुख-दुःख में, तर्ा -और भी , मानापमानयोः मान और अपमान में।

अनुवाद : शितेम्भिय और प्रशान्त पुरुष की सविो आत्मा सदा समाशधस् रहती है। वह सरदी-गरमी, सुख-दुःख और मान-अपमान में भी सम रहता है। (ये सभी िन् उिसे प्रभाशवत नहीं ंकरते)।

व्याख्या : शितेम्भिय योगी िो समाशध में म्भस्त है, वह िन्िोंके शवरोधी युग्ों ं(िन्िों) में शान्त रहता है। शीतोष्ण, दुःख-सुख, मानापमान से वह अतीत रहता है। इम्भियााँ वशीभूत हों,ं मन समाशहत (सम) हो, योगी हर अवस्ा में शान्तशचत्त हो, शवपरीत िन्िोंसे प्रभाशवत न हो, समस्त कमों का त्याग कर शदया हो, तभी परमात्मा वसुतुतः उसका अपना आत्मा बन िाता है। वह भगवद्-साक्षात्कार कर लेता है। आत्मस् (आत्मा में म्भस्त, समाशधस्) होने के कारण वह सदा सौम्य और प्रशान्त बना रहता है। प्रकृशत की शवपरीत पररम्भस्शतयों ंमें वह चट्टान की भााँशत दृढ़ रहता है, उसे प्रकृशत प्रभाशवत नहीं ंकरती।

ज्ञानडवज्ञानतृप्तािा कूटथर्थो डवडजतेन्द्रियः ।
युक्त इतुयुच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।।८।।

बिाथम : ज्ञानशवज्ञानतृप्तात्मा-ज्ञान-शवज्ञान से तृप्त, कूटस्:-अशवचशलत, शवशितेम्भियः - इम्भियों ंको िीतने वाला, युक्: समम्भित, इशत-इस प्रकार, उच्यते-कहा िाता है, योगी-योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः - शमट्टी, पत्थर और स्वणथ खण्ड शिसके शलए समान हों।ं

अनुवाद : अपने ज्ञान और शवज्ञान (आध्याम्भत्मक ज्ञान, आत्म-ज्ञान) से शिस योगी की आत्मा तृप्त है, शिसने इम्भियों ं को ि ीत शलया है और शिसके शलए शमट्टी का ढेला, पत्थर अर्वा स्वणथ खण्ड समान हैं, वह युक् योगी है (शिसने शनशवथकल्प समाशध की अवस्ा प्राप्त कर ली है)।

व्याख्या : ज्ञान का अशभप्राय है-परोक्ष ज्ञान अर्वा सैद्धाम्भन्तक ज्ञान ि ो शास्त्राध्ययन से अशिथत शकया है। शवज्ञान, शवशेष ज्ञान है शिसे अपरोक्ष ज्ञान (direct knowledge) भी कहते हैं। यह अनुभव से प्राप्त आत्म-ज्ञान है।

'कूटस्' का अर्थ है-सूणा (लौह-खण्ड, शिस पर लुहार कूटता है) की भााँशत अपररवतथनशील। सूणा पर शवशभन्न प्रकार के लौह-खण्ड, आकार बनाने के शलए हर्ौ से कूटे ि ाते हैं, शकनुतु सूणा पर कोई प्रभाव नहीं ं प़िता; इसी प्रकार इम्भिय-शवषयों ंके सम्पकथ में आने पर भी योगी अप्रभाशवत रहता है, अतः कूटस् कहलाता है। ब्ह्मन् का दूसरा नाम कूटस् है ि ो मन की वृशत्तयों ंका मौन साक्षी है। (शनरूपण –V.18; VI.18)

सुिन्द्रन्मत्रायुमदासीनमध्यथर्थिष्यबनुधुषु ।
साधुष्वडप च पापेषु समबुन्द्रद्धडवमडिष्यते ।।९ ।।

बि्ार्थम : सुहत् - शुभशचन्तक, शमत्र-शमत्र, अररः-शतुरु, उदासीन- तटस्, मध्यस्-शनष्पक्ष, ि ेष्य–ि ेष करने वाले, बनुधुषु सम्बम्भन्धयों ंमें, साधुषु साधुओं ंमें, अशप-भी, च-और, पापेषु पाशपयों ंमें, समबुम्भद्धः-समान भाव रखने वाला, शवशष्यते-सवथश्ेरेष्ठ है।

अनुवाद : ि ो मनुष्य शुभशचन्तकों,ं शमत्रों,ं शतुरुओं,ं तटस्ों,ं मध्यस्ों,ं घृणा करने वालों,ं सम्बम्भन्धयों,ं साधुओं ंऔ पाशपयों ंमें समभाव रखता है, वह सवथश्ेरेष्ठ है।

व्याख्या : शवशष्यते-योगारूढ़ों ंमें सवथश्ेरेष्ठ ।

समबुम्भद्ध-मन का समत्व । समबुम्भद्ध योगी समान दृशष्टकोण (समदृशष्ट) वाला होता है। वह शनष्पक्ष होता है। सबमें समान होता है। वह ि ाशत-भेद, वणथ-भेद से परे होता है। शनि आत्मा के समान ही सबमें समभाव रखता है। वह आत्मा में म्भस्त रहता है।

सुहृद्-परोपकारी मनुष्य ि ो शनष्कामभाव से सेवा करता है और बदले में कोई आकाङ्घा नहीं ंरखता।

उदासीन-शनरपेक्ष, तटस्, शनरशभलाष ।

मध्यस्-दो शववादी ि नों ंमें मौन साक्षी रहने वाला।

साधुषु ि ो शुभ कमथ करते हैं और शास्त्र की आज्ञा में चलते हैं, वे साधु कहलाते हैं।

पापेषु पापी वे हैं ि ो अशुभ और शनशषद्ध कमथ करते हैं और शास्त्र के शवरुद्ध चलते हैं तर्ा दूसरों ंको हाशन पहुाँचाते हैं।

योगी युञ्जीत सततमाानं रिडस न्द्रथर्थतः ।
एकाकी यतडचत्तिाा डनरिीरपररग्रिः ।।१०।।

शब्दार्थ : योगी-योगी, युञ्जीत-मन को स्थिर करे, सततम् - अशवराम, आत्मानम् आत्मा को, रहशस एकान्त में, स्थितः-रह कर, एकाकी अकेला, यतशचत्तात्मा-आत्मवशी (देह और मन को वश में करके), शनराशीः-इच्छा रशहत, अपररग्रहः लालसा रशहत।

अनुवाद : योगी को चाशहए शक वह एकान्त में अकेले रह कर मन और शरीर को शनयम्भन्त्रत कर के आशाशून्य हो कर, लालसा त्याग कर (अपररग्रह का पालन करते हुए) अशवराम परमात्मा में मन को स्थिर करने का प्रयास करे ।

व्याख्या : शनवाथण-मागथ पर चलने वाला योगी शकसी पवथत-गुहा में ध्यानाभ्यास कर सकता है। सब प्रकार के संग्रह का उसे पररत्याग कर देना उशचत है।

यौशगक प्रवृशत्त और आध्याम्भत्मक शिज्ञासा रखने वाले गृहस्थ् को चाशहए शक वह अपने ही भवन के शकसी एकान्त कक्ष में ध्यान का अभ्यास करे अर्वा शकसी पावन नदी के तट पर (अवकाश-काल में अर्वा वषथ पयथन्त, यशद वह अपने कायथ से सेवा-शनवृत्त हो चुका है) अभ्यास करे ।

अभ्यास अशवराम अशनवायथ है। अशचरेण शनशश्चत रूप से आत्म-ज्ञान की प्राम्भप्त हेतु यह आवश्यक है। िो मनुष्य बीच-बीच में अभ्यास छोड़ देता है और पुनः कुछ क्षणों ंके शलए ध्यान में बैठता है, वह अनुकूल पररणाम नहीं ंपा सकता । यौशगक साधक आशा, आकाङ्घा और लालसा से मुक्त हो, तभी उसका मन स्थिर हो सकता है। आशा, तृष्णा और लोभ मन को सदा अशान्त और क्षुब्ध रखते हैं। वे शाम्भन्त और आत्म-ज्ञान के शत्रु हैं। साधक के पास अशधक संग्रह भी नहीं ंहोना चाशहए। शरीर के शनवाथह के शलए शनतान्त आवश्यक वस्तुएँ ही रखना उससे अपेशक्षत है। अशधक वस्तु-संग्रह होने से मन उन्हीं ंका शचन्तन करेगा और उनके रक्षण की शचन्ता भी करेगा।

मनुष्य यशद प्रत्याहार, शम, दम (इम्भियशनग्रह और मनोशनग्रह) में भलीभाँशत स्थित है, इम्भियाँ पूणथ रूप से उसके आधीन हैं, तो बड़े शहर के भीड़ और शोरगुल वाले स्थान में भी वह पूणथ एकान्त और शाम्भन्त का अनुभव कर सकता है।

इम्भियाँ यशद चंचल हैं, उन्हें अन्तमुथखी करने की शम्भक्त यशद व्यम्भक्त में नहीं ंहै, तो शहमालय की एकान्त गुफा में भी उसे मानशसक शाम्भन्त उपलब्ध नहीं ंहो सकती। शम, दम में कुशल योगी एकान्त गुहा में आनन्दपूवथक शाम्भन्त से रह सकता है। एक अनुरक्त पुरुष शिसने मन और इम्भियों ंका शनग्रह नहीं ंशकया, वह पवथत-गुहा के एकान्त में भी हवाई शकले बनायेगा।

पवथत-गुहा में तो वही रह सकता है िो इच्छाओं ंसे मुक्त है, संसार के प्रशत आकृष्ट नहीं ंहै, शववेकी है, मोक्ष की ज्वलन्त अशभलाषा रखता है और शिसने कई मास पयथन्त मौन साधना की है।

गम्भीर, अनवरत ध्यान में प्रवेश करने से पूवथ योगासनों ंके शनयशमत अभ्यास से शरीर पर पूणथ शनयन्त्रण अशनवायथ है।

अपररग्रह-शकसी के धन की लालसा न करना, भौशतक वस्तुओं ंका संग्रह न करना।

आध्याम्भत्मक साधक को शारीररक आवश्यकताओं ंकी शचन्ता नहीं ंकरनी चाशहए। परमात्मा सब-कुछ देता है। प्रकृशत ने पहले से ही सब प्रबन्ध कर रखे हैं। मनुष्य शितना अपना ध्यान रख सकता है, प्रकृशत उससे कहीं ं अशधक कुशलता और सावधानी से उसकी देखभाल करती है। प्रकृशत उसकी आवश्यकताओं ंको िानती है और

वहीं ंउसी समय प्रदान करती है। माँ प्रकृशत की रहस्यमयी प्रकृशत को पहचानो और बुम्भद्धमान् बनो। उसकी अद्‌भुत दया, कृपा और करुणा के शलए उसके प्रशत कृतज्ञ बनो।

यशद तुम ध्यानाभ्यास के शलए एकान्तवास चाहते हो और यशद तुम गृहस्‌ हो कर भी घोर आध्याम्भत्मक साधना की शपपासा रखते हो, तो अनायास ही तुम अपने पररवार के सार्‌ सम्बन्ध तोि़ नहीं ंसकते । सांसाररक सम्बन्धों ंका अनायास शवचे्छेद तुममें मानशसक अवसाद की म्भस्र्शत ला सकता है और पररवारी िन भी दु:खी होंगें। सम्बन्ध शवचे्छेद शनैः-शनैः करना उपयुक्‌ है। प्रारम्भ में सप्ताह अर्वा माह पयथन्त एकान्तवास करो। धीरे-धीरे समय की

अवशध बढ़ाते िाओ। तब वे शवयोग की वेदना का अनुभव नहीं ंकरेंगे। यशद तुम्हारी इच्छा-शम्भक्‌ दुबथल है, तुम धाशमथक अनुशासन नहीं ंरख सकते अर्वा युवावस्र्ा में तुम्हें पाठशाला अर्वा शवश्वशवद्यालय में प्रशक्षण नहीं ं शमला और तुम भौशतकवाद में फंसे हुए हो, तो आवश्यक है शक कुछ शदनों ंअर्वा सप्ताहों ंके शलए एकान्तवास को िाओ (शक्रसमस, ईस्टर अर्वा अन्य छुशट्टयों ंमें) । वहाँ िा कर तुम कठोर तप और ध्यान-साधना करो और अपनी इच्छा-शम्भक्‌ बढ़ाओ ।

शिन्होंनें अपने पुत्रों ंको शनयुक्‌ कर शलया है और िो सेवा-शनवृत्त हो गये हैं और गृहस्‌ के कतथव्यों ंसे मुक्‌ हो चुके हैं, वे आत्म-शुम्भद्ध और आत्म-साक्षात्कार के शलए घोर तपस्या और ध्यान-साधना में लगने के शलए चार-पाँच वषथ पयथन्त एकान्तवास करें।

यह उत्तिर ज्ञान-प्राम्भप्त के शलए शवश्वशवद्यालय में पदापथण (प्रवेश) करने के समान है। तपस्‌ पूणथ होने पर िब वे आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लें, तो बाहर आ कर वे प्रवचन, वाद-शववाद, संलाप (संकर्ा) अर्वा आत्मा से आत्मा तक सन्देश पहुँचाना आशद अपनी सामथ्यथ और (ज्ञान पर) अशधकार के अनुसार ज्ञान का प्रसारण करें।

िहाँ कोई आकषथण ही न हो, वहाँ इम्भियशनग्रह की परीक्षा कैसे करें? पयाथप्त प्रगशत कर लेने पर समाि में लोगों ंके मध्य आ कर यौशगक साधक अपनी परीक्षा करे। शकन्तु शनत्य प्रशत ऐसा न करे; क्योंशंक िब कभी आत्म-शनरीक्षण उस युवा की भाँशत करने से, िो पौधे को शनत्य िल से सींचं कर उखाि़ कर देखता र्ा शक पौधे की मूल गहरी गयी अर्वा नहीं, ं हाशन होगी।

शुचौ दे प्रशतष्ठाप्य म्भस्र्रमासनमात्मनः ।
नात्युम्भच्छरतं नाशतनीचं चैलाशिनकुशोत्तरम्‌ ।।११ ।।

शब्दार्थ : शुचौ-पशवत्र, देशे-स्र्ान में, प्रशतष्ठाप्यस्र्ाशपत कर के, म्भस्र्रम्‌ -म्भस्र्रतापूवथक, आसनम्‌ आसन, आत्मनः- अपना, न नहीं, ं अत्युम्भच्छरतम्‌ - बहुत ऊँचा, न-नहीं, ं अशतनीचम्‌ - बहुत नीचा, चैलाशिनकुशोत्तरम्‌ -वस्त्र, मृगछाला और कुशासन एक के ऊपर एक रख कर ।

अनुवाद : पशवत्र स्र्ान पर िो न अशधक ऊँचा हो न अशधक नीचा हो, आसन शबछा कर िो वस्त्र, मृगछाला और कुशा घास क्रमशः एक के ऊपर एक रख कर बना हो । (यहाँ पाठक्रम से वस्त्र आशद का क्रम उल्टा समझना चाशहए। पहले कुशा, शफर मृग-चमथ और अन्त में वस्त्र शबछाना चाशहए-शंकराचायथ)

व्याख्या : इस श्लोक में भगवान्‌ ने ध्यानाभ्यास के शलए बाह्य आसन का शनदेश शदया है। शिन्होंने ंका शवस्तार श्लोक १३ में है।

भूशम पर पहले कुशा शबछाओ, उस पर मृगछाला अर्वा चीते की छाल और उसके ऊपर एक श्वेत वस्त्र शबछाओ।

प्राकृशतक पावन स्ान का चयन करो िैसे नदी का तट अर्वा भूशम को स्वच्छ करो िहााँ भी तुम ध्यान करना चाहते हो।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतडचत्तेन्द्रियडक्रयः ।
उपडवश्यासने युज्याद्योगमिाडविुद्धये ।।१२ ।।

बि्र्थम : तत्र-वहााँ, एकाग्रम् एकाग्र, मनः-मन, कृत्वा कर के, यतशचत्तेम्भियशक्रयः - शिसने मन और इम्भियों ंकी शक्रयाओं ंको वश में कर शलया है, उपशवश्य-बैठ कर, आसने-आसन पर, युञ्ज्यात्-अभ्यास करे, योगम्योग का, आत्मशवशुद्धये-आत्म-शुम्भद्ध के शलए।

अनुवाद : आसन पर बैठ कर, मन को एकाग्र कर के, शचत्त और इम्भियों ंकी प्रवृशत्तयों ंको वश में कर के (साधक को) आत्म-शुम्भद्ध के शलए ध्यान का अभ्यास करना चाशहए।

व्याख्या : आत्मा का तात्पयथ यहााँ मन से है। वास्तशवक परम तत्त्व तो आत्मा है। यह मुख्य है। मन भी आत्मा है; शकन्तु यह गौण अर्थ में प्रयुक् होता है। मुख्य आत्मन् ब्ह्म है, िब शक गौण आत्मा मन है।

योगाभ्यास के िारा मन की शवकीणथ वृशत्तयों ंको संहृत करो। इम्भिय-शवषयों ंसे इसे पुनः-पुनः हटा कर अपने लक्ष्य, ध्यान-शबन्दु अर्वा कि पर एकाशग्रत करो । शनैः-शनैः मन एकाग्र होने लगेगा। अभ्यास शनयशमत होना अशनवायथ है। तभी सफलता प्राप्त हो सकती है। शनयशमतता सविो महत्त्व रखती है। आत्म-शनरीक्षण अर्वा दैशनक अन्तःपरीक्षण के िारा मन के रंग-ढंग िानने का प्रयास करो। मन के शनयमों ंका ज्ञान होना चाशहए, तब भटकते मन को शनयम्भन्त्रत करना सहि हो िायेगा। िब तुम ध्यान में बैठते हो और सांसाररक शवषयों ंको स्वतः भुलाने का प्रयास करते हो, तो सब प्रकार के सांसाररक शवचार तुम्हारे मन में शवकशसत होंगें और ध्यान में शवघ्न ालेंगे। तुम्हें बहुत आश्चयथ होगा। वषों पूवथ के शवचार और सुखद स्मृशतयााँ तुम्हारे मानस-पटल पर उभर कर आयेंगी और मन को इतस्ततः भ्रमण करने के शलए बाध्य करेंगी। तुम पाओगे शक शवशाल अवचेतन मन का कूट िार (trap door) खुला है अर्वा शवचारों ंके कोष-गृह का आवरण हट गया है और शवचार सतत अशवरल धारा में बाहर प्रवाशहत हो रहे हैं। शितना अशधक तुम उन पर शनयन्त्रण पाने की कोशश करते हो, उतनी अशधक शिगुशणत शम्भक् से वह उभर कर आते हैं।

शनरुत्साशहत मत होओ। शनराश मत होओ। शनरन्तर शनयशमत अभ्यास से तुम अवचेतन मन की स्मृशतयों ं को नष्ट कर सकते हो। ध्यानयोग की अशग्न सब शवचारों ंको भस्म कर देगी। शवश्वास रखो। शवषयुक् सांसाररक शवचारों ंको नष्ट करने के शलए ध्यान प्रशतकारी औषध है। यह शनशश्चत है।

शाश्वत आत्मा पर ध्यान शवस्फोटक की भााँशत समस्त शवचारों ंको और स्मृशतयों ंको चेतन मन से उड़ा देगा। यशद शवचार अशधक कष्ट पहुाँचायें, तो 3/(3 - 6) बलपूवथक दबाने का प्रयास न करो। चलशचत्र के उपकरण की भााँशत मौन साक्षी बने रहो। शवचार स्वयं ही लुप्त हो िायेंगे। तत्पश्चात् शनयशमत मौन ध्यान से उन्हें समूल नष्ट करने का यत्न करो।

अन्तशनथरीक्षण के समय तुम स्पष्ट रूप से देखोगे शक मन शकतनी शीघ्रता से दूसरी धारा में बदलता है। यहीं ंअवसर शमलता है मन को अपने अनुरूप संयत करने का। अब तुम शवचार और मानशसक शम्भक् को शदव्य

स्रोत में उनुमुख कर सकते हो। अब शवचारों ंका पुनः नवीनीकरण कर के साम्भत्त्वक आधार पर नये शवचारों ंकी धारणा कर सकते हो। सांसाररक व्यर्थ शवचारों ंको बाहर फेंक सकते हो। मन के शदव्य उद्यान में मोघ शवचारों ंको तृणाशद की भााँशत बाहर कर के उत्कृष्ट, शदव्य शवचारों ंके बीि िाल सकते हो। यह सहनशीलता का, धैयथ का कायथ है। वास्तव में यह अशत-शवशाल, शवस्मयकारी कायथ है। शकन्तु दृढ़प्रशतज्ञ योगी के शलए, शिस पर प्रभु की कृपा है और लौह समान इच्छा-शम्भक् है, यह कुछ भी नहीं ंअराथत् सहि है।

मूक ध्यान के िारा उभरते भावों,ं वृशत्तयों,ं संवेगों ंऔर उत्तेिनाओं ंको धीरे-धीरे शान्त करो। सुव्यवम्भस्त सतत अभ्यास के िारा तुम अपने भावों ंको एक नवीन व उज्ज्वल शदशा प्रदान कर सकते हो। भौशतक प्रकृशत को शदव्य प्रकृशत में तन्मय कर सकते हो। ध्यान के िारा तुम स्नायु-तन्त्रों,ं मांसपेशयों,ं पंचकोषों,ं भावों,ं संवेगों ंऔर उत्तेिनाओं ंपर पूणथ शनयन्त्रण प्राप्त कर सकते हो ।

समं कायडिरोग्रीवं धारयिचलं न्द्रथर्थरः ।
संप्रेक्ष्य नाडसकाग्रं स्वं डदिश्चानवलोकयन् ।।१३ ।।

बिार्थम : समम् -सीधा, कायशरोग्रीवम् - शरीर, शसर और गदथन, धारयन् रखते हुए, अचलम्-अचल, म्भस्थरः-अचल, संप्रेक्ष्य-देखते हुए, नाशसकाग्रम् नाशसका के अग्रभाग को, स्वम्-अपने, शदशः-शदशाएँ, चऔर, अनवलोकयन् न देखते हुए।

अनुवाद : म्भस्थरतापूवथक अपने शरीर, शसर और ग्रीवा को अचल और सीधा रखते हुए नाशसकाग्र भाग पर दृशष्ट एकाग्र कर के अन्य शदशाओं ंको न देखते हुए, कर रहे हैं, व्याख्या : इस श्लोक में भगवान् मुिा (आसन) और दृशष्ट का वणथन म्भस्थर आसन के शबना ध्यानाभ्यास नहीं ंहो सकता। यशद शरीर अम्भस्थर है, तो मन भी अम्भस्थर होगा। शरीर और मन का शनकट का सम्बन्ध है।

शरीर को कदाशप शहलाना नहीं ंचाशहए। शनत्य अभ्यास के िारा आसनि−य प्राप्त करना चाशहए। चट्टान की भााँशत सुदृढ़ रहो । शरीर, शसर और ग्रीवा को सीधा रखने से मेरुदण्ड सीधा रहेगा और कुण्डशलनी िागृत हो कर सूक्ष्म सुषुम्ना नािी से ऊध्वथ गमन करेगी। पद्मासन अर्वा शसद्धासन में बैठो । इससे स्नायवीय सनुतुलन और मन की साम्यावस्था बनी रहेगी। म्भस्थरतापूवथक दृशष्ट नाशसका के अग्रभाग पर रखो। इसे 'नाशसकाग्र दृशष्ट' कहते हैं। अन्य दृशष्ट हैं 'भूमध्य दृशष्ट'-दोनों ंभौहों ंके मध्य आज्ञाचक्र पर दृशष्ट शटकाना। इसका उल्लेख पााँचवें अध्याय के श्लोक २७ में हो चुका है। भ्रूमध्य दृशष्ट में बन्द नेत्रों ंसे आज्ञाचक्र पर दृशष्ट एकाग्र की िाती है। खुली आाँखों ंसे करने पर शसर-ददथ हो सकता है। धूल अर्वा शवितीय तत्त्व आाँखों ंमें शगर सकते हैं। मन भी भ्रशमत हो सकता है। नेत्रों ंपर दबाव मत िालो। सहि अभ्यास करो। नाशसकाग्र भाग पर ध्यान लगाने से शदव्य गन्ध की अनुभूशत होती है। आज्ञा चक्र पर ध्यान एकाग्र करने से शदव्य ज्योशत की अनुभूशत होती है। यह एक अनुभूशत है िो तुम्हें उत्साशहत करने, आध्याम्भत्मक पर् पर आगे बढ़ने और देहातीत अलौशकक संज्ञान के शलए तुम्हें बतायी गयी है। साधना बन्द मत करो। भगवान् शव के भक् और योगी िन आज्ञाचक्र पर भ्रूमध्य दृशष्ट से मन एकाग्र करते हैं। कौन-सी दृशष्ट तुम्हें अनुकूल पिती है, इसका चयन तुम कर सकते हो।

यद्यशप अधथ खुले नेत्रों ंसे दृशष्ट नाशसकाग्र भाग पर म्भस्थर की िाती है और नेत्र गोलक भी म्भस्थर रहते हैं। मन को आत्म-तत्त्व पर एकाग्र करना चाशहए। अतः तुम्हें मानो नाशसकाग्र भाग पर ही देखना होगा। अध्याय VI. श्लोक 25 में भगवान् कहते हैं- "मन को आत्मा में म्भस्थत कर के वह कोई और ध्यान न करे।" नाशसकाग्र भाग पर दृशष्ट म्भस्थर करने से मन अशवलम्ब एकाशग्रत होगा।

शिस भी शबन्दु का तुम चयन करो, वहीं ापने इष्टदेव के दशथन करो और उसकी शवद्यमानता की अनुभूशत लो।

प्राितिाा डवगतभीब्रमह्यचाररव्रते न्द्रथर्थतः ।
मनः संयम्य मन्द्रित्तो युक्त आसीत मत्परः ।।१४।।

बि्ार्थम : प्रशान्तात्मा-शान्तशचत्त, शवगतभीः - शनभथय, ब्ह्मचाररिते- ब्ह्मचयथित में, म्भरुतः- दृढ़, मनः- मन, संयम्य-संयत कर के, मम्भित्तः- मेरा शचन्तन करते हुए, युक्-समम्भित (सनुतुशलत), आसीत-बैठे, मत्परः- मेरे परायण हो कर।

अनुवाद : शान्तशचत्त, शनभथय, ब्ह्मचयथ ित में दृढ़, शितेम्भिय पुरुष मेरा शचन्तन करता हुआ मुझे परम लक्ष्य मान कर (ध्यान में) बैठे।

व्याख्या : आध्याम्भत्मक साधक को शान्तशचत्त रहना अत्यावश्यक है। शदव्य ज्योशत शान्त शचत्त में ही उतर सकती है। वासना, तृष्णा और इच्छा के दमन से शचत्त की शाम्भन्त अर्वा मन की सौम्यता प्राप्त होती है। उसे शनभथय होना चाशहए। यह उतूकृष्ट गुण है। कायर व्यम्भक् आत्म-साक्षात्कार से बहुत दूर है (नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः) ।

ब्ह्मचारी को पूणथ मन से गुरु की, आध्याम्भत्मक शक्षक की सेवा करनी चाशहए और शभक्षा-वृशत्त पर शनवाथह करना चाशहए। ब्ह्मचयथ ित का पालन भी करना चाशहए। साधक को मन की वृशत्तयों ंको संयत रखना चाशहए। सुख-दुःख, शीतोष्ण, मानापमान में समान रहना साधक के शलए शहतकर है। भगवन्नाम का िप करते हुए साधक को सदा उसी को (भगवान् को) लक्ष्य मान कर आगे बढ़ना चाशहए।

ब्ह्मचयथ का अशभप्राय आत्म-शनयन्त्रण अर्वा इम्भिय-दमन भी है। वीयथ वह प्राण-शम्भक् है िो नाशियों ंऔर मम्भस्तष्क को शनयशमत कर के प्रणाली को ऊिथ प्रदान करती है। शिस ब्ह्मचारी ने ब्ह्मचयथ ित के िारा वीयथ-शम्भक् की रक्षा की है और इसे ओि-शम्भक् अर्वा देदीप्यमान आध्याम्भत्मक शम्भक् में पररणत कर शदया है, वह दीघाथवशध तक ध्यानाभ्यास में संलग्न रह सकता है। योग के सोपान पर वही आरोहण करने में सक्षम है। ब्ह्मचयथ-पालन अर्वा आत्म-संयम के शबना शंकंशचत् मात्र भी प्रगशत सम्भव नहीं ंहै। ब्ह्मचयथ की नीवं पर ध्यान और समाशध के शवशाल मम्भन्दर का शनमाथण हो सकता है। बहुत लोग इस प्राण-शम्भक् को व्यर्थ गाँवाते हैं–िो वसुतुतः आध्याम्भत्मक सम्पदा है-शकनुतु लोग सम्भोग की उते्तिना में अने्धे हो कर ज्ञान-शम्भक् को खो बैठते हैं। उनका भाग्य दयनीय है। वे योग में शवशेष प्रगशत नहीं ंकर सकते ।

युञ्जेिवं सदाऽऽानिं योगी डनयतमानसः ।
ान्द्रितं डनवामणपरमां मत्संथर्थामडधगच्छडत ।। १५ ।।

बि्ार्थम : युञ्जन् -युक् (समम्भित) रखते हुए, एवम् - इस प्रकार, सदा-सदा, आत्मानम् -स्वयं को, योगी-योगी, शनयतमानसः- शिसने मन को वश में कर शलया है, शाम्भन्तम्-शाम्भन्त को, शनवाथणपरमाम् -मोक्ष प्रदायक, मत्संस्ाम् -मुझ में म्भरुत, अशधगच्छशत -प्राप्त करता है।

अनुवाद : इस प्रकार मन को सदा सनुतुशलत रखते हुए योगी शिसने अपने मन को संयत कर शलया है, उस शनवाथणपरक शाम्भन्त को प्राप्त करता है िो मुझमें शवद्यमान है।

व्याख्या : एवम् - इस प्रकार अर्ाथत् पूवथ श्लोक में शनशदथष्ट साधन के अनुरूप । परमात्मा शाम्भन्त का मूतथरूप (प्रतीक) है। वह शाम्भन्त का सागर है। मन की वृशत्तयों ंको शनयम्भन्त्रत कर के उन्ें सनुतुशलत रखते हुए िो शाश्वत परमात्मा की परम शाम्भन्त को प्राप्त करता है, वह शनवाथण को प्राप्त होता है।

नात्यश्नतस्तु योगोऽन्द्रस्त न चैकातमनश्नतः ।
न चाडतस्वप्नीलस्य जाग्रतो नैव चाजुमन ।। १६ ।।

बिार्थम : न-नहीं, ं अत्यश्नतः - अशधक खाने वाले का, तु-शनश्चय से, योग: -योग, अम्भस्त -है , न-नहीं, ं च-और, एकान्तम् - शनतान्त, अनश्नतःन खाने वाले का, ननहीं, ं च-और, अशतस्वप्नशीलस्य-अशधक सोने वाले का, िाग्रतः िागने वाले का, न-नहीं, ं एव-ही, च-और, अिुथन-हे अिुथन ।

अनुवाद : हे अिुथन, योग न तो अशधक खाने वाले के शलए और न ही सवथर्ा भोिन का त्याग करने वाले के शलए, न तो अशधक सोने वाले के शलए और न ही सवथर्ा न सोने वाले के शलए सम्भव है।

व्याख्या : इस श्लोक में भगवान् यौशगक साधक के शलए भोिन का शनदेश कर रहे हैं। सोने और खाने में सदा युक्त रहना चाशहए। अशधक सोने से तुम तम्भिल (शनिालु) बने रहोगे और शनिा के वश में रहोगे। इससे अपच होगा, आँतों ंमें वायु-शवकार और यकृत के रोग शवकशसत होंगें। भोिन कम लेंगे, तो दुबथलता के कारण ध्यान में दीघथकाल तक बैठने में असमर्थ होंगें। शरीर की स्वस्र् और बशलष्ठ अवस्र्ा में उसके शनवाथह के शलए शितना अशनवायथ है, उतना ही भोिन लेना चाशहए।

इसका अशभप्राय यह भी हो सकता है शक योगशास्त्र में शनशदथष्ट भोिन के पररमाण से अशधक सेवन करने वाले के शलए योग में सफलता असम्भव है। ऐसा शनदेश है शक आधा पेट तो भोिन से भरा िाये, एक चौर्ाई पानी से और शेष चौर्ाई वायु की गशत के शलए खाली रहे। योग के साधक के शलए यह शमताहार है।

अशधक सोने से तुम आलस्य, तिा में पिे रहोगे। मन िि हो िायेगा और शरीर भारी। बहुत कम सोने पर भी तुम शनिालु बने रहोगे। ध्यान में सोओगे । स्वशणथम मध्यम मागथ अपनाओ। योग में अशवलम्ब सफलता शमलेगी।

युक्तािारडविारस्य युक्तचेष्ट्स्य कममसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवडत दुःखिा ।।१७ ।।

बिार्थम : युक्ाहारशवहारस्य-शिसका आहार-शवहार युक् (शनयशमत पररमाण में) है, युक्चेष्टस्य कमथसु कमथ करने में युक् चेष्टा वाला, युक्स्वप्नावबोधस्य-सोने और िागने में शनयशमत, योग:-योग, भवशत होता है, दुःखहा-दुःख को नष्ट करने वाला।

अनुवाद : आहार-शवहार कमों की चेष्टा तर्ा सुषुम्भप्त और िाग्रशत में सम रहने वाले के शलए योग दुःखों ंको नष्ट करने वाला होता है।

व्याख्या : इस श्लोक में भगवान् योग के साधक को भोिन, आमोद-प्रमोद तर्ा शवहार आशद का शनदेश देते हैं। योग के साधक को सदा सुखद मध्यम मागथ अपनाना चाशहए। खाने-पीने में भगवान् बुद्ध अशत कर गये र्े। अत्यन्त शमतभुि (अल्पाहारी) हो कर वे अत्यन्त दुबथल हो गये। उन्ोंनें अपने शरीर को बहुत यातनाएँ दीं। ं इसीशलए वे योग में सफल न हो सके। आत्म-साक्षात्कार के शलए अत्यशधक तपस्या अशनवायथ नहीं ंहै। अध्याय १७ के श्लोक ५ और ६ में भगवान् कृष्ण ने इसे गशहथत बताया है। आत्म-प्रतािना तपस्या नहीं ंहै। यह तो पाशपष्ठ है। भगवान् कृष्ण का

बुम्भद्धयोग तप के प्रशत शववेकपूणथ शनदेश है। कुछ साधक तो पररत्याग को ही लक्ष्य मान लेते हैं। यह साधन है, लक्ष्य नहीं।ं स्नायु-मण्डल अत्यन्त संवेदनशील है। अत्यल्प पररवतथन का भी यह सने्देश देता है शिससे मन भ्रशमत होता है। इसशलए यह अशनवायथ है शक िीवन शनयशमत हो, अनुशाशसत हो; आहार, शनिा और आमोद-प्रमोद में सनुतुशलत हो । शमताहारी बनो। शनशदथष्ट समय पर शयन और िागरण करो। ९ बिे अर्वा १० बिे तक सो िाओ और ३
अर्वा ४ बिे शय्या त्याग दो । तभी योग में सफलता सम्भव है िो इस िीवन के समस्त दुःखों ंसे, क्लेशों ंसे मुक् कर देगा।

यदा डवडनयतं डचत्तमािन्येवावडतिते ।
डनःस्पृहः सवमकामेभ्यो युक्त इतुयुच्यते तदा ।।१८ ।।

शब्दार्थ : यदा–िब, शवशनयतम् - पूणथरूपेण वशीभूत, शचत्तम् -मन, आत्मशन-आत्मा में, एव-ही, अवशतष्ठते-शवश्राम करता है, शनःस्पृहः-कामना रशहत, सवथकामेभ्यः समस्त इच्छाओं ं(शवषयों)ं से, युक्ः समम्भित, इशत-इस प्रकार, उच्यते-कहा िाता है, तदा-तब ।

अनुवाद : समस्त कमनीय पदार्ों की इच्छा से मुक् और पूणथ रूप से शनयम्भन्त्रत मन िब आत्मा में म्भस्र्त होता है, तब वह युक् (योग में लीन) ऐसा कहा िाता है।

व्याख्या : शवशनयतम् -पूणथ एकाग्रता के सार् ।

दृश्य-अदृश्य सब प्रकार के इम्भच्छत पदार्ों की लालसा िब मर िाती है, तो मन प्रशान्त हो कर म्भस्र्रतापूवथक आभ्यन्तर आत्मा में म्भस्र्त हो िाता है। क्योंशंक योगी पूणथरूपेण समिय की म्भस्र्शत में होता है, उसने आत्मा के सार् समस्वरता प्राप्त कर ली है और ऐक्यभाव में आ गया है, तो शरीर की आसम्भक् और इम्भियों ंका प्रपंच (दृश्य िगत्) उसे भ्रशमत नहीं ंकरते। वह अपनी अमृतमयी, अनश्वर और अिेय्य प्रकृशत के प्रशत चैतन्य होता है।

युक् का अशभप्राय है समस्वर (आत्मा के सार्), समम्भित, सनुतुशलत । आत्मैक्य के शबना न तो समिय, न सनुतुलन और न ही समाशध सम्भव है। (शनरूपण-V.23; V1.8)

यर्ा दीपो डनवातथर्ो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योडगनो यतडचत्तस्य युञ्जतो योगमािनः ।।१९ ।।

शब्दार्थ : यर्ा-शिस प्रकार, दीपः-दीपक, शनवातस्र्ः वातरशहत स्र्ान में रखा हुआ, ननहीं,ं इङ्गते-शहलता, सा-वही, उपमा-उपमा (तुलना), स्मृता-मानी गयी है, योशगनः योगी की, यतशचत्तस्य-संयत शचत्त वाले की, युञ्जतः-अभ्यासरत, योगम्-योग, आत्मनः- आत्मा का।

अनुवाद : आत्मा के सार् संयोग करने का अभ्यास करने वाले शितेम्भिय योगी की उपमा उस दीपक से की िाती है िो वायु रशहत स्र्ान में म्भस्र्त होने के कारण लोशलत (चलायमान) नहीं ंहोता ।

व्याख्या : यह एक सुन्दर उपमा है। मन की एकाग्रता, म्भस्र्रता और समस्वरता का वणथन करते समय प्रायः इस उपमा का संकेत देते हैं। सुम्भस्र्र मन वह शम्भक्शाली प्रकाशदीप है िो आत्मा के गुप्त आध्याम्भत्मक कोष को खोिने में समर्थ है, सक्षम है।

यत्रोपरमते डचत्तं डनरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैविनाऽऽनिं पश्यिाडन तुष्यडत ।।२० ।।

बाि्र्थम : यत्र–िहााँ, उपरमते-शान्त हो िाता है, शचत्तम् -शचत्त, शनरुद्धम् - वश में शकया हुआ, योगसेवया-योगाभ्यास के िारा, यत्र–िहााँ, च-और, एव-ही, आत्मना-आत्मा से, आत्मानम् - आत्मा पश्यन् देखता हुआ, आत्मशन-आत्मा में, तुष्यशत-सनुतुष्ट होता है। को,

अनुवाद : योग के अभ्यास से उपराम हुआ शचत्त िब आत्मा से आत्मा को देखता हुआ शनि आत्मा में सनुतुष्ट हो िाता है,

व्याख्या : श्लोक २०, २१, २२ और २३ एक-सार् लेने चाशहए। शवषयों से पूणथतया परावशतथत मन ही परम शाम्भन्त का साम्राज्य प्राप्त करता है। एकाग्रता के अनवरत और दृढ़ अभ्यास से िब मन म्भस्र हो िाता है, तब योगी मन के िारा इस परमात्मा के दशथन करता है; क्योंशंक अब मन पररमाशिथत तर्ा एकाग्र हो चुका है और आभ्यन्तर में परम शाम्भन्त का अनुभव करता है।

सुखमात्यन्द्रतकं यत्तद्बुन्द्रद्धग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेडत्त यत्र न चैवायं न्द्रथर्थतश्चलडत तत्त्वतः ।।२१ ।।

बाि्र्थम : सुखम् -सुख, आत्यम्भन्तकम् - अनन्त, यत्–िो, तत् वह, बुम्भद्धग्राह्यम् बुम्भद्ध िारा ग्रहण करने योग्य, अतीम्भियम् - इम्भियों से अतीत (परे), वेशत्त िानता है, यत्र–िहााँ, ननहीं, च-और, एव-ही, अयम्-यह, म्भस्र्तः-म्भस्र्त, चलशत-चलता है, तत्त्वतः सत्य से।

अनुवाद : इम्भियों से अतीत सूक्ष्म पररमाशिथत बुम्भद्ध िारा ग्रहण करने योग्य अनन्त आनन्द की अनुभूशत िब योगी को होती है और वह उस म्भस्र्शत को प्राप्त कर के िब सत्य से कभी शवचशलत नहीं होता,

व्याख्या : आत्मा का असीम आनन्द (िो इम्भियों की पहुाँच से परे है) स्वतन्त्र रूप से केवल शुद्ध बुम्भद्ध िारा ही साक्षात्कार शकया िा सकता है। गहन ध्यान की अवस्र्ा में इम्भियााँ अपने कारणस्वरूप मन में लीन होने के कारण शनम्भिय हो िाती हैं। बुम्भद्ध पशवत्र होती है यम, शनयम और सतत ध्यान से।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाडधकं ततः ।
यन्द्रस्मन्द्रन्थथर्थतो न दुःखेन गुरुणाडप डवचाल्यते ।।२२ ।।

बाि्र्थम : यम् -शिसको, लब्ध्वा-प्राप्त कर, च-और, अपरम् अन्य, लाभम् - लाभ, मन्यते मानता है, न-नहीं, अशधकम् - (इससे) बढ़ कर, ततः-उससे, यम्भस्मन् -शिसमें, म्भस्र्तः - म्भस्र्त, न-नहीं, दुःखेन दुःख से, गुरुणा-कशठन होने पर, अशप-भी, शवचाल्यते-शवचशलत होता है।

अनुवाद : शिसे प्राप्त कर लेने पर वह सोचता है, इससे बढ़ कर और कोई लाभ श्रेष्ठतर नहीं है और शिस अवस्र्ा में म्भस्र्त हो कर वह बडे़-से-बडे़ दुःख में भी शवचशलत नहीं होता।

व्याख्या : यम् - लाभ, आत्म-साक्षात्कार अर्वा शाश्वत आत्मा के सन्दभथ में प्रयुक् है।

यम्भस्मन्-आनन्दस्वरूप आत्मा ि◌ो भ्रम और दु:ख से अतीत है। आत्मा समूपूणथ रूप है और स्वयं में म्भस्र्त है। इसे प्राप्त कर सवथ कामनाओं ◌ंकी पूशतथ हो ि◌ाती है। इस कारण भगवान् कहते हैं-"इससे बढ़ कर प्राप्तव्य कोई और लाभ नहीं ◌ंहै। आत्म-साक्षात्कार ही ि◌ीवन का सविो लाभ है।" यशद कोई अपने भीतर म्भस्र्त इस आत्म-तत्त्व में म्भस्र्त हो ि◌ाता है, संसार के कोई दु:ख उसे चलायमान नहीं ◌ंकर सकते; क्योंशंक दु:ख की अनुभूशत करने वाले मन से वह अब अतीत हो चुका है। उसने ब्रह्मैक्य स्र्ाशपत कर शलया है। मन और शरीर के सार् एकत्व भाव होने पर दु:ख की अनुभूशत होती है। मन नहीं,◌ं तो दु:ख नहीं।◌ं हार् कटने पर भी, क्लोरोफामथ के नशे में मनुष्य दु:ख-पीिा का अनुभव नहीं ◌ंकरता; क्योंशंक मन को शरीर से परावृत कर शदया गया है।

तं डवद्याद् दु:खसंयोगडवयोगं योगसंडज्ञतम् ।
स डनश्चयेन योक्तव्यो योगोऽडनडवमण्णचेतसा ।। २३ ।।

शब्दार्थ : तम् - उसे, शवद्यात्–िाने, दु:खसंयोगशवयोगम् दु:ख के सार् संयोग की अवस्र्ा से शवयोग, योगसंशज्ञतम्-शिसे योग की संज्ञा दी गयी है, स:- वह, शनश्चयेन-शन:सन्देह, योक्व्य: - अभ्यास शकया िाना चाशहए, योग:- योग, अशनशवथण्णचेतसा -उत्साशहत (आशापूणथ) मन से ।

अनुवाद : दु:ख के सार् संयोग का शवयोग ही योग अशभशहत है। दृढ़संकल्प (शनश्चय) और अनुशिग्न (उत्साशहत) मन से योग का अभ्यास शकया िाना चाशहए।

व्याख्या : श्लोक २०, २१ और २२ में भगवान् योग के लाभ से अवगत कराते हैं अर्ाथत् आत्मस्र् हो कर पूणथ तुशष्ट प्राप्त करना, अनन्त-असीम आनन्द, दु:खों ◌ंसे मुम्भक् आशद। आगे वे उपदेश देते हैं शक यह योग दृढ़संकल्प, लौह-शनश्चय तर्ा अनवसाद की अवस्र्ा में शकया िाना चाशहए। चंचल वृशत्त से युक् आध्याम्भत्मक साधक योग में सफलता नहीं ◌ंप्राप्त कर सकता। मागथ की बाधाओं ◌ंसे शनराश हो कर वह अभ्यास छोि देगा। अभ्यासी को प्रसन्नशचत्त, बलवान् और आत्म-संयमी होना चाशहए।

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सवामनिेषत: ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं डवडनयम्य समतत: ।।२४ ।।

शब्दार्थ : संकल्पप्रभवान् -संकल्प से उद्‌भूत, कामान् - इच्छाओं ◌ंको, त्यक्त्वा-त्याग कर, सवाथन् -सब, अशेषत: -शन:शेष रूप से, मनसा-मन के िारा, एव-ही, इम्भियग्रामम् - इम्भियों ◌ंके समूह को, शवशनयम्य-संयत करके, समन्तत: सब ओर से ।

अनुवाद : संकल्प से उद्‌भूत समस्त इच्छाओं ◌ंको शन:शेष रूप से त्याग कर और मन के िारा सब ओर से इम्भिय-समूह को पूणथतया वशीभूत कर के,

व्याख्या : अशेषत: मन एक चतुर नीशतज्ञ है, अपनी सनुतुशष्ट के शलए कशतपय इच्छाएँ वह गुप्त रूप से रखता है। अत: समस्त इच्छाओं ◌ंका त्याग पूणथ रूप से ही करना चाशहए। कोई इच्छा शेष नहीं ◌ंरखनी चाशहए।

इच्छा का उद्भव संकल्प से है; अत: पहले तो संकल्प को नष्ट करो। यशद संकल्प का लोप हो िाये, तो इच्छा स्वत: ही लुप्त हो िायेगी। ध्यान रहे, मन के िारा सब ओर से सभी इच्छाओं ◌ंका त्याग और इम्भियशनग्रह होना चाशहए। यशद एक भी इम्भिय शकसी शदशा-शवशेष में व्याकुल है, तो मन को प्राय: शवह्वल (कुषुब्ध) करेगी। प्रत्याहार के शनरन्तर अभ्यास से इम्भियाँ मन में शवलीन हो िायेंगी। तब मन शकसी तन्मात्रा का शचन्तन नहीं ◌ंकरेगा और पूणथ शाम्भन्त को प्राप्त करेगा।

प्रबल शववेक-शम्भक् और अनासम्भक् से युक् मन इम्भिय-समूह को सब शदशाओं ंसे उनके शवषयों ंसे पराङ्मुख करने में सक्षम होगा। अतः प्रबल शववेक का शवकास करो-शनत्य-अशनत्य का भेद करने के शलए और शवषय-वासनाओं ंसे पूणथरूपेण शवरक् होने के शलए। (शनरूपण -11.62)

निः िनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृडतगृीतया ।
ओसंथर्ंथं मनः कृत्वा न डकडञ्चदडप डचतयेत् ।। २५ ।।

बि्र्थम : शनैः शनैः- धीरे-धीरे, उपरमेत् -शनवृत्त रहे, उपरशत को प्राप्त करे, बुद्ध्या-बुम्भद्ध से, धृशतगृहीतया-शवश्वासपूवथक, आत्मसंस्र्म् - आत्मा में म्भस्र्त (समाशध में म्भस्र्त), मनः-मन, कृत्वा कर के, न-नहीं, ं शकशञ्चत् -कुछ भी, अशप-भी, शचन्तयेत् सोचे।

अनुवाद : धीरे-धीरे म्भस्र्रतापूवथक शवश्वास के सार् बुम्भद्ध को शनयम्भन्त्रत करके, मन को प्रशान्त कर के आत्मा में म्भस्र्त कर के अन्य कोई शचन्तन न करे।

व्याख्या : दृढ़ संकल्प से बुम्भद्ध को अनुगृहीत करके योगाभ्यासी क्रमशः प्रशान्तता को प्राप्त करे। म्भस्र्र एकाग्रता का सतत दीघथ अभ्यास हृदय को क्रमशः परमात्मा की अशनवथचनीय शाम्भन्त से और आनन्द से पुलशकत (रोमांशचत) कर देगा। योगाभ्यासी को चाशहए शक वह सतत अभ्यास के िारा मन को शनरन्तर आत्मा में म्भस्र्त करे। अमर आत्मन्, परमात्मन् का सतत शचन्तन मन को उसके ऐम्भिक शवषय-सुख से शवमुख कर देगा । आत्म-शचन्तन के िारा मानशसक शम्भक् को आध्याम्भत्मक स्रोत की ओर उन्मुख करें।

यतो यतो डनश्चरडत मनश्चञ्चलमन्द्रथर्थरम् ।
ततस्ततो डनयम्यैतदािन्येव विं नयेत् ।।२६ ।।

बि्र्थम : यतः यतः-शिस-शिस शनशमत्त से, शनश्चरशत-शवचरता है, मनः-मन, चञ्चलम् चञ्चल, अम्भस्र्रम्-अम्भस्र्र, ततः ततः-उस-उस से, शनयम्य-संयत कर के, एतत् यह, आत्मशन-आत्मा में, एव-ही, वशम् वश में, नयेत् लावे।

अनुवाद : शिस-शिस शनशमत्त से यह चञ्चल और अम्भस्र्र मन इतस्ततः भटकता है, उसी से हटा कर, वश में कर के (साधक) आत्मा में म्भस्र्त करे ।

व्याख्या : इस श्लोक में भगवान् मन को शनयम्भन्त्रत करने का उपाय बताते हैं। वृषभ के भागने पर िैसे तुम पुनः पुनः उसे घर की ओर खीचंते हो, उसी प्रकार से बाह्य शवषयों ंमें शवचरण करने वाले मन को पुनः-पुनः अपने लक्ष्य, कि में स्र्ाशपत करो । यशद तुम उसे शबनौले, गुि, केला आशद दोगे, तो वह घर में ही रहेगा, बाहर नहीं ंभागेगा। इसी प्रकार से यशद तुम मन को आन्तररक शाश्वत आनन्द का स्वाद शनैः-शनैः योगाभ्यास के िारा चखा दोगे तो यह बाह्य इम्भिय-शवषयों ंमें भटकना बन्द कर देगा। शब्दाशद शवषय मन को व्याकुल और अम्भस्र्र करते हैं। ऐम्भिक सुखों ंके दोषों ंको िान कर, उनकी भ्रशमत करने वाली प्रकृशत को समझ कर तुम मन को पूणथतया शवषयों ंसे हटा कर दृढ़तापूवथक आत्म-संम्भस्र्त कर सकते हो, परनुतु इसके शलए तुम्हें शनत्याशनत्य-वसुतु-शववेक करना होगा, अनासम्भक् का शवकास करना होगा और मन को आत्मा के गौरव और शवशष्टतम तिस् से अवगत कराना होगा।

प्रिातमनसं ह्येनं योडगनं सुखमुत्तमम् ।
उपैडत िातरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ।। २७ ।।

बि्ार्थम : प्रशान्तमनसम् - शान्त-शचत्त वाला, शह-शनशश्चत रूप से, एनम् -ऐसे, योशगनम् - योगी को, सुखम् -आनन्द, उत्तमम् उत्तम, उपैशत प्राप्त होता है, शान्तरिसम्-शिसकी आसम्भक् शान्त हो गयी है, ब्र्ह्मभूतम् ब्र्ह्म के सार् एक रूप होने वाला, अकल्मषम् - पाप रशहत ।

अनुवाद : उस योगी को परमानन्द (उत्तम सुख) की प्राम्भप्त होती है शिसका मन प्रशान्त है, शिसका रिेगुण शान्त हो गया है और शिसने पापों ंसे मुक् हो कर ब्र्ह्मैक्य स्र्ाशपत कर शलया है।

व्याख्या : इस श्लोक में तर्ा अगले श्लोक में भगवान् योग के लाभ का वणथन करते हैं।

शनत्य, शुद्ध, अबाशधत अनन्त आनन्द की अनुभूशत उस योगी को होती है शिसका मन पूणथ रूप से शान्त है, सौम्य है, शिसने अपनी रिेगुणी प्रवृशत्त को शान्त कर शलया है, शिसने सब प्रकार की आसम्भक्यों ंको नष्ट कर शदया है, िो आत्म-ज्ञान प्राप्त कर के िीवनुमुक् हो गया है, िो सब प्राशणयों ंमें ब्र्ह्मभाव रखता है और िो शनष्कलंक है अर्ाथत् अच्छे-बुरे और धमथ-अधमथ से प्रभाशवत नहीं ंहोता।

युञ्जिेवं सदाऽऽनिं योगी डवगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पिमत्यतं सुखमशुनुते ।।२८ ।।

बि्ार्थम : वुञ्जन् योगाभ्यास करते हुए, एवम् - इस प्रकार, सदा-सदा, आत्मानम् - आत्मा का, मन का, योगी-योगी, शवगतकल्मषः-पाप से मुक्, सुखेन-सुख से, ब्र्ह्मसंस्पशथम् - ब्र्ह्म के साशन्नध्य (संस्पशथ) में होने वाले, अत्यन्तम् अनन्त, सुखम् -सुख को, अशुनुते-प्राप्त करता है।

अनुवाद : इस प्रकार पाप-मुक् हो कर योगाभ्यास में मन को शनयुक् करता हुआ योगी सहि रूप से ब्र्ह्म-संस्पशथ के अनन्त आनन्द की अनुभूशत करता है।

व्याख्या : प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आशद योग के अभ्यास से योगी शवषयों ंसे हट कर शनत्य शाश्वत ब्र्ह्म के सम्पकथ में आ िाता है और ब्र्ह्मानन्द को प्राप्त होता है।

शवषय-सुख क्षण-भङ्गुर है, अशनत्य है; शकनुतु ब्र्ह्मानन्द अबाशधत, अक्षय्य और शनत्य है। इसी कारण से अभ्यास करना चाशहए, प्रयास करना चाशहए उसे आभ्यन्तर में प्राप्त करने का।

योगी मागथ में आने वाली सब बाधाओं ंको दूर करता हुआ परमात्मा के सार् एकत्व प्राप्त करता है और मन को आत्मा में ही म्भरूर रखता है।

सवमभूतथर्थमिाानं सवमभूताडन चिाडन ।
ईक्षते योगयुक्तिाा सवमत्र समदिमनः ।।२९ ।।

बि्ार्थम : सवथभूतस्र्म् -सब प्राशणयों ंमें शवद्यमान, आत्मानम् स्वयं को, सवथभूताशन-सब प्राशणयों ंको, च-और, आत्मशन-आत्मा में, ईक्षते-देखता है, योगयुक्ात्मा-योग से युक् (समम्भित) हुआ पुरुष, सवथत्र सब ि गह, समदशथनः समदृशष्ट ।

अनुवाद : योग िारा समस्वरता प्राप्त कर लेने पर योगी सब प्राशणयों ंमें (शनि) आत्मा को और (शनि) आत्मा में सब प्राशणयों ंको म्भरूत देखता है। वह सवथत्र उसी आत्म-तत्त्व के दशथन करता है।

व्याख्या : ज्ञान-चक्षु अर्वा शदव्य दृशष्ट िारा योगी सवथत्र आत्मा की एकता का अनुभव करता है। वसुतुतः यह दृशष्ट उतृकृष्ट और उदारचेतसा है। वह सवथत्र ब्र्ह्मानुभूशत करता है। वह देखता है शक िगत् ब्र्ह्ममय है और िीवात्मा ब्र्ह्मस्वरूप है।

यो मां पश्यडत सवमत्र सवं च मडय पश्यडत ।
तस्यिां न प्रणश्याडम स च मे न प्रणश्यडत ।। ३० ।।

बि्ार्थम : यःिो, माम् -मुझे, पश्यशत-देखता है, सवथत्र-सब िगह, सवथम् सब-कुछ, च-और, मशय-मुझमें, पश्यशत-देखता है, तस्य-उसके शलए, अहम् -मैं, ननहीं,ं प्रणश्याशम-अदृश्य होता हाँ, सः- वह, च-और, मे-मेरे शलए, न-नहीं,ं प्रणश्यशत- अदृश्य होता है।

अनुवाद : िो पुरुष मुझे सवथत्र देखता है और सवथस्व मुझमें देखता है, वह कभी मुझसे दूर नहीं ंहोता और न ही मैं उसके शलए अदृश्य होता हाँ।

व्याख्या : इस श्लोक में भगवान् शदव्य दृशष्ट के प्रभाव का शनरूपण कर रहे हैं।

िो सब प्राशणयों ंमें मुझे ही आत्म-रूप से देखता है और सवथस्व, ब्र्ह्मा से ले कर तृण पयथन्त मुझमें देखता है, उसके शलए मैं अदृश्य नहीं ंहोता और न ही वह मेरे शलए अदृश्य होता है। मैं और योगी दोनों ंआत्म-रूप से एक हो िाते हैं। न तो वह मेरी शवद्यमानता के अभाव का अनुभव करता है और न ही मैं उसकी शवद्यमानता का अभाव होने देता हाँ। वह मुझमें व्याप्त रहता है और मैं उसमें व्याप्त रहता हाँ।

सवमभूतन्द्रथर्थतं यो मां भजत्येकत्वमान्द्रथर्थतः ।
सवमर्था वतमानोऽडप स योगी मडय वतमते ।। ३१ ।।

बि्ार्थम : सवथभूतम्भस्र्तम् -सब प्राशणयों ंमें म्भस्र्त, यःिो, माम् मुझे, भिशत-भिता है, एकत्वम् -एकत्व, आम्भस्र्तः- म्भस्र्त, सवथर्ा-सब प्रकार से, वतथमानः रहते हुए, अशप भी, सः-वह, योगी-योगी, मशय मुझमें, वतथते-रहता है।

अनुवाद : अभेद रूप में म्भस्र्त िो पुरुष मुझे सब प्राशणयों ंमें म्भस्र्त मान कर मेरा भिन करता है, वह योगी संसार में चाहे कैसे भी शक्रयाशील रहे (आन्तररक रूप से) मुझमें शनवास करता है।

व्याख्या : आत्मस्र्-एकीभाव में शिसका िैत लुप्त हो गया है, िो एकत्व में म्भस्र्त है, मेरी उपासना करता है अर्ाथत् शिसने सब प्राशणयों ंकी अन्तरात्मा के रूप में मेरा साक्षात्कार कर शलया है, सदा मुझमें शनवास करता है, उसके िीविन का ढंग कुछ भी हो, वह सदा मुक् है।

कसाई होते हुए भी सदना का मन सदा भगवान् के चरण-कमलों ंमें म्भस्र्त रहता र्ा।

आौपम्येन सवमत्र समं पश्यडत योऽजुमन ।
सुखं वा यडद वा दुःखं स योगी परमो मतः ।। ३२ ।।

बि्ार्थम : आत्मौपम्येन-आत्मा की सादृश्यता से, सवथत्र सब िगह, समम् -समान, पश्यशत-देखता है, यःि◌ो, अिुथन-हे अिुथन, सुखम् -सुख, वा-और,यशद-यशद , वा-अर्वा, दुःखम्-दुःख, सः- वह, योगी-योगी, परमः परम, मतः माना िाता है।

अनुवाद : हे अिुथन, िो पुरुष आत्मवत् सवथत्र समदृशष्ट रखता है, दुःख हो अर्वा सुख, सदा सम रहता है, वह परम योगी कहलाता है।

व्याख्या : अन्य लोगों ◌ंमें और मुझमें सुख-दुःख की अनुभूशत वह समान रूप से करता है। वह शकसी को हाशन नहीं ◌ं पहुाँचाता। वह सवथरा् हाशन रशहत है। वह सबके कल्याण की कामना करता है। सभी प्राशणयों ◌ंके प्रशत वह दयािथ है। उसका हृदय शवशाल और कोमल होता है। आत्मा में म्भस्त हो कर वह सवथत्र आत्म-दशथन करता है; क्योंशंक उसने सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर शलया है। अतः वह समस्त योशगयों ◌ंमें सवोत्कृष्ट योगी मन्तव्य है।

अजुमन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्यिां न पश्याडम चञ्चलत्वात् न्द्रथर्थडतं न्द्रथर्थराम् ।। ३३ ।।

बि्ार्थम : यःि◌ो, अयम् - यह, योगः- योग, त्वया- आपके िारा, प्रोक्ः-बताया गया, साम्येन-समता के िारा, मधुसूदन-हे मधुसूदन (कृष्ण), एतस्य-इसकी, अहम् -मैं, न नहीं,◌ं पश्याशम-देखता हाँ, चञ्चलत्वात्- चञ्चलतावश, म्भरुशतम् - म्भरुशत, म्भरुराम् - म्भरुर ।

अजुमन ने किा

अनुवाद : हे कृष्ण, मन की चञ्चलता के कारण आपके िारा उपशदष्ट इस समतायोग की म्भस्रता को मैं नहीं ◌ंदेख रहा।

व्याख्या : मन की अम्भस्रता, व्याकुलता और तीि संवेग के कारण आपके िारा बताये गये समयोग का अभ्यास दुष्कर-सा प्रतीत हो रहा है। भगवन्, पलक झपकते ही मन इधर-उधर भटकता है, इसी कारण मैं म्भस्रतापूवथक मन को एकाग्र करने में असमर्थ हाँ।

चञ्चलं डि मनः कृष्ण प्रमाडर्थ बलवदृढम् ।
तस्यिां डनग्रिं मन्ये वायोररव सुदुष्करम् ।।३४ ।।

बि्ार्थम : चञ्चलम् - अम्भस्र, शह-शनस्सन्देह, मनः मन, कृष्ण-हे कृष्ण, प्रमाशर् उचृंछृंखल, बलवत्-बलवान्, दृढम् -हठी, तस्य-उसका, अहम् -मैं, शनग्रहम् -वशीकरण, मन्ये—मानता हाँ, वायोः-वायु की, इव-भााँशत, सुदुष्करम् करने में कशठन।

अनुवाद : शनशश्चत रूप से मन चञ्चल, उचृंछृंखल, बलवान् और हठीला है। हे कृष्ण, इसको वश में करना वायु को वश में करने के समान कशठन है।

व्याख्या: मन के शवषय पररवशतथत होते रहते हैं; अतः यह सदा व्याकुल रहता है।

'कृष्ण' शब्द कृष् धातु से बना है शिसका अशभप्राय है-खीचंना, आकृष्ट करना । कृष्ण अपने भक्ों ◌ंके हृदयों ◌ंके समस्त पाप, अशुभ कमथ और बुराई के मूल को दूर कर देते हैं; इसीशलए वे कृष्ण हैं।

मन केवल चञ्चल ही नहीं ◌ंहै, वह उचूंछृंखल, बलवान् और हठी भी है। इम्भियों ◌ंऔर शरीर में यह शहंसात्मक उते्तिना उत्पन्न करता है। सभी शदशाओं ◌ंसे शवषयों ◌ंमें इसका आकषथण है। पााँच इम्भियों ◌ंके सहयोग से यह कायथ करता है। इनके िारा वह पााँच प्रकार के शवषयों ◌ंकी ओर आकृष्ट होता है। इसीशलए यह सदा व्याकुल रहता है। शरीर और इम्भियों ◌ंके सहयोग से यह इन पााँच प्रकार के शवषयों ◌ंका सुख-भोग करता है। इसीशलए इम्भियााँ बाह्य शवषयों ◌ंमें प्रवृत्त होती हैं और प्रभाशवत होती हैं। इसे वश में करना तो वायु को वश में करने से भी अशधक कशठन है। मन वायु तन्मात्रा से उत्पन्न है; इसी कारण यह वायु की भााँशत अम्भस्थर है।

श्री भगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुडनमग्रिं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौतेय वैराग्ेयेण च गृह्यते ।। ३५ ।।

शब्ार्थम : असंशयम् - शनस्सने्देह, महाबाहो - 3 महाबाहो अिुथन, मनः-मन, दुशनथग्रहम् दमन करना कशठन, चलम् - चलायमान (अशान्त), अभ्यासेन अभ्यास के िारा, तु-शकनुतु, कौने्तेय-हे कुम्भन्तपुत्र, वैराग्ेयेण - वैराग्य िारा, च -और, गृह्यते वश में शकया िाता है।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : हे महाबाहो अिुथन, इसमें कोई सने्देह नहीं ◌ंशक मन को शनयम्भन्त्रत करना दुष्कर है और मन अम्भस्थर है, तदाशप अभ्यास और वैराग्य के िारा इसे वश में शकया िा सकता है।

व्याख्या : चञ्चल मन को म्भस्थर करने के शलए लक्ष्य पर सतत ध्यान का अनवरत अर्वा पुनः पुनः प्रयास ही अभ्यास है। आत्मा अर्वा परमात्मा के उसी शवचार की पुनरावृशत्त की िाती है। यह सतत पुनरावृशत्त मन के शवक्ेषेप और कामनाओं ◌ंका शवनाश कर के उसे म्भस्थरता की ओर उनुमुख करती है।

इहलोक में अर्वा परलोक में, यहााँ अर्वा वहााँ, दृश्य अर्वा अदृश्य, शु्रुत अर्वा अशु्रुत ऐम्भिक-शवषयों ◌ंमें दोष-दृशष्ट प्राप्त होने पर उन शवषयों ◌ंके प्रशत शवरम्भक् (अनासम्भक्) वैराग्य है। सम्भिदानन्दस्वरूप शाश्वत आत्मा पर शनरन्तर ध्यान िारा मन को प्रशशशक्षत शकया िा सकता है। सांसाररक शवषयों ◌ंकी क्षणभंगुरता की प्रकृशत से मन को अवगत कराना अशनवायथ है। मन को समझाना चाशहए शक नश्वर, पररवतथनशील, बाह्य शवषयों ◌ंसे सुख की प्राम्भप्त नहीं ◌ं हो सकती । सुख तो अन्तशनथशहत कूटस्र् अमर आत्मा में है। शनैः-शनैः मन बाह्य शवषयों ◌ंसे दूर हो िायेगा।

असंयतािना योगो दुष्प्राप इडत मे मडतः ।
वश्यािना तु यतता िक्योऽवामुमुपायतः ।। ३६ ।।

शब्ार्थम : असंयतात्मना अशनयम्भन्त्रत मन वाले के िारा, योगः योग, दुष्प्रापः- प्राप्त करना कशठन, इशत-इस प्रकार, मे —मेरा, मशतः-शवचार, वश्यात्मना संयत पुरुष के शलए, तु-शकनुतु, यतता-प्रयत्न करते हुए, शक्यः- सम्भव, अवापुतुम् - प्राप्त करने के शलए, उपायतः - उपयुक् साधन िारा ।

अनुवाद : असंयत व्यम्भक् के शलए योग दुष्प्राय है; शकनुतु संयत और यत्नशील इसे उपयुक् साधन िारा प्राप्त कर सकता है, ऐसा मेरा मत है।

व्याख्या : असंयत आत्मा-शिसने ध्यान और शवरम्भक् के सतत अभ्यास से इम्भियों ंऔर मन को वश में नहीं ंशकया।

संयत आत्मा-शिसने वैराग्य और ध्यान के अभ्यास से मन को वशीभूत कर शलया है। ऐसा मनुष्य उपयुक् साधन और सतत प्रयास के िारा आत्म-साक्षात्कार कर सकता है।

अजुमन उवाच

अयडतः श्रद्धयोपेतो योगिाडलतमानसः ।
अप्राप्य योगसंडसन्द्रद्ध कां गडतं कृष्ण गच्छडत ।। ३७ ।।

बि्ार्थम : अयशतः-असंयमी, श्रद्धया-श्रद्धा से, उपेतः युक्, योगात् योग से, चशलतमानसः-शवचशलत मन वाला, अप्राप्य-प्राप्त न कर के, योगसंशसम्भद्धम् योग में पूणथता, काम् -कौन-सी, गशतम् - गशत को, कृष्ण-हे कृष्ण, गच्छशत-प्राप्त करता है।

अजुमन ने किा

अनुवाद : हे कृष्ण, श्रद्धावान् होते हुए भी स्वयं को संयत करने में असमर्थ व्यम्भक् शिसका मन योग से शवचशलत हो चुका है, योग में शसम्भद्ध प्राप्त करने में असफल होने पर कौन-सी गशत (दशा) को प्राप्त होता है?

व्याख्या : उसे योग की अमोघता अर्वा प्रभाव में पूणथ शवश्वास है, शकनुतु वह इम्भियों ंऔर मन को वश में करने में समर्थ नहीं ंहै। उसका मन एकाग्रशचत्त नहीं ंहै। शरीर में अम्भन्तम श्वास के समय उसका मन भटक िाता है और वह अपनी सूमृशत खो बैठता है। योग में शनपुणता अर्ाथत् आत्म-साक्षात्कार अर्वा आत्म-ज्ञान प्राप्त करने में असफल वह व्यम्भक् शकस मागथ पर िायेगा, उसकी अम्भन्तम दशा क्या होगी?

कन्द्रिोभयडवरष्टन्द्रिारडमव नश्यडत ।
अप्रडतिो मिाबािो डवमूढो ब्रह्मणः पडर्थ ।। ३८ ।।

बि्ार्थम : कम्भित् -क्या ऐसा है?, ननहीं,ं उभयशवभ्रष्टः दोनों ंसे पशतत, शछन्नाभ्रम् -फटे हुए (शछन्न-शभन्न) बादल, इव-समान, नश्यशत-नष्ट हो िाता है, अप्रशतष्ठः- आश्रय रशहत, महाबाहो - हे बशलष्ठ बाहो (कृष्ण), शवमूढः - भ्रशमत, ब्र्ह्मणः -ब्र्ह्म के, पशर्-पर् में।

अनुवाद : हे महाबाहो (कृष्ण), दोनों ंओर से पशतत, आश्रय रशहत हो कर ब्र्ह्म के मागथ में भ्रशमत (शंकंकतथव्यशवमूढ़) हो कर शछन्न-शभन्न बादल की भााँशत नष्ट तो नहीं ंहो िाता?

व्याख्या : उभय-कमथ-मागथ अर्वा वेदशवशहत कमथकाण्ड के अनुरूप यज्ञाशद अनुष्ठान एक ओर तर्ा ज्ञानयोग का मागथ दूसरी ओर ।

ब्र्ह्मणः पशर्-वह पर् शिसके िारा ब्र्ह्म को प्राप्त शकया िा सकता है।

भगवान् िारा उपशदष्ट योग यहााँ अभ्यास में पूणथ शनष्ठा की अपेक्षा करता है। साधक संसार से भी दूर और स्वगथ से भी दूर चला िाता है। कुछ लोगों ंका यह मानना है शक साधक यशद लक्ष्य प्राम्भप्त tilde pi सफल न हुआ, तो शबना बात के वह सवथस्व खो देगा। इसी सन्दभथ में अगला प्रश्न है।

एतन्मे संयिं कृष्ण िेतुतुमिमस्यिैषतः ।
त्वदन्यः संयियस्यास्य िेत्ता न ह्युपपद्यते ।। ३९ ।।

बािाथम : एतत् यह, मे-मेरे, संशयम् -सन्देह को, कृष्ण-हे कृष्ण, छेतुतुम् दूर करने में, अहथशस समर्थ हो, अशेषतः- पूणथ रूप से, त्वत् तुमसे, अन्यः-अन्य, संशयस्य-संशय का, अस्य-इस, छेत्ता-दूर करने वाला, ननहीं, ं शह-शनशश्चत रूपेण, उपपद्यते योग्य (समर्थ) है।

अनुवाद : हे कृष्ण, मेरे इस संशय को पूणथ रूप से दूर कर दें; क्योंशंक आपके अशतररक् अन्य कोई इस संशय को नष्ट करने में सक्षम नहीं ंहै।

व्याख्या : आपके शसवा अन्य कोई प्रशस्ततर शशक्षक नहीं ंहो सकता; क्योंशंक आप तो सवथज्ञ भगवान् हैं। आप ही इस संशय का शनवारण कर सकते हैं। कोई ऋशष, देव अर्वा मुशन इस संशय को नष्ट नहीं ंकर सकते।

श्री भगवानुवाच

पार्थम नैवि नामुत्र डवनिास्तस्य डवद्यते ।
नडि कल्याणकृत्कडश्चदुगमडतं तात गच्छडत ।।४० ।।

बािाथम : पार्थ-पार्थ (अिुथन), न-नहीं, ं एव-ही, इह -यह ं, न -नहीं ं, अमुत्र-परलोक में, शवनाशः - शवनाश, तस्य- उसका, शवद्यते- (होता) है, न-नहीं, ं शह-शनशश्चत रूप से, कल्याणकृत् -कल्याण करने वाला, कशश्चत्-कोई, दुगथशतम् बुरी दशा को, तात- हे पुत्र (शप्रय), गच्छशत-प्राप्त होता है।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : हे अिुथन, न तो इस लोक में न ही परलोक में उसका शवनाश सम्भव है। शप्रय पुत्र, अच्छे कमथ करने वाला कोई भी व्यम्भक् दुदथशा को प्राप्त नहीं ंहोता।

व्याख्या : इस िन्म में िो साधक योग में सफल नहीं ंहो सका, वह न तो इस लोक में और न ही दूसरे लोक में शवनाश को प्राप्त होगा। शनशश्चत रूप से वह शनम्न योशन में िन्म नहीं ंलेगा। शफर वह क्या प्राप्त करेगा? इसका वणथन भगवान् श्लोक ४१, ४२, ४३ और ४४ में करते हैं।

तात-शशष्य पुत्र समान होता है।

प्राप्य पुर्ण्कृतां लोकानुडषत्वा िाश्वतीः समाः ।
िुचीनां श्रीमतां गेि योगरष्टोऽडभजायते ।।४१ ।।

बि्ार्थम : प्राप्य-प्राप्त कर के, पुण्यकृताम् - पुण्य कमथ करने वालों ंके, लोकान् लोकों ंको, उशषत्वा-वास कर के, शाश्वतीः- अनेक, समाः वषथ, शुचीनाम् - पशवत्रात्माओं ंके, श्रीमताम् -सम्पन्न (आत्माओं ंके), गेहे घर में, योगभ्रष्टः- योग से चुयुत, अशभियतेि–न्म लेता है।

अनुवाद : पुण्यवान् लोकों ंको प्राप्त कर के अनेक वषों पयथन्त वहााँ वास कर के योगभ्रष्ट पुरुष पशवत्र और ऐश्वयथ-सम्पन्न पररवार में पुनः िन्म लेता है।

व्याख्या : योगभ्रष्ट-योग से पशतत । योग में कौशल प्राप्त करने में असफल अर्वा वह व्यम्भक् शिसने योग के कशतपय सोपानों ंका आरोहण शकया; शकनुतु अभ्यास में प्रमाद (शशर्लता) और वैराग्य के अभाव के कारण (माया अर्वा इम्भियों ंकी दासता का शकार हो कर) पशतत हो गया।

पुण्यकृत् -सत्य-पर् पर अशिग रह कर यज्ञ, दान, अनुष्ठान, देवपूिा और अन्य शास्त्रशवशहत कमथ करने वाले पुण्यकृत् कहलाते हैं।

शाश्वतीः समाः-शाश्वती का प्रयोग यहााँ शनत्य के भाव में नहीं ंहै, प्रतुयुत् अपेक्षाकृत दीघाथवशध के शलए प्रयोग हुआ है।

शुशच-पशवत्र वे हैं िो शुद्ध, नैशतक िीवन व्यतीत करते हैं। शिनका हृदय पररमाशिथत है (ईष्याथ, घृणा, दम्भ और लोभ से मुक् है)। (शनरूपण- IX.20, 21)

अर्थवा योडगनामेव कुले भवडत धीमताम् ।
एतन्द्रद्ध दुलमभतरं लोके जन्म यदीदृिम् ।।४२ ।।

बि्ार्थम : अर्वा- अर्वा, योशगनाम्-योशगयों ंके, एव-ही, कुले कुल में, भवशति–न्म लेता है, धीमताम् - बुम्भद्धमानों ंके, एतत् - यह, शह-शनशश्चत रूप से, दुलथभतरम् -अत्यन्त दुलथभ, लोके-लोक में, िन्मि–न्म, यत्ि–ो, ईदृशम् - इस प्रकार का।

अनुवाद : अर्वा वह अत्यन्त बुम्भद्धमान् योशगयों ंके कुल में िन्म लेता है। शनस्सने्देह इस संसार में ऐसा िन्म शमलना अत्यन्त दुलथभ है।

व्याख्या : पूवथ-श्लोक में वशणथत धाशमथक कुल में िन्म लेने की अपेक्षा बुम्भद्धमान् योगी के घर िन्म लेना और भी दुलथभ है।

तत्र तं बुन्द्रद्धसंयोगं लभते पौवमदेडिकम् ।
यतते च ततो भूयः संडसद्धौ कुरुनन्दन ।।४३ ।।

बि्ार्थम : तत्र-वहााँ, तम्-उस, बुम्भद्धसंयोगम् - ज्ञान के संयोग को, लभते-प्राप्त करता है, पौवथदेशहकम् -पूवथि–न्म के शरीर में प्राप्त, यतते-यत्न करता है, च-और, ततः उसकी अपेक्षा, भूयः-अशधक, संशसद्धौ-शसम्भद्ध के शलए, कुरुनन्दन-कुरुपुत्र (अिुथन)।

अनुवाद : हे अिुथन, वहााँ वह पूवथि–न्म में संग्रहीत ज्ञान के संयोग में आता है और शसम्भद्ध प्राप्त करने के शलए पूवथ की अपेक्षा और अशधक यत्न से साधनारत हो िाता है।

व्याख्या : इस लोक में पुनः िन्म लेने पर योग-मागथ में पूवथकृत् अभ्यास और प्रयास शवनष्ट नहीं ंहोते। अब वे पूणथ फल प्रदान करने के शलए उसके भौशतक एवं आध्याम्भत्मक शवकास में शीघ्रता लाते हैं।

हमारे कमथ और शवचार सूक्ष्म संस्कारों ंके रूप में अवचेतन मन में रहते हैं। संस्कार के रूप में हमारे अनुभव, हमारी प्रकृशत और वृशत्तयााँ भी अवचेतन मन में संग्रहीत रहती हैं। पूवथ–िन्म के संस्कारों ंको आगामी िन्म में पुननथवा शम्भक् और शदव्य चेतना प्राप्त होती है। यौशगक अभ्यास और ध्यान के संस्कार तर्ा यौशगक वृशत्तयााँ साधक को पूवथ–िन्म में शकये गये प्रयासों ंकी अपेक्षा और अशधक शम्भक् और प्रयास से आगे बढ़ने के शलए बाध्य करते हैं। अशधकाशधक आध्याम्भत्मक अनुभव और उितर लोकों ंके साक्षात्कार के शलए अब वह पूवथ–िन्म में शकये गये संघषथ की अपेक्षा और अशधक संघषथ और कठोर यत्न करेगा।

पूवामभ्यासेन तेनैव डियते ह्यविोऽडप सः ।
डजज्ञासुरडप योगस्य िब्रह्माडतवतमते ।।४४ ।।

बि्र्थम : पूवाथभ्यासेन-पूवाथभ्यास के िारा, तेन-उसके िारा, एव-ही, शियते-आकशषथत होता है, शह-शनश्चय से, अवशः
स्वतः ही, अशप भी, सः- वह, शिज्ञासुः- उत्सुक (योग-शवज्ञान का), अशप-भी, योगस्य-योग का, शब्दब्र्ह्म-शब्दब्र्ह्म, अशतवतथते-परे चला िाता है।
अनुवाद : उसी पूवथ के अभ्यास के कारण वह स्वतः ही (शववश-सा हो कर) योग में आकृष्ट शकया िाता है। केवल योग का ही शिज्ञासु होने पर भी वह शब्दब्र्ह्म से अतीत पहुाँच िाता है।

व्याख्या : अशुभ कमों की प्रबलतावश यौशगक अनुशासन को अपनाने की इच्छा न होते हुए भी पूवथ–िन्म के योगाभ्यास के संस्कारवश, यशद वह साधक उन (संस्कारों)ं के प्रशत सचेत भी न हो, पुनरशप उस योगभ्रष्ट साधक को उस लक्ष्य की ओर प्रेररत शकया िाता है, िहााँ वह पहले पहुाँचना चाहता र्ा । पूवथ–िन्म में यशद उसने कोई ऐसा बहुत अशुभ कमथ न शकया हो िो उसकी यौशगक वृशत्तयों ंको अशभभूत कर ले, तो शनशश्चत रूप से पूवथ–िन्म में संशचत यौशगक संस्कारों ंवश और अशधक उत्साह से अब योगाभ्यास में उन्नशत करेगा। अशुभ कमथ की शम्भक् यशद प्रबल है, तो कुछ समय के शलए यौशगक वृशत्त अशभभूत हो िायेगी, दब िायेगी। अशुभ कमों के पररणाम क्षीण होते ही यौशगक संस्कारों ंकी अशभव्यम्भक् प्रारम्भ हो िायेगी। अब साधक कठोर योगाभ्यास िारा अम्भन्तम लक्ष्य की प्राम्भप्त करेगा।

एक शिज्ञासु भी, शिसमें योग का ज्ञान प्राप्त करने की आकाङ्क्षा िाग्रत हो गयी हो, शब्दब्र्ह्म अर्ाथत् वेदों ं से भी परे पहुाँच िाता है। वह वैशदक प्रशक्रयाओं ंऔर अनुष्ठानकताथओं ंसे भी उत्कृष्टतर हो िाता है। अब वह रूप और शवशध-शवधानों ंके िाल से मुक् हो िाता है। वह मात्र यज्ञाशद अनुष्ठानों ंसे सन्तुष्ट नहीं ंरहता । शवषय-वासनाओं ं से प्राप्त सन्तोष से कहीं ंउितर तुशष्ट की उसे शपपासा रहती है। िो साधक योग के शनयमों ंकी प्रकृशत मात्र िानने का इच्छुक रहता है, वह स्वयं को शब्दब्र्ह्म अर्वा वैशदक अनुष्ठानों ंके प्रभाव से मुक् कर लेता है। एक सामान्य शिज्ञासु की यशद यह दशा हो सकती है, तो सतत योग का अभ्यास करने वाले साधक अर्वा शनशवथकल्प समाशध में म्भस्थत साधक की प्रोन्नत, उत्कृष्ट दशा तो अशनवथचनीय ही होगी। वह वैशदक शवशध-शवधानों ंके प्रभाव से सवथर्ा मुक् हो िायेगा। वह शाश्वत आनन्द और शाश्वत शाम्भन्त का सुखास्वाद लेगा िो शाश्वत ब्र्ह्म से अभेद्य है।

शिस साधक को केवल मोक्ष की आकाङ्क्षा है वह अपररहायथ, अभीम्भित और नैशमशत्तक कमों के त्याग अर्वा उनके न करने के पाप से प्रभाशवत नहीं ंहोता। वह शब्दब्र्ह्म (वेद) से परे पहुाँच िाता है।

पूवथ–न्म के शकसी संस्कार के शबना भी यशद यौशगक साधक को यह उि अवस्र्ा प्राप्त होती है, तो शनस्सने्देह पूवथ–न्म में संशचत योग-संस्कार से युक् साधक की दशा और भी उन्नत होगी।

पूवथ–न्म में योगभ्रष्ट और इस िन्म में सभी शक्रया-कलापों ंको शतलांशिल दे कर योग-मागथ का अनुसरण करने वाला साधक शकतना सौभाग्यशाली होगा ?

मोक्ष की तीि इच्छा से पे्ररेरत हो कर वह इस िन्म में कठोर साधना करता है। पूवथ–न्म में शकये हुए शुभ संस्कारों ंसे मानो शववश (पे्ररेरत) हो कर वह योगाभ्यास में संलग्न होता है।

इस श्लोक में भगवान् इस सत्य पर बल देते हैं शक योगाभ्यास का कोई भी प्रयास शवफल नहीं ंहोता। छोटे-से-छोटा प्रयास भी कभी-न-कभी अपना प्रभाव शदखायेगा, वह चाहे इस िन्म में हो अर्वा आगामी िन्म में। अतः मूढ़तम साधक भी इस पर् पर चलने के शलए आशावादी बना रहे, शनराश न हो ।

प्रयत्नाद्यतमानसुतु योगी संुद्धिडकन्द्रिषः ।
अनेकजन्मसंडसद्धस्ततो याडत परां गडतम् ।।४५ ।।

बि्ार्थम : प्रयत्नात् - कशठन प्रयास से, यतमानः - प्रयास करता हुआ, तु-शकनुतु, योगी-योगी, संशुद्धशकम्भिषः- पाप मुक् हो कर, अनेकिन्मसंशसद्धः - अनेक िन्मों ंके पश्चात् शसम्भद्ध प्राप्त कर के, ततः- तत्पश्चात्, याशत-पहुँचता है, पराम् सविो, गशतम् गशत को ।

अनुवाद : घोर तपस्या में संलग्न योगी प्रयास करता हुआ, सब पापों ंसे शवशुद्ध (मुक्) हो कर अनेक िन्मों ंके संस्कारों ंसे क्रमशः शसम्भद्ध प्राप्त कर के परम गशत, सविो लक्ष्य की प्राम्भप्त करता है।

व्याख्या : अनेक िन्म में रिी-रिी अनुभव प्राप्त कर के वह अन्ततः शसम्भद्ध को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह आत्म-ज्ञान प्राप्त कर के िीवन के सविो आनन्द में रमण करता है।

तपन्द्रस्वभ्योऽडधको योगी ज्ञाडनभ्योऽडप मतोऽडधकः ।
कडममभ्यश्चाडधको योगी तस्माद्योगी भवाजुमन ।।४६ ।।

बि्ार्थम : तपम्भस्वभ्यः- तपम्भस्वयों ंसे, अशधकः-श्रे्ष्ठ, योगी-योगी, ज्ञाशनभ्यः- ज्ञाशनयों ंसे, अशप-भी, मतः- माना गया है, अशधकः-बढ़ कर, कशमथभ्यः सकाम कमथ करने वालों ंसे, च-और, अशधकः - श्रे्ष्ठ, योगी-योगी, तस्मात् - इसशलए,
योगी-योगी, भव-बनो, अिुथन-हे अिुथन ।

अनुवाद : योगी तपम्भस्वयों ंसे श्रे्ष्ठ और शास्त्र ज्ञाशनयों ंसे भी श्रे्ष्ठ है। सकाम कमथ करने वालों ंसे भी योगी ही श्रे्ष्ठ है;
अतः हे अिुथन, योगी बनो। **व्याख्या :** तपस्वी-अध्याय XVII. १४, १५ और १६ में उम्भल्लम्भखत शरीर, मन और वाणी का तप करने वाला तपस्वी है। ज्ञानी-शिसे शास्त्रों ंका ज्ञान है अर्ाथत् परोक्ष ज्ञान अर्वा सैद्धाम्भन्तक ज्ञान ।

कशमथ-वैशदक अनुष्ठानों ंको करने वाला, इन सबसे योगी श्रे्ष्ठ है; क्योंशंक उसे शनशवथकल्प समाशध िारा अर्वा भावातीत ज्ञान िारा आत्म-ज्ञान प्राप्त हुआ है। (शनरूपण-V.2; XII.12; XIII.24)

योडगनामडप सवेषां मद्गतेनातरिना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ||४७ ।।

बि्र्थम : योशगनाम् - योशगयों ंमें, अशप-भी, सवेषाम् समस्त, मद्गतेन-मेरे परायण, अन्तरात्मना -भीतर से, श्रद्धावान् श्रद्धायुक्, भिते-भिन करता है, यः िो, माम्-मेरा, सः- वह, मे—मुझे, युक्तमः- अत्यन्त धमथशील (पुण्यवान्), मतः माना िाता है।

अनुवाद : समस्त योशगयों ंमें भी िो पूणथ शनष्ठावान् हो कर अपनी अन्तरात्मा से मेरी आराधना करता है और मेरे परायण हो गया है, उस योगी को मैं सवाथशधक युक् मानता हाँ।

व्याख्या : योशगनामशप सवेषाम् - िो मुझ परम पुरुष की पूिा करता है वह वसु, रुि, आशदत्य आशद देवों ंकी पूिा करने वालों ंसे श्रेष्ठतर है।

मद्गतेनान्तरात्मना मुझमें अपने मन को लीन कर के। (शनरूपण-V1.32)

इस अध्याय को आत्मसंयमयोग अर्वा अध्यात्मयोग भी कहा िाता है।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषत्सु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
ध्यानयोगो नाम षिोऽध्यायः ||६ ||
|| इडत ध्यानयोगः ||

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर् सप्तमोऽध्यायः

ज्ञानशवज्ञानयोगः

श्री भगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थम योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंियं समग्रं मां यर्था ज्ञास्यडस तच्छृणु ।।१ ।।

बि्र्थम : मशय-मुझ में, आसक्मनाः- आसक् मन वाला, पार्थ-हे पार्थ, योगम् योग का, युञ्जन् - अभ्यास करते हुए, मदाश्रयः- मेरे आशश्रत, असंशयम् शनस्सन्देह, समग्रम् - पूणथतया, माम् -मुझको, यर्ा–िसे, ज्ञास्यशस–िानोगे, तत्वह, शृणु सुनो।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : हे अिुथन, मन को मुझ में एकाग्र कर के, योग का अभ्यास करते हुए और मेरे परायण हो कर शनशश्चतरूप से तुम मुझे शकस प्रकार िानोगे, वह मुझ से सुनो।

व्याख्या: लौशकक वसुतुओं ंका आकाङ्क्षी पुरुष यज्ञाशद अशग्नहोत्र करेगा अर्वा सकाम भाव से दान दे कर, कुआाँ आशद खुदवा कर, अस्पताल बनवा कर, शवश्रामगृह आशद बनवा कर यश प्राप्त करेगा। परनुतु योगी इसके शवपरीत म्भस्र्रशचत्त हो कर योगाभ्यास करेगा और केवल भगवान् की ही शरण में िाएगा। उसका मन सदा भगवान् में म्भस्र्र रहेगा। वह भगवान् के उतृकृष्ट गुणों ंका शचन्तन करेगा िैसे सवथशम्भक्मानता, सवथज्ञता, अनन्त पे्रम, सौन्दयथ, कृपा,

शम्भक्, दया, प्रचुर सम्पशत्त, अक्षय ति, अनाशद मशहमा, पशवत्रता आशद।

शकसी रािा के सेवक का शचत्त सतत, रािा की सेवा करते हुए भी उसमें म्भस्र्र नहीं ंरहता। वह तो अपनी पत्नी और बिों ंका शचन्तन करता रहता है। तुम उस सेवक की भााँशत मत बनो। मुझ सवथव्यापक में अपना मन प्रशतशष्ठत करो और केवल मेरी शरण में आओ, अनन्य भाव से । अध्याय VI में शदए गए उपदेशों ंके अनुरूप मन को शनयम्भन्त्रत करने का अभ्यास करो। तब तुम मुझे िान - लोगे और मेरे गुणों ंका भी ज्ञान तुम्हें पूणथतया हो िाएगा।

भगवत् गुणगान करने से तुम्हारे भीतर भगवत् पे्रम िागृत और शवकशसत होगा और तुम्हारा मन मुझ में म्भस्र्र होगा। भगवान् के शलए अनन्य पे्रम ही वास्तशवक भम्भक् है। शनस्सने्देह तुम पूणथ आत्म-ज्ञान प्राप्त करोगे।

भगवान् का शरणागत और उनमें मन को म्भस्त रखने वाला अर्वा म्भस्र्र करने का अभ्यास करने वाला साधक क्षण भर के शलए भी शवयोग सहन नहीं ंकर सकता।

ज्ञानं तेऽ सिडवज्ञानडमदं वक्ष्याम्यैषतः ।
यज्ज्ञात्वा नि भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवडिष्यते ।।२ ।।

बि्र्थम : ज्ञानम् - शास्त्रों ंका परोक्ष ज्ञान, ते तुम्हें, अहम् - मैं, सशवज्ञानम् -साक्षात्कार सशहत अर्ाथत् आत्मा के अपरोक्ष ज्ञान की अनुभूशत सशहत, इदम् - यह, वक्ष्याशम बताऊाँगा, अशेषतः- पूणथतया, यत्–िो, ज्ञात्वा–िान कर, न- नहीं,ं इह-यहााँ, भूयः-पुनः, अन्यत्-और कुछ, ज्ञातव्यम्–िानने योग्य, अवशष्यते रह िाता है।

अनुवाद : अब मैं तुम्हारे शलए शवज्ञान सशहत (आत्मानुभूशत सशहत) उस ज्ञान का उपदेश करूाँगा शिसे िान कर कुछ और िानने योग्य शेष नहीं ंरह िाता ।

व्याख्या : उपशनषदों ंके अध्ययन से प्राप्त ब्र्ह्म ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। शवज्ञान है शवशेष ज्ञान अर्ाथत् अपरोक्ष ज्ञान अर्वा आत्म ज्योशतत ज्ञान (सहिावबोध) ।

इस श्लोक में भगवान् ज्ञान की प्रशंसा करते हैं ताशक अिुथन उनके उपदेश को हषोन्मत्त हो कर शवश्वास (शनष्ठा) और रुशच के सार् श्रवण करे। भगवान् कहते हैं- "मैं तुम्हें पूणथ ज्ञान दूाँगा। तुम आत्मा का पूणथ ज्ञान, सवथज्ञता को प्राप्त करोगे शिसे िान कर इस लोक में और कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं ंरहता ।" आत्म-ज्ञान प्राप्त कर के सवथस्व ज्ञान हो िाता है। इसीशलए तो शौनक, एक महान गृहस्र्ी होते हुए भी अशङ्गरस के पास आदर सशहत िा कर बोले- "भगवन्, वह कौन सी वसुतु है शिसका ज्ञान हो िाने पर सब कुछ िानने में आ िाता है?" (शनरूपण –XIII. 11)

मनुष्याणां सिसे्रेषु कडश्चद्यतडत डसद्धये ।
यततामडप डसद्धानां कडश्चन्मां वेडत्त तत्त्वतः ।।३ ।।

बि्र्थम : मनुष्याणाम् - मनुष्यों ंमें, सहसे्रेषु सहस्रों ंमें, कशश्चत् -कोई, यतशत-यत्न करता है, शसद्धये-शसम्भद्ध के शलए, यतताम्-यत्न करने वालों ंमें, अशप-भी, शसद्धानाम् - शसम्भद्ध प्राप्त पुरुषों ंमें, कशश्चत्-कोई, माम्-मुझे, वेशत्त–िनता है, तत्त्वतः तत्त्व (सार) रूप से।

अनुवाद : सहस्रों ंमनुष्यों ंमें कोई शवरल ही शसम्भद्ध प्राप्त करने के शलए यत्न करता है और उन शसम्भद्ध प्राप्त सफल पुरुषों ंमें भी कोई शवरला ही मुझे तत्त्व रूप से िान पाता है।

व्याख्या : तत्त्व रूप से आत्म-ज्ञान अर्वा ब्र्ह्मज्ञान की प्राम्भप्त शनतान्त दुलथभ है।

शसद्धानाम् - पूणथता प्राप्त शसद्ध पुरुष । शकनुतु यहााँ इसका अशभप्राय है पूणथता प्राम्भप्त का यत्न करने वाले ।

हीरे, माशणक, मोती के के्रेता कम हैं, स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम का अध्ययन करने वाले कम हैं, इसी प्रकार आत्म-साक्षात्कार के शलए प्रयासरत और उनमें भी सत्य के तत्त्ववेत्ता बहुत कम हैं। िीवनुमुक् शवरल हैं।

शाश्वत शाम्भन्त, अक्षय सुख, शाश्वत आनन्द और अमरत्व के असंख्य फलों ंकी वृशष्ट आत्म-ज्ञानी पर होती है। शकनुतु एक योग्य और सि़ा आध्याम्भत्मक साधक िो दृढ़ संकल्प और लौह शनश्चय वाला है, मोक्ष के साधन चतुष्टय (अध्याय ३, श्लोक ३) से युक् है वह आत्म-ज्ञान सहि ही प्राप्त कर सकता है।

भूडमरापोऽनलो वायुः खं मनो बुन्द्रद्धरेव च ।
अिंकार इतीयं मे डभिा प्रकृडतरष्ट्धा ।।४ ।।

बि्र्थम : भूशमः पृथ्वी, आपः–िल, अनलः-अशग्न, वायुः- वायु, खम् - आकाश, मनः मन, बुम्भद्धः बुम्भद्ध, एव-ही, च-और, अहंकारः अहंकार, इशत-इस प्रकार, इयम्-यह, मे-मेरी, शभन्ना-शवभक्, प्रकृशतः- प्रकृशत, अष्टधा-आठ प्रकार की।

अनुवाद : पृथ्वी, िल, अशग्न, वायु, आकाश, मन, बुम्भद्ध और अहंकार-यह मेरी आठ प्रकार की अपरा प्रकृशत है।

व्याख्या : यह अष्टधा प्रकृशत शनम्न अर्वा अपरा प्रकृशत है। पााँच स्रू्ल तत्त्वों ंका शवकास पञ्चीकरण की प्रशक्रया से तन्मात्राओं ं(मूल तत्त्वों)ं से होता है। तन्मात्रायें सूक्ष्म मूल तत्त्व हैं। इस श्लोक में पृथ्वी, िल आशद सूक्ष्म मूल तत्त्वों ंका प्रशतशनशधत्व करते हैं शिनसे पााँच स्रू्ल तत्त्वों ंका उद्भव हुआ है।

मन अपने मूल कारण अहंकार का द्योतक है, बुम्भद्ध अपने कारण महत् की द्योतक है। अहंकार अव्यक् मूल प्रकृशत का द्योतक है िो अशवद्या एवं सब प्रकार की वासनाओं ंव सुप्त वृशत्तयों ंसे संयुक् है। प्रत्ेयेक मनुष्य के समस्त कर्मों का कारण अहंकार (अहं भाव) है और क्योंशंक मनुष्य में अहंकार ही वह सवाथशधक महत्त्वपूणथ तत्त्व है शिस पर अन्य सभी तत्त्व शनभथर हैं, अतः अहंकारयुक् 'अव्यक्म्' ही यहााँ पर 'अहंकार' संज्ञा से अशभशहत है क्योंशंक शवषयुक् भोिन शवष ही कहलाता है।

अपरेयडमतस्त्वन्यां प्रकृडतं डवन्द्रद्ध मे पराम् ।
जीवभूतां मिाबािो ययेदं धायमते जगत् ।।५ ।।

बि्र्थम : अपरा-शनम्न, इयम्-यह, इतः- यहााँ से, तु-लेशकन, अन्याम् -पृर्क्, प्रकृशतम् -प्रकृशत को, शवम्भद्धि–ानो, मे— मेरी, पराम् उि, िीवभूताम् - िीव-रूपा, महाबाहो - हे महाबाहो, यया-शिसके िारा, इदम् यह, धायथते-धारण शकया िाता है, िगत् संसार ।

अनुवाद : हे अिुथन, यह अपरा (शनम्न) प्रकृशत है। मेरी उितर परा प्रकृशत को पृर्क् िानो िो िीवभूता है अर्ाथत् चेतन है और शिसके िारा यह िगत् धारण शकया िाता है।

व्याख्या : पूवथ श्लोक में शववेशचत अष्टधा प्रकृशत शनम्नतर प्रकृशत कही गई है। यह क्षेत्र है, िि पदार्थ है, अशुद्ध है। बुराई को िन्म दे कर यह बन्धन का कारण बनती है। शकन्तु उितर प्रकृशत पशवत्र है। यह मेरी ही आत्मा है, क्षेत्रज्ञ (क्षेत्र को िानने वाला आत्म-तत्त्व) है शिसके िारा िीवन को पोषण शमलता है और िो समस्त िगत् में व्याप्त हो कर इसे धारण शकए रहता है। यह िीवन-तत्त्व है, आत्म-चेतना है िो ब्र्ह्माण्ड को धारण करती है।

एतद्योनीडन भूताडन सवामणीत्युपधारय ।
अिं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तर्था ।।६ ।।

बि्र्थम : एतत् -यह, योनीशन-योशनयााँ, भूताशन-प्राणी, सवाथशण- समस्त, इशत-इस प्रकार, उपधारयि–ानो, अहम् -मैं, कृत्स्नस्य-सारे, िगतः - िगत् का, प्रभवः -मूल स्रोत, प्रलयः -प्रलय, तर्ा-भी।

अनुवाद : इन दोनों ंप्रकृशतयों ंको समस्त प्राशणयों ंकी योशनयााँ ही समझो। अतः मैं ही इस िगत् का उद्भव और प्रलय हाँ।

व्याख्या : शनम्नतर और उितर प्रकृशतयााँ समस्त प्राशणयों ंको उत्पन्न करने वाली हैं। इन प्रकृशतयों ंका मूल स्रोत होने के कारण मैं इस ब्र्ह्माण्ड का कारण हाँ। मुझसे ही यह िगत् अम्भस्तत्वमान हो कर मुझ में ही लीन हो िाता है।

ब्र्ह्मसूत्र (अध्याय १, खखण्ड १, सूत्र २) में कहा है- "िन्माद्यस्य यतः" अर्ाथत् ब्र्ह्म ही वह सवथज्ञ सवथव्यापक सत्ता है शिससे शवश्व का उद्भव, शवकास और शवलयन होता है।

शिस प्रकार मन स्वप्न िगत् का िष्टा भी है और उपादान कारण भी है उसी प्रकार से ईश्वर इस िगत् का ष्टिा और उपादान कारण दोनों ंही है। वह शनशमत्त कारण भी है। शनरूपण -XIV.3.

मत्तः परतरं नान्यन्द्रत्कडञ्चदन्द्रस्त धनञ्जय ।
मडय सवमडमदं प्रोतं सूत्रे मडणगणा इव ।।७ ।।

बि्र्थम : मत्तः मुझ से, परतरम् - उितर, न-नहीं,ं अन्यत् अन्य, शकशश्चत् -कुछ, अम्भस्त-है, धनञ्जय- हे धनञ्जय, मशय-मुझमें, सवथम् -सब, इदम् -यह, प्रोतम् -शपरोया हुआ, सूत्रे -धागे में, मशणगणाः मशणयााँ, इव-समान ।

अनुवाद : हे धनञ्जय, संसार में मुझ से उितर अन्य कुछ भी नहीं ंहै। सूत्र में मशणयों ंके सदृश ये सब मुझ में शपरोया हुआ है।

व्याख्या : शवश्व का मूल कारण मैं ही हाँ, अन्य कोई नहीं।ं केवल मैं ही संसार का उत्पादक हाँ। सूत्र और मशणयों ंकी उपमा इस सत्य को प्रकाशत करती है शक सब प्राणी और समस्त संसार भगवान् रूपी सूत्र में गुंर्ा हुआ है। (सूत्र

ने मशणयों ंको शमला कर रखा है)। यहााँ सूत्र मशणयों ंका कारण नहीं ंहै। ब्ह्म ही सवथस्व है, उससे उितर अन्य कुछ भी नहीं।ं

रसोऽमिपुसु कौतेय प्रभान्द्रस्म ि डिसूयमयोः ।
प्रणवः सवमवेदेषु िब्ः खे पौरुषं नृषु ।।८ ।।

बि्थर्म : रसः- रस, अहम् -मैं, अि्ि्ल में, कौने्तय-हे कुन्ती पुत्र, प्रभा-प्रकाश, अम्भस्म (मैं) हााँ, शशसूयथयोः सूयथ और चिमा में, प्रणव -ओ३म्, शब्द, सवथवेदेषु सब वेदों ंमें, शब्दः- ध्वशन, खे-आकाश में, पौरुषम् -पुरुषत्व, नृषुनरों ं में।

अनुवाद : हे अिुथन, िलों ंमें रस (स्वाद) मैं हााँ, सूयथ और चि में प्रकाश मैं हााँ, "" शब्द मैं हााँ, आकाश में ध्वशन मैं हााँ और पुरुषों ंमें पौरुष मैं हााँ।

व्याख्या : मुझ में समस्त प्राणी और पूणथ शवश्व इसी प्रकार गुम्भफफत है िैसे वस्त्र में बुनाई का ताना। स्वाद के रूप में मुझ में िल गुम्भफफत है, प्रकाश के रूप में सूयथ और चि, ओंकार के रूप में समस्त वेद और पुरुषत्व के रूप में सब पुरुष मुझ में गुम्भफफत हैं।

पुणो् गन्धः पृडर्थव्यां च तेजश्चान्द्रस्म डवभावसौ ।
जीवनं सवमभूतेषु तपश्चान्द्रस्म तपन्द्रस्वषु ।।९ ।।

बि्थर्म : पुण्यः मधुर, गन्धः गन्ध, पृशव्यार्म् -पृथ्वी में, च-और, तिः-ति, च-और, अम्भस्म— (मैं) हााँ, शवभावसौ- अशग्न में, िीवनम् - िीवन, सवथभूतेषु सब प्राशणयों ंमें, तपः-तप, च-और, अम्भस्म-हााँ, तपम्भस्वषु- तपम्भस्वयों ंमें।

अनुवाद : पृथ्वी में मधुर गन्ध मैं हााँ, अशग्न में ति (उष्मा) मैं हााँ, प्राशणयों ंका िीवन मैं हााँ और तपम्भस्वयों ंका तप मैं हााँ।

व्याख्या : सुगन्ध रूप में पृथ्वी मुझ में ग्रशर्त है, ति रूप में अशग्न गुम्भफफत है, िीवन रूप में सब प्राणी मुझ में गुम्भफफत हैं और तप रूप में सब तपस्वी मुझ में गुम्भफफत हैं। मैं प्रते्येक वसुतु का अशधष्ठान हााँ, आश्रय हााँ।

मैं वह शम्भक् हााँ िो तपम्भस्वयों ंको मन तर्ा इम्भियों ंके शनयन्त्रण में सहायता करती है।

कृष्ण कहते हैं-"मैं रुशचकर सुगन्ध हााँ।" यशद अिुथन प्रश्न करते -"तो अरुशचकर सुगन्ध कौन है?" तो कृष्ण का उत्तर होता- "वह भी मैं ही हााँ।"

बीजं मां सवमभूतानां डवन्द्रद्ध पार्थम सनातनम् ।
बुन्द्रद्धबुमन्द्रद्धमतामन्द्रस्म तेजसे्तेजन्द्रस्वनामिम् ।।१० ।।

बि्थर्म : बीम् बी, माम्-मुझे, सवथभूतानाम् -सब प्राशणयों ंका, शवम्भद्ध-िानो, पार्थ-हे पार्थ, सनातनम् -सनातन, बुम्भद्धः बुम्भद्ध, बुम्भद्धमताम् – बुम्भद्धमानों ंमें, अम्भस्म-हााँ, तिः-ति, तिम्भस्वनाम् - तिम्भस्वयों ंका, अहम् -मैं।

अनुवाद : हे अिुथन, सब प्राशणयों ंका शाश्वत बी मुझे ही िानो। मैं बुम्भद्धमानों ंकी बुम्भद्ध हााँ और तिम्भस्वयों ंका ति हााँ।

व्याख्या : बिी का अशभप्राय "कारण" से है।

तिेस्, शवक्रान्त पुरुष अर्वा शूरवीरता (पराक्रम) के भाव में भी प्रयोग होता है।

अिुथन यशद पूछते-"आपका बिी कौन है?" तो भगवान् कहते-"मेरा कोई बिी नहीं।ं मैं सब का स्रोत हाँ। मैं कारणरशहत कारण हाँ। मैं आशद पुरुष हाँ।"

बलं बलवतां चािं कामरागडववडजमतम् ।
धमामडवरुद्धो भूतेषु कामोऽन्द्रस्म भरतषमभ ।।११ ।।

बि्ार्थम : बलम् बल, बलवताम्-बलवानों ंका, च-और, अहम् - मैं, कामरागशववशिथतम् - इच्छा और आसम्भक् से रशहत, धमाथशवरुद्धः -धमथ के अनुकूल, भूतेषु प्राशणयों ंमें, कामः-कामना, अम्भस्म—(मैं) हाँ, भरतषथभ हे भरतशे्रेष्ठ ।

अनुवाद : बलवानों ंमें मैं आसम्भक् और कामरशहत बल हाँ और हे अिुथन, सब प्राशणयों ंमें धमथ के अनुकूल काम मैं हाँ।

व्याख्या : कामः - इम्भियों ंके सम्पकथ में आने वाले शवषयों ंकी इच्छा।

रागः - इम्भियों ंके सम्पकथ में आने वाले शवषयों ंमें आसम्भक् ।

शरीर के पोषण के शलए अशनवायथ बल मैं हाँ। मैं वह शम्भक् या बल नहीं ं. िो ऐम्भिक शवषयों ंके प्रशत काम-वासना और आसम्भक् उत्पन्न करे िैसा शक सांसाररक व्यम्भक्यों ंके सार् है। मैं शास्त्रों ंकी आज्ञा के अनुरूप अर्वा िीविन के कतथव्यों ंके शनयमों ंके अनुरूप उपशदष्ट काम हाँ। सनुतुशलत खान-पान की कामना मैं हाँ िो शरीर के शनवाथह के शलए आवश्यक है और योगाभ्यास में सहायक है।

ये चैव सान्द्रत्त्वका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेडत तान्द्रन्वन्द्रद्ध न त्विं तेषु ते मडय ।। १२ ।।

बि्ार्थम : ये िो भी, चऔर, एव-ही, साम्भत्त्वकाः-शुद्ध, भावाः- भाव, रािसाः-शक्रयाशील, तामसाः- िि, च-और, ये-िि भी, मत्तः- मुझ से, एव-ही, इशत-इस प्रकार, तान् - उनें, शवम्भद्ध–िानो, न-नहीं,ं तु-शनश्चय से, अहम् -मैं, तेषु उनमें, ते-वे, मशय मुझमें।

अनुवाद : संसार में िो भी प्राणी (अर्वा पदार्थ) साम्भत्त्वक (शुद्ध) भाव वाले हैं अर्वा रािशसक (शक्रयाशील) भाव वाले हैं अर्वा तामशसक (िि) भाव में हैं उन सब को तुम मुझ से उत्पन्न हुआ िानो। वे मुझ में हैं शकनुतु मैं उनमें नहीं ंहाँ।

व्याख्या : यह सृशष्ट शत्रगुणमयी है-सत्त्व, रिस् और तमस्। सभी िि-चेतन पदार्थ प्रकृशत के इन तीन गुणों ंका समाहार (समुदाय) हैं। उनमें एक गुण प्रधान होता है और वह प्रधान गुण वसुतु शवशेष अर्वा व्यम्भक् को स्वभाव अर्वा सहि गुण प्रदान करता है।

देवों ंमें, तपम्भस्वयों ंमें, दुग्ध और हरे अनाि में सत्त्व गुण प्रधान होता है। गन्धवथ, रािा, योद्धा और शमचथ रिस् गुण प्रधान है। राक्षस, शिू, लहसुन, प्यािा और मांस तमस् प्रधान हैं।

यद्यशप ये िीव और पदार्थ मुझसे ही उत्पन्न हैं तर्ाशप मैं उनमें नहीं ंहाँ। मैं स्वतन्त्र हाँ। मैं उनका आधार हाँ, वे मुझमें हैं अतः मुझ पर वैसे ही शनभथर हैं िैसे रस्सी में आरोशपत सपथ। सपथ तो रिु में है शकन्तु रिु कभी सपथ में नहीं ंहै। शसन्धु में लहरें हैं शकन्तु लहरों ंमें शसन्धु तो नहीं ंहो सकता। (शनरूपण-IX.4,6)

डत्रडभगुमणमयैभामवैरेडभः सवमडमदं जगत् ।
मोडितं नाडभजानाडत मामेभ्यः परमव्ययम् ।।१३ ।।

बि्ार्थम : शत्रशभः - तीनों ंके िारा, गुणमयैः- गुणों ंसे युक्, भावैः- भावों ंके िारा, एशभः- इन के िारा, सवथम् -समस्त, इदम् - यह, िगत् संसार, मोशहतम् -मोहग्रस्त, न-नहीं,ं अशभिानाशत–िानता, माम् -मुझे, एभ्यः- इन से, परम् - उित्तर, अव्ययम् सनातन ।

अनुवाद : प्रकृशत के इन गुणों ंसे मोशहत संसार उनसे पृर्क् मुझ परम अशवनाशी को नहीं ंिानता।

व्याख्या : इस िगत् के लोग माया (प्रकृशत) के तीन गुणों ंसे मोशहत हैं। स्नेह, आसम्भक् और मोहग्रस्त प्रेम इन तीन गुणों ंके पररवशतथत रूप हैं। इन तीनों ंगुणों ंिारा सृशित मोह के कारण मनुष्य लौशकक बन्धन तोड़ने में असमर्थ है और अपने मन को इन तीन गुणों ंके स्वामी भगवान् की ओर उन्मुख करने में भी असमर्थ है।

अव्यय-अक्षय, अशवनाशी, अपररवतथनशील । आत्म-तत्त्व एक समम्भित सार-तत्त्व है। शरीर में आने वाले षि् भाव शवकार इसमें नहीं ंआते िैसे-अम्भस्तत्व, िन्म, शवकास, पररवतथन, क्षय और मृत्यु । (शनरूपण-VII. 25)

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यते मायामेतां तरन्द्रत ते ।।१४ ।।

बि्ार्थम : दैवी-शदव्य, शह-शनश्चयेन, एषा-यह, गुणमयी-गुणयुक्, मम मेरी, माया-माया (भ्रम), दुरत्यया-पार करने में कशठन, माम् मुझको, एव-ही, येिो, प्रपद्यन्ते-शरण में आते हैं, मायाम् -माया को, एताम् -इस, तरम्भन्त-तर िाते हैं, ते वे।

अनुवाद : शनशश्चत रूप से प्रकृशत के तीन गुणों ंसे युक् मेरी इस शदव्य माया को िीतना कशठन है। वे लोग माया को पार कर िाते हैं िो मेरी शरण में आते हैं।

व्याख्या : माया भगवान् का कारण शरीर है और शवश्व का मूल कारण है। यह ईश्वर में प्रशतशष्ठत है अर्ाथत् ईश्वर का नैसशगथक भाव है। यह सत्त्व, रिस् और तमस् तीन गुणों ंसे युक् है। सब धर्मों (कर्मों) का त्याग कर िो पूणथतया ईश्वर को समशपथत हो िाते हैं वे सब को भ्रशमत करने वाली इस माया को पार कर िाते हैं। वे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

ईश्वर मायापशत हैं। उनका इस पर पूणथ शनयन्त्रण है। अशवद्या िीवात्मा की उपाशध है। िीव इस अज्ञान का दास है। सम्भिदानन्द ब्रह्म से िीव को पृर्क् करने वाला आवरण अज्ञान ही है। ज्ञानोदय होने पर िीव अपने िीवत्व का त्याग कर के ब्रह्म के सार् एकत्व प्राप्त कर लेता है। (शनरूपण-XV. 3, 4.)

न मां दुष्कृडतनो मूढाः प्रपद्यते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाडश्रताः ।।१५ ।।

बि्ार्थम : न -नहीं,ं माम् -मुझे, मेरी, दुषृ्कृशतनः - पापकमी, मूढाः - मूखथ, भ्रशमत, प्रपद्यने्ते-शरण ग्रहण करते हैं, नराधमाः- अधम व्यम्भक्, मायया-माया से, अपहृतज्ञानाः-शिनका ज्ञान हरा गया है, आसुरम्-आसुरी (राक्षसी), भावम् - भाव को, आशश्रताः आशश्रत।

अनुवाद : अशुभ कमथ करने वाले और मूढ़ लोग ि◌ो नरों ंमें अधम हैं, मेरी शरण में नहीं ंआते। मायावश शिनके ज्ञान का हरण हो चुका है वे आसुरी मागथ का अनुसरण करते हैं।

व्याख्या : इन तीन प्रकार के लोगों ंमें उशचत-अनुशचत, सत्य-असत्य का शववेक नहीं ंहोता। वे शहंसा, चोरी, ि◌कैती तर्ा अन्य क्रूर कृत्य करते हैं। वे दूसरों ंको अनेक प्रकार से हाशन पहुँचाते हैं और असत्य भाषण करते हैं।

आसुरी वृशत्त को अपनाने वाले शवरोचन की भााँशत शरीर को ही आत्मा मान कर पुष्प, सुगम्भन्ध, लेप, सुन्दर वस्त्रऔररुशचकर (स्वाद) व्यञ्जनों ंसे इसकी पूिा करते हैं। वे भ्रशमत आत्माएँ हैं। वे शरीर के पोषण हेतु अनेक प्रकारकेबुरे कमथ करते हैं। अतः वे मेरी आराधना नहीं ंकरते। अशवद्या ही इन सभी बुराइयों ंका मूल है। (शनरूपण –XVI. 16, 20)

चतुडवमधा भजते मां जनाः सुकृडतनोऽजुमन।
आतो डजज्ञासुरर्थामर्थी ज्ञानी च भरतषमभ ॥१६॥

बि्ार्थम : चतुशवथधाः- चार प्रकार के, भिने्ते-पूिा करते हैं, माम् -मेरी, िनाः- लोग, सुकृशतनः पुण्यात्मा, अिुथन-हे अिुथन, आतथः-दुःखी, शिज्ञासुः- शिज्ञासु, अर्ाथर्ी-सम्पशत्त की कामना वाले, ज्ञानी-ज्ञानी, च-और, भरतषथभ-हे भरतवंशयों ंमें श्रेष्ठ।

अनुवाद : हे भरतश्रेष्ठ, चार प्रकार के पुण्यकमी मेरी आराधना करते हैं। वे हैं-आतथ (दुःखी), शिज्ञासु (ज्ञान प्राम्भप्त का इचु्छुक), अर्ाथर्ी (धन का इचु्छुक) और ज्ञानी।

व्याख्या : आतथ वह है ि◌ो शकसी पुराने असाध्य रोग से पीशित है, भूकम्प से, ज्वालामुखी फूटने से, मेघगिथना से, ि◌कैती अर्वा शत्रु के आक्रमण से अर्वा वन्य पशु के आक्रमण आशद से शिसके प्राण संशदग्ध हैं (िीवन संशय में है)। आताथवस्र्ा में िौपदी और गििे ने भगवान् को पुकारा। यह आतथ भम्भक् के दृष्टान्त हैं।

शिज्ञासु अिेषक है। वह इस संसार से असनु्तष्ट है। उसके िीवन में शून्यता है। वह सदा यही सोचता है शक भौशतक सुखों ंमें वास्तशवक आनन्द का अभाव है। पशवत्र शाश्वत आनन्द की खोि तो आभ्यंतर में करनी है ि◌ो दुःख और शोक से मुक् करने वाली है। िनक और उद्धव ऐसे ही भक् र्े।

अर्ाथर्ी वह है शिसे धन-वैभव, स्त्री, बेि, पद, नाम और यश की तृष्णा है। सुग्रीव, शवभीषण, उपमनु्यु और धु्रुव इसी प्रकार के भक् र्े।

ज्ञानी ज्ञान की इच्छा रखने वाले होते हैं शिन्ोंनें आत्म-ज्ञान प्राप्त शकया। शुकदेव िी का नाम इस श्रेणी में शलया िाता है, वे ज्ञानी भक् र्े।

कंस, शशुपाल और रावण सतत भय और घृणाभाव से भगवत् शचन्तन करते र्े। वे वैर भम्भक्युक् भक् र्े।

तुम्हारा उदे्देश्य कुछ भी हो, भगवान् के प्रशत शनष्ठावान् बनो। समय के सार् तुम्हारी शनष्ठा, भम्भक् तुम्हारे उदे्देश्य को भी पररषृकृत कर देगी।

तेषां ज्ञानी डनत्ययुक्त एकभन्द्रक्तडवमडिष्यते ।
डप्रयो डि ज्ञाडननोऽत्यर्थमिं स च मम डप्रयः ।।१७ ।।

बिार्थम : तेषाम् उनमें से, ज्ञानी-ज्ञानी, शनत्ययुक्ः - शनत्यम्भस्त, एकभम्भक्ः- एक में भम्भक्भाव वाला, शवशष्यते- शवशष्ट है, शप्रयः - शप्रय, शह-शनश्चय से, ज्ञाशननः- ज्ञानी का, अत्यर्थम् अत्यशधक, अहम् -मैं, सः- वह, च-और, मम-मेरा, शप्रयः - शप्रय ।

अनुवाद : उनमें से शनत्ययुक् और एक परमात्मा में भम्भक्भाव वाला ज्ञानी सवथश्ेरेष्ठ है क्योंशंक मैं ज्ञानी को अत्यशधक शप्रय हाँ और ज्ञानी मुझे शप्रय है।

व्याख्या : 'एकभम्भक्ः' का अशभप्राय है अशवचल अनन्यमनस्क भम्भक्-परमात्मा के शलए।

ज्ञानी भक् सब मत-मतान्तरों,ं धमथ और समिा के शनयमों ंसे परे होता है। ज्ञानी अन्य भक्ों ंकी अपेक्षा श्ेरेष्ठतर है क्योंशंक वह केवल एक परमात्मा में शनष्ठा वाला और सतत समम्भित होता है। क्योंशंक मैं ही उसका अन्तरात्मा हाँ इसशलए उसको मैं अत्यन्त शप्रय हाँ। प्रत्ेयेक मनुष्य अपनी आत्मा को सवाथशधक पे्रेम करता है। सबको आत्मा शप्रय है। ज्ञानी मनुष्य मेरी आत्मा है और वह मुझे शप्रय भी है। (शनरूपण - II.49; IX.29; XII.14,17,19)

उदाराः सवम एवैते ज्ञानी त्वैव मे मतम् ।
आन्द्रथर्थतः स डि युक्तिा मामेवानुत्तमां गडतम् ।।१८।।

बिार्थम : उदाराः-उदार, सवे-सब, एव-ही, एते-ये, ज्ञानी-ज्ञानी, तु-शकनुतु, आत्मा-आत्मा, एव-ही, मे—मेरा, मतम् - मत, आम्भस्तः - म्भस्त, सः- वह, शह-शनश्चय से, युक्ात्मा-योग में म्भस्त पुरुष, माम् -मुझे, एव-ही, अनुत्तमाम् - सविो, गशतम् लक्ष्य ।

अनुवाद : ये सभी शनशश्चत रूप से अचे्छे हैं शकनुतु मैं ज्ञानी को अपना ही आत्मा मानता हाँ क्योंशंक ज्ञानी संयत मन से परम लक्ष्य स्वरूप मुझ में ही प्रशतशष्ठत है।

व्याख्या : क्या अन्य तीन प्रकार के भक् भगवान् को शप्रय नहीं ंहैं? वे शप्रय हैं। वे सभी उदार हैं। परनुतु, क्योंशंक ज्ञानी का मन म्भस्र होता है, वह भगवान् में म्भस्त रहता है इसशलए वह अशधक शप्रय है। परमात्मा के अशतररक् उसे अन्य शकसी सांसाररक वसुतु की इच्छा नहीं ंहोती। उसका परम लक्ष्य परब्र्ह्म है। वह अहंग्रह उपासना (सब को अपनी आत्मा के रूप में देखना) करता है। वह यह समझने का प्रयास करता है शक वह ब्र्ह्म से अशभन्न है इसीशलए ज्ञानी को मैं अपना ही आत्मा मानता हाँ। (शनरूपण - II.49)

बहूनां जन्मनामते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सवमडमडत स मिाि सुदुलमभः ।।१९ ।।

बिार्थम : बहनाम् - अनेक, िन्मनाम्–न्मों ंके, अने्ते-अन्त में, ज्ञानवान् ज्ञानी, माम् -मेरी, प्रपद्यते - शरण लेता है, वासुदेवः वासुदेव, सवथम् सवथस्व, इशत-इस प्रकार, सः- वह, सुदुलथभः -पाना कशठन । महात्मा-महान् आत्मा,

अनुवाद : अनेक िन्मों ंके उपरान्त ज्ञानी मेरी शरण में आता है शकनुतु "वासुदेव ही सवथस्व है" ऐसा ज्ञान प्राप्त करने वाला महात्मा अत्यन्त दुलथभ है।

व्याख्या : वसुदेव का पुत्र होने के कारण भगवान् कृष्ण को वासुदेव भी कहा िाता है। वह सवथव्यापक ब्र्ह्म हैं।

साधक योगाभ्यास, शनःस्वार्थ सेवा, भम्भक् और अशवराम ध्यान के िारा क्रमशः शवकास करता है और अनेक िन्म पयथन्त यह साधना करने के उपरान्त अन्तरात्मा का साक्षात्कार करता है। वह िान लेता है शक वासुदेव ही सवथस्व है। ऐसी महान् आत्मा का पाना अत्यन्त कशठन है शिसने शसम्भद्ध प्राप्त कर ली हो । उसकी उपमा शकसी से नहीं ंकी िा सकती। यही कारण है शक भगवान् ने कहा है- "सहस्रों ंमें कोई एक शसम्भद्ध के शलए यत्न करता है और उन सफल साधकों ंमें भी कोई शवरला ही मुझे तत्त्व रूप से िान पाता है।" (शनरूपण-VII.3)

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यतेऽन्यदेवताः ।
तं तं डनयममाथर्थाय प्रकृत्या डनयताः स्वया ।।२० ।।

बि्थर्म : कामैः-कामनाओं ंके िारा, तैः तैः-उन-उन, हृतज्ञाना:-शिनका ज्ञानहरण हो गया है, प्रपद्यन्ते-शरण में आते हैं, अन्यदेवताः- अन्यदेवता, तम् तम् उस उस, शनयमम् -शनयम को, आस्र्ाय अनुसरण कर के, प्रकृत्या-स्वभाव से, शनयताः-शनयत, स्वया-अपने ही।

अनुवाद : इधर-उधर की इच्छाओं ंके िारा शिनके ज्ञान का हरण हो चुका है वे अपने-अपने स्वभाव के कारण अन्य शवशध-शवधान करते हुए अन्य देवताओं ंकी शरण में िाते हैं।

व्याख्या : तुच्छ शसम्भद्धयों ंकी प्राम्भप्त के इचुछुक, धन-वैभव, सन्तान की इच्छा वाले, शववेक शून्य होते हैं। पूवथ िन्म के संस्कारों ंसे प्ेरेररत हो कर अपने स्वभाव के अनुरूप वे इि, शमत्र, वरुण आशद अन्य देवों ंकी शरण में िाते हैं। वे इन शनम्न देवों ंको प्रसन्न करने के शलए अनुष्ठान करते हैं। (शनरूपण -IX.23)

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयाडचमतुडमच्छडत ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव डवदधाम्यिम् ।।२१ ।।

बि्थर्म : यः यः िो–िो, याम् याम् -शिस-शिस, तनुम् स्वरूप को, भक्ः - भक्, श्रद्धया श्रद्धा से, अशचथतुम् -पूिा के शलए, इच्छशत-इच्छा करता है, तस्य तस्य-उस-उस की, अचलाम्-अचल, श्रद्धाम्-श्रद्धा को, ताम् उसमें, एव-ही, शवदधाशम-म्भस्र्र करता हाँ, अहम् - मैं।

अनुवाद : भक् शिस शकसी स्वरूप की श्रद्धा से पूिा करना चाहता है उसी स्वरूप में उसकी शनष्ठा को मैं म्भस्र्र और अचल करता हाँ।

व्याख्या : तनु अर्ाथत् शरीर शब्द देवता के भाव में प्रयुक् हुआ है। अन्तयाथमी भगवान्, भक् के पूवथ िन्म के संस्कारोंकेक्ारण उसकी शनम्न कोशट के देवों ंके प्रशत शनष्ठा को म्भस्र्र और अचल करते हैं। (शनरूपण - IV.11; IX.22,23)

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीते ।
लभते च ततः कामान्मयैव डवडितान्द्रन्ह तान् ।।२२ ।।

बिार्थम : सः वह, तया-उसके, श्रद्धया-शवश्वास से, युक्ः युक्, तस्य-उसकी, आराधनम् -पूिा, ईहते-आकाङ्क्षा करता है, लभते - प्राप्त करता है, च-और, ततः-उससे, कामान्-इच्छाओं ंको, मया-मेरे िारा, एव-शनशश्चत रूप से, शवशहतान् - आशदष्ट, शह-शनश्चय से, तान्—उन ।

अनुवाद : उस श्रद्धा से युक् हो कर वह उस देवता के स्वरूप की आराधना में लगता है और उस देवता से मेरे िारा शवधान शकये गये उन इम्भच्छत भोगों ंको शनःसने्देह प्राप्त करता है।

व्याख्या : अम्भन्तम दो शब्द 'शह' और 'तान्' एक शब्द माना िाता है अर्ाथत् 'शहतान्' शिसका अशभप्राय है लाभ । यह अन्य व्याख्या है। शनम्न देवताओं ंकी पूिा करने वाला भक् आकांशक्षत फलों ंकी प्राम्भप्त करता है शिनमें छोटी-मोटी आध्याम्भत्मक शम्भक्यााँ शनशहत हैं। वे पदार्थ भगवान् के आदेश से ही प्राप्त होते हैं क्योंशंक केवल वे ही कमथ और उसके फल के सम्बन्ध को िानते हैं और क्योंशंक वे ही सभी प्राशणयों ंकी अन्तरात्मा के स्वामी हैं। मूढ़ अर्वा अशववेकी पुरुष ही इन अन्य पदार्ों को प्राप्त करने की कामना करते हैं िो शक पूणथ सनुतुशष्ट प्रदान करने में सक्षम नहीं ंहैं। दयनीय है उनका भाग्य। उनमें शवचार-शम्भक् नहीं ंहै, समुशचत ज्ञान नहीं ंहै। आत्मा रूपी अमोघ हीरा प्राप्त करने की अपेक्षा वे कााँच के टुकिे एकत्र करने में लगे रहते हैं।

अतवत्तु फलं तेषां तिवत्यल्पमेधसाम् ।
देवाने्देवयजो यान्द्रत मिक्ता यान्द्रत मामडप ।। २३ ।।

बिार्थम : अन्तवत् - अशनत्य, तु-शनशश्चत रूप से, फलम् -फल, तेषाम् उनका, तत् वह, भवशत-होता है, अल्पमेधसाम् - अल्प बुम्भद्ध वालों ंका, देवान् -देवताओं ंको, देवयिः-देवताओं ंको पूिने वाले, याम्भन्त–िाते हैं, मद्भक्ाः - मेरे भक्, याम्भन्त–िाते हैं, माम् -मुझको, अशप-भी।

अनुवाद : शनस्सने्देह अल्प बुम्भद्ध वालों ंका प्राप्त फल भी क्षणभङ्गुर होता है। देवताओं ंको पूिने वाले उन्ें ही प्राप्त होते हैं और मेरे भक् मुझे प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : दोनों ंप्रकार की साधना भम्भक् में प्रयास तो वही एक ही है पुनरशप परम पुरुष को पूिने का प्रयास नहीं ं करते शिससे वे मोक्ष रूप अनन्त फल की प्राम्भप्त कर सकें। शनम्न देवताओं ंकी पूिा का फल भी िो अल्पज्ञों ंको प्राप्त होता है, वह अल्प, नाशवान् और अशनत्य है।

यज्ञ (वैशदक अनुष्ठान), होम (अशग्नहोत्र, शिसमें अशग्न में आहुशतयााँ िाली िाती हैं) और शवशभन्न प्रकार की तपस्या साधक पर क्षशणक फल की वृशष्ट कर सकती हैं, शनत्य नहीं।ं आवागमन के चक्र से मुम्भक् ही शनत्य आनन्द और शाश्वत शाम्भन्त देने में सक्षम है।

डिशिद देवताओं ंकी पूिा करने वाले साधक साम्भत्त्वक हैं। यक्ष और राक्षसगणों ंकी पूिा करने वाले रािशसक हैं और भूत-प्रेत आशद अशरीरी आत्माओं ंको पूिने वाले तामशसक होते हैं।

शनम्न देवों ंको पूिने वालों ंका ज्ञान आंशक और अपूणथ होता है। यह मोक्ष प्रदायक नहीं ंहै। (शनरूपण-IX.25)

अव्यकं्तं व्यन्द्रक्तमापिं मन्यते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानतो ममाव्ययमनुत्तमम् ।।२४ ।।

ब्ाि्थम : अव्यक्म् अव्यक्, अप्रकट, व्यम्भक्म् - प्रकट स्वरूप को, आपन्नम् - प्राप्त हुए, मन्यन्ेते-मानते हैं, माम् -मुझे, अबुद्धयः - बुम्भद्धहीन, परम् -सविो, भावम् सत्ता, अिानन्तः- न िानते हुए, मम-मेरी, अव्ययम् - अनश्वर, अनुत्तमम् - उतृ्कष्ट ।

अनुवाद : मेरी उित्तर, शनशवथकार और उतृ्कष्ट प्रकृशत को न िानते हुए अल्पज्ञ मुझ अव्यक् को, व्यक् भाव को प्राप्त हुआ समझते हैं।

व्याख्या : अज्ञानी मनुष्य भगवान् कृष्ण को एक सामान्य पुरुष मानते हैं। वे सोचते हैं शक पूवथ िन्म की कमथ की शम्भक् से भगवान् ने अव्यक् अवस्ा से प्रकट हो कर सामान्य मनुष्यों ंकी भाँशत शरीर धारण शकया है। उन लोगों ं को भगवान् की उित्तर, अनश्वर, स्वयं प्रकाशत प्रकृशत का सविो सत्ता के रूप में होने का ज्ञान नहीं ंहै। वे मानते हैं शक वे अभी सत्ता में आये हैं िब शक वे सत् स्वरूप हैं, शाश्वत, अनाशद, अनन्त, िन्म से परे, मृतु्य से परे, अपररवतथनशील, पञ्चातीत, असीशमत और अव्यक् हैं।

नािं प्रकािः सवमस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाडभजानाडत लोको मामजमव्ययम् ।।२५ ।।

ब्ाि्थम : न-नहीं,ं अहम् - मैं, प्रकाशः व्यक्, सवथस्य सब का, योगमायासमावृतः योगमाया से आवृत, मूढः- मूखथ, अयम्-यह, न नहीं,ं अशभिानाशत िानता है, लोकः संसार, माम् -मुझे, अिम् - िन्मरशहत, अव्ययम् - अनश्वर ।

अनुवाद : अपनी योगमाया से आवृत होने के कारण मैं सबको प्रत्यक्ष नहीं ंहोता अर्ाथत् सब के समक्ष प्रकट नहीं ं होता। ये भ्रशमत लोग मुझ िन्मरशहत अशवनाशी को नहीं ंिानते ।

व्याख्या : मैं सब मनुष्यों ंके समक्ष प्रत्यक्ष नहीं ंहाँ शकनु्त िो भक् केवल मेरी शरण में आते हैं उन शवशेष भक्ों ंके समक्ष मैं प्रकट होता हाँ। मैं उन लोगों ंको दशथन नहीं ंदेता िो प्रकृशत के तीन गुणों ंऔर शवरोधी िन्द्ों ंसे भ्रशमत हैं तर्ा इस संसार में शलप्त हैं, िो मात्र प्रकृशत के गुणों ंकी अशभव्यम्भक्, मेरी योगमाया अर्वा मेरी सृिनात्मक शम्भक् का भ्रम है। यह सांसाररक मनुष्यों ंकी बुम्भद्ध को आवृत कर देती है, अतएव वे भगवान् को नहीं ंदेख सकते शिनके पूणथ शनयन्त्रण में यह माया की शम्भक् है।

प्रकृशत के तीन गुणों ंका समाहार योगमाया है। उसके िारा प्रसाररत भ्रम अर्वा आवरण, योगमाया है। सांसाररक व्यम्भक् इन तीनों ंगुणों ंसे उत्पन्न भ्रम से मोशहत हैं। इसीशलए वे भगवान् को िानने में सक्षम नहीं ंहैं िो अिन्मा और शनशवथकार हैं।

योगमाया भगवान् के पूणथ वश में है। ईश्वर इस माया को धारण करता है इसशलए यह अपने ही ज्ञान को तमोवृत नहीं ंकर सकता। एक िादूगर का सृशित भ्रम िैसे उसे ही धोखा नहीं ंदे सकता अर्वा उसकी अपनी ज्ञान शम्भक् को दुबाथध नहीं ंकर सकता वैसे ही िो भ्रम भौशतक प्राशणयों ंको बन्धन में िालता है वह भगवान् को शंकंशचत् मात्र भी प्रभाशवत नहीं ंकर सकता क्योंशंक माया तो पूणथ रूप से भगवान् के वश में है। (शनरूपण - VII. 13; IX.5; X.7; II.8)

वेदािं समतीताडन वतमानाडन चाजुमन ।
भडवष्याडण च भूताडन मां तु वेद न कश्चन ।।२६ ।।

बि्ार्थम : वेद िानता हाँ, अहम् -मैं, समतीताशन व्यतीत हुए, वतथमानाशनवतथमान को, च-और, अिुथन-हे अिुथन, भशवष्याशण-भशवष्य के, च-और, भूताशन प्राणी, माम् -मुझे, तु-लेशकन, वेदिानता है, न नहीं, कश्चन-कोई भी।

अनुवाद : हे अिुथन, मैं अतीत में हो चुके, वतथमान में म्भस्त और भशवष्य में होने वाले सभी प्राशणयों को िानता हाँ शकनुतु मुझे कोई नहीं िानता।

व्याख्या : तीन गुणों से भ्रशमत िनगण भगवान् को नहीं िानते। उनके वास्तशवक स्वरूप का ज्ञान न होने के कारण वे उसकी आराधना नहीं करते। शकनुतु सवथज्ञ होने के कारण भगवान् प्राशणयों का भूत, वतथमान और भशवष्यकाल िानते हैं। अनन्यमनस्क भम्भक् से भगवान् की पूिा करने वाला उसे तत्त्व रूप से िान लेता है। उसे परमात्मा की वास्तशवक प्रकृशत का ज्ञान होता है।

इच्छािेषसमुत्थेन िन्द्विमोहेन भारत ।
सवमभूताडन संमोहं सगे यान्द्त परंतप ।।२७ ।।

बि्ार्थम : इच्छािेषसमुत्थेन-इच्छा और िेष से उत्पन्न, िन्द्मोहेन िन्द्वि के मोह के कारण, भारत- हे भारत, सवथभूताशन-सभी प्राणी, संमोहम् - मोह को, सगेिन्म-काल में, याम्भन्तिाते हैं, परंतप-हे शतुरुओं के शविेता ।

अनुवाद : हे भरतवंशी अिुथन, इच्छा और िेष से उत्पन्न िन्द्वि के मोह वश संसार के समस्त प्राणी िन्म लेकर भ्रशमत हो रहे हैं।

व्याख्या : िहााँ सुख है वहााँ राग है, आसम्भक् है और िहााँ दुःख है वहााँ िेष है, शवरम्भक् है। शरीर के रक्षण की मनुष्य में स्वाभाशवक प्रकृशत होती है। मनुष्य उन साधनों को प्राप्त करना चाहता है शिनसे शरीर की रक्षा हो सकती है। शरीर और मन को पीिा पहुाँचाने वाले पदार्ों से मनुष्य छुटकारा पाना चाहता है। िन्द्वि के कारण उत्पन्न मोह से इच्छा और िेष प्रसुफुशटत होते हैं और मनुष्य उन पदार्ों के वास्तशवक स्वरूप का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता । इम्भिय ग्राह्य बाह्य संसार का भी सिा अनुभव नहीं कर सकता। यह कहना अशनवायथ नहीं है शक इच्छािेष से आवृत बुम्भद्ध वाले मनुष्य में अन्तस्तम आत्मा का आध्याम्भत्मक ज्ञान उशदत नहीं हो सकता।

राग और िेष, सुख और दुःख, गमी और सदी, हषथ और शोक, प्रसन्नता और पीिा, सफलता और शवफलता, मान और अपमान, प्रशंसा और शनंदा शवरोधी िन्द्वि के युग् हैं। रागिेष (अर्वा आकषथण शवकषथण) सभी प्राशणयों में भ्रम (मोह) िागृत करते हैं और आत्म ज्ञान रूप सूयथ के प्रकाश में बाधा िालते हैं।

शिसकी बुम्भद्ध िन्द्वि से मोशहत है वह यह अनुभूशत नहीं कर सकता शक "मैं आत्मा हाँ", इसीशलए वह मुझे आत्म-रूप में नहीं देखता ।

रागिेष का शकार व्यम्भक् शववेक शम्भक् खो बैठता है। वह चाहता है शक सुखद पदार्थ तो सवथदा सुलभ होते रहें और दुःखद पदार्थ अशचरेण लुप्त हो िाएं। यह कैसे सम्भव है ? देश, काल और कारणत्व में आबद्ध पदार्थ तो नष्ट होंगें ही। िो िो रुशचकर और अनुकूल है वह कुछ समयोपरान्त अरुशचकर और प्रशतकूल हो िाएगा। मन चंचल है। इसे शवशभन्नता अर्वा पररवतथन चाशहए। एक ही प्रकार (एक रूपता) से यह उशिग्न हो िाता है।

येषां त्वतगतं पापं जनानां पुण्र्कममणाम् ।
ते िन्द्विमोडनमुमक्ता भजते मां दृढव्रताः ।।२८ ।।

शब्दार्थ : येषाम् - जिनका, तु-लेकिन, अन्तगतम् - अन्त की ओर (विनष्ट), पापम् -पाप, जनानाम् -मनुष्यों का, पुण्यकर्मणाम् -पुण्य कर्म करने वालों का, ते-वे, द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः - द्वन्द्व के मोह से विमुक्त, भजन्ते-पूजा करते हैं, माम् -मेरी, दृढव्रताः दृढ़ व्रतधारी।

अनुवाद : परन्तु वे पुण्य कर्म करने वाले मनुष्य जिनके पाप भस्मीभूत (विनष्ट) हो चुके हैं और जो रागद्वेष आदि द्वन्द्व के मोह से मुक्त हो चुके हैं, वे कृतसंकल्प हो कर मेरी पूजा करते हैं।

व्याख्या : पुण्य कृत्यों से हृदय परिष्कृत होता है। सत्त्व की वृद्धि होती है। रजस् और तमस् धीरे-धीरे क्षीण होता है, मन सौम्य और शान्त होने लगता है। तुच्छ अहंयुक्त व्यक्तित्व शनैः-शनैः समाप्त होने लगता है। आध्यात्मिकता का विकास होता है। दिव्य आभा और अधिक कांति को प्राप्त होती है और तुम अकर्तृक (व्यक्तित्व शून्य) बन जाते हो।

पाप-परम सत्ता के साथ अभेदभाव को भूलना ही सब से बड़ा पाप है। भेद दर्शन पाप है। शरीर को ही आत्मा मान बैठना और संसार को सत्य मान लेना पाप है। अहंभाव में रहना पाप है। अज्ञान पाप है।

दृढ़व्रताः - दृढ़ व्रत वाला व्यक्ति अचल संकल्प वाला होता है। इस प्रकार का उसका संकल्प होता है- "मुझे आत्मसाक्षात्कार करना ही है। आत्म-ज्ञान प्राप्त किए बिना मैं अपने आसन से एक इंच भर भी नहीं हटूंगा।"

उसे पूर्ण विश्वास होता है कि "ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है। यह संसार मृग-मरीचिका के समान है। मैं अमृतत्व और शाश्वत आनन्द की प्राप्ति कर सकता हूँ। आत्म-ज्ञान की प्राप्ति से ही यह सम्भव है। भौतिक पदार्थों में किंचित् मात्र भी सुख नहीं है।" अतः भगवान् कहते हैं-"दृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति ही मेरी आराधना करते हैं।"

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ।।२९ ।।

शब्दार्थ : जरामरणमोक्षाय-वृद्धावस्था और मृत्यु से छुटकारा पाने के लिए, माम् -मुझे, आश्रित्य - (मेरी) शरण में आ कर, यतन्ति-यत्न करते हैं, ये जो, ते-वे, ब्रह्म-ब्रह्म को, तत्-उसे, विदुः - जानते हैं, कृत्स्नम् -समग्र, अध्यात्मम् - आत्म-ज्ञान, कर्म-कर्म, च-और, अखिलम्-सम्पूर्ण ।

अनुवाद : मेरी शरण में आ कर जो पुरुष जरा-मृत्यु से मुक्त होने का प्रयास करते हैं वे पूर्ण रूप से उस ब्रह्म को, अध्यात्म को और कर्म को जान लेते हैं।

व्याख्या : वे पूर्ण ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे सर्वो भूमा को प्राप्त करते हैं जो स्वतन्त्र सत्ता हैं। उनके समस्त संशय पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। अब वे पूर्ण रूप से समझ लेते हैं कि सर्वस्व वासुदेव ही हैं। सर्वस्व ब्रह्म है, विभिन्नता अथवा अनेकता नहीं है।

उनका इस मर्त्य लोक में पुनर्जन्म नहीं होता। और वे जरा-मृत्यु को जीत लेते हैं। वे अभी और यहीं मुक्त हो जाते हैं।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।

प्रयाणकालेऽडप च मां ते डवदुयुमक्तचेतसः ।।३० ।।

बि्ार्थम : साशधभूताशधदैवम् - भौशतक ि्गत् और दैवी ि्गत् का स्वामी, माम् मुझ को, साशधयज्ञम् यज्ञों ंका स्वामी, च-और, ये ि्ो, शवदुः ि्ानते हैं, प्रयाणकाले मृतुयु के समय, अशप-भी, च-और, माम् -मुझे, ते-वे, शवदुः - ि्ानते हैं, युक्चेतसः- युक् शचत्त वाले ।

अनुवाद : ि्ो मुझे अशधभूत, अशधदैव और अशधयज्ञ सशहत ि्ानते हैं अर्ाथत् मुझे भौशतक ि्गत् (भूलोक), द्युलोक (देवलोक) और यज्ञलोक के स्वामी के रूप में ि्ानते हैं, वे युक्शचत्त वाले लोग अन्तकाल में भी मेरा ध्यान प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : वे ि्ो दृढ़ संकल्प वाले हैं, मेरे शरणागत हैं, भूलोक में पंचभूतों ंके शसद्धान्त के ज्ञान रूप मुझे ि्ानते हैं, द्युलोक में दैवी पक्षों ंके ज्ञान रूप मुझे ि्ानते और यज्ञों ंके स्वामी के रूप में मुझे ि्ानते हैं वे मृतुयु को नहीं ंप्राप्त होते। उनका सूमृशत हास नहीं ंहोता। संसार से शवदा होते समय भी उनकी चेतना मुझ में लगी रहती है। इन तीनों ं रूपों ंमें ि्ो मेरी पि्ूा करता है अर्ाथत् संसार से प्रस्र्ान करते समय परमात्मा के सब रूपों ंको ि्ानता है वह मुझे ही ि्ानता है। (इस अध्याय को शवज्ञान योगऔर ज्ञानयोग भी कहते हैं।)

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषतुसु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्ेत्र श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
ज्ञानडवज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७ ।।
।। इडत ज्ञानडवज्ञानयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर्ाष्टमोऽध्यायः
अक्षरब्र्ह्मयोगः

अजुमन उवाच

डकं तद्ब्रह्म डकमध्यिां डकं कमम पुरुषोत्तम ।
अडधभूतं च डकं प्रोक्तमडधदैवं डकमुच्यते ।।१ ।।

बि्ार्थम : शकम् क्या, तत्-वह, ब्र्ह्म-ब्र्ह्म, शकम् क्या, अध्यात्मम् - अध्यात्म, शकम् -क्या, कमथ-कमथ, पुरुषोत्तम-पुरुषश्ेरेष्ठ, अशधभूतम् -अशधभूत, च-और, शकम् -क्या, प्रोक्म् -कहा गया है, अशधदैवम् अशधदैव, शकम् -क्या, उच्यते-कहा गया है।

अजुमन ने कहा

अनुवाद : हे पुरुष श्ेरेष्ठ, ब्र्ह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कमथ क्या है? अशधभूत शकसे कहते हैं और अशधदैव क्या है?

व्याख्या : सातवें अध्याय के अम्भन्तम दो श्लोकों ंमें भगवान् कृष्ण ने अध्यात्म, अशधभूत, अशधदैव और अशधयज्ञ इन गुह्य दाशथशनक शब्दों ंका प्रयोग शकया। अुिथन को इन शवशेष शब्दों ंके अर्थ का ज्ञान नहीं ंहै इसीशलए वह उपरोक् प्रश्नों ंकी अराथशभव्यम्भक् हेतु भगवान् से प्रार्थना करता है। भगवान् कृष्ण उन प्रश्नों ंका क्रम से उत्तर देते हैं।

इस अध्याय को 'अभ्यास योग' भी कहा िाता है क्योंशंक इस अध्याय के श्लोक ७, ८, १०, १२, १३ और १४ आध्याम्भत्मक अभ्यास से सम्बद्ध हैं। श्लोक ७ में कमथ और भम्भक् का समम्भित वणथन है (हार् मानवता और समाि की सेवा में और मन भगवान् की सेवा में समशपथत हो) । आठवां श्लोक अभ्यास योग से सम्बद्ध है। श्लोक १०, १२ और १३ में हठ योग का वणथन है शिसमें यह बताया गया है शक आज्ञाचक्र, सहस्रार और ब्ह्मरन्ध्र में प्राणशम्भक् का ऊध्वाथरोहण कैसे हो । श्लोक १४ में सतत नाम स्मरण रूपी सहि योग का वणथन है। केवल नाम िप से भी आध्याम्भत्मक साधक भगवान् को सहि ही प्राप्त हो सकता है।

ब्ह्म की प्रकृशत, िीवात्मा (अध्यात्म), कमथ की प्रकृशत, भौशतक िगत् की प्रकृशत (अशधभूत), देदीप्यमान् देवों ंका ज्ञान (अशधदैव) और यज्ञ का रहस्य (अशधयज्ञ), इस उपदेश में बताये गये हैं। पूणथ तपस्वी पूणथ ज्ञान प्राप्त करेगा। उसे न केवल इस अशभव्यक् सृशष्ट का ही ज्ञान होगा प्रतुयुत् बुम्भद्ध से परे ब्ह्म का भी ज्ञान होगा और सृशष्ट की रचना क्यों ंहुई, इस का भी उत्तर प्राप्त होगा।

अडधयज्ञः कर्ंथं कोऽत्र दिऽन्द्रस्मन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कर्ंथं ज्ेञेयोऽडस डनयतिाडभः ।।२ ।।

ब्िार्थम : अशधयज्ञः अशधयज्ञ, यज्ञों ंका अशधष्ठाता, कर्म् -कैसे, कः-कौन, अत्र-यहााँ, देहे-शरीर में, अम्भस्मन्-इस (में), मधुसूदन-हे मधुसूदन, प्रयाणकाले-मृतुयु के समय, च-और, कर्म् -कैसे, ज्ेञेयः- िानने योग्य, अशस-हो, शनयतात्मशभः - शितेम्भिय िारा।

अनुवाद : हे मधु संहारक कृष्ण, इस देह में अशधयज्ञ कौन और कैसे है? शितेम्भिय िारा अन्तकाल में आप शकस प्रकार िाने िाते हो ?

व्याख्या : भगवान् से अुिथन ने सात प्रश्न पूछे-

(१) ब्ह्म क्या है? क्या ब्ह्म उपाशध सशहत है अर्वा उपाशध रशहत ? (२) यह इम्भियों ंका समूह है अर्वा प्रत्यक् चैतन्य (Individual Consciousness) है, पृर्क् है अर्वा शुद्ध चैतन्य है ? (३) कमथ क्या है? क्या यज्ञ ही कमथ है? अर्वा, यह यज्ञ से पृर्क् है ? (४) अशधभूत, भूतों ंका ज्ञान है। यह पााँच तत्त्वों ंका ज्ञान है अर्वा कुछ और है? (५) अशधदैव वह है िो देवताओं ंसे सम्बद्ध है। यह देवताओं ंपर ध्यान है अर्वा सूयथ मण्डल आशद से सम्बद्ध चेतना है? (६) अशधयज्ञ वैशदक कमथकाण्ड अर्वा यज्ञों ंसे सम्बद्ध है। यह पर-ब्ह्म (Supreme Being) है अर्वा कोई देव शवशेष है? यह तादात्म्य रूप है अर्वा अभेद है? यह देह के भीतर वास करता है अर्वा बाहर ? यशद यह देह के भीतर ही वास करता है तो यह बुम्भद्ध है अर्वा इससे पृर्क् कुछ और? (७) अन्तकाल में िब सूमृशत-हास हो िाता है, इम्भियााँ अपनी उष्णता खो बैठती हैं अराथत् उनमें िीवन शम्भक् नहीं ंरहती तब एकाग्रशचत्त और संयतेम्भिय भगवान् को कैसे िान सकता है?

हे भगवान् मधुसूदन ! आप दयालु हैं। आपने मधु का वध कर के िनगण के दुःख दूर शकये। अतः आप मेरी कशठनाइयााँ और सन्ेदेह सहि रूप से दूर कर सकते हैं। हे सवथज्ञ भगवन्! आपके शलए तो यह कुछ भी नहीं ं (इस कारण से अुिथन भगवान् कृष्ण को मधुसूदन कह कर पुकार रहा है)।

श्री भगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यिामुच्यते ।
भूतभाविोवकरो डवसगमः कममसंडज्ञतः ।।३ ।।

बिाथम : अक्षरम् - अक्षर (शिसका क्षय न हो), ब्र्ह्म-ब्र्ह्म, परमम् -परम, स्वभावः स्वभाव, अध्यात्मम् -आत्म-ज्ञानं, उच्यते-कहा िाता है, भूतभावोद्भवकरः -प्राशणयों ंकी उत्पशत्त और शवकास का कारण, शवसगथः - आहुशत (देवताओं ं को), कमथसंशज्ञतः-कमथ कहा िाता है।

श्री भगवान् ने कहा

अनुवाद : ब्र्ह्म अक्षर है, परम है। इसकी मूल प्रकृशत को अध्यात्म कहते हैं। प्राशणयों ंके अम्भस्तत्व, अशभव्यम्भक् और शवकास के हेतु देवताओं ंके शनशमत्त शकया गया त्यागरूप यज्ञ कमथ कहलाता है।

व्याख्या : ब्र्ह्म अक्षर है, अनश्वर है, अशवकारी है, सनातन है, स्वयंभू है, स्व-प्रकाशत है, अव्यय और सवथव्यापक है। समस्त पदार्ों का मूल स्रोत और गभथ वही है। अशभव्यक् सभी प्राणी उसी में वास करते हैं, गशत करते हैं और अपना अम्भस्तत्व रखते हैं। इसीशलए वह परम है और अक्षर है।

इसकी मूल प्रकृशत (स्वभाव) अध्यात्म है। ब्र्ह्मन् प्रते्येक व्यशष्ट शरीर में अन्तरात्मा (प्रत्यगात्मा) रूप से शनवशसत है। वही अध्यात्म है। उपशनषद्

काल के एक महान् तपस्वी ऋशष याज्ञवल्क्य ने कहा- "हे गागी! भूलोक और द्युलोक अपने-अपने स्र्ान पर (शनरालम्ब) खडे हैं। ब्राह्मण इस ब्र्ह्म को अक्षर (अशवनाशी) कहते हैं। न तो यह रक् वणथ है न श्वेत । न तो यह छाया है और न ही अन्धकार । न तो वायु है न आकाश। शनराधार, गन्धहीन, अचक्षुष्, अश्रोत्र, अवाक्, अमनस्, अप्रकाश, श्वासरशहत, अमुख, अपररशमत और इसके न भीतर कुछ है और न ही बाहर । न तो यह शकसी का उपभोग करता है और न कोई इसका उपभोग करता है (न तो यह उपभोक्ा है और न ही उपभोज्य) ।" अक्षर तो केवल पर-ब्र्ह्म है।

अक्षर का अशभप्राय यहााँ पावन शब्द ॐ अर्वा अव्यक् से नहीं ंहै। ॐ के शलए लय है। अव्यक् प्रकृशत का भी शवनाश होता है। इसशलए ब्र्ह्म अक्षर है, अनश्वर है, परम पुरुष है। शवराट् रूप है।

शवसगथः समस्त शुभ कमथ।

वह ऋम्भत्वक् कमथ शिसमें देवताओं ंके शलए पकाये हुए भात आशद की आहुशत दी िाती है और िो प्राशणयों ं के उद्भव और शवकास का कारण है, कमथ कहलाता है। यज्ञ में दी गई आहुशतयााँ सूक्ष्म रूप धारण कर के सौर मण्डल में पहुाँचती हैं। सूयथ से वषाथ होती है और शवशभन्न प्रकार के अन्न, वनस्पशतयााँ और फल अंकुररत होते हैं। िीवधारी (भूत) इन भोज्य पदार्ों और धान आशद पर शनभथर रहते हैं और पुष्ट होते हैं। इसशलए यज्ञ सब प्राशणयों ंका उद्भव और आधार है।

अडधभूतं क्षरो भावःपुरुषश्चाडधदैवतम् ।
अडधयज्ञोऽमेवात्र देहेभृतां वर ।।४ ।।

बि्ार्थम : अशधभूतम् - अशधभूत, क्षरः- नश्वर, भावः- प्रकृशत (स्वभाव), पुरुष: िीवात्मा, चऔर, अशधदैवतम्- अशधदैवत, अशधयज्ञः अशधयज्ञ, अहम् मैं, एव-ही, अत्र-यहााँ, देहे—शरीर में, देहभृताम् - देहधाररयों ंमें, वर-श्रेष्ठ ।

अनुवाद : हे नर श्रेष्ठ अिुथन ! अशधभूत (तत्त्वों ंका ज्ञान) मेरी नश्वर प्रकृशत है और पुरुष अर्वा आत्मा अशधदैव है। इस शरीर में केवल मैं ही अशधयज्ञ हााँ।

व्याख्या : अशधभूत नश्वर प्रकृशत । समस्त शवषयों ंसशहत पररवतथनशील पंचभौशतक िगत् अशधभूत हैं-सब भौशतक पदार्थ, प्रत्येक वस्तु शिसका िन्म हुआ है और नाम-रूप का यह पररवतथनशील िगत् अशधभूत ही है।

अशधदैव - 'पुरुष' का शाम्भब्दक अर्थ है- "वह शिससे प्रत्येक वस्तु भर िाती है" (पुर्-भरना) । इसका अशभप्राय यह भी है-"िो शरीर में रहता है" (पुरर शेते इशत पुरुषः) । यह शहरण्यगभथ, समशष्ट-आत्मा अर्वा पोषण कताथ ही है शिससे सब प्राणी शम्भक् ग्रहण करते हैं। यह साक्षी चेतना है।

अशधयज्ञ-चेतना, यज्ञ का अशधष्ठातृ देवता । समस्त यज्ञों ंऔर कमों के स्वामी भगवान् शवष्णु हैं। शवष्णु सब यज्ञों ंसे स्वयं को एकरूप कर लेते हैं। "यज्ञो वै शवष्णुः", यज्ञ ही शवष्णु है, वेद की तैशत्तरीय संशहता में ऐसा कर्न है। भगवान् कृष्ण कहते हैं—"शरीर में समस्त याशज्ञक प्रशक्रयाओं ंका मैं अशधष्ठातृ देव हााँ।" समस्त यज्ञ शरीर िारा होते हैं अतः कह सकते हैं शक वे शरीर में ही वास करते हैं।

अतकाले च मामेव स्मरनुमुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाडत स मिावं याडत नास्त्यत्र संयिः ।।५ ।।

बि्ार्थम : अन्तकाले -मृत्यु के समय, च-और, माम् -मुझे, एव-ही, स्मरन्-स्मरण करता हुआ, मुक्त्वा-त्याग कर, कलेवरम् - शरीर को, यःिो, प्रयाशतिाता है, सः- वह, मद्भावम् - मेरे भाव को, याशत-प्राप्त करता है, नाम्भस्त नहीं ं है, अत्र-यहााँ, संशयः सन्देह ।

अनुवाद : और िो भी व्यम्भक् मृत्यु के समय शरीर त्याग करते हुए केवल मेरा ही स्मरण करता है, वह मेरे ही भाव (स्वरूप) को प्राप्त होता है इसमें कोई सन्देह नहीं।ं

यं यं वाडप स्मरन्भावं त्यजत्यते कलेवरम् ।
तं तमेवैडत कौतेय सदा तिावभाडवतः ।।६ ।।

बि्ार्थम : यम् -शिस, यम्-शिस, वा-अर्वा, अशप-भी, स्मरन् समरण करता हुआ, भावम् -प्रकृशत (शवषय भाव), त्यिशत-त्यागता है, अन्ते-अम्भन्तम समय में, कलेवरम् - शरीर, तम् -उस, एव -ही, एशत-प्राप्त करता है, कौन्तेय हे कौन्तेय, सदा-सदा (सतत), तद्भावभाशवतः उस शवषय का शचन्तन करते हुए।

अनुवाद : हे अिुथन ! शिस-शिस भाव का शचन्तन करते हुए अन्तकाल में मनुष्य शरीर का त्याग करता है वह उसी भाव को प्राप्त होता है क्योंशक वह सदा उसी भाव में भाशवत (संलग्न) रहा है।

व्याख्या : अगले िन्म का शनणथय अम्भन्तम शचन्तन से होता है। िीवन का सवाथशधक समुन्नत शवचार मृत्यु काल में मन को आ घेरता है। और यह महत्वपूणथ शवचार वही होगा शिसने सामान्य िीवन काल में मानव-मन को आकृष्ट शकया हो। अम्भन्तम शवचार से ही पुनिथन्म के नव शरीर की प्रकृशत शनधाथररत होती है। िैसे मनुष्य सोचेगा वैसा ही बनेगा।

पूवथ-अभ्यास िारा सृशित संस्कारों ंकी शम्भक् अन्तकाल में सूमृशत का कारण बनती है। िीवन भर शिन्ोंनें भगवत्-पूिा का अभ्यास शकया है वे ही अन्तकाल में अपने इष्टदेव का स्मरण कर सकते हैं।

भ्रमर-कीट-न्याय की उपमा यहााँ चररतार्थ होती है। कीट सतत भ्रमर का ध्यान करता रहता है और अन्ततः तिूप हो िाता है। इसी प्रकार सतत इष्टदेव का स्मरण करते हुए मनुष्य उस देव से तिूप हो िाता है। नम्भन्दकेश्वर का दृष्टशन्त हमारे समक्ष है। उसने सतत भगवान् का स्मरण करते-करते वही स्वरूप प्राप्त कर शलया।

िीवनकाल में यशद तुम अनवरत रूप से अमर आत्मा का शचन्तन करते रहोगे तो अम्भन्तम समय में केवल आत्मा का शवचार तुम्हारे मन में आयेगा और तुम अमरत्व प्राप्त करोगे। यशद हर समय शरीर का ही शचन्तन करते रहोगे और नश्वर शरीर से एकरूप रहोगे तो पुनः- पुनः िन्म लेना पिेगा । अन्तकाल में यशद श्वान (कुत्ता) का स्मरण करोगे तो वही िन्म लेना पिेगा । रािा भरत ने मृतुयु के समय अपने शप्रय शहरण का शचन्तन शकया, उन्ें शहरण का ही शरीर मृतूयूपरान्त धारण करना पिा।

प्रत्येक मनुष्य का िीवन के प्रशत एक शनशश्चत दृशष्टकोण होता है, शनशश्चत अभीिाएाँ (तृष्णाएाँ), इच्छाएाँ और आशाएाँ होती हैं। उसका एक शनशश्चत चररत्र, स्वभाव, स्वाद, मनोवृशत्त और व्यवहार होता है यह सब उसके अवचेतन मन के संस्कारों ंवश है िो उसके अशभन्न अङ्ग बन चुके हैं। उसके अनुभवों ंकी अशमट छाप का ही यह पररणाम है।

ऐसा मनुष्य सदा अपने शरीर और शारीररक आवश्यकताओं ंका ही शचन्तन करता है। बाह्य नश्वर पदार्ों में वह सुख की खोि करता है। शरीर के सार् वह तादात्म्य स्र्ाशपत कर लेता है। सब पदार्ों के स्रोत अन्तस्तम आनन्दमय शाश्वत आत्मा की तो वह उपेक्षा करता है। भौशतक िगत् की खोि के शलए वह अपने शरीर, इम्भियों,ं मन और बुम्भद्ध को प्रशशशक्षत करता है। वह मन और इम्भियों ंके यौशगक अनुशासन की उपेक्षा करता है। इसशलए वह सदा अपने शरीर, भोिन, पानी और वस्त्र की शचन्ता में लगा रहता है। सुख और ज्ञान के आलोकपुञ्ज भीतर शवद्यमान अपने आत्मा और परमात्मा को वह भूला रहता है।

इच्छाएाँ अनन्त हैं। एक िन्म में उनकी पूशतथ असम्भव है। अन्त समय में संशचत इच्छाओं ंऔर संस्कारों ंके भण्डार का मन्थन होता है। सवाथशधक महत्त्वपूणथ प्रबल और हृदयग्राही इच्छा मानस पटल पर आ िाती है। यह मन्थन की हुई हाशदथक इच्छा तत्काल सनुतुशष्ट हेतु मनुष्य का ध्यान आकृष्ट करती है और मृतुयु के समय वह उसी का शवचार करता है। शिस प्रकार एक िीवन्त आम का पौधा नसथरी में भली प्रकार शवकशसत होता है उसी प्रकार प्रबलतम इच्छा मानस पटल पर अंकुररत हो उठती है। इच्छा पूणथ न होने पर प्रबल रूप से मन पर छा िाती है और अगले िन्म में इसकी पूशतथ होती है। यही इच्छा आगामी िन्म में अत्यशधक प्रबल होगी।

तुम स्वयं ही अपने भाग्य के शवधाता (भाग्य को शलखने वाले) हो। अपने अनुभवों,ं भावों,ं चररत्र और शवचारों ंके शलए तुम स्वयं ही उत्तरदायी हो। तुमने ही अपने अवचेतन मन में सांसाररक इच्छाओं ंऔर संस्कारों ंके बीि बोये हैं और उन्ें अंकुररत और शवकशसत होने का अवसर शदया है। आध्याम्भत्मक संस्कार के यशद तुमने बीि बोये होते हो अमृतत्व और शाश्वत आनन्द की फसल काटते। िैसा बोओगे, वैसा काटोगे।

िीवन भर, आत्मा अर्वा इष्टदेव पर सतत शचन्तन करने वाला मनुष्य अशवचशलत मन से मृतुयु का सामना करेगा। वही अन्त समय में सम्भिदानन्द परमात्मा का ध्यान करता हुआ संसार से शवदा हो कर उस परमात्मा को प्राप्त होगा। ईश्वर के प्रशत अनन्य भम्भक्भाव होना चाशहए। तुम्हारा समग्र शचत्त उसी में लीन हो। स्वार्थ भाव से पूणथ शकसी भी इच्छा को अवचेतन मन में स्र्ान मत दो। तभी मृतुयुकाल में भगवान् का शचन्तन कर सकोगे और उनके भाव को प्राप्त करोगे।

तस्मात्सवेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यडपमतमनोबुन्द्रद्धमामेवैष्यस्यसंयिम् ।।७।।

बि्ार्थम : तस्मात् - इसशलए, सवेषु-सब, कालेषु-कालों ़ामें, माम् मुझे, अनुस्मर स्मरण करो, युध्य-युद्ध करो, च-और, मय्यशपथतमनोबुम्भद्धः मन और बुम्भद्ध मुझ में एकाशग्रत कर के (समशपथत कर के), माम् -मुझे, एव-केवल, एष्यशस आओगे (मुझे प्राप्त करोगे), असंशयम् - शनस्सने्देह ।

अनुवाद : इसशलए समस्त कालों ़ामें मेरा ही स्मरण करो और युद्ध करो । मन और बुम्भद्ध मुझे समशपथत कर के तुम शनस्सने्देह मुझे ही प्राप्त करोगे ।

व्याख्या : अनन्यभाव से मन भगवान् के चरणों ़ामें संलग्न हो। मन और बुम्भद्ध उसमें लगा कर कमथ करो।

युध्य-अपने क्षशत्रय धमथ का पालन करो। इससे हृदय पररमाशिथत होगा, ज्ञान का उदय होगा और तुम मेरे पास आओगे। 'युद्ध' शब्द उपलक्षणा (उपदेशात्मक) भाव में प्रयुक् हुआ है। इसका अशभप्राय है-"अपने वणाथश्रम के अनुसार शनि कतथव्य का पालन करो।" वणाथश्रम धमथ में शवशभन्न वणथ और िीवन की अवस्र्ा के अनुरूप कत्तथव्य और शनत्य-नैशमशत्तक कमथ में अनुष्ठान के शनयमों ़ाका संकेत है। (शववरण-V.13)

ध्यान के शवषय स्वरूप में शचत्त-वृशत्त भावना कहलाती है (मानशसक शनयमन अर्वा रूपान्तरण, शचत्तवृशत्त है)। सगुण उपासना का अभ्यास करने वालों ़ाके शलए भावना है। आत्मशनष्ठ ज्ञानी के शलए प्रयाणकाल (मृतुयु के समय) में भावना अशनवायथ नहीं ़ाहै। (शनरूपण - IX.34; XII.8,11)

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगाडमना ।
परमं पुरुषं डदव्ं यं याडत पार्थामनुडचतयन् ।।८।।

बि्ार्थम : अभ्यासयोगयुक्ेन-(ध्यान के) अभ्यास रूपी योग से युक्, चेतसा-मन से, न -नहीं,़ा अन्यगाशमना-अन्यत्र गशत वाला, परमम् परम, पुरुषम् -पुरुष को, शदव्यम् -शदव्य, याशत प्राप्त होता है, पार्थ हे पार्थ, अनुशचन्तयन् -शचन्तन करता हुआ।

अनुवाद : हे पार्थ, शिसका मन अभ्यास रूपी योग से युक् हो, अन्यत्र न भटकता हो और सदा परमात्मा का शचन्तन करने वाला हो ऐसा मनुष्य उस देदीप्यमान ज्योशतमथय परम पुरुष को प्राप्त होता है।

व्याख्या : अभ्यास-ईश्वर की एक ही शवचारधारा का सतत शचन्तन अभ्यास है। ध्यान के अभ्यास में शविातीय वृशत्तयों ़ा(सांसाररक शवचार अर्वा ध्यान के शवषय से पृर्क् शवचार) का शमन कर के सिातीय वृशत्त प्रवाह होता है अर्ाथत् केवल परमेश्वर के गुणों ़ाकी शवचारधारा प्रवाशहत होती है। यही अभ्यास है। अभ्यास ही योग है। शनशवथकल्प समाशध में इसका उपराम हो िाता है। समाशहत शचत्त वाला योगी परमात्मा को प्राप्त होता है। शिस प्रकार से नशदयाँ अपना नाम और रूप त्याग कर सागर के सार् एकरूप हो िाती हैं उसी प्रकार ज्ञानी अपने नाम और रूप से मुक् हो कर, शुभाशुभ से ऊपर उठ कर परमात्मा के सार् तादात्म्यता प्राप्त कर लेता है।

इस अभ्यास में शनयशमतता अत्यन्त महत्त्वपूणथ तथ्य है। ध्यान में शनयम का पालन करो। अशचरेण लक्ष्य प्राम्भप्त करोगे।

पुरुषं शदव्यम् - देदीप्यमान देहातीत अन्तयाथमी पुरुष ि◌ो सौर मण्डल में शवद्यमान है।

गुरु के आदेशों ◌ंका पालन करते हुए शास्त्र-शवशहत कमथ करते हुए, मन को शवषय-वासनाओं ◌ंसे पराङ्मुख कर के ि◌ो मनुष्य सतत ध्यान का अभ्यास करता है वह परम पुरुष को प्राप्त करता है।

कडवं पुराणमनुिाडसतार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सवमस्य धातारमडचन्त्यरूप-
माडदत्यवणं तमसः परस्तात् ।।९ ।।

बि्ार्थम : कशवम् सवथज्ञ (क्रान्तदशी), पुराणम् -सनातन, अनुशाशसतारम् -शासक (समूपूणथ ि◌गत् का), अणोः - अणु से, अणीयांसम् -सूक्ष्मतर, अनुस्मरेत् -स्मरण करता है, यःि◌ो, सवथस्य-सब का, धातारम् -पालनकताथ को, अशचन्त्यरूपम् -शचन्तन से परे है शिसका स्वरूप, आशदत्यवणथम् -सूयथ की भााँशत प्रकाशमान, तमसः- (अज्ञान रूप) अन्धकार से, परस्तात् - परे ।

अनुवाद : सवथज्ञ, सनातन, शवश्व के शासक, अणु से भी सूक्ष्मतर, सब के पालनकताथ, अशचन्त्य, अज्ञान-अन्धकार से परे सूयथ की भााँशत देदीप्यमान का ि◌ो भी ध्यान करता है-

व्याख्या : कशवम् ज्ञानी, ि◌ष्टा, कशव, सवथज्ञ।

भगवान् ि◌ीवों ◌ंको उनका कमथ-फल प्रदान करता है। वह ि◌गत् का स्वामी है, शासक है, शनयन्ता है।
उसके स्वरूप का ध्यान अतीव दुष्कर कायथ है। वह अपनी ही ज्योशत से ज्योशतत (स्वयं प्रकाश) है। वह सूयथ की भााँशत प्रते्येक वसु्तु को प्रकाशत करता है।

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
धु्रुवोममध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैडत डदव्यम् ।।१० ।।

बि्ार्थम : प्रयाणकाले -मृतुयु के समय, मनसा-मन से, अचलेन-शनश्चल, भक्त्या-भम्भक् भाव से, युक्ः -युक्, योगबलेन-योगबल से, च-और, एव-केवल, धु्रुवोः-दो भौहों ◌ंके, मधे्ये-मध्य में, प्राणम् - प्राण (श्वास), आवेश्य-स्ाशपत कर के, सम्यक्-अच्छी प्रकार, सः- वह, तम्-उस, परम् -परम, पुरुषम् -पुरुष को, उपैशत -पहुाँचता है, शदव्यम् -
शदव्य ।

अनुवाद : अन्तकाल में, शनश्चल मन से, भम्भक्भाव से पूणथ हो कर, योग की शम्भक् से श्वास को दोनों ◌ंभृकुशटयों ◌ंके मध्य म्भस्त कर के ि◌ो प्रयाण करता है वह उस परम शदव्य पुरुष को प्राप्त करता है।

व्याख्या : योगी के पास असीम आन्तररक बल और एकाग्रता की शम्भक् होती है। धारणा और ध्यान के अनवरत
अभ्यास से उसका शचत्त पूणथतया म्भस्र हो ि◌ाता है। पहले वह मूलाधार, स्वाशधष्ठान और मशणपुर चक्रों ◌ंपर ध्यान का
अभ्यास करता है। तत्पश्चात् वह अनाहत चक्र (हृदय कमल) पर ध्यान करता है। तदनन्तर प्राणों ◌ंको सुषुम्ना नाड़ी

से लाकर भ्रूमध्य आज्ञा चक्र पर म्भस्थर करता है। इस योगाभ्यास से वह अनायास ही परम शदव्य पुरुष को प्राप्त होता है।

िीवन भर योग के अभ्यास में समशपथत व्यम्भक् के शलए ही यह सम्भव है।

यदक्षरं वेदडवदो वदन्द्रत
डविन्द्रत यद्यतयो वीतरागाः ।
यडदच्छतो ब्रह्मचयं चरन्द्रत
तत्ते पदं संग्रेण प्रवक्ष्ये ।।११ ।।

बि्ार्थम : यत्-िो, शिस, अक्षरम्-अशवनाशी, वेदशवदः- वेदज्ञ (वेद को िानने वाले), बदम्भन्त-कहते हैं, शवशम्भन्त-प्रवेश करते हैं, यत्-िो, यतयः-संन्यासी (शितेम्भिय), वीतरागाः-अनासक्, यत्-िो, इच्छन्तः - इच्छा करते हुए, ब्रह्मचयथम् ब्रह्मचयथ, चरम्भन्त-अभ्यास करते हैं, तत्-उस, ते तुम्हें, पदम् लक्ष्य को, संग्रहेण-संक्षेप से, प्रवक्ष्ये-कहाँगा।

अनुवाद : मैं उस परम पद को तेरे शलए कहाँगा शिसे वेदों ंके ज्ञाता अशवनाशी कहते हैं, शवरक् और शितेम्भिय संन्यासी शिसमें प्रवेश करते हैं और शिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचयथ का पालन शकया िाता है।

व्याख्या : परम पुरुष प्रतीकात्मक रूप से प्रणव अर्वा पावन एकाक्षर शब्द ॐ से अशभशहत है। यह मनुष्य का परम लक्ष्य अर्वा सविो पद है।

यही शवचारधारा कठोपशनषद् में अशभव्यक् की गई है। यम (मृतुयु के देवता) ने नशचकेता से कहा - "समस्त वेद शिस पद का वणथन करते हैं, समस्त प्रकार के तप शिसकी घोषणा करते हैं और शिसकी कामना करते हुए वे (तपस्वी, यशत) ब्रह्मचयथ का िीवन यापन करते हैं वह पद मैं तुम्हें संक्षेप में कहाँगा। वह है ॐ (ओ३म्)"। शशब के पुत्र सत्यकाम ने शपप्पलाद से प्रश्न शकया- 'हे भगवन्, मनुष्य में यशद कोई िीवन-पयथन्त (मृतुयु के समय तक) ॐ का ध्यान करे तो उसे कौन सा लोक प्राप्त होगा?' शपप्पलाद ने कहा- 'हे सत्यकाम, अक्षर 3 deg ही उिव शनम्न ब्रह्म है। िो मनुष्य उितर पुरुष पर तीन मात्रा वाले अक्षर ॐ (ओ३म्) का ध्यान करता है उसे सामवेद की ऋचायें ब्रह्मलोक में ले िाती हैं।' (प्रश्नोपशनषद्) ।

प्रणव अर्वा ॐ परम पुरुष की अशभव्यम्भक् अर्वा मूतथ रूप (प्रतीक) माना िाता है यह मूढ़ मन्द बुम्भद्ध मनुष्यों ंको भी साक्षात्कार कराने में सहायक है।

ध्यान के प्रारम्भ में तीन बार ॐ का उिारण करो। सहि ही मन एकाग्र होगा।

सवमिाराडण संयम्य मनो हृडद डनरुध्य च ।
मूध्र्यामधायािनः प्राणमान्द्रथर्थतो योगधारणाम् ।।१२ ।।

बि्ार्थम : सवथिाराशण समस्त िार, संयम्य-वश में कर के, मनः-मन, हृशद-हृदय में, शनरुध्य म्भस्थर कर के, च-और, मूशतथ-मस्तक में, आधाय-स्थाशपत कर के, आत्मनः-अपने, प्राणम् -प्राणों ंको, आम्भस्थतः - म्भस्थर कर के, योगधारणाम् - योग धारणा को।

अनुवाद : समस्त िार बन्द कर के, मन को हृदय में शनयुक् कर के और प्राण शम्भक् को मस्तक में म्भस्र कर के धारणा के अभ्यास में संलग्न,

व्याख्या : ज्ञानेम्भियााँ िार हैं। िार बन्द करने का अशभप्राय है- प्रत्याहार के अभ्यास से इम्भियों ंका वशीकरण। इम्भियों ंको उनके शवषयों ंसे हटाना प्रत्याहार है। इम्भियााँ संयत हो भी िायें तो भी मन ऐम्भिक शवषयों ंमें शवचरण करता रहेगा। इसशलए मन को हृदय-कमल में एकाशग्रत (म्भस्र) करना है शिससे सारे शवचार और मनोवृशत्तयााँ शनयम्भन्त्रत हो िायें। अब संपूणथ प्राण को ब्ह्मरन्ध्र में म्भस्र शकया िाता है।

ओडमत्येकाक्षरं ब्रह्म व्यािरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाडत त्यजन्देहं स याडत परमां गडतम् ।।१३।।

बि्ाथम : ॐ -ॐ, इशत-इस प्रकार, एकाक्षरम् - एक अक्षर वाला, ब्ह्म-ब्ह्म, व्याहरन्-उिारण करते हुए, माम् - मुझे, अनुस्मरन् स्मरण करते हुए, यः-िो, प्रयाशत-िाता है, त्यिन्-त्यागते हुए, देहम् - शरीर को, सः वह, याशत- प्राप्त करता है, परमाम् -परम, गशतम् लक्ष्य को।

अनुवाद : ब्ह्म-स्वरूप एकाक्षर ॐ का उिारण करते हुए और मेरा शचन्तन करते हुए िो मनुष्य प्राण-त्याग करता है वह परम पद को प्राप्त करता है।

व्याख्या : योगी अपने शवचारों ंको शनयम्भन्त्रत कर के, हृदय से ऊध्वथगमन करने वाली सुषुम्ना नाड़ी hat H (प्राणों ं का) आरोहण करता है। वह अपने समस्त प्राण ब्ह्मरन्ध्र में म्भस्र कर लेता है। वह पावन एकाक्षर का उिारण करता है, मेरा ध्यान करता है और देह-त्याग कर देता है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरडत डनत्यिः।
तस्यिां सुलभः पार्थम डनत्ययुक्तस्य योडगनः ।।१४ ।।

बि्ाथम : अनन्यचेताः- िब मन शकसी अन्य शवषय का शचन्तन न करे, सततम् शनरन्तर, यः-िो, माम् -मुझे, स्मरशत स्मरण करता है, शनत्यशः-शनत्य, तस्य-उसके (शलए), अहम् -मैं, सुलभः सहि ही प्राप्य, पार्थ-हे पार्थ, शनत्ययुक्स्य-सदायुक्, योशगनः- योगी को।

अनुवाद : हे पार्थ, (शचरकाल तक) अनवरत रूप से शनत्य अनन्यमनस्क (एकाग्रशचत्त) भाव से मेरा शचन्तन करने वाले शनत्य युक् योगी के शलए मैं सुलभ (सहि प्राप्य) हाँ।

व्याख्या : िीवनपयथन्त भगवान् का सतत शचन्तन उनकी प्राम्भप्त का सहि उपाय है।

अनन्यचेताः-शकसी अन्य शवषय की ओर साधक का ध्यान न हो। इष्ट देव के अशतररक् वह अन्य का ध्यान न करे।

शनत्यशः - दीघाथवशध पयथन्त अर्ाथत् िीवनपयथन्त।

िो मनुष्य भगवान् का ध्यान प्रारम्भ कर के बीच में छोड़ देता है, छः मास तक स्मरण करता है शफर अभ्यास छोड़ देता है और इस प्रकार पुनः-पुनः अभ्यास का प्रारम्भ और त्याग करता है वह भगवान् को नहीं ंपा सकता। (शमरूपण-IX.22, 34)

मामुपेत्य पुनजमन्म दुःखालयमिाश्वतम् ।
नापुनुवन्द्रत मिाानः संडसन्द्रंद्ध परमां गताः ।। १५ ।।

बिार्थम : माम् -मुझ को, उपेत्य-प्राप्त कर के, पुनिथन्म पुनः िन्म, दुःखालयम् दुःख का घर, अशाश्वतम् - अशनत्य, न-नहीं, आपुनुवम्भन्त-प्राप्त करते हैं, महात्मानः- महात्मा लोग, संशसम्भद्धम् -शसम्भद्ध को, परमाम् -परम, गताः-पहुाँच कर।

अनुवाद : मुझे प्राप्त होने के उपरान्त महात्मा पुनिथन्म नहीं लेते िो क्षशणक है और दुःख का घर है। वे पूणथत्व को प्राप्त कर लेते हैं।

व्याख्या : िन्म, शरीर से उत्पन्न होने वाले दुःखों का घर है। गमोपशनषद् का अध्ययन करो। शकस प्रकार शशु गभथ में कैद होता है, योशन मागथ में और गभाथशय के मुख में धकेला िाता है। इसके पश्चात् प्रसूशत-वायु से प्रभाशवत होता है िो शशु को िन्म देने में सहायक है।

महात्मा-महान् आत्माएाँ। ये रिस् और तमस् से मुक् होते हैं।

मामुपेत्य-यह क्रम-मुम्भक् का संकेत है। उपासना की शम्भक् से देवयान (मागथ) से िाने वाले ब्र्ह्मलोक (सृशष्टकताथ का लोक) अर्वा सत्यलोक (िो सात लोकों में सविो है) को प्राप्त करते हैं और वहााँ वे दैवी सम्पदा और भगवान् की मशहमा का आनन्द लेते हुए ब्र्ह्म ज्ञान के िारा कैवल्य मोक्ष (अम्भन्तम मोक्ष) को प्राप्त करते हैं और ब्र्ह्माण्ड के प्रलय काल में ब्र्ह्मा का साशन्नध्य प्राप्त करते हैं। मुक् आत्माएाँ पुनिथन्म ग्रहण नहीं करतीं। िो मुझे प्राप्त नहीं करते वे पुनः-पुनः संसार में आते हैं।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावडतमनोऽजुमन ।
मामुपेत्य तु कौतेय पुनजमन्म न डवद्यते ।।१६ ।।

बिार्थम : आब्र्ह्मभुवनात् - ब्र्ह्मलोक पयथन्त, लोकाः- लोक, पुनरावशतथनः पुनरावती (पुनः आने वाले), अिुथन-हे अिुथन, माम् -मुझे, उपेत्य- प्राप्त कर के, तु-लेशकन, कौन्तेय-हे कौन्तेय, पुनिथन्म पुनः िन्म, न-नहीं, शवद्यते-होता ।

अनुवाद : हे अिुथन, ब्र्ह्म लोक सशहत समस्त लोक पुनरावती हैं परन्तु हे कौन्तेय, मुझे प्राप्त होने वाले का पुनिथन्म नहीं होता। व्याख्या : वे भक् िो दहरोपासना (हृदय के गुह्य आकाश में एक

प्रकार की गहन उपासना) का अभ्यास करते हैं और अन्य भक् िो देवयान (देवमागथ) से ब्र्ह्मलोक को पहुाँच कर क्रम-मुम्भक् प्राप्त करते हैं वे इस लोक में पुनः नहीं लौटते ।

शकन्तु िो भक् पञ्चाशग्न शवद्या के अभ्यास से ब्र्ह्मलोक को प्राप्त करेंगे वे ब्र्ह्मलोक में पुण्य कमों का फल भोग कर भूलोक में पुनः अवतररत होंगें। समस्त लोक काल-बद्ध हैं अर्ाथत् काल की सीमा में सीशमत हैं अतः उन लोकों से पुनः नीचे भूलोक पर आना पिता है। (केवल परमात्मा कालातीत है।)

सिस्रयुगपयमतमियमद्ब्रह्मणो डवदुः ।
राडत्रं युगसिस्रातां तेऽिोरात्रडवदो जनाः ।।१७ ।।

बि्र्थम : सहस्रयुगपयथन्तम् -सहस्र युग पयथन्त, अहः-शदन, यत्ि्ो, ब्र्ह्मणः ब्र्ह्म के, शवदुः िानते हैं, राशत्रम् -राशत्र को, युगसहस्रान्ताम् -सहस्र युग में समाप्त होने वाली,ते -वे , अहोरात्रशवदः- राशत्र और शदवस के ज्ञाता है, िनाः लोग ।

अनुवाद : ब्र्ह्मा के एक सहस्र युग वाले शदवस और एक सहस्र युग वाली राशत्र को िो योगी िानते हैं वे ही वसुतुतः शदवस और राशत्र को िानते हैं।

व्याख्या : शदवस का अशभप्राय है-सृशष्ट का उद्भव, प्रसार अर्वा अशभव्यम्भक्। राशत्र का अशभप्राय है सृशष्ट की प्रलय । समस्त लोक काल की अवशध में आबद्ध हैं, सीशमत हैं। अतः वे पुनः लौटते हैं। ब्र्ह्म लोक भी अशनत्य है यद्यशप इसकी अवशध सहस्र युग है। िब चार महान् युग एक सहस्र बार व्यतीत होते हैं तो यह ब्र्ह्मा का एक शदवस कहलाता है और िब इतने ही युग अर्ाथत् चार महान युग एक सहस्र बार पुनः व्यतीत होते हैं तो यह ब्र्ह्मा की एक राशत्र कही िाती है। िो इस शदवस और राशत्र पयथन्त रह सकते हैं और इसके िष्टश बन सकते हैं वे ही शदवस और राशत्र का ज्ञान रखते हैं।

सूयथ शसद्धान्त इसी काल-शवभाग का शनरूपण करता है।

इस शसद्धान्त के अनुसार-

कशलयुग (संध्या और संध्यांश सशहत)	४,३२,००० वषथ
िापर युग.	८,६४,००० वषथ
त्ेरेतायुग.	१२,९६,००० वषथ
कृतयुग.	१७,२८,००० वषथ
इस प्रकार एक महायुग चार युगों ं	
के समनुरूप है	४३,२०,००० वषथ
सांध्य योग सशहत ७१ ऐसे महायुगों ंसे १७,२८,००० वषों के अन्त में एक मन्वन्तर बनता है शिसकी अवशध है	३०,८४,४८,००० वषथ
एक और संध्या सशहत १४ ऐसे मन्वन्तरों ं के योग से १७,२८,००० वषों के अन्त में एक कल्प बनता है। उसकी अवशध है.	४,३२,००,००,००० वषथ
दो कल्प से ब्र्ह्मा का एक शदवस और	

राशत्र बनते हैं। अवशध है ८,६४,००,००,००० वषथ

३६० ऐसे शदन और रात से ब्र्ह्मा का
एक वषथ बनता है शिसकी अवशध है. ३१,१०,४०,००,००,००० वषथ

१०० ऐसे वषथ ब्र्ह्मा का िीवन काल हैं
शिसकी अवशध है ३१,१०,४०,००,००,००,००० वषथ

सृशष्ट की प्रलय के समय शवश्व अव्यक् अर्वा मूल प्रकृशत में लीन हो िाता है। शिस प्रकार एक वृक्ष बीि में अव्यक्तावस्र्ा में शछपा रहता है उसी प्रकार प्रलय काल में समूपूणथ ब्र्ह्माण्ड मूल प्रकृशत में बीि रूप से अव्यक्तावस्र्ा में रहता है। यह ब्र्ह्मा की राशत्र है। यह ब्र्ह्माण्डीय राशत्र है।

पुनः महाकल्प (उत्पशत्त) के समय सृशष्ट का शवस्तार होता है। ब्र्ह्माण्डीय शदवस का यह उषाकाल है। वैशश्वक शदवस के लय-शवलय का क्रम इस बृहत् ब्र्ह्माण्ड में चलता रहता है।

इस ब्र्ह्माण्डीय शदवस और राशत्र रूपी शनत्यवती (शनत्य घूमने वाले) चक्र में आने वाली कोई भी वसुतु शनत्य रहने वाली नहीं है। इसी कारण से उपशनषदों के िष्टा (ऋशष), पुरातन ऋशषयों ने इस वैशश्वक अहोरात्र से परे अलौशकक परम पुरुष में वास शकया िो अमर आत्मा है, अशनवथचनीय पुरुष है, िीवन का परम लक्ष्य है, मनुष्य का सवो ध्येय (अवसान) है। दग्ध बीि शिस प्रकार अंकुररत नहीं होते उसी प्रकार शिन्होंने उस शाश्वत, अशवनाशी परम ब्र्ह्म को प्राप्त कर शलया है वे दुःख, कष्ट और पीड़ा से भरे इस संसार में पुनः नहीं लौटते। उन्हें न तो शदवस का ध्यान है और न ही राशत्र का। वे सच्चिदानन्द स्वरूप के सार् एक हो गए हैं।

व्यक् और अव्यक् दोनों का वास ब्र्ह्म में है। ब्र्ह्म इन दोनों से अतीत है। िब संसार और शरीर नष्ट हो िाते हैं तब भी ब्र्ह्म की सत्ता शवद्यमान रहती है। सागर में लहरें उठती हैं और शान्त हो िाती हैं शकनुतु सागर अप्रभाशवत रहता है। इसी प्रकार सृशष्टयाँ बनती हैं और नष्ट होती हैं शकनुतु सब वसुतुओं का और मूल प्रकृशत का स्रोत ब्र्ह्म अप्रभाशवत रहता है।

स्वणथ आभूषण िैसे स्वणथ से बनते हैं और शपघलाने पर स्वणथ में लीन हो िाते हैं इसी भाँशत सभी लोकों का ब्र्ह्म से उद्भव होता है और ब्र्ह्म में ही लय होता है। कुण्डल, कंगन, नूपुर (पायल) आशद शवशभन्न स्वरूपों से स्वणथ प्रभाशवत नहीं होता । इसी प्रकार सृशष्ट के लय-शवलय से और शरीरों के शवनाश से ब्र्ह्म प्रभाशवत नहीं होता। वह सदा एक रस रहता है।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सवामः प्रभवन्त्यिरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ।।१८ ।।

शब्दार्थ : अव्यक्तात् अव्यक् से, व्यक्यः व्यक्, सवाथः-सब, प्रभवम्भन्त-उत्पन्न होते हैं, अहरागमे - शदवस के प्रारम्भ में, रात्र्यागमे-राशत्र आने पर, प्रलीयन्ते-लीन हो िाते हैं, तत्र-वहाँ, एव-ही, अव्यक्संज्ञके-अव्यक् में।

अनुवाद : शदवस के प्रारम्भ में अव्यक् से व्यक् सृशष्ट का उद्भव होता है और राशत्र होने पर समस्त सृशष्ट शनशश्चत रूप से केवल उसी में लीन हो िाती है शिसे अव्यक् की संज्ञा दी गई है।

व्याख्या : ब्र्ह्माण्डीय शदवस के प्रारम्भ में ब्र्ह्मा के िागने पर समस्त चराचर िगत् (िड़ और चेतन), अव्यक् से उत्पन्न होते हैं। ब्र्ह्माण्डीय राशत्रकाल में िब ब्र्ह्मा सोते हैं तब सभी अशभव्यक् सृशष्ट अव्यक् में शवलीन हो िाती है।

अहरागमः-सृशष्ट का प्रारम्भ

रात्र्यागमः - प्रलय का प्रारम्भ - (शनरूपण -IX.7,8)

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽविः पार्थम प्रभवत्यिरागमे ।।१९ ।।

बि्र्थम : भूतग्रामः -प्राणी समुदाय, सः- वह, एव-शनशश्चत रूप से, अयम् -यह, भूत्वा भूत्वा पुनः-पुनः िन्म ले कर, प्रलीयते-शवलीन हो िाता है, रात्र्यागमे-राशत्र आने पर, अवशः-असहाय, पार्थ-हे पार्थ, प्रभवशत उत्पन्न होता है, अहरागमे-प्रातः होने पर (शदवस के प्रारम्भ में)।

अनुवाद : हे अिुथन, वही प्राणी समुदाय परवश हुआ बारम्बार िन्म लेकर (अव्यक् में) ब्र्ह्मा की राशत्र के प्रारम्भकाल में शवलीन हो िाता है और शदवस के प्रारम्भ काल में पुनः उत्पन्न होता है।

व्याख्या : अशवद्या (अज्ञान), काम (इच्छा) और कमथ की ये तीन ग्रंशयाँ मनुष्य को संसार के बन्धन में िालने वाली हैं। इच्छा अज्ञान से उत्पन्न होती है। अभीम्भित (इम्भच्छत) पदार्ों को प्राप्त करने के शलए और उनका उपभोग करने के शलए मानव संघषथ करता है। इस शक्रया-कलाप में रागिेष, प्रेेम-घृणा और आकषथण-शवकषथण के वशीभूत हो कर वह शकसी का तो अनुमोदन करता है और शकसी को चोट पहुँचाता है। अतः वह आवागमन के चक्र में फंस िाता है। अपने ही कमों का फल भोगने के शलए उसे पुनः पुनः िन्म लेना पिता है। शनि कमों के बल से ही वह पुनः पुनः आतािाता रहता है।

अज्ञान, काम और कमथ के बन्धन में आ कर व्यशष्ट आत्माओं ने स्वतन्त्रता खो दी है। इसशलए उन्हें इस संसार के कष्ट भोगने पिते हैं। उनके मन में अनासम्भक् उत्पन्न करने के शलए और उनके हृदय में मोक्ष की इच्छा उत्पन्न करने के शलए तर्ा यह अन्धशवश्वास शमटाने के शलए शक मनुष्य अपने कमों का फल नहीं भोगता अर्वा यह सोचना शक िो कमथ उसने नहीं शकया उसका फल भोगता है-भगवान् ने कहा है शक सभी िीव पर वश हुए शदवस के प्रारम्भ में बारम्बार िन्म लेते हैं और राशत्रकाल प्रारम्भ होने पर प्रलय में शवलीन हो िाते हैं। इन सब का कारण है अज्ञान वश इच्छा का उद्भव और इच्छापूशतथ हेतु कमथ करना और शफर पररणाम भोगना ।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सवेषु भूतेषु नश्यत्सु न डवनश्यडत ।। २० ।।

बि्र्थम : परः-उच्च्चतर, तस्मात् - उस से, तु-लेशकन, अन्यः-अन्य, अव्यक्ः - अव्यक्, अव्यक्ात् - अव्यक् से, भावः सत्ता, सनातनः -शाश्वत, यःिो, सः-वह, सवेषु सब (में), भूतेषु-प्राशणयों में, नश्यत्सु नष्ट हुए, न-नहीं, शवनश्यशत नष्ट होता।

अनुवाद : परन्तु शनशश्चत रूप से इस अव्यक् से भी परे एक और उत्तर अव्यक् की सत्ता है िो शाश्वत है, सनातन है और सब िीवों के नष्ट होने पर भी वह नष्ट नहीं होती।

व्याख्या : अव्यक् का अन्य अम्भस्तत्व सनातन, शाश्वत पर ब्र्ह्म का है िो मूल प्रकृशत अर्वा अव्यक् से पृर्क् है। उसकी प्रकृशत सवथर्ा शभन्न है। वह शहरण्यगभथ से श्रेष्ठतर है िो वैशश्वक सृिनात्मक प्रज्ञा है। मूल प्रकृशत (अव्यक्) का कारण होने से वह इससे भी अशत परे है। ब्र्ह्मा से लेकर चींटी और घास के शतनके पयथन्त िब समस्त सृशष्ट का संहार होता है तब भी वह नष्ट नहीं ंहोता। (शनरूपण -XV.17)

अव्यक्तोऽक्षर इतुयुक्तस्तमाहः परमां गडतम् ।
यं प्राप्य न डनवतमते तद्धाम परमं मम ।।२१ ।।

बि्ार्थम : अव्यक्ः- अव्यक्, अक्षरः- अनश्वर, इशत-इस प्रकार, उक्ः-कहा गया, तम् - उसे, आहुः-कहते हैं, परमाम् -परम, गशतम् - लक्ष्य, यम् िो, प्राप्य-प्राप्त कर के, न-नहीं,ं शनवतथने्ते-लौटते, तत्-वह, धाम- स्र्ान, परमम् सविो, मम-मेरा ।

अनुवाद : िो अव्यक् और "अक्षर" नाम से अशभशहत है वही सविो लक्ष्य कहा गया है। िो इसे प्राप्त कर लेते हैं वे पुनः इस संसार में नहीं ंलौटते । वही मेरा परम धाम है।

व्याख्या : परब्र्ह्म को अव्यक् कहते हैं क्योंशंक वह इम्भियों ंिारा दृशष्टगोचर (अनुभवगम्य) नहीं ंहै। इसे अशवनाशी भी कहा िाता है। यह सवथव्यापक, सवथपारगम्य और अन्तव्याथप्त है। परब्र्ह्म सविो लक्ष्य है। इससे उिर अन्य शंकंशचदशप (कुछ भी) नहीं।ं यह समस्त प्रकार के सीशमत अनुबन्धों ंअर्वा अताम्भत्त्वक गुणों ंसे मुक् शुद्ध अिैत-अवस्र्ा है। ब्र्ह्मलोक की प्राम्भप्त भी इससे गौण है। केवल आत्म-साक्षात्कार िारा ही मनुष्य संसार से मुक् हो सकता है। (शनरूपण –XII.3.XV.6.)

पुरुषः स परः पार्थम भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यातः थर्थाडन भूताडन येन सवमडमदं ततम् ।।२२ ।।

बि्ार्थम : पुरुषः पुरुष, सः- वह, परः- परम, पार्थ-हे पार्थ, भक्त्या-भम्भक् भाव से, लभ्यः- प्राप्त करने योग्य, तु-शनःसने्देह, अनन्यया-अनन्य, यस्य-शिसके, अन्तः स्र्ाशन-भीतर शनवशसत, भूताशन-प्राणी, येन-शिसके िारा, सवथम् सब, इदम् यह, ततम् व्याप्त है।

अनुवाद : हे अिुथन, शिस परम पुरुष परमात्मा के िारा यह समूपूणथ शवश्व व्याप्त है और समस्त प्राणी शिस परम पुरुष में अन्तव्याथप्त हैं वह केवल अनन्य भम्भक् भाव से ही प्राप्य है।

व्याख्या : समस्त प्राणी (कायथ िगत्) पुरुष में वास करते हैं िो कारण स्वरूप हैं क्योंशंक प्रत्येक कायथ अपने कारण में ही शवद्यमान रहता है। शिस प्रकार से एक शमट्टी का पात्र (िो कायथ रूप में है), अपने कारण शमट्टी में रहता है उसी प्रकार सब प्राणी और समस्त लोक अपने कारण रूप पुरुष में अशधशष्ठत हैं।

शंकराचायथ के अनुसार अनन्य भम्भक्, ज्ञान अर्वा आत्मा के ज्ञान के शलए अशभशहत है।

'पुरुष' इसशलए कहा िाता है क्योंशंक प्रत्येक वसुतु इससे व्याप्त हो िाती है। पुरुष शब्द पुर् धातु से बना है शिसका अर्थ है भरना। पुरर शेते इशत पुरुषः अर्ाथत् िो सब शरीरों ंमें शयन करता है।

इससे बढ़कर अन्य कुछ नहीं,ं अतः परम पुरुष कहा िाता है। (शनरूपण - IX.4; XI.38; XV.6,7)

यत्र काले त्वनावृडत्तमावृडतं्तं चैव योडगनः ।
प्रयाता यान्द्रत तं कालं वक्ष्याडम भरतषमभ ।। २३ ।।

बि्ार्थम : यत्र्–हााँ, काले-समय में, तु-शनशश्चत रूप से, अनावृशत्तम् -पुनः न लौटना, आवृशत्तम् लौटना, च-और, एव -भी, योशगनः- योगी, प्रयाताः-त्यागते हुए, याम्भन्त िाते हैं, तम् उस, कालम् समय को, वक्ष्याशम कहाँगा, भरतषथभ-हे भरत श्ेरेष्ठ ।

अनुवाद : हे भरतश्ेरेष्ठ, अब मैं काल की उस गशत के शवषय में कहाँगा शिसमें देह त्यागने पर योगी िन पुनः इस भौशतक िगत् में नहीं ंलौटते और उस गशत का भी वणथन करूाँगा शिसमें शरीर त्यागने पर उनें् पुनः लौटना पि़ता है।

व्याख्या : शिस समय हे भरतश्ेरेष्ठ, शरीर त्यागने पर योगी का पुनिथन्म नहीं ंहोता और शिस काल में त्यागने पर पुनिथन्म होता है, इन दोनों ंकालों ंका उपदेश करूाँगा।

आवृशत्त का अर्थ है पुनः िन्म लेना ।

अडग्नज्योडतररः िुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्द्रत ब्रह्म ब्रह्मडवदो जनाः ।।२४ ।।

बि्ार्थम : अशग्नः-अशग्न, ज्योशतः-प्रकाश, अहः-शदवस, शुक्लः- शुक्ल पक्ष, षण्मासाः-छः मास, उत्तरायणम्-उतरायण (सूयथ का उत्तरी पर्), तत्र- वहााँ, प्रयाताः- ले िाये गये, गच्छम्भन्त–िाते हैं, ब्र्ह्म-ब्र्ह्म को, ब्र्ह्मशवदः- ब्र्ह्मज्ञानी, िनाः लोग।

अनुवाद : अशग्न, प्रकाश, शदवस, शुक्ल पक्ष, उत्तरायण में िब सूयथ की गशत हो-इस काल में प्रयाण करने वाले ब्र्ह्मवेत्ता ब्र्ह्म को ही प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : यह उत्तर मागथ अर्वा देवयान है िो प्रकाश का पर् है। इस पर् से िाने वाले योगी ब्र्ह्म को प्राप्त होते हैं। यह पर् मोक्ष प्रदायक है। यह योगी को ब्र्ह्म लोक ले िाता है। उत्तरायण के छः मास िनवरी के मध्य से ले कर िुलाई के मध्य काल तक हैं। मृतुयु के शलए यह श्ेरेष्ठ समय कहा िाता है। छान्दोग्योपशनषद्, कौशषतकी उपशनषद् और ब्र्ह्मसूत्र अध्याय IV.3.4. ii. 18 और 21 में इसका शवसूतृत वणथन है।

"सुशवज्ञात होने के कारण प्रकाश पर् से, प्रयाण करने वाला आत्मा क्रमशः आगे बढ़ता है।"

"देवयान पर पहुाँचने के उपरान्त वह अशग्न के अशधष्ठातृ देव के लोक को, वायु देव के लोक को, वरुण देव के लोक को, इि(देवों ंका रािा) के

लोक को, प्रिापशत (सृशष्टकताथ) के लोक को होते हुए ब्र्ह्म लोक को प्राप्त होता है ।"

"वे ज्योशतपथर् से िाते हैं, ज्योशत से शदवस, शदवस से शुक्ल पक्ष, चि के शुक्ल पक्ष से छः मास िब सूयथ उत्तरायण में होता है, उन मासों ंसे संवत्सर और संवत्सर से सूयथ को प्राप्त होते हैं।"

"मनुष्य इस लोक को त्यागने के पश्चात् वायु लोक में आता है। चक्र में शछि की भााँशत वायु देव उसके शलए स्ान बनाता है और उसी शछि से वह ऊध्वाथरोहण करता हुआ सूयथ के पास आता है।"

“चिमा से प्रकाश (शवद्युत), वहााँ से कोई अमानव उसे ब्ह्म की ओर अग्रसर करता है।"

काल का वणथन यहााँ मागथ अर्वा मागथ की अवस्ा का संकेत करता है। अशग्न और प्रकाश (ज्योशत) काल के अशभमानी देवता हैं। शदन का अशभमानी देवता शदवसकाल है। शुक्लपक्ष का अपना अशधष्ठाता देव है। उत्तरायण के छः मास का अशधष्ठातृ देवता वही है िो उत्तर मागथ का अशधष्ठाता है। यह प्रकाश पर् है िो मोक्ष की ओर ले िाता है।

आत्मज्ञान प्राप्त मुक्ात्माओं ंके श्वास प्रयाण नहीं ंकरते, ब्ह्मलीन होते हैं। िीवनु्मक्, शिसने कैवल्य मोक्ष प्राप्त कर शलया है, सद्यः मुम्भक् अर्वा मोक्ष प्राप्त कर शलया है उन्ें कहीं ंिाना नहीं ंऔर कहीं ंसे लौटना नहीं।ं वे सवथव्यापक परमात्मा के सार् एक रूप हो िाते हैं।

प्रते्येक चरण (सोपान) एक नवीन चेतना के धरातल पर ले िाए, शुद्धता के स्तर में बढ़े और प्रकाशमय हो । शितनी अशधक शुद्धता होगी उतनी ही अशधक शदव्य ज्योशत प्राप्त होगी। इस समूपूणथ पर् पर ज्योशतमथय देदीप्यमान् शवषय हैं। इस पर् से िाने पर ज्ञान का प्रकाश ही दृशष्टगत होता है अर्ाथत् प्रकाश की ही अनुभूशत होती है। इसीशलए यह प्रकाश-पर् कहा िाता है।

घायल होने पर भी भीष्म शपतामह शरशय्या पर पड़े रहे और उत्तरायण के आने पर शरीर त्याग कर ब्ह्म लोक पहुाँचे ।

धूमो राडत्रस्तर्था कृष्णः षण्मासा दडक्षणायनम् ।
तत्र चािमसं ज्योडतयोगी प्राप्य डनवतमते ।। २५ ।।

शब्दार्थ : धूमः- धूम (धुआाँ), राशत्रः राशत्र, तर्ा तर्ा, कृष्णः-कृष्णा (कृष्ण पक्ष), षण्मासाः-छः मास, दशक्षणायनम् - सूयथ का दशक्षण पर्, तन्त्र-वहााँ, चािमसम् चि, ज्योशतः प्रकाश, योगी-योगी, प्राप्य-प्राप्त करके, शनवतथते-लौटता है।

अनुवाद : शिस मागथ में धूम, राशत्रकाल, कृष्णपक्ष और दशक्षणायन के छः मास (िब सूयथ दशक्षण पर् पर हो) हैं-इन मागों से होता हुआ चि ज्योशत को प्राप्त कर के योगी वाशपस लौटता है।

व्याख्या : यह शपतृयान, अन्धकारमय पर् अर्वा शपतरों ंके लोक को ले िाने वाला मागथ है और िहााँ से पुनिथन्म लेना पड़ता है। फल की कामना से देवताओं ंके शलए यज्ञाशद एवम् अन्य दान कमथ करने वाले इसी पर् से चिलोक को िाते हैं और पुण्य क्षीण होने पर इस भूलोक में पुनः अवतररत होते हैं। धूम, राशत्रकाल, कृष्णपक्ष, और दशक्षणायन के छः मास, सब देव हैं शिन्ें अशधष्ठातृ देवता कहा िाता है। वे अज्ञान, आसम्भक् और मोह के प्रतीक हैं। पूणथ पर् में धूम और कृष्ण वणथ के पदार्थ हैं। इस पर् से िाने पर प्रकाश नहीं ंशदखता। अज्ञानवश इस पर् से िाते हैं इसीशलए इसे धूममागथ अर्वा अन्धकारमय पर् कहा िाता है।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः िाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृडत्तमन्ययाऽऽवतमते पुनः ।।२६ ।।

बि्ार्थम : शुक्लकृषेृणे-शुक्ल (प्रकाश) और कृष्ण (अन्धकार), गती-(दो) पर्, शह-शनस्सने्देह, एते-ये, िगतः - िगत् के, शाश्वते - शाश्वत, मते-माने िाते हैं, एकया-एक से, याशत - (वह) िाता है, अनावृशत्तम् - वापस न आने के शलए, अन्यया-दूसरे के िारा, आवतथते - (वह) लौटता है, पुनः पुनः ।

अनुवाद : संसार के शुक्ल और कृष्ण पर् शनशश्चत रूप से शाश्वत है। शुक्ल पर् से िाकर लौटना नहीं ंप़िता बिशक कृष्ण पर् से िा कर मनुष्य को पुनिथन्म लेना प़िता है।

व्याख्या : शुक्ल पर् देव मागथ है शिसका अनुसरण भक्गण करते हैं और कृष्ण पर् शपतृ मागथ है शिस पर फल की इच्छा से यज्ञ दानाशद शक्रयायें करने वाले मनुष्य अनुगमन करते हैं। ये दोनों ंमागथ समूपूणथ शवश्व के शलए नहीं ंहैं। शुक्ल पर् (देवयान) भक्ों ंके शलए और कृष्ण पर् (शपतृयान) अनुष्ठानों ंमें आस्ा रखने वालों ंके शलए है। ये दोनों ं पर् इतने ही शाश्वत हैं शितनी यह सृशष्ट । "िगतः" का अशभप्राय यज्ञाशद शक्रयाओं ंमें आस्ा रखने वाले भक्ों ंसे है। शपतृलोक अर्वा चिलोक स्वगथलोक है।

नैते सृती पार्थम जानन्योगी मुह्यडत कश्चन ।
तस्मात्सवेषु कालेषु योगयुक्तो भवाजुमन ।।२७ ।।

बि्ार्थम : न नहीं,ं एते-ये, सृती-दो पर्, पार्थ-हे पार्थ, िानन्–ानते हुए, योगी-योगी, मुह्यशत-मोशहत होता है, कश्चन-कोई, तस्मात् -इसशलए, सवेषु सब, कालेषु-कालों ंमें, योगयुक्ः - योग परायण, भव-बनो, अिुथन-हे अिुथन ।

अनुवाद : हे अिुथन, इन दोनों ंमागों का ज्ञान होने पर योगी मोशहत नहीं ंहोता, इसशलए, हे पार्थ, तुम सब कालों ंमें योग युक् रहो अर्ाथत् योगी बनो ।

व्याख्या : दोनों ंमागों की प्रकृशत और उनके पररणाम िानते हुए योगी शववेकशून्य नहीं ंहोता। यह ज्ञान हो िाने पर शक देवयान अर्वा प्रकाश-पर् मोक्ष (क्रम मुम्भक्) प्रदायक है और शपतृयान अर्वा अन्धकार पर् आवागमन (िन्म-मृतृयु) के चक्र में घुमाने वाला है, योगी मोशहत नहीं ंहोता। इन दोनों ंमागों का ज्ञान प्रशतक्षण योगी के शलए संकेत-दीप (पर्-प्रदशथक) का कायथ करता है। वह प्रकाश-पर् पर अशिग बने रहने की आकाङ्क्षा रखता है।

वेदेषु यजे्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्र्फलं प्रडदष्टम् ।
अते्येडत तत्सवमडमदं डवडदत्वा
योगी परं थर्थानमुपैडत चाद्यम् ।।२८ ।।

बि्ार्थम : वेदेषु वेदों ंमें, यजे्ञेषु यज्ञों ंमें, तपःसु-तपों ंमें, च-और, एव-भी, दानेषु उपहारों ंमें, यत्–ो भी, पुण्यफलम् -पुण्यफल, प्रशदष्टम् -घोशषत शकया गया है, अते्येशत-परे चला िाता है, तत्-उस, सवथम् -सब, इदम् -यह, शवशदत्वा-िानि कर, योगी-योगी, परम् -परम, स्ानम् धाम को, उपैशत -प्राप्त करता है, च और, आद्यम् सनातन ।

अनुवाद : इस तत्त्व को िान कर योगी वेदाध्ययन, यज्ञाशद अनुष्ठान, तप और दान से प्राप्त होने वाले शास्त्र-शवशहत पुण्य फल से परे (ऊपर) चला िाता है और परम सनातन पद को प्राप्त करता है।

व्याख्या : इस श्लोक में योग की मशहमा वशणथत है। वेदों ंके अध्ययन से, समुशचत रूप से शकये गये अनुष्ठान के अभ्यास से, तप करने से प्राप्त होने वाले िो–ो भी शास्त्रों ंके अनुसार (शास्त्र-शनशदथष्ट) पुण्य फल हैं-ब्र्ह्मशनष्ठ योगी िो भगवान् कृष्ण के िारा अिुथन को शदये गये सात प्रश्नों ंके उत्तर में उपदेश हैं, उनका अनुसरण करता है वह इन

समस्त (पुण्य फल आशद) से अतीत है। वह पर ब्र्ह्म के सनातन परम धाम को प्राप्त करता है शिसका अम्भस्तत्व सृशष्ट के आशद काल में भी रा्।

इदं शवशदत्वा-यह िान कर । इस अध्याय के प्रारम्भ में अिुथन िारा पूछे गये सात प्रश्नों ंके उत्तर रूप शदये गये भगवान् कृष्ण के उपदेश को भली प्रकार िान कर ।

(इस अध्याय को अभ्यास-योग भी कहा िाता है।)

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषत्सु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ।।८ ।।
।। इडत अक्षरब्रह्मयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर् नवमोऽध्यायः

राशवद्याराराुह्ययोगः

श्री भगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं शवज्ञानसशहतं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।।१ ।।

बि्ार्थम : इदम् - यह, तु-शनशश्चत रूप से, ते-तुम्हारे शलए, गुह्यतमम् -परम गोपनीय, प्रवक्ष्याशम कहाँगा, अनसूयवे-दोष रशहत, ज्ञानम् - ज्ञान, शवज्ञानसशहतम् शवशेष ज्ञान सशहत (अनुभव सशहत), यत्-ि◌ो, ज्ञात्वा-ि◌ान कर, मोक्ष्यसे-मुक् हो ि◌ाओगे, अशुभात् -अशुभ से ।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : (हे अि◌ुथन), तुम दोष रशहत हो अतः अब मैं तुम्हारे शलए आत्म ज्ञान के अनुभव सशहत परम-गोपनीय (रहस्यमय) ज्ञान का उपदेश करूँगा। इस ज्ञान को प्राप्त कर के तुम अशुभ से मुक् हो ि◌ाओगे।

व्याख्या : इदम् यह, अर्ाथत् आत्म ज्ञान

ज्ञान-उपशनषदों ◌ंके अध्ययन ि◌ारा प्राप्त ब्र्ह्म का सैद्धाम्भन्तक ज्ञान अर्वा परोक्ष ब्र्ह्म ज्ञान ।

शवज्ञान-आत्म साक्षात्कार अर्वा अपरोक्ष ब्र्ह्म ज्ञान । संसार के बन्धन से मुम्भक्, आवागमन से मुम्भक् और अशुभ अर्ाथत् संसार के दुःखों ◌ंसे छुटकारा पाने का केवल यही सहि उपाय है।

आत्म ज्ञान परम गोपनीय है। शब्दों ◌ंमें इसका वणथन करना अत्यन्त कशठन है। अपरोक्षानुभूशत अर्वा आध्याम्भत्मक अन्तप्रथज्ञा से ही यह ज्ञान सम्भव है। आत्मा, ब्र्ह्म, आत्म ज्योशत, सनातन परम पुरुष मनुष्य के हृदय प्रकोष्ठ में सदैव शवराशित रहता है। युगों ◌ंयुगों ◌ंसे आध्याम्भत्मक पर् पर अनुगमन करने वाले मनुष्य अल्पता में ही रहे हैं शिन्ोंनें आत्मा के अमोघ मोती रूप आध्याम्भत्मक कोष के इस रहस्य को ि◌ाना। मोक्ष प्राम्भप्त हेतु आत्म ज्ञान ही सरल साधन है। कमथयोग हृदय को पररमाशिथत कर के आत्म ज्ञान की ओर अग्रसर करता है।

भगवान् कृष्ण कहते हैं-"हे अि◌ुथन, क्योंशंक तुम ईष्याथ-ि◌ेष से मुक् हो, मैं तुम्हारे शलए अनुभवगत दुबोध रहस्यात्मक ज्ञान का उपदेश करूँगा"। इससे यह स्पष्ट है शक साधक के शलए अनसूय होना एक महान् गुण है। प्रचंि हृदय-दहन (ि◌लन) उत्पन्न करने वाली और मन को अन्य मनस्क (उशिग्न) करने वाली ईष्याथ से मुक् मानस में ही ज्ञान का सूयथ उशदत हो सकता है। मत्सयथ (दुभाथव पूणथ ईष्याथ), ईष्याथ (दूसरों ◌ंके सुख-सम्पशत्त से ईष्याथ), असूया (दूसरों ◌ंके गुणों ◌ंसे ईष्याथ) ये सब ईष्याथ के शवशभन्न प्रकार हैं। यशद तुम एक गुणी व्यम्भक् पर दुगुथणों ◌ंका आरोपण करो ि◌ो वास्तव में इन सब से पृर्क् है और तुम उसके शलए कुछ बुरा कहते हो तो यह असूया है। शछिोषण की दृशष्ट से शकसी भले और गुणी व्यम्भक् को देखना, ि◌ो वसुतुतः इन बुराइयों ◌ंसे मुक् है, असूया है। ईष्याथ (असूया) तो मात्र मन की लघुता को दशाथती है। यह अज्ञान का पररवशतथत रूप है। आत्म परप्रश्न ि◌ारा इसे दूर शकया ि◌ा सकता है अर्वा हृदय की शवशालता, महानता, उदार-सावथभौशमकता और श्रेष्ठता आशद शवपरीत गुणों ◌ंके शवकास से असूया मुक् हो सकते हैं।

अनसूयवे-इसका अशभप्राय है शक अिुथन एक गुणी शशष्य के समस्त गुणों–ऋिुता (सरलता), आत्म संयम, इम्भिय संयम, सौम्यता, शववेक, अनासम्भक् आशद से युक् ्ा। यह उपलक्षणा है (िहााँ सत्य के एक अंश का संकेत है और असूया उपलक्षक है िो उपलक्षण का संकेत है)।

राजडवद्या राजगुह्यं पडवत्रडमदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धम्यम सुसुखं कतुमव्ययम्।।२।।

बि्ाथर्म: रािशवद्या-शवद्याओं ंमें रािा (अशतशय देदीप्यमान और प्रकाशयुक् होने के कारण ब्ह्म शवद्या सब शवद्याओं ंका रािा है) रािगुह्यम्-सब रहस्यों ंका रािा, पशवत्रम् -पशवत्र, इदम् -यह, उत्तमम् -सवथश्ेष्ठ, प्रत्यक्षावगमम् - अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) अन्तदृशष्ट िारा शिसका ज्ञान हो सके, धम्यथम् धमथयुक्, सुसुखम् - अत्यन्त सहि, कतुथम् -करने में, अव्ययम्-अशवनाशी ।

अनुवाद : यह रािशवद्या है, रािशषथयों ंका रहस्य है, अत्यन्त पावनी है, प्रत्यक्ष रूप से बोधगम्य है, धमथ के अनुरूप है, करने में सहि है और अशवनाशी है।

व्याख्या : तत्काल ज्ञान प्राम्भप्त हेतु आध्याम्भत्मक साधक को प्ेररत करने और उसमें रुशच उत्पन्न करने के शलए भगवान् कृष्ण इस श्लोक में ब्ह्मज्ञान की बहुत प्रशंसा करते हैं।

इस 'रािशवद्या' में न तो अन्धशवश्वास है और न ही शवश्वास का व्यापार (अर्ाथत् पूणथ शनष्ठा से सफलता शनशश्चत है) । सत्य, सावथभौम रहस्य (आत्मन्, पाम सत्य) देहातीत, भावातीत ज्ञान से तत्काल िाना िा सकता है। समस्त शवद्याओं ंमें परमात्मा का शवज्ञान (शवद्या) सवाथशधक भव्य है, उतकृष्ट है। यह शवज्ञानों ंका शवज्ञान है। शवज्ञानों ंमें सविो, रहस्यों ंमें सवाथशधक गोपनीय और पशवत्र करने वाले शोधकों ंमें यह सवोत्तम है। ब्ह्मज्ञान सवथश्ेष्ठ शोधक है। समस्त कमों को यह ि़ि से उखाि़ देने वाला है। ब्ह्मज्ञान से, पलक झपकते ही सहस्रों ंिन्मों ंके संशचत कमथ भस्मीभूत हो िाते हैं। यह अशवद्या को कायथ (प्रभाव) सशहत नष्ट करता है। प्रायशश्चत कमथ से सारे पाप नष्ट नहीं ंहो सकते। कुछ सीमा तक यह शकसी एक पाप के प्रभाव को नष्ट करने में सक्षम है। इसे हटाया भी िाये तो भी इसका प्रभाव सूक्ष्म रूप से मन में रहता है िो आगामी िन्म में पुनः अमूररत हो कर साधक को वही पाप करने के शलए बाध्य करता है। शकन्तु ब्ह्मज्ञान िन्मों–िन्मों ंसे संशचत पापों ंको उनकी स्ूल और सूक्ष्म दोनों ंअवस्ाओं ंमें मूलकारण अशवद्या सशहत तत्काल नष्ट करता है। इसीशलए यह परम शोधक कहा गया है। िीव का कारण शरीर मूल-अशवद्या कहा गया है। अशवद्या अर्वा अज्ञान का आवरण िो संसार के दृश्य पदार्ों को ढके हुए है, वह स्ूल अशवद्या है।

आत्म ज्ञान, धमथ का शवरोध नहीं ंहै। यह तो अनेक िन्मों ंमें शनष्काम भाव से शकये गये कमों का प्रशतफल है। पुनरशप, आत्म ज्ञान सहि ही प्राप्त हो सकता है। शवचार उठ सकता है शक इतना सहि यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है तो प्रभाव क्षीण होने पर यह लुप्त भी हो सकता है। शकन्तु ऐसा नहीं ंहै। यह ज्ञान अशवनाशी है। यह शनत्य है। अपने ही प्रकाश से यह सदा प्रकाशत रहता एक बार इसका स्वाद ले लेने पर मनुष्य अमर हो िाता है। अतः आत्म ज्ञान तो शनशश्चत रूप से प्राप्त करने योग्य ही है। येन केन प्रकारेण इसे इसी िन्म में प्राम करना अत्यन्त आवश्यक है, कौन िाने, पुनः यह मानव-तन शमले न शमले। प्रते्येक क्षण संघषथ करो क्योंशंक िीवन अशनशश्चत है और पुरस्कार (मोक्ष) महान् है।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धममस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां डनवतमते मृत्युसंसारविमडन ।।३ ।।

बि्र्थम : अश्रद्दधानाः श्रद्धारशहत, पुरुषा:-पुरुष, धमथस्य-धमथ (कतथव्य) का, अस्य-इस, परंतप -शतुरु संहारक (अुिथन), अप्राप्य-प्राप्त न कर के, माम् -मुझे, शनवतथने्ते-लौटते हैं, मृतुयुसंसारवत्र्मशन-मत्यथ लोक के इस पर् में।

अनुवाद : हे अुिथन, ि‍ो मनुष्य इस धमथ (आत्मज्ञान) में श्रद्धा नहीं ‍ंरखते वे मुझे प्राप्त शकये शबना ही इस मत्यथ लोक में पुनः लौटते हैं।

व्याख्या : अुिथन प्रश्न करते हैं- "भगवन्, ि‍ब यह ज्ञान सब प्रकार से कल्याणप्रद है, सविो है, सहि भी है तो लोग इसे प्राप्त करने का प्रयास क्यों ‍ंनहीं ‍ंकरते? शनश्चयेन, सब को आत्म ज्ञान प्राप्त करना चाशहए?" भगवान् उत्तर देते हैं-"हे मेरे शप्रय शशष्य, लोगों ‍ंको इस ज्ञान में शवश्वास नहीं ‍ंहै अतः पुनः-पुनः वे इस मत्यथ लोक में लौटते हैं। शनि कल्पना के साधनों ‍ंसे यशद वे प्रयास करते भी हैं तो भी वे मुझे प्राप्त नहीं ‍ंकर सकते क्योंशंक शास्त्र-शवशहत सम्यक् साधनों ‍ंऔर शनयमों ‍ंसे वे वंशचत हैं।"

धमथ का अर्थ है शनयम, धमथ, आत्म ज्ञान ।

यह शवश्वास, मात्र बौम्भद्धक शवश्वास नहीं ‍ंहै ि‍ो शकसी मत अर्वा शसद्धान्त का मताग्रही हो। शकसी दूसरे की अभुयुम्भक् का भी मात्र शवश्वास नहीं ‍ंहै। यह अशवचल, अटल, आन्तररक धारणा है शक आत्म ज्ञान से ही परम शाम्भन्त, अमृतत्व और शाश्वत आनन्द प्राप्त हो सकता है। शंकराचायथ का यही प्रबल, अटूट शवश्वास र्ा शिसके कारण परम शोधक, भावातीत, धमाथनुरूप, सहि और अशवनाशी ज्ञान प्राम्भप्त हेत् उन्ोंनें अपनी माताश्री का त्याग कर के श्री भशवन्दपाद गुरु की अहेतुकी शरण प्राप्त की। महात्मा बुद्ध के इसी दृढ़-शनश्चय मे गोले आलेय धारणा धारण करने को प्ेरेररत शकया। उनके ही अपने शब्दों ‍ंकुटे "ि‍ब तक मुझे प्रकाश (बोध) नहीं ‍ंहोता, मैं अपने आसन से एक इंच भी नहीं ‍ंशहलूाँगा।" आगे्नेय संकल्प के सार् शवश्वास सार्-सार् ही चलता है।

भगवान् कृष्ण ने प्रर्म दो श्लोकों ‍ंमें आत्म ज्ञान की प्रशंसा सकारात्मक शवशध (शवशध मुखसुतुशत) से की है। तीसरे श्लोक में उन्ोंनें इसका गुणगान शनषेधात्मक शवशध (शनषेध मुखसुतुशत) से शकया है। आत्म ज्ञान-प्राम्भप्त के लाभों ‍ंका वणथन प्रर्म और शितीय श्लोक में है। यह शवशध मुखसुतुशत है। आत्म ज्ञान प्राप्त न करने से अनर्थकारी (शवपशत्तिनक) पररणामों ‍ंका वणथन तृतीय श्लोक में है। यह है-शनषेध मुखसुतुशत ।

लालची, कामुक और पापी मनुष्य ि‍ो देह दशथन के अनुयायी हैं, राक्षसों ‍ंि‍ैसा ि‍ीवन व्यतीत करते हैं, देह को ही आत्मा मान कर इसकी पि्ूा करते हैं और शिन्ें आत्म ज्ञान में श्रद्धा नहीं ‍ंहै, वे मुझे प्राप्त नहीं ‍ंहोते। उनके पास तो मेरी ओर आने के शलए अल्प मात्र भम्भक् भी नहीं ‍ंहै। वे तो मत्यथ लोक पर् पर आरूढ़ होते हैं ि‍ो नरक और कीट, पशु आशद योशनयों ‍ंमें ले ि‍ाने वाला है।

मया ततडमदं सवं जगदव्यक्तमूडतमना ।
मथर्थाडन सवमभूताडन न चिां तेष्ववन्द्रथर्थतः ।।४ ।।

बि्र्थम : मया-मेरे ि‍ारा, ततम् व्याप्त, इदम् यह, सवथम् सब, ि‍गत् -संसार, अव्यक्मूशतथना-अव्यक् रूप से, मत्स्र्ाशन-मुझ में वास करते हैं, सवथभूताशन समस्त प्राणी, न-नहीं,‍ं च-और, अहम् -मैं, तेषु उनमें, अवम्भस्र्तः - म्भस्र्त हाँ।

अनुवाद : समस्त ि‍गत् में अव्यक् रूप से मैं ही व्याप्त हाँ। सब ि‍ीव मुझ में म्भस्र्त हैं शकनुतु मैं उनमें नहीं ‍ंहाँ।

व्याख्या: अव्यक् मूशतथ-पर ब्र्ह्म अर्वा दृशष्ट िारा अगोचर परम सत्ता है शिसे आध्याम्भत्मक भावातीत ज्ञान िारा ानिा िा सकता है। ब्र्ह्मा, सुशट कताथ से लेकर तृण और चीटी पयथन्त सारे िीव पर ब्र्ह्म में म्भस्त है। उनका अपना स्वतन्त्र अम्भस्तत्व नहीं ंहै। वे उस परम सत्ता के िारा िीशवत हैं िो सब में अन्तशनथशहत है। इसका कोई आधार नहीं ंहै क्योंशंक ब्र्ह्म ही सब िीवों ंका आत्म हैं शक वह उनमें वास करता है शकनुतु ऐसे हो भी कैसे सकता है? अनन्त सत्ता सीशमत में कैसे समा सकती है? ब्र् का शकसी भौशतक पदार्थ से कोई सम्पकथ नहीं ंहै। कुसी या मिे का धरती से सम्पकथ हो सकता है या मनुष्य और शकताब का, शकनुतु ब्र्ह्म का ऐसा सम्पकथ नहीं ंहै। इसीशलए उन प्राशणयों ंमें
वह वास नहीं ंकरता। शिसका शकसी पदार्थ अर्वा प्राणी से सम्बन्ध ही नहीं ंहै उसे कहीं ंभी, िैसे शकसी पात्र, बाक्स, कक्ष अर्वा आधान में नहीं ंरखा िा सकता। आत्म तत्त्व इन रूपों ंमें मूलबद्ध नहीं ंहै। शिस प्रकार से समस्त रूप आकाश से प्रकट होते हैं शकनुतु आकाश को शकसी रूप में आबद्ध नहीं ंकर सकते उसी प्रकार ब्र्ह्मन् शकसी रूप में आबद्ध नहीं ंहै। वह शनराकार है।
सारे प्राणी ब्र्ह्म में वास करते प्रतीत होते हैं शकनुतु यह एक भ्रम है। यह भ्रम दूर हो िाये तो ब्र्ह्म के अशतररक् शेष कुछ भी न रहे। इस भ्रम का कारण अज्ञान िब नष्ट होगा तो इन प्राशणयों ंके अम्भस्तत्व का शवचार भी लुप्त हो िाएगा।

श्लोक ४ और ५ में भगवान् ने एक शवरोधाभास शदया है। "समस्त प्राणी मुझ में वास करते हैं। शकनुतु वास करते हुए भी मुझमें वास नहीं ंकरते और मैं उनमें वास नहीं ंकरता" । एक शचन्तनशील व्यम्भक् के शलए यहााँ कोई शवरोधाभास नहीं ंहै। शिस प्रकार आकाश में सब कुछ म्भस्त है पुनरशप स्पशथ से परे है उसी प्रकार पर ब्र्ह्म में सब पदार्थ हैं पुनरशप उनके स्पशथ से परे हैं अर्ाथत् ब्र्ह्म को स्पशथ नहीं ंकर सकते (आकाश की भााँशत) । मूल प्रकृशत भी िो इस संसार का स्रोत है, ब्र्ह्म पर आशश्रत है शकनुतु ब्र्ह्म का कोई आधार अर्वा मूल नहीं ंहै। यह तो अपनी ही आशद और शवलक्षण मशहमा में आशश्रत है। (शनरूपण- - VII.12, 24; VIII .22)

न च मथर्थाडन भूताडन पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृि च भूतथर्थो ममिाा भूतभावनः ।।५ ।।

ब्र्ार्थम: न नहीं,ं च और, मत्स्र्ाशन मुझ में आशश्रत, भूताशन-प्राणी, परम-देखो, मे मेरे, योगम्-योग को, ऐश्वरम् - शदव्य, भूतभृत्-प्राशणयों ंका पोषण करते हुए, न-नहीं,ं चऔर, भूतस्र्: -प्राशणयों ंमें म्भस्त, मम-मेरी, सोना आत्मा, भूतभावनः - भूतों ंको उत्पन्न करने वाला।

अनुवाद : (वसुतुतः) िीव मुझ में म्भस्त नहीं ंहै। मेरे शदव्य योग को रेिो शक मेरा आत्मा प्राशणयों ंको उत्पन्न करने और उनका पोषण करने वालो होते हुए भी उनमें म्भस्त नहीं ंहै।

व्याख्या : ब्र्ह्म सूक्ष्मतम है, शनराकार है अतः इसका शकसी पदार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं ंहै। इसीशलए यह असङ्ग है। पदार्थ और आत्म तत्त्व में कोई सम्बन्ध नहीं ंहो सकता। साकार (रूप सशहत) का शनराकार (रूप रशहत) से कोई सम्बन्ध नहीं ंहो सकता।

यह हो भी कैसे सकता है?

अनासक् कभी आसक् नहीं ंहोता।

(असङ्गो न शह सज्यते) बृहदारण्यक उपशनषद् (III.9.26)

अनासक् होते हुए भी यह प्राशणयों ंका पोषण करता है। यह कत्ताथ है। समूपूणथ सृशष्ट का उद्भव इससे है शकनुतु स्वयं उसमें वास नहीं ंकरता क्योंशंक यह शकसी भी शवषय से असम्बद्ध है। यह एक महान् रहस्य है। एक स्वप्निष्टा को िैसे स्वप्न के शवषय से कोई प्रयोिन नहीं ंहोता, आकाश और वायु को पात्र से कोई प्रयोिन नहीं ंहोता इसी प्रकार ब्र्ह्म को भौशतक पदार्ों से कोई प्रयोिन नहीं।ं भौशतक शरीर और आत्मा का सम्बन्ध तो एक भ्रम है। प्राशतभाशसक पदार्ों का अशधष्ठान (ब्र्ह्म) िो ब्र्ह्म पर आरोशपत शकया गया है, उसका शवषयों ंके गुण-दोषों ंसे कोई सम्बन्ध नहीं।ं सपथ रिु पर अध्यारोशपत है। कम्भल्पत सपथ के शलए रिु अशधष्ठान है। यह अध्यास का एक दृष्टान्त है।

(शनरूपण-VII.25; X.7; XI.8)

यर्थाऽऽकाशस्थितो डनत्यं वायुः सवमत्रगो मिान् ।
तर्था सवामडण भूताडन मत्स्थानीत्युपधारय ।।६ ।।

शब्दार्थ : यर्ा-िैसे, आकाशम्भस्र्तः- आकाश में म्भस्र्त, शनत्यम् सदा, बाहु-वायु, सवथत्रगः सवथत्र गशत करता है, महान् -महान्, तर्ा-वैसे ही, सवाथशण-समस्त, भूताशन-प्राणी, मत्स्र्ाशन-मुझ में म्भस्र्त हैं, इशत-इस प्रकार, उपधारय िानो ।

अनुवाद : शिस प्रकार सवथत्र शवचरण करने वाला वायु सदा आकाश में ही म्भस्र्त रहता है उसी प्रकार सारे प्राणी मुझ में म्भस्र्त हैं, ऐसा िानो।

व्याख्या : प्रर्म दो श्लोकों ंमें दी गयी व्याख्या को और अशधक साक करने के शलए भगवान् उपमा दे रहे हैं। शिस प्रकार वायु असङ्ग हो कर आकार मैं आशश्रत है उसी प्रकार समस्त प्राणी शबना शकसी सङ्ग के ब्र्ह्म में म्भस्र्त हैं। ये पदार्थ उस पर शकसी प्रकार का प्रभाव नहीं ंिालते।

ब्र्ह्माण्ड के पदार्ों और ब्र्ह्म में शकस प्रकार का सम्बन्ध है? यह संयोग, समवाय अर्वा तादात्म्य सम्बन्ध है? िरम (Drum) के सार् िण्डी का सम्बन्ध संयोग सम्बन्ध है। अनुमान करो शक सम्बन्ध ऐसा ही है। समस्त भागों ं के सार् सम्बन्ध नहीं ंहो सकता क्योंशंक ब्र्ह्म अनन्त, असीम है और तत्त्व ससीम है। तुम एकादेश सम्बन्ध स्र्ाशपत कर सकते हो शकनुतु यह सम्भव नहीं ंहै। क्योंशंक ऐसा सम्बन्ध उन शवषयों ंमें सम्भव है शिनके या तो सदस्य हैं अर्वा भाग हैं िैसे वानर और वृक्ष (एक देश अशंता है) । ब्र्ह्म अंश रशहत है।

यशद समवाय सम्बन्ध का ब्र्ह्म और पदार्ों के मध्य शवचार करें तो यह भी असम्भव है। गुण और गुणधारक के मध्य सम्बन्ध समवाय सम्बन्ध कहलाता है। एक व्यम्भक्गत ब्र्ाह्मण और समूपूणथ ब्र्ाह्मण िाशत का सम्बन्ध भी समवाय सम्बन्ध है। मनुष्य और उसके हार्, मनुष्य और उसकी टाँग का सम्बन्ध भी समवाय है। ऐसा सम्बन्ध ब्र्ह्म और िीव अर्वा अन्य पदार्ों में नहीं ंहै।

तीसरे प्रकार का सम्बन्ध है-तादात्म्य सम्बन्ध, िो दूध और पानी, अशग्न और लौह खण्ड में दृशष्टगत होता है। दुग्ध का श्र्वेत वणथ और मधुरता िल से शमलतें-िुलते हैं। अशग्न का प्रकाश, रक् वणथ और उष्णता तप्त लौह खण्ड से शमलते हैं। ब्र्ह्म, पदार्थ और अन्य तत्त्वों ंमें यह सम्बन्ध भी सम्भव नहीं ंहै; क्योंशंक ब्र्ह्म सत्-शचत्-आनन्द, परम, अखण्ड और पूणथ है िब शक तत्व चेतना-शून्य (िि) है, सीशमत है और दुःखद है। ऐसे शवपरीत गुण वाले पदायाँ का ब्र्ह्म के सार् तादात्म्य सम्बन्ध कैसे स्र्ाशपत हो सकता है? इसशलए यह कहना उशचत ही है शक तत्वों ंका ब्र्ह्म के सार् सम्बन्ध कम्भल्पत है (अध्यारोशपत है)। िो पदार्थ आधार पर आरोशपत हैं उसकी सत्ता तो केवल नाम की है। वास्तव में उसका अम्भस्तत्व ही नहीं ंहै। नाम-रूप के इस ससार का आधार ब्र्ह्म है। संसार का अशभप्राय यहाँ प्राशणयों ंऔर उनके तीन प्रकार के शरीरों ं(अन्नमय, मनोमय और कारण शरीर) से है। अतः तत्त्व अर्वा प्राणी वसुतुतः ब्र्ह्म में हरभूत नहीं ंहैं। वे वास्तव में ब्र्ह्म में वास नहीं ंकरते। ये केवल नाम हैं।

वायु का अशभप्राय सूत्रात्मन् अर्वा शहरण्यगभथ से भी है। भूत व्यशष्ट बेसना है। शिस प्रकार से शकसी पात्र के भीतर का आकाश उसके शनमाथण और शवनाश के पूवथ और पश्चात् और उस पात्र के सत्ता कालों ंमें एक ही है, उसी प्रकार िीवात्मा की प्रकृशत तीनों ंकालों,ं भूत, वतथमान और भशवष्य में ब्र्ह्म से पृर्क् नहीं ंहै।

शिस प्रकार से समस्त िव्य अपने कायथ रूप के अम्भस्तत्व, अम्भस्तत्व से पूवथ और पश्चात् भी अपने उपादान कारण से अशभन्न रहते हैं उसी प्रकार व्यशष्ट आत्माएँ अपने शवशभन्न अनुबन्धों ंमन, बुम्भद्ध आशद उद्भव से पूवथ अम्भस्तत्व काल में और शवनाश के पश्चात् भी ब्र्ह्म से शभन्न नहीं ंहैं।

सवमभूताडन कौतेय प्रकृडतं यान्द्रत माडमकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्ताडन कल्पादौ डवसृजाम्यिम् ।।७ ।।

बि्ार्थम : सवथभूताशन समस्त प्राणी, कौने्तेय- हे कौने्तेय, प्रकृशतम् -प्रकृशत को, याम्भन्त–िाते हैं, माशमकाम् -मेरी, कल्पक्षये-कल्प के अन्त में, पुन-पुनः, ताशन-उने्, कल्पादौ-कल्प के आशद में, शवसृिाशम-भिैता हाँ, बहम्-मैं।

अनुवाद : हे अिुथन, समस्त प्राणी कल्प के अन्त में मेरी प्रकृशत को प्रशाम होते हैं और (आगामी) कल्प में मैं उने् पुनः भिैता हाँ।

व्याख्या : प्रकृशत-सत्व, रिस् और तमस्, इन तीन गुणों ंसे युक् शमन प्रकृशत। शिस प्रकार घास धरती पर उत्पन्न हो कर उसी में सूख िाती है, अशमथयां (छोटी लहरें) और लहरें सागर से उठ कर उसी में लीन हो िाती हैं, स्वान मन से अम्भस्तत्व में आ कर स्वप्निष्टश के िागृत होने पर मन में ही लीन हो िाते हैं, उसी प्रकार सब प्राणी प्रकृशत से उत्पन्न हो कर प्रलय काल में प्रकृत ही शवलीन हो िाते हैं।

प्रलय शवघटन (शवलोप) की अवशध है। महा-उत्पशत रचना-काल है। (शनरूपण –VIII.18,19)

प्रकृडतं स्वामवष्ट्भ्य डवसृजाडम पुनः पुनः ।
भूतग्रामडममं कृत्स्नमविं प्रकृतेवमित् ।।८ ।।

बि्ार्थम : प्रकृशतम् - प्रकृशत को, स्वाम्-अपनी, अवष्टष्य -अनुप्रमाशणत कर के, शवसृिाशम-सृिन करता हाँ, पुनः पुनः - पुनः पुनः, कर भूतग्रामम्-भूत समुदाय को, इमम् -इस, कृत्स्नम् -समस्त, अवशम् - परतन्त्र, प्रकृतेः- प्रकृशत के, वशात् -वश से।

अनुवाद : अपनी प्रकृशत को अनुप्राशणत कर के मैं पुनः पुनः समस्त भूत समुदाय को (संसार में) भिैता हाँ िो प्रकृशत के आधीन हैं िो असहाय हैं।

व्याख्या : भगवान् प्रकृशत को अङ्गीकार करते हैं, समाशश्रत करते हैं। आशलंगन करते हैं। महाकल्प अर्वा महाप्रलय के उपरान्त सुषुप्त प्रकृशत को दे पुनः शम्भक् और पुशष्ट प्रदान कर के उवथरक बनाते हैं तर्ा भूत समुदाय का पुनः सृिन करते हैं। प्रते्येक स्तर और तल पर उद्भव के पश्चात् वे दृशष्टपात करते हैं। 'प्रकृशत' शब्द पााँच प्रकार के क्लेशों ंका संकेत करता है-अज्ञान, अम्भस्मता (अहंभाव), राग, िेष और अशभशनवेश अर्ाथत् भौशतक िीवन में संलमता । (शनरूपण-IV.6)

न च मां ताडन कमामडण डनबध्नन्द्रत धनञ्जय ।

उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कममसु ।।९ ।।

बिार्थम : न-नहीं, ं च और, माम् -मुझको, ताशन-ये, कमाथशण -कमथ, शनबधन्भन्त-बाँधते हैं, धनन्यि -हे अिुथन, आसीनम् - बैठे हुए, असक्म् - अनासक्, तेषु -उनमें, कमथसु -कमों ंमें।

अनुवाद : हे अिुथन, उन कमों के प्रशत अनासक् और उदासीन की भााँशत बैठे हुए मुझको वे कमथ नहीं ंबााँधते ।

व्याख्या: ताशन कमाथशण-ब्ह्माण्ड की सृशष्ट और प्रलय । ब्ह्माण्ड की प्रलय का केवल मैं ही एक कारण है। प्रकृशत के उद्भव और शवकास का एकमात्र कारण भी मैं है, पुनरशप सब के प्रशत शवरक् रहने के कारण मैं कुछ भी नहीं ं करता। शकसी शक्रया का कारण भी मैं नहीं ंबनता।

मैं समरस, अनासक् और असम्बद्ध रहता हाँ। उन कमों के प्रशतफल की मुझे आसम्भक् नहीं ंहै। "मैं कताथ हाँ, यह अहंभाव भी मुझ में नहीं ंहै। मैं िानता शक आत्मा कमथरशहत है इसशलए सृशष्ट की रचना और शवघटन मुझे बन्धन में नहीं ंिालते।

ईश्वर की ही भााँशत अन्य मनुष्यों ंमें भी कतृथभाव का अभाव और कमथफल में अनासम्भक् (धमथ और अधमथ तऱा शुभाशुभ में) मोक्ष का कारण है। अज्ञानी मनुष्य अहंभाव से कमथ कर के और फल की इच्छा कर के रेशम-कीट के कृशमकोष में बंधने के समान बन्धन में आ िाता है।

शक्रकेट अर्वा फुटबाल मैच में िैसे मध्यस्ऱा (referee) अर्वा आम्पायर शकसी भी पक्ष की िय-पराजय से प्रभाशवत नहीं ंहोता वैसे ही भगवान् संसार की सृशष्ट और प्रलय से प्रभाशवत नहीं ंहोते क्योंशक वे इन सबसे उदासीन (शवरक्) रहते हैं और सदा एकरस (अपररवतथनशील) मौन िष्टश हैं। (शनरुपण-IV.14)

मयाऽध्यक्षेण प्रकृडतः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनाऽनेन कौतेय जगडिपररवतमते ।।१० ।।

बिार्थम : मया-मेरे िारा, अध्यक्षेण-अशधष्ठाता के िारा, प्रकृशतः- प्रकृशत, सूयते-उत्पन्न करती है, सचराचरम्-चर और अचर को (िि और चेतनको) हेतुना-कारण से, अनेन-इस, कौन्तेय-हे कौन्तेय, िगत् संसार, शवपररवतथते-घूमता है।

अनुवाद : हे अिुथन, मेरी अध्यक्षता में प्रकृशत के िारा चराचर िगत् की संरचना होती है और संसार चक्र पररभ्रमण करता है।

व्याख्या : भगवान् तो केवल िष्टा हैं। प्रकृशत सब कुछ करती है। उनके साशन्नध्य अर्वा शवद्यमानता के कारण प्रकृशत चराचर िगत् को उत्पन्न करती है। सृशष्ट का मूल कारण प्रकृशत है। िि, चेतन और समस्त शवशव का मूल कारण प्रकृशत है। ।

यद्यशप समस्त कमथ सूयथ के प्रकाश में शकये िाते हैं पुनरशप सूयथ कमों का कताथ नहीं ंबन सकता। इसी प्रकार भगवान् के शदव्य प्रकाश में प्रकृशत के सब कायथ होते है पुनरशप भगवान् कताथ नहीं ंबन सकते। ब्ह्म संसार के शनशमत कारणके रूप में अशवद्या को प्रकाशत करते हैं अतः यही संसार का कारण मानी िाती है। चुम्बक के सम्पकथ में आये लोहे के टुकिे घूमने लगते हैं पर चुम्बक उससे प्रभाशवत नहीं ंहोता। इसी प्रकार भगवान् प्रकृशत को सृशष्ट की रचना हेतु प्रेररत करते हैं शकन्तु स्वयं इससे उदासीन रहते हैं।

व्यक् और अव्यक् चराचर वसुतुओं ंसे युक् इस िगत् में भगवान एक स्वामी और साक्षी के रूप में अशधष्ठाता हैं।

सृशष्ट का प्रयोिन क्या है? िब भगवान् को शकसी प्रकार के आमोद-प्रमोद से कोई प्रयोिन ही नहीं ंतो उन्होंने सृशष्ट की रचना क्यों ंकी? या अशतप्रश्न (Transcendental) है। अतः यह प्रश्न पूछना अर्वा इसका उल देना, दोनों ंही असङ्गत हैं। आप यह नहीं ंकह सकते शक भगवान् ने िाने मनोरंिन के शलए यह संसार रचा क्योंशंक वे तो इन सब से परे हैं और मात्र तु हैं। (शनरूपण-X.8)

अवजानन्द्रत मां मूढा मानुषीं ंतनुमाडश्रतम् ।
परं भावमजानतो मम भूतमिेश्वरम् ।।११ ।।

बि्ार्थम : अविानम्भन्त-अवज्ञा करते हैं, माम् -मुझे, मूढ़ा-मूखथ, मानुषीम् -मनुष्य रूप, तनुम् - शरीर, आशश्रतम् - धारण शकए हुए, परम्-उच्च्चतर, भावम् -भाव को, अिानन्तः -न िानते हुए, मम-मेरी, भूतमहेश्वरम् -सब िीवों ंके महेश्वर ।

अनुवाद : समस्त प्राशणयों ंके स्वामी के रूप में मेरे उितर अम्भस्तत्व से अनशभज्ञ और मेरे परम भाव को न िानते हुए मूखथ लोग मनुष्य रूप में मुझ महेश्वर की अवज्ञा करते हैं।

"व्याख्या : शिस प्रकार पीशलया के रोगी को सवथस्व पीला ही शदखाई देता है इसी प्रकार केवल मूखथ ही मेरी पावन प्रकृशत में दोष देखते हैं। ज्वरग्रस्त होगी को यशद मधुर दुग्ध भी दें तो उसे नीम िैसा क्विा प्रतीत होगा। भौशतक नेत्रों ंसे मेरा दशथन करने के इच्छुक मुझे नहीं ंिान सकते। मरीशचका (मृग तृष्णा) को यशद कोई गंगा समझे तो क्या वह िल प्राप्त कर लेगा?

शववेक शून्य और ज्ञान शून्य मूखथ िन, मनुष्य रूप धारण शकये मेरी उपेक्षा करते हैं। मैंने अपने भक्ों ंके उद्धार के शलए यह शरीर धारण शकया है। मेरे उच्च्च भाव का इन्हें ज्ञान नहीं।ं वे नहीं ंिानते हैं शक मैं महेश्वर हाँ, परम आत्मा हाँ, ज्योशतमथय, सवथज्ञ, पशवत्र, सदा मुक्, अमर, प्रज्ञावान् और सब का आत्मा हाँ। ये मूखथ मुझे साधारण मानव समझ कर मेरा शतरस्कार करते हैं। बुम्भद्धमान् मेरी आध्याम्भत्मक प्रकृशत और अशभव्यक् प्रकृशत को िानते हैं।

ब्रह्माण्ड में सवथत्र मैं ही व्याप्त हाँ, अन्तव्याथप्त हाँ। इस संसार का मैं आलम्बन हाँ। शरीर, मन, प्राण, इम्भियों ं का आधार मैं हाँ पुनरशप कुछ शोचनीय मूढ़ हैं िो मेरे अम्भस्तत्व को नकारते हैं। मेरे अम्भस्तत्व से कोई स्थान खाली नहीं ंशकन्तु ये लोग मुझे देख नहीं ंपाते। इनका भाग्य ही शोचनीय है। (शनरूपण-IV.6; VII.24)

मोघाशा मोघकमामणो मोघज्ञाना डवचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं ंचैव प्रकृडतं मोडिनीं ंडश्रताः ।।१२ ।।

बि्ार्थम : मोघाशाः व्यर्थ आशा वाले, मोघकमाथणः व्यर्थ कमथ वाले, मोघज्ञानाः- व्यर्थ ज्ञान वाले, शवचेतसः-अज्ञानी, राक्षसीम् -राक्षसी, आसुरीम् - आसुरी (अशदव्य), च-और, एव-ही, प्रकृशतम् - प्रकृशत को, मोशहनीम् - भ्रशमत करने वाली, शश्रताः युक् हैं।

अनुवाद : व्यर्थ आशा, व्यर्थ कमथ, व्यर्थ ज्ञान वाले ये अज्ञानी लोग राक्षसी, अशदव्य, भ्रामक प्रकृशत से युक् हैं।

व्याख्या : वे व्यर्थ की आशाओं ंका आश्रय लेते हैं क्योंशंक नश्वर रूपों ंमैं तो कोई आशा हो ही नहीं ंसकती। आशा व्यर्थ इस भाव में है शक वे शाश्वत को छोि़ कर क्षशणक पदार्ों के पीछे भागते हैं। यह एक व्यर्थ कमथ है क्योंशंक यह भगवान् को समशपथत करके नहीं ंशकया गया। केवल अशग्नहोत्र तर्ा अन्य क ि ो वे करते हैं, सब शनष्फल है क्योंशंक
वे अन्तरात्मा रूप भगवान् का शतरस्का करते हैं। वे अज्ञानी है क्यों ंशक उनमें शववेक नहीं ंहै। शाश्वत आत्म तत्त्व का उनें् कोई ज्ञान नहीं ंहै। वे तो अपने शरीरों ंकी पूिा करते हैं। शरीर से पसेके आत्मा को नहीं ंदेखते । अपनी ही आत्मा की वे उपेक्षा करते हैं। वे अत्याचा और पाशशवक कमथ करते हैं। वे दूसरों ंका धन लूटते हैं और शहंसा करते है इसीशलए वे राक्षसी वृशत्त वाले और अशदव्य प्राणी हैं। राक्षस तामशसक होने । और असुर रािशसक । प्रकृशत का अर्थ यहााँ स्वभाव से है।

वे केवल बाह्य, मानव शरीर को देखते हैं। भीतर शवद्यमान आत्म तत्व से वे सवथर्ा अनशभज्ञ हैं। शवश्व में वे परमात्मा को नहीं ंदेखते । मात्र कुषुधा-शपपासा को शान्त करने हेतु वे िीवन यापन करते हैं।

परमात्मा की कृपा के शबना ि ो केवल कमथ िारा ही प्रशतफल अवका पुरस्कार की आशा करते हैं वे व्यर्थ की आशा और व्यर्थ ही कमथ करते हैं। कमथ से िि है, वह स्वतन्त्र रूप से प्रशतफल नहीं ंदे सकता । सवथज्ञ भगवान् ही उनका शवधायक है ि ो कमथ और उसके प्रशतफल को िानने वाला है। शिन्होंनें ऐसी पुस्तकों ंसे ज्ञान अशिथत शकया है ि ो न तो आम्भत्मक सत्ता को स्वीकारती हैं न ही उनमें आध्याम्भत्मक ज्ञान है वे मनुष्य व्यर्थ के ज्ञान से युक् हैं। इससे कोई प्रशतफल प्राप्त नहीं ंहोगा। ब्रह्मज्ञान से युक् आध्याम्भत्मक पुस्तकों ंअर्वा धमथ ग्रन्थों ंका अध्ययन ही वास्तशवक फल दे सकता है। (शनरूपण - VILIS; XVI.6, 20)

महात्मानसुतु मां पार्थम दैवीं ंप्रकृडतमाडश्रताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूताडदमव्ययम् ।।१३ ।।

शब्दार्थ : महात्मानः महान् आत्माएाँ, तु-लेशकन, माम् -मुझे, मेरी, पार्थ-हे अिुथन, दैवीम् -शदव्य, प्रकृशतम् -प्रकृशत को, आशश्रताः- आशश्रत, भिम्भन्त-पूिा करते हैं, अनन्यमनसः- अनन्य मन से, ज्ञात्वा–िान कर, भूताशदम् - िीवों ंके स्रोत को, अव्ययम् - अशवनाशी ।

अनुवाद : शकनुतु हे अिुथन, महात्मा िन मेरी दैवी प्रकृशत के आशश्रत हो कर, समस्त प्राशणयों ंके अशवनाशी उद्भव स्रोत रूप में मुझे िान कर अनन्या मन से (एकाग्र मन से) मेरी आराधना करते हैं।
व्याख्या : ज्ञात्वा भूताशदमव्ययम् - एक और व्याख्या है-मुझे सब भूतो का अर्ाथत् पंचभूतों ंऔर प्राशणयों ंका मूल स्रोत और अशवनाशी िान कर ।

दैवीं ंप्रकृशतम् - दैवी अर्वा साम्भत्त्वक प्रकृशत । ि ो शदव्य प्रकृशत से एक है और संयम, दया, शनष्ठा और पशवत्रता आशद गुणों ंसे सम्पन्न है।

महात्मानः- महान् आत्माएाँ वे हैं शिनके हृदय मेरे िारा शवशेष रूप से श्री बास स्र्ान रूप में बनाये गये हैं। महात्माओं ंके शवशुद्ध हृदयों ंमें मैं वास करता हाँ। वे मेरे प्रशत अचल भम्भक् भाव रखते हैं। साम्भत्त्वक प्रकृशत, शुद्ध हृदय और आत्म ज्ञान से युक् पुरुष महात्मा हैं।

भूताशद-समस्त िीव और पााँच तत्त्व ।

सततं कीतमयतो मां यततश्च दृढव्रताः ।

नमस्यतश्च मां भक्त्या डनत्ययुक्ता उपासते ।।१४ ।।

बि्ार्थम : सततम् -सदा, कीतथयन्तः- मशहमा गाते हुए, माम् -मुझे, यतन्तः- यत्न करते हुए, च-और, दृढिताः- दृढ संकल्प वाले, नमस्यन्तः -प्रणाम करते हुए, च-और, माम् -मुझे, मेरी, भक्त्या -भम्भक् भाव से, शनत्ययुक्ाः सदा म्भरूर (दृढ़ शनश्चय वाले), उपासते -उपासना करते हैं।

अनुवाद : सतत मेरा कीतथन (गुणगान) करते हुए, मेरे शलए यत्न करते हुए, दृढ़ संकल्प से युक्, मुझे प्रणाम करते हुए वे शनत्ययुक् भम्भक्भाव से मेरी उपासना करते हैं।

व्याख्या : ये महात्मा मेरा गुणगान करते हैं। वे ॐ का िप करते हैं। वे शास्त्राध्ययन करते हैं और उपशनषदों ंका पाठ करते हैं। वे अपने आध्याम्भत्मक गुरु से शुरुशतयों ं(वेदों)ं का श्रवण करते हैं, उन पर शचन्तन-मनन करते हैं और शनगुथण ब्ह्म का ध्यान करते हैं। वे पशवत्रता, सत्य, सहनशीलता, पे्रम, दया और सहानुभूशत आशद गुणों ंका शवकास करते हैं। इम्भियों ंको वश में कर के मन को म्भरूर करते हैं।

मन, वचन और कमथ की पशवत्रता, सत्य और अशहंसा आशद ितों ंका वे दृढतापूवथक पालन करते हैं। अत्यन्त शनष्ठा और भम्भक् भाव से वे मेरी पूिा करते हैं। हृदय में शनशहत अन्तरात्मा के रूप में वे मेरी आराधना करते हैं। एक नवदीशक्षत शष्य भगवान् के प्रत्यक्ष दशथन नहीं ंकर सकता, उसे अपने आध्याम्भत्मक गुरु की पहले पूिा करनी होगी और उसे ही ब्ह्मस्वरुप मानना होगा।

ज्ञानयजे्ञेन चाप्यने्ये यजतो मामुपासते ।
एकते्वेन पृर्थके्त्वेन बहधा डवश्वतोमुखम् ।।१५ ।।

बि्ार्थम : ज्ञानयजे्ञेन ज्ञान यज्ञ के िारा, च-और, अशप-भी, अने्ये-अन्य, यिन्तः यज्ञ करते हुए, माम् मुझे, उपासते- पूिते है एकते्वेन अशभन्न भाव से, पृर्के्त्वेन पृर्क् भाव से, बहुधा अनेक रूप से, शवश्वतोमुखम् -शवराट्स्वरूप को।

अनुवाद : अन्य (ज्ञानी िन) ज्ञान यज्ञ के िारा यिन करते हुए मेरी उपासना करते हैं िो शवराट् स्वरूप है, अशभन्न, पृर्क् और शवशवध स्वरूप है।

व्याख्या : सवथव्यापक मुझ एक और अनेक स्वरूप की अन्य ज्ञानी िन सब में आत्म दशथन करते हुए, ज्ञान यज्ञ के िारा मेरी ही उपासना करते हैं। सब स्वरूपों ंमें वे भगवद्-दशथन करते हैं और सब ध्वशनयों ंमें भगवन्नाम ही श्रवण करते हैं। वे िो कुछ भी खाते हैं शवशभन्न प्रकार से मुझे ही अशपथत करते हैं।

अन्य कुछ उसकी इस ज्ञान से पूिा करते हैं शक सत्य एक परमात्मा ही है िो सत्-शचत्-आनन्द (सम्भिदानन्द) स्वरूप है। वे ब्ह्म के सार् एकत्व स्र्ाशपत करते हैं। यह वेदाम्भन्तयों ंका एक ईश्वरवाद है। कुछ अन्य पृर्क् भाव से िैसे स्वामी और सेवक के भाव में उसकी आराधना करते हैं। िैतवाद अर्वा दशथन में िैत दशथन यही है। अन्य ज्ञानी उसे ब्ह्मा, शवष्णु, रुि, शव आशद देवों ंके रूप में वन्दन करते हैं।

शवश्वतोमुखम् - अन्य िन उसके अनेक रूपों ंकी कल्पना करके सब स्वरूपों ंमें उसकी सत्ता को मान कर उसकी आराधना करते हैं। उनके अनुसार शवशभन्न रूपों ंमें सवथतः मुख शकये हुए वही शवरािमान हैं। (शनरूपण - IV.33)

अिं क्रतुरिं यज्ञः स्वधाऽहमिमौषधम् ।

मन्त्रोऽहमिमेवाज्यमिमडग्नरिं हतम् ।।१६ ।।

बि्ार्थम : अहम् -मैं, क्रतुः अनुष्ठान, अहम् मैं, यज्ञः-यज्ञ, स्वधा स्वधा (पूवथिों ांअर्वा शपतरों ांको तपथण), अहम् -मैं, अहम् -मैं, औषधम्-औषशध (औषधीय गुण युक् सभी ाि ि और पौधे), मन्त्रः-पावन अक्षर, अहम् -मैं, अहम् -मैं, एव-ही, आज्यम्-धी, अहम् - मैं, अशग्नः-अशग्न, अहम् -मैं, हुतम् आहुशत ।

अनुवाद : क्रतु मैं हाँ, यज्ञ मैं हाँ, स्वधा मैं हाँ, औषशध (ाि ी-बूटी और पोधे) मैं हाँ, मन्त्र मैं हाँ, घृत मैं हाँ, अशग्न मैं हाँ, आहुशत मैं हाँ।

व्याख्या : क्रतु एक प्रकार का वैशदक अनुष्ठान है। (श्रौत कमथ शवशेष यज्ञ शंकर स्मातथ कमथ)

यज्ञ-धमथ शास्त्रों ांऔर सूमृशत में शनशदथष्ट शवशध-शवधान सशहत पूिा यज्ञ है। मन्त्र-गुणगान, शिसके िारा शपतरों ां और देवों ांको आहुशत दी िाती है। हुतम् -हवन की शक्रया ।

औषधम् -समस्त पौधे, िौ, चावल-धान आशद इसी श्ेरेणी में आते हैं अर्वा वे औषशधयााँ िो रोगहरण करती हैं। (सवथ प्राशणशभः यद् अद्यते तद् औषध शब्द वाच्यम् - शंकर) (शनरूपण - IV.24)

डपताऽमिस्य जगतो माता धाता डपतामिः ।
वेद्यं पडवत्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ।।१७ ।।

बि्ार्थम : शपता-शपता, अहम् -मैं, अस्य-इस, िगतः- िगत् का, माता-माता, धाता-कमथ फल प्रदाता, शपतामहः-शपतामह (दादा), वेद्यम्-िानने योग्य, पशवत्रम् -पशवत्र, ओंकारः- ओंकार, ऋक्- ऋक्, साम-साम, यिुः यिुस्, एव-ही, च-और ।

अनुवाद : मैं इस शवश्व का शपता हाँ, माता हाँ, कमथफल प्रदाता हाँ और शपतामह हाँ। मैं ज्ञातव्य (िानने योग्य) हाँ, पशवत्र हाँ, पावन अक्षर ॐ हाँ, तर्ा ऋिेद, सामवेद, यिुवेद भी मैं ही हाँ।

व्याख्या : धाता-कमों का फल प्रदान करके पालन करने वाला। ईश्वर अर्वा सगुण ब्ह्म शपता है। मूल प्रकृशत माता है। पावन सम्भिदानन्द (सत्-शचत्-आनन्द) शपतामह हैं।

वेद्यम् -िानने योग्य एक ही तत्त्व है और वह है परमात्मा ।

पशवत्रम् -पशवत्र करने वाला। पावनी भागीरर्ी में स्नान सा मेरा स्वरूप है और गायत्री िप भी मेरा ही रूप है। ये दोनों ांसाधकों ांकी अन्तः शुम्भद्ध करते हैं।

च-और, इसमें अर्वथवेद समाशहत शकया गया है। (शनरूपण-XIV.3)

गडतभमताम प्रभुः साक्षी डनवासः िरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः थर्थानं डनधानं बीजमव्ययम् ।। १८ ।।

बि्ार्थम : गशतः- लक्ष्य, भताथ-पालनकताथ, प्रभुः-स्वामी, साक्षी- (शुभाशुभ) देखने वाला, शनवासः-शनवास, शरणम् -शरण, सुहृत् -शमत्र, प्रभवः-उद्भव, प्रलयः -प्रलय, स्र्ानम् -स्र्ान, शनधानम् -कोषगृह, बीिम् - बीि, अव्ययम् अशवनाशी ।

अनुवाद : मैं लक्ष्य (परम धाम), स्वामी, साक्षी, रहने योग्य शनवास स्र्ान, सब का आश्रय, परम शमत्र, उत्पशत्त और प्रलय का हेतु, म्भस्र्शत का आधार, परम शनधान और अशवनाशी बीि (कारण) हूँ।

व्याख्या : मैं लक्ष्य हूँ, कमथ का प्रशतफल हूँ। पालन-पोषण करने वाला स्वामी हूँ। िीवों ंके शुभाशुभ कमों का साक्षी हूँ। मैं वह स्र्ान हूँ िहाँ सब प्राणी वास करते हैं। दु:खी का आश्रय मैं हूँ। शरणागत के दु:खहरण मैं ही करता हूँ। मैं वह सिा शमत्र हूँ िो बदले में कुछ लेने के भाव को त्याग कर भला करता है। इस ब्रह्माण्ड का उद्भव मैं हूँ। मुझ में ही सम्पूणथ िगत् लीन होता है। मैं ही संसार का आधार हूँ। मैं ही वह कोषगृह हूँ शिसे भशवष्य में प्राणी उपभोग करेंगे। मैं अशवनाशी बीि हूँ अर्ाथत् िीवों ंके उद्भव का कारण हूँ। अतः मेरे चरण-शरण में आ िाओ।

तपाम्यिमिं वषं डनगृह्णाम्युत्सृजाडम च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसिामजुमन ।।१९ ।।

बीिार्थम : तपाशम -(मैं) उष्णता देता हूँ, अहम् -मैं, अहम् मैं, वषथम् -वषाथ, शनगृह्णाशम-रोकता हूँ, उत्सृिाशम-बरसाता हूँ, च-और, अमृतम्-अमृतत्व, च-और, एव-ही, मृत्युः- मृत्यु, च-और, सत्- अम्भस्तत्व, असत् - अन्-अम्भस्तत्व, च-और, अहम् -मैं, अिुथन- हे अिुथन ।

अनुवाद : (सूयथ रूप में) मैं उष्णता (ताप) देता हूँ, वषाथ का आकषथण और वषथण मैं ही करता हूँ। मैं ही अमृतत्व हूँ, मैं ही मृत्यु हूँ, हे अिुथन, सत् और असत् भी मैं ही हूँ।

व्याख्या: सूयथ के ताप का प्रसार मैं करता हूँ। इि रूप से वषाथ ऋतु में वषाथ मैं करता हूँ, वषथ के शेष काल इसका शवकषथण भी मैं ही करता हूँ।

सत्-अम्भस्तत्व, व्यक्त सृशष्ट (कायथ रूप)

असत् - अनम्भस्तत्व, अव्यक्त (कारण रूप)

असत् का अशभप्राय 'कुछ नहीं' ं से अर्ाथ शून्य नहीं ंहै। सूक्ष्म, अव्यक्त कारण ही असत् कहलाता है। आत्मा, ब्रह्म अर्ाथ शाश्वत, सवथर्ा असत् नहीं ंहो सकते। उनकी सत्ता सदा शवद्यमान है। यह सत् स्वरूप है। यशद सूक्ष्म अव्यक्त कारण को शून्य माना िाये तो शून्य में से सृशष्ट की अवधारणा करना असम्भव है। छान्दोग्योपशनषद् में वणथन है- "असत् से सत् की सृशष्ट कैसे सम्भव है?" असत् से सत् की सृशष्ट का शवचार करना मूखथता है। एक वेदान्त के साधक के शलए ब्रह्म सत् है क्योंशक यह सदा शवद्यमान और अपररवतथनशील (अशवकारी) है। यह अशभव्यक्त सृशष्ट असत् है, सांसाररक लोगों ंके शलए, शिनके पास न तो शववेक है न ब्रह्मज्ञान, िो अपशवत्र स्र्ूल बुम्भद्ध से युक्त हैं, शिनके पास प्रखर और सूक्ष्म बुम्भद्ध नहीं ंहै, िो केवल स्र्ूल रूप ही देख सकते हैं, यह अशभव्यक्त संसार ही सत् है और सूक्ष्म अव्यक्त मूल प्रकृशत िो अशभव्यक्त संसार का मूल कारण है, वह असत् है उनके शलए ब्रह्म भी असत् है। अव्यक्त का संकेत मूल प्रकृशत और ब्रह्म दोनों ंकी ओर है क्योंशक दोनों ंही अप्रत्यक्ष हैं।

प्रत्येक पदार्थ की तीन अवस्र्ाएँ हैं-स्र्ूल, सूक्ष्म और कारण । महाकारण (शिसका कोई कारण नहीं) ं परब्रह्म है। स्र्ूल और सूक्ष्म अवस्र्ायें कारण के कायथ रूप (effects) हैं। बाहर िो प्रत्यक्ष है वह स्र्ूल शरीर है। यह भौशतक शरीर सूक्ष्म शरीर (वायवीय शरीर) से चलता है िो मन, प्राण और इम्भियों ंसे शनशमथत है। कारण शरीर बीि शरीर है। इसी बीि शरीर से सूक्ष्म और स्र्ूल शरीर उत्पन्न हुए हैं। एक सन्तरे का ही शवचार करो। इसका बाह्य शरीर (बाह्य त्वचा) भौशतक शरीर है। अन्दर का गूदा अर्ाथ सार सूक्ष्म शरीर है, शकन्तु गूदा और बाहर की

त्वचा को बनाने वाला अन्तस्तम कारण शरीर बिी है। यह एक सूल शचत्रण है। सन्तरे के दूसरे प्रकार के सूक्ष्म और कारण शरीर हैं। सांसाररक मनुष्य केवल भौशतक शरीर देखता है और उसी को सत्य मानता है। उसके शलए
सूक्ष्म (वायवीय) और कारण शरीर असत् है।

त्रैैडवद्या मां सोमपाः पूतपापा
यजैज्ञैररष्ट्वा स्वगमडतं प्रार्थमयते ।
ते पुर्ण्मासाद्य सुररेलोक
मश्नन्द्रत डदव्यान्द्रन्दडव देवभोगान् ।।२० ।।

बि्ार्थम : त्रैैशवद्याः तीनों ंवेदों ंको िानने वाले, माम् -मुझे, सोमपाः सोमरस पीने वाले, पूतपापाः-पापों ंसे मुक्, यजैज्ञैः
यज्ञों ंके िारा, इष्ट्वा-पूिा कर के, स्वगथशतम् -स्वगथ की, प्रार्थयन्ेते-प्रार्थना करते हैं, ते-वे,पुण्यम् -पुण्य, आसाद्य-प्राप्त करके, सुररेलोकम् - इिलोक को, अश्नम्भन्त- भोगते हैं, शदव्यान्-शदव्य, शदशव-स्वगथलोक में, देवभोगानै्दैवी भोगों ं को।
अनुवाद : तीनों ंवेदों ंका ज्ञान रखने वाले, सोमरस पान करने वाले, पापों ंसे मुक् हो कर, यिन िारा मेरी पूिा करते हुए स्वगथ लोक के शलए प्रार्थना करते हैं। वे देवताओं ंके ईश इि के पावन स्वगथ लोक को प्राप्त कर वहााँ देवताओं ंके शदव्य सुखों ंका भोग करते हैं।

व्याख्या : अनेक साधक योग के सोपान पर एक शवशेष ऊाँचाई तक आरूढ़ होते हैं। उितर लोक से आकृष्ट हो कर मोशहत हुए से वे अशनयंशत्रत रूप से म्भखंचे चले िाते हैं। शववेक शम्भक् और सम्यक् बोध को खो कर वे स्वशगथक भोगों ंमें स्वयं को भी भूल िाते हैं। उितर लोक (स्वगथ) में वास करने वाले शदव्य देव शवशभन्न प्रकार से साधक को आकृष्ट करते हैं। वे उनें् कहते हैं-"हे योगी, हम तुम्हारी तपश्चयाथ और शवरक् भाव, आध्याम्भत्मक अभ्यास और शदव्य गुणों ंसे अतीव प्रसन्न हैं। अपनी तपस्या और गुणों ंसे प्राप्त शकया गया यह लोक तुम्हारा अम्भन्तम आश्रयस्ल (परम धाम) है। तुम्हारे आदेश, तुम्हारी आज्ञा का पालन करने के शलए हम तुम्हारे सेवक हैं। यह लो तुम्हारे शलए शदव्य वाहन । कहीं ंभी भ्रमण करना चाहो करो। तुम्हारी सेवा में ये रहीं ंशदव्याङ्गनायें, वे शदव्य संगीत से तुम्हारा प्रमोद करेंगी। यह रहा कल्पवृक्ष िो तुम्हें आकांशक्षत फल प्रदान करेगा। स्वणथ पात्र में यह लो अमृत िो तुम्हें अमर कर देगा। यह है शदव्य झील (सरोवर), परम आनन्द को देने वाली, तुम स्वतन्त्रता पूवथक इसमें तैर सकते हो।" असावधान योगी देवताओं ंके शनमन्त्रण और मधुर पुम्भष्पत वाणी से सहि ही आकृष्ट हो िाता है। उसे शमथ्या सन्तोष की प्राम्भप्त होती है। वह सोचता है शक वह योग के अम्भन्तम सोपान पर आ चुका है। वह उन आकषथणों ंमें फंस िाता है और उसकी शम्भक् शवशभन्न शदशाओं ंमें शवकीणथ हो िाती है (शबखर िाती है) । िैसे ही उसके पुण्य क्षीण होते हैं वह पुनः मत्यथ लोक में आ िाता है। अब पुनः आध्याम्भत्मक सोपान पर चढ़ने के शलए उसे एक बार पुनः प्रयास करना पिेगा। शकनुतु एक अनासक् योगी िो प्रबल शववेक से युक् है, देवताओं ंके शनमन्त्रण को शनदथयतापूवथक ठुकरा देता है, अपने आध्याम्भत्मक पर् पर शनभीकता से आगे बढ़ता है ओर योग के अम्भन्तम सोपान अर्वा ज्ञान के सविो शखर अर्वा शनशवथकल्प समाशध की अवस्ा प्राप्त होने तक नहीं ंरुकता । वह पूणथतया सचेत होता है शक स्वगथ लोक के भोग उतने ही मूल्य हीन हैं शितने इस शमथ्या मत्यथ लोक के। स्वशगथक सुख सूक्ष्म हैं, अत्यन्त शे्रष्ठ और पराकोशट के हैं, मोशहत करने वाले हैं। यही कारण है शक रिा सा भी असावधान, िागरूक और अल्प अनासक् साधक उितर स्वशगथक लोक के सुखों ंसे सुगमतापूवथक आकृष्ट हो िाता है। इस भौशतक गित् के पाश्चात्य देशों ंऔर अमेररका में, िहााँ धन की प्रचुरता है, िालर और स्वणथ का अभाव नहीं ंहै, वहााँ लोग सूक्ष्म और उत्कट इम्भिय सुखों ंके भोगों ंमें मस्त हैं। प्रशतशदन वैज्ञाशनक नई-नई खोि करते हैं। आक्रामक और अशनष्टकारी शरारती इम्भियों ंकी सनुतुशष्ट के शलए नये-नये सुख साधनों ंका अिेषण करते हैं। अमेररका अर्वा योरोप में वास करने के उपरान्त एक सामान्य सरल संयत भारतीय भी पररवशतथत व्यम्भक् प्रतीत होता है। वह

आकषथणों ़से मुग्ध हो उठता है। माया की ऐसी महान् शम्भक् है। आकषथणों ़का ऐसा प्रभाव है। इम्भियााँ इतनी प्रबल
हैं। दृढ़ संकल्प और शववेक से युक्, संयत, अनासक्, अच्छी आत्म-शवश्लेषण की शम्भक् से युक् और मोक्ष की ज्वलन्त आकांक्षा से युक् पुरुष ही आकषथणों ़पर संयम रख सकता है और केवल वही सुखी हो सकता है। िीवन के अम्भन्तम लक्ष्य सविो आनन्द और अनन्त की उतूकृष्ट शदव्य दृशष्ट वही प्राप्त कर सकता है।

सोमरस का पान करने वाले पाप मुक् हो िाते हैं।

यजै्ञैः-अशग्नष्टोम, ज्योशतष्टोम आशद यज्ञ ।

अशग्नष्टोम आशद यज्ञों ़से वे वसु, रुि, आशदत्य आशद देवताओं ़के रूप में मेरी आराधना करते हैं।

इि देवताओं ़का रािा है। उसे शतक्रतु कहते हैं क्योंशक उसने एक सौ यज्ञ शकये र्े। शदव्य सुख स्वगथ के अलौशकक सुख हैं।

शदव्य भोग-शदव्य भोग मनुष्य की पहुाँच से परे हैं। देवताओं ़के शदव्य शरीर ही इसका भोग कर सकते हैं।
स्वगथ में देवताओं ़िारा प्रदत्त भोग शदव्य भोग है। भोग का संकेत इम्भिय सुख भोग की ओर है। यद्यशप स्वगथ के भोग अत्यन्त

सूक्ष्म प्रकृशत के हैं तर्ाशप वे केवल इम्भिय भोग ही हैं। (शनरूपण -11.45)

ते तं भुक्त्वा स्वगमलोकं डविालं
क्षीणे पुर्ण्े मत्यमलोकं डविन्द्रत ।
एवं त्रयीधममनुप्रपिा
गतागतं कामकामा लभते ।।२१ ।।

बि्ार्थम : ते-वे, तम्-उसे, भुक्त्वा-भोग कर, स्वगथलोकम् -स्वगथ लोक को, शवशालम् - शवशाल, क्षीणे - क्षीण होने पर (समाप्त होने पर), पुण्ये-पुण्य कमथ, मत्यथलोकम् -मृतुयु लोक को, शवशम्भन्त-प्रवेश करते हैं, एवम् - इस प्रकार, त्रयीधमथम् तीनों ़वेदों ़के धमथ का, अनुप्रपन्नाः-पालन करने वाले, गतागतम् आवागमन की अवस्र्ा में, कामकामाः-इच्छाओं ़की इच्छा करते हुए, लभन्ते-प्राप्त करते हैं।

अनुवाद : शवशाल स्वगथ लोक का सुख भोग कर वे पुण्य क्षीण होने पर मृतुयु लोक (भू लोक) में पुनः लौटते हैं। एवंशवध, वेदत्रयी के आदेशों ़का पालन करते हुए, शवषयों ़की कामना करते हुए वे (साधक) आवागमन की अवस्र्ा को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : (स्वशगथक सुखों ़का कारण) संशचत पुण्य कमथ िब समाप्त हो िाते हैं वे इस लोक में अवरोहण करते हैं। वे आते हैं और िाते हैं। उन्हें कोई अपनी स्वतन्त्रता नहीं ़है।

त्रयीधमथ-तीनों ़बेटों ़से सम्बद्ध वैशदक अनुष्ठान ।

कामकामाः-वे लोग, शिनके मन सांसाररक वासनाओं ़से भरे हुए हैं।

अनन्याडश्चतयतो मां ये जनाः पयुमपासते ।

तेषां डनत्याडभयुक्तानां योगक्षेमं विाम्यिम् ।।२२ ।।

बिाथ्रम : अनन्याः-अनन्यभाव से, शचन्तयन्तः - शवचार करते हुए, माम्-मुझे, येि◌ो, िनाः लोग, पयुथपासते -पिूते हैं, तेषाम् - उनका, शसमाशभयुक्ानाम् - शनत्ययुक्, योगक्षेमम् - योग और क्षेम (अप्राप्त की प्राम्भप्त और प्राप्त की सुरक्षा), वहाशम-वहन करता हाँ, अहम् -मैं।

अनुवाद : अनन्य भाव से मेरा शचन्तन करने वाले और मेरी ही आराधना करने वाले शनत्ययुक् साधकों ◌ंका योग-क्षेम मैं स्वयं वहन करता हाँ।

व्याख्या : अनन्यः - अशभन्न । यह एक और अर्थ है। मेरा ध्यान करते हुए िो लोग समस्त प्राशणयों ◌ंमें मेरी पिूा करते हैं ऐसे शनत्य ही भम्भक्भाव में लीन लोगों ◌ंका योग-क्षेम (लाभ और रक्षा) मैं वहन करता हाँ। वे स्वयं को, अपने आत्म तत्त्व को, परम सत्ता से अशभन्न मानते हैं। वे परम-पुरुष का अपनी ही आत्मा में दशथन करते हैं।

ऐसे भक् िो अपने आत्म तत्त्व से पृर्क् शकसी को नहीं ◌ंदेखते और समदृशष्ट रखते हैं उनका अपना स्वार्थ कोई नहीं ◌ंहोता। वे अपने ही लाभ और सुरक्षा का शचन्तन नहीं ◌ंकरते । उन्ें िन्म-मृत्यु की कोई कामना नहीं ◌ंहोती । उनके पास खोने को कुछ नहीं ◌ंहोता क्योंशंक अपना कहने योग्य उनके पास कुछ है ही नहीं।◌ं उनके तो शरीर भी भगवान् के हो िाते हैं। कुछ प्राम्भप्त की उन्ें आकाङ्क्षा नहीं ◌ंहोती क्योंशंक उनकी समस्त कामनायें भगवान् के सार् वाताथलाप से ही पूणथ हो िाती हैं। भगवान् के परा सम्पदा और समस्त शदव्य ऐश्वयथ उनके पास होने के कारण वे सदा सनुतुष्ट रहते हैं।

भगवान् के अशतररक् कोई शवचार स्वयं उनके मन में ही नहीं ◌ंआता। पररणाम स्वरूप भगवान् स्वयं उनके दैशहक शनवाथह का ध्यान करते हैं और उन्ें वस्त्र, भोिन आशद का अभाव नहीं ◌ंहोता। इसे योग कहते हैं। उनके पास िो कुछ पहले से ही है उसकी वे रक्षा करते हैं और यह क्षेम कहलाता है। ये दोनों ◌ंकायथ भगवान् करते हैं। माता-शपता शिस प्रकार अपने बिों ◌ंकी आवश्यकताओं ◌ंका ध्यान करते हैं उसी प्रकार भगवान् अपने भक्ों ◌ंके अभावों ◌ंकी पूशतथ करते हैं।

वे पूणथ शनष्ठा के सार् अपना समग्र मन भगवतोनुमुख करते हैं। केवल भगवान् को ही वे शचन्तन का शवषय बनाते हैं। भगवान् से अशधक शप्रयतर इस समूपूणथ शवश्व में उनके शलए और कोई नहीं ◌ंहोता। वे तो भगवान् के शलए िीिन िीते हैं। एक ही उदे्देश्य से और अनन्य भम्भक् से वे भगवत् शचन्तन करते हैं। भगवान् के अशतररक् वे अन्य कुछ नहीं ◌ंदेखते । समस्त िीवों ◌ंमें वे भगवद्दशथन करते हैं और उन्ें पे्रेम करते हैं। वे िब ऐसा िीवन व्यतीत करते हैं तो भगवान् भी उनके योग-क्षेम का भार अपने ऊपर ले लेते हैं।

शनत्ययुक्-वे हैं िो एकाग्र शचत्त हो कर शनतान्त भम्भक्भाव से युक् हो कर सतत भगवान् का ध्यान करते हैं। (शनरूपण-VIII.14. XVIIII .66)

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजते श्रद्धयाऽन्द्रन्वताः ।
तेऽडप मामेव कौतेय यजन्त्यडवडधपूवमकम् ।।२३ ।।

बिाथ्रम : येि◌ो, अशप-भी, अन्यदेवताः- अन्य देव, भक्ाः- भक्, यिन्ते-पिूा करते हैं, श्रद्धया -श्रद्धा भाव से, अम्भिताः युक् हो कर, ते-वे, अशप-भी, माम् -मुझे, एव-ही, कौन्तेय- हे कौन्तेय, यिम्भन्त-पिूते हैं, अशवशधपूवथकम् - शवशध-शवधान रशहत, अज्ञानपूवथक ।

अनुवाद : अन्य भक्नि भी, हे अुिथन, ो अन्य देवताओं की आराधना करते हैं वे वसुतुतः अशवशधपूवथक मेरी ही आराधना करते हैं।

व्याख्या : वे अज्ञानवश मेरी पूिा करते हैं। उनकी पूिा-शवशध प्राचीन शवशध-शवधानों के शवपरीत होती है। अतः मरणोपरान्त पुनः इसी संसार में िन्म लेकर लौट आते हैं।

अशग्न, इि, सूयथ, वरुण और वसु आशद की लोग पूिा करते हैं। वे भी मुझे ही प्राप्त होते हैं क्योंशक मैं तो सवथत्र व्यापक हाँ शकनुतु उनकी भम्भक् पावन नहीं होती। यह दूसरों के शलए है। िल से मूल को सींचंना अशनवायथ है, शाखाओं को नहीं। यशद मूल सनुतुष्ट है तो समूपूणथ वृक्ष सनुतुष्ट है और होना भी चाशहए। एवंशवध, यशद मैं (िगत् का और देवताओं का मूल) सनुतुष्ट होता हाँ तो सारे देवता सनुतुष्ट होते हैं और होने चाशहए। यद्यशप पंच ज्ञानेम्भियों के संदेश एक ही चेतना को पहुँचते हैं तर्ाशप, क्या यह उशचत होगा शक मधु को कणथ में, पुष्प को नेत्र में रखा िाये ? भक्षण का कायथ केवल मुख िारा ही होना चाशहए और घ्राण (सूंघने) का कायथ नाशसका से होना चाशहए। अतः मेरी पूिा मेरे ही नाम से होनी चाशहए। साधक और भक् मुझे सब प्राशणयों की आत्मा रूप से िानें। वे मुझे देवताओं का और िगत् का मूल कारण हाँ। (शनरूपण- IV.11; VII.20)

अिं डि सवमयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामडभजानन्द्रत तते्वेनात श्चश्यवन्द्रत ते ।।२४ ।।

बि्र्थम : अहम् -मैं, शह-शनशश्चत रूप से, सवथयज्ञानाम् -सब यज्ञों का, भोक्-भोग करने वाला, चऔर, प्रभुः स्वामी, एव-ही, च-और, न नहीं, दु-शकनुतु, माम् -मुझे, अशभिानम्भन्त िानते हैं, तते्वेन तत्त्व से, अतः इसशलए, च्यवम्भन्त-शगरते हैं, ते-वे।

अनुवाद : समस्त यज्ञों का स्वामी और भोक् केवल मैं ही हाँ। शकनुतु वे तत्व रूप से मुझे नहीं िानते और इसीशलए वे शगरते हैं (मत्यथलोक में पुनिथन्म लेते हैं)।

व्याख्या : वे नहीं िानते शक वेदों और सूमृशतयों (आचार संशहता) में शवशहत सब यज्ञों का भोक् मैं परम पुरुष ही हाँ और समस्त यज्ञों का स्वामी हाँ। संसार का अन्तः शासक होने के कारण मैं ही यज्ञों का स्वामी हाँ, (अशधयज्ञोऽहमेवात्र, VIII.4) मैं ही यज्ञों का अशधष्ठातृ देव हाँ। यज्ञ के प्रारम्भ में भी मैं ही हाँ और अन्त में भी मैं ही हाँ। शफर भी ये लोग अन्य देवों की पूिा करते हैं। अतः वे अज्ञान में पूिा करते हैं। अन्य देवताओं की पूिा करते समय वे मेरा अशभज्ञान नहीं कर पाते और क्योंशक वे अपने कमथ भी मुझे समशपथत नहीं करते इसीशलए शिस प्रयोिन से उन्होंने वे शुभ कमथ यज्ञाशद शकये र् उस का फल भोग कर पुण्य समाप्त होने पर पुनः इस मत्यथ लोक में लौट आते हैं।

ि लोग अन्य देवों में आसक् हैं और अज्ञान में मेरी पूिा करते हैं (अशवशधपूवथकम्) वे भी अनुष्ठान का फल प्राप्त करते हैं। कैसे? (शनरूपण-V.29.XV.9)

यान्द्रत देवव्रता देवान् डपतृन्यान्द्रत डपतृव्रताः ।
भूताडन यान्द्रत भूतेज्या यान्द्रत मद्याडजनोऽडप माम् ।। २५ ।।

बि्र्थम : याम्भन्त-प्राप्त होते हैं, देविताः-देवताओं की पूिा करने वाले, देवान् -देवताओं को, शपतृन् -शपतरों को, याम्भन्त–िाते हैं, शपतृिताः- शपतरों की पूिा करने वाले, भूताशन-भूतों को, याम्भन्त–िाते हैं, भूतेज्याः - भूतों की पूिा
करने बाले, याम्भन्त–िाते हैं, मद्याशिनः- मेरे आराधक, अशप-भी, माम् -मुझे ।

अनुवाद : देवताओं ंको पिूने वाले देवताओं ंको िाते हैं, शपतरों ंको पिूने वाले शपतरों ंको प्राप्त होते हैं, भूतों ंकी पिूा करने वाले पंचभूतों ंके अशधष्ठातृ देवों ंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक् मुझे ही प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : अशग्नष्वत्त (Agnisvattas) आशद शपतरों ंके पिुारी िो शपतृ भम्भक् में श्राद्ध आशद अनुष्ठान करते हैं वे शपतरों ंको प्राप्त होते हैं। संकल्प और भम्भक्सशहत देव पिून करने वाले देवताओं ंको प्राप्त होते हैं।

भूत तत्त्वों ंसे सम्बद्ध प्राणी हैं िो देवताओं ंसे तो शनम्न हैं परन्तु मनुष्यों ंसे ऊपर हैं, वे शवनायक हैं, वे चार भशगनी आशद माताओं ंके आशतर्य (Hosts) हैं।

देवभम्भक् में लीन व्यम्भक् मृतुयु के समय उन्हीं ंदेवताओं ंके स्वरूप को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार से शपतरों ंको पिूने वाले और भूतों ंको पिूने वालों ंका भाग्य होता है। भक् की पिूा की प्रकृशत, दान, शनष्ठा और ज्ञान के अनुरूप ही पिूा का पररणाम होता है।

यद्यशप संघषथ और प्रयास तो समान ही हैं तर्ाशप लोग अज्ञानवश मेरी पिूा नहीं ंकरते। पररणामस्वरूप वे बहुत कम प्रशतफल प्राप्त करते हैं।

मेरे भक्ों ंको अनन्तफल की प्राम्भप्त होती है। वे इस भूलोक में पुनः नहीं ंआते। मेरी आराधना उनके शलए सहि भी है। कैसे ? (शनरूपण-VII.23)

पत्ंरं पुष्ंपं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छडत ।
तर्दं भकुत्युपितमश्नाडम प्रयतिानः ।।२६ ।।

बोिार्थम : पत्रम् -पत्र (पत्ता), पुष्पम् -पुष्प, फलम् -फल, तोयम् ि ल, यः िो , मे-मुझे, भक्त्या-भम्भक् भाव से, प्रयच्छशत-अपथण करता है, तत्वह, अहम् -मैं, भकुत्युपहतम् - भम्भक्पूवथक अशपथत, अश्नाशम-स्वीकार करता हाँ, खाता हाँ, प्रयतात्मनः- पशवत्र मन वाले का।

अनुवाद : िो भी भक् भम्भकभाव से मुझे पत्र, पुष्प, फल अर्वा िल अशपथत करता है, पशवत्र मन से और भम्भक् भाव से अपथण की उस भेंट को मैं स्वीकार करता हाँ।

व्याख्या : पूणथ शनष्ठा से अशपथत की गई अल्प भेंट भी भगवान् को स्वीकार है। शुद्ध हृदय, एकाग्र मन से अपथण शकये गये पत्र, पुष्प, फल और िल से भी भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो िाते हैं। शबरी के बेर और सुदामा की पोटली से रिी से धुने चावल स्वीकार कर के क्या वे सनुतुष्ट नहीं ंहुए र्े? उनके शलए सैण-मम्भन्दर बनाने की आवश्यकता नहीं ं है। स्वणथ-मम्भन्दर तो अपने हृदय में बनाओ। भगवान् को उसमें शवराशित करो। भगवान् को तो केवल तुम्हारा भम्भक्पूणथ हृदय चाशहए। शकनुतु इिको प्रसन्न करना कशठन है। उन्हें प्रसन्न करने के शलए तो तुम्हें अमूल्य पदार्थ भेंट करने होंगें।

पत्र, पुष्प और फल तो मात्र संकेत हैं। भगवान् की प्राम्भप्त का सिा साधन पशवत्र, अचल भम्भक् है। राज्य के समस्त पदार्थ रािा की सम्पदा होते हैं शकनुतु राज्य के सेवक यशद भम्भकभाव (प्ेरेमभाव) से रािा को कुछ उपहार देते हैं तो वह अशत प्रसन्न हो िाता है। इसी प्रकार शवश्व की समूपूणथ सामग्री भगवान् की ही सम्पदा है पुनरशप प्रीशतपूवथक यशद तुम उन्हें कुछ अपथण करते हो तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो िाते हैं।

अश्नाशम का अर्थ तो 'भक्षण' भाव में है शकनुतु सांकेशतक अर्वा लक्षणा वृशत्त में इसका अर्थ 'स्वीकार करना' है।

यत्करोडष यदश्नाडस ि्युिोडष ददाडस यत् ।
यत्तपस्यडस कौतेय ततुकुरुष्व मदपमणम् ।।२७ ।।

बि्ार्थम : यत्ि्ो, करोशष-करते हो, यत्ि्ो (भी), अश्नाशसखाते हो, यत्ि्ो, िुहोशष-हवन करते हो, ददाशस - देते हो, यत्ि्ो, यत्ि्ो, तपस्यशस-तपस्या करते हो, कौन्तेय- हे कौन्तेय, तत्-वह, कुरुष्व-करो, मदपथणम् -मेरे अपथण ।

अनुवाद : हे अिुथन, तुम िो कुछ भी करते हो, िो खाते हो, िो हवन करते हो, िो दान करते हो, िो तपस्या करते हो वह सब मेरे अपथण कर दो।

व्याख्या : सारे कमथ भगवान् को समशपथत कर दो। तभी कमथ बन्धन से मुम्भक् पाओगे। कमथ की स्वतन्त्रता प्राप्त करोगे। इस श्लोक के भाव में तल्लीन रहने का अभ्यास करने वाला साधक भगवान् के प्रशत आत्मसमपथण के योग्य हो िाता है। धीरे-धीरे वह एक-एक कर के आध्याम्भत्मक सोपानों ंका आरोहण करता है। उसकी लोभ-वृशत्त अब पूणथतः लुप्त हो चुकती है। वह सदा दान करता है। लेने की अशभलाषा उसमें नहीं ंरहती। अन्ततोगत्वा, उसका समूपूणथ िीवन शवचार, भाव सशहत भगवान् के चरणों ंमें समशपथत हो िाता है। वह भगवान् के शलए ही िीता है। भगवान् के शलए ही कायथ करता है। अहंभाव पूणथतया नष्ट हो िाता है। उसकी समस्त प्रकृशत शदव्यता में पररवशतथत हो िाती है। कमथ िब भगवान् को समशपथत हो गये तो पुनिथन्म का प्रश्न ही नहीं ंउठता। योग का यह सरलतम साधन है। अब और अशधक समय व्यर्थ न करो। आि से ही (योग) प्रारम्भ करो।

समस्त कमथ, समस्त पररणाम और समस्त प्रशतफल अर्वा दान भगवान को ही पहुँचते हैं। व्यम्भक् के शलए अपना पृर्क् िीवन कुछ भी नहीं ंहै। अपना नाम और रूप त्याग कर शिस प्रकार नदी सागर में िा शमलती है उसी प्रकार िीवात्मा अपना नाम, रूप अहंभाव और अहंता से युक् इच्छाओं ंको त्याग कर परम पुरुष में िा शमलता है। व्यशष्ट इच्छा समशष्ट इच्छा से एक हो िाती है। अपनी मनोहारी इच्छा से िो कुछ भी तुम करते हो, शास्त्रशवशध के अनुरूप िो भी यज्ञ में अपथण करते हो, स्वणथ, धान, घृत, वस्त्र आशद िो कुछ भी दान करते हो (ब्ाह्मणों ंको अर्वा लोगों ंको), पाप नाश के शलए चाायण ित, इम्भिय संयम आशद िो भी तपस्या करते हो-ये सब मुझे समशपथत करते हुए करो। (शनरूपण - V.32; XII.6,8)

इस प्रकार तुम्हें क्या प्राम्भप्त होगी, उसे सुनो।

ुभाुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कममबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तािा डवमुक्तो मामुपैष्यडस ।।२८ ।।

बि्ार्थम : शुभाशुभफलैः-शुभ और अशुभ फल से, एवम् - इस प्रकार, मोक्ष्यसे मुक् हो िाओगे, कमथबन्धनैः-कमों के बन्धन से, संन्यासयोगयुक्ात्मा-संन्यास योग से युक् मन से, शवमुक्ः - मुक्, माम् -मुझे, उपैष्यशस प्राप्त करोगे ।

अनुवाद : इस प्रकार अनन्य मन से संन्यास योग में युक् हो कर तुम भाशुभ (अचे्छे बुरे) कमों के फल और कमों से मुक् हो िाओगे और मोक्ष प्त करके मुझे प्राप्त हो ओगे।

व्याख्या : एवम् - इस प्रकार अर्ाथत् िब तुम सवथस्व मेरे अपथण कर दो।

समस्त कमथफल का त्याग संन्यास है। संन्यास योग से शिसका मन सम्भित है वह संन्यासयोगयुक्तात्मा है। सवथस्व समपथण की प्रशक्रया संन्यास योग है। यह योग भी है क्योंशंक यह कमथ है। संन्यास और योग से युक् मन के िारा तुम िीवनकाल में ही शुभाशुभ कमथ फल से मुक् हो िाओगे और शरीर शान्त होने पर मुझे प्राप्त करोगे। एक आलोचक का कर्न है- "शफर तो भगवान् भी प्रेम और घृणा के आधीन हैं क्योंशंक वे अपने भक्ों ंपर ही कृपा वृशष्ट करते हैं अन्यों ंपर नहीं।ं"

उत्तर है-ऐसा नहीं ंहै। भगवान् तो पक्षपात रशहत हैं और घृणा और प्रेम से अतीत हैं। उनकी कृपा सब के शलए प्रवाशहत हो रही है शकनुतु भक् ही स्वतन्त्रता से इसे प्राप्त करता है क्योंशंक कृपा प्राप्त करने के शलए उसने अपने हृदय के िार खोल रखे हैं।

इसकी व्याख्या अगले श्लोक में है।

समोऽ सिवमभूतेषु न मे िेष्योऽन्द्रस्त न डप्रयः ।
ये भजन्द्रत तु मां भक्त्या मडय ते तेषु चाप्यिम् ।।२९ ।।

बि्ार्थम : समः समान, अहम् -मैं, सवथभूतेषु सब प्राशणयों ंमें, न-नहीं,ं मे-मुझे, िेष्यः-घृणा का पात्र, अम्भस्त-है, न-नहीं,ं शप्रयः-शप्रय, देि्ो, भिम्भन्त-पूिा करते हैं, तु-परनुतु, माम्-मेरी, भक्त्या-भम्भक्भाव, मशय-मुझ में, ते-वे, तेषु उनमें, च-और, अशप-भी, अहम् -मैं।

अनुवाद : मैं सब प्राशणयों ंके शलए समान हाँ, न तो कोई मुझे अशप्रय है और न ही शप्रय, शकनुतु वे िो भम्भक्भाव से मेरा अचथन-पूिन करते हैं वे मुझ में हैं और मैं भी उनमें हाँ।

व्याख्या : भगवान् समदृशष्ट हैं। वे सब प्राशणयों ंको समदृशष्ट से देखते हैं। न तो वे शकसी की उपेक्षा करते हैं और न ही शकसी से अपेक्षा रखते हैं। वे शकसी के शतुरु नहीं ंहैं। शकसी के पक्षपाती प्रेमी नहीं ंहैं। वे शकसी के शलए पक्ष सेते हों ंऔर शकसी पर क्रोध करते हों,ं ऐसा नहीं ंहै। अहंकारी मनुष्य ही अपने दुव्यथवहार से अपने और भगवान् के बीच दूरी कर लेता है। भगवान् तो उसके अपने श्वास और हार्-पैर से भी अशधक उसके शनकट हैं।

मैं तो अशग्न स्वरूप हाँ। िो अशग्न के शनकट आते हैं वे शीत से बच िाते हैं शकनुतु अशग्न से दूर रहने वाले यह लाभ नहीं ंले सकते। उसी प्रकार मैं अपने भक्ों ंपर कृपा वृशष्ट करता हाँ शकसी आसम्भक् वश नहीं।ं शिस प्रकार सूयथ का प्रकाश सवथत्र व्याप्त होते हुए भी स्वच्छ शनमथल दपथण में ही प्रशतशबम्भम्बत हो सकता है पात्र में नहीं ंउसी प्रकार सवथव्यापक मैं परम पुरुष उन भक्ों ंके हृदयों ंमें प्रकट होता हाँ िो सब प्रकार की (अज्ञान रूपी) अपशवत्रता से भम्भक् के िारा पररषूकृत हो चुके हैं।

सूयथ को न तो दपथण से आसम्भक् है न पात्र से घृणा । कल्प वृक्ष को लोगों ंके शलए प्रेम और घृणा नहीं ंहोती शकनुतु इम्भच्छत पदार्थ तो उसे ही प्राप्त होंगें िो उसके समीप िायेगा। (शनरूपण - VII.17; XII.14, 20)

अडप चेतुसुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मतव्यः सम्यग्व्यवडसतो डि सः ।। ३० ।।

बि्र्थम : अशप - (भी) यद्यशप, चेत्-यशद, सुदुराचारः अत्यन्त दुराचारी, भिते-भिता है, माम् -मुझे, अनन्यभाक् - शकसी अन्य के प्रशत भम्भक् न रखते हुए (अनन्य भाव से), साधुः साधु, एव-ही, सः- वह, मन्तव्यः - माना िाना चाशहए, सम्यक् यर्ार्थ शनश्चय वाला, व्यवशसतः - दृढ़ संकल्प वाला, शह-शनशश्चत रूप से, सः वह ।

अनुवाद : अशतशय दुराचारी व्यम्भक् भी यशद अनन्य भाव से मेरी आराधना करता है तो वह साधु ही कहलाने योग्य है क्यों ंशक उसने सम्यक् शनश्चय (मेरे भिन का) कर शलया है।

व्याख्या : अत्यन्त पापी भी यशद भगवान् का भिन करता है तो वह अच्छा ही कहा िाना चाशहए क्योंशंक उसने दुराचार त्यागने का पावन संकल्प ले शलया है। िाकू रत्नाकर अपने अचे्छे संकल्प से वाल्मीशक बन गया। िगाई और मधाई (Jagai & Madhai) भी धमथ भक् हो गए। मेरी मैग्लीन (Mary Magdalene) िो कुख्यात नारी री, आदशथ नारी बन गई। हृदय में भगवान् का शवचार आते ही पाप लुप्त हो िाते हैं अर्वा नष्ट हो िाते हैं। चाायण और कृच्छ ित कुछ शवशेष पापों ंको ही नष्ट करेंगे शकनु्त भगवन्नाम, परम पुरुष के शवचार, िप, ध्यान और अभेद ब्र्ह्म शचन्तन (अैत ब्र्ह्म का शवचार अर्वा अहं ब्र्ह्माम्भस्म) शत कोशट कल्पों ंमें भी शकये गये समस्त पापों ंको नष्ट कर देता है।

बाह्य िीवन में बुराई का मागथ त्याग कर और अन्तमथन से सम्यक् संकल्प के िारा साधक साधु बन िाता है और शाश्वत शाम्भन्त को प्राप्त करता है। (शनरूपण-IV.36)

डक्षप्रं भवडत धमामिा िश्वच्छान्द्रतं डनगच्छडत ।
कौन्तेय प्रडतजानीडि न मे भक्तः प्रणश्यडत ।।३१ ।।

बि्र्थम : शक्षप्रम् - शीघ्र, भवशत-होता है, धमाथत्मा-धमाथत्मा, शश्वत् - शनत्य, शाम्भन्तम् - शाम्भन्त, शनगच्छशत - प्राप्त करता है, कौने्तय-कुम्भन्त पुत्र, प्रशतिानीशह-शनशश्चत िानो, न-नहीं,ं मेमेरा, भक्ः - भक्, प्रणश्यशत नष्ट होता है।

अनुवाद : वह शीघ्र ही धमाथत्मा हो कर शाश्वत शाम्भन्त को प्राप्त करता है। हे अिुथन, यह शनश्चय िानो शक मेरा भक् कभी नष्ट नहीं ंहोता।

व्याख्या : सुनो, यह सत्य है, अिुथन, तुम यह घोषणा कर सकते हो शक मेरे प्रशत अनन्य भम्भक्भाव वाला व्यम्भक् शिसने अपना अन्तमथन मुझे समशपथत कर शदया है, कभी नष्ट नहीं ंहोता।

मां डि पार्थम व्यपाडश्रत्य येऽडप सुयुः पापयोनयः ।
न्द्रस्त्रयो वैश्यास्तर्था िूद्रासे्तऽडप यान्द्रत परां गडतम् ।।३२ ।।

बि्र्थम : माम् -मुझे (मेरी), शह-शनशश्चत रूप से, पार्थ-हे पार्थ, व्यपाशश्रत्य शरण में आ कर, येिो, अशप-भी, सुयुः- हों,ं
पापयोनयः- पाप-योशनयाँ, म्भस्त्रयः-म्भस्त्रयाँ, वैश्याः- वैश्य, तर्-और, शूिाः शू, ते-वे, अशप-भी, याम्भन्त-प्राप्त करते हैं, पराम् -परम, गशतम् लक्ष्य को ।
अनुवाद : हे अिुथन, मेरी शरण में आ कर पाप योशनयों ंवाले स्त्री, वैश्य, शू भी परम लक्ष्य की प्राम्भप्त करते हैं।

व्याख्या : चाण्डाल और शनम्न िाशत के लोग पाप योशनयों ंके हैं। सामाशिक शनयमों ंके अन्तगथत स्त्री और शू वेदाध्ययन के अशधकारी नहीं ंहैं। शकनु्त भम्भक् आकांशक्षत है। पाररवाररक परम्पराओं ंकी कोई आवश्यकता नहीं ं है। िेि हार्ी ने मुझे स्मरण शकया और पशु होते हुए भी मुझे प्राप्त शकया। शनम्न से शनम्नतर और दुष्ट से दुष्टतर भी

मुझे प्राप्त कर सकता है यशद पूणथ शनष्ठा और शवश्वास से वे मेरे नाम का िप करें, मेरा शचन्तन करें और शकसी अन्य शवषय का शचन्तन न करें। प्रह्लाद राक्षस िाशत का रा शफर भी मुझे उसके शलए नृशसंह अवतार लेना पिा। िन्म की महत्ता नहीं ंभम्भक् ही सवथस्व है, गोशपयों ंने अपनी भम्भक् से मुझे प्राप्त शकया। कंस और रावण ने भय से मुझे पाया। शशुपाल ने घृणा से मुझे प्राप्त शकया। नारद, धुरुव, अकूरूर, शुक, सनतुकुमार और अन्यों ंने मुझे भम्भक् से प्राप्त शकया। दशक्षण भारत में शचदम्बरम् में एक शनम्न िाशत के व्यम्भक् नन्दन ने, िो भगवान् शव का अनन्य भक् रा, भगवान् के प्रत्यक्ष दशथन शकये। आध्याम्भत्मक िीवन में सब िाशत, मत, वणथ-भेद सवथरा लुप्त हो िाते हैं। शबरी, भीलनी होते हुए भगवान् की परम भक् री।

भारतीय धमथशास्त्र इन घटनाओं ंसे भरे पिे हैं। शहन्दू धमथ में मोक्ष शकसी शवशेष मानव समुदाय तक सीशमत नहीं ंहै। भम्भक् भाव हो तो सब को भगवत्-प्राम्भप्त का अशधकार है।

डकं पुनबामह्मणाः पुर्ण्ा भक्ता राजषमयस्तर्था ।
अडनत्यमसुखं लोकडममं प्राप्य भजस्व माम् ।। ३३ ।।

बािर्थम : शकम् पुनः-और शकतना, ब्राह्मणाः - ब्राह्मण, पुण्याः-पुण्य, भक्ाः - भक्, रािषथयः रािशषथ, तरा-भी, अशनत्यम् - अशनत्य, असुखम् - असुख, लोकम्-लोक, इमम् - यह, प्राप्य - प्राप्त कर के, भिस्व-पूिा करो, माम् मेरी।

अनुवाद : और शकतना (सहि रूप से) ब्राह्मण और रािशषथ भक् लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। इस दुःखद क्षणभङ्गुर लोक को प्राप्त कर के अब तुम मेरी आराधना करो।

व्याख्या : रािशषथ वे रािा हैं िो राज्य पालन की अवशध में सन्त बन गये।

िीवन का लक्ष्य प्राप्त करने का मुख्य साधन यह मानव शरीर बिे भाग्य से शमलता है। यह मानव शरीर पा कर तुम्हें भगवान् की भम्भक् में िीवन व्यतीत करना चाशहए। केवल मानव शरीर में ही शवचार शम्भक् होती है, शववेक शम्भक् और अनासम्भक् होती है। देवताओं ंको भी इस मानव शरीर से ईष्याथ होती है। यह शरीर अशनत्य है। शीघ्र ही नष्ट होने वाला है। यह शवशभन्न प्रकार की पीिाओं ंका घर है। अतः इस शरीर के शलए शवश्राम और सुख प्राप्त करने के शलए संघषथ छोिो । यह तन पाकर भी यशद तुम आत्म-साक्षात्कार को लक्ष्य नहीं ंबनाते तो तुम व्यर्थ ही िीते हो। तुम अपना िीवन व्यर्थ गंवा रहे हो और आत्म हनन कर रहे हो। आवागमन के चक्र में पुनः-पुनः आओगे।

मन्मना भव मिक्तो मद्याजी मां नमसुकुरु ।
मामेवैष्यडस युकै्त्वैवमािानं मत्परायणः ।।३४ ।।

बािर्थम : मन्मनाः मुझ में मन वाला, भव-होओ, मद्भक्ः - मेरा भक्त्त, मद्यािी-मुझे अशपथत करते हुए, माम् -मुझे, नमसुकुरु-प्रणाम करो, माम् -मुझे, एव-ही, एष्यशस प्राप्त करोगे, युक्त्वा-युक् हो कर, एवम् - इस प्रकार, आत्मानम् - आत्मा को, मत्परायणः- मुझे परम लक्ष्य मानते हुए।

अनुवाद : अपना मन मुझ में एकाग्र करो, मेरे भक् बनो, मेरे शलए यिन करो, मुझे प्रणाम करो। इस प्रकार पूणथ मन से मेरे परायण हो कर मुझे ही अपना लक्ष्य मान कर तुम मुझे प्राप्त करोगे।

व्याख्या : मेरे भाव से मन पूणथ करो। अपना मम्भस्तष्क, हृदय और हार् मुझ में एकाग्र करो। मेरे सम-स्वररत बनो। सि आराधक बनो। तुम शाश्वत शाम्भन्त प्राप्त करोगे। मुझे िान कर तुम मृत्युु को िीत लोगे ।

शबना शकसी आरक्षण के अपना समूपूणथ अम्भस्तत्व भगवान् को समशपथत करो। तब समूपूणथ िीवन एक अद्भुत रूप में पररवशतथत होगा। सवथत्र भगवान् के दशथन करोगे।

समस्त दु:ख और पिीाओं ंसे मुक् हो िाओगे। तुम्हारा मन शदव्य चेतना के सार् एक रूप हो िाएगा।

घट के टूटने पर िैसे घटाकाश (घट का आकाश) महदाकाश (ब्र्ह्माण्डीय आकाश) में शमल िाता है,
गंगा और यमुना िैसे अपना नाम और रूप त्याग कर सागर *लीन हो िाती हैं उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्म दशथन के िारा ज्ञानी सब प्रकार के सीशमत प्रशतबंधकों ं(limiting adjuncts) से मुक् हो कर पर ब्र्ह्म के सार् एकत्व स्र्ाशपत कर लेता है।

युक्त्वा का अशभप्राय है-शवचार में म्भस्र्र । इस प्रकार भगवान् में शचत को म्भस्र्र कर के, मुझे ही परम लक्ष्य और सवथभूतात्मा मान कर मुझे ही प्राप्त होगा। (शनरूपण-V.17; VII.7,14; XVIII.65)

इस अध्याय को अध्यात्म योग भी कहते हैं।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषत्सु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
राजडवद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ।।
।। इडत राजडवद्याराजगुह्ययोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर् दशमोऽध्यायः

शवभूशतयोगः

श्री भगवानुवाच

भूय एव मिाबािो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽिं प्रीयमाणाय वक्ष्याडम डितकाम्यया ।।१ ।।

शब्दार्थ : **भूयः- पुनः, एव**ि-ी, **मिाबािो**ि- **मिाबािो (अजुमन), सुनो, मे मेरा, परमम् परम, वचः वचन, यत्-जो, ते** तुम्हारे शलए, कशवता की सीममा सग-शप्रय के शलए, वक्ष्याशम कहाँगा, शहतकाम्या (तु शहलर) कल्याण

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : पुनरशप, हे महाबाहो अुिथन, मेरे परम (रहस्य मय) वचन को सुनो ो मैं तुझ शप्रय के कल्याण की कामना से कहाँगा।

व्याख्या : मैं (७वें और ९वें अध्याय में) अपने कहे हुए वचनों ंकी पुनरावृशत्त करूाँगा। मेरी मूल प्रकृशत और अशभव्यम्भक्यों ंका वणथन तो पहले ही हो चुका है। मेरे शदव्य स्वभाव को समझना अत्यन्त कशठन है, यद्यशप इस शवषय में मैं पूवथतः ही कह चुका हाँ पुनरशप एक बार और इस शवषय में कहाँगा। मैं अपनी शदव्य शवभूशतयों ंका उपदेश कर के तुम्हें शचन्तन योग्य शवभूशत के शलए अशभपे्ररत करूाँगा ।

मेरा उपदेश श्रवण कर के तुम्हें प्रसन्नता होती है इसशलए मैं तुम्हारे शलए उपदेश करूाँगा। अब तुम्हारा मन मुझ में रमण करने लगा है।

भगवान् अुिथन को प्रोत्साशहत और हशषथत करना चाहते हैं अतः अुिथन के शबना कहे ही स्वयं उपदेश के शलए आगे आते हैं।

परमं वचः-परम वचन । शनरशतशय वसुतु (unsurpassed truth) अर्ाथत् ब्र्ह्म को प्रकाशत करने वाला वचन परम बचन है। है अुिथन, तुम मेर वचन से अतीव हशषथत हो मानो अमृत-पान कर रहे हो।

न मे डवदुः सुरगणाःप्रभवं न मिषमयः ।
अिमाडदर्डिं देवानां मिषीणां च सवमिः ।।२ ।।

बि्ार्थम : न-नहीं, ं मे मेरा, शवदुि-िनते हैं, सुरगणाः- देवगण, प्रभवम् उद्भव, न नहीं, ं महषथयः महान् ऋशष, अहम् मैं, आशदः-आशद, शह-क्योंशंक, देवानाम् देवों ंका, महषीणाम् -महान् ऋशषयों ंका, च-और, सवथशः सब प्रकार से।

अनुवाद : न तो देवगण और न ही महशषथ गण मेरे उद्भव को िानते हैं क्योंशंक सभी देवों ंऔर महशषथयों ंका स्रोत मैं ही हाँ।

व्याख्या : प्रभवम्-उत्पशत्त । इसका अशभप्राय 'भगवदीय कृपा' भी हो सकता है।

महषथयः - भृगु आशद महान् ऋशष ।

समस्त प्राशणयों, ं ऋशषयों ंऔर देवों ंका मूल स्रोत मैं ही हाँ अतः उनके शलए मेरा ज्ञान प्राप्त करना दुष्कर है।

सवथशः सब प्रकार से। सभी ऋशषयों ंऔर देवताओं ंका मैं केवल उद्भव ही नहीं ंप्रतुयुत् शनशमत्त कारण भी हाँ और उनकी बुम्भद्ध आशद का पर् प्रदशथक, स्वामी, प्रणेता और अन्तरात्मा भी मैं ही हाँ।

यो मामजमनाडदं च वेडत्त लोकमिेश्वरम् ।
असंमूढः स मयेषु सवमपापैः प्रमुच्यते ।।३ ।।

बि्ार्थम : यः िो, माम्-मुझे, अिम्-अिन्मा, अनाशदम् अनाशद, च-और, वेशत्त िानता है, लोकमहेश्वरम् - लोकों ंका स्वामी, असंमूढः- अभ्रशमत ज्ञानवान), सः- वह, मत्यथषु-मनुष्यों ंमें, सवथपापैः-सब पापों ंसे, प्रमुच्यते -मुक् िाता है।

अनुवाद : मनुष्यों ंमें िो मुझे अनाशद, अिन्मा और लोकों ंका महान् स्वामी मानता है वह ज्ञानवान् है और समस्त पापों ंसे मुक् हो िाता है।

व्याख्या : ब्र्ह्म ही सब लोकों ंका मूल कारण होने से वह अनाशद है। महशषथयों ंऔर देवताओं ंका स्रोत होने के कारण उसकी शनि सत्ता का कोई स्रोत नहीं ंहै। वह अनाशद है इसशलए िन्म रशहत है और लोकों ंका शासक है।

असमूमूढः - भ्रम रशहत । वही पुरुष ज्ञानी अर्वा भ्रमरशहत है िो अपनी अन्तरात्मा को परमात्मा से पृर्क् नहीं ंसमझता। अज्ञान का आवरण दूर होने से

आत्मा-अनात्मा का परस्पर अध्यारोपण भी दूर हो िाता है। चेतन-अचेतन अवस्र्ा में शकये गये तीनों ं कालों ंके उसके पाप नष्ट हो िाते हैं।

अज्ञानी मनुष्य प्रायशश्चत्त कमों िारा अपने पापों ंका शनराकरण करता है और प्रशतफल भोग कर पुण्य कमों को क्षीण करता है। शकनुतु वह पापों ंसे पूणथतया मुक् नहीं ंहोता क्योंशंक बुरे संस्कारों ंवश वह पाप कमथ करता ही रहता है और उसने पापों ंके मूल कारण अज्ञान को भी दूर नहीं ंशकया है और उसके पररणाम-अहंकार (अहंभाव) और देह में आत्मा का अध्यास भी अभी शनवृत्त नहीं ंहुए। मृतूयूपरान्त, अगले िन्म में भी अशुभ संस्कारों ं के पर वश हुआ वह अशुभ कमथ में पुनः प्रवृत्त हो िाता है। शकनुतु आत्म ज्ञानी समस्त पापों ंसे पूणथतया मुक् हो िाता है क्यों ंशक पापों ंका मूल कारण अज्ञान और उसके पररणाम, देह को ही आत्मा मान लेना, पूणथ रूपेण पापों ं और संस्कारों ंसशहत नष्ट हो िाते हैं। भुने हुए बीिों ंकी भाँशत संस्कार पूणथ रूप से भस्म हो िाते हैं। भस्म हुए बीि िैसे पुनः अंकुररत नहीं ंहो सकते वैसे ही दग्ध संस्कार पुनः कमथ और पुनिथन्म नहीं ंदे सकते ।

अन्य (शनम्नशलम्भखत) कारण से भी मैं लोकों ंका शासक हाँ।

बुन्द्रद्धज्ञामनमसंमिोः क्षमा सत्यं दमः िमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ।।४ ।।

बिार्थम : बुम्भद्ध बुम्भद्ध, ज्ञानम् - ज्ञान, असंमोहः - असंमोह (ज्ञान), क्षमा-क्षमा, सत्यम् -सत्य, दमः- आत्म संयम, शमः-शाम्भन्त, सुखम् -सुख, दुःखम् दुःखा, भव-अम्भस्तत्व, अभावः-अभाव (अनम्भस्तत्व), भवम् -भय,च- और, अभयम्- अभय, एव -ही, च -और ।

अनुवाद : शनश्चयाम्भत्मका बुम्भद्ध, ज्ञान, असमूमूढता, क्षमा, सतय, मनोशनग्रह, इम्भिय-शनग्रह, सुख-दुःख, अम्भस्तत्व (िन्म), अनम्भस्तत्व (मृत्यु), भय और अभय भी

व्याख्या: अन्तःकरण चतुष्टय-मन, बुम्भद्ध, शचत्त, अहंकार में बुम्भद्ध सूक्ष्म शवषयों ंको समझने की एक शम्भक् है। आत्म ज्ञान ही ज्ञान अर्वा बुशद है। भ्रमरशहत होना असंमोह है। शकसी भी क्षण कोई कायथ सम्पन्नता अर्वा ज्ञान प्राम्भप्त के समय शववेक से काम लेना ही असंमोह है। अपमान होने पर मन की अनुशिग्नता धैयथ है। आक्रमण करने वाले अर्वा अपशब्द बोलने वाले के प्रशत बुरा भाव न रखना भी धैयथ है । तीनों ंप्रकार के ताप-आध्याम्भत्मक, अशधदैशवक और अशधभौशतक, शबना रुदन शकये सहन करना धैयथ है। ज्वर आशद आध्याम्भत्मक ताप हैं। अशत शीत, अतुयुष्णता, अशत वृशष्ट, मेघ गिथन और शवद्युतपात आशद आशददैशवक ताप है। वन्य-पशुओं ंसे भय, वृशश्चकदंश,सपथदंश आशद अशधभौशतक ताप हैं।

सत्य, सत्यवाशदता है। शुरुत (श्रवण शकये गये) अर्वा दृष्ट (देखे गये। शवषयों ंके प्रशत अपना वास्तशवक अनुभव बताना सत्यवाशदता है। इसमें शंकंशचत् मात्र भी अशतशयोम्भक् अर्वा तथ्यों ंकी अल्प मात्र भी पररणशत नही होती। बाह्य इम्भियों ंका शनग्रह दम है। यह कणथ, त्वचा, नेत्र, शिह्वा और नाशसका के अपने शवषय-शब्द, स्पशथ, रूप, रस और गन्ध से इम्भियों ंका संहरण है। शम मन की शाम्भन्त है िो इम्भिय-शवषयों ंसे मन को हटा कर और मनोशनग्रह से प्राप्त होती है।

सुखम् सुख, धमथ के अनुरूप िीवन िो समस्त प्राशणयों ंके शलए भी अनुकूल है, सुख कहलाता है। दुःख का मुख्य कारण अधमथ है िो समस्त प्राशणयों ंके शलए प्रशतकूल है, दुःखद है।

िो शदखाई देता है वह भाव है। सत् भाव है और असत् अर्वा अवास्तशवकता अभाव है।

अडिंसा समता तुडष्टस्तपो दानं यिोऽयिः ।
भवन्द्रत भावा भूतानां मत्त एव पृर्थन्द्रिधाः ।।५ ।।

बिार्थम : अशहंसा-अशहंसा, समता-सम भाव, तुशष्टः सन्तोष, तपः-तपस्या, दानम् -दान, यशः- यश, अयशः-अयश, भवम्भन्त-होते हैं, भावाः-भाव (गुण), भूतानाम् -प्राशणयों ंके, मत्तः- मेरे से, एव-ही, प्रकार के।

अनुवाद : अशहंसा, समता, तुशष्ट, तप, दान, यश, अपयश-प्राशणयों ंके ये शवशभन्न प्रकार के गुण मुझ से ही उत्पन्न होते हैं।

व्याख्या: मनसा, वाचा, कमथणा शकसी प्राणी को चोट न पहुँचाना अशहंसा है। समता वह अवस्र्ा है शिसमें मनुष्ट्य शप्रय-अशप्रय को प्राप्स्त कर के राग और देष से मुक् रहता है। इस मानशसक अवस्र्ा में शप्रय अर्वा अनुकूल पदार्थ

की प्राम्भप्त पर शवषाद नहीं ंहोता I तुशष्ट सन्तोष है। सन्तुष्ट व्यम्भक् प्रारब्ध से प्राप्त प्रत्येक अवस्र्ा में प्रसन्न रहता है। वह अपनी वतथमान उपलम्भब्धयों ंमें प्रसन्न है I वह लोभ से मुक् है अतः शान्त मन से शवचरण करता है। सन्तोष मनुष्ट्य को अत्यन्त धनवान बना देता है। यह लोभ को मारता है। लोभ तो धनवान को भी शभखारी बना देता है। लोभी मनुष्य सदा अशान्त रहता है। शनैः शनैः भोिन की मात्रा कम करने और उपवास के अभ्यास िारा शरीर और इम्भियों ंका संयम तपस् है। शरीर व इम्भियों ंकी शम्भक् उपवास िारा क्षीण होती है।

धनम्-यह उपकारपरता है। अपनी सामथ्यथ के अनुसार अपनी धन-सम्पशत्त का दान करना ही उपकार है। सुपात्र को शुभ देश काल में धान, स्वणथ, वस्त्र आशद देना और शवशेष कर ऐसे पात्र को देना िो प्रतुयुपकार में आपके शलए कुछ न कर सकता हो, 'धनम्' का गुण है।

यशस् - धमथ अर्वा सद्गुणों ंसे ख्याशत यश है।

अयशस् - अधमथ अर्वा पाप कमों से अकीशतथ अयश है।

प्राशणयों ंके कमाथनुसार ये शवशभन्न प्रकार के गुण, समस्त लोकों ंके स्वामी, मुझ से उद्भूत हैं।

मिषमयः सप्त पूवे चत्वारो मनवस्तर्था I
मिावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।।६ ।।

बि्ाथम : महषथयः - महान् ऋशष, सप्त-सात, पूवे-सनातन, चत्वारः- चार, मनवः मनु, तर्ा-और, मद्भावाः- मेरी शम्भक्यों ंसे युक् (मुझ में भाव वाले), मानसाः-मन से, िाताः-उत्पन्न, येषाम् -शिनकी, लोके-संसार में, इमाः– ये, प्रिाः सन्तान, प्राणी।

अनुवाद : सात महशषथ, चार उनसे पूवथ होने वाले (सनकाशद) और कर िो मेरी ही शम्भक्यों ंसे युक् है (क्योंशंक उनके मन मेरे में एकाग्र है), वे सबसे संकल्प से उत्पन्न हुए हैं और संसार की समस्त प्रिा उनसे में मैं अकेला र्ा, एक ही उत्पन्न है।

व्याख्या : प्रारम्भ में मैं अकेला र्ा, और मुझसे मन हुआ और मन से सात ऋशष (भृगु, वशसष्ठ आशद), चार सनातनः सनन्दन, सनतुकुमार और सनतुसुिाता) और पूवथ काल के सावशणथ आशद चार मनु, इन सब ने अनन्य मन से मेरा ध्यान शकया इसशलए ये सब शदव्य शम्भक्ये और उतूकृष्ट परम ज्ञान से युक् हुए।

पावन चार युवा कुमारों ंने पररणय सूत्र में बंध कर सन्तानोत्पशत्त करने के भाव को त्याग शदया। उन्ोंनें ब्र्ह्मचारी रह कर ब्र्ह्मशवचार का अभ्यास अर्वा ब्र्ह्म पर गहन ध्यान का संकल्प शलया।

वे सब मेरे िारा मेरे संकल्प से अम्भस्तत्व में आये। वे सब ब्र्ह्मा के मानस पुत्र हैं। सामान्य मनुष्य की भााँशत वे गभथ से उत्पन्न नहीं ंहुए। चराचर िगत के समस्त प्राणी सप्तशषथयों ंऔर चार मनुओं ंकी सन्तान हैं। महान ऋशष ब्र्ह्म शवद्या अर्ाथत् उपशनषदों ंके शाश्वत ज्ञान के प्रर्म आचायथ र्े। मनु मनुष्ेणे के शासक र्े। मानवता के उद्धार और पर्-प्रदशथन हेतु उन्ोंनें आचार-संशहता और धमथ संशहतायें बनाईं।

सात महान् ऋशष सात लोकों ंका प्रशतशनशधत्व करते हैं। ब्र्ह्माण्ड में महत् अर्वा वैशश्वक बुम्भद्ध, अहंकार अर्वा वैशश्वक अहम् और पंचतन्मात्र अर्वा पंच-मूल-तत्त्व शिनमें पााँच महान् तत्त्व पृथ्वी, िल, पावक, समीर और गगन सूल रूप हैं-सात ऋशषयों ंका प्रशतशनशधत्व करते हैं। यह चराचर सूल िगत् और सूक्ष्म आन्तररक िगत् इन

सात तत्त्वों ंसे प्रकट हुए है। पुराणवृत्त में इन सात तत्त्वों ंको लक्षणा से सात मानवीय नामों ंसे लशक्षत शकया गया है। भृगु, मरीशच, अशत्र, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशसष्ठ-ये सात ऋशष हैं।

सूक्ष्म िगत् में मनस् (मन), बुम्भद्ध, शचत्त और अहंकार चार मनुओं ंको लशक्षत करते हैं और उन्हें मानव-नाम शदये गये हैं। प्रर्म समूह शत्रभुवन का आधार बनाता है। शितीय समूह सूक्ष्म िगत् (व्यशष्ट िगत्) का आधार बनाता है। ये दो समूह वैज्ञाशनक िीवन के इस शवशाल ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं।

मद्भावा-मेरी प्रकृशत से युक्, मुझ में समाशहत।

एतां डवभूडतं योगं च मम यो वेडत्त तत्त्वतः ।
सोऽडवकिेन योगेन युज्यते नात्र संियः ।।७।।

शब्दार्थ : एताम्-इस, शवभूशतम् -शवभूशत को, योगम् - योग शम्भक् को, और, मम- मेरी, यः- िो, वेशत्त –िानता है, तत्वतः तत्त्व से, सः -वह, अशवकम्पेन -शनश्चल, योगेन -योग से, युज्यते-युक् हो िाता है, न -नहीं,ं अत्र-यहााँ (इसमें), संशयः- संशय।

अनुवाद : िो पुरुष मेरी इन शवशवध रूप अशभव्यम्भक्यों ंऔर योग शम्भक् को तत्त्व से िानता है वह शनश्चल योग में म्भस्र्त हो िाता है, इसमें कोई संशय नहीं।ं

व्याख्या : भगवान् की ऐश्वयथमयी शवभूशत का ज्ञान वसुतुतः योग में शहतकर है। भगवान् की अशभव्यम्भक्यों ंऔर शवशवध शवभूशतयों ंकी कारण रूपा उनकी अन्तरस्र् सवथव्यापी शम्भक् को तत्त्व से िानने वाला व्यम्भक् उनके सार् अटल योग से एकत्व प्राप्त कर के शाश्वत शाम्भन्त और पूणथ समत्व को प्राप्त होता है। चीटी से लेकर ब्रह्मापयथन्त भगवान् के अशतररक् अन्य कुछ भी नहीं।ं िो भगवान् की इस शवसृतृत अशभव्यम्भक् और योग को िानता है, वह दृढ़ अशवकम्प योग से युक् हो िाता है। (अशभव्यम्भक् और योग में-योग का अशभप्राय है िो योग से प्रकट हुआ है अर्ाथत् अनन्त यौशगक शम्भक्याँ और सवथज्ञता)। वह शनत्य सत्ता में वास करता है और आत्मा के सविो, उतृकृष्ट ज्ञान से संपन्न होता है। इस सत्य का ज्ञान करने पर मनुष्य वरीयता (superiority) और हीनता (inferiority) के भावों ंसे मुक् हो िाता है। उसमें वास्तशवक ज्ञान का उदय होता है। वह सब प्राशणयों ंमें भगवान् के और भगवान् में सब प्राशणयों ंके दशथन करता है। वह शकसी िीव से घृणा नहीं ंकरेगा। यह एक शवरल वैशश्वक अनुभूशत है। योगी िान लेता है शक भगवान् तर्ा उनकी अशभव्यम्भक्याँ पृर्क् पृर्क् नहीं ंहैं, एक ही हैं। वह परम लक्ष्य की प्राम्भप्त करता है और अनन्य भम्भक् भाव से उसमें (भगवान् में) समा िाता है। मेरे शदव्य योग के िारा उसे परमात्मा के सार् एकत्व की पूणथ िागृशत होती है।

परमात्मा के सार् अपने एकत्व की चेतना को शबना खोये वह शकया भी पररम्भस्र्शत और पररवेश में अपने मन का सनुतुलन बनाये रखने में सक्षम होगा है। (शनरूपण-VII.25; IX.5; X1.8)

वह अशवचल योग कौन सा है शिससे वे युक् होते हैं? उत्तर है...

अिं सवमस्य प्रभवो मत्तः सवं प्रवतमते ।
इडत मत्वा भजते मां बुधा भावसमन्द्रन्वताः ।।८ ।।

बि्ार्थम : अहम् -मैं, सवथस्य -सब का, प्रभवः- स्रोत, मत्तः -मुझसे, सवथम् -सवथस्व, प्रवतथते-उत्पन्न होता है, इशत-इस प्रकार, मत्वा-समझ कर, भिने्ते -आराधना करते हैं, , माम् -मेरी, बुधाः- ज्ञानीन,भावसमम्भिताः- ध्वान युक् होकर ।

अनुवाद : मैं सब का मूल स्रोत हाँ। मुझ से सवथ सृशष्ट के पदार्थ अम्भस्तत्व में आते हैं। इस प्रकार समझकर बुम्भद्धमान् लोग भावपूणथ हृदय से मेरा ही भिन करते हैं।

व्याख्या : िल में लहरें उठती हैं उसी पर आधाररत रहती हैं और अन्त में िल में ही लीन हो िाती हैं। लहरों ंका एकमात्र अवलम्बन िल है। इसी भााँशत समूपूणथ िगत् का एकमात्र अवलम्बन भगवान् है। इतना शववेक होने बर शविान् भगवान् की सवाथत्मकता का अनुभव करते हुए भम्भक् और पे्रम से उसकी आराधना करते हैं। सब देशों ंमें, सब कालों ंमें परम पुरुष तो वही एक । वह शनशमत्त कारण भी है और उपादान कारण भी है।

अव्यक् मूल प्रकृशत के रूप में भगवान् सब रूपों ंका स्रोत है। वे अवुयुत्पन्न िगत् हैं। वे अपनी शम्भक् (शक्रयात्मक शम्भक्) पर दृशष्टपात करते हैं और समूपूणथ िगत् का उद्भव होता है और रूप गशतशील होते हैं। कुशाग्र और क्षम बुम्भद्ध से शून्य सांसाररक व्यम्भक् पररवतथशील स्वरूपों ंको स्रूल नेत्रों ंसे देखता है। भीतर शवराशित आत्मा, अवलम्बन, सवथव्याप्त बुम्भद्ध अर्वा आनन्द स्वरूप चेतना का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं ंहोता। वह तो अशनत्य रूपों ंमें आकृष्ट्ट् होता है। इन क्षशणक रूपों ंमें वह अपने सुख और आशाओं ंको ढूाँढता है। उन्ीं ंके शलए वह िीता है और संघषथ करता है। पत्नी और सन्तान की प्राम्भप्त पर वह ल्लास में झूमूता है ये रूप यशद लुप्त हो िायें तो दुःख के सागर में िूब िाता है। शकनुतु बुम्भद्धमान् सदा परमात्मा में वास करते हैं िो सब िीवों ंका प्रभव है। वे उस सम्भिदानन्द स्वरूप अमर अन्तरात्मा में, िो उनका अपना ही अिैत आत्मा है, आनन्द लेते हैं, यद्यशप उनके सवथतः रूप पररवशतथत होते रहें अर्वा लुप्त होते रहें उन पर कोई प्रभाव नहीं ंप़िता। वे योग में दृढ़ हैं। वे अचल योग से युक् हैं। वे योग में अशभशषक् हैं अर्ाथत् योग रूपी शसंहासन पर आरूढ़ हैं। गहन ध्यान में वे परमात्मा की वन्दना करते हैं और अशनवथचनीय शनशवथकल्प समाशध का आनन्द लेते हैं।

वासुदेव के रूप में परब्र्ह्म समस्त संसार के मूल कारण हैं। उन्ीं ंसे सृशष्ट का उद्भव और शवकास समस्त पररवतथनों ंसशहत अर्ाथत् म्भस्र्शत, शवनाश, शक्रया, फल और भोग होता है। इतना िान कर ज्ञानी परम पुरुष की आराधना करते हैं और परमात्मा में समाशधस्् होते हैं। (शनरूपण - IX.10)

मन्द्रित्ता मगतप्राणा बोधयतः परस्परम् ।
कर्थयतश्च मां डनतं्यं तुष्यन्द्रत च रमन्द्रत च ।।९ ।।

बि्ार्थम : मम्भित्ताः मुझ में पूणथतया शचत्त लगाने वाले, मितप्राणाः-मुझ में ही, प्राणों ंको अशपथत करने वाले, बोधयन्तः- बोध करते हुए, परस्परम् - आपस में, कर्यन्तः-कहते हुए, च-और, माम् -मुझे, शनत्यम् -शनत्य, तुष्यम्भन्त-संतुष्ट होते हैं, च-और, रमम्भन्त-प्रसन्न होते हैं, च और ।

अनुवाद : अपने मन और िीवन मुझ में लीन कर के एक-दूसरे को ज्ञान-प्रकाश देते हुए और सदा मेरा गुणगान करते हुए वे प्रसन्न और सनुतुष्ट रहते हैं।

व्याख्या : ईश्वर सायुज्य प्राप्त करने वाले भक्ों ंकी शवशेषताओं ंका वणथन इस श्लोक में शकया गया है। भक् सतत भगवद् शचन्तन करता है। उसका िीवन ही उसी को समशपथत होता है। एक अन्य व्याख्या के अनुसार-उसकी समस्त इम्भियााँ (िो प्राण के कारण गशतशील होती हैं) िैसे नेत्र आशद सब भगवान् में लीन हो िाती हैं। भगवतचचाथ में उसे अपार हषथ होता है। उनके अलौशकक बुम्भद्धसामथ्यथ, शवलक्षण शम्भक्, पराक्रम एवम् अन्य शवभूशतयों ंका वह

गुणगान करता है। वह पूणथतया भगवान् को समशपथत होता है। वह इतने आनन्द और तुशष्ट का अनुभव करता है मानो अपने शप्रयतम (भगवान्) की सशन्नशध में हो। पुराण का कर्न है-भूलोक के समस्त शवषय-सुख और स्वगथलोक के अनन्त सुख शमला कर उस आनन्द का सोलहवााँ अंश भी नहीं ंहै ो इच्छाओं ंऔर तृष्णाओं ंको शमटाने से प्राप्त होता है। (शनरूपण-XII.8)

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीडतपूवमकम् ।
ददाडम बुन्द्रद्धयोगं तं येन मामुपयान्द्रत ते ।।१० ।।

शब्दार्थ : तेषाम् - उनको, सततयुक्तानाम् -शनत्य युक्, भिताम् -पूिा करते हुए, प्रीशतपूवथकम् -प्ेरेमभाव से, ददाशम देता हाँ, बुम्भद्धयोगम् - शववेकयोग, तम्-उस, येन-शिसके ारा, माम् -मुझे, उपयाम्भन्त-प्राप्त होते हैं, ते-वे।

अनुवाद : योग में शनत्य युक् प्रीशतपूवथक मेरा भिन करने वाले (साधकों) ं को मैं शववेकयोग प्रदान करता हाँ शिसके ारा वे मुझे प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : वही भक् शदव्य (दैवी) कृपा के अशधकारी होते हैं ो भगवान् को समशपथत हैं, सदा समम्भित (समरस) हैं, आत्मस्् हैं, भम्भक्युक् हैं और अनन्य प्ेरेम से उसकी आराधना करते हैं, स्वार्थभाव से नहीं। ं भगवान् उनें् आत्म-ज्ञान की प्राम्भप्त हेतु बुम्भद्धयोग प्रदान करते हैं। उन पर शचत्त शनमग्न करने वाले भक्ों ंको भगवान् सम्यक् ज्ञान की भम्भक् (बुम्भद्धयोग) प्रदान करते हैं शिससे भक्गण उनें् तत्त्व से ान सकें। गहन ध्यान में प्रज्ञा चकुषु के ारा वे उस परमात्मा के दशथन करते हैं ो सब में एक है, सब का आत्मा है और सब सीमाओं ंसे परे है, उसे वे शनि आत्मा के रूप में देखते हैं। यहााँ 'बुम्भद्ध' शब्द अन्तज्ञाथन के नेत्र का संकेत करता है शिसके ारा एकत्व का शवलक्षण, अलौशकक अनुभव प्राप्त होता है। बुम्भद्धयोग ही ज्ञान योग है। (शनरूपण -IV.39.XII.6.7)

भगवान् अपने भक्ों ंको यह बुम्भद्ध योग क्यों ंदेते हैं? साधक अर्वा भक् के मागथ की कौन सी कशठनाइयों ं को बुम्भद्ध योग दूर करता है ? इसका उत्तर अगले श्लोक में है।

तेषामेवानुकिार्थमिमज्ञानजं तमः ।
नियाम्यिाभावथर्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।।११।।

बि्ार्थम : तेषाम् -उनके, एव-ही, अनुकम्पार्थम् - अनुग्रह करने के शलए , अहम् -मैं, अज्ञानिम्-अज्ञान से उत्पन्न, तमः - अन्धकार, नाशयाशम -नाश करता हाँ, आत्मभावस्:- आत्मा में म्भस्त, ज्ञानदीपेन-ज्ञान दीप के ार, भास्वता-प्रकाशमान् ।

अनुवाद : उनके अन्तःकरण में शवराशित मैं केवल उन पर अनुकम्पा कर के उनके अज्ञान ि शनत अन्धकार को ज्योशतमथय ज्ञान के दीप से दूर करता है।

व्याख्या : ज्ञान दीपेन भास्वता-भगवान् उन भक्ों ंके हृदय में सतत भास करते हैं ो अनवरत रूप से उनका शचन्तन करते हैं। वे उनके भीतर के अशववेक से उत्पन्न अज्ञानान्धकार के आवरण को ज्ञान के ऐसे प्रकाशमान् दीप हे दूर करते हैं शिसमें पशवत्र भम्भक् का तेल हो, गहन ध्यान की स्वच्छ शनमथल वायु का उद्दीपन (पंखा) हो, सतत ब्ह्मचयथ के अभ्यास, शुशचता तर्ा अन्य शदवय् गुणों ंसे उद्भूत सहिावबोध की वशतथका (बाती) हो, शिसका आलंबन सांसाररकता से शून्य हृदय कोष्ठ हो, म्भस्र्शत मन के अन्तस्तम कोण में हो ो शवषय-वासनाओं ंके झोंकें (हवा) से

दूर हो, रागद्वेष से रशहत शनष्कलंक हो और ध्यान के अनवरत अभ्यास के कारण प्राप्त ज्ञान के प्रकाश से देदीप्यमान हो ।

दीप को अन्धकार हटाने के शलए शकसी साधन अर्वा शकसी प्रकार के अभ्यास की आवश्यकता नहीं ंहै। अन्धकार के शनवारण हेतु मात्र प्रकाश उत्पन्न करना ही पयाथप्त है। प्रकाश के िारा अन्धकार दूर होता है, पात्र, कुसी आशद सभी-वसुतुएँ दृशष्टगत होने लगती हैं। एवंशवध आत्म-ज्ञान के उदय होने पर अज्ञान स्वयं दूर होने लगता है। शकसी अन्य कमथ अर्वा अभ्यास की आवश्यकता नहीं ंहै। आत्म-ज्ञान का सूयथ िब अज्ञान रूप अन्धकार को दूर करता है तो केवल ब्र्ह्म ही अपनी अपूवथ मशहमा से अशभभाशसत होता है।

अजुमन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पडवत्रं परमं भवान् ।
पुरुषं िाश्वतं डदव्यमाडददेवमजं डवभुम् ।।१२ ।।

ब्र्िाथम : परम् -परम, ब्र्ह्म-ब्र्ह्म, परम् - परम, धाम-धाम (आश्रय), पशवत्रम् - पशवत्र, परमम् -परम, भवान् -आप, पुरुषम् -पुरुष, शाश्वतम्- शाश्वत, शदव्यम् - शदव्य, आशददेवम् -सनातन देव, अिम् - ि न्मरशहत, शवभुम् - सवथव्यापक ।

अजुमन ने किा

अनुवाद : आप परम ब्र्ह्म है, परम धाम है (परम प्रकाश स्वरूप है) परम पशवत्र हैं, शाश्वत हैं, शदव्य पुरुष है, सनातन देव है, िन्मरशहत और सवथव्यापक हैं।

"वयख्या : परं ब्र्ह्म-सविो आत्मा । परं शब्द पावन शनगुथण शनत्य तत्व (परमात्मा) की ओर संकेत करता है िो सीशमत अनुबंधों ंसे परे हैं। यह सम्भिदानन्द ब्र्ह्म है। गौण ब्र्ह्म सगुण ब्र्ह्म (ईश्वर) है अर्वा सीशमत अनुबंधों ंसशहत ब्र्ह्म है अर्वा भक्तों ंिारा चयन शकया गया ध्यान का शवषय है शिसे ब्र्ह्म की संज्ञा दी िाती है।

परम धाम-परम तिः । ब्र्ह्मा से लेकर तृण पयथन्त परब्र्ह्म ही सब का आधार है इसीशलए उसे परम धाम (आश्रय स्र्ल) कहा िाता है।

आशद देव-सनातन शाश्वत ब्र्ह्म िो सब देवों ंसे पूवथ भी अम्भस्तत्ववान् र्ा। यह परं ब्र्ह्म है और स्वयं प्रकाश है।

पशवत्रं परमम्-परम पशवत्रकत्ताथ । पावन नशदयाँ और धाशमथक वीर्थस्र्ल केवल पापों ंका शवनाश कर सकते हैं शकन्तु परं ब्र्ह्म समस्त पापों ंको नके मूल कारण, अज्ञान को भी नष्ट करने में सक्षम है। अतः परम शनत्य तत्त्व को परम पशवत्र कहा गया है।

आहस्त्वामृषयः सवे देवडषमनामरदस्तर्था ।
अडसतो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीडष मे ।।१३ ।।

बि्ार्थम : आहुः-कहते हैं, त्वाम् - आपको, ऋषयः -ऋशषगण, सवे-सब, देवशषथ-देवशषथ, नारदः - नारद, तऱ्-भी, अशसतः -अशसत, देवल:-देवल, व्यासः - व्यास, स्वयम्-आप, च-और, एव-ही, प्रवीशष-कहते हो, मे-मुझे।

अनुवाद : समस्त ऋशष, देवशषथ नारद भी और असशत, देवल, व्यास ने आपके शलए (ऐसी) घोषणा की है और अब आप मुझे भी वही कह रहे हैं।

व्याख्या: ऋशष-संयत मन और इम्भियों ंसे युक् पशवत्र तपस्वी ऋशष देवशषथ-ऋशष से भी उतूकृष्टतर, दैवी ऋशष ।

सवमेतदृतं मन्ये यन्मां वदडस किव ।
न डि ते भगवन्ब्व्यन्द्रक्ंतं डवदुदेवा न दानवाः ।।१४।।

शब्दार्थ : सवथम् -सब, एतत्-यह, ऋतम् -सत्य, मन्ये-मानता हाँ, यत्ि-ो, माम् -मुझे, वदशस—आप कहते हैं, केशव- हे केशव, न-नहीं,ं शह-शनशश्चत रूप से, ते -आपका, भगवन् - हे भगवन्, व्यम्भक्म् - अशभव्यम्भक्, शवदुि-ानते हैं, देवा-देवगण, न-नहीं,ं दानवाः-असुर ।

अनुवाद : हे केशव, आप मुझे ि ो कुछ भी बता रहे हैं वह सब मैं सत्य मानता हाँ। शनशश्चत रूप से भगवन्, न तो देवता और न ही दानव आपके उद्भव (अशभव्यम्भक्) को ि ानते हैं।

व्याख्या : भगवान् वह है शिसमें छः गुण पूणथता में शवद्यमान हों।ं वे गुण हैं-ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वयथ, धमथ, श्री और बल। और भी ि ो समस्त प्राशणयों ंके उद्भव, प्रलय और भशवष्य को ि ानता है और ि ो सवथज्ञ है वह भगवान् है।

व्यम्भक्-उद्भव ।

दानवः राक्षस ।

ि ुथन भगवान् को केशव (सब का स्वामी) कह कर पुकारते हैं क्योंशंक भगवान् ि ानते हैं शक उसके मन में क्या चल रहा है क्योंशंक वे सवथज्ञ हैं। क्योंशंक भगवान् ही देवों ंऔर दानवों ंतऱ् अन्य प्राशणयों ंके मूल स्रोत हैं। अतः वे भगवान् की अशभव्यम्भक् का ज्ञान नहीं ंकर सकते।

स्वयमेविानाऽानिं वेत्थ त्ंवं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतिे देवदेव जगत्पते ।।१५ ।।

बि्ार्थम : स्वयम् - आप स्वयं, एव-ही, आत्मना-आत्मा से, आत्मानम् - आत्मा को, वेत्थि-ानते हो, त्वम्-आप, पुरुषोत्तम- हे पुरुषोत्तम, भूतभावन-प्राशणयों ंके स्रोत, भूतेशि-ीवों ंके स्वामी, देवदेव-देवों ंके देव, ि गत्पतेि-गत् के स्वामी।

अनुवाद : हे पुरुषोत्तम, हे ि ीवों ंको उत्पन्न करने वाले, उन पर शासन करने वाले भूतेश, हे देवों ंके देव, हे ि गत् शनयन्ता प्रभु आप स्वयं ही अपनी आत्मा से आत्मा को ि ानते हो अऱ्थत् अपने ि ारा स्वयं को ि ानते हो ।

व्याख्या: पुरुषोत्तम का अशभप्राय है पुरुषों ंमें उत्तम (सवथशऱ्ेष्ठ)। ये चार रूप धारण करते हैं-भूतभावन, भूतेश, देवदेव और ि गत्पशत, अतः वे पुरुषोत्तम कहलाते हैं।

देवदेव-इिऔर अन्य देवता भी शिसकी पिूा करते हैं वे देवदेव है।

गित्पशत-भगवान् संसार की रक्षा करते हैं और वेदशवशहत आदेशों ्के अनुरूप संसार का पर्-प्रदशथन करते हैं अतः वे ि गत्पशत हैं।

वकुतुमिमस्यैषेण डदव्या ह्यािडवभूतयः ।
याडभडवमभूडतडभलोकाडनमांस्त्वं व्याप्य डतिडस ।।१६ ।।

बिार्थम : वकुम् -कहने में, अहथशस -समर्थ हैं, अशेषेण-पूणथता से, शदव्या-शदव्य, शह-शनशश्चत रूप से, आत्मशवभूतयः
अपनी शवभूशतयों ्को, याशभः- शिनके ि ारा, शवभूशतशभः - शवभूशतयों ्से, लोकान् -लोकों ्को, इमान् -इन, त्वम् -आप, व्याप्य-व्याप्त करके, शतष्ठशस-म्भस्त हैं।
अनुवाद : शिन शवभूशतयों ्से इन लोकों ्में व्याप्त हो कर आप म्भस्त हैं उन शदव्य शवभूशतयों ्का पूणथ रूप से वणथन करने में शनश्चयेन आप ही समर्थ हैं।

कर्ंथं डवद्यार्मि योडगंस्त्वां सदा पररडचतयन् ।
केषु केषु च भावेषु डचन्त्योऽडस भगवन्मया ।।१७ ।।

बिार्थम : कर्म् कैसे, शवद्याम् - ि ानूाँ, अहम् - मैं, योशगन् -हे योगेश्वर, त्वाम् आपको, सदा-सदा, पररशचन्तयन् - ध्यान करता हुआ, केषु-केषु -शकन-शकन, च-और, भावेषु-भावों ्में, शचन्त्यः - शचन्तन के योग्य, अशस-हो, भगवन् -हे भगवन्, मया-मेरे ि ारा।

अनुवाद : हे योगेश्वर, शकस प्रकार आपका ध्यान करता हुआ मैं आपको ि ान सकूाँगा? हे भगवन्, आप शकन-शकन भावों ्में मेरे ि ारा शचन्तन के योग्य हैं?

व्याख्या : अिुथन ने कहा- "हे भगवन्, सतत ध्यान ि ारा मैं आपको शकस प्रकार ि ान सकता हाँ? शकन भावों ्में आप मेरे शचन्तन में आ सकते हैं? यशद मुझे आपकी शवभूशतयों ्का ज्ञान हो तो बाह्य शवषयों ्की शवशेष अशभव्यम्भक्यों ्में भी मैं आप पर अपना मन म्भस्र कर सकता हाँ। अतः मुझ पर अनुज्ञा कर के अपनी शवभूशतयों ्का शनःशेष रूप से वणथन कीशिए। तभी मैं सवथत्र समस्वरूप (एकत्व) दशथन कर सकने में सक्षम हो सकता हाँ।

डवस्तरेणािानो योगं डवभूडतं च जनादमन ।
भूयः कर्थय तृन्द्रप्तडिम शृण्वतो नान्द्रस्त मेऽमृतम् ।।१८ ।।

बिार्थम : शवस्तरेण -शवस्तार से, आत्मनः अपना, योगम् -योग, शवभूशतम् - शवभूशत को, तुशष्ट, और, ि नादथन से निादथन, भूयः-पुनः, कर्य- कहो, तृम्भप्तः सनुतुशष्ट, शह-क्योंशंक, शृण्वतः सुनते हुए, न नहीं,् अम्भस्त-है, मे -मेरी, अमृतम्
अमृत ।
अनुवाद : हे कृष्ण, अपनी शवभूशत और योग शम्भक् का पुनः शवस्तार से वणथन कीशिए क्योंशंक आपकी प्राण संचाररणी अमृतमयी वाणी का श्रवण कर के अभी मैं तृप्त नहीं ्हुआ हाँ।

व्याख्या : भगवान् को ि नादथन कहा ि ाता है क्योंशंक सभी ि नगण सफलता, सुख-समृम्भद्ध और मोक्ष-प्राम्भप्त के शलए उनको ही प्रार्थना करते हैं। अिुथन भी उनसे प्रार्थना कर रहा है शक भगवान् उसे अपनी योग शम्भक् से पररशचत करायें, शवभूशत के दशथन करायें और उसे मोक्ष प्रदान करें।

अिुथन भगवान् कृष्ण से कहते हैं- "शवस्तार से मुझे अपनी रहस्यात्मक योग शम्भक् और ऐश्वयथ के दशथन कराओ और शचन्तनशील शवषयों ंका उपदेश करो। यद्यशप सप्तम् और नवम् अध्याय में आपने समासतः (संक्षेप में) वणथन शकया है तर्ाशप पुनः शवस्तार से बताने की कृपा करें क्योंशंक आपकी अमृतमयी वाणी सुन कर अभी तृम्भप्त नहीं ंहुई है। शितना अशधक श्रवण करता हाँ उतनी ही अशधक श्रवण की इच्छा बढ़ती है और मुझे सनु्तुशष्ट नहीं ंहोती। शनस्सने्देह यह मेरे शलए अनश्वरता का अमृत है।

श्री भगवानुवाच

ति ते कर्थडयष्याडम डदव्या ह्यािडवभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुशे्रि नास्त्यतो डवस्तरस्य मे ।।१९ ।।

बि्ार्थम : हन्त-अच्छा, अब, ते-तुम्हारे शलए, कर्शयष्याशम -कहाँगा शदव्याः -शदव्य, शह -शनशश्चत रूप से, आत्मशवभूतयः-अपनी शवभूशतयााँ, प्राधान्यतः - प्रधान रूप से, कुरुशे्रष्ठ- हे कौरवों ंमें शे्रष्ठ, 7 - 76 , अम्भस्त-है. अन्त-अन्त, शवस्तरस्य-शवस्तार का, मे-मेरे।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : बहुत अच्छा (सुष्टु्), अब मैं अपनी शदव्य (देव लोक की) शवभूशतयों ंका प्रधान रूप से उपदेश करूाँगा क्योंशंक हे अिुथन, उनके शवस्तारपूवथक वणथन का तो कोई अन्त ही नहीं ंहै।

व्याख्या : अब मैं तुम्हें अपनी अत्यन्त महत्त्वपूणथ शवभूशतयों ंके शवषय में बताऊाँगा। मेरी मशहमा अपरम्पार है, उन सब का वणथन करना सम्भव नहीं ंहै।

अिमाा गुािके सवमभूतायन्द्रथर्थतः ।
अिमाडदश्च मध्ंयं च भूतानामत एव च ।। २० ।।

बि्ार्थम : अहम् मैं, आत्मा-आत्मा, गुिाकेश गुिाकेश, सवथभूताशयम्भस्तः -सब प्राशणयों ंके हृदय में म्भस्त, अहम् - मैं, आशदः-आशद, च-और, मध्यम् -मध्य, च-और, भूतानाम् -सब प्राशणयों ंका, अन्तः- अन्त, एव-ही, चऔर।

अनुवाद : हे गुिाकेश (अिुथन), मैं सब प्राशणयों ंके हृदय में म्भस्त आत्मा हाँ। सभी प्राशणयों ंका आशद, मध्य और अन्त भी मैं ही हाँ।

व्याख्या : हे गुिाकेश, सब िीवों ंके हृदय में म्भस्त प्रत्यगात्मा मैं हाँ। मैं ही सृशष्ट के िीवों ंका उद्भव, म्भस्शत और अन्त हाँ, मैं ही सब का िन्म, िीवन और मृतुयु हाँ। अन्तस्तम आत्म रूप में मेरा ध्यान करो।

गुिाकेश-शनिायी अर्वा घने बालों ंवाला।

अभेदभावना से आत्मा पर शचत्त एकाग्र करने वाला प्रर्म शे्रणी का अशधकारी साधक है। िो भगवान् पर शचत्त एकाग्र करने, ध्यान लगाने में असमर्थ है, वे शनम्नवशणथत शवषयों ंमें भगवान् का ध्यान करें। मध्यम शे्रणी के साधकों ंके शलए यह ध्यान की शवशध है।

आडदत्यानामिं डवषुणुर्थीडतषां रडवरंुमिान् ।
मरीडचममरुतामन्द्रस्म नक्षत्राणामिं िि ।।२१ ।।

बिार्थम : आशदत्यानाम् - आशदत्यों ंमें, अहम् -मैं, शवषुणुः - शवषुणु, ज्योशतषाम् - ज्योशतयों ंमें, रशवः-सूयथ, अंशुमान्- देदीप्यमान (शकरणों ंसे युक्), प्ररीशच मरीशच, मरुताम्मरुतों ं(वायु देवताओं)ं में, अम्भस्म हाँ, नक्षत्राणाम्-नक्षत्रों ं (शसतारों)ं में, अहम् -मैं, शशी-चिमा।

अनुवाद : (बारह) आशदत्यों ंमें मैं शवषुणु हाँ, ज्योशतयों ंमें मैं प्रकाशमान् सूयथ है, सप्त या उनचास मरुतों ंमें मैं मरीशच हैं। नक्षत्रों ंमें मैं चिमा है।

वयखय : िादश आशदत्यों ंमें मैं शवषुणु आशदत्य हाँ। धत्त (Dhatta), शचत्र, अर्थमा, रिु, वरुण, भग, सूयथ, शववस्वान, पूषन्, सशवता, त्वष्टा और शवषुणु वे िादश आशदत्य हैं। वषथ के िादश मास आशदत्य हैं।

वायुओं ंको शनयम्भन्त्रत करने वाले देव मरुत हैं। कुछ लोग उनकी गणना ज्ञात मानते हैं, अन्य उन्चास मानते हैं।

ािदश आशदत्य, अशग्न, शवद्युत आशद ज्योशतयां, मरुत, नक्षत्र आशद भावान् की सामान्य शवभूशतयां हैं। शवषुणु, सूयथ, मरीशच और चि शवशेष शवभूशतयां हैं इसीशलए उनमें अपेक्षाकृत अशधक ति है।

सूयथ और चिमा पर भगवान् को अशधशष्ठत कर के उनको भगवान् के रूप मान कर उन पर ध्यान कर सकते हैं। इस अध्याय के आगे के श्लोकों ंमें शदये गये रूपों ंपर भी आप ऐसे ही ध्यान कर सकते हैं।

वेदानां सामवेदोऽन्द्रस्म देवानामन्द्रस्म वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चान्द्रस्म भूतानामन्द्रस्म चेतना ।।२२ ।।

बिार्थम : वेदानाम् -वेदों ंमें, सामवेदः-सामवेद, अम्भस्म (मैं) हाँ, देवानाम् देवों ंमें, अम्भस्म— (मैं) हाँ, वासवः- इि, इम्भियाणाम् - इम्भियों ंमें, मनः-मन, च-और, अम्भस्म—(मैं) हाँ, भूतानाम् - िीवों ंमें, अम्भस्म (मैं) हाँ, चेतना-चेतना ।

अनुवाद : वेदों ंमें मैं सामवेद हाँ, देवताओं ंमें इि हाँ, इम्भियों ंमें मन और िीवों ंमें मैं चेतना हाँ।

व्याख्या : वासवः इि, देवाः-रिु, आशदत्य आशद देवता ।

इम्भियाः-पााँच ज्ञानेम्भियां अर्ाथत् कणथ, त्वचा, नेत्र, शिह्वा और नाशसका (घ्राणेम्भिय) ।

पााँच कमेम्भियां-वाक्, हस्त, पाद, गुदा, उपस्र्। मन को ग्यारहवीं ंइम्भिय माना िाता है। मन के शबना इम्भियां अपना कायथ स्वयं नहीं ंकर सकतीं ंइसशलए मन प्रमुख इम्भिय है।

चेतना-बुम्भद्ध की वह चैतन्यावस्र्ा िो शरीर और इम्भियों ंमें समग्रता से शवद्यमान है अर्वा व्याप्त है। बुम्भद्ध से लेकर स्रू्ल पयथन्त िो सब को प्रकाशत करती है वह चेतना है।

रुद्राणां िंकरश्चान्द्रस्म डवत्ेतिी यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चान्द्रस्म मेरुः डिखररणामिम् ।।२३ ।।

बि्ार्थम : रुिाणाम् - रुिों ंमें, शंकरः-शंकर, च-और, अम्भस्म (मैं) हाँ, शवत्तेेश-कुबेर, यक्षरक्षसाम् यक्ष और राक्षसों ं में, वसूनाम् वसुओं ंमैं, पावकः पावक (अशग्न), च-और, अम्भस्म— (मैं) हाँ, मेरुः- मेरु, शखररणाम् - पवथतों ंमें, अहम् मैं।

अनुवाद : रुिों ंमें मैं शंकर हाँ। यक्ष और राक्षसों ंमें धन का स्वामी कुबेर हाँ। वसुओं ंमें मैं पावक (अशग्न) हाँ और सात पवथतों ंमें मैं मेरु पवथत हाँ।

व्याख्या : रुि ग्यारह (एकादश) हैं, दस प्राण वायु (पााँच मुख्य प्राण और पंच उप प्राण) और मन । इन्हें रुि इसशलए कहते हैं क्योंशंक शरीर त्याग के समय ये दुःख देते हैं (रुलाते हैं)। पुराणों ंमें ये इस प्रकार लशक्षत शकये गये हैं-वीरभि, शंकर, शगरीश, अिइकपटी (Ajaikapti), भुवनाधीश्वर, अहभुथज्य, शपनाकी, अपराशिता, कपाली, स्ााणु और भग। इन रुिों ंमें शंकर प्रमुख हैं।

पृथ्वी, िल, अशग्न, वायु, आकाश, सूयथ, चि और नक्षत्र वसु हैं। इन्हीं ंसे समस्त ब्र्ह्माण्ड अवधृत है इसीशलए ये वसु हैं। पुराणों ंमें इन्हें आपः, धु्रुव, सोम, धरा, अशनल, अनल, प्रतूयूष और प्रभास नामों ंसे आलशक्षत शकया गया है। इनमें अनल अर्वा पावक (अशग्न) प्रमुख वसु हैं।

पुरोधसां च मुख्ंयं मां डवन्द्रद्ध पार्थम बृिस्पडतम् ।
सेनानीनामिं स्कन्दः सरसामन्द्रस्म सागरः ।।२४ ।।

बि्ार्थम : पुरोधसाम् -पुरोशहतों ंमें, च-और, मुख्यम् -प्रमुख, माम् -मुझे, शवम्भद्धि–ानो, पार्थ- हे पार्थ, बृहस्पशतम् - बृहस्पशत, सेनानीनाम् - सेनापशतयों ंमें, अहम् -मैं, स्कन्दः स्कन्द, सरसाम्ि–लाशयों ंमें, अम्भस्म (मैं) हाँ, सागरः- समुि ।

अनुवाद : (रािाओं ंके) गृहस्् पुरोशहतों ंमें हे अिुथन, मैं बृहस्पशत हाँ। सेनापशतयों ंमें मैं स्कन्द हाँ, िलाशयों ंमें मैं समुि हाँ।

व्याख्या: बृहस्पशत देवताओं ंके मुख्य पुरोशहत हैं। वे इि के कुल शसकन्द-काशतथकेय अर्वा सुब्र्ह्मण्य हैं। वे देव सेना के सेनापशत हैं। पुरोशहत हैं।

लिराश-चाहे प्राकृशतक िलाशय, झील आशद ही हों ंमैं उनमें सागर हाँ।

मिषींणां भृगुरिं डगरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽन्द्रस्म थर्ावराणां डिमालयः ।।२५ ।।

बि्ार्थम : महषीणाम् -महशषथयों ंमें, भृगुः- भृगु, अहम् -मैं, शवद्याम् शब्दों ंमें, अम्भस्म (मैं) हाँ, एकम् - एक, अक्षरम् अक्षर, यज्ञानाम् यज्ञों ंमें, िपयज्ञः िपयज्ञ, अम्भस्म (मैं) हाँ, स्ावराणाम् - म्भस्र रहने बालों ंमें, शहमालयः - शहमालय ।

अनुवाद : महशषथयों ंमें मैं भृगु हं। शब्दों ंमें मैं एकाक्षर ॐ हाँ। यज्ञों ंमें मैं िप यज्ञ हाँ। अचल पदार्ों में मैं शहमालय हाँ।

व्याख्या : मनु ने कहा है-"ब्राह्मण कुछ और करे अर्वा न करे, वह केवल िप से ही मोक्ष की प्राम्भप्त कर सकता है।"

भृगु-ब्र्ह्मा के मानस पुत्रों ांमें से एक हैं।

शहमालय-शवश्व की सविो पवथत शृांखला।

पियज्ञ-इस यज्ञ में न तो कोई शहंसा है और न कोई हाशन । इसीशलए समस्त यज्ञों ांमें श्र्ेष्ठ है।

अश्वत्थः सवमवृक्षाणां देवषीणां च नारदः ।
गन्धवामणां डचत्ररर्थः डसद्धानां कडपलो मुडनः ।।२६ ।।

बि्ार्थम : अश्वत्थः- अश्वत्थ (पीपल), सवथवृक्षाणाम् -सब वृक्षों ांमें, देवषीणाम् देवशषथयों ांमें, च-और, नारदः नारद, गन्धवाथणाम् गन्धवौ ाँमें, शचत्ररर्ः-शचत्ररर्, शसद्धानाम् -शसद्धों ांमें, कशपलः-कशपल, मुशनः मुशन ।

अनुवाद : समस्त वृक्षों ांमें मैं पीपल का वृक्ष हाँ। देवशषथयों ांमें मैं नारद हाँ। गन्धवी में मैं शचत्ररर् हाँ। शसद्धों ांमें कशपल मुशन हाँ।

व्याख्या : देवशषथ-देवता भी हैं और मन्त्र िष्टा ऋशष भी हैं।

शसद्धाः - शबना शकसी प्रयास के िन्म के समय से ही धमथ, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वयथ को पूणथ रूप से प्राप्त करने वाले शसद्ध कहलाते हैं।

मुशन-मनन अर्वा आत्म-शवश्र्ेषण और ध्यान करने वाले मुरर कहलाते हैं।

उिःश्रवसमश्वानां डवन्द्रद्ध माममृतोवम् ।
ऐरावतं गजेिाणां नराणां च नराडधपम् ।।२७ ।।

बि्ार्थम : उिःश्रवसम् -उिःश्रवस्, अश्वानाम् - अश्वों ांमें, शवम्भद्ध- िानो, माम् -मुझे, अमृतोद्भवम् अमृत से उत्पन्न, ऐरावतम् -ऐरावत, गिेिाणाम् -ब्रे-ब्रे हाशर्यों ांमें, नराणाम् -मनुष्यों ांमें, नराशधपम् -रािा । च-और,

अनुवाद : अश्वों ांमें अमृत से उत्पन्न उिःश्रवा मुझे िानो । श्र्ेष्ठ हाशर्यों ांमें ऐरावत और नरों ांमें नृप मुझे िानो।

व्याख्या : पयोशध को मर्ने पर अमृत की प्राम्भप्त हुई र्ी। उिः श्रवा उस श्र्ेष्ठ अश्व का नाम है िो समुि-मन्थन के समय प्राप्त हुआ र्ा।

ऐरावतम्-इरावती की सन्तान । इिका हार्ी िो समुि-मन्थन के समय उत्पन्न हुआ र्ा।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामन्द्रस्म कामधुक् ।
प्रजनश्चान्द्रस्म कन्दपमः सपामणामन्द्रस्म वासुडकः ।।२८ ।।

बिार्थम : आयुधानाम् - शस्त्रों ‌ंमें, अहम् - मैं, वज्रम् वद्ध्र, धेनूनाम् गौओं ‌ंमें, अम्भस्म—(मैं) हाँ, कामधुक् -कामधेनु स्वशगथक गाय िो सब कामनाओं ‌ंकी पूशतथ करने वाली है, प्रिनः - उत्पशत्त का हेतु, च-और, अम्भस्म (मैं) हाँ, कन्दपथः- कामदेव, सपाथणाम् -सपों में, अम्भस्म-हाँ, वासुशकः - वासुशक ।

अनुवाद : शस्त्रों ‌ंमें मैं वज्र हाँ। गौओं ‌ंमें इम्भच्छत फल प्रदान करने वाली कामधेनु मैं हाँ। सन्तानोत्पशत्त का हेतु काम का देवता कामदेव मैं हाँ। सपों में मैं सपथरिा वासुशक हाँ।

व्याख्या : वज्र-दधीशच ऋशष की अम्भस्र्यों ‌ंसे बना हशर्यार। युद्ध का एक साधन, िो केवल इि ही प्रयोग कर सकते हैं शिन्होंनें सौ यज्ञ पूणथ शकये। कामधुक् - महशषथ वशसष्ठ की गाय िो समुि-मन्थन के समय उत्पन्न हुई और इम्भच्छत फल प्रदान करने वाली है।

कन्दपथ-कामदेव ।

वासुशकः- सामान्य सपों का रािा । सपथ का केवल एक शसर होता है। बासुशक पीत वणथ होता है। नागों ‌ंके अनेक शसर होते हैं। अनन्तनाग अशग्न वणथ का होता है।

श्रीधर के अनुसार सपथ शवषैला होता है और नाग शवषरशहत होता है। रामानुि के अनुसार सपथ के एक ही शसर होता है और नाग के अनेक शसर होते हैं।

अनतश्चान्द्रस्म नागानां वरुणो यादसामिम् ।
डपतृणामयमा चान्द्रस्म यमः संयमतामिम् ।।२९ ।।

बिार्थम : अनन्तः -अनन्त, च-और, अम्भस्म-हाँ, नागानाम् -नागों ‌ंमें, वरुणः - वरुण, यादसाम् िल के देवताओं ‌ंमें, अहम् -मैं, शपतृणाम् -शपतरों ‌ंमें (पूवथिों ‌ंमें), अयथमा अयथमा, च-और, अम्भस्म-मैं, यमः- यम, संयमताम् - शासन करने वालों ‌ंमें, अहम् - मैं।

अनुवाद : नागों ‌ंमें मैं अनन्तनाग हाँ, िल के देवताओं ‌ंमें वरुण हाँ, शपतरों ‌ंमें अयथमा हाँ और शासन करने वालों ‌ंमें यम मैं हाँ।

व्याख्या : फणधारी सपों का रािा अनन्त है, इसे कोबरा भी कहते हैं और इसका अशग्न िैसा रक् वणथ है।

वरुणिल के देवों ‌ंका रािा।

यादसाःिल से सम्बद्ध देवगण ।

अयथमा शपतरों ‌ंका रािा ।

मैं यम हाँ, िीवों ‌ंके समस्त कमों का साक्षी। सब के शुभाशुभ कमों का शवगणन करने वाला।

प्रह्लादश्चान्द्रस्म दैत्यानां कालः कलयतामिम् ।
मृगाणां च मृगेिोऽिं वैनतेयश्च पडक्षणाम् ।।३० ।।

बि्र्थम : प्रह्लादः - प्रह्लाद, च-और, अम्भस्म— (मैं) हाँ, दैत्यानाम् -दैत्यों ्में, कालः समय, कलयताम् - (काल) गणना करने वालों ्में, अहम् मैं, मृगाणाम् -पशुओं ्में, चऔर, मृगेि शसंह, अहम् -मैं, वैनतेय-शवनत पुत्र गरुि, च-और, पशक्षणाम् -पशक्षयों ्में।

अनुवाद : दैत्यों ्में मैं प्रह्लाद हाँ, गणकों ्में समय हाँ, पशुओं ्में मृगरिा शसंह हाँ, पशक्षयों ्में गरुि हाँ।

व्याख्या : शहरण्यकश्यप दैत्य का पुत्र होते हुए भी प्रह्लाद भगवान् का भक् र्ा।

पवनः पवतामन्द्रस्म रामः ्िस्त्रभृतामिम् ।
झषाणां मकरश्चान्द्रस्म स्रोतसामन्द्रस्म जािवी ।।३१ ।।

बि्र्थम : पवनः- पवन, पवताम् -पशवत्र करने वालों ्में, अम्भस्म है, रामः -राम, शस्त्रभृताम् -शस्त्रधाररयों ्में (योद्धाओं ्में), अहम् -मैं, झषाणाम् मछशलयों ्में, मकरः मकर (शाकथ), च-और, अम्भस्म-हाँ, स्रोतसाम् - नशदयों ्में, अम्भस्म-हाँ, िािवी-गंगा।

अनुवाद : पशवत्र करने वालों ्में अर्वा वेगवानों ्में मैं वायु हाँ, योद्धाओं ्में राम हाँ, मछशलयों ्में मकर हाँ और नशदयों ्में गंगा हाँ।

व्याख्या : स्वगथ से भागीरर् ्िब गंगा को धरा पर ला रहे र्े ्िाह्नू ने उसे शनगल शलया इसशलए इसका नाम ्िािवी पिा।

सगामणामाडदरतश्च मध्यं चैविामजुमन ।
अध्याडवद्या डवद्यानां वादः प्रवदतामिम् ।। ३२ ।।

बि्र्थम : सगाथणाम् -सृशष्टयों ्का, आशदः -आशद, अन्तः- अन्त, च-और, मध्यम् -मध्य, च-और, एव-भी, अहम् -मैं, अिुथन-हे अिुथन, अध्यात्मशवद्या-आत्मा का ज्ञान, शवद्यानाम् - शवद्याओं ्में (शवज्ञानों ्में), वादः-तकथ, प्रवदताम् - ताशकथकों ्में, अहम् -मैं।

अनुवाद : सृशष्टयों ्में मैं आशद, मध्य और अन्त हाँ। हे अिुथन, शवद्याओं ्में मैं अध्यात्म शवद्या हाँ और वाद-शववाद करने वालों ्का बाद मैं हाँ।

व्याख्या : समस्त शवद्याओं ्में मैं अध्यात्म शवद्या हाँ। ज्ञान की समस्त शाखाओं ्में मैं आत्म-ज्ञान हाँ। ताशकथकों ्का मैं तकथ हाँ। वाद-शववाद करने वालों ्का मैं बाद हाँ। वाक्-शवशारदों ्(प्रवक्ाओं)् की मैं वाणी हाँ।

ऊपर श्लोक २० में भगवान् कहते हैं-

"मैं समस्त चराचर ्िगत् का आशद, मध्य और अन्त हाँ", यहााँ समूपूणथ सृशष्ट का अर्थ सामान्य भाव में है।

आत्म-ज्ञान ्िीवन के परम लक्ष्य मोक्ष की प्राम्भप्त कराता है इसशलए ज्ञान की सब शाखाओं ्में यह प्रमुख है।

प्रवदताम् - शवशभन्न प्रकार के लोग शभन्न-शभन्न रूप से अपना न्याय (तकथ) प्रसुतुत करते हैं िैसे—वाद, िल्प और शवतण्डा वाद तकथ करने की वह शवशध है शिससे शकसी प्रश्न शवशेष के मूल सत्य पर पहुँच सकते हैं। रागद्वेष और ईर्ष्यों ंसे मुक् साधकरण आपस में प्रश्नोत्तर करते हैं और सत्य की प्रकोष की समझने और सुशनशश्चत करने हेतु दाशथशनक समस्याओं ंके वाद-शववकृशत्त देश करते हैं। एक दूसरे पर शविय प्राप्त करने के शलए वे तकथ नहीं ंकरते। यही बाद है। िल्प एक प्रकार का शवसंवाद (झगिा) है शिसमें व्यम्भक् अपने। यही को सत्य शसद्ध करने के शलए अपने शवपक्षी की बात का शनराकरण (खंनि) करता है। शवतण्डा, प्रशतपक्षी के तकथ में व्यर्थ का शछिोषण करना है। प्रशतपक्षी के प्रश्नों ंको सुलझाने का कोई प्रयास नहीं ंशकया िाता। िल्प और शबतण्डा में साधक दूसरे को पराशित करने का प्रयास करता है। इसमें शविय की इच्छा शनशहत रहती है।

अक्षराणामकारोऽन्द्रस्म िन्बः सामाडसकस्य च ।
अिमेवाक्षयः कालो धाताऽ डिवश्वतोमुखः ।।३३ ।।

बिार्थम : अक्षराणाम् - अक्षरों ंमें, अकारः-अ (अकार), अम्भस्म (मैं) हाँ, िन्ः िन्, सामाशसकस्य-सब समासों ंमें, च-और, अहम् -मैं, एव-शनशश्चत रूप से, अक्षयः- अक्षय (कभी क्षीण न होने वाला), कालः-समय, धाता-पोषण करने वाला, अहम् - मैं, शवश्वतोमुखः सब ओर मुख वाला ।

अनुवाद : (वणथमाला के) अक्षरों ंमें मैं अकार हाँ, समासों ंमें, िन् समास हाँ। मैं शनशश्चत रूप से अक्षय (शाश्वत) काल हाँ। सब ओर मुख वाला मैं ही सब का धारण-पोषण करने वाला प्रणेता (कमथफल प्रदाता) हाँ।

व्याख्या : वर्णों में मैं अकार हाँ। समासों ंमें संयोगकारी िन् समास मैं हाँ (समासों ंका प्रयोग संसूकृत भाषा में होता होता है)। । काल का अर्थ यहां समय के आत्यम्भन्तक तत्त्व क्षण, मुहतथ अर्वा पल से है। काल परमेश्वर के शलए भी प्रयुक् होता है क्योंशंक वह काल का भी महाकाल है, कालातीत है।

क्योंशंक परमेश्वर सवथव्यापक है इसशलए कहा िाता है शक वह 'सवथतोमुखः' है अर्ाथत् उसके मुख सब शदशाओं ंमें हैं।

मृतुयुः सवमिरश्चािमुिवश्च भडवष्यताम् ।
कीडतमः श्रीवामक्च नारीणां सूमृडतमेधा धृडतः क्षमा ।।३४ ।।

बिार्थम : मृतुयुः मृतुयु, सवथहरः सब का शवनाश करने वाला, च-और, अहम् - मैं, उद्भवः -समृम्भद्ध, च-और, भशवष्यताम् -समृम्भद्ध प्राप्स्त करने वालों ंका , कीशतथः -कीशतथ, श्रीः -समृम्भद्ध, वाक्-वाणी, , सूमृशतः स्मरण शम्भक्, मेधा-बुम्भद्ध, धृशतः-दृढ़ता, क्षमा-क्षमा।

अनुवाद : मैं सवथहर मृतुयु हाँ। समृद्ध होने वालों ंकी समृम्भद्ध हाँ। नारी के गुणों ंमें मैं कीशतथ, श्री, वाक्, सूमृशत, मेधा, धृशत और क्षमा हाँ।

व्याख्या : सवथस्व नाश करने वाली और सवथस्व हरण करने वाली मृतुयु मैं हाँ। मृतुयु दो प्रकार की होती है-एक तो धन-वैभव का हरण करने वाली और दूसरी िीवन हरण करने वाली। इन दोनों ंमें िीवन हरण करने वाली मृतुयु सवथहर मृतुयु कही िाती है। मैं वही हाँ।

दूसरी व्याख्या इस प्रकार है-मैं सवथहर परम पुरुष हाँ क्योंशंक प्रलयकाल में मैं सवथस्व हरण कर लेता हाँ।

भशवष्य में उत्पन्न होने वाले सभी िीवों ंका मैं उद्भव हाँ। मैं ऐश्वयथ हाँ और उनके शलए ऐश्वयथ प्राम्भप्त का साधन हाँ िो इसके योग्य हैं।

सौन्दयथ श्री है। काम्भन्त श्री है। िीवन मे शंकंशचत्मात्र ख्याशत प्राप्त कर लेने पर लोग सोचते हैं शक उन्होंनें बहुत सफलता प्राप्त कर ली है और वे बहुत महान् हो गये हैं। मैं न्याय के शसंहासन को शवभूशषत करने वाली वाक् हाँ। मैं सूमृशत हाँ िो भूत्काल के सुखों ंऔर शवषयों ंका स्मरण कराती है।

शास्त्रों ंके उपदेशों ंको धारण करने वाली बुम्भद्ध मेधा है िो मन की शवशेष शम्भक् है। कष्टों ंमें भी शरीर और इम्भियों ंको संयत रखने की शम्भक् धृशत है। कमथ करते समय अनासक् रहना भी धृशत शम्भक् के कारण सम्भव है। साहस धृशत से होता है। क्षमा सहनशीलता भी है।

कीशतथ, श्री, सूमृशत, मेधा और धृशत दक्ष की कन्यायें हैं। धमथ के सार् उनका पाशणग्रहण संस्कार हुआ र्ा अतः वे धमथपशत्नयाँ भी कहलाती हैं।

बृित्साम तर्था साम्नां गायत्री िन्दसामिम् ।
मासानां मागमीषोऽमृतूनां कुसुमाकरः ।।३५ ।।

बि्र्थम : बृहत्साम-बृहत्साम, तर्ा-और, साम्नाम् -साम श्रुशतयों ंमें, गायत्री गायत्री, छन्दसाम् छन्दों ंमें, अहम् -मैं, मासानाम् मासों ंमें, मागथशीषथः मागथशीषथ, अहम् -मैं, ऋतूनाम्-ऋतुओं ंमें, कुसुमाकरः- वसन्त ऋतु ।

अनुवाद: श्रुशतयों ंमें प्रमुख बृहत्साम हाँ, छन्दों ंमें मैं गायत्री हाँ, मासों ंमें मागथशीषथ हाँ और ऋतुओं ंमें कुसुमाकर (वसन्त) मैं हाँ।

व्याख्या: सामवेद की श्रुशतयों ंमें प्रमुख बृहत्साम है। बृहत् का अशभप्राय है बृिा।

मागथशीषथ-शदसम्बर मास के मध्य से िनवरी मध्य तक मागथशीषथ माना िाता है। इस मास में िलवायु प्रशान्त और सुखद होती है। प्राचीन काल में वषथ के मासों ंकी गणना इसी मास से की िाती र्ी। इस मास को प्रर्म स्र्ान शदया िाता र्ा। कुसुमाकर-सुन्दर पुष्पों ंकी ऋतु वसन्त ।

द्यूतं िलयतामन्द्रस्मतेजसे्तेजन्द्रस्वनामिम् ।
जयोऽन्द्रस्म व्यवसायोऽन्द्रस्मसतं्त्वं सत्त्ववतामिम् ।।३६ ।।

बि्र्थम : द्यूतम् - धूत (िुआ), छलयताम् छल करने वालों ंमें, अम्भस्म (मैं) हाँ, तिः -ति, तिम्भस्वनाम् -तिम्भस्वयों ंका, अहम् - मैं, अय-शविय, अम्भस्म (मैं) हाँ, व्यवसाय:- शनश्चय (शनश्चय करने वालों ंका), अम्भस्म (मैं) हाँ, सत्त्वम् सत्त्व, सत्त्वत्वताम् -साम्भत्त्वक पुरुषों ंका, अहम् - मैं।

अनुवाद : छल करने वालों ंमें मैं द्यूत (िुआ) हाँ, तिम्भस्वयों ंका मैं ति हाँ, शविय मैं हाँ, शनश्चय मैं हाँ, साम्भत्त्वकों ंका सत्त्वभाव मैं हाँ।

व्याख्या : दूसरों ंको छलने की शवशधयों ंमें मैं द्यूत क्रीिा हाँ। िूआ मेरी अशभव्यम्भक् है। मैं शम्भक्वानों ंकी शम्भक् हाँ। मैं शवियी की शविय हाँ। प्रयत्न करने वालों ंका मैं यत्न हाँ।

मैं साम्भत्त्वक पुरुषों ंमें धमथ, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वयथ आशद गुणों ंका सत्त्व हाँ।

वृष्णीनां वासुदेवोऽन्द्रस्म पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यिं व्यासः कवीनामुिना कडवः ।।३७ ।।

बि्ार्थम : वृष्णीनाम् वृम्भष्ण वंश में, वासुदेवः - वासुदेव, अम्भस्म - (मैं) हाँ, पाण्डवानाम् -पाण्डवों ंमें, धनञ्जयः -धनञ्जय, मुनीनाम् -मुशनयों ंमें, अशप -भी, अहम् -मैं, व्यासः व्यास, कवीनाम् -कशवयों ंमें, (शुक्राचायथ), कशवः-कशव । उशनाः-उशना

अनुवाद : वृम्भष्णयों ंमें मैं वासुदेव हाँ, पाण्डवों ंमें मैं अिुथन हाँ, ऋशषयों ंमें मैं व्यास हाँ, कशवयों ंमें मैं उशना कशव हाँ।

व्याख्या : वृम्भष्ण यादव अर्ाथत् यदु वंश के वंशि हैं। मैं उनमें अग्रगण्य हाँ।

उशना कशव दैत्यों ंके आचायथ (गुरु) शुक्राचायथ हैं।

दण्डो दमयतामन्द्रस्म नीडतरन्द्रस्म डजगीषताम् ।
मौनं चैवान्द्रस्म गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामिम् ।।३८ ।।

बि्ार्थम : दण्डः दण्ड, दमयताम् - दमन करने वालों ंका, अम्भस्म— (मैं) हाँ, नीशतः नीशत, अम्भस्म (मैं) हाँ, शिगीषताम् - िीतने की इच्छा रखने वालों ंकी, मौनम्-मौन, च-और, एव-ही, अम्भस्म—(मैं) हाँ, गुह्यानाम् -रहस्यों ंमें, ज्ञानम्-ज्ञान, ज्ञानवताम् - ज्ञाशनयों ंका, अहम् -मैं।

अनुवाद : दण्ड देने वालों ंका दण्ड मैं हाँ, शविय की आकाङ्क्षा रखने बालों ंकी नीशत मैं हाँ, रहस्यों ंमें (गुप्त रखने योग्य शवषयों ंमें) मौन मैं हाँ। शविानों ंका ज्ञान मैं हाँ।

व्याख्या : नीशत-साम, नीशत,

मौनम्-ब्ह्म अर्वा आत्मा पर सतत ध्यान के पश्चात् की अवस्ा । ज्ञानम् आत्मा का ज्ञान ।

यिाडप सवमभूतानां बीजं तदिमजुमन ।
न तदन्द्रस्त डवना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ।।३९ ।।

बि्ार्थम : यत्–ो, च-और, अशप-भी, सवथभूतानाम् -सब प्राशणयों ंमें, बीिम् बीि, तत्-वह, अहम् -मैं, अिुथन-हे अिुथन, न नहीं,ं तत्-वह, अम्भस्त-है, शवना-शवना, यत्–ो, स्यात् -हो, मया-मेरे िारा, भूतम् - प्राणी, चराचरम् -चर और अचर (चेतन और ि़ि)।

अनुवाद : और हे अिुथन, सब प्राशणयों ंकी उत्पशत्त का कारण भी मैं ही हाँ। कोई भी िीव चेतन अर्वा ि़ि, ऐसा नहीं ंहै िो मेरे शबना रह सकता हो ।

व्याख्या : मै समस्त सृशष्ट के अम्भस्तत्व का बीि रूप मूल कारण है। मैं सब का बीि है. प्रत्येक पदार्थ का मैं आत्म-तत्त्व हैं। मेरे शबना शकसी का अम्भस्तत्व सम्भव नहीं।ं सब वसुतुएँ मेरी ही प्रकृशत की हैं। मैं सब का सार-तत्त्व हाँ। शबना मेरे सवथस्व शून्य होता है। मैं सब का आत्म-तत्त्व हाँ।

नातोऽन्द्रस्त मम डदव्यानां डवभूतीनां परंतप ।
एष तूदे्दितः प्रोक्तो डवभूतेडवमस्तरो मया ।।४० ।।

बि्ार्थम: न-नहीं, ं अन्तः-अन्त, अम्भस्त-है, मम्-मेरी, शदव्यानाम् -शदव्य, शवभूतीनाम्- शवभूशतयों ंका, परंतप -हे शतुरु
संहार करने वाले (अुिथन), एषः यह, तु शनशश्चत रूप से, उदे्देशतः संके्षेप में, प्रोक् -कहा गया है, शवभूतेः-शवभूशत का, शवस्तरः-शवस्तार, मया-मेरे िारा।
अनुवाद : हे अुिथन, मेरी शदव्य शवभूशतयों ंका कोई अन्त नहीं ंहै शकनुतु यह तो संके्षेप में मैंने तुम्हें अपनी शदव्य शवभूशतयों ंका शवस्तार बताया शक

व्याख्या : भगवान् की शदव्य शवभूशतयों ंका यर्ार्थ रूप से शवस्तार बताना अर्वा िानना सवथर्ा असम्भव है। भगवान् की शम्भक्यों ंअर्वा शवभूशतयों ंकी कोई सीमा नहीं ंहै। उनकी अनन्त मशहमा का गुणगान शितना भी करें वह अल्प ही है।

परन्तप-शतुरुओं ंका संहार करने वाला। परन्तप वह है िो अपने अन्दर के शतुरुओं–ंकाम, क्रोध, लोभ, मोह आशद का शवनाश करता है।

यद्यडिभूडतमत्सत्त्वं श्रीमदूडजमतमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽसिंभवम् ।।४१ ।।

बि्ार्थम : यद्यत् (यत्, यत्) िो भी, शवभूशतमत् - शवभूशत युक्, सत्त्वम् -वसुतु, श्रीमत् -ऐश्वयथ युक्, ऊशिथतम् - शम्भक्युक्, एव-ही, वा-अर्वा, तत् तत्-वह, वह, एव-ही, अवगच्छ-िानो, त्वम्-तुम, मम-मेरे, तेिोंऽशसंभवम् - तेि के अंश से उद्भूत ।

अनुवाद : (संसार में) िो कुछ भी शवभूशतयुक् है, ऐश्वयथयुक् है, काम्भन्तयुक् है अर्वा शम्भक्युक् है वह सब मेरे तेि के अंश से उत्पन्न िानो ।

अर्थवा बहनैतेन डकं ज्ञातेन तवाजुमन ।
डवष्ट्भ्याडमदं कृत्स्नमेकांशेन न्द्रथर्थतो जगत् ।।४२ ।।

बि्ार्थम: अभवा-अर्वा, बहुना बहुत (से), एतेन-इससे, शाले िानने से, तब तुम्हारा, अुिथन हे अुिथन, का के अहमी, इदम् - यह, कृत्स्नम् -समस्त, एकाशेन-एक अंश से. म्भरुत-म्भस्त, िगत् संसार । शवष्टभ्य-धारण

अनुवाद: शकनुतु हे अुिथन, इतने शवसूतृत ज्ञान को लेने में तुम्हारा क्या प्रयोिन है? समस्त ब्ह्माण्ड को अपनी शम्भक् के अंश से धारण कर के में म्भस्त हैं।

व्याख्या: भगवान् यह कह कर अपनी बात को शवराम देते हैं शक वे इस संसार को म्भरुत कर के उसमें व्याप्त हो कर अपने केवल एक अंश से ही उिम धारणा शकये हुए हैं। यह श्लोक ऋिेद के पुरुष सूक् १०.९०.३ की इस घोषणा पर आधाररत है- "उसका एक पाद तो यह शवश्व की अशभव्यम्भक् और तीन पाद द्युलोक में अमृत रूप से म्भस्त हैं।"

मैं इस संसार को अपने एक अंश अर्वा एक पाद से धारण शकये हुए हाँ। मेरा एक पाद ही समस्त प्राणी हैं।

समस्त िीव उसके पाद से म्भस्त हैं (तैशत्तरीय आरण्यक ३.१२)। समूपूणथ ससार भगवान् का एक पाद है। हमारे अज्ञान अर्वा सीशमत बुम्भद्ध के कारण अश अर्वा पाद की पररकल्पना की गई है। वसुतुतः ब्र्ह्म अखण्ड, अव्यय और शनराकार है।

अब अिुथन को भगवान् की शवभूशतयों ंका ज्ञान हो गया है। वह भगवान् के अशतशोभन् शवभूशतमत् स्वरूप को देखने का अशधकारी हो गया है। भगवान् कृष्ण अिुथन को इस प्रकार अपनी शवभूशतयों ंका उपदेश कर के उसे महत् दशथन के शलए तैयार करते हैं।

अिुथन कहते हैं- "हे भगवन्, अब मैं िान गया हाँ शक समूपूणथ िगत् आपसे व्याप्त है। अब मैं शदव्य चकुषु के िारा आप में समस्त ब्र्ह्माण्ड के दशथन करना चाहता हाँ।"

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषतुसु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
डवभूडतयोगो नाम दिमोऽध्यायः ।।
।। इडत डवभूडतयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अरै्कादशोऽध्यायः

शवश्वरूपदशथनयोगः

अजुमनउवाच

मदनुग्रिाय परमं गुह्यमध्यािसंडज्ञतम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोिोऽयं डवगतो मम ।।१ ।।

बि्ार्थम : मदनुग्रहाय -मुझे आशीवाथद देने के शलए, परमम् -सविो, गुह्यम् -रहस्यात्मक, अध्यात्मसंशज्ञतम् - अध्यात्म संज्ञा वाले, यत्–ि, त्वया-आपके िारा, उक्म् -कहे गये, वचः-शब्द, तेन-उससे, मोहः- मोह, अयम् - यह, शवगतः नष्ट हो गया, मम-मेरा ।

अजुमन ने किा

अनुवाद : आपने मुझे आशीवाथद देने के शलए, मुझ पर अनुकम्पा कर के िो परम गोपनीय अध्यात्म ज्ञान के आशीष वचन कहे उससे मेरा मोह नष्ट हो गया है।

व्याख्या : भगवान् की शवभूशतयों ंको श्रवण करने के पश्चात् अिुथन में भगवान् के अद्भुत शवश्वरूप दशथन की तिी अशभलाषा िाग्रत हुई है। उसकी शंकंकतथव्यशवमूढ़ता और मोह अब नष्ट हो चुके हैं।

अध्यात्म-वह शववेक शम्भक् िो आत्मा और अनात्मा का भेद दशाथती है वह अध्यात्म शवद्या है।

अपने ही सम्बम्भन्धयों ंऔर आचायों का संहार करने में मैं भयभीत र् शक कहीं ंपाप न हो िाये । मैं सोचता र्- “उनें मारने में मैं ही हेतु हाँ। और वे मेरे िारा ही मारे िाने हैं।"

आपका दुबोध और अत्यन्त अमोघ उपेदश प्राप्त कर के मेरा मोह समाप्त हो गया है। आपने इस अज्ञान रूपी भ्रम को दूर कर शदया है। शवश्वरूप दशथन आत्यम्भन्तक लक्ष्य नहीं ंहै। यशद ऐसा होता तो इसी

अध्याय के सार् ही गीता पररसमाप्त हो िाती । क्रशमक अनुभवों ंमें शवश्वरूप दशथन एक और अनुभव है। यह अनुभव कराल (भीषण) भी है। यही कारण र् शक अिुथन ने स्खशलत स्वर में भगवान् से कहा- आपका स्वरूप शकतना भीषण (भयावह) है। मैंने वह सब देखा है िो मुझसे पूवथ शकसी ने नहीं ंदेखा। भरा शचत्त प्रसन्न है पुनरशप भय के कारण व्याकुल है। भगवन्! कृपया मुझे मेरा शवसुन्दर-स्वरूप पुनः शदखाओ । हे देवाशधदेव, सवाथधार, शंख, चक्र, गदा, अपना से में धारण करके मुकुटधारी स्वरूप के दशथन कराओ। मैं आपको पुनः पूवथ स्वरूप में देखने की अशभलाषा करता हाँ। हे सहस्रबाहो शवराट् स्वाम भगवन्, मैं आपका चतुभुथि स्वरूप देखना चाहता हाँ। आप उसी रूप को धारण करो।

अिुथन को भगवान् ने अपने उपदेश में कहा रा- "अपने एक अंश से इस शवश्व को मैंने धारण शकया हुआ है।" इसी से अिुथन को भगवान् के शवश्वरूप दशथन की आकांक्षा हुई। वह कहता है-"हे करुणाशनधान, आपने मुझे अध्यात्म ज्ञान शदया िो वेदों ंमें खोिना भी कशठन है। आपने मेरी रक्षा की है। मेरा भ्रम लुप्त हो गया है। आपने अपनी शदव्य शवभूशतयों,ं प्रकृशत के रहस्यों ंव परम आत्म-ज्ञान के तत्त्व को मेरे समक्ष रखा है, उनें प्रकाशत शकया है। इस क्षण मेरी तिी उत्कण्ठा यही है शक अपने इन नेत्रों ंसे आपके शवश्वरूप दशथन करूूँ।"

भवाप्ययौ डि भूतानां शुरुतौ डवस्तरिो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष मिाात्म्यमडप चाव्ययम् ।।२ ।।

बि्ाथम : भवाप्ययौ-उत्पशत्त और प्रलय, शह-शनशश्चत रूप से, भूतानाम् - प्राशणयों ंकी, शुरुतौ-श्रवण की गई है, शवस्तरशः - शवस्तार से, मया-मेरे िारा, त्वत्तः- आप से, कमलपत्राक्ष-हे कमल नयन, माहात्म्यम् -महानता, अशप - भी, च-और, अव्ययम् अशवनाशी ।

अनुवाद : हे कमलनेत्र भगवान्, शनशश्चत रूप से मैंने िीवों ंकी उत्पशत्त और प्रलय के शवषय में तरा आपकी अशवनाशी मशहमा को भी, शवस्तार से, आपके मुखारशवन्द से श्रवण शकया है।

वयखय: कमल-पत्र के समान नेत्र वालेअर्वा वे शिनके नेत्र कमल-पत्र केसमान हों।ं कमल पत्र का दूसरा अर्थ है- आत्म-ज्ञान के िारा ही प्राप्त शकया िा सकता है वह कमलपत्राक्ष है।

एवमेतद्यर्थात्थ त्वमिाानं परमेश्वर ।
द्रष्टुटुडमच्छाडम ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ।।३ ।।

बि्ाथम : एवम् - इस प्रकार, एतत् - यह, यर्ा–से, आत्थ-आपने कहा है, त्वम्-आप, आत्मानम् -स्वयं को, परमेश्वर- हे परमेश्वर, िष्टुम् - देखने इच्छा करता हाँ, ते आपका, रूपम् पुरुषोत्तम -हे पुरुष शे्रष्ठ।

अनुवाद : (अब) हे परमेश्वर, आपने अपने ऐश्वयथशाली स्वरूप का शवबरण दे शदया है शकनुतु हे पुरुषोत्तम, मैं आपके शदव्य स्वरूप के दशथन की आकाङ्क्षा रखता हाँ।

व्याख्या : कशतपय व्याख्याकारों ंने श्लोक के दो स्वतन्त्र भाग कर के इस प्रकार भाव शदया है-

हे परमेश्वर, आपने िो कुछ अपने शवषय में कहा है ठीक वैसा ही है। (पुनरशप) हे पुरुषोत्तम, मैं आपके ईश्वर स्वरूप के दशथन का अशभलाषी हाँ।

रूपमैश्वरम् - आपका स्वरूप, ईश्वर रूप में, शवषुणु रूप में िो अनन्त ज्ञान, ऐश्वयथ, शम्भक्, बल, पराक्रम और तिे से युक् है।

मन्यसे यडद तच्छक्यं मया द्रष्टुटुडमडत प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्ंवं दिमयाऽनिमव्ययम् ।।४ ।।

बि्ािर्थम : मन्यसे आप सोचते हैं (मानते हैं), यशद यशद, तत्-वह, शक्यम् -सम्भव, मया-मेरे िारा, िष्टुम् -देखना, इशत-इस प्रकार, प्रभो-हे प्रभु, योगेश्वर- हे योशगयों ंके ईश्वर, ततः-शफर, मे-मुझे, त्वम् - आप, दशथय-शदखाओ, आत्मानम् – (अपना) स्वरूप, अव्ययम् अशवनाशी ।

अनुवाद : हे प्रभो, यशद आप मानते हैं शक मैं आपका स्वरूप देखने का अशधकारी हाँ तो हे योगेश्वर, मुझे अपना अशवनाशी स्वरूप शदखाइये।

व्याख्या : भगवान् के शवश्वरूप दशथन के शलए अिुथन अत्यन्त उतुसुक और अभीम्भित है। वह उनसे दशथनार्थ प्रार्थना करता है। उन्हीं ंकी अहेतुकी अनुकम्पा से यह दशथन सम्भव है।

योगेश्वरः योग का स्वामी-यह भाव भी हो सकता है। योगी वह है िो आठ आध्याम्भत्मक शसम्भद्धयों ंसे युक् है। योशगयों ंका स्वामी योगेश्वर है। साधक पर इस एकत्व प्रसाद की वृशष्ट करने में सक्षम योगी, योगेश्वर हररय व्यशष्ट आत्मा का समशष्ट आत्मा से एकत्व योग है। अशधकारी आध्याम्भत्मक िो सृशष्ट, म्भस्र्शत, संहार, आवरण और कृपापूवथक शवमुक् करने में सक्षम है वह भगवान् है। (ये पंच शक्रयायें क्रमशः सृशष्ट, म्भस्र्शत, संहार, शतरोधान और अनुग्रह से भी संशज्ञत हैं अर्ाथत् िानी िाती हैं।)

श्री भगवानुवाच

पश्य मे पार्थम रूपाडण ितिोऽर्थ सिस्रिः ।
नानाडवधाडन डदव्याडन नानावणामकृतीडन च ।।५ ।।

बि्ािर्थम : पश्य -देखो, मे मेरे, पार्थ-हे पार्थ, रूपाशण-रूप. शतशः शत-शत (सैकिों)ं, अर् और, सहस्रशः सहस्रों ं (हिारों)ं,नानाशवधाशन अनेक प्रकार के, शदव्याशन -शदव्य, नानावणाथकृतीशन - शवशवध वणथ और आकार वाले, च- और।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : हे अिुथन, मेरे शदव्य, शवशवध प्रकार के, शवशवध वणथ और आकार वाले सैकिों ंहिारों ंरूपों ंको देखो।

व्याख्या : शदव्याशन-शदव्य, अलौशकक ।

शतशः, सहस्रशः- सैकिों,ं हिारों–ंअनन्त, अगशणत ।

हे अिुथन, मैं तुम्हें शवश्वरूप शदखाना चाहता हाँ। समस्त प्राणी और भाव (अम्भस्तत्व) उसमें शनशहत हैं। मोटे और दुबले, (कद में) छोटे और लमे्ब, लाल और काले, पुरुषार्ी और आलसी, धनी और शनधथन, बुम्भद्धमान् और मूढ़, स्वस्र् और रोगी, शान्त और अशान्त, िाग्रत और सुषुप्त, सुन्दर और कुरूप, और समस्त स्तरों ंके प्राणी अपने शवशेष लक्षणों ंसे युक् तुम देखोगे । आकाश का नीलवणथ, शसल्क का पीतवणथ, संध्याकाल का रक्वणथ, कोयले का श्यामवणथ, बफथ का श्‌वेतवणथ ओर पत्तों ंका हररतवणथ तुम देखोगे । तुम शवशभन्न आकार के पदार्थ भी देखोगे ।

पश्याडदत्यान्वसूतद्रानडश्वनी मरुतस्तर्था ।
बहून्यदृष्ट्पूवामडण पश्याऽश्चयामडण भारत ।।६ ।।

बि्ार्थम : पश्य-देखो, आशदत्यान् - आशदत्यों ंको, यसून वसुओं ंको, रुिान् रुिों ंको, अशश्वनी-दो अशश्वनी कुमारों ंको, मरुतः मस्तों ंको, सधको, और, बहशन अनेक, अदृष्टपूवाथशण-पहले न देखे हुए, पश्य-देखो, आश्चयाथशण - आश्चयों ंको, भारत-हे भारत ।

अनुवाद : हे अिुथन, आशदत्यों ंको, वसुओं ंको, रुिों ंको, दो अशश्वनी कुमारों ंको और मरुतों ंको देखो। अनेक पहले न देखे हुए आश्चयों ंको देखो।

व्याख्या : पूवथ अध्याय में आशदत्यों, ं वसुओं, ं रुिों ंऔर मरुद्गणों ंका वणथन आ चुका है।

इतना ही नहीं, ं अनेक ऐसे आश्चयों को देखो िो न तो तुमने कभी पहले देखे और न ही शकसी और ने देखे।

इिैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुिाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुशमच्छशस ।।७ ।।

बि्ार्थम : इह-यहााँ, एकस्र्म् - एक में म्भस्र्त, िगत्–िगत्, कृत्स्नम् -पूणथ, पश्य-देखो, अद्य-अि, सचराचरम् -चर और अचर सशहत, मम-मेरे, देहे देह में, गुिाकेश - हे गुिाकेश (अिुथन), यत्–िो, अन्यत् अन्य, िष्टुम् - देखना, इच्छशस चाहते हो।

अनुवाद : हे अिुथन, अब मेरे इस शरीर में चराचर सशहत समस्त ब्रह्माण्ड को एक ही स्र्ान में म्भस्र्त देखो। अन्य िी कुछ देखने की इच्छा रखते हो, वह भी देखो।

व्याख्या : अन्यत्-अन्य िो कुछ भी अर्ाथत् तुम्हारी शविय अर्वा परािय, शिसके शवषय में तुम्हारे मन में सन्देह है। (शनरूपण-11.6)

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
शदव्यं ददाशम ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।।८।।

बि्ार्थम : न - नहीं, ं तु-शकन्तु, माम् -मुझे, शक्यसे-(तुम) शक्य हो, समर्थ हो, िष्टुम् - देखने में, अनेन-इस के िारा, एव-ही, स्वचक्षुषा-अपने नेत्रों, ं शदव्यम् - शदव्य, ददाशम देता हाँ, ते तुम्हें, चक्षुः नेत्र, पश्य-देखो, मे-मेरे, योगम् योग को, ऐश्वरम् - ऐश्वयथशाली ।

अनुवाद : शकन्तु अपने इन नेत्रों ंसे तुम मुझे नहीं ंदेख सकते। मैं तुम्हें शदव्य चक्षु प्रदान करता हाँ। मेरी ईश्वरीय योग शम्भक् के दशथन करो।

व्याख्या : इन भौशतक नेत्रों ंसे कोई मेरे वैशश्वक स्वरूप को नहीं ंदेख सकता । इसे तो अलौशकक (शदव्य) नेत्र िारा देखा िा सकता है। इसे मन की आाँख से देखने का भ्रम नहीं ंहोना चाशहए। यह एक अनुभूशत है।

भगवान् कृष्ण अिुथन से कहते हैं- "मैं तुम्हें शदव्य चक्षु प्रदान करता हाँ शिससे तुम मेरे ब्रह्माण्डीय रूप के दशथन कर सकते हो। इस के िारा मेरी अद्भुत यौशगक शम्भक् को देखो।"

अनेन इसके िारा-मांसल अर्वा स्र्ूल भौशतक नेत्र। (शनरूपण-VII.25; IX.5; I.7)

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्मियोगेश्वरो िररः ।
दिमयामास पार्थामय परमं रूपमैश्वरम् ।।९ ।।

बि्रर्थम : एवम् - इस प्रकार, उक्त्वा-कह कर, ततः-शफर, रिान् -हे रिान्, महायोगेश्वरः योग के महान् स्वामी (कृष्ण), हररः- हरर, दशथयामास- शदखाया, पार्ाथय पार्थ को, परमम् -परम, रूपम् -रूप, ऐश्वरम् -ऐश्वयथशाली।

सञ्जय ने किा

अनुवाद : हे रिान्, ऐसा कह कर योगेश्वर कृष्ण ने अिुथन को अपना परम ऐश्वयथशाली ईश्वरीय स्वरूप शदखाया।

व्याख्या : रिान् यह श्लोक संिय िारा रिा धृतराष्टर को सम्बोशधत है।

परमं रूपम् - शवश्वरूप ।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदिमनम् ।
अनेकडदव्याभरणं डदव्यानेकोद्यतायुधम् ।।१० ।।

बि्रर्थम : अनेकवक्त्रनयनम् -अनेक मुख और नेत्रों ंसे युक्, अनेकाद्भुतदशथनम् - अनेक अद्भुत दृश्यों ंसे युक्, अनेकशदव्याभरणम् - अनेक शदव्य आभूषणें से युक्, शदव्यानेकोद्यतायुधम् - अनेक शदव्य शस्त्रों ंको धारण शकये हुए।

अनुवाद : अनेक मुख और नेत्रों ंसे युक्, अनेक अद्भुत दृश्यों ंसे युक्, अनेक शदव्य आभूषणों ंसे युक्, अनेक शदव्य शस्त्र धारण शकये हुए (ऐसा स्वरूप उन्ोंनें शदखाया)।

व्याख्या : अगशणत वदन प्रत्यक्ष हुए। अिुथन ने इस शवश्वरूप को पूणथ ऐश्वयथ से युक् देखा। समस्त अशभव्यम्भक् भगवान् का एक शवशाल स्वरूप सी र्ी। भगवान् ही सब कुछ रे्, ऐसा अिुथन ने देखा।

डदव्यमाल्याम्बरधरं डदव्यगन्धानुलेपनम् ।
सवामश्चयमयं देवमनतं डवश्वतोमुखम् ।।११ ।।

बि्रर्थम : शदव्यमाल्याम्बरधरम् - शदव्य माला और आभरण (वस्त्र) धारण शकये हुए, शदव्यगन्धानुलेपनम् - शदव्य गन्ध का अनुलेप शकये हुए, सवाथधयथमयम् -सब प्रकार से अद्भुत, देवम्- (देदीप्यमान्) देव को, अनन्तम्-अनन्त, शवश्वतोमुखम् -सब ओर मुख वाले।

अनुवाद : शदव्य माला और वस्त्र धारण शकये हुए, (शरीर पर) शदव्य गन्ध का अनुलेप शकये हुए, सब प्रकार से अद्भुत, देदीप्यमान्, अनन्त और सब ओर मुख वाले (भगवान् को अिुथन ने देखा) ।

व्याख्या : शवश्वतोमुखम् -सब ओर मुख वाले क्योंशंक समस्त प्राशणयों ंकी अन्तरात्मा वे स्वयं हैं।

देवम्-देवता (भगवान्), देदीप्यमान् ।

अनन्तम्-सीमारशहत । देश-काल-वसुतु पररचे्छेद, इन तीन प्रकार की सीमाओं ंसे ि◌ो मुक् है। वह ब्र्ह्म ही है। इस दाशथशनक शवचारधारा को शनम्न प्रकार से समझाया गया है-

पात्र यहााँ है-यह देश की सीमा है।

पात्र अब यहााँ है यह काल की सीमा है।

पात्र वस्त्र नहीं ंहै-यह पदार्थ (वसुतु) की सीमा है।

कुंकुम केवल कश्मीर में है-यह देश-वसुतु पररचे्छेद है।

तुम केवल शसतम्बर में सेब प्राप्त कर सकते हो-यह काल-वसुतु पररचे्छेद है।

शकनुतु ब्र्ह्म सवथत्र है क्योंशंक वह सवथव्यापक है। वह भूत, वतथमान और भशवष्यत तीनों ंकालों ंमें रहता है। वह सब खण्डों ंमें रहता है। इसशलए वह (देश-काल-वसुतु की) सीमाओं ंसे अतीत है और अतीत होने से अनन्त स्वरूप है।

डदडव सूयमसिस्रस्य भवेद्युगपदुन्द्रत्थता ।
यडद भाः सदृी सा स्यािासस्तस्य ििानः ।।१२ ।।

बिा्र्थम : शदशव-आकाश में, सूयथसहस्रस्य-एक सहस्र सूयों की, भवेत् -हो, युगपत् - एक सार्, उम्भत्थता-उशदत, यशद यशद, भाः-ति, सदृशी समान, सा-वह, स्यात्-हो, भासः-ति, तस्य-उस, महात्मनः- (महान् आत्मा) शवशाल पुरुष का ।

अनुवाद : आकाश में यशद एक सहस्र सूयों का ति एक सार् प्रकाशत तो वह भी ति कदाशचत् ही उस महान् शवश्वरूप पुरुष के सदृश हो ।

शदशव- अन्तररक्ष अर्वा आकाश ।

महात्मा-महान् आत्मा, शवशाल पुरुष अर्वा शवश्वरूप।

तत्रैैकथरं्थं जगत्कृतं्स्नं प्रडवभक्तमनेकधा ।
अपश्यदे्देवदेवस्य ििरीरे पाण्डवस्तदा ।।१३ ।।

बिा्र्थम : तत्र-वहााँ, एकस्थम् - एक में म्भस्त, िगत् ब्र्ह्माण्ड, कृत्स्नम् -समूपूणथ, प्रशवभक्म् -शवभक्, अनेकधा अनेक समूहों ंमें, अपश्यत् देखा, देवदेवस्य -देवों ंके देव के, शरीरे-शरीर में, पाण्डवः -पाणुडु पुत्र (अिुथन), तंदा-शफर ।

अनुवाद : वहााँ अिुथन ने देवाशधदेव कृष्ण के शरीर में समूपूणथ ब्र्ह्माण्ड को अनेक समूहों ंमें शवभक् एक ही स्र्ान में म्भस्त देखा।

व्याख्या: तत्र-वहााँ शवश्वरूप में।

अनेकधा-अनेक समूह-देव, शपतर, मनुष्य और िीवों ंकी अन्य िाशतयााँ।

अिुथन ने सब रूपों ंको भगवान् के रूपों ंमें देखा। सब शसर उनके शसर, सब नेत्र उनके नेत्र, सब हार् उनके हार्, सब पााँव उनके पााँव, प्रत्येक शरीर का प्रत्येक अङ्ग मानो भगवान् के शरीर का ही अङ्ग हो, उनके स्वरूप का ही अंश हो। िहााँ भी वह देखता भगवान् ही दृशष्टगोचर होते। उसने रहस्यपूणथ गोपनीय शदव्य ज्ञान प्राप्त शकया।

संिय ने शवश्वरूप का वास्तव में स्पष्ट शचत्रण शकया है। पुनरशप, सीशमत मन से इसे ग्रहण करना व्यर्थ है। यह भावांतीत (अलौशकक) दशथन है िो मन और इम्मियों ंकी पहुाँच से परे है। इसे तो समाशध में साक्षात्कार शकया िा सकता है।

ततः स डवस्मयाडवष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य डिरसा देवं कृताञ्जडलरभाषत ।।१४ ।।

बि्दार्थ : ततः तब, सः- वह, शवस्मयाशवष्टः- आश्चयथचशकत हो कर, कश्रोमा-पुलशकत (रोमांशचत) शरीर, धनञ्जयः- अिुथन, प्रणम्य-प्रणाम करके, शरसा-शसर से, देवम्-भगवान् को, कृताञ्जशलः- हार् िोड़ कर, अभाषत-बोला ।

अनुवाद : तत्पश्चात् आश्चयथ से अशभभूत हो कर और रोमांशचत हो कर अिुथन ने शसर झुका कर भगवान् को प्रणाम शकया और करबद्ध होकर बोला।

व्याख्या : ततः-तत्पश्चात्, शवश्वरूप दशथन के उपरान्त ।

शवश्वरूप को दण्डवत् प्रणाम करने के शलए अिुथन ने हार् िोड़े। करबद्ध होना और शसर झुकाना इस बात के द्योतक हैं शक वीर अिुथन में शवनयशीलता आ गई र्ी िो भम्भक्तभाव के मुख्य लक्षण हैं।

अजुमन उवाच

पश्याडम देवांस्तव देव दिे
सवांस्तर्था भूतडविेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीिं कमलासनथर्थ-
मृषीश्च सवामनुरगांश्च डदव्यान् ।।१५ ।।

बि्दार्थ : पश्याशम-देखता हाँ, देवान्-देवों ंको, तव-आपके, देव-हे भगवन्, देहे-देह में, सवाथन् -समस्त, तर्ा-और, भूतशवशेषसङ्घान् - शवशेष प्राशणयों ंके समूहों ंको, ब्र्ह्माणम्-ब्र्ह्मा को, ईशम् - भगवान् को, कमलासनस्र्म् -कमल पर शवराशित, ऋषीन्-ऋशषयों ंको, च-और, सवाथन् समस्त, उरगान् -सपों ंको, च-और, शदव्यान् - शदव्य ।

अजुमन ने किा

अनुवाद : हे भगवन्, मैं आपके शरीर में समस्त देवताओं ंऔर शवशवध िाशतयों ंके प्राणी समुदायों ंको देख रहा हाँ। कमल के आसन पर शवरािमान ब्र्ह्मा तर्ा समस्त ऋशषयों ंऔर शदव्य सपों को देख रहा हाँ।

व्याख्या : शवश्वरूप दशथन का वणथन, अुिथन अपने अनुभव के आधार पर इस श्लोक में तर्ा आगे के श्लोकों ंमें (१५ से ३१ तक) कर रहे हैं।

भूतशवशेषसङ्घान्-चर और अचर शवशवध प्रकार के भूत समुदाय। रोमवत् ये अगशणत सत्तायें आपके शरीर में हैं।

सब िीवों ंके स्वामी चतुमुथख ब्ह्मा मेरु पवथत पर धरा-कमल के मध्य में आसनस्र् हैं िो धरा-कमल के भीतरी कक्ष के समान हैं।

ऋशष-वशसष्ठ आशद ऋशष, उरगान् वासुशक आशद सपथ ।

और भी...

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्याडम त्वां सवमतोऽनतरूपम् ।
नातं न मध्यं न पुनस्तवाडदं
पश्याडम डवश्वेश्वर डवश्वरूप ।। १६ ।।

शब्दार्थ : अनेकबाहिवक्त्रनेत्रम् अनेक भिुा, उदर, मुख और नेत्रों ंसशहत, पश्याशम देखता हाँ, त्वाम्-आपको, सवथतः सब ओर, अनन्तरूपम् - अनेक रूप वाले, न नहीं,ं अन्तम् अन्त, न नहीं,ं मध्यम् -मध्य, न-नहीं,ं पुनः पुनः, तव-आपका, आशदम् - आशद, पश्याशम देखता हाँ, शवश्वेश्वर- हे संसार के स्वामी, शवश्वरूप-शवश्वरूप ।

अनुवाद : हे शवश्वरूप शवश्वेश्वर, मैं आपको सवथतः (सब ओर) अनेक भिुा, उदर, मुख और नेत्रों ंसशहत अनन्त रूपों ं में देख रहा हाँ शकन्तु भगवन् न तो मुझे आशद, न मध्य और न ही अन्त शदखाई दे रहा है।

व्याख्या : सीशमत देश-काल में वस्तु का आशद, मध्य और अन्त होता है शकन्तु भगवान् सवथव्यापक और शाश्वत हैं। वे भूत, भशवष्य, वतथमान, तीनों ंकालों ंमें रहते हैं शकन्तु देश-काल के बन्धन से अतीत हैं। इसीशलए उनका आशद, मध्य और अन्त नहीं ंहै।

भगवान् िारा प्रदत्त शदव्य चक्षु के कारण ही अुिथन इस शदव्य-स्वरूप के दशथन कर सके। भगवान् के प्रशत िो परम प्रीशत रखता हो और शिन पर भगवान् अपनी कृपा-दृशष्ट करें वही इस अद्भुत दशथन का सौभाग्य प्राप्त कर सकता है।

डकरीडटनं गडदनं चडक्रणं च तेजोराडिं सवमतो दीन्द्रप्तमतम् ।
पश्याडम त्वां दुडनमरीक्ष्यं समता- द्दीप्तानलाकमद्युडतमप्रमेयम् ।।१७ ।।

शब्दार्थ : शकरीशटनम् -मुकुटयुक्, गशदनम् - गदायुक्, चशक्रणम् - चक्रयुक्, च-और, तेिोराशशम् - तेिपुञ्ज से युक्, सवथतः सब ओर, दीम्भप्तमन्तम् देदीप्यमान्, पश्याशम देखता हाँ, त्वाम् - आपको, दुशनथरीक्ष्यम् - शिसे देख पाना भी कशठन है, समन्तात् - चारों ंओर, दीप्तानलाकथद्युशतम् - धधकती आग और देदीप्यमान् सूयथ के समान, अप्रमेयम्-अप्रमेय, अपररशमत ।

अनुवाद : मैं आपको सवथत्र मुकुट, गदा और चक्र से युक् प्रकाशमान ति पुंकि के रूप में देख रहा हाँ िो कशठनता से देखने योग्य है और प्रदीप्त अशग्न और देदीप्यमान् सूयथ के समान ज्योशतमथय तरा अप्रमेय है।

व्याख्या : शकरीशटन शसर के शलए एक शवशेष आभूषण मुकुट है।

अिुथन ने भगवान् की मुकुट, गदा और चक्र युक् स्वरूप में पूिा की री अतः भगवान् ने वही स्वरूप शदखाया। सवाथशतररक् अलौशकक सत्य तो यह है शक भगवान् सब रूपों ंमें हैं और सब रूपों ंसे अतीत हैं। उनकी मशहमा को कौन समझ सकता है?

तेिोराशशम् - तेिपुञ्ज, िो शदव्य चक्षुषु से ही देखना सम्भव है। अप्रमेयम्-अपररशमत, शिसकी सीमा नहीं ं बांधी िा सकती।

आपकी योग शम्भक् के दशथन से मैं अनुमान लगाता हाँ शक आप शवष्य, वतथमगर अशवनाशी हैं, अनन्त हैं, अप्रमेय हैं आशद आशद।

त्वमक्षरं परमं वेडदतव्ंयं
त्वमस्य डवश्वस्य परं डनधानम् ।
त्वमव्ययः िाश्वतधममगोप्ता
सनातनस्ंत्वं पुरुषो मतो मे ।।१८ ।।

शब्दार्थम : त्वम् आप, अक्षरम् - अक्षर (अशवनाशी), परमम् -परम, बेशदतव्यम् - िानने योग्य, त्वम् -आप, अस्य-इस, शवश्वस्य-शवश्व के, परम् -महान्, शनधानम् आश्रय, त्वम्-आप, अव्ययः अशवनाशी, शाश्वतधमथगोप्ता-शाश्वत धमथ की रक्षा करने वाले, सनातनः-सनातन, त्वम् - आप, पुरुषः पुरुष, मतः मत, मे मेरा ।

अनुवाद : आप अशवनाशी हैं, परम पुरुष हैं, िानने योग्य हैं। इस शवश्व के आप ही सवाथधार हैं, शाश्वत धमथ के अमर रक्षक आप ही हैं और आप ही सनातन पुरुष हैं, ऐसा मेरा मत है।

व्याख्या : शवश्वस्यशनधानम्-इस शवश्व का आधार अर्वा शवश्राम स्र्ल । इसी कारण से संसार के समस्त प्राशणयों ंका रक्षण और पोषण होता है। वह अक्षय स्रोत है शिसकी ओर भक् सभी काल में पहुाँचता है। वसुतुतः भ्रशमत हैं वे लोग िो इस शदव्य शनधान की उपेक्षा कर के शवषय-वासनाओं ंके प्रशतशबम्ब की ओर भागते हैं िो शंकंशचत् मात्र भी सुख प्रदान करने में अक्षम है।

वेशदतव्यम् श्रवण, मनन, शनशदध्यासन िारा साधक और मुमुकुषु शिसे िान सकते हैं।

अव्ययः-अक्षय, अशवनाशी, अपररवतथनशील ।

अनाडदमध्यातमनतवीयम-
मनतबाहं िडिसूयमनेत्रम् ।
पश्याडम त्वां दीप्तहतािवक्ंत्रं
स्वतेजसा डवश्वडमदं तपतम् ।।१९ ।।

शब्दार्थ : अनाशदमध्यान्तम् -आशद, मध्य और अन्त रशहत, अनन्तवीयथम् अनन्त शम्भक् से युक्, अनन्तबाहुम् - अनन्त भिुा वाले, शशसूयथनेत्रम् -सूयथ और चिमा शिनके दो नेत्र हों, पश्याशम देखता हाँ, त्वाम् - आपको, दीप्तहुताशवक्त्रम् - प्रज्वशलत अशग्न की भााँशत (आपका) मुख, स्वतेिसा-अपने तेि से, शवश्वम् - शवश्व को, इदम् - यह, तपन्तम् -तपाते हुए।

अनुवाद : मैं आपको आशद, मध्य और अन्त रशहत, अनन्त शम्भक् से युक्, अनन्त भिुाओं वाले, सूयथ और चि रूप नेत्रों वाले, प्रज्वशलत अशग्न के समान मुख वाले, अपने तेि से समस्त ब्रह्माण्ड को तपाते हुए देख रहा हाँ।

व्याख्या : अनन्त बाहु-अनन्त भिुाओं से युक् अर्ाथत् उनके अवयवों की पररगणना अनन्त है।

द्यावापृडर्थव्योररदमतरं डि
व्याप्तं त्वयैकेन डदिश्च सवामः ।
दृष्ट्वाऽद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यडर्थतं मिान् ।।२० ।।

शब्दार्थ : द्यावापृशर्व्योः - भूलोक और स्वगथलोक के, इदम् - यह, अन्तरम् - मध्य का आकाश, शह-वसुतुतः, व्याप्तम् -पूणथ, त्वया-आप से, एकेन-एक से, शदशः-शदशायें, च-और, सवाथः-सब, दृष्ट्वा देख कर,अद्भुतम् -अद्भूत, रूपम् -रूप, उग्रम् उग्र, तव-आपका, इदम् - यह, लोकत्रयम् - तीनों लोक, प्रव्यशर्तम् - भय से कााँप रहे हैं, महात्मन् - हे महात्मन् ।

अनुवाद : भूलोक और स्वगथलोक के मध्य अन्तररक्ष तर्ा सब शदशायें केवल आप से ही पूणथ हो गई हैं। हे महात्मन्, आपके इस अद्भुत एवं भीषण स्वरूप को देख कर तीनों लोक भय से कााँप रहे हैं।

व्याख्या : त्वया-आपके शवश्वरूप में।

अन्तरं शदशश्च-यह इस बात का संकेत है शक भगवान् ने शवश्व के िि और चेतन सभी पदार्ों को अपने स्वरूप से पूणथ कर शदया र्ा।

शितीय अध्याय श्लोक ६ में अिुथन ने अपनी सफलता के शवषय में िो सन्देह शकया र्ा उसका शनवारण करने के शलए भगवान् कृष्ण उसे अब अनुभव कराते हैं शक पाण्डवों की शविय शनशश्चत है। (शनरूपण -11.6)

अमी डि त्वां सुरसङ्घा डविन्द्रत
केडचिीताः प्राञ्जलयो गृणन्द्रत ।
स्वस्तीत्युक्त्वा मिडषमडसद्धसङ्घाः
सुतुवन्द्रत त्वां सुतुडतडभः पुष्कलाडभः ।।२१ ।।

शब्दार्थ : अमी-ये, शह-शनश्चयेन, त्वाम् आपको, सुरसद्धाः देव समुदाय, शवशम्भन्त-प्रवेश करते हैं, केशचत् -कुछ, भीताः- भय में, प्राञ्जलियः-करबद्ध, गृणम्भन्त-सुतुशत करते हैं, स्वम्भस्त-शुभ हो (कल्याण हो), इशत- इस प्रकार, उक्त्वा

कह कर, महशषथशसद्धसङ्घाः- महशषथयों ंऔर शसद्धों ंके समूह, सुतुवम्भन्त-सुतुशत करते हैं, त्वाम् आपकी, सुतुशतशभः-स्तोत्रों ं से, पुष्कलाशभः पूणथ, उत्तम ।

अनुवाद : शनशश्वत रूप से देवों ंके समूह आप में प्रवेश कर रहे हैं, उनमें से कुछ करबद्ध हो कर भय में आप की सुतुशत कर रहे हैं, महशषथयों ंऔर शसद्धों ंके समूह 'कल्याण हो' ऐसे वचन कह कर उत्तम स्तोत्रों ंिारा आप का गुणगान कर रहे हैं।

व्याख्या : पुष्कलाशभः का अशभप्राय है पूणथ अर्वा सुन्दर शब्दों ंमें सुतुशत अर्वा ऐसी सुतुशत शिसमें गहन अर्थ शनशहत हो।

नारद आशद महशषथ और कशपल आशद शसद्ध प्ेरेरक स्तोत्रों ंसे आपकी सुतुशत कर रहे हैं।

रुद्राडदत्या वसवो ये च साध्या
डवशे्वेऽडश्वनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धवमयक्षासुरडसद्धसङ्घा
वीक्षते त्वां डवन्द्रस्मताशै्चैव सवे ।। २२ ।।

शब्ार्थम : रुिाशदत्याः -रुि और आशदत्य, वसवः वसु, ये िो, च और, साध्याः साध्य देव, शवशे्वे-शवशे्वेदेवा, अशश्वनौ- दो अशश्वन, मरुतः- मरुत, च-और, उष्मपाः- शपतर, च-और, गन्धवथयक्षासुरशसद्धसङ्घाः गन्धवथ, यक्ष, असुर और शसद्ध समुदाय, वीक्षन्ेते-देख रहे हैं, त्वाम् आपको, शवम्भस्मताः- शवम्भस्मत हो कर, आश्चयथचशकत हो कर, च-और, एव-ही, सवे सब ।

अनुवाद : रुि, आशदत्य, वसु, साध्यगण, शवशे्वेदेव, अशश्वनीकुमार, मरुद्गण, शपतर, गन्धवथ, यक्ष, असुर और शसद्ध समुदाय, सभी अत्यन्त आश्चयथ से आपको देख रहे हैं।

व्याख्या : साध्य एक देवों ंका समुदाय है शिनके प्रमुख ब्ह्मा हैं। शवशे्वेदेव, दस देव हैं िो वैशदक काल में मानव िाशत के रक्षक माने िाते रे्। वे संसार के अशभभावक माने िाते रे्। मानवों ंको प्रचुरता में देने वाले वे देव रे्।

उनके नाम हैं-क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काम, कल, ध्वशन, रोचक, अिव और पुरुरवा ।

दो अशश्वनीकुमार प्रभा (शवद्युत्) से उत्पन्न हैं और (प्रभा तुष्टा और सूयथ की पुत्री हैं), वे देवों ंके वैद्य हैं। रुि, आशदत्य, वसु और मरुद्गण के शवषय में दशम अध्याय के श्लोक २१ और २३ देखें।

उष्मपाः- एक शपतर समुदाय । श्राद्धकाल में अशपथत शकया गया भोिन ये स्वीकार करते हैं। उन शदनों ं उष्णता होती है अतः वे उष्मपा कहलाते हैं। शपतरों ंके सात समुदाय हैं।

गन्धवथ-स्वगथलोक के गायक हैं िैसे हाहा (Haha) हुहु (Huhu) ।

यक्ष-कुबेर, धन-सम्पशत्त के देव । असुर-शवरोचन ।

शसद्ध-कशपल ।

रूपं मिते्ते बहवक्त्रनेत्रं
मिाबािो बहबाहूरुपादम् ।
बहदरं बहदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यडर्थतास्तर्थाऽमि् ।।२३ ।।

बि्र्थम : रूपम् -रूप, महत्-अपररशमत, ते-आपका, बहुवक्त्रनेत्रम् -अनेक मुख और नेत्रों ंसशहत, महाबाहो - हे महाबाहो, बहुबाहरुपादम् - अनेक बाहु, उरु (िङ्घा) और पाद से युक्, बहदरम् - अनेक उदर वाले, बहुदंष्टराकरालम् - अनेक दाँतों ंसे भयानक, दृष्ट्वा देख कर, लोकाः लोक, प्रव्यशर्ताः- भयभीत हैं, तर्ा-वैसे ही, अहम् मैं।

अनुवाद : हे महाबाहो! आपके इस अनन्त मुख और नेत्रों ंवाले, अनेक भिुा और िंघा तर्ा पाद वाले, अनके उदर और शवकराल दाँतों ंवाले इस अप्रमेय रूप को देखकर लोक भयभीत हो रहे हैं और मैं भी व्याकुल हो रहा हाँ।

व्याख्या : लोकाः- शवश्व - शवश्व में रहने वाले समस्त प्राणी। मेरे भय का कारण यह है। अब अिुथन शवश्वरूप की प्रकृशत का वणथन करते हैं शिसके कारण उसका हृदय भय से शवदीणथ हुआ।

नभःस्पृिं दीप्तमनेकवणम
व्यात्ताननं दीप्तडविालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा डि त्वां प्रव्यडर्थतातरािा
धृडतं न डवन्दाडम िमं च डवष्णो ।।२४ ।।

बि्र्थम : नभःस्पृशम् - आकाश को स्पशथ करते हुए, दीप्तम् - देदीप्यमान, अनेकवणथम् बहुत वणों में, व्यात्ताननम् -शवस्तीणथ (खुले) मुख वाले, दीप्तशवशालनेत्रम् -प्रदीप्त शवशाल नेत्रों ंवाले, दृष्ट्वा देखकर, शह-शनशश्चत रूप से, त्वाम् - आपको, प्रव्यशर्तान्तरात्मा-हृदय से भयभीत, धृशतम्-धैयथ, ननहीं,ं facfi - 3MH करता हाँ, शमम्-शाम्भन्त, च-और,
शवष्णो-हे शवष्णो ।
अनुवाद : आकाश को स्पशथ करने वाले, अनेक रङ्गों ंमें चमकते हुए, खुले हुए शवस्तीणथ मुख वाले, शवशाल आग्नेय नेत्रों ंवाले आपके वैशश्वक स्वरूप को देख कर, हे शवष्णो, मेरा अन्तरात्मा भयभीत हो रहा है। न तो मुझे धैयथ (साहस) शमल रहा है और न ही शाम्भन्त शमल रही है।

व्याख्या : धृशत का अशभप्राय सहनशीलता और शम्भक् भी है। शम, संयम के भाव में भी प्रयोग शकया िा सकता है। शवश्वरूप ने अिुथन को अत्यन्त भयभीत कर शदया है।

दंष्ट्राकरालाडन च ते मुखाडन
दृष्ट्वैव कालानलसडिभाडन ।
डदिो न जाने न लभे च िमम
प्रसीद देवेि जगडिवास ।। २५ ।।

बि्र्थम : दंष्टराकरालाशन-दिों ं के कारण भयावह, च-और, ते आपके, मुखाशन-मुख, दृष्ट्वा देख कर, एव-ही, कालानलसशन्नभाशन - प्रलय की आग के समान प्रज्वशलत, शदशः-शदशायें, न-नहीं, ं िाने–िनता, न-नहीं, ं लभे— प्राप्त करता हाँ, च-और, शमथ-शाम्भन्त, प्रसीद-दया करो (प्रसन्न हों) ं, देवेश- हे देवेश, िगशन्नवास-हे शवश्वाधार।

अनुवाद : हे देवेश, हे िगदाधार, दिों ंके कारण शवकराल और प्रलय की अशग्न के समान चमकते हुए आपके मुखों ंको देख कर मैं शदशाओं ंका ज्ञान नहीं ंकर पा रहा हाँ और न ही मुझे शाम्भन्त का आभास हो रहा है। दया करो भगवन्, प्रसन्न हो िाओ।

व्याख्या : िगशन्नवास–िगत् का अवलम्बन।

कालानल-आत्यम्भन्तक प्रलय की अशग्न िो ब्ह्माण्डों ंको शनगल नेती है। काल (समय) सभी अशभव्यक् वसुतुओं ंको शवलीन कर देता है। शदशो न िाने-मैं शदशाओं ंको नहीं ंदेख पा रहा हाँ। प्राची, उदीची (उत्तर), प्रतीची (पशश्चम) और दशक्षण शदशाओं ंका ज्ञान करने में असमर्थ हाँ।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सवे सैवावडनपालसङ्गैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तर्थासौ
सिास्मदीयैरडप योधमुखै्यैः ।।२६ ।।

बि्र्थम : अमी-ये, च-और, त्वाम् - आपको, धृतराष्टरस्य- धृतराष्टर के, पुत्राः पुत्र, सवे-सब, सह-सार्, एव-भी, अवशनपालसङ्घः- नृप समुदाय के सार्, भीष्मः-भीष्म, िोणः–िोण, सूतपुत्रः-कणथ, तर्ा-और, असौ-वह, सह-सार्, अस्मदीयैः- हमारे, अशप-भी, योधमुखै्यैः - मुख्य योद्धाओं ंके सार्।

अनुवाद : रािाओं ंके समूह सशहत धृतराष्टर के सब पुत्र, भीष्म, िोण और कणथ और हमारे पक्ष के प्रमुख योद्धाओं ं सशहत,

व्याख्या : कणथ, पाण्डवों ंकी माताश्री कुन्ती का पुत्र र्ा। उसका पालन-पोषण एक सूत (सारशर्) ने शकया अतः वह उसका पुत्र कहलाया।

वक्त्राडण ते त्वरमाणा डवविन्द्रत
दंष्ट्राकरालाडन भयानकाडन ।
केडचडिलग्ना दिनातरेषु
संदृश्यते चूडणमतैरुत्तमाङ्गैः ।।२७ ।।

बि्र्थम : वक्त्राशण-मुख, ते-आपके, त्वरमाणा :- शीघ्रता से, शवशम्भन्त-प्रवेश कर रहे हैं, दंष्टराकरालाशन-भयानक दाँतों ंवाले, भयानकाशन-देखने में भयानक, केशचत् -कुछ, शवलग्नाः- फाँसे हुए, दशनान्तरेषु दाँतों ंके मध्य ररक् स्र्ान में, संदृश्यन्ते देखे िा रहे हैं, चूशणथतैः- चूर-चूर हुए, उत्तमाङ्गैः- उनके शसर सशहत।

अनुवाद : कुछ शीघ्रता से आपके मुखों ंमें प्रवेश कर रहे हैं िो शवकाराल दाँतों ंके कारण देखने में भयानक हैं। अन्य कुछ दाँतों ंके मध्य फाँसे हुए शदखाई दे रहे हैं शिनके शसर चूर-चूर हो चुके हैं।

व्याख्या : वे मुख में शकस प्रकार प्रवेश करते हैं ? अिुथन आगे इसका वणथन कर रहे हैं।

यर्था नदीनां बिवोऽमुबुवेगाः
समुद्रमेवाडभमुखाः द्रवन्द्रत ।
तर्था तवामी नरलोकवीरा
डविन्द्रत वक्त्राण्र्डभडवज्वलन्द्रत ।। २८ ।।

बि्ार्थम : यर्ा-िसे, नदीनाम् नशदयों ंके, बहवः बहुत, अमुबुवेगाः िल प्रवाह, समिुम् -समिु को, एव -ही, अशभमुखाः-ओर, िवम्भन्त-बहते हैं, तर्ा वैसे, तव-आपके, अमी-ये, नरलोकवीराः नर लोक के बीर, शवशम्भन्त-प्रवेश करते हैं, वक्त्राशण-मुख, अशभशवज्वलम्भन्त–िलते हुए।

अनुवाद : शिस प्रकार नशदयों ंकी वेगपूणथ धारायें समिु की ओर प्रवाशहत होती हैं उसी प्रकार नरलोक के ये वीर प्रज्वशलत मुखों ंमें प्रवेश कर रहे हैं।

व्याख्या : अमी-भीष्म आशद योद्धा । अिुथन शिन योद्धाओं ंको मारना नहीं ंचाहता र्ा उनें् अब मौत के मुख में िाता देख रहा है। उसका मोह नष्ट हो गया है। अब वह सोचता है- "इस युद्ध का पररहार (त्याग) नहीं ंहो सकता । परम पुरुष की अनुभूशत से यह हो रहा है। अपररहायथ के शलए मैं शचन्ता क्यों ंकरूाँ ? भगवान् ने तो पूवथ से ही इन योद्धाओं ंको मार शदया है। मैं उनके हार् का एक म्भखलौना हाँ। मैं यशद उनें् मार भी दूाँ तो कोई पाप मुझे छू नहीं ं सकता। यह न्यायपूणथ कारण भी है।"

क्यों ंऔर कैसे वे प्रवेश करते हैं? अिुथन कहते हैं-

यर्था प्रदीप्ंतं ज्वलनं पतङ्गा
डविन्द्रत निााय समृद्धवेगाः ।
तरै्थैव निााय डविन्द्रत लोका-
स्तवाडप वक्त्राडण समृद्धवेगाः ।।२९ ।।

बि्ार्थम : यर्ा-िसे, प्रदीप्तम् - ज्वशलत, ज्वलनम् अशग्न, पतङ्गाः-पतङ्गे, शवशम्भन्त-प्रवेश करते हैं, नाशाय-शवनाश के शलए, समृद्धवेगाः -अशत वेग से, तर्ा-वैसे ही, एव-ही, नाशाय-शवनाश के शलए, शवशम्भन्त-प्रवेश करते हैं, लोकाः - प्राणी, तव-आपके, अशप - भी , वस्त्राशण-मुख, समृद्धवेगाः- अत्यन्त वेग पूवथक ।

अनुवाद : शिस प्रकार (मोह वश) पतङ्गे अपने ही शवनाश के शलए प्रज्वशलत अशग्न में अत्यन्त वेग से प्रवेश करते हैं उसी प्रकार ये प्राणी अपने शवनाश हेतु अत्यन्त वेग से आपके मुखों ंमें प्रवेश कर रहे हैं।

लेडलह्यसे ग्रसमानः समता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैध्वमलन्द्रिः ।
तेजोडभरापूयम जगत्समग्ंरं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्द्रत डवष्णो ।। ३० ।।

बि्ार्थम : लेशलह्यसे-चाट रहे हो, प्रसमानः-शनगलते हुए, समन्तात् -सब और से, लोकान् लोकों ंको, समग्रान् -समस्त, वदनैः- मुखों ंसे, ज्वलम्भद्भः - िलते हुए (प्रज्वशलत), तेिोशभः तेि से, आपूयथ पूणथ कर के, िगत् संसार, समग्रम् -समस्त, भासः-शकरणें, तव-आपके, उग्राः - भयानक, प्रतपम्भन्त-तप रहे हैं, शवष्णो-हे शवष्णो।

अनुवाद : हे शवष्णो, आप अपने प्रज्वशलत मुखों ंसे सब ओर से, समस्त लोकों ंको शनगलते हुए चाट रहे हो। आपके ति की शकरणें समूपूणथ िगत् को प्रकाश से पूणथ करके तपा रही हैं।

व्याख्या : शवषुणु-सवथव्यापक, व्यापनशील ।

आख्याडि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽसुतु ते देववर प्रसीद ।
डवज्ञातुडमच्छाडम भवतमाद्यं
न डि प्रजानाडम तव प्रवृडत्तम् ।।३१ ।।

बि्ार्थम : आख्याशह-बताओ, मे-मुझे, कः-कौन (हो), भवान् - आप, उग्ररूपः- उग्र रूप वाले, नमः -प्रणाम, असुतु-हो, ते-आपको, देववर-हे देव वर, प्रसीद-दया करो, शवज्ञातुम् - िानने के शलए, इच्छाशम-इच्छा करता हाँ, भवन्तम् -आपको, आद्यम् - आशद सत्ता, न-नहीं,ं शह-शनशश्चत रूप से, प्रिानाशम िानता हाँ, तव-आपकी, प्रवृशत्तम् -प्रवृशत्त (कायथ कलाप) को।

अनुवाद : उग्र रूप वाले आप कौन हो, मुझे बताओ । हे देवों ंमें श्ेरेष्ठ, आपको प्रणाम हो। दया करो। मैं आपको, आशद पुरुष को िानने का इचुछुक हाँ। वास्तव में आपके शक्रया कलापों ंसे अनशभज्ञ हाँ।

श्री भगवानुवाच

कालोऽन्द्रस्म लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समितुमडमि प्रवृत्तः ।
ऋतेऽडप त्वां न भडवष्यन्द्रत सवे
येऽवन्द्रथर्थताः प्रत्यनीकेषु योधाः ।।३२ ।।

बि्ार्थम : कालः-समय, अम्भस्म (मैं) हाँ, लोकक्षयकृत् लोकों ंका शवनाश करने वाला, प्रवृद्धः ब्िा हुआ, लोकान् लोकों ंको, समाहतुथम् - नष्ट करने के शलए, अहाँ -यहां, प्रवृत्तः लगा हाँ, ऋते-शबना, अशप भी, त्वाम् - तुम्हारे, न नहीं,ं भशवष्यम्भन्त होंगें (रहेंगे), सवे सब, येरे्, अवम्भस्थताः-म्भस्थत, प्रत्यनीकेषु शवपक्षी सेना में, योधाः योद्धा ।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : लोकों ंका शवनाश करने वाला इस समय में ब्िा हुआ महाकाल हाँ और लोकों ंको नष्ट करने में प्रवृत्त हाँ। शवपक्षी सेना में म्भस्थत सब योद्धा तेरे शबना भी नहीं ंरहेंगे।

व्याख्या : ऋतेऽशप त्वाम् - हे अिुथन, तुम युद्ध नहीं ंकरोगे तब भी मेरे िारा इनका अन्त शनशश्चत ही है। मैं सवथनाशकारी काल हाँ। मैं पहले से ही उनें मार चुका हाँ। तुमने उनें मृतुयु के मुख में िाते देखा है। इसशलए तुम्हारा इनको मारने का साधन बनना शवशेष महत्त्वपूणथ नहीं ंहै।

अतः, उठो और यश प्राप्त करो।

तस्मात्त्वमुडत्ति यिो लभस्व

डजत्वा ितूरून् भुङ्क्क्ष्व राजं्यं समृद्धम् ।
मयैवैते डनिताः पूवमेव
डनडमत्तमात्ं रं भव सव्यसाडचन् ।। ३३ ।।

ब्ि्र्थम : तस्मात् - अतः, त्वम्-तुम, उशत्तष्ठ उठो, यशः यश, लभस्व-प्राप्त करो, शित्वा-ि ीत कर, शतूरून्-शतु्रुओं ंको, भुङ्क्ष्व-भोग करो, राज्यम्-राज्य, समृद्धम् समृद्ध, मया मेरे िारा, एव-ही, एते-ये, राज्या-मारे ि ा चुके हैं, पूवथम् - पहले से ही, एव-ही, शनशमत्तमात्रम् -शनशमत्त (साधन) मात्र, भव-बनो, सव्यसाशचन् - हे सव्यसाची ।

अनुवाद : इसशलए, उठो और यश प्राप्त करो। शतु्रु को िीत कर अप्रशतम राज्य का उपभोग करो। हे अि्ुथन, शनशश्चत रूप से वे पहले ही मेरे िारा मारे ि ा चुके हैं तुम केवल शनशमत्त बनो।

व्याख्या : तुम केवल नाम मात्र के कारण बनो। मैंने तो पूवथतः ही उनका शवनाश कर शदया है। बहुत पहले ही मैं उनें् नष्ट कर चुका हाँ।

यश:-लोग सोचेंगे शक भीष्म, िोण तर्ा अन्य योद्धा शिनको देवता भी नहीं ंमार सकते, वे तुम्हारे िारा परािय को प्राप्त हुए हैं, इस प्रकार तुम्हारा कीशतथ-ध्विा ऊाँचा फहरायेगा। धाशमथक कृत्यों ंके कारण ही ऐसा यश प्राप्त होगा ।

शतूरून् दुयोधन िैसे शतु्रु ।

सव्यसाची-अि्ुथन, िो वाम हस्त से भी बाण चलाने में कुशल र्ा।

द्रोणं च भीषं्मं च जयद्रर्ंथं च
कणं तर्थाऽन्यानडप योधवीरान् ।
मया ितांसं्त्वं जडि मा व्यडर्थिा
युध्यस्व जेताडस रणे सपत्नान् ।।३४ ।।

ब्ि्र्थम : िोणम् िोण, च-और, भीष्मम् - भीष्म, च-और, ियिर्म् ियिर्, च-और, कणथम् -कणथ, तर्ा-और, अन्यान् अन्य, अशप-भी, योधवीरान् वीर योद्धा, मया-मेरे िारा, हतान्मारे गये, त्वम् - तुम, िशह-मारो, मा-नहीं,ं व्यशर्ष्ठाः - शवचशलत होओ, युध्यस्व-युद्ध करो, िेताशस-ि ीतोगे, रणे-रण में, सपत्नान्-शतु्रुओं ंको ।

अनुवाद : िोण, भीष्म, ियिर् और अन्य शूरवीर मेरे िारा पहले ही मारे ि ा चुके हैं। अब तुम भय से शवचशलत न हो कर इनें् मारो। युद्ध करो, तुम शतु्रुओं ंपर शविय प्राप्त करोगे।

व्याख्या : मया हतान् - मेरे िारा पहले ही मारे ि ा चुके योद्धाओं ंको मार कर, हे अि्ुथन, तुम पाप के भागी नहीं ं बनोगे ।

िोणि के पास शदव्य शस्त्र र्े। धनुशवथद्या में वे अि्ुथन के गुरु र्े। वे अि्ुथन के अत्यशधक शप्रय और महानतम गुरु र्े। भीष्म के पास भी शदव्य शस्त्र र्े। उनें् इच्छा-मृतुयु का वरदान र्ा। वे एक बार अकेले परशुराम से लिे और शवियी हुए। वे इतने शम्भक्शाली र्े।

ियिर् के शपता ने एक संकल्प ले कर तपश्चयाथ की- "ि◌ो व्यम्भक् मेरे पुत्र के शसर को धरती पर शगराने का कारण बनेगा, वह स्वयं भी शगर ि◌ायेगा अर्ाथत् मृतुयु को प्राप्त होगा।" युद्ध के समय में, अिुथन के बाण से ियिर् का शसर कटा और उसके शपता की गोद में ि◌ा शगरा और उन्होंनें अनवधान वश उसे धरा पर शगरा शदया और स्वयं भी उसी क्षण मृतुयु की गोद में सो गये। सूयथ पुत्र कणथ ने इ्से एक अमोघ अस्त्र प्राप्त शकया र्ा।

सञ्जय उवाच

एतचुछ्रुत्वा वचनं कें्वस्य
कृताञ्जडलवेपमानः डकरीटी ।
नमसृ्कृत्वा भूय एवा कृष्ंणं
सगढ़दं भीतभीतः प्रणम्य ।। ३५ ।।

बि्ार्थम : एतत् वह, शु्रुत्वा सुन कर, केशवस्य केशव के, कृताञ्जशलः करबद्ध, शकरीटी-अिुथन, नमसूकृत्वा नमस्कार कर के, आह-कहा, कृष्णम् -कृष्ण को, सगिदम्-रुँघे हुए काँपते हुए, प्रणम्य-प्रणाम कर के। वेपमानः-काँपते हुए, भूयः पुनः, एव-ही, कंठ से, भीतभीतः - भय से वचनम् वचन,

सञ्जय नेे किा

अनुवाद : भगवान् कृष्ण के उन वचनों ◌ंको सुनकर अिुथन ने काँपते हुए करबद्ध हो कर भगवान् को प्रणाम शकया और पुनः भय से काँपते हुए नमस्कार कर के रुँधे हुए कण्ठ से, कृष्ण से कहा-

व्याख्या : अत्यशधक भय अर्वा उल्लास की अवस्र्ा में व्यम्भक् भावों ◌ंकी वेदना अर्वा हषोल्लास में आँसू बहाता है। ऐसी अवस्र्ा में उसका कण्ठ रुँध ि◌ाता है और वाक् लि्ख़िाने लगती है अर्वा वह अस्पष्ट उिरण करता है अर्वा साँधे गले से बोलता है। अिुथन भगवान् का शवश्वरूप दशथन कर के अत्यन्त भयभीत हो गया र्ा अतः गद्गद वाणी (असुफुट स्वर) से बोला ।

सञ्जय के शब्दों ◌ंमें अर्थवत्ता शनशहत है। उसने सोचा र्ा शक धृतराष्टर पाण्डवों ◌ंके सार् सम्भन्ध कर लेगा क्योंशंक अब उसे ज्ञात हो गया र्ा शक अिुथन ि◌ारा कणथ और ि◌ोण के मारे ि◌ाने पर उपयुक् सहायता के अभाव में उसके पुत्र शनशश्चत रूप से मारे ि◌ायेंगे। सञ्जय को आशा र्ी शक पररणाम स्वरूप दोनों ◌ंपक्षों ◌ंमें शाम्भन्त और हषोल्लास का वातावरण बन ि◌ायेगा। शकनुतु धृतराष्टर हठी र्ा। शनयशत वश उसने इस सुझाव की ओर ध्यान नहीं ◌ं शदया।

अजुमन उवाच

थर्थाने हृषीकेि तव प्रकीत्याम
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांडस भीताडन डदिो द्रवन्द्रत
सवे नमस्यन्द्रत च डसद्धसङ्घाः ।। ३६ ।।

बि्ार्थम : स्ाने उपयुक् है, हृषीकेश- हे कृष्ण, तव-आपकी, प्रकीत्याथ गुणगान करने से, िगत् - शवश्व, प्रहृष्यशत-आनम्भन्दत होता है, अनुरज्यते-अनुरक् होता है, च- और, रक्षांशस-राक्षस, भीताशन–र कर, शदशः-शदशाओं ंको, विम्भन्त-भाग रहे हैं, सवे-सब, नमस्यम्भन्त-प्रणाम करते हैं (आपको), च-और, शसद्धसङ्घाः - शसद्ध पुरुष ।

अजुमन ने किा

अनुवाद : हे कृष्ण, यह उपयुक् ही है शक शवश्व आपके यश का गुणगान करने में आनन्द और प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है। राक्षस आपके भय से सब शदशाओं ंमें भाग रहे हैं और शसद्ध पुरुष आपको प्रणाम कर रहे हैं।

व्याख्या : प्रकीत्याथ -भगवान् की मशहमा का गुणगान

भगवान् ही प्रशंसा, पे्रम और प्रसन्नता के पात्र हैं क्योंशंक वे सबके शमत्र और आत्म-तत्त्व हैं।

भगवान् प्रशंसा, पे्रम और प्रसन्नता के शवषय इसशलए भी हैं क्योंशंक वे ब्र्ह्मा के भी स्रोत हैं िो सृशष्टकताथ हैं।

कस्मिा ते न नमेरन्मिान्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्याडदकते्रे।
अनत देवेि जगडिवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ।। ३७ ।।

बि्ार्थम : कस्मात् -शकसशलए (क्यों)ं, चऔर, ते-वे, न-नहीं,ं नमेरन् -प्रणाम करें, महात्मन् -हे महात्मन्, गरीयसे-शे्रष्ठतर, ब्र्ह्मणः- ब्र्ह्मा से अशप भी, आशदकरें मूल कारण, अनन्त-अनन्त पुरुष, देवेश देवों ंके स्वामी, िगशन्नवास-गित् के आश्रय, त्वम्-आपअक्षरम्-अक्षर, सत् सतु, असत्-असत्, तत्वह, परम् परम, यत् –ो ।

अनुवाद : हे महात्मन्, वे आपको नमस्कार क्यों ंन करें आप िो आशद सृष्टा ब्र्ह्मा से भी शे्रष्ठतर हैं। हे अनन्त, हे देवेश, हे िगदाधार, आप अशवनाशी हैं, सत् (अम्भस्तत्वमान्) हैं, असत् (अनम्भस्तत्वमान्) हैं और उससे भी अतीत हैं।

व्याख्या : भगवान् महात्मा हैं। वे अन्य सब से ब़्िे हैं। अशवनाशी हैं। इसशलए वे आराधना, पे्रम और हषथ के समुशचत शवषय हैं।

तीनों ंकालों ंमें िो अम्भस्तत्वमान् है वह सत् है। ब्र्ह्म सत् है। िो तीनों ंकालों ंमें नहीं ंहै वह असत् है। यह गित् असत् है। यह शरीर असत् है।

सत् और असत् शब्दों ंका अशभप्राय अव्यक् और व्यक् भी है िो अक्षर ब्र्ह्म की उपशधयााँ हैं। वस्ुतुतः अक्षर इन दोनों ंसे परे है। गीता में अक्षर शब्द का प्रयोग कभी तो अव्यक् (प्रकृशत) के शलए प्रयोग में आता है और कभी परब्र्ह्म के शलए प्रयुक् होता है।

अनन्त वह है िो तीन सीमाओं ंदेश-काल-वस्ुतु पररचे्छेद से अतीत है। इसकी व्याख्या अ. ११ श्लोक ११ में हो चुकी है।

अ्ुिथन पुनः भगवान् की इस प्रकार स्ुतुशत करता है-

त्वमाडददेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य डवश्वस्य परं डनधानम् ।
वेत्ताडस वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं डवश्वमनतरूप ।। ३८ ।।

ब्ाि्थम : त्वम् - आप, आशददेवः आशद देव, पुरुषः पुरुष, पुराणः सनातन, त्वम् - 3pi*r * 4 अस्य-इस, शवश्वस्य-शवश्व के, परम् परम, शवधानम्-आश्रय, वेत्ता िानने वाले, अशस हो, -िानने योग्य, परम् परम, च और, धाम-धाम, त्वया - आपके िारा, -व्याप्त, शवश्वम् -शवश्व, अनन्तरूप है अनन्त रूपों ंवालेपुरूष ।

अनुवाद : हे अनन्त रूप भगवन्, आप आशद देव हैं, सनातन पुरुष हैं, िगत् के परम आश्रय हैं, ज्ञाता, ज्ञेय और परम शनधान हैं। आपके िारा ही समूपूणथ िगत् व्याप्त है, पररपूणथ है।

व्याख्या : आशद देवः क्योंशंक भगवान् सृशष्ट कताथ हैं।

पुरुषः-क्योंशंक भगवान् देह रूप पुरी में वास करते हैं (पुरर शयनात्) ।

शनधानम्- महाप्रलय काल में शिसमें िगत् शवश्राम लेता है। िैसे पात्र शमट्टी से बनता और शमट्टी में ही लीन होता है। इसी भाँशत संसार ब्ह्म से उत्पन्न हो कर उसी में शवलीन होता है। अतः ब्ह्म िगत् के उपादान कारण हैं। अतः वे आशद देव और परम शनधान (आश्रय) हैं।

वेत्ता–िानने योग्य वसुतुओं ंको िानने वाला। भगवान् सवथज्ञ हैं। वे समस्त लोकज्ञाता हैं और इसके शनशमत्त कारण हैं।

परम धाम-शवषुणु का परम धाम । रुि में सपथ की भाँशत ब्ह्म अर्वा शवषुणु अपनी सत्-शचत्-आनन्द पूणथ प्रकृशत से समूपूणथ शवश्व में व्याप्त हैं।

और भी-

वायुयमो ऽडग्नवमरुणः िांकः
प्रजापडतस्त्वं प्रडपतामिश्च ।
नमो नमस्तेेऽसुतु सिस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽडप नमो नमस्तेे ।।३९ ।।

ब्ाि्थम : वायुः वायु, यमः-यम, अशग्नः-अशग्न, वरुणः वरुण, शशांकः- चि, प्रिापशतः-प्रिापशत, त्वम् - आप, प्रशपतामहः-सब का शपतामह, च और, नमः नमः बारम्बार नमस्कार, ते-आपको, असुतु-हो, सहस्रकृत्वः- हिारों ं बार, पुनःपुनः, च-और, भूयः पुनः, अशप-भी, नमः नमः नमस्कार, ते आपको ।

अनुवाद : आप वायु, यम, अशग्न, वरुण, चिमा, प्रिापशत और प्रशपतामह (ब्ह्मा के भी शपता) हो। आपके शलए हिारों ंबार नमस्कार, नमस्कार । पुनः-पुनः आपको नमस्कार, नमस्कार।

व्याख्या : प्रिापशत-मरीशच तर्ा अन्य सात, ब्ह्मा के मानस पुत्र रे्। मरीशच से कश्यप हुए और कश्यप से अन्य सन्तान हुई। इसशलए मरीशच, कश्यप और अन्य, प्रिापशत (प्रिा के स्वामी) अर्वा प्रिा के देव माने िाते हैं। कुछ

लोग कश्यप तरा् अन्य प्रिपशतयों ंके भाव में इस शब्द को लेते हैं शकनुतु यहााँ क्योंशंक प्रिपशत शब्द एकवचन में है अतः ब्ह्मा को ही प्रिपशत के भाव में लेना समुशचत होगा। ब्ह्मा कश्यप के शपतामह हैं। ब्ह्मा अर्वा शहरण्यगभथ कायथ ब्ह्म हैं। ईश्वर कारण ब्ह्म है िो ब्ह्मा का कारण है। अतः ईश्वर प्रशपतामह है। वह ब्ह्मा के भी शपता हैं।

माया ईश्वर की मयाथशदत उपाशध है। माया उसका कारण शरीर है। ईश्वर का कोई धाम नहीं ंहै। माया अव्यशतरेक (अशभन्न) अवस्ा् में है। वह ऐसी अवस्ा् में है िहााँ प्रकृशत के गुण साम्यावस्ा् में होते हैं। ईश्वर की इच्छा से िब (तीन गुणों ंकी) समता भङ्ग होती है तो तीन गुण, ब्ह्मा, शवषुणु और शशव प्रकट होते हैं, अशभव्यक् होते हैं।

आप चिमा हैं, इसमें सूयथ भी उशद्दष्ट है।

पुनः, भूयः पुनः पुनः। नमस्कार सहस्रों ंबार और पुनः नमस्कार। यहााँ इस भाव को दशाथया गया है शक अिुथन के मन में भगवान् कृष्ण के प्रशत अनन्य, अपार भम्भक् और प्रगाढ़ शनष्ठा री्। सहस्र बार नमस्कार करके भी उसे सनुतुशष्ट नहीं ंहो रही री्।

नमः पुरस्तादर्थ पृितसे्ते
नमोऽसुतु ते सवमत एव सवम।
अनतवीयामडमतडवक्रमसं्त्वं
सवं समाप्नोडष ततोऽडस सवमः ।।४० ।।

बि्ार्थम : नमः -प्रणाम, पुरस्तात् -सामने से, अर्-भी, पृष्ठतः-पीछे से, ते-आपको, नमः-प्रणाम, असुतु-हो, ते-आपको, सवथतः सब ओर से, एव-ही, सवथ सब, अनन्तवीयथ-असीम शम्भक् युक्, अशमतशवक्रमः- अपररशमत पराक्रम स्वरूप, त्वम् - आप, सवथम् -सवथस्व, समाप्नोशष-सब में रमे हुए, ततः- इसशलए, अशस-हो, सवथः सवथस्व ।

अनुवाद : आपको प्रणाम हो, आगे से भी और पीछे से भी। सब ओर से आपको प्रणाम हो। हे सवाथत्मन्, आप अनन्त वीयथ, बल और पराक्रम से युक् हैं, आप सवथव्यापक हैं अतः आप ही सवथस्व हैं।

व्याख्या : नमः पुरस्तादर् पृष्ठतः... "मैं आपके समक्ष प्रणाम करता हाँ, पीछे से भी और सब ओर से प्रणाम करता हाँ", ये शब्द भगवान् की सवथव्याप्त प्रकृशत की ओर संकेत करते हैं। सवथव्यापक आत्मा का आगे और पीछे कैसे हो सकता है? केवल मत्यथ शवषयों ंका ही पुरस्तात् और पृष्ठ भाग सम्भव है, अिुथन ने ऐसा ही शवचार कर के, शक भगवान् का आगे और पृष्ठ भाग है, भगवान् को प्रणाम शकया। इसके अशतररक् अिुथन उस समय शनतान्त श्रद्धा और भम्भक् भाव से पूणथ रा्।

हे सवथः- आपके शबना कोई अम्भस्तत्व नहीं।ं आत्मा सवथव्यापक होने से वह सवथस्व है सवाथत्मन् है। आत्मा के अशतररक् अन्य कुछ नहीं।ं

सवथतः आप सब शदशाओं ंमें शवरािमान् हैं अतः सब ओर हैं। कोई शम्भक्शाली तो हो सकता है शकनुतु आवश्यक नहीं ंशक उसमें शतुरु संहार का साहस हो। अर्वा वह अल्प शम्भक् से सम्पन्न हो सकता है शकनुतु भगवान् तो शम्भक् और पराक्रम में अनन्त हैं।

आप स्व-आत्म तत्त्व से सवथत्र व्याप्त हैं।

सखेडत मत्वाप्रसभं यदुक्तं
े कृष्ण े यादव े सखेडत ।
अजानता मडिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वाडप ।।४१ ।।

बिार्थम : सखा-शमत्र, इशत-इस प्रकार, मत्वा मान कर, प्रसभम् -हठपूवथक, यत्-िो, उक्म् -कहा, हे कृष्ण-हे कृष्ण, हे यादव-हे यादव, हे सखा हे शमत्र, इशत-इस प्रकार, अिानता न िानते हुए, मशहमानम् -मशहमा को, तव-आपकी, इदम्-इस, मया-मेरे िारा, प्रमादात् -प्रमादवश, प्रणयेन-पे्रमवश, वा-अर्वा, अशप-भी ।

अनुवाद: आपकी मशहमा से अनशभज्ञ, आपको सखा मानते हुए मैंन प्रणयवश अर्वा प्रमादवश आपको हे कृष्ण, यादव, हे सखा कह कर सम्बोधन करने की िो धृष्टता की,

यिाविासार्थमसतृ्कतोऽडस
डविारिय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽर्थवाप्यचुयुत तत्समकं्षं
तत्क्षामये त्वामिमप्रमेयम् ।।४२ ।।

बिार्थम : यत्-िो, च-और, अवहासार्थम् -शवनोद के शलए, असतृ्कतः अपमाशनत शकये गये, अशस - हो, शवहारशय्यासनभोिनेषु-शवहार, शब्या, आसन और भोिन के समय में, एकः एक, अर्वा अर्वा, अशप-मी, अचुयुत-हे कृष्ण, तत् - वह, समक्षम् -समक्ष, तत्-वह, क्षामये क्षमा करें, त्वाम्-आपको, अहम् -मैं, अप्रमेयम्
अपररशमत ।

अनुवाद : हे कृष्ण, शकसी भी प्रकार से, शवनोद के शलए खेल-खेल में, शय्या पर लेटे हुए, बैठे हुए अर्वा भोिन के समय, अकेले में अर्वा सब के समक्ष मैंने आपका उपहास शकया हो तो हे अचुयुत, उसके शलए मैं क्षमाप्रार्ी हाँ। हे अप्रमेय, मुझे क्षमा करना ।

व्याख्या : भगवान् का शवश्व रूप दशथन कर के अिुथन अपने पूवथ पररशचत व्यवहार हेतु क्षमा याचना करता है। वह कहता है-"मैं मूखथ ही बना रहा हाँ। आपकी महानता से अनशभज्ञ, आपके सार् मैंने लौशकक रीशत से व्यवहार शकया है। शमथ्या मशतवश (भ्रमवश) मैंने आपको अपना सखा माना । मैंने आपके सार् दुव्यथवहार शकया। आप इस ब्ह्माण्ड के स्रष्टा हो पुनरशप मैंने आपके सार् उपहास शकया। मैंने आपसे अवांशछत स्वतन्त्रता ली । कृपया क्षमा करें भगवन्।" तत्-वे सब अपराध ।

अचुयुत-वह, िो अपररवतथनशील है।

तत्समक्षम् - दूसरों ंके समक्ष ।

अप्रमेयम् - अपररशमत । शिसका ति और गौरव अपररशमत हैं।

डपताडस लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुगमरीयान् ।

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यडधकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रडतमप्रभाव ।।४३ ।।

बि्ार्थम : शपता-शपता, अशस-हो, लोकस्य-शवश्व के, चराचरस्य- बराचर िगत् के, त्वम् आप, अस्य-इसके, पूज्यः पूि्ा के योग्य, च और, गुरुः गुरु, गरीयान् अत्यन्त पूि्ाहथ, न नहीं,ं त्वत्समः आपके समान, अम्भस्त-है, अभ्यशधकः बढ़ कर, कुतः-कहााँ से, अन्यः-अन्य, लोकत्रये तीनों ंलोकों ंमें, अशप-भी, अप्रशतमप्रभाव-अनुपम मशहमा वाले।

अनुवाद : आप इस चराचर िगत् के शपता हैं। आप ही इस शवश्व के आराध्य देव और महान् गुरु हैं। (क्योंशंक) आपके समान तीनों ंलोकों ंमें कोई नहीं,ं शफर हे अनुपम मशहमा वाले भगवन्, आपसे अशधक (श्ेरेष्ठतर) कोई कैसे हो सकता है ?

व्याख्या : न त्वत्समोऽम्भस्त-दो अर्वा अशधक ईश्वर तो नहीं ंहो सकते। यशद ऐसा होता तो शवश्व शिस प्रकार से अब चल रहा है वैसे न होता । सभी ईश्वर एक समान मन वाले तो हो नहीं ंसकते। वे सब पृर्क् पृर्क् शवचार धारा वाले होते। यशद एक सृशष्ट की रचना का इचु्छुक होता तो दूसरा नष्ट करने की इच्छा रखता ।

बि आपके समकक्ष ही कोई नहीं ंतो आपसे अशधक कोई कैसे हो सकता है?

शपता-सृशष्टकताथ । क्योंशंक भगवान् सृशष्टकताथ हैं इसशलए वे पूज्य हैं। बे सविो गुरु भी हैं। इसशलए भगवान् अनुपम हैं उनके समान अन्य कोई नहीं।ं

तस्मात्प्रणम्य प्रडणधाय कायं
प्रसादये त्वामिमिमीमीड्यम् ।
डपतेव पुत्रस्य सखेव सखु्युः
डप्रयः डप्रयायायामडस देव सोढुम् ।।४४ ।।

बि्ार्थम : तस्मात् - इसशलए, प्रणम्य-प्रणाम करके, प्रशणधाय-झुका कर, कायम् -शरीर को, प्रसादये-प्रसन्न करने के शलए (क्षमा याचना के शलए), त्वाम् - आपको, अहम् -मैं, ईशम् - भगवान् को, ईड्यम् -पूज्य, शपता-शपता, इव-भांशत, पुत्रस्य-पुत्र का, सखा शमत्र, इव शमत्र का शप्रयः-शप्रय, शप्रयायाः-शप्रया का, अहथशस योग्य हैं, सोढुम्-सहन करने के शलए।

अनुवाद : अतः हे पूि्ाहथ भगवन्, प्रणाम कर के, दण्डवत् (साष्टाङ्ग) प्रणत हो कर मैं आप से क्षमा याचना करता हाँ। शिस प्रकार शपता पुत्र को, शमत्र शमत्र को और शप्रय अपनी शप्रयतमा को क्षमा कर देते हैं उसी प्रकार आप भी मेरे अपराध को सहन करो, क्षमा करो।

व्याख्या : हे भगवन्, िैसे माता अपने शशु को गोद में ले लेती है आप भी मुझे अपने सीने से लगा लो। मैंने िो कुछ शकया और कहा है उसे क्षमा कर दीशिए। मेरे अपराध क्षमा कीशिए। पूवथकृत् मेरे दोषों ंकी उपेक्षा कीशिए। अज्ञानवश ही मैंने वह सब शकया। मैं आपको समशपथत हाँ और क्षमाप्रार्ी हाँ।

अदृष्ट्पूवम हृडषतोऽन्द्रस्म दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यडर्थतं मनो मे ।
तदेव मे दिमय देव रूपं

प्रसीद देवेि जगडिवास ।।४५ ।।

बि्दार्थम : अदृष्टपूवथम् - पहले न देखा हुआ, हृशषतः - प्रसन्न हाँ, अम्भस्म-हाँ, दृष्ट्वा देख कर, भयेन-भय से, च-और, प्रव्यशर्तम् -दुःखी है, मनः मन, मे-मेरा, तत्-वह, एव-ही, मे-मुझे, दशथय-शदखाओ, देव-हे देव, रूपम् -रूप, प्रसीद-दया करो, देवेश- हे देवाशधदेव, िगशन्नवासि–गत् के आश्रय।

अनुवाद : िो पहले कभी नहीं ंदेखा, उसे देख कर मैं आनम्भन्दत हाँ शकनुतु मेरा हृदय भय से व्याकुल है। हे भगवन्, हे देवेश, हे िगशन्नवास, मुझ पर कृपा करो, आप प्रसन्न हों ंऔर अपना पूवथ रूप ही मुझे (पुनः) शदखाओ।

व्याख्या : सामान्य व्यम्भक् के शलए शवश्व रूप-दशथन भयावह और अचमे्भे में िालने वाला हो सकता है शकनुतु एक योगी के शलए यह उत्साहवधथक, शम्भक्वधथक और आत्मा को पे्रेररत करने वाला है।

अिुथन कहता है- "शवश्व रूप मैंने पहले कभी नहीं ंदेखा र्ा। मुझे तो केवल वही स्वरूप शदखाओ िो मेरे शमत्र रूप में र्ा।"

डकरीडटनं गडदनं चक्रिस्त -
डमच्छाडम त्वां द्रष्ट्टुमिं तर्ैथैव ।
तेनैव रूपेण चतुभुमजेन
सिस्रबािो भव डवश्वमूते ।।४६ ।।

बि्दार्थम : शकरीशटनम् -मुकुट पहने हुए, गशदनम् गदा धारण शकये हुए, बनहस्तम् -हार् में चक्र धारण शकये हुए, इच्छाशम इच्छा करता हाँ, बाम-आपको, िष्ट्टुम् देखने की, अहम् मैं, तर्ैव-वैसे ही, तेनैव वहीं,ं रूपण रूप से, चतुभुथिेन चतुभुथि रूप से, सहस्रबाहो-हे सहस्रबाहो, भव-हो, शवश्वमूते-हे शवश्वरूप ।

अनुवाद : हे शवश्व रूप, हे सहस्रबाहो, मैं आपको उसी चतुभुथि रूप में, मुकुट धारण शकये हुए, हार्ों ंमें चक्र और गदा शलए हुए (पूवथ रूप में) देखना चाहता हाँ।

व्याख्या : अिुथन ने कहा- "हे भगवन्, शवश्वरूप में मैं नहीं ंिानता मैं शकसको सम्बोधन करूाँ और शकधर, शकसके समु्मुख होऊाँ। मैं भय से व्याकुल हाँ। मैं आपको शंख, चक्र, गदा, पद्म युक् देखने का इचु्छुक हाँ। इस शवश्व रूप को हटा कर पूवथ चतुभुथि रूप में दशथन दीशिए।"

आध्याम्भत्मक साधक प्रायः साधना प्रारम्भ करते ही सविो आध्याम्भत्मक अनुभूशतयों ंकी आकांक्षा करते हैं। यह उशचत नहीं ंहै। वे उस ति पुंिर्वा शम्भक् को सहन नहीं ंकर पायेंगे अतः धैयथ धारण करें।

सहस्रबाहो- शवश्व रूप को पररलशक्षत करता है।

मया प्रसैन तवाजुमनेदं
रूपं परं दडिमतमियोगात् ।
तेजोमयं डवश्वमनतमादं्यं
यने्मे त्वदने्येन न दृष्ट्पूवम् ।।४७ ।।

बि्ार्थम : मया-मेरे ाारा, प्रसन्ेनेन-प्रसन्न, तव-तुम्हें, अिुथन-हे अिुथन, इदम् - यह, रूपम् रूप, परम् -परम, दशथतम्-शदखाया गया, आत्मयोगात् - अपनी ही योग शम्भक् से, तेिोमयम्, रिो युक्, शवधम्-वैशषक, आत्मयोगात अनन्त, आद्यम् - आशद, यत् ाो देखो गयेरा, त्वत्-तुम से, अन्ेयेन-अन्य के ाारा, न-नहीं,ं दृष्टपूवथम् -पहले देखा गया।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : हे अिुथन, यह तेिोमय, अवुयुत्पन्न (आशद), अनन्त स्वरूप तुम से प्रसन्न हो कर अपनी शदव्य योग शम्भक् से मैंने तुम्हें शदखाया है। यह शवराद स्वरूप तुम से पूवथ शकसी और ने नहीं ंदेखा ।

व्याख्या : भगवान् कृष्ण शवराट् स्वरूप की प्रशंसा कर रहे हैं क्योंशंक अिुथन को यह ज्ञान होना चाशहए शक उसने सावथभौशमक स्वरूप के दशथन करके सवथस्व प्राप्त कर शलया है।

उत्कृष्ट दशथन प्राम्भप्त हेतु अभीाा रखने के शलए समस्त आध्याम्भत्मक साधकों ंके शलए यह पे्रेरणा भी है। उन्ें क्या करना अपेशक्षत है इस शवषय में भगवान् श्लोक ५३ से ५५ में उपदेश देते हैं।

न वेदयज्ञाध्ययनैनम दानै -
नम च डक्रयाडभनम तपोडभरुग्ैरैः ।
एवंरूपः ाक्य अिें नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्ेयेन कुरुप्रवीर ।।४८ ।।

बि्ार्थम : न-नहीं,ं वेदयज्ञाध्ययनैः-यज्ञ और वेदों ंके अध्ययन ाारा, न-नहीं,ं दानैः दान के ाारा, न-नहीं,ं च-और, शक्रयाशभः- अनुष्ठानों ं के ाा रा, न-नहीं,ं तपोशभः - तपश्चयाथ ाा रा, उग्ैरैः- घोर, एवंरूपः- ऐसा रूप, शक्यः- सम्भव, अहम् -मैं, नृलोके-भूलोक में, ाष्ट्टुम् - देखने के शलए, त्वत्-तुम से, अन्ेयेन-अन्य के ाारा, कुरुप्रवीर-हे कौरवों ंमें
श्ेरेष्ठ।

अनुवाद : हे कुरुप्रवीर (अिुथन), इस मनुष्य लोक में, मेरा यह स्वरूप तुम्हारे अशतररक् शकसी अन्य के ाारा, न तो वेदों ंके अध्ययन से, न यज्ञ से, न दान से, न कमथकांकी शक्रयाओं ंसे और न ही कठोर तप से देखा िा सकता है।

व्याख्या : शबना अर्थज्ञान के वेदों ंको मात्र कण्ठस् कर लेने से ज्ञान नहीं ंहोता । शक्रयाओं ंका अध्ययन और उनका अर्थ िानना भी अशनवायथ है। दान-िैसे तुला पुरुष अर्ाथत् मनुष्य के भार के अनुरूप स्वणथदान ।

कन्यादान-अपनी गोदान, अन्नदान आशद हैं। पुत्री को शववाह के समय दान करना। इसी प्रकार

शक्रया-अशग्नहोत्र आशद शक्रयायें।

तपस् -िैसे चाांद्रायण व्रत-इसमें पूशणथमा से प्रारम्भ कर के कृष्ण पक्ष में प्रशतशदन एक-एक ग्रास कम करते िाते हैं और इसी प्रकार शुक्ल पक्ष में शनत्य एक-एक ग्रास बढ़ाते िाते हैं। यह व्रत मन की शुम्भद्ध करने वाला और पापनाशक है।

मा ते व्यर्था मा च डवमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्ंत्वं

तदेव मे रूपडमदं प्रपश्य ।।४९ ।।

बि्ार्थम : मा-मत (नहीं)ं, ते तुम, व्यर्ा–रो, मा-नहीं,ं चऔर, शवमूढभावः शंकंकतथव्यशवमूढ़ होना, दृष्ट्वा-देख कर, रूपम् रूप, घोरम् - शवकराल, ईदृक् -ऐसे, मम-मेरे, इदम् -इस, व्यपेतभीः- भय रशहत हो कर, प्रीतमनाः - प्रसन्न मन से, पुनः पुनः, त्वम्-तुम, तत्-उस, एव-ही, मे-मेरे, रूपम् -रूप को, इदम् - यह, प्रपश्य-देखो ।

अनुवाद : मेरे इस प्रकार के शवकराल रूप को देख कर भयभीत न होओ और न ही शंकंकतथव्यशवमूढ़ बनो। भय को त्याग कर प्रसन्न शचत्त से पुनः मेरे पूवथ स्वरूप को देखो ।

व्याख्या : पूवथ रूप-शंख, चक्र, गदा, पद्म युक् पूवथ रूप अर्ाथत् चतुभुथि रूप ।

भगवान् ने अिुथन को भयभीत दशा में देखा, इसशलए उन्होंनें अपना शवश्वरूप पररवशतथत कर के पूवथ सौम्य रूप धारण शकया। अिुथन को सान्त्वना देते हुए वे प्रेमपूणथ मधुर वचन बोले ।

सञ्जय उवाच

इत्यजुमनं वासुदेवस्तर्थोक्त्वा
स्वकं रूपं दिमयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्मिमिा ।।५० ।।

बि्ार्थम: इशत-इस प्रकार, अिुथनम् अिुथन को, वासुदेवः वासुदेव, तर्ा-पैसा, उक्त्वा कह कर, स्वकम् - अपने, रूपम् -रूप को, दशथयामास िैसा उसुना, आश्वासयामास - आश्वासन शदया, चऔर, भीतम् िरे शदवा एनम् उसे, भूत्वा हो कर, पुनः पुनः, सौम्यवपुः सौम्य स्वरूप, महात्मा-महात्मा ।

सञ्जय ने किा

अनुवाद : अिुथन को इस प्रकार कह कर भगवान् कृष्ण ने पुनः अपना स्वरूप शदखाया और (इस प्रकार) महात्मा (कृष्ण) ने सौम्य स्वरूप धारण कर के भयभीत अिुथन को आश्वाशसत शकया ।

व्याख्या : मे रूपशमदम् - वसुदेव के पुत्र के रूप में।

अजुमन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनादमन ।
इदानीमन्द्रस्म संवृत्तः सचेताः प्रकृडतं गतः ।।५१ ।।

बि्ार्थम : दृष्ट्वा देख कर, इदम्-यह, मानुषम् - मनुष्य का, रूपम् -रूप, तव-आप का, सौम्यम्-सौम्य, िनादथन हे कृष्ण, इदानीम् - अब, अम्भस्म-हाँ, संवृत्तः म्भस्र, सचेताः- चेतना युक् (अपनी चेतना में), प्रकृशतम् - प्रकृशत को, गतः- प्राप्त ।

अजुमन ने किा

अनुवाद : हे कृष्ण, आपके इस सौम्य मानव स्वरूप को देख कर मेरा शचत्त म्भस्र हो गया है और मैं अपनी स्वाभाशवक प्रवृशत्त को प्राप्त हो गया हाँ।

व्याख्या : अिुथन भगवान् कृष्ण से कह रहे हैं-"हे भगवन्, अब मैं आपको मनुष्य रूप में देख रहा हाँ। अब मेरे शवचार संहृत हो गये हैं और मैं शान्त हो गया हाँ। मैं बोल सकता हाँ। मेरी इम्भियााँ अपना कायथ कर रही हैं। मैं भय मुक् हो गया हाँ। भूल करने वाले शशु को भी शिस प्रकार माता गोद में ले कर कण्ठ से लगा लेती है, आपने वैसा ही प्यार मुझे शदया है, मेरे सार् मातृवत् व्यवहार शकया है। कुछ शदन तक मााँ से शबछ़्िा हुआ गोवत्स (बछ़्िा) शिस प्रकार मााँ को पुनः देख कर हशषथत होता है उसी प्रकार आपके इस अत्यन्त सुन्दर स्वरूप को देख कर मैं आनन्द की अनुभूशत कर रहा हाँ। मैंने अमृतपान कर शलया है, अब मैं िीशवत हाँ।"

श्री भगवानुवाच

सुदुदमिमडमदं रूपं दृष्ट्वानडस यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य डनत्यं दिमनकाडङ्क्षणः ।।५२ ।।

बि्ार्थम : सुदुदथशथशमदम् -दुलथभ दशथन वाला, इदम् - यह, रूपम् -रूप, दृष्टवानशस तुमने देखा है, यत्-िो, मम-मेरा, देवा -देव, अशप - भी, अस्य -इस, रूपस्य रूप के, शनत्यम् - शनत्य, दशथनकाशङ्क्षणः - दशथन के ।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : मेरा िो स्वरूप तुमने देखा है इसे देख पाना वसुतुतः अत्यन्त कशठन है। देवगण भी इस रूप के दशथन के शलए शनत्य आकाङ्क्षा करते हैं।

व्याख्या : भगवान् कृष्ण अिुथन से कहते हैं- "यद्यशप देवगण इस शवश्वरूप दशथन की अशभलाषा रखते हैं तर्ाशप उनें् दशथन नहीं ंहुए, िैसे तुम्हें हो गये। वे इसे कभी नहीं ंदेख सकते।"

उतुसुकतापूवथक मेघों ंको देखते हुए शिस प्रकार चातक पक्षी वषाथ की एक बूाँद की कामना करता है उसी प्रकार देवगण शवश्व रूप दशथन के शलए सूपृहा करते हैं शकनुतु स्वप्न में भी उनकी इच्छाओं ंकी पूशतथ नहीं ंहुई है। ऐसा अद्भुत है यह शवश्व रूप दशथन शिसे तुमने सहि ही पा शलया है।

निां वेदैनम तपसा न दानेन न चेज्यया ।
क्यि एवंडवधो द्रष्ट्ुं दृष्ट्वानडस मां यर्था ।।५३ ।।

बि्ार्थम : न-नहीं,ं अहम् -मैं, वेदैः- वेदों ंके िारा, तपसा तपस्या के िारा, न नहीं,ं दानेन दान के िारा, न-नहीं,ं च-और, इज्यया-यज्ञ से, शक्यः-सम्भव, एवंशवधः - इस प्रकार, िष्ट्ुम् - देखने के शलए, दृष्टवानशस - (तुमने) देखा है, माम् -मुझे, यर्ा-िैसे ।

अनुवाद : (इतने सहि रूप से), िैसे तुमने मुझे देखा है ऐसे न तो मैं वेदों ंसे, न तपश्चयाथ से, न दान से और न ही यज्ञ से देखा िा सकता हाँ।

व्याख्या : शवश्व रूप दशथन िो तुमने इतनी सुगमतापूवथक कर शलया है बह न तो वेद और षि्दशथन के अध्ययन से , न यज्ञाशद शक्रयाओं ंसे (तपस्या से), न दान से और न ही शवशवध प्रकार के अनुष्ठान आशद से सुलभ है।

वास्तव में ही अिुथन अत्यन्त सौभाग्यशाली र्ा शक उसको शवराट् रूप के दशथन सुलभ हुए।

भगवान् के दशथन कैसे सुलभ हैं? सुनो! हृदय उसकी सिी भम्भक् से आप्लाशवत हो िाये, पररपूणथ हो िाये। (शनरूपण-XI.48)

भक्त्या त्वनन्यया िक्य अिमेवंडवधोऽजुमन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ।।५४ ।।

बि्ार्थम: भक्त्या-भम्भक् से, तु-शनश्चयेन, अनन्यया-अनन्य (भम्भक्) से, शक्य:- (मैं) सम्भव हाँ, अहम् -मैं, एवंशवधः- इस रूप वाला, अिुथन- हे अिुथन, ज्ञातुम्–िानने के शलए, िष्म् देखने के शलए, च-और, तत्त्वेन-तत्व से, प्रवेष्ट्टुम् -प्रवेश करने के शलए, च-और, परंतप हे अिुथन ।

अनुवाद : हे अिुथन, शनशश्चत रूप से अनन्य भम्भक् भाव के िारा मेरा यह शवराट् स्वरूप तत्त्व से िाना और देखा िा सकता है तर्ा इसमें प्रवेश पाया िा सकता है अर्ाथत् इसका गोपनीय रहस्य समझा िा सकता है।

व्याख्या : शवश्व रूप दशथन हेतु केवल भम्भक् एकमात्र साधन है।

अनन्य भम्भक्-एकाग्र शचत्त से भम्भक्। एक ही लक्ष्य के भेदन हेतु अनवरत भम्भक् । वह भम्भक् शिसमें भगवान् के अशतररक् शकसी अन्य पदार्थ की अभीिा नहीं ंहोती। इस प्रकार की भम्भक् में शकसी भी इम्भिय िारा अपने भगवान् के अशतररक् अन्य शकसी शवषय की अनुभूशत नहीं ंहोती । अहंभाव और िैत भाव पूणथतया नष्ट हो िाते हैं।

एवंशवधः - इस प्रकार का अर्ाथत् शवराट् स्वरूप का ।

अनन्य भम्भक् से न केवल मुझे िानना ही पयाथप्त है, िैसा शक शास्त्रों ंमें शलखा है प्रत्युत् मेरा साक्षात्कार अर्वा मोक्ष भी सम्भव है। भक् यह िान लेता है शक ये सब भी भगवान् है और आत्यम्भन्तक सत्य भी वही है। इस प्रकाश की अनुभूशत होने पर उसमें (भगवान् में) लीन हो िाता है। (शनरूपण-VIII. 22; X.10)

मत्कममकृन्मत्परमो मित्तः सङ्गवडजमतः ।
डनवैरः सवमभूतेषु यः स मामेडत पाण्डव ।।५५ ।।

बि्ार्थम : मत्कमथकृत् -मेरे शलए कमथ करने वाला, मत्परमः मुझे परम पुरुष मानने वाला, मद्भक्:- मेरा भक्, सङ्गवशिथतः- आसम्भक् रशहत, शनववरः- वैर भाव से मुक्त्त, सवथभूतेषु समस्त प्राशणयों ंमें, यः–िो, सः-वह, माम् -मुझे,
एशत-प्राप्त होता है, पाण्डव-हे अिुथन।
अनुवाद : िो मनुष्य मेरे शलए ही सब कमथ करता है, मुझे ही सविो सत्ता मानता है, मेरा भक् है, आसम्भक्रशहत है, शकसी भी प्राणी के प्रशत वैरभाव नहीं ंरखता, वह, हे अिुथन, मुझे प्राप्त होता है।

व्याख्या : समूपूणथ गीता का यह सार है। इस उपदेश के अनुरूप अपना िीवन बनाने वाला साधक परम आनन्द और अमृतत्व की प्राम्भप्त करेगा। गीता के समूपूणथ दशथन का, यह श्लोक सार तत्त्व है।

भगवान् के शलए ही िो साधक कत्तथव्य कमथ करता है, भगवान् को ही समस्त कमथ समशपथत करता है, हृदय से, आत्मा से उसकी सेवा करता है, उसे अपना परम लक्ष्य मानता है, उसी के शलए ही िीशवत रहता है, उसी के शलए कमथ करता है, सब में भगवान् के दशथन करता है, समस्त संसार को भगवान् का शवश्व रूप दशथन मान कर, दूसरों ंिारा अपमाशनत होने पर शकसी के शलए घृणा अर्वा शतुरु भाव नहीं ंरखता, धन-दौलत में आसम्भक् नहीं ं रखता, सन्तशत, पशत्न, शमत्र और सम्बम्भन्धयों ंके प्रशत भी आसम्भक् से मुक् रहता है, और भगवान् के अशतररक् कोई और आकाङ्क्षा नहीं ंरखता, वह साक्षात्कार िारा उस परम सत् से एकत्व प्राप्त कर लेता है, उसी के सार् एक रूप हो िाता है।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषत्सु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
डवश्वरूपदिमनयोगो नामैकादिोऽध्यायः ।।
।। इडत डवश्वरूपदिमनयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर् िादशोऽध्यायः

भम्भक्योगः

अजुमन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पयुमपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्ंतं तेषां के योगडवत्तमाः ।।१ ।।

बि्र्थम : एवम् - इस प्रकार, सततयुक्ाः सदा म्भरूर, येि्ो, भक्ाः- भक्, त्वाम् - आपको, पयुथपासते- (आपकी) उपासना करते हैं, येि्ो, च-और, अशप-भी, अक्षरम् -अशवनाशी, अव्यक्त्तम् -अव्यक्त्त, तेषाम् -उनका, के -कौन, योगशवत्तमाः -योग में श्ेष्ठ।

अजुमन ने किा

अनुवाद : वे भक् िो आपकी ही भम्भक् में अनन्यमनस्क हो कर संलग्न हैं और अन्य वे िो अव्यक् अशवनाशी परब्र्ह्म की उपासना में लगे हैं, इनमें श्ेष्ठतर योगवेत्ता कौन हैं?

व्याख्या : ादिश अध्याय इस सत्य को प्रमाशणत करता है शक ज्ञानयोग की अपेक्षा भम्भक् योग अशधक सहि है। भम्भक् योग में भक् भगवान् से शप्रय और सशन्नकट का सम्बन्ध स्ाशपत करता है। वह अपनी सामथ्यथ, रुशच और स्वभाव के अनुरूप पााँच भावों ं में से शकसी एक का चयन करता है। पााँच भाव इस प्रकार हैं-शान्त भाव (शाम्भन्तपूवथक आराधना), दास्य भाव (सेवक और स्वामी का भाव), सखा भाव (सखा का भाव, भगवान् के प्रशत), वात्सल्य भाव (शपता-पुत्र-भाव), माधुयथ भाव (प्रेमी और प्रेशमका का भाव)। भक् इन भावों ंको अपने भगवान् के प्रशत रखता है। अम्भन्तम, माधुयथ भाव भम्भक् की पराकाष्ठा है। यह भगवान् में लीन होना है। भक् भगवान् की वन्दना करता है। वह उनका सतत स्मरण करता है। उन का कीतथन करता है। उनकी मशहमा का गुणगान करता है। नामि-प करता है। उनके मन्त्र का िप करता है। प्रार्थना करता है और साष्टाङ्ग प्रणाम करता है। उनकी लीला का श्रवण करता है। वह इच्छारशहत, असूया रशहत, शबना शकसी शतथ के पूणथ समपथण करता है और भगवान् की अहेतुकी अनुकम्पा का अशधकारी बन िाता है, उनसे संलाप करता है और अन्ततः उन्हीं ंमें समा िाता है।

भक् की उपासना मूशतथ पूिा से प्रारम्भ होती है। इसके उपरान्त वह उस रूप की आन्तररक (मानशसक) पूिा-आराधना करता है। अन्ततः वह सवथव्यापक परमात्मा की परम-पूिा में प्रेररत शकया िाता है।

एवम् - इस प्रकार अर्ाथत् िैसा पूवथ अध्याय के अम्भन्तम श्लोक में कहा गया। अव्यक्म् अव्यक् अर्ाथत् सीशमत उपाशधयों ंसे अतीत, इम्भियों ंिारा अबोधगम्य ।

अव्यक् ब्रह्म सब सीमाओं ंसे परे है। इम्भियों ंिारा िो कुछ दृशष्टगोचर है वह व्यक् है।

भक्ों ंके हृदय पूणथरूपेण आप पर एकाशग्रत रहते हैं। वे पूणथ मन से, आत्मा से आपकी आराधना करते हैं।

अन्य वे हैं िो देश-काल-वस्तु-पररच्छेद से अतीत शनगुथण, शनराकार, अव्यक् ब्रह्म की उपासना करते हैं िो शाश्वत है, अशनवथचनीय है तर्ा मन और इम्भियों ंकी पहुाँच से परे है। ऐसे उपासक ज्ञानी ऋशष होते हैं।

भक् और ज्ञानी-अब इन दोनों ंमें से श्रेष्ठतर योगवेत्ता कौन है? (शनरूपण-XI.55)

श्री भगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां डनत्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ।।२ ।।

शब्दार्थ : मशय-मुझ में, आवेश्य म्भस्र्र कर के, मन:-मन, ये िो, भाम्-मुझे, शनत्ययुक्ाः सतत लगे हुए, उपासते-पूिा करते हैं, भार आबद्धापूवथक, परया-परम, उपेताः युक्, से-वे, मे-मेर, युक्तमाः- योग में उतकृष्टतम, मताः-(मेरे) शवचार में।

श्री भगवान् ने कहा

अनुवाद : मुझ में मन म्भस्र्र कर के, सतत ध्यान मग्न और परम शनष्ठा के सार् िो मेरी उपासना करते हैं, वे योग में उत्तम हैं, ऐसा मेरा मत है।

व्याख्या : ि भक् अपने मन को मुझ में, मेरे शवश्व रूप में म्भस्र करते हैं और सदा समम्भित, परम श्रद्धापूवथक, मुझे सब योगों ंका स्वामी मानते हुए, अनासक् भाव से, सब बुराइयों ंसे दूर रह कर मुझ परम पुरुष की आराधना करते हैं वे मेरे शवचार से योग में उत्तम हैं।

वे अहोरात्र मेरे भिन में व्यतीत करते हैं। मेरे शवचार के अशतररक् उनके मन में अन्य कोई शवचार नहीं ं आता। वे मेरे शलए िीवन यापन करते हैं। अतः यह कहना समुशचत ही है शक वे उत्तम योगी हैं।

ि अव्यक्, शनगुथण, शनराकार परब्रह्म की उपासना करते हैं, क्या वे उत्तम योगी नहीं ंहैं? उनके शवषय में भी सुनो...

ये त्वक्षरमडनदेश्यमव्यक्तं पयुमपासते ।
सवमत्रगमडचन्त्यं च कू टथर्थमचलं धु्रुवम् ।।३ ।

बिार्थम : येि्ो, तु-शनशश्चत रूप से, अक्षरम् - अशवनाशी, अशनदेश्यम् अशनवथचनीय, अव्यक्म्-अव्यक् की, पयुथपासते-उपासना करते हैं, सवथत्रगम् सवथव्यापक, अशचन्त्यम् -शचन्तन से परे, च-और, कूटस्र्म् - अपररवतथनशील, अचलम् -अचल, धु्रुवम् - शाश्वत ।

अनुवाद : ि अशवनाशी, अशनवथचनीय, अव्यक्, सवथव्यापक, अशचन्त्य, अपररवतथनशील, अचल और धु्रुव (शाश्वत) की उपासना करते हैं,

व्याख्या : अशनदेश्यम्-शिसके शवषय में न तो कुछ कहा िा सकता है और न ही उसके दशथन कराये िा सकते हैं वह अक्षर, परब्रह्म सम्भिदानन्द मन और वाणी से परे है अर्ाथत् मन उसका शचन्तन नहीं ंकर सकता और वाणी उसका वणथन नहीं ंकर सकती। वह क्यों ंनहीं ंशनशदथष्ट हो सकता, क्योंशंक वह अव्यक् है। व्यक् प्राशणयों ंके चार लक्षणों ंका उसमें अभाव है िैसेि्ाशत (ब्राह्मण, क्षशत्रय आशद), गुण (श्वेत वणथ, नील वणथ, लम्बा, छोटा आशद), शक्रया (पढ़ना, शलखना आशद), और सम्बन्ध (िैसे शपता-पुत्र का सम्बन्ध आशद) ।

अव्यक्-शकसी भी ज्ञानेम्भिय िारा िो बोधगम्य न हो, शकसी ज्ञानेम्भिय के समक्ष अशभव्यक् न हो।

उपासना-समीप बैठना। पूिा के शलए चयन शकये गये लक्ष्य (शवषय) के समीप बैठना और उस पर ध्यान एकाग्र करना आध्याम्भत्मक आचायथ के उपदेश एवं शास्त्र शवशध के अनुरूप शवचार-प्रवाह को तैलधारवत् समाशहत कर के एकाग्रता और म्भस्रता लाना उपासना है। यह सतत, अबाशधत भगवत् ध्यान है।

अशवनाशी ब्रह्म सवथव्याप्त है, आकाशवत् प्रत्येक वसुतु को आच्छाशदत शकये हुए हैं। अव्यक् होने से यह अशचन्त्य है। इम्भियों ंिारा दृशष्टगोचर प्रत्येक वसुतु मन के शचन्तन में आ सकती है। ज्ञानेम्भियों ंिारा ग्राह्य ज्ञान मन भी ग्रहण करता है। शकनुतु परम पुरुष इम्भियों ंके शलए अदृश्य है अतः ज्ञानेम्भियााँ इसको ग्रहण नहीं ंकर सकतीं ंऔर इसी कारण से वह शचन्तन से भी परे है। परमात्मा के समस्त शवचार अन्ततोगत्वा साधक को म्भस्र, अचल, शान्त, ध्यान की ओर प्रेररत करते हैं।

यह कूटस्र् (अपररवतथनशील) है। कूटस्र् का अशभप्राय है एक ढेर के भााँशत पिे रहना । अतः यह अव्यय (शनशवथकार) और शनत्य है। स्रूणा (शिस पर लुहार अपना कायथ करता है) पर पीटे िाने पर शिस प्रकार लौह खण्ड अपना स्वरूप बदलते हैं शकनुतु स्रूणा म्भस्र रहता है, उसमें कोई पररवतथन नहीं ंआता उसी प्रकार ब्रह्म अपररवतथनशील है शकनुतु रूप बदल रहे हैं। इसीशलए ब्रह्म को कूटस्र् कहा िाता है। कोई वसुतु िो बाहर से सुन्दर

हो शकनुतु भीतर से दोषपूणथ हो, वह भी 'कूट' कहलाती है। इस अशभप्राय से इसका संकेत संसार के बीि अराथत् 'अज्ञान' की ओर है िो भीतर से दोषयुक् है और श्वेताश्वतरोपशनषद् में शिसे अव्यकृत कहा गया है (मायां तु प्रकृशतं शवद्यात्, माशयनं तु महेश्वरम्) और गीता में (मम माया दुरत्यया-मेरी माया का उच्छेदन अत्यन्त कशठन है-V114) इस प्रकार कहा िाता है। कूटस्र् की एक और व्याख्या है- 'िो प्रत्येक वसुतु का मूल है।' िो माया में कूटस्र्, स्वामी और साक्षी रूप से म्भस्र्त है।

अचलम् - म्भस्र्र । अपररवतथनशील। अतः अशवनाशी ब्रह्म धुरुव है और शाश्वत है। (शनरूपण-VIII.21)

संडनयम्येन्द्रियग्रामं सवमत्र समबुद्धयः ।
ते प्रापुनुवन्द्रत मामेव सवमभूतडिते रताः ।।४ ।।

बिार्थम : संशनयम्य-संयत करके, इम्भियग्रामम् इम्भियों ंको, सवथत्र सवथत्र, समबुद्धयः समान भाव वाले, ते-वे, प्रापुनुवम्भन्त-प्राप्त करते हैं, माम् -मुझे, एव-ही, सवथभूतशहते सब प्राशणयों ंके कल्याण में, रताः- लगे हुए।

अनुवाद : सब इम्भियों ंको वश में कर के समबुम्भद्ध साधक सवथत्र, प्राणी मात्र के कल्याण में लगे हुए शनशश्चत रूप से मुझे ही प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : रागिेष से मुक् व्यम्भक् मन का समत्व प्राप्त कर सकते हैं। आत्म-ज्ञान से शिन्होंने सुख-दुःख के मूल कारण अज्ञान को नष्ट कर शलया है और शिन्होंने शवषय-वासनाओं ं(इम्भिय सुख) में दोष दृशष्ट रखने का सतत अभ्यास करके ऐम्भिक तृष्णाओं ंके िाल से मुम्भक् पा ली है वे समबुम्भद्ध हैं। अभीम्भित अर्वा अनभीम्भित वसुतु के प्राप्त होने पर िो न तो हशषथत होते हैं। और न ही दुःखी होते हैं वे समबुम्भद्ध हो सकते हैं।

अनुराग और शविेष की दो धारायें मनुष्य को, दूसरों ंको हाशन पहुँचाने के शलए प्ेरेररत करती हैं। ध्यानाभ्यास के िारा िब इनका शवनाश हो िाता है तब योगी लोक कल्याण में शनरत होता है। िनगण की सेवा में वह आनन्द लेने लगता है। वह स्वयं को सेवा में व्यस्त कर लेता है। वह अनवरत रूप से संसार के कल्याण के शलए कायथरत रहता है। वह सब प्राशणयों ंको अभय दान देता है। शकसी प्राणी को उससे भय नहीं ंहोता। वह परमहंस संन्यासी बन िाता है िो अपने हृदय में सब को आश्रय प्रदान करता है। वह आत्म-साक्षात्कार िारा ब्रह्मज्ञानी हो िाता है। ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही है।

इम्भिय-संयम के िारा योगी दसों ंिारों ंको बन्द कर के शवषयों ंसे इम्भियों ंका प्रत्याहरण कर के मन को अन्तस्तम आत्मा में म्भस्र्र करता है। इम्भिय-संयम और इम्भिय-संहरण कर के, लोक-कल्याण में शनरत तर्ा अनश्वर अलौशकक ब्रह्म पर ध्यान करने वाले साधक मुझे ही प्राप्त होते हैं। यह कहना अशनवायथ नहीं ंहै शक वे मेरे पास ही पहुँचते हैं क्योंशंक ज्ञानी को मैं अपने से अशभन्न मानता हाँ। (VII. 18.) यह कहना भी आवश्यक नहीं ंहै शक वे उत्तम योगी हैं क्योंशंक वे ब्रह्म के सार् एकरूप हैं। (f 7599-V.25;*1.55)

क्लेिो ऽडधकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता डि गडतदुमःखं दिवन्द्रिरवाप्यते ।।५ ।।

बिार्थम : क्लेशः दुःख, अशधकतरः-और अशधक, तेषाम् उन, अव्यक्ासक्चेतसाम् अव्यक् में आसक् शचत्त वाले, अव्यक्ा-अव्यक्, शह-क्योंशंक, गशतः लक्ष्य, दुःखम्-दुःख, देहवम्भद्भः- देहधाररयों ंके िारा, अवाप्यते-प्राप्त शकया िाता है।

अनुवाद : शनराकार ब्र्ह्म (अव्यक्) में अनुरक् साधकों ंकी कशठनाई और अशधक है क्योंशंक देहधाररयों ंके शलए अव्यक् लक्ष्य की प्राम्भप्त सुगम नहीं ंहै।

व्याख्या : सगुण और शनगुथण ब्र्ह्म के उपासक एक ही लक्ष्य को प्राप्त करते हैं शकनुतु शनगुथण ब्र्ह्म की प्राम्भप्त अत्यन्त यत्नसाध्य और कशठन है क्योंशंक साधक के शलए आध्याम्भत्मक-साधना-काल के प्रारम्भ से ही देहाशभमान का त्याग अशनवायथ होता है। इसी कारण उन्ें और अशधक कष्ट झेलना प़िता है।

देहवम्भद्भः देह के सार् एकत्व स्ाशपत कर लेना देहाशभमान कहा िाता है। अपनी देह से आसक् अर्ाथत् देहाशभमाशनयों ंके शलए अशवनाशी ब्र्ह्म को प्राप्त करना दु:साध्य है। और भी, शनराकार, शनगुथण ब्र्ह्म पर चंचल मन को म्भस्र करना भी पररश्रमसाध्य है। अशवनाशी, शनगुथण ब्र्ह्म पर ध्यान लगाने के शलए कुशाग्र बुम्भद्ध होना भी आवश्यक है। उपशनषद् के अनुसार-"दृश्यते तु अग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदशथशभः", "यह सूक्ष्म िष्टा के िारा सूक्ष्म बुम्भद्ध से दशथनीय है।"

अव्यक् का ध्यान करने वालों ंके शलए साधना-चतुष्टय (III.3) की साधना अशभशहत है। तदुपरान्त ब्र्ह्मशनष्ठ, शास्त्रशनपुण गुरु के पास िाना चाशहए। गुरु से सत्य का ज्ञान श्रवण कर के उस पर शचन्तन-मनन और ध्यान करना चाशहए।

शनगुथण ब्र्ह्म का साक्षात्कार होने पर शाश्वत शाम्भन्त अर्वा कैवल्य मोक्ष की प्राम्भप्त होती है शिसके प्रभाव से अज्ञान रूपी अन्धकार का शवनाश हो िात ही सगुण ब्र्ह्म का साक्षात्कार कर लेने पर साधक ब्र्ह्मलोक को िाता है और भगवान् की शम्भक्यों ंऔर वैभव का आनन्द लेता है। तत्पश्चात् वह शहरण्यगभथ से परम पुरुष के गोपनीय रहस्यों ंकी दीक्षा लेता है और शबना शकसी प्रयास के और शबना श्रवण, मनन और ध्यान के अभ्यास के, भगवत्कृपा से उसी अवस्ा को पहुँचता है िो अवस्ा शनगुथण ब्र्ह्म की उपासना करने वाले साधक ने प्राप्त की र्ी। सगुण ब्र्ह्म के उपासकों ंका भी आत्म-ज्ञान की ज्योशत से अज्ञान का अन्धकार और उसके प्रभाव पूणथतया नष्ट हो िाते हैं।

ये तु सवामडण कमामडण मडय संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायत उपासते ।।६ ।।

ब्ार्थम : ये िो, तु शकनुतु, सवाथशण-सब, कमाथशण-कमथ, मशय-मुझमें, संन्यस्य-त्याग कर, मत्पराः- मेरे परायण, अनन्येन-एकाग्र शचत्त हो कर, एव-ही, योगेन योग के िारा, माम् -मुझे, ध्यायन्तः- ध्यान करते हुए, उपासते-पूिा करते हैं।

अनुवाद : शकनुतु वे िो समस्त कमों का पररत्याग कर के मेरे परायण हो कर (समशपथत भाव से), मुझे परम लक्ष्य मान कर अनन्य योग से ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं।

व्याख्या : अनन्य योग-अचल योग, शवलक्षण योग। शिसमें भगवान् के अशतररक् अन्य कोई ध्यान का शवषय न हो । समाशध की अवस्ा । भम्भक् योग में भी कमथ अपररहायथ है। कमथ तो करें शकनुतु उसका पररणाम भगवान् को समशपथत करें। (शनरूपण-IX.27)

तेषामिं समुद्धताम मृतुयुसंसारसागरात् ।
भवाडम नडचरात्पार्थम मय्यावेडितचेतसाम् ।।७ ।।

बि्ार्थम : तेषाम् उनका, अहम् -मैं, समुद्धताथ-उद्धार करने वाला, मृतुयुसंसारसागरात् -मत्यथ संसार रूपी सागर से, भवाशम-होता हाँ, नशचरात् शीघ्र ही, पार्थ-हे अुिथन, मशय-मुझ में, आवेशतचेतसाम् - मुझ में शचत्त लगाने वालों ाका ।

अनुवाद : हे अुिथन, उन मुझ में शचत्त लगाने वाले भक्ों ाके शलए मैं अशबरेण ही इस मत्यथलोक रूप सागर से समुद्धार करने वाला होता हाँ।

व्याख्या : मृतुयु संसार-आवागमन (िन्म-मृतुयु) का चक्र।

वह भक् शिसने पूणथ, शनरपेक्ष, असूय, आत्म-समपथण कर शदया है और स्वयं को भगवान् की दया पर पूणथतया छोि़ शदया है, िो भगवान् पर मन की अनन्यमनस्क भाव से म्भस्र्र करता है, कमथ फल भगवान् को समशपथत कर के उन कमााँ को भस्मीभूत कर लेता है, और कमथ में फल लाने की शम्भक् ही नहीं ारहने देता और शिसने मोक्ष की लालसा भी त्याग दी है, वह मत्यथ लोक से ऊपर उठ कर भगवान् की शरण, अमर धाम में पहुाँचता है। भगवान् स्वयं उसकी सहायता करते हैं।

मम्भित् मुझ में युक् मन वाले भक्ों ाको अशवलम्ब मैं इस भौशतक िगत् से मुक् कर देता हाँ। शनरुपण - X .10,, 11; XII.6, 7)

मये्येव मन आधत्स्व मडय बुन्द्रंद्ंध डनवेिय ।
डनवडसष्यडस मये्येव अत ऊध्ंवं न संियः ।।८ ।।

बि्ार्थम : मशय-मुझ में, एव-ही, मनः- मन, आधत्स्व-एकाग्र करो, मशय-मुझ में, बुम्भद्धम् बुम्भद्ध को, शनवेशय-रखो, शनवशसष्यशस -वास करोगे, मशय-मुझ में, एव-ही, अतः ऊध्वथम् - इसके पश्चात्, न-नहीं,ा संशयः-संशय ।

अनुवाद : अपना मन मुझ में ही एकाग्र करो, अपनी बुम्भद्ध भी मुझ में ही म्भस्र्र करो। इसके पश्चात् तुम मुझ में ही वास करोगे, इसमें कोई संशय नहीं ा।

व्याख्या : 'मन आधत्स्व' का अशभप्राय है-अपने प्रयोिन और अपने शवचार (संकल्प-शवकल्प) मुझ में अर्ाथत् भगवान् के शवश्व रूप में म्भस्र्र करो। इम्भिय-शवषयों ाको, अन्य सब शवचारों ाको त्याग दो । शनश्चयाम्भत्मका बुम्भद्ध को भी मुझ में म्भस्र्र करो।

इसका पररणाम क्या होगा? शनस्सने्देह, तुम मुझ में मेरी तरह से वास करोगे। हे अुिथन, इस शवषय में अल्प मात्र भी संशय नहीं ाहै।

इस श्लोक में ध्यान योग का शववरण शदया गया है। (शनरूपण-VIII.7; X.9; XI.34; XVIII.65)

अध डचत्तं समाधातुं न िक्नोडष मडय न्द्रथर्थरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो माडमच्छापुंतुं धनञ्जय ।।९ ।।

बि्ार्थम : अध-यशद, शचत्तम् मन, समाधातुम् -म्भस्र्र करने में, न- नहीं,ा शक्नोशषसमर्थ हो, मशय मुझ में, म्भस्र्रम् -म्भस्र्रतापूवथक, अभ्यासयोगेन अनवरत अभ्यास के योग से, ततः-तब, माम् -मेरी, इच्छ-म्भच्छा करो, आमुम् - प्राप्त करने के शलए, धनञ्जय-हे अुिथन।

अनुवाद : यशद तुम म्भस्थरतापूवथक मुझ में मन लगाने में असमर्थ हो तो हे अिुथन, अनवरत अभ्यास रूपी योग के िारा मुझे प्राप्त करने की इच्छा करो।

व्याख्या : अभ्यास योग-मन को म्भस्थर करने और लक्ष्य पर लगाने का शनरन्तर अभ्यास, अभ्यास योग है। मन को शवषय वासनाओं ंसे हटा कर आत्म-तत्त्व पर अर्वा अन्य शकसी लक्ष्य पर एकाग्र करना अभ्यास योग है। मायावी पंच कोषों ंसे स्वयं को पृर्क् करना और आत्मा से युक् करना अभ्यास है। यशद तुम अपने मन-बुम्भद्ध को हर समय भगवान् में म्भस्थर नहीं ंकर सकते तो शंकंशचत् काल के शलए ऐसा करने का अभ्यास करो। यशद मन अशधक भटकता है तो सतत स्मरण िारा इसे संयत करने का प्रयास करो। भगवान् के मूतथ रूप में (मूशतथ आशद में) उसकी शवद्यमानता का अनुभव करो। इससे भी सहायता शमलेगी।

यहााँ भगवान् कृष्ण अिुथन को धनञ्जय क्यों ंकहते हैं ? कुछ तो महत्त्व होगा? युशधशष्ठर िारा शकये गये रािसूय यज्ञ के शलए अिुथन ने बहुत लोगों ंको शवशित कर के अपार धन एकत्र शकया। ऐसे महान् तेिस्वी और पराक्रमी पुरुष के शलए मन को िीतना और आत्म-ज्ञान की आध्याम्भत्मक सम्पदा प्राप्त करना कदाशप कशठन नहीं ं है। इसीशलए यहााँ भगवान् उपदेश देते हुए अिुथन को 'धनञ्जय' कह कर सम्बोशधत करते हैं।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽडस मत्कममपरमो भव ।
मदर्थमडप कमामडण कुवमन्द्रन्सन्द्रद्धमवाप्स्स्यडस ।।१० ।।

शब्दार्थ : अभ्यासे-अभ्यास में, अशप-भी, असमर्थः- असमर्थ, अशस-हो, मत्कमथपरमः- मेरे शलए कमथ परायण, भव-हो िाओ, मदर्थम् - मेरे शलए, अशप-भी, कमाथशण कमथ, कुवथन् -करते हुए, शसम्भद्धम् -शसम्भद्ध, अवाप्स्स्यशस-प्राप्त करोगे।

अनुवाद : यशद तुम यह अभ्यास योग करने में भी असमर्थ हो तो तुम मेरे शलए कमथ करने का प्रयास करो। मेरे शनशमत्त कमथ करने पर भी तुम शसम्भद्ध को प्राप्त करोगे ।

व्याख्या : योग का अभ्यास शकये शबना भी यशद तुम मेरे शनशमत्त ही कमथ करोगे तब भी पूणथत्व को प्राप्त करोगे। प्रर्म तुम मन की शुद्धता प्राप्त करोगे, शफर योग (एकाग्रीकरण और ध्यान), तदुपरान्त ज्ञान और अन्त में मोक्ष प्राप्त करोगे । नारायण भाव से मनुष्य मात्र की सेवा करना अर्ाथत् सब प्राशणयों ंमें नारायण ही हैं, इस भाव से सेवा करने पर भी वह सेवा भगवान् की सेवा मानी िाती है। इस सेवा के सार्-सार् आराधना और ध्यान भी होने चाशहए।

यशद तुम अभ्यास योग नहीं ंकर सकते (िैसा शक श्लोक ८ में उपशदष्ट है), अर्वा सतत अभ्यास भी नहीं ं कर सकते (श्लोक ९ के अनुसार), तो भगवन्नाम का कीतथन करो, सुतुशत करो और भगवद्भक्ों ंिारा आयोशित धाशमथक प्रवचनों ंका और मशहमाम्भित कर्ाओं ंका श्रवण करो।

नौ प्रकार के भागवत धमथ का अभ्यास करो- (१) लीला श्रवण, (२) कीतथन, (३) स्मरण, (४) पादसेवन, (५) अचथन (पुष्प अशपथत करना), (६) वन्दन (साष्टाङ्ग प्रणाम), (७) दास्य भाव, (८) सखा भाव, (९) आत्म शनवेदन (पूणथ समपथण)। (शनरूपण -III.19; XI.55)

अर्ैतदप्यिक्तोऽडस कतुं मद्योगमाडश्रतः ।
सवमकममफलत्यागं ततः कुरु यतिावान् ।।११ ।।

बि्ार्थम : अर्-यशद, एतत्-यह, अशप-भी, अशक्: - असमर्थ, अशस-हो, कतुथम् -करने के शलए, मद्योगम्-मेरे योग (का), आशश्रतः- आश्रय लेकर, सवथकमथफलत्यागम् -समस्त कमों के फल का त्याग, ततः-तब, कुरु-करो, यतात्मवान् - आत्म-संयत होकर ।

अनुवाद : यशद तुम यह भी करने में सक्षम नहीं ंहो तो मेरे योग के आशश्रत हो कर (मेरे सार् एकत्व स्र्ाशपत करके), स्वयं को संयत कर के सब कमों के फल का त्याग करो (कमथ फल की कामना मत करो)।

व्याख्या यह सरलतम पर् है। यशद तुम कमथ मुझे समशपथत कर के नहीं ंकर सकते, मेरी सेवा में भी नहीं ंसंलग्न हो सकते, भागवत धमथ भी नहीं ंिही सकते, अपनी इच्छा से ही प्ेरेररत हो कर कमथ करना चाहते हो तो मनन बुम्भद्ध को संयत रखने का अभ्यास करते हुए कमथ करो, चाहे अपने शलए ही करो शकनु्तु कतथव्य समझ कर करो और मुझे अशपथत करते हुए करो। कमथफल की भी इच्छा मत करो वह भी मेरे अपथण कर दो।

श्लोक ८ में ध्यान योग का शनदेशन उत्तम साधकों ंके शलए है। श्लोक ९ में सतत अभ्यास रूपी योग का उपदेश है। यशद वह भी कशठन लगता हो तो श्लोक १० में बताया गया है शक भगवान् के शलए कमथ करो और िो इतना भी नहीं ंकर सकते उनके शलए कमथ-फल-त्याग का संदेश है।

मद्योगम् -मेरा योग। समस्त कमथ और उनका फल मुझे समशपथत करना ही मेरा योग है।

यतात्मवान् - शववेकी पुरुष, शिसने अपनी इम्भियों ंको शब्द, स्पशथ, रूप, रस, गन्ध से हटा कर वश में कर शलया है।

अब भगवान् साधकों ंको कमथफल त्याग के शलए प्ेरेररत करने के शलए कमथफल-त्याग की प्रशंसा करते हैं।

श्ेरेयो डि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं डवडिष्यते ।
ध्यानात्कममफलत्यागस्त्यागाच्छान्द्रतरनतरम् ।।१२ ।।

बि्ार्थम : श्ेरेयः-श्ेरेष्ठ, शह-शनस्सने्देह, ज्ञानम् - ज्ञान, अभ्यासात् - अभ्यास से, ज्ञानात् ज्ञान से, ध्यानम् - ध्यान, शवशष्यते-अशधक अच्छा है, ध्यानात् - ध्यान से, कमथफलत्यागः-कमथफल का त्याग, त्यागात् त्याग से, शाम्भन्तः शाम्भन्त, अनन्तरम् - अशवलम्ब ।

अनुवाद : शनशश्चत रूप से अभ्यास की अपेक्षा ज्ञान अशधक अच्छा है, ज्ञान की अपेक्षा ध्यान श्ेरेष्ठतर है, ध्यान की अपेक्षा कमथफल त्याग प्रशस्ततर है, त्याग से तत्काल शाम्भन्त प्राप्त होती है।

व्याख्या : शास्त्रों ंसे प्राप्त सैद्धाम्भन्तक अर्वा परोक्ष ब्र्ह्म ज्ञान, अज्ञानयुक् अभ्यास (मन के भावों ंका शनयंत्रण अर्वा मूशतथ पूिा अर्वा मन और इम्भिय िय) की अपेक्षा श्ेरेष्ठतर है। सैद्धाम्भन्तक ज्ञान की अपेक्षा ज्ञानपूवथक ध्यान श्ेरेष्ठतर है और कमों के फल का त्याग ध्यान की अपेक्षा श्ेरेष्ठतर है। सवथ कमथफल त्याग शाश्वत शाम्भन्त (मोक्ष प्राम्भप्त) का साधन है। अिुथन को तर्ा अन्य साधकों ंको शनःस्वार्थ कमथ में प्ेरेररत करने के शलए और अभ्यास, ज्ञान, ध्यान आशद की अपेक्षाकृत श्ेरेष्ठता शदखाने के शलए भगवान् कृष्ण ने सवथ कमथफल त्याग की प्रशंसा की है। शिस प्रकार से ब्र्ह्मशषथ अगस्त्य के वाररशध िल-पान की बात सुन कर आि के युग के ब्ा्ह्मणों ंका भी स्तवन होता है क्योंशक अगस्त्य मुशन ब्ा्ह्मण र्े, उसी प्रकार साधकों ंमें शनष्काम सेवा की प्रबल इच्छा िाग्रत करने के शलए भगवान् कमथफल त्याग की प्रशंसा कर रहे हैं।

इच्छा, शाम्भन्त की शतुरु है। इच्छा मन को अशान्त करती है। मनुष्य की समस्त वेदनाओं, ं दुःखों, ं समस्याओं ं का कारण इच्छा है। आत्म-शवशे्लेषण, अनासम्भक् और शववेक िारा इच्छाओं ंके खेल को समाप्त करो। तभी परम शाम्भन्त का आनन्द ले सकते हैं।

साधक के हृदय की पशवत्रता के शलए कमों के फल के त्याग का शनदेश शदया गया है। यह इच्छा को मार देता है िो ज्ञान का शतुरु है। ज्ञानी ऋशष भी कमथफल का त्याग करते हैं। उनके शलए ऐसा करना स्वाभाशवक है।

अिेष्टा सवमभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
डनममो डनरिंकारः समदुःखसुखः क्षमी ।।१३ ।।

बिार्थम : अिेष्टा–िेष न करने वाला, सवथभूतानाम् -सब प्राशणयों ंसे, मैत्रः-शमत्र भाव से 4pi , करुणः सहानुभूशत पूणथ, एव-ही, च-और, शनमथमः- ममता रशहत, शनरहंकारः- अहंकार रशहत, समदुःखसुखः सुख-दुःख में समान, क्षमी क्षमाशील ।

अनुवाद : िो शकसी प्राणी से िेष नहीं ंकरता, सबसे मैत्रीपूणथ और सहानुभूशत पूणथ व्यवहार करता है, आसम्भक् और अशभमान से रशहत है और क्षमाशील है,

व्याख्या : आगामी आठ श्लोकों ंमें भगवान् कृष्ण भागवत पुरुष की व्याख्या करते हैं। ये आठ श्लोक 'अमृताष्टकम्' नाम से अशभशहत हैं।

ब्र्ह्म में म्भस्त भक् शकसी से िेषभाव नहीं ंरखता। वह सब को दया और प्ेरेम की दृशष्ट से देखता है। वह सब में अपना ही रूप देखता है। वह शकसी के प्रशत घृणा भाव नहीं ंरखता। कोई प्राणी उसे कष्ट भी क्यों ंन दे, वह प्ेरेम भाव ही रखता है। दीन दुःम्भखयों ंके प्रशत दया भाव रखने वाला और उनको कष्ट से मुक् करने वाला मनुष्य करुणाशील है। वह स्वयं को दुःखी की अवस्र्ा में रख कर उसके दुःख का अनुभव करता है। दया तो शदव्य गुण है। परमात्मा दयालु हैं। यशद तुम परमात्मा से संलाप करने की इच्छा रखते हो और ब्र्ह्मत्व पाना चाहते हो तो तुम्हें भी सब के प्रशत दयालु होना होगा।

अनन्य भक् समस्त प्राशणयों ंको अभयदान देता है। वह परमहंस संन्यासी होता है। भगवान् के रहस्यात्मक ढंग तो केवल भक् ही समझ सकता है। वह सवथत्र भगवद्दशथन करता है। सब प्राशणयों ंमें उनके दशथन करता है। तभी तो वह समदृशष्ट कहलाता है। वह नदी अर्वा सूयथ के समान है। कुशटया हो अर्वा रािप्रासाद हो, सूयथ तो सब पर समान प्रकाश शवकीणथ करेगा । नदी का िल कोई भी पी सकता है। गाय हो, शसंह हो अर्वा चीता हो, नदी सब की शपपासा शान्त करती है। भक् के हृदय में 'मैं', 'मेरा' का भाव नहीं ंहोता। यह तेरा है और यह मेरा है-इस प्रकार के भाव भक् के मन में उशदत ही नहीं ंहोते। सुख-दुःख में भी वह समान रहता है, प्रतु्युत् सुख-दुःख के प्रशत उदासीन रहता है। सुखद शवषयों ंमें वह अनुरक् नहीं ंहोता। दुःखद शवषयों ंसे घृणा नहीं ंकरता । पृशर्वी के समान वह क्षमाशील होता है। कोई उसका अपमान करे, अपशब्द कहे अर्वा उस पर प्रहार भी कर दे, वह अप्रभाशवत रहता है।

संतुष्टः सततं योगी यतािा दृढडनश्चयः ।
मय्यडपमतमनोबुन्द्रद्धयो मित्तः स मे डप्रयः ।।१४।।

बिार्थम : संतुष्टः सनुतुष्ट, सततम् -शनरन्तर, योगी-योगी, यतात्मा- आत्म संयत, दृढशनश्चयः - दृढ़ शनश्चय वाला, मय्यशपथतमनोबुम्भद्धः- मुझ में समशपथत मन-बुम्भद्ध वाला, यः िो, मद्भक्ः- मेरा भक्, सः- वह, मे-मुझे, शप्रयः-शप्रय है।

अनुवाद : सदा सनुतुष्ट, ध्यान में म्भस्र्र, आत्म-संयत, दृढ़ संकल्प वाला, शिसके मन और बुम्भद्ध मुझे समशपथत हैं ऐसा मेरा भक् मुझे शप्रय है।

व्याख्या: वह िानता है शक इस समय िो कुछ उसे शमल रहा है वह पूवथकृत् कमों का पररणाम है, अतः वह सनुतुष्ट है। वह सीशमत, नश्वर पदार्ों की प्राम्भप्त हेतु संघषथ नहीं ंकरता। वह अपना मन और बुम्भद्ध परमात्मा में म्भस्र्र रखता है, परम सन्तोष प्राप्त करता है और काल के शवपयथयों ंमें भी चट्टान की भााँशत अशिग रहता है।

मेरे भक् के हृदय में सन्तोष सदा रहता है। सागर की भााँशत उसका हृदय सदा पररपूणथ रहता है क्योंशंक उसमें तृष्णा नहीं ंहोती। वह सदा प्रसन्न और प्रफुम्भल्लत रहता है। शरीर के शनवाथह हेतु भी उसे अशनवायथ सामग्री उपलब्ध हो न हो, वह पूणथता का ही भाव मन में रखता है उसे अभाव का अनुभव नहीं ंहोता । अच्छी हो बुरी हो, वह अत्यल्प वसुतु में सन्तोष कर लेता है।

शरीर के शलए अशनवायथ-भोिन अर्वा वस्त्र के अभाव में भी वह शकायत नहीं ंकरता, शवचशलत नहीं ं होता और कलकल नहीं ंमचाता। सतत म्भस्र्र मेरे ध्यान के कारण उसका मन सदा पूणथ रहता है।

योगी-सदा युक्, सम भाव रहने वाला योगी है। उसने सब इम्भियों ंऔर इच्छाओं ंपर शविय पा ली है। पूणथ आत्म-समपथण के भाव में उसने दृढ़ संकल्प िारा अपने मन और बुम्भद्ध को मुझमें एकाग्र कर शलया है। आत्मा की मूल प्रकृशत के शवषय में वह दृढ़ संकल्प है। आत्म साक्षात्कार िारा शिसने ज्ञान प्राप्त शकया है, "मैं असङ्ग, अकताथ, शुद्ध सम्भिदानन्द, स्वयंप्रकाश अशितीय ब्र्ह्म हाँ", वह दृढ़ संकल्प वाला ज्ञानी है। उसने पूणथ रूप से अपना मन (इच्छा और शंका करने वाली शम्भक्) और बुम्भद्ध (शनश्चयाम्भत्मका शम्भक्), मुझे अशपथत कर शदये हैं। वह मुझे उतना ही शप्रय है शितना िीवन । ऐसी उपमा सत्य से कहीं ंअशधक दूर है अर्ाथत् असम्भव है।

सप्तम अध्याय में श्लोक १७ में भगवान् कृष्ण ने अिुथन से कहा र्ा- "मैं ज्ञानी को बहुत शप्रय हाँ और वह मुझे शप्रय है", वह बात यहााँ शवस्तार से कही गई है।

यस्मािोडिजते लोको लोकािोडिजते च यः ।
षािामषमभयोिेगैमुमक्तो यः स च मे डप्रयः ।।१५ ।।

शब्दार्थ : यस्मात् - शिस से, न-नहीं,ं उशिशिते-उशिग्न होता है, लोकः संसार, लोकात् संसार से, न-नहीं,ं उशिशिते-उशिग्न होता है, च-और, यः-िो, हषाथमषथभयोिेगैः- हषथ, क्रोध, भय और उतुसुकता से, मुक्ः-मुक्, यः िो, सः वह, च-और, मे-मुझे शप्रयः- शप्रय।

अनुवाद : शिससे शकसी लौशकक प्राणी को उिेग नहीं ंहोता और शिसे लोक उशिग्न नहीं ंकर सकता और िो हषथ, क्रोध, भय और उिेग से रशहत है (मुक् है), वह भक् मुझे शप्रय है।

व्याख्या : हषथ-प्रसन्नता, आकाशंचत पदार्थ की प्राम्भप्त पर मन की प्रफुम्भल्लत अवस्र्ा । रोमांशचत अवस्र्ा और मुख पर अश्रुप्रवाह की अवस्र्ा प्रफुल्लता का संकेत देती है।

अमषथ-क्रोध । कुछ के अनुसार अमषथ-क्रोध और ईष्याथ का शमशश्रत भाव है।

उिेग-उतुसुकता, शचन्ता, दुःख, व्याकुलता ।

ब्र्ह्मज्ञानी अर्वा भक् शकसी प्राणी को, मनसा, वाचा, कमथणा कोई कष्ट नहीं ंपहुँचाता। वह सभी िीवों ंको अभय और सुरक्षा प्रदान करता है, इसशलए उससे शकसी को भय नहीं ंहोता। ज्ञानी यह अनुभव करता है शक संसार उसका शरीर है, उसका अपना ही आत्म तत्त्व है। शफर वह संसार से भयभीत कैसे हो सकता है? न तो वह शकसी को कष्ट पहुँचाता है और न ही दूसरों ंके शब्दों ंअर्वा कमों से दुःखी होता है। दावानल अशग्न के समय शिस प्रकार पशु-पक्षी अरण्य त्याग कर चले िाते हैं उसी प्रकार हषथ, अमषथ, भय और उिेग के मानशसक भाव ज्ञानी अर्वा भक् को स्वयं ही त्याग देते हैं।

ऐसा भक् और ज्ञानी मुझे शप्रय है। उसका वणथन मैं कैसे करूँ?

अनपेक्षः िुडचदमक्ष उदासीनो गतव्यर्थः ।
सवामरम्भपररत्यागी यो मिक्तः स मे डप्रयः ।।१६ ।।

बि्ार्थम : अनपेक्षः इच्छा मुक्, शुशचः - पशवत्र, दक्षः कुशल, उदासीनः-पक्षपात रशहत, गतव्यर्ः - दुःख रशहत, सवाथरम्भपररत्यागी-सब आरम्भों ंका त्याग करने वाला, यःि्ो, मद्भक्ः मेरा भक्, सः वह, मे मुझे, शप्रयः- शप्रय है।

अनुवाद : मेरा िो भक् इच्छा मुक् है, पशवत्र है, कुशल है, पक्षपात रशहत है, दुःखों ंसे मुक् है, सब आरम्भों ंका पररत्यागी है, वह मुझे शप्रय है।

व्याख्या: वह शनभथरता से मुक् है, शकसी के आधीन नहीं ंहै। वह देह, इम्भियों ंऔर इम्भिय-शवषयों ंके परस्पर सम्बन्ध के प्रशत उदासीन है। वह बाहर-भीतर से पशवत्र है। बाह्य शुशचता, धावन और मिन, पृथ्वी और िल से प्राप्य है शकन्तु आन्तररक शुम्भद्ध रागि्ेष, तृष्णा, क्रोध, ईष्याथ आशद से मुक् होने पर तर्ा अपने समकक्ष के प्रशत शमत्रता, शनम्न वगथ के प्रशत दया भाव और अपने से श्रेष्ठ के प्रशत सम्मान आशद गुणों ंकी नीवं िालने से प्राप्त होती है।

दक्ष-कुशल, चतुर, प्रवीण। सब कामों ंमें शनपुण। शिन समस्याओं ंके अशवलम्ब ध्यान और कायथ पररणशत की आवश्यकता होती है उनका समाधान दक्ष व्यम्भक् समुशचत रूप से अशचरेण ही कर लेता है।

उदासीनि्ो शकसी शमत्र का पक्ष नहीं ंलेता; यशद कोई वादानुवाद हो िाये तो वह पक्षपात रशहत रहता है।

गतव्यर्ि्ो पीिा से मुक् है। दुष्ट के प्रहार करने पर भी वह पीशित नहीं ंहोता। कोई भी घटना उसे दुःखी नहीं ंकर सकती।

सवाथरम्भपररत्यागी-इहलौशकक अर्वा पारलौशकक, वह स्वभाव से ही मनोरंिन के सब शवषयों ंको प्राप्त करने के शलए कमथ का पररत्याग कर देता है। शारीररक और मानशसक, सभी कमों में वह अहंभाव, व्यशष्ट भाव और मानशसक प्रेरणाओं ंसे मुक् हो िाता है। वह अपनी इच्छा भगवान् की इच्छा में शमला लेता है अर्ाथत् प्रभु िैसा रखें वह उसी में आनम्भन्दत रहता है। दैवी इच्छा उसके िारा (उसे शनशमत्त बना कर) कायथ करती है। न तो उसकी कोई व्यम्भक्गत इच्छा होती है और न ही कोई अपेक्षायें, इसशलए वह सब कमों में चतुर, कुशल और शनपुण होता है। दैवी इच्छा उसके िारा सशक्रय रूप से कायथ करती है।

ऐसा भक् मेरी आत्मा है अतः वह मुझे शप्रय है।

यो न हृष्यडत न िेडष्ट न िोचडत न काङ्क्षडत ।
िुभािुभपररत्यागी भन्द्रक्तमान्यः स मे डप्रयः ।।१७ ।।

बि्ार्थम : य:ि◌ो, न-नहीं,◌ं हृष्यशत-हशषथत होता है, न नहीं,◌ं ि◌शष्ट ि◌ष करता है, न-नहीं,◌ं शोचशत-शोक करता है, न-नहीं,◌ं काङ्क्षशत-इच्छा करता है, शुभाशुभपररत्यागीि◌ो शुभ और अशुभ का त्याग करने वाला है. भम्भक्मान् भम्भक्भाव से पूणथ, यि◌ो, स-वह, मे मुझे, शप्रय-शप्रय।

अनुवाद: ि◌ो न हशषथत होता है, न घृणा करता है, न शोक करता है और न ही कोई कामना करता है। शुभ-अशुभ का ि◌ो पररत्यागी है और भम्भक्भाव से पूणथ है ऐसा भक् मुझे शप्रय है।

व्याख्या: श्लोक १३ में ि◌ो उपेदश शदया गया है वही शवस्तार से यहााँ उपशदष्ट है।

कमनीय पदार्थ शमलने पर वह प्रसन्न नहीं ◌ंहोता। अशनम्भच्छत पदार्ों की प्राम्भप्त पर वह घृणा नहीं ◌ंकरता। अपने शप्रय शवषयों ◌ंके शवयोग में वह शोक नहीं ◌ंकरता, अप्राप्त की प्राम्भप्त की वह कामना नहीं ◌ंकरता।

शुभाशुभपररत्यागी-श्लोक १६ में 'सवाथरम्भ पररत्यागी' का ही यह दूसरा शनरूपण है। सुख-दु:ख देने वाले शुभ-अशुभ कमों का त्याग करने वाला भगवान् का भक् है।

ऐसा भक् अर्वा ज्ञानी ि◌ो मेरा आत्म स्वरूप है, मुझे शप्रय है। (शनरूपण-VII 17; IX.29)

समः ि◌त्रौ च डमते्र च तर्था मानापमानयोः ।
ीतिौष्णसुखदु:खेषु समः सङ्गडववडजमतः ।।१८ ।।

बि्ार्थम: सम-सम, शत्रौ-शतुरु में, चऔर, शमते्रे-शमत्र में, च-और, तर्ा-भी, मानापमानयो-मान और अपमान में, शीतोष्णसुखदु:खेषु - सददी, गमी, सुख-दुःख में, सम-सम, सङ्गशववशिथतः आसम्भक्रशहत ।

अनुवाद : ि◌ो शतुरु और शमत्र दोनों ◌ंके सार् समान व्यवहार करता है, मान-अपमान में समदृशष्ट रहता है, सदी-गमी और सुख-दुखख के ि◌न्द्वि◌ंमें समान रहता है और ि◌ो आसम्भक् रशहत है,

व्याख्या : सामान्य सांसाररक व्यम्भक् शवरोधी ि◌न्द्वि◌ोंमान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दु:ख से प्रभाशवत होता है शकनुतु योगी, ज्ञानी अर्वा भागवत पुरुष का मन सनुतुशलत रहता है। आकषथण और शवकषथण की अन्धी शम्भक्यों ◌ंके बहाव में वह नहीं ◌ंबहता।

दूसरों ◌ंको हाशन पहुाँचाने वाला व्यम्भक् शतुरु है। दूसरों ◌ंका कल्याण चाहने बाला व्यम्भक् शमत्र है। भक् अर्वा ज्ञानी को शकसी भी शवषय में आसम्भक् नहीं ◌ंहोती।

तुल्यडनन्दासुतुडतमीनी संतुष्टो येन केनडचत् ।
अडनकेतः न्द्रथर्थरमडतभमन्द्रक्तमान्मे डप्रयो नरः ।।१९ ।।

बि्ार्थम : तुल्यशनन्दासुतुशतः- ि◌ो शनन्दा और सुतुशत को समान समझता है, मौनी-मौन, संतुष्टः सनुतुष्ट, येन केनशचत् शकसी भी प्रकार से, अशनकेतः शिसका कोई शनयत वास नहीं ◌ंहै, म्भरूरमशत:-शिसकी बुम्भद्ध म्भरूर है, भम्भक्मान् भम्भक् भाव से पूणथ, मे-मुझे, शप्रयः- शप्रय, नरः- मनुष्य ।

अनुवाद : शिसके शलए शनन्दा और सुतुशत समान हैं, ि◌ो मौन है अर्ाथत् वाणी का संयम रखने वाला है, ि◌ो कुछ प्राप्त हो उसी में सनुतुष्ट रहता है, शिसका कोई शनयत वास नहीं,◌ं शिसका मन म्भस्र्र है और भम्भक् से पूणथ है वह मनुष्य मुझे शप्रय है।

व्याख्या : न तो वह सुतुशत में प्रमुशदत होता है और न ही शनन्दा में दु:खी होता है। वह मन की अवस्र्ा को समम्भित रखता है। उसने वाणी पर सयम कर शलया है अतः मौन रहता है। शवचारों ◌ंको संयत कर लेने के कारण उसका मन भी शान्त है सौम्य है। शरीर के शनवाथह के शलए ि◌ो भी शमल ि◌ाये वह उसी में सनुतुष्ट है। महाभारत के शाम्भन्त पवथ में मोक्ष धमथ पर कहा गया है–ि◌ो व्यम्भक् शरीर पर ि◌ो कुछ शमले धारण कर ले, शकसी प्रकार का भोिन ि◌ो शमल ि◌ाये, स्वीकार कर ले, कहीं ◌ंभी (ि◌हााँ स्र्ान शमले) सो ि◌ाये उसे देवता ब्राह्मण अर्वा ि◌ीवनुमुक् कहते हैं।

वह एक स्र्ान पर शनवास नहीं ◌ंकरता। उसका कोई शनयत वास नहीं ◌ंहै। वह बेघर है, वह संसार को ही अपना वास स्र्ान मानता है। उसका मन सदा ब्र्ह्म में म्भस्र्र रहता है। (शनरूपण - VII. 17, IX.29, XII 17)

ये तु धष्यामृतडमदं यर्थोक्तं पयुमपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्ेतेऽतीव मे डप्रयाः ।।२० ।।

ब्र्ार्थमः ये–ि◌ो, तु-शनशश्चत रूप से, धष्याथमृतम् - शाश्वत धमथ, शनयम, इदम् -यह, यर्ोक्म् - ि◌ैसा कहा गया है, पयुथपासते-पालन करते हैं, श्रद्धाना - श्रद्धाम्भित हो कर, मत्परमा मुझे परम लक्ष्य मान कर, मक्ा, तेवे, अतीव अत्यन्त मे मुझे, शप्रया-शप्रय हैं।

अनुवाद : श्रद्धा से युक् हो कर, मुझे अपना परम लक्ष्य मान कर ि◌ो भक् उपरोक् शाश्वत धमथ (नैशतक आचार) का अनुसरण करते हैं वे शनशर्त रूप से मुझे सवाथशधक शप्रय हैं।

व्याख्या : इस श्लोक में भगवान् ने उत्कृष्ट भक् का वणथन शकया है। अमृत धमथ-अमृत ि◌ीवन प्रदान करता है, धमथ नैशतकता अर्वा ज्ञान है। अभ्यास करने पर धमथ ही अमृतत्व की प्राम्भप्त कराता है। सिे भक् मुझे अपना परम गन्तव्य मानते हैं।

इस अध्याय के श्लोक १३ से ले कर २० तक, एक महान् सत्व को प्रकाशत शकया गया है शिस पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है, शक भक्, ज्ञानी और योगी में ये सब शवशेषतायें मूल रूप में शनशहत होती हैं।

'शप्रयो शह ज्ञाशननोऽत्यर्थम्' - मैं ज्ञानी को अत्यन्त शप्रय हाँ (VII.17) यह सत्य अत्यन्त शवस्तार से शनरूशपत शकया गया है और इन शब्दों ◌ंमें यह उपदेश समाप्त होता है-

तेऽतीव मे डप्रयाः

वे मुझे अशत ही शप्रय हैं।

ि◌ो मनुष्य इस शाश्वत धमथ का पालन करता है वह मुझे अत्यशधक शप्रय है। अतः प्रत्ेयेक साधक ि◌ो मोक्ष का शपपासु है और भगवान् के परम धाम का अशभलाषी है, उसे उत्कट उत्साह और शनष्ठा से शाश्वत धमथ का पालन करना चाशहए।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषतुसु

ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
भन्द्रक्तयोगो नाम िादिोऽध्यायः ।।१२।।
।। इडत भन्द्रक्तयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर्थ त्रयोदिोऽध्यायः

क्षेत्रक्षेत्रज्ञशवभागयोगः

अजुमन उवाच

प्रकृडतं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।

एतिडदतुडमच्छाडम ज्ञानं ज्ञेयं च किव ।।ॐ ।।

बि्ार्थम : प्रकृशतम् - प्रकृशत (पदार्थ), पुरुषम् -पुरुष (आत्मा), च- और, एव-ही, क्षेत्रम् -क्षेत्र, क्षेत्रज्ञम् -क्षेत्र को ानिने वाला, एव-ही, च-और, एतत् यह, वेशदतुम् - ानने के शलए, इच्छाशम-इच्छा करता हाँ, ज्ञानम् -ज्ञान, ज्ञेयम् ि–ानने योग्य, च-और, केशव-हे केशव ।

अजुमन ने किा

अनुवाद : हे केशव, मैं प्रकृशत और पुरुष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ तर्ा ज्ञान और ज्ञेय के शवषय में ानने का इचुछुक हाँ।

व्याख्या : कुछ पुस्तकों ंमें यह श्लोक उपलब्ध नहीं ंहै। यशद इस श्लोक को भी शलया ाये तो गीता के पूणथ श्लोकों ं की गणना ७०१ हो ायेगी। कुछ टीकाकार इस श्लोक को शनवेशत मानते हैं।

अब भगवद्गीता का तीसरा भाग प्रारम्भ हो रहा है। मूलरूपेण तो वही ज्ञान इसमें शदया गया है शकनुतु अशधक शवसूतृत रूप में है।

शनम्न (अपरा) और उि(परा), इन दो प्रकृशतयों ंको धारण करने वाले की मूल प्रकृशत शनशश्चत करने के शलए 'क्षेत्र' पर प्रवचन प्रारम्भ शकया गया है। इन दोनों ंप्रकृशतयों ंका वणथन अध्याय VII के श्लोक ४ और ५ में आ चुका है।

पूवथ अध्याय के श्लोक १३ से अम्भन्तम श्लोक पयथन्त 'भगवान् के शप्रय भक्' के शवषय में वणथन है। अब प्रश्न उठता है-उस भक् को शकस प्रकार का ज्ञान हो ? इसका उत्तर आगे के उपदेश में शनशहत है।

प्रकृशत की रचना तीन गुणों ंसे हुई है। ीवात्मा के दो प्रयोन-भोग (enjoyment) और अपवगथ (liberation), पूणथ करने हेतु प्रकृशत स्वयं को देह, इम्भियााँ और इम्भिय-शवषयों ंमें पररणत करती है। सामवेद के महावाक्य-तत् त्वम् अशस (तत्त्वमशस) के तीन शब्दों ंके आधार पर गीता तीन भागों ंमें शवभक् है और प्रत्येक भाग एक-एक शब्द का स्पष्टीकरण करता है। इस शवचारधारा के अनुसार प्रर्म छः अध्याय कमथ योग और 'त्वम्' पद का शनरूपण करते हैं। आगे के छः अध्याय भम्भक्योग अर्वा 'तत्' पद को प्रकाशत करते हैं। अम्भन्तम छः अध्याय ज्ञान योग और 'अशस' पद का रहस्य उद्घाशटत करते हैं ो 'ीव-ब्र्ह्म-ऐक्यम्' को स्र्ाशपत करते हैं।

अब अिुथन प्रकृशत और पुरुष के मध्य भेद ानने का इचुछुक है। वह इन दोनों ंका शववेकपूणथ ज्ञान प्राप्त करना चाहता है।

श्री भगवानुवाच

इदं ारीरं कौतेय क्षेत्रडमत्यडभधीयते ।
एतद्यो वेडत्त तं प्राहः क्षेत्रज्ञ इडत तडिदः ।।१।।

बि्ार्थम: इदम् यह, शरीरम्-शरीर, कौन्तेय-हे कुन्ती पुत्र, क्षेत्रम् -क्षेत्र, इशत-इस प्रकार, अशभधीयते-कहा ाता है, एतत्-यह, यः ो, वेशत्त–ानता है, तम् - उसे, प्राहुः-कहते हैं, क्षेत्रज्ञः-क्षेत्र को ानने वाला, इशत-इस प्रकार, तशिदः उसे ानने वाले ।

श्री भगवान् ने कहा

अनुवाद : हे कुन्तीपुत्र (अर्जुन), यह शरीर क्षेत्र कहलाता है और जो इसे जानता है उसे तत्त्वज्ञानी लोग क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

व्याख्या : क्षेत्र का शाब्दिक अर्थ है-खेत। शरीर को क्षेत्र इसलिए कहा है क्योंकि क्षेत्र की भाँति इस शरीर में सुख-दुःख रूपी कर्मों के फल हम प्राप्त करते हैं। भौतिक (स्थूल), मानसिक (सूक्ष्म) और कारण शरीर इस क्षेत्र को पूर्णत्व प्रदान करते हैं। केवल स्थूल शरीर ही क्षेत्र का निर्माण नहीं करता ।

जो व्यक्ति क्षेत्र को जानता है और जो इसे ज्ञान के द्वारा स्वयं से पृथक् देखता है वह क्षेत्र का (पदार्थ का) वेत्ता है।

तदिदः ऋशष ।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२ ॥

शब्दार्थ : क्षेत्रज्ञम् -क्षेत्र को जानने वाला, च-और, अपि-भी, माम् -मुझे, विद्धि -जानो, सर्वक्षेत्रेषु-सब क्षेत्रों में, भारत-
हे भरत वंशी (अर्जुन), क्षेत्रक्षेत्रज्ञयो:- क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का, ज्ञानम्-ज्ञान, यत्-जो, तत्-वह, ज्ञानम्-ज्ञान, मतम् माना जाता है, मम-मेरा।
अनुवाद : हे अर्जुन, तुम मुझे सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ जानो । क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के ज्ञानी के ज्ञान को मैं वस्तुतः ज्ञान मानता हूँ।

व्याख्या : क्षेत्र पृथक् पृथक् हैं, क्षेत्रज्ञ एक है। व्यष्टि आत्मा (जीवात्मा) अनेक हैं, समष्टि आत्मा (परमात्मा) एक है। जहाँ-जहाँ मन का अस्तित्व है वहाँ वहाँ जीवन है, प्राण है, अहं है और व्यष्टि चेतना अथवा परावर्तित बुद्धि भी है। द्वैत भाव से युक्त व्यक्ति बारम्बार जन्म धारण करता है। ज्ञान-प्रकाश होने पर व्यष्टि आत्मा का समष्टि आत्मा में ऐक्य भाव हो जाता है। द्वैत की भ्रान्ति का निराकरण हो जाता है। "मैं सुखी हूँ", "मैं दुःखी हूँ", "मैं इस कर्म का कर्त्ता हूँ", "मैं अनुभवों का भोक्ता हूँ" -ये मनुष्य के अनुभव मात्र हैं। यही अनुभव लेने अथवा शरीर रूपी कर्मक्षेत्र में अपने कर्मफल भोगने के लिए जीवात्मा संसार के बन्धन में आता है, सुख-दुःख भोगता है और विभिन्न शरीर धारण करता है। किन्तु परमात्मा सुख-दुःख आदि से सर्वथा अतीत है। वह संसार के बन्धन में नहीं आता। वह तो नित्य मुक्त है, अद्वितीय है।

सब शरीरों में यदि आत्मा एक ही है तो सभी को एक समय में एक से अनुभव होने चाहिए। यदि राम उदर-शूल से पीड़ित है तो कृष्ण को भी उसी काल में उसी पीड़ा का अनुभव होना चाहिए। जॉन यदि प्रसन्नता का अनुभव करता है तो जैकब को भी वही अनुभव होना चाहिए। चौधरी को यदि बिच्छु ने डंक मारा है तो पीड़ा बैनर्जी को भी वैसी और उसी समय होनी चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं है। राम कष्ट में है तो कृष्ण आनन्द में है। जॉन आह्लादित है तो जैकब उदास है। चौधरी बिच्छु के डंक से व्याकुल है तो बैनर्जी प्रातराश (breakfast) के मजे ले रहा है। क्षेत्र पृथक् है, शरीर पृथक् हैं, मन पृथक् है और व्यष्टि आत्मायें भी एक-दूसरे से पृथक् हैं किन्तु इन सब क्षेत्रों में सब का ज्ञाता एक है। सुख और दुःख केवल मन के धर्म हैं। सार रूप में व्यष्टि आत्मा, समष्टि आत्मा से अभिन्न है।

क्षेत्र का ज्ञाता-आत्मा सुख-दुःख, गुण-दुगुथण से अप्रभाशवत रहता है। वह केवल मौन ि ष्टा है। सुख-दुःख मन के कायथ हैं। अशवद्या के कारण वे आत्मा पर आरोशपत हैं। अज्ञानी पुरुष भौशतक शरीर को आत्मा मानता है। रागि्ेष की दो धाराओं ंके प्रभुत्व (अधीनता) में रह कर वह शुभ-अशुभ, कमथ कर के इस कमथक्षेत्र में (शरीर में) सुख-दुःख रूपी फल भोगता है और पुनः िन्म-मरण के चक्र में फंसता है। शकन्तु िो ज्ञानी यह िानता है शक क्षेत्रज्ञ-क्षेत्र को ानिने वाला-आत्मा शरीर से पृर्क् है वह रागि्ेष की अधीनता से मुक् रहता है। वह परमात्मा के सार् युक् हो कर सदा आनन्द में रहता है और मानवता के कल्याण के शलए शनष्काम कमथ में रत रहता है।

शतशमर रोग (आंशक अन्धापन), शिसमें सत्य के शवपरीत शदखाई देता है, आाँखों ंका है शकन्तु देखने वाले मनुष्य का नहीं।ं समुशचत शचशकत्सा िारा यशद रोग हरण हो िाये तो मनुष्य पुनः युक् देखने लगता है। एवंशवध, अशवद्या, संशय, सुख-दुःखख, शुभ-अशुभ, रागि्ेष, शमथ्या दशथन अर्वा उनके कारण, उपादान (मन) से सम्बद्ध हैं मौन साक्षी क्षेत्रज्ञ (आत्मा) से नहीं।ं

मोक्ष की अवस्र्ा में िहााँ मन (शचत्त वृशत्त) का अभाव हो िाता है वहााँ अशवद्या और रागि्ेष की दो धाराओं ंका अम्भस्तत्व भी नहीं ंरहता। यशद शमथ्या दशथन, अशवद्या, सुख-दुःख, बन्धन, भ्राम्भन्त, शोक आशद आत्मा के मूल गुण-सम्पदा होते तो अशग्न में उष्णता के गुण की भााँशत उनसे मुम्भक् पाना असम्भव र्ा। शकन्तु पूवथकाल में शंकर, दत्तात्रेय, िभरत और याज्ञवल्क्य िैसे ज्ञानी ऋशष-मुशन हुए हैं िो अलौशकक ज्ञान से युक् र्े और शमथ्या दशथन,

संशय, भय, भ्राम्भन्त, शोक आशद से मुक् र्े। उन्ें संसार की चेतना नहीं ंर्ी परन्तु स्वरूप िागृशत शसद्ध र्ी। अतः यह सत्य ही है शक आत्मा शनत्य मुक्, शुद्ध-बुद्ध, शाश्वत और पूणथ है तर्ा अशवद्या मन के आशश्रत है, आत्मा के नहीं।ं

तमोगुण से उद्भुत अशवद्या एक आवरण है िो मनुष्य को अपने यर्ार्थ सम्भिदानन्द स्वरूप को देखने में बाधक है। अशवद्यािशनत-दशथन सत्य के शवपरीत होता है और संशय तर्ा सत्य-दशथन के अभाव को िन्म देता है। िैसे ही आत्म-प्रकाश का उदय होता है वैसे ही ये तीन प्रकार के अज्ञान पूणथरूपेण स्वतः ही नष्ट हो िाते हैं। वे मन के कारण होते हैं। मन तो अशवद्या का एक कायथ रूप है।

संसार चक्र अशवद्या के कारण घूम रहा है। यह केवल अज्ञानी मनुष्य के शलए अम्भस्तत्व में है िो इसे वैसे ही देखता है िैसा यह दृशष्टगोचर होता है।

कैवल्य-प्राप्त ज्ञानी के शलए संसार का अभाव हो िाता है। कोई भी चक्षुरोग सूयथ को प्रभाशवत नहीं ंकर सकता िो इसका अशभमानी देव है। पात्र-भंिना से बाहर के आकाश अर्वा पात्र का भीतरी आकाश प्रभाशवत नहीं ंहोता। िल मरीशचका धरती को नम नहीं ंकर सकती। इसी प्रकार अशवद्या और इसके प्रभाव शुद्ध, सूक्ष्म, शनगुथण, शनराकार, अव्यय, अखण्ड और स्वयं प्रकाश क्षेत्रज्ञ को अल्प मात्र भी प्रभाशवत नहीं ंकर सकते अशवद्या आत्मा का स्पशथ भी नहीं ंकर सकती। (शनरूपण - X.20, XIII.32; XVIII.61)

तत्क्षेत्रं यि यादृक्च यडिकारर यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ।।३ ।।

बिार्थम : तत्-वह, क्षेत्रम् -क्षेत्र, यत्-िो, च-और, यादृक् - िैसा है, च-और, यशिकारर- शिन शवकारों ंवाला है, यतः- िहााँ से है, च-और, यत्-िो, सः वह, च-और, यि्-िो, यत्प्रभावः - शिस प्रभाव वाला है, च-और, तत्-वह, समासेन- संक्षेप में, मे शृणु मुझसे सुनो।

अनुवाद : क्षेत्र क्या है, इसकी प्रकृशत क्या है, इसके शवकार क्या हैं, यह कहााँ से है और कौन है और शकन शम्भक्यों ं का स्वामी है-ये सब तुम मुझ से संक्षेप में सुनो।

व्याख्या : हे अिुथन, मैं तुम्हें बताऊाँगा क्षेत्र क्या है, शरीर को क्षेत्र क्यों ंकहते हैं, इसके कौन-कौन से शवकार हैं अर्वा पररवतथन हैं। दूसरे शब्दों ंमें, इसमें क्या-क्या पररणशत होती है, इसके गुण क्या हैं, शकस-शकस कारण से क्या-क्या प्रभाव दृशष्टगोचर होते हैं, यह शकसका है, इसका स्वामी कौन है, यह स्वतः वुयुत्पन्नशील है अर्वा इसे उत्पन्न शकया िाता है।

तत्क्षेत्र-वह क्षेत्र, शिसका शववरण श्लोक १ में आ चुका है। यि वह कौन है? उस क्षेत्र को िानने वाला कौन है? उसकी शम्भक्यााँ क्या हैं? प्रभाव का अर्थ है दशथन, श्रवण आशद की शम्भक्। अब तुम मेरी वाणी से क्षेत्र की यर्ार्थ प्रकृशत और क्षेत्रज्ञ के शवषय में संक्षेप में सुनो।

"मुझे पूणथ शवश्वास है अिुथन, शक तुम मेरा उपदेश सुन कर सत्य को स्पष्ट रूप से अवधारण करोगे।"

शरीर क्षेत्र है। दस इम्भियााँ मानो दस वृषभ हैं। ये वृषभ इम्भिय-शवषयों ंके क्षेत्र के माध्यम से अहोरात्र अनवरत रूप से कायथ करते हैं। मन पयथवेक्षक (superviser) है। िीवात्मा अशधष्ठाता (शकरायेदार) है। पााँच प्राण पााँच श्रशमक हैं। आशद प्रकृशत क्षेत्र की स्वाशमनी है। यह क्षेत्र उसकी सम्पदा है। वह िागरूकता से इस क्षेत्र का प्रशतपालन करती है। प्रकृशत तीन गुणों ंसे युक् है। रिस् बीि वपन करता है, सत्त्व रक्षण करता है और तमस् फसल काटता है। महत्-तत्त्व (वैशश्वक मन) के, धान-मदथन-क्षेत्र पर काल रूपी वृष की सहायता से आशद प्रकृशत धान-मदथन करती है। यशद िीव अशुभ कमथ करता है तो पाप के बीि वपन करता है, बुराई की खाद से संवधथन करता है और पाप की फसल काटता है, संसार के दु:खसागर में फंस िाता है अर्ाथत् िन्म, क्षय, वृद्धावस्र्ा, रोग और तीन प्रकार के क्लेशों ंको भोगता है। आध्याम्भत्मक, अशधदैशवक, अशधभौशतक ताप सहन करता है। यशद यह शुभ कमथ करता है तो गुण रूपी अच्छे बीि बोता है और सुख की फसल काटता है।

श्रोता में रुशच उत्पन्न करने के शलए अब भगवान् कृष्ण आगामी श्लोक में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का उत्कृष्ट वणथन करते हैं।

ऋडषडभबमहधा गीतं िन्दोडभडवमडवधैः पृर्थक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव िेतुमन्द्रिडवमडनडश्चतैः ।।४ ।।

बिार्थम : ऋशषशभ:- ऋशषयों ंके िारा, बहुधा-बहुत प्रकार से, गीतम् - गाया गया, छन्दोशभः वेदमन्त्रों ंिारा, शवशवधै - शवशवध, पृर्क् -शभन्न, ब्र्ह्मसूत्रपदै - ब्र्ह्म के स्वरूप का शनरूपण करने वाले वचनों ं(ब्र्ह्मसूत्रों)ं िारा, छ और, एवं ही,
हेतुमम्भद्ध-युम्भक्युक् (वचनों ंिारा), शवशनम्भशर्तै-शनशश्चत ।
अनुवाद: ऋशषयों ंने इसका गुणगान अनेक प्रकार से, शवशवध पृर्क् बेदमन्त्रों ंके िारा शकया है और ब्र्ह्म को लशक्षत करने वाले ब्र्ह्मसूत्र के पदों ंमें भी युम्भक्युक् ढंग से इसका शववेचन हुआ है।

व्याख्या: वशसष्ठ आशद अनेक ऋशषयों ंने क्षेत्र की प्रकृशत और क्षेत्रज्ञ का वणथन सनातन काल से शकया है। ऋग्वेद के सनातन सूक्तों ंने इस का शववेचन शवशवध प्रकार से शकया है।

बादरायणाचायथ (व्यास) िारा रशचत वेदान्त सूत्र ही ब्र्ह्मसूत्र हैं। उपशनषदों ंमें शवपरीत भावात्मक वचनों ंका शवरोध शमन करने हेतु ब्र्ह्मसूत्र शलखे गये। उपशनषदों ंका शनगूढ़ अलौशकक भाव समझने के शलए ब्र्ह्मसूत्रों ंका अध्ययन अशनवायथ है। ब्र्ह्मसूत्र, शारीरक सूत्र के नाम से भी अशभशहत हैं क्योंशंक दूसरे अध्याय के तृतीय पाद के पिह सूत्र शरीर (क्षेत्र) के शवषय में शलखे गये हैं।

क्षेत्र की यर्ार्थ प्रकृशत और इसके ज्ञाता के शवषय में ब्र्ह्मसूत्रों ंमें उपदेश शदया गया है िो ब्र्ह्म शवषयक है िैसे 'आत्मन्येवोपासीत' (बृहदारण्यक, १.४.७) अर्ाथत् 'आत्मा है', इस प्रकार मनुष्य उस पर ध्यान करे। वे तकथयुक् हैं, प्रतीशत (अशभज्ञान) कराने वाले हैं और शनश्चयात्मक हैं। ब्र्ह्म शवषयक वाक्यों, ं खण्डों ंअर्वा शब्दों ंमें संशय के शलए स्र्ान नहीं ंहै।

मिाभूतान्यिंकारो बुन्द्रद्धरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाडण दिैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ।।५।।

बि्ार्थम : महाभूताशन महाभूत (पाँच तत्त्व), अहंकार-अहंकार, बुम्भद्ध-बुम्भद्ध, अव्यक्तम्-अव्यक् (मूल प्रकृशत), एव-ही, च-और, इम्भियाशण इम्भियाँ, दश-दस, एकम् -एक, च-और, पंच-प ंच, च-और, इम्भियगोचराः इम्भियों ंके शवषय ।

अनुवाद : महाभूत, अहंकार, बुम्भद्ध, अव्यक् मूल प्रकृशत, दस इम्भियाँ और एक मन तर्ा पाँच इम्भियों ंके शवषय,

व्याख्या : क्षेत्र और इसके शवकार इस श्लोक में बताये गये हैं। सांख्य योग दशथन के चौबीस तत्त्वों ंका शनरूपण यहाँ शकया गया है।

महाभूत-पृशर्वी, िल, अशग्न, वायु, आकाश महाभूत कहे गये हैं क्योंशंक वे पदार्थ की सब शवकृशतयों ंमें आच्छाशदत हैं। यहाँ सूक्ष्म तत्त्वों ंकी ओर संकेत है स्र्ूल का नहीं।ं

अहंकार, महाभूतों ंका कारण है। वह अहंभाव का तत्त्व है। बुम्भद्ध, अहंकार का कारण है। बुम्भद्ध का कायथ है शनश्चय करना। बुम्भद्ध संकल्प शम्भक् है। अव्यक् बुम्भद्ध का कारण है। यह भगवान् की अशभन्न शम्भक् है। (VII. 14 में भगवान् कहते हैं-दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया-यह अलौशकक शत्रगुणमयी मेरी माया दुस्तर है।)

एकम् - यह मन है। यह ग्यारहवीं ंइम्भिय है और संकल्प-शवकल्प इसके कायथ हैं। इम्भियों ंके पाँच शवषय हैं-शब्द, स्पशथ, रूप, रस और गन्ध। ये पाँच इम्भियों ंके भ्रमण स्र्ल हैं।

महाप्रलय काल में समस्त महाभूत, अहंकार, बुम्भद्ध, इम्भियाँ और मन अव्यक् में शवलीन हो िाते हैं।

मन माया है। मन अशवद्या है। समस्त प्रशक्रयाओं ंके मूल में मन है। मन इच्छाओं ंको शम्भक् देता है, भय का पोषण करता है और हवाई शकले बनाता है अर्ाथत् अपना राज्य चलाता है (मनोराज्यम्) । मन अहं को बल दे कर आकाङ्क्षाओं ंको प्रेररत करता है। प्रत्येक वृशत्त का िन्म मन से होता है। यह शवकारी वृशत्तयों ंका संवधथन करता है, आशाओं ंको प्रबल करता है और िैत भाव को िन्म देता है। अशवद्या को बढ़ाता है और इम्भियों ंको शवषयों ंके सागर में शनमम्भित करता है। मन ही भेद भाव और शवरोधी वृशत्त का िन्मदाता है। यह पृर्क् करता है, शवभाशित करता है और सीशमत करता है। परमात्मा और िीवात्मा के मध्य मन तो मानो एक प्रबल लौह प्राचीर (दीवार) के समान है। मन ही ब्र्ह्म को िीवात्मा की म्भस्र्शत में लाया है। यह तुरुशटयों, ं तृष्णाओं, ं संशय, भ्राम्भन्त और अशवद्या का

भंडार है। यह शनत्य आवतथनशील चक्र है ो शवचारों ंको उत्पन्न करता है। यह अद्भुत शवचार-उत्पादक मशीन है। क्षण भर में शवचार सृशित करता है और अगले क्षण नष्ट करता है।

इच्छा ेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृडतः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सडवकारमुदाहृतम् ।।६ ।।

बाि्थम : इच्छा-इच्छा, ेष-ेष, सुखम् -सुख, दुखम् - दुख, संघात समूह, चेतना-बुम्भद्ध, धृशत - धैयथ, एतत्-यह, क्षेत्रम् -क्षेत्र, समासेन-संक्षेप में, सशवकारम् - शवकारों ंसशहत, उदाहृतम् - वशणथत है।

अनुवाद : इच्छा, ेष, सुख, दुःख, स्थूल देह का शपण्ड (शरीर), बुम्भद्ध और म्भस्थरता-यह संक्षेप में शवकारों ंसशहत क्षेत्र का वणथन है।

व्याख्या : ये तत्त्व आकार बनाते हैं शिन पर इस रूप मय संसार का शनमाथण होता है। ये सब मन की अवस्थायें हैं और सांख्य योग दशथन के अनुसार शरीर की सम्पदा मानी ाती है।

न्याय-वैशेशषक दशथन के अनुसार ये आत्मा के अंतिाथत स्वाभाशवक गुण हैं। शवकारों ंका प्रारम्भ है और अन्त भी है। केवल अव्याकृत (अपररवतथनशील) ही इन शवकारों ंका साक्षी िष्टा हो सकता है। क्षेत्रज्ञ अपररवतथनशील है। वह क्षेत्र और इसके शवकारों ंका साक्षी है।

इच्छा मन का शवकार है। शकसी वस्तु को प्राप्त करने की तीव्र लालसा ही इच्छा है। यह रिोगुण से उद्भूत एक वृशत्त (शवचार तरङ्ग) है ो मनुष्य को पहले देखी हुई उस वस्तु को प्राप्त करने हेतु प्रेररत करती है शिसका सुखद अनुभव वह पूवथतः प्राप्त कर चुका है। यह अन्तमथन की सम्पदा है। यह ज्ञातव्य है, अतः क्षेत्र है।

इम्भिय-शवषय के सुख-भोग का संस्कार अवचेतन मन में रहता है। सुख-भोग की स्मृशत से यही संस्कार पुनः सिीव हो उठता है। पुनः उस शवषय-भोग की वासना ाग्रत होती है। शवषय-भोगों ंकी पुनरावृशत्त, स्मृशत और वासना को और प्रचंड (तीव्र) करती है। शवषयों ंके त्याग से और ध्यान के अभ्यास से इच्छायें और संस्कार क्षीण होते हैं।

यशद कोई व्यम्भक्त बदरी नारायण अर्वा माउण्ट कैलाश के सुन्दर दृश्यों ंका वणथन करे तो मन में उन स्थानों ंकी यात्रा करने की इच्छा ाग्रत होती है। यशद कोई कहे शक बंगलौर में बहुत अच्छी शमठाई और आम शमल रहे हैं तो तुम्हारे मन में उन्हें प्राप्त करने की लालसा अंकुररत होती है। अतः इम्भिय-सुखों ंकी स्मृशत और इम्भिय-शवषयों ंके गुणों ंका श्रवण इच्छाओं ंका मूल कारण है। आशा इच्छा को संवशधथत करती है। आशा इच्छा को नव िीवन प्रदान करती है। इच्छा मन और इम्भियों ंमें उत्तेिना उत्पन्न करती है। इच्छा मन को अशान्त करती है। इच्छा मन को शवषय-वन में भटकाती है।

इस क्षण ो शवषय मधुर और सुखद प्रतीत होता है दूसरे क्षण वही पदार्थ शवपरी संवेदना (अनुभव) प्रदान करता है। तुम सब का ऐसा अनुभव रहा होगा । पदार्थ तभी सुखद लगते हैं िब तक उनकी कामना रहती है। कामना न रहे तो वही पदार्थ अच्छे नहीं ंलगते। इसशलए तर्ाकशर्त सुख के मूल में इच्छा शनशहत है। पदार्थ के सुख भोग से यशद सन्तोष हो ाये तो उस पदार्थ से और अशधक सुख नहीं ंशमलता। मन यशद इच्छा-मुक्त हो ाये तो तुम सदा शवपदा में भी सौम्यता, समशचत्तता (समभाव) और शान्त भाव का आनन्द लोगे। इम्भिय-शवषयों ंसे प्रेम इच्छा की आधारशला है। इच्छायें तुम्हारी प्रवृशत्त प्रवाह, भाव और रुशच के पर्थ पर दौड़ती हैं। इच्छा ईंधन है। शवचार

अशग्न है। यशद तुम इच्छा रूपी ईंधन को समाप्त कर दो तो तेल-रशहत लैम्प की भााँशत शवचार की अशग्न शान्त हो ाियेगी, बुझ ाियेगी। इच्छाओं ंकी संगशत में बुम्भद्ध अपशवत्र होती है।

घृणा मन की एक वृशत्त है ाो नकारात्मक है। शकसी वसुतु अर्वा ाीव शवशेष से कभी पीाा का अनुभव हुआ हो तो उसके प्रशत घृणा अर्वा अरुशच के शलए यह वृशत्त मन को प्ेरेररत करती है, ाब भी वह पुनः उसको देखता है। घृणा भी क्ेषेत्र है क्योंशंक यह ज्ञातव्य है। इच्छापूशतथ के अभाव में मन में उत्पन्न होने वाली भावना ईष्याथ अर्वा घृणा है। सुख रुशचकर, शाम्भन्तप्रद और सत्त्व शनशमथत है। यह भी क्ेषेत्र है क्योंशंक यह ज्ञातव्य है । दु:ख अरुशचकर और क्ेलेशप्रद है। यह भी क्ेषेत्र है क्योंशंक यह भी ज्ञातव्य है।

सङ्घात-समूह-इम्भियों ंऔर शरीर का शपण्ड अर्वा शरीर के ३५ घटकों ंका समूह ।

चेतना-लोहे की गेंद में अशग्न की अशभव्यम्भक् की भााँशत चेतना एक मानशसक अवस्ा है ाो अपने को समग्रता में अशभव्यक् करती है। यह भी क्ेषेत्र है क्योंशंक यह ज्ञातव्य है। चेतना ाीवनी शम्भक् अर्वा प्राण वायु है।

धृशत-दृढ़ता, साहस, सहनशीलता। यह मन की साम्भत्वक वृशत्त है। शरीर, मन और इम्भियों ंकी कुषुब्ध और शवषाद की अवस्ा में धृशत धारण से शम्भक् आती है। पााँचों ंतत्त्व एक-दूसरे के शवरोधी है। ाल पृथ्वी को नष्ट करता है. अशग्न ाल को सुखाता है, ाल अशग्न को बुझाता है। वायु दीप (अशग्न) को बुझाता है और आकाश वायु को अपने में लीन कर लेता है। पााँचों ंतत्त्व आपस मैं शवरोधी हैं, स्वभाव से ही एक दूसरे के शतुरु हैं पुनरशप इसी शरीर में वे सब शकतने शमत्रभाव से शमलकर रहते हैं। शरीर का कोई भी व्यापार (शक्रया) समम्भित रूप से पूणथ करने के शलए प्रत्ेयेक तत्त्व बहुत सुन्दर रूप से अन्य तत्वों ंका सार् देता है। धृशत वह शम्भक् अर्वा दृढ़ शनश्चय है शिसके ाारा ये युयुतुसु तत्व भी एकता और समिय के सार् म्भरूर और सनुतुशलत रखे ााते हैं। यह भी क्ेषेत्र है क्योंशंक ज्ञातव्य है।

इस श्लोक में वशणथत इच्छा आशद गुण मन के समस्त गुणों ंको लशक्षत करते हैं। प्रर्म श्लोक में शिस क्ेषेत्र का वणथन शकया गया है, पंचम और षष्ठ श्लोकों ंमें इन्ें पूणथ शवस्तारपूवथक समझाया गया है।

अमाडनत्वमदन्द्रम्भत्वमडिंसा क्षान्द्रतराजमवम् ।
आचायोपासनं ाौचं थरैथ्ैयमिाडवडनग्रिः ।।७ ।।

बिा्र्थम : अमाशनत्वम् नम्रता (अशभमान का अभाव), अदम्भम्भत्वम् - दम्भाचरण (छल-कपट) का अभाव, अशहंसा- अशहंसा, क्षाम्भन्तः- क्षमा, आिथवम् - सरलता, आचायोपासनम् - गुरु सेवा, शौचम् - शुद्धता (शरीर और मन की), स्ैयथम् -म्भरूरता, आत्मशवशनग्रहः- आत्म-संयम ।

अनुवाद : नम्रता, दम्भाचरण का अभाव, अशहंसा, क्षमा, सरलता, गुरु सेवा, शुशचता, म्भरूरता, आत्म-संयम,

व्याख्या : बुम्भद्धमान् में अर्वा बुम्भद्धमान् बनने के शलए ये गुण आवश्यक हैं। अन्तश्ेचेतना की ओर उनुमुख मन वाले व्यम्भक् की ये उपाशधयााँ हैं।

यशद से समस्त गुण शकसी में समग्रता से दृशष्टगत हों ंतो अनुमान लगा ले शक आत्म ज्ञान का सूयथ उस व्यम्भक् में उशदत हो गया है।

अमाशनत्वम् - यह अहंकार (शमथ्याशभमान) का अभाव है। आत्मश्लाघा की शून्यता है। धन-वैभव, ज्ञान, बल, सौन्दयथ तर्ा अन्य गुण दूसरों ंकी अपेक्षा अपने में अशधक होने की चेतना, शमथ्या अशभमान का आधार हैं।

अशभमानी के पास पुनरशप, कुछ न कुछ तो होगा शकनुतु अहंकारी के पास कुछ भी नहीं ◌ाहोता शफर भी वह सोचता है वह दूसरों ◌ं से श्रेष्ठ है। अशतशय अशभमान माशनत्व है। एक नम्र व्यम्भक् को आदर, सम्मान और प्रशंसा की आकाङ्क्षा नहीं ◌ंहोती। वह प्रशंसा और भेदभाव की वृशत्त का त्याग करता है। वह अपने ज्ञान, योग्यता और शम्भक् आशद का शदखावा नहीं ◌ंकरता। आत्मश्लावा नहीं ◌ंकरता।

अदम्भम्भत्वम् - ◌ि◌ो तुम हो नहीं ◌ंवह शदखना चाहते हो-यह दम्भाचरण कहलाता है। शकसी संन्यासी के पास कुछ गुण हैं और पुस्तकों ◌ंसे अशिथत कुछ सैद्धाम्भन्तक ज्ञान । शकनुतु वह मुक् संन्यासी होने का ढोंगं करे तो वह दम्भी है। यह धाशमथक दम्भ (पाखण्ड) है। दम्भ के अभाव में मनुष्य सरल और नम्र होता है। दूसरों ◌ंसे आदर, नाम और सुतुशत प्राप्त करने के शलए वह अपने गुणों ◌ंका प्रदशथन नहीं ◌ंकरता । अपने शकये हुए प्रशस्य अर्वा दानशील कायथ को वह प्रकट नहीं ◌ंकरता। वह पांशित्यदशथन (शवद्याशभमान) से मुक् होता है। प्रशंसा प्राम्भप्त के शलए वह अपने ज्ञान का शवक्रय नहीं ◌ंकरेगा।

अशहंसा-मनसा, वाचा, कमथणा शकसी प्राणी को कोई कष्ट न पहुाँचाना, अशहंसा है। अशहंसा का पालन करने वाला अत्यन्त ध्यानपूवथक धरती पर पााँव रखता है ताशक उसके पााँव तले कोई ◌ि◌ीव कुचल न ◌ि◌ाये। शकसी ◌ि◌ीव को देख लेगा तो दूसरी ओर मिु ◌ि◌ायेगा। उसका हृदय करुणामय होता है।

क्षाम्भन्त-सशहषुणु, शतशतकुषु, क्षमाशील व्यम्भक् वही है ◌ि◌ो क्षाम्भन्त से युक् है। यह ज्ञान का सत्य लक्षण है। ज्ञानी पुरुष सब कुछ सहन करता है। दूसरे उसे चोट भी क्यों ◌ंन पहुाँचायें वह अप्रभाशवत रहता है। वह कोई प्रशतशक्रया अर्वा प्रशतशहंसा नहीं ◌ंकरता। वह शान्त भाव से अपमान और शहंसा सहन करता है।

आिथवम् -सरलता । ज्ञानी पुरुष सरल होता है। वह छल-कपट, कुशटलता, धूतथता और प्रवंचना से परे रहता है। वह स्पष्टवादी और सहृदय होता है। वह शकसी से कुछ शछपाता नहीं ◌ंअर्ाथत् रहस्य नहीं ◌ंरखता। उसके वाणी और शवचार में समता होती है। वह अपने मन की बात लोगों ◌ंसे स्वतन्त्र रूप से कह देता है। वह बोलने में बालक की भााँशत सरल होता है। स्फशटक की भााँशत शुद्ध हृदय होता है। वह दूसरों ◌ंको कभी धोखा नहीं ◌ंदेता।

गुरु सेवा-आचायथ के प्रशत भम्भक् भाव, गुरु पिू, ब्र्ह्म शवद्या का उपदेश करने वाले अर्वा मोक्ष का साधन बताने वाले की सेवा (उपासना) गुरु सेवा है। शदव्य ज्ञान स्वरूप शशक्षक ही आचायथ है। गुरु सेवा से साधक को मोक्ष श्रीशत का साधन शमलता है। साधक अपने गुरु की ब्र्ह्म भाव में पिू करता है। बह उसकी शवषुणु रूप में सुतुशत करता है। वह गुरु पर ब्र्ह्म अर्वा शवषुणु की अहस्त उपाशधयााँ अशधशष्ठत करता है। वह गुरु में और गुरु के ◌ि◌ारा ब्र्ह्म का हसाक्षात्कार करता है। यह गुरु सेवा का फल है। वेदान्त के साधक के शलए गुरु शम्भक् अशनवायथ है। शास्त्रों ◌ंका गोपनीय अर्थ ◌ि◌ानने के शलए भी गुरु का मागथदशथन आवश्यक है।

शौच-शुशचता, पशवत्रता । यह अन्तः और बाह्य, दो प्रकार की है। बाह्य पशवत्रता भौशतक शरीर की है ◌ि◌ो मृशत्तका (शमट्टी) और ◌ि◌ल से होती है। दूसरी शुम्भद्ध अन्तःकरण की है शिस पर घृणा, ईष्याथ–ि◌ष और आसम्भक् का मल बढ़ा हुआ है। इसे प्रशतपक्ष भावना से अर्ाथत् सकारात्मक गुणों ◌ंके ◌ि◌ारा और शवषय-वासनाओं ◌ंमें दोष दृशष्ट रखने से शुद्ध शकया ◌ि◌ाता है।

स्रै्यथम् - म्भस्र्रता । साधना की राह में अनेक बाधायें आने पर भी साधक अपने शनवाथण-पर् पर संघषथ करता हुआ आगे ही बढ़ता है। यह म्भस्र्रता और दृढ़ता है। चंचल मन से ब्र्ह्म पर ध्यान करना असम्भव है।

शवशनग्रहः यह इम्भियों ंऔर शरीर का समग्रता से संयम है। इम्भियााँ और शरीर िो स्वभावतः बशहमुथख होते हैं और शवषयों ंकी ओर दौिते हैं, इन्हें वश में कर के शनवाथण-पथ पर अग्रसर शकया िाता है। इम्भियााँ असंयत हों ंऔर ध्यान आकृष्ट करती हों, ं ऐसे शरीर में ध्यान सम्भव नहीं ंहै।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याडधदुःखदोषानुदिमनम् ।।८ ।।

बिार्थम : इम्भियार्थेषु इम्भियों ंके शवषयों ंमें, वैराग्यम् - शवरम्भक्, अनहकार-अहंकार का अभाव, एव-ही, च-और, न्मिमृत्युिराव्याशध- दुःखदोषानुदशथनम् िन्म, मृत्यु, िरा, व्याशध और दुःख में दोष देखना ।

अनुवाद : इम्भिय-शवषयों ंमें वैराग्य और अहंकार का अभाव, िन्म, मृत्यु, िरा, व्याशध और दुःख में दोष दशथन,

व्याख्या : बुम्भद्धमान् पुरुष इम्भिय-शवषयों ंके प्रशत सदा शवरक् रहता है। उनके शवषय में कुछ बोलना भी उसे शप्रय नहीं ंहै। उसकी इम्भियााँ शवषयोन्मुख नहीं ंहोतीं।ं

वैराग्यम् - शब्द, स्पशथ आशद, दृष्ट अर्वा अदृष्ट, शुरुत अर्वा अशुरुत सुख के प्रशत अनासम्भक् का भाव वैराग्य है चाहे वह स्वगथलोक का भी क्यों ंन हो।

अनहंकार-"मैं सवथश्रेष्ठ हाँ"-मन का यह भाव अहंकार है। इस भाव का अभाव अनहंकार है।

न्मिमृत्युिराव्याशधदुःखदोषानुदशथनम्-गभथ में नौ मास पयथन्त वास कर के िन्म के दुःख सहन करने पिते हैं। यह िन्म के पाप हैं। बुम्भद्धमान् व्यम्भक् िन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था आशद के क्लेशों ंको कभी शवस्मृत नहीं ं करता। वह िन्म से मुम्भक् चाहता है। वृद्धावस्था में बुम्भद्ध मन्द हो िाती है, स्मृशत-हास हो िाता है, इम्भियााँ क्षीण हो िाती हैं। शम्भक् और बल का क्षय होने लगता है। अपने सम्बम्भन्धयों ंके िारा वृद्ध हेय दृशष्ट से देखा िाता है। ये वृद्धावस्था की बुराइयााँ हैं, दोष हैं। अशथ रोग (piles) से पीशित व्यम्भक् दुबथलता का अनुभव करता है, रक् क्षय के कारण उसे अनीशमया हो िाता है। मलेररया से ग्रस्त व्यम्भक् की शतल्ली बढ़ िाती है। यह व्याशध दोष हैं।

दुःख-ग्रन्थ के आरम्भ में तापत्रय का वणथन आ चुका है। दुःख स्वयं में ही एक दोष है। िन्म दुःख रूप है, न्मि दुःख है, मृत्यु दुःख है, िरा दुःख है, व्याशध दुःख है। िन्म, मृत्यु आशद सब दुःख रूप हैं क्योंशंक ये सब दुःख देते हैं।

इन सब में इस प्रकार का दोष दशथन और शवश्लेषण करने से शरीर और इम्भियों ंके सुखों ंके प्रशत वैराग्य का भाव िाग्रत होता है। तब मन अन्तमुथखी हो कर आत्म-ज्ञान के शलए तिपता है। क्योंशंक िन्म आशद में दुःख दोष दशथन करने से आत्म-ज्ञान की प्राम्भप्त में सहायता शमलती है अतः यह भी ज्ञान है।

असन्द्रक्तरनडभष्वङ्गः पुत्रदारगृािडदषु ।
डनत्यं च समडचत्तत्वडमष्टाडनष्टोपपडत्तषु ।।९ ।।

बिार्थम : असम्भक्ः - अनासम्भक्, अनशभष्वङ्गः - देहाशभमान का अभाव, मोह ममता आशद का अभाव, पुत्रदारगृहाशदषु-पुत्र, स्त्री, गृह आशद में, च-और, समशचत्तत्वम् -शचत्त शनत्यम् -सदा, इष्टाशनष्टोपपशत्तषु अभीष्ट और अनभीष्ट की प्राम्भप्त में। का सम रहना,

अनुवाद : अनासम्भक्, पुत्र, दारा, गृह आशद में मोह-ममता और एकत्व भाव का अभाव, अभीष्ट और अनभीष्ट पदार्ों की प्राम्भप्त पर समशचत्तता,

व्याख्या : िब मनुष्य सोचता है, "यह वस्तुु मेरी है", "मैंपन का भाव उसके शचत्त में प्रशवष्ट होता है। उसमें अशभमान का शवकास होने लगता है और वह वस्तुुओं ंसे (एकत्व स्ाशपत कर) प्रेम करने लगता है। उनमें आसक् हो िाता है। शवषयों ंमें आसम्भक् का अभाव अनासम्भक् है। यह शवषयों ंमें रुशच का अभाव है।

अनशभष्वङ्गः -पुत्र, दारा, माता आशद में प्रगाढ़ आसम्भक् का अभाव है। यहााँ आत्मा का दूसरे के सार् पूणथ तादात्म्य हो िाता है। दूसरे के सुखी-दुःखी होने पर वह भी सुखी-दुःखी होता है। गोशवन्दन् अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करता र्ा। उसकी मृत्युु होने पर वह बहुत शोक ग्रस्त हो गया शकन्तुु उसके पडोसी की पत्नी का देहान्त हुआ तो उस पर कोई प्रभाव नहीं ंपडा। ज्ञानी पुरुष को अपने घर से कोई आसम्भक् नहीं ंहोती। रािमागथ (Public Road) के शकनारे बसे अपने आवास को वह एक अशतशर् गृह ही मानता है।

आशदषु-अन्य शप्रय िन । सम्बन्धी अर्वा सेवक ।

शनत्यं समशचत्तत्वम् समता ज्ञान की अनुक्रमशणका है। अभीम्भित पदार्थ की प्राम्भप्त पर ज्ञानी पुरुष हशषथत नहीं ंहोता और अनभीम्भित में दुःखी नहीं ंहोता ।

अनासम्भक्, राग का अभाव और समत्व, आत्म-ज्ञान प्राम्भप्त में सहायक गुण हैं। वे गुण ज्ञान की संज्ञा से अशभशहत हैं क्योंशक वे ज्ञान प्राम्भप्त के साधन हैं।

मडय चानन्ययोगेन भन्द्रक्तरव्यडभचाररणी ।
डवडवक्तदेिसेडवत्वमरडतजमनसंसडद ।।१०।।

ब्िार्थम: मशय मुझ में, चऔर, अनन्ययोगेन-अनन्य योग के िारा, भम्भक् -भम्भक्, अव्यशभचाररणी-अशवचल, शवशवक्देशसेशवत्वम् - एकान्त देश (स्ान) में शनवास करना, अरशत-अरुशच, िनसंसशद -मानव समाि में।

अनुवाद : मुझ में अनन्य भाव से अशवचल भम्भक्, एकान्त-वास और मानव समाि के प्रशत अरुशच अर्ाथत् अनुराग का अभाव,

व्याख्या : ज्ञानी पुरुष दृढ़तापूवथक इस सत्य को स्वीकार करता है शक

मैं ही सब का केवल आधार (आश्रय) हाँ और मुझ से श्रेष्ठ और कोई नहीं।ं शकसी अन्य शवषय का शवचार मन में न लाते हुए वह (योग के िारा) मेरे में ही अचल शनष्ठा रखने वाला होता है। उसका शचत्त मुझ में लीन हो गया है। िैसे नदी सागर में शमल कर उससे एक रूप हो िाती है वैसे ही वह मेरे सार् युक् हो कर केवल मेरी ही उपासना करता है। अनन्य योग अर्वा अपृर्क् समाशध यही है। ऐसी ही भम्भक् ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होती है। ऐसा भक् अनेक शवपदाओं ंऔर परीक्षाओं ंमें संघषथ करते हुए भी अपनी भम्भक् और पूिा को नहीं ंछोडेगा।

शवशवक्देशसेशवत्वम् - वह पावन नशदयों ंके तट पर वास करेगा, पवथत की गुहाओं ंमें, सागर-तट पर अर्वा झील के शकनारे और एकान्तदेशी सुन्दर उद्यानों ंमें रहेगा िहााँ सपथ, शसंह और चोर आशद का भय न हो। एकान्त स्ान में शचत्त शान्त रहता है। ऐसे स्ानों ंपर ध्यान आकृष्ट करने वाले बाधक तत्त्व नहीं ंहोते। आत्मा पर अनवरत रूप से दीघाथवशध पयथन्त ध्यान कर के अशचरेण समाशध की अवस्ा प्राप्त की िा सकती है।

निसंसशद-यहाँ सांसाररक व्यम्भक्यों ंकी समिा से दूरी रखने का आदेश है, बुम्भद्धमान्, पशवत्र और साधु पुरुषों ंसे नहीं।ं शविानों ंकी सङ्गशत आत्म-ज्ञान का साधन है।

अध्यािज्ञानडनत्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थमदिमनम् ।
एतज्ज्ञानडमडत प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यर्था ।।११ ।।

बिार्थम : अध्यात्मज्ञानशनत्यत्वम्-आत्म-ज्ञान में शनत्य म्भस्र्शत, सत्वज्ञानार्थदशथनम् - परम सत्य की दाशथशनक खोि, एतत्-यह, ज्ञानम् - ज्ञान, इशत-इस प्रकार, प्रोक्म् -घोशषत शकया गया है, अज्ञानम्-अज्ञान, यत् िो, अत-इससे, अन्यर्ा अन्य, इतर ।

अनुवाद : आत्म-ज्ञान में शनत्य म्भस्र्शत और परम सत्य की खोि के शलए अन्तदृशष्ट-यह ज्ञान कहा गया है और इससे इतर िो कुछ भी है, वह अज्ञान है।

व्याख्या : मुक्ात्मा में सदा आत्म िागृशत बनी रहती है। वह िानता है शक अध्यात्म ज्ञान ही शनत्य है और शेष समस्त ज्ञान िो संसार से सम्बद्ध है, वह अज्ञान है। वह िानता है शक आत्मदशथन कराने वाला ज्ञान ही केवल सिा ज्ञान है।

'नम्रता' के गुण से प्रारम्भ हो कर ये सभी गुण ज्ञान के अन्तगथत घोशषत शकये गये हैं क्योंशक वे ज्ञान के अनुरूप हैं, वे ज्ञान के साधन हैं, वे ज्ञान के गौण साधन स्वरूप अर्वा उपादान कारण हैं। इस आत्म-ज्ञान का पररणाम िन्म-मृत्यु के चक्र से मोक्ष है। आध्याम्भत्मक साधक को इस प्रकार से ज्ञान की पराकाष्ठा को सदा स्मरण रखना चाशहए। तभी वह उन गुणों ंका शवकास कर सकता है िो शनवाथण प्राम्भप्त में सहायक हैं। ज्ञान के शवपरीत-काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, दम्भ, आसम्भक्, धृष्टता, कूटनीशत, शहंसा का भाव (दूसरों ंको चोट पहुँचाना), आशद अज्ञान है। अज्ञान से उत्पन्न ये दुगुथण मनुष्य को भौशतक बन्धन में िालते हैं। मोक्ष-प्राम्भप्त के इच्छुक साधक को अज्ञान के ये प्रशतबन्धक मागथ से हटाने होंगें। शवपरीत गुणों ंका शवकास कर लो, बुरे गुण उसी प्रकार अम्भस्तत्व खो देंगे िैसे उद्यान में शबना िल के पौधे । दुगुथणों ंसे लिते हुए उनका शनराकरण करना शंकंशचत् कशठन है।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्याडम यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनाडदमत्परं ब्रह्म न सत्तिासदुच्यते ।।१२ ।।

बिार्थम : ज्ञेयम् - िानने योग्य, यत्–िो, तत्-वह, प्रवक्ष्याशम - कहूँगा, यत्–िो, ज्ञात्वा–िान कर, अमृतम्-अमरत्व, अश्नुते - (कोई भी) प्राप्त करता है, अनाशदमत् - अनाशद, परम् -परम, ब्ह्म-ब्ह्म, न-नहीं,ं सत् सत्, न-नहीं,ं असत् - अम्भस्तत्व कान (न होना), उच्यते-कहा िाता है।

अनुवाद : अब मैं ज्ञातव्य की घोषणा करूँगा शिसे िान कर मनुष्य अमृतत्व की प्राम्भप्त करता है, वह अनाशद परम ब्ह्म न तो सत् कहा िाता है और न ही असत् ।

व्याख्या : अिुथन में अर्वा शकसी भी श्रोता के हृदय में उसे िानने की उत्सुकता उत्पन्न करने के शलए भगवान् उस परब्ह्म परमात्मा की प्रशंसा करते हैं िो िानने योग्य है।

ब्ह्म को सत् अर्वा असत् आशद शब्दों ंसे स्पष्ट नहीं ंशकया िा सकता क्योंशक वह शकसी भी प्रकार की िाशत-ब्राह्मण, गाय, घोिा आशद से परे है। उसके श्वेत, श्याम आशद वणथ भी नहीं ंहैं। उसका शकसी अन्य वस्तु से सम्बन्ध अर्वा सम्पकथ भी नहीं ंहै क्योंशक वह अशितीय है। यह शकसी इम्भिय का शवषय नहीं ंहै। इसे मन और

इम्भियों ंिारा िानना असम्भव है। यह शनम्भिय है। यह महान् भावातीत (अलौशकक), अव्यक् परम ब्र्ह्म है। सभी शवषयों ंमें यह साक्षी चेतन कत्ताथ है।

वेद गौरव के सार् उद्घोष करते हैं शक ब्र्ह्म, अकताथ, अभोक्ा और अव्यय है। अध्याय IX. 19 में कहा गया र्ा शक वह सत् भी है और असत् भी। अब भगवान् कह रहे हैं शक वह न तो सत् है और न असत् । अध्ययनकताथ को यह शवरोधी बात प्रतीत हो सकती है शकन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं ंहै। यद्यशप व्यक् (मत्यथ) और अव्यक् (अमत्यथ) ब्र्ह्माण्ड ब्र्ह्म स्वरूप ही हैं तर्ाशप वह इन दोनों ंसे अतीत है। (VII.2; XV.16, 17, 18)

सवमतः पाडणपादं तत्सवमतोऽडक्षडिरोमुखम् ।
सवमतः शुरुडतमल्लोके सवमावृत्य डतिडत ।।१३ ।।

बिार्थम : सवथतः सब ओर, पाशणपादम् -हार् और पााँव सशहत, तत् वह, सवथतः सब ओर, अशक्षशरोमुखम् - आाँख, शसर और मुख वाला, सवथतः सब ओर, शुरुशतमत् -कणथयुक्, लोके-लोक में, सवथम्-सब, आवृत्य-आवृत कर के, शतष्ठशत-रहता है।

अनुवाद : उसके हार्-पैर सब ओर हैं, नेत्र, शसर और मुख सब ओर हैं, कणथ सब ओर हैं, वह लोक में सब को आवृत कर के, सबको व्याप्त कर के म्भस्र्त है।

"व्याख्या : वह (क्षेत्रज्ञ अर्वा परब्र्ह्म) संसार में सवथत्र व्याप्त है। वह स्वयं से समस्त संसार को पूणथ करता है और सब ओर से पररवेष्टन करता है। वह लोक में सवथस्व आच्छादन कर के म्भस्र्त है।

पूवथ श्लोक में कहा गया है शक ब्र्ह्म िो ज्ञेय है, न तो सत् है और न वह असत्। ऐसा शवचार आ सकता है शक वह असत् होगा, शून्य होगा अब शमथ्यार्थबोध (शमथ्या-अर्थबोध) को दूर करते हुए भगवान् इस श्लोक में कहते
● हैं शक ज्ञान के सवथत्र हार्-पैर आशद हैं। इससे मन और इम्भियों ंको समुशचत बेष्टा करने हेतु शदशा शनदेश प्राप्त होता है। यह केवल ब्र्ह्म के सगुण स्वरूप का पक्ष है।

शिस प्रकार से इंनि का िराइवर इंनि को चलाता है उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ शरीर रूपी इंनि को चलाता है। यह अन्तः शासक है, अन्तस्तम आत्मा है। इम्भियों,ं प्राणशम्भक्, मन, शरीर और संसार का यह अवलम्बन है, आधार है। शरीर, मन और इम्भियों ंके सीशमत प्रशतबन्धों ंके अम्भस्तत्व का आधार अर्वा शनशश्चतता, ब्र्ह्म है क्योंशंक इन सब की प्रशक्रयाओं ंके पीछे आत्म चेतना का अम्भस्तत्व अशनवायथ है तो इसे असत् कैसे कह सकते हैं?

रिु पर अध्याशसत सपथ के गुण-दोषों ंसे िैसे रिु अप्रभाशवत रहती है उसी प्रकार परब्र्ह्म (क्षेत्रज्ञ) अध्याशसत शरीर, मन, इम्भियााँ, प्राण शम्भक् और संसार से प्रभाशवत नहीं ंहोता। सब िीवों ंमें सामान्य चेतना एक ही है। वह सामान्य चेतना शाश्वत, स्वयं प्रकाशत और सवथव्याप्त है। वह सामान्य चेतना परब्र्ह्म है। शरीर, मन, इम्भियााँ और प्राण स्वभाव से िि हैं शकन्तु ब्र्ह्म की शम्भक् से वे गशत करते हैं। वे ब्र्ह्म (क्षेत्रज्ञ) के कारण ही गशतशील हैं। सीशमत प्रशतबंध भ्रम मात्र है। अतः वे चेतना की आभा धारण शकये हुए हैं। चुम्बक के संयोग से िैसे लोहा, सादृश्यता को प्राप्त होता है उसी भााँशत यह संसार चेतना के संयोग में चैतन्य ही आभाशसत होता है।

रिु में सपथ की भााँशत यह संसार ब्र्ह्म पर अध्याशसत है। इस अध्यारोपण कहते हैं। अपवाद (negation) की युम्भक् से इसे अध्यारोपण स मुक् अर्वा संशोशधत कर सकते हैं और स्पष्ट कर सकते हैं।

यह भाव श्वेताश्वतरोपशनषद ३.१६ से उद्धृत है।

सवेन्द्रियगुणाभासं सवेन्द्रियडववडजमतम् ।
असक्ंतं सवमभृिव डनगुमणं गुणभोक्तृ च ।।१४ ।।

बि्ार्थम : सवेम्भियगुणाभासम् सब इम्भिय-वृशत्तयों ंके रूप में अवभाशसत, सवेम्भियशववशिथतम् -सब इम्भियों ंसे रशहत, असक्म्-अनासक्, सवथभूत् -सब का पालन करने वाला, च-और, एव- ही , शनगुथणम्-उपाशध रशहत, गुणभोकृ-(पुनरशप) गुणों ंका भोक्ा, चऔर।

अनुवाद : **वि समस्त इन्द्रियों ंके गुणों ंके िारा अवभाडसत िोता हआ भी सब इन्द्रियों ंसे रडित िै। अनासक्त** होते हुए सब का पोषण करता है। शनगुथण होते हुए गुणों ंका भोक्ा है।

व्याख्या : ब्र्ह्म शबना चक्ुषु के दशथन करता है, शबना श्रोत्र के श्रवण करता है, शबना नाशसका के घ्राण करता है, शबना मुख के भोग करता है, शबना त्वचा के अनुभव करता है, शबना हार्ों ंके ग्रहण करता है, शबना चरण के गमन करता है। "वह अदृश्य िष्टा है, अश्ुरुत श्रोता है, अशचन्त्य शचन्तन है। उससे शभन्न कोई अन्य िष्टा नहीं,ं श्रोता नहीं ंऔर शचन्तक (मन्ता) नहीं।ं वह आत्मा है, अन्तयाथमी शनयामक है और शनत्य है।" (बृहदारण्यकोपशनषद् III.7.23) प्रकृशत के गुणों ंसे मुक् होते हुए भी उनका भोक्ा है।

सवेम्भियः -पााँच ज्ञानेम्भियााँ और पााँच कमेम्भियााँ । मन और बुम्भद्ध भी इम्भियों ंके अन्तगथत पररभाशषत हैं। मन और बुम्भद्ध की सहायता से ज्ञानेम्भियााँ और कमेम्भियााँ कमथ करती हैं। उनकी स्वतन्त्र चेष्टा नहीं ंहोती। इसीशलए मन और बुम्भद्ध भी इम्भिय समुदाय में सम्भम्मशलत हैं।

ब्र्ह्म अव्यक् और भावातीत है शकनुतु अन्तः और बाह्य इम्भियों ंके माध्यम से वह अपने को व्यक् करता है। इम्भियातीत होने से वह अनासक् है पुनरशप सब का पोषण करता है। वह सब का अशधष्ठान है। शनगुथण होते हुए (गुणातीत होते हुए) भी वह प्रकृशत के गुणों ंका भोक्ा है। ब्र्ह्म वसुतुतः रहस्यमय है। यह भाव श्वेताश्वतरोपशनषद् ३.१७ से शलया गया है।

बडिरतश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदडवज्ेञेयं दूरथर्ंथं चान्द्रतके च तत् ।।१५ ।।

बि्ार्थम : बशहः- बाहर, अन्तः-भीतर, च-और, भूतानाम् -प्राशणयों ंके, अत्तरम् -म्भरूर (िि), चरम् - गशतशील (चेतन), एव-ही, च-और, सूक्ष्मत्वात् सूक्ष्मता के कारण, तत्-वह, अशवज्ेञेयम्-अज्ेञेय, दूरस्म् - दूर, -और, अम्भन्तके समीप, च-और, तत्-वह।

अनुवाद : समस्त चराचर प्राशणयों ंके भीतर और बाहर शवद्यमान होते हुए भी सूक्ष्मता के कारण िो अज्ेञेय है वह दूर भी है और पास भी है।

व्याख्या : आकाश की भााँशत ब्र्ह्म सूक्ष्म है। अत्यन्त सूक्ष्म होने से यह अज्ञाशनयों ंके शलए अगम्य है। मोक्ष के साधन चतुष्टय से अनशभज्ञ व्यम्भक् के शलए यह अज्ेञेय है। (III.3)

शविानों ंिारा ब्र्ह्म ज्ेञेय है। साधन चतुष्टय में कुशल साधक ही इसका साक्षात्कार कर सकता है। शविान् का आत्मा होने के कारण वह उसके अत्यन्त समीप है। शवषयों ंमें शनमग्न सांसाररक पुरुष से वह अत्यन्त दूर है। अज्ञान-अन्धकार में पिे हुए, अशवद्या से आच्छाशदत मनुष्य को वह कोशट- कोशट वषों में भी प्राप्य नहीं ंहै।

दूरस्थं चाम्भन्तके-यही भाव ईशावास्योपशनषद् के मन्त्र ५, और मुण्डकोपशनषद् में ३/१/७ में देखा ि ा सकता है।

अडवभक्तं च भूतेषु डवभक्तडमव च न्द्रथर्थतम् ।
भूतभतृम च तजे्ज्ञेयं ग्रडसषु्णु प्रभडवषु्णु च ।। १६ ।।

बि्ार्थम : अशवभक्म् - शवभाग रशहत, च-और, भूतेषु प्राशणयों ंमें, शवभक्म् -शवभक्, इव-समान, च-और, म्भस्तम् - म्भस्त है, भूतभतृथ- प्राशणयों ंका पोषण करने वाला, च-और, तत्-वह, जे्ञेयम्–ि ानने योग्य, प्रशसषु्णु-संहारकत्ताथ, प्रभशवषु्णु-उत्पन्न करने वाला, च-और।

अनुवाद : अशवभक् होते हुए वह प्राशणयों ंमें शवभक् सा प्रतीत होता है। उसे प्राशणयों ंके पोषणकताथ, संहारकताथ और उत्पन्नकताथ के रूप में ि ाना ि सकता है।

व्याख्या : ब्र्ह्म को सृशष्टकताथ, पालनकत्ताथ और संहारकताथ के रूप में ि ानना चाशहए। इन तीन रूपों ंमें वह नाम-रूप का संसार सृशित करने वाला ब्र्ह्मा है, रक्षण पोषण करने वाला शवषु्णु और संहारकताथ के रूप में वह रुि है। यह शवशभन्न शरीरों ंमें अशवभाज्य है। इसकी उपमा आकाश से दी ि ा सकती है। आकाश की भााँशत यह सवथव्यापक है। यह अशवभाज्य और एक है, अशितीय है शकनु्तु रूपों ंमें शवभक् हुआ सा प्रतीत होता है और सब वसु्तुओं ंऔर ि ीवों ंमें पृर्क् पृर्क् सा अवभाशसत होता है। मूलतः अखण्ड होते हुए भी समस्त प्राशणयों ंमें शवभक् हुआ भासता है।

महाप्रलय में यह संसार को शवलीन कर देता है। अगले कल्प में पुनः इसका सृि न करता है। संसार की पोषण की अवशध में वह सबका पोषण करता है।

काष्ठ में शनशहत अशग्न की भााँशत ब्र्ह्म सब शरीरों ंमें शवद्यमान है। एक आकाश ि ैसे सीशमत प्रशतबन्धकों ंके कारण पृर्क् पृर्क् प्रतीत होता है (पात्र आशद में), वैसे ही एक अशवभाज्य ब्र्ह्म शरीर आशद सीशमत प्रशतबन्धों ंके कारण पृर्क् प्रतीत होता है।

एक आलोचक का कर्न है- "जे्ञेय ब्र्ह्म ि ो के्षत्रज्ञ है, सवथव्यापक है, वह सवथत्र शवद्यमान है और शफर भी शदखाई नहीं ंदेता। तो वह तमस् (अन्धकार) रूप होगा।" उत्तर है-"नहीं, ं ऐसा असम्भव है।"

"तो क्या?" "वह प्रकाशों ंका प्रकाश है" "ज्योशतषामशप तज्ज्योशतः ।"

ज्योडतषामडप तज्ज्योडतस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं जे्ञेयं ज्ञानगमं्यं हृडद सवमस्य डवडितम् ।।१७ ।।

बि्ार्थम : ज्योशतषाम् - ज्योशतयों ंका, अशप-भी, तत्-वह, ज्योशत- ज्योशत, तमसः - अन्धकार से, परम् -परे, उच्यते- कहा ि ाता है, ज्ञानम् - ज्ञान, जे्ञेयम् - जे्ञेय (ि ानने योग्य), ज्ञानगम्यम् - ज्ञान ि ारा प्राप्य, हृशद-हृदय में, सवथस्य-सब के, शवशष्ठतम् - प्रशतशष्ठत, म्भस्त ।

अनुवाद : ज्योशतयों ंका भी ज्योशत वह परमात्मा तमस् (अन्धकार) में से कहा ि ाता है। ज्ञान स्वरूप, जे्ञेय और ज्ञान का लक्ष्य वह परब्र्ह्म सब के हृदयों ंमें प्रशतशष्ठत है।

व्याख्या : परमात्मा बुम्भद्ध को प्रकाशत करता है, मन, सूयथ, चााँद, शचतारे और अशग्न तऱ्ा शवद्युत् को भी प्रकाश देने वाला वही है। वह स्वयं प्रभा है।

"वहााँ सूयथ प्रकाशत नहीं ंहोता, चिमा और तारे भी नहीं ंचमकते और न ही शवद्युत् चमकती है, शफर इस लौशकक अशग्न का तो कहना ही क्या? उसके प्रकाशमान होते हुए सब कुछ प्रकाशत होता है और उसके प्रकाश से ही यह सब कुछ भासता है।" (कठोपशनषद् -२.२.१५ ; श्वेताश्वतरोपशनषद् -६.१४)

ज्ञान-नम्रता आशद (शनरूपण –XIII.7 से 10)

ज्ञेय–िानने योग्य (इसी अध्याय के १२-१७ में देखें)

ज्ञानगम्य-ज्ञान के िारा प्राप्त करने योग्य।

प्रत्येक मनुष्य की बुम्भद्ध में ये तीनों ंम्भस्त हैं। यद्यशप सूयथ का प्रकाश सब पदाऱ्ों में समान रूप से प्रकाशत होता हैतऱाशप दपथण आशद शनमथल तऱा अशधक चमकीले पदाऱ्ों में सूयथ की चमक बढ़ िाती है। इसी प्रकार ब्रह्म सब पदाऱ्ों में शवद्यमान होते हुए भी उसी से प्राप्त बुम्भद्ध में वह शवशेष आलोक से भासता है। (शनरूपण-X.20; XIII.3; XVIII.61)

इडत क्षेत्रं तर्था ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मिक्त एतडिज्ञाय मिावायोपपद्यते ।।१८ ।।

बिार्थम : इशत-इस प्रकार, क्षेत्रम् -क्षेत्र को, तऱा-और, ज्ञानम् -ज्ञान, ज्ञेयम्-ज्ञेय, च-और, उक्म्-कहे गये, समासतः संक्षेप में, मद्भक्ः- मेरा भक्, एतत्-यह, शवज्ञाय–िान कर, मद्भावाय-मेरे भाव को, उपपद्यते -प्राप्त करता है।

अनुवाद : इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेय का संक्षेप में वणथन कर शदया गया है। इसे िान कर मेरा भक् मेरे ही भाव को प्राप्त होता है।

व्याख्या : वह संयतेम्भिय, शिसे क्षेत्र और ज्ञेय का ज्ञान है और िो अपना शचत्त मुझ में म्भस्र करता है वह मुझे प्राप्त होता है।

इस प्रकार क्षेत्र, शिसका वणथन महाभूतों ंसे प्रारम्भ हो कर श्लोक ५ और ६ में 'दृढ़ता' पर समाप्त हुआ, ज्ञान का वणथन ७ से ११ में 'अमाशनत्वम्' से प्रारम्भ हो कर 'यऱार्थ दशथनम्' में समाप्त हुआ और ज्ञेय शवषय का वणथन १२ से १७ में शदया गया-एवंशवध ये तीन संक्षेप से शनरूशपत शकये गये।

शिस व्यम्भक् की मेरे प्रशत अनन्य भम्भक् की भावना है, िो मुझ को परम पुरुष, सवथज्ञ और सविो गुरु मानता है और सब को आत्म स्वरूप समझता है, िो वह मनन करता है, अनुभव करता है शक वह िो कुछ भी देख रहा है, सुन रहा है और स्पशथ कर रहा है वह सब भगवान् ही है अन्य कुछ नहीं ंऔर िो ऊपर बताये गये यऱार्थ ज्ञान से युक् है वह मेरे भाव को प्राप्त होता है अर्वा आवागमन के चक्र से मुक् हो िाता है।

प्रकृडतं पुरुषं चैव डवद्ध्यनादी उभावडप ।
डवकारांश्च गुणांश्चैव डवन्द्रद्ध प्रकृडतसम्भवान् । ।१९ ।।

बिा्र्थम : प्रकृशतम् -प्रकृशत को, पुरुषम् -पुरुष को, च-और, एव-ही, शवम्भद्धि–ाानो, अनादी -अनाशद, उभौ दोनों,ं अशप-भी, शवकारान् -शवकारों ंको, च-और, गुणान् गुणों ंको, च-और, एव-ही, शवम्भद्धि–ाानो, प्रकृशतसम्भवान् -प्रकृशत
से उत्पन्न ।
अनुवाद : प्रकृशत और पुरुष दोनों ंको ही तुम अनाशद ाानो और यह भी ाान लो शक समस्त शवकार और गुण प्रकृशत से ही उद्भुत हैं।

व्याख्या : भवन की ऊपरी मंशिल तक ाने के शलए सोपान अशनवायथ है। इसी प्रकार आत्म-ज्ञान के शखर तक पहुाँचने के शलए भी सोपान आवश्यक है। यही कारण है शक भगवान् कृष्ण अिुथन को ज्ञान के सविो शखर तक ले ाने के शलए एक-एक चरण कर के आगे बढ़े। प्रर्म तो भगवान् ने अिुथन को क्षेत्र की प्रकृशत से अवगत कराया, तदुपरान्त ज्ञान, अशवद्या और अन्त में ज्ञेय का ज्ञान शदया। शशु को भोिन कराने के शलए एक माँ भोिन को शवभक् कर के र्ोडा-र्ोडा म्भखलाती है। इसी प्रकार भगवान् ने अपने आध्याम्भत्मक शशु को आध्याम्भत्मक भोिन र्ोडा-र्ोडा (अल्पशः) शदया।

भगवान् कृष्ण कहते हैं- "हे अिुथन, यही उपदेश मैं तुम्हें प्रकृशत और पुरुष के रूप में दूंगा।"

अब तक भगवान् ने उपशनषद् दशथन के अनुरूप आत्मा और क्षेत्र का ज्ञान शदया। अब वही ज्ञान वे सांख्य दशथन के अनुरूप देंगे शकन्तु इसका वणथन पुरुष और प्रकृशत के मध्य भेद की ैत प्रकृशत को अस्वीकारते हुए करेंगे।

शवकार-महत्तत्त्व से ले कर शरीर पयथन्त समस्त शवकार अर्वा पररणशतयााँ, ाो सांख्य दशथन के २४ तत्त्वों ं के अन्तगथत आती हैं। अन्तरात्मा अव्यय है। सभी पररवतथन प्रकृशत में होते हैं। मूल प्रकृशत (आशद, अव्यक् प्रकृशत) महत्, अहंकार, महाभूत और अन्य अल्प शवकारों ंको प्राप्त होती हैं।

ैसे बफथ और शीतता, शदन और रात एक-दूसरे से अशभन्न हैं इसी प्रकार पुरुष और प्रकृशत एक-दूसरे से पृर्क् नहीं ंहैं। सत्त्व, रिस् और तमस्-ये तीन गुण प्रकृशत से उत्पन्न होते हैं। समस्त कमथ मन, प्राण, इम्भियााँ और भौशतक शरीर से उत्पन्न होते हैं।

सांख्य दशथन के अनुसार प्रकृशत और पुरुष न केवल शनत्य और अनाशद हैं प्रत्युत् एक-दूसरे से पृर्क् हैं और स्वयं सृशित हैं। वेदान्त दशथन के अनुसार प्रकृशत अर्वा माया ब्रह्म से उद्भूत है इसशलए न तो वह स्वयं सृशित है और न ही स्वतन्त्र है। माया पूणथ रूप से ईश्वर के वशीभूत है। माया उसका कारण शरीर है। माया उसकी भ्रामक शम्भक् है।

प्रकृशत और पुरुष ईश्वर के स्वभाव हैं। इन दोनों ंको अनाशद ाानो । शिसका कोई प्रारम्भ नहीं,ं आशद नहीं ं वह अनाशद है। क्यों ंशक ईश्वर शनत्य है उसकी दो प्रकृशतयााँ (प्रकृशत और आत्मा) भी शनत्य होनी चाशहए। (यह सांख्य दशथन का मत है।)

ईश्वर इन दो प्रकृशतयों ं(परा और अपरा प्रकृशत) को धारण करने वाला है शिसके ारा सृशष्ट का उद्भव, म्भस्र्शत और संहार होता है। इसीशलए वह स्वाशमत्व के गुणों ंसे युक् है और ब्रह्माण्ड पर राज्य करता है। इन प्रकृशतयों ंका आशद नहीं ंहै इसीशलए वे संसार का कारण हैं।

गौण प्रकृशत (अपरा प्रकृशत) अष्टधा है शिसका वणथन अध्याय VII के श्लोक ४ में है और अब अध्याय XIII श्लोक १९ में वशणथत है। मुख्य प्रकृशत अर्वा परा प्रकृशत शिसका वणथन अध्याय VII के श्लोक ५ में आ चुका है वही परा प्रकृशत अध्याय XIII के श्लोक १९ में पुरुष रूप में वशणथत है। यहाँ पुरुष का अशभप्राय िीवात्मा से है।

एक शशु भी मुस्कराता है और आह्लाशदत होता है तर्ा शोक, भय, क्रोध, सुख, दुख अनुभव करता है।
शकसने शसखाया उसे? इस िन्म के शुभाशुभ कमों के संस्कार इनका कारण नहीं ंहो सकते। पूवथ िन्म के संस्कार ही इनका कारण हो सकते हैं। उन संस्कारों ंका कोई आधार भी होना चाशहए। इसी से िीवात्मा के पूवथ िन्म में अम्भस्तत्व का स्पष्ट अनुमान लगाया िा सकता है और यह भी स्पष्ट है शक आत्मा अनाशद है। यशद आप यह स्वीकार नहीं ंकरते शक िीवात्मा अनाशद है तो दो दोष समक्ष आते हैं, एक तो कृतनाश (शकये कमाँ की फल-प्राम्भप्त न होना) और दूसरा अकृताभ्यागम (कारण रशहत पररणाम)। शुभाशुभ कमों के पररणाम सुख और दु:ख शबना अनुभव शकए ही समाप्त हो िायेंगे। यह कृतनाश का दोष है। इसी प्रकार पहले न शकये हुए शुभाशुभ कमों के पररणाम सुख और दु:ख भी भोगने पड़ेंगे। वह अकृताभ्यागम के दोष हैं। इन दो दोषों ंका शनवारण करने के शलए यह स्वीकार करना पड़ेगा शक िीवात्मा अनाशद है। शास्त्र भी उच्स्वर से घोष करते हैं शक आत्मा अनाशद है।

कायमकारणकतृमत्वे ितुः प्रकृडतरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोकृतृत्वे ितुरुच्यते ।।२० ।।

बिर्थम : कायथकारणकतृथत्वे-कायथ और कारण को उत्पन्न करने में, हेतु-कारण, प्रकृशत-प्रकृशत, उच्यते-कही िाती है, पुरुष-पुरुष, सुखदु खानाम् -सुख-दु:ख का, भोकृत्वे-भोगने में, हेतुः-कारण, उच्यते-कहा िाता है।

अनुवाद : कायथ और कारण को उत्पन्न करने में प्रकृशत को हेतु माना िाता है और सुख-दु:ख की अनुभूशत में पुरुष को अर्ाथत् िीवात्मा को हेतु कहा िाता है।

व्याख्या : सुख और दु:ख शुभ और अशुभ कमों के पररणाम हैं। इच्छाशम्भक् मन को प्रेररत करती है और मन उस शवषय की प्राम्भप्त हेतु इम्भियों ंको प्रेररत करता है। अच्छे और बुरे कमथ प्रकृशत से प्रारम्भ होते हैं और सुख-दु:ख का
कारण बनते हैं। बुरे कमथ दु:ख और शोक को िन्म देते हैं। अच्छे कमथ प्रसन्नता और सुख देने वाले होते हैं। आत्मा भोक्ा है। पत्नी कायथ करती है, अच्छा स्वाशदष्ट भोिन तैयार करती है और पशतदेव उसके पररश्रम के फल का चुपचाप आनन्द लेता है। वह शान्त बैठ कर भोिन ग्रहण करता और मन की पूणथ सन्तुशष्ट करता है। इसी प्रकार प्रकृशत कायथ करती है और िीवात्मा उसके पररणाम का फल सुख-दु:ख रूप में भोगता है।
बि सत्त्व प्रधान हो तो अच्छे कमथ शकये िाते हैं। रिस् प्रधान हो तो अच्छे-बुरे दोनों ंकमथ होते हैं। तमस् प्रधान होने पर पाशपष्ठ, शनयम शवरुद्ध और अधमथ कमथ होते हैं। कहीं–कहीं ंकारण (cause) के स्र्ान पर करण (instrument) शब्द का प्रयोग हुआ है। करण के भाव में-पाँच ज्ञानेम्भियाँ, पाँच कमेम्भियाँ, बुम्भद्ध, अहंकार और मन को करण माना गया है।

कायथ-पररणाम अर्ाथत् भौशतक शरीर । पंच महाभूत िो शरीर का शनमाथण करते हैं, पाँच इम्भियाँ िो इम्भिय-शवषयों ंका शनमाथण करती हैं और िो प्रकृशत से उत्पन्न हैं, 'कायथ' की श्रेणी में आते हैं। (ये हैं-आकाश, वायु, अशग्न, िल, पृथ्वी तर्ा शब्द, स्पशथ, रूप, रस, गन्ध) ये सब कायथ रूप हैं।

शरीर की रचना में, इम्भियाँ और उनकी संवेदनाओं ंमें कारण रूप प्रकृशत है। इस प्रकार संसार का कारण रूप प्रकृशत है।

ईख कारण है, ईख का रस और शकथरा ईख के शवकार हैं। दुग्ध कारण है। दही, मक्खन और घृत दुग्ध के शवकार रूप हैं। ि◌ो भी शकसी वसुतु शवशेष का शवकार होता है उसे कायथ की संज्ञा दी ि◌ाती है। शिससे शवकार उत्पन्न
होते हैं वह उनका कारण है। प्रकृशत समस्त शवकारों ◌ंका स्रोत अर्वा कारण है। वह हर वसुतु उत्पन्न करती है। दस इम्भियााँ, मन और इम्भियों ◌ंके पााँच शवषय अर्ाथत् पंच तन्मात्रायें-ये सब १६ शवकृशतयााँ अर्वा कायथ हैं।

महत् (बुम्भद्ध) मूल प्रकृशत से उत्पन्न होती है। महत् से अहंकार की उत्पशत्त होती है। महत् मूल-प्रकृशत का कायथ और अहंकार का कारण है। इस शलए महत् को प्रकृशत-शवकृशत कहते हैं। महत्, अहंकार और पााँच तन्मात्रा-ये सात प्रकृशत-शवकृशत हैं। इनमें से प्रते्येक अपने से पूवथ का शवकार (कायथ) हैं। और अपर का कारण। पााँच तन्मात्रायें पााँच स्रूल भूतों ◌ंको ि◌न्म देती हैं। वे सूक्ष्म तत्त्व हैं। ये सात प्रकृशत और शवकृशत दोनों ◌ंहैं, कारण भी हैं और कायथ भी और 'कारण' के अन्तगथत इनकी गणना की ि◌ाती है।

इम्भियााँ, मन, बुम्भद्ध, प्राण और शरीर की शक्रयाओं ◌ंका शुद्धात्मा पर अध्यास शकया ि◌ाता है। इसीशलए अज्ञानी मनुष्य कहता है-मैं श्याम वणथ हैं, मैं स्रूलकाय (मोटा) हाँ, मैं भूखा हाँ, मैं प्यासा हाँ, मैं बहरा हाँ, मैं अन्धा हाँ, मैं 'अमुक' का पुत्र हाँ, मैं ि◌नता vec xi_{2} मैं कताथ हाँ, मैं भोक्ा हाँ आशद आशद।

शचत्त अत्यन्त सूक्ष्म है और यह सूक्ष्म आत्मा के अत्यन्त शनकट है। आत्मा की चेतना का शचत्त में प्रशतशबम्ब पड़ता है चेतना का शचदाभास होने के कारण शचत्त चेतना का अनुभव करता है और वृशत्त ि◌ाग्रत होती है- "मैं चैतन्य हाँ, शुद्ध चेतन स्वरूप हाँ। मैं सुख-दुःख का अनुभव करता हाँ।" शुद्ध आत्मा के गुण शचत्त पर आरोशपत हो िाते हैं। प्रकृशत और पुरुष में तर्ा शचत्त और आत्मा में परस्पर अध्यारोपण होता है अर्ाथत् शचत्त की चेतना उसमें चेतन पुरुष का प्रशतशबम्ब पड़ने से है। ि◌ब शचत्त में बाह्य वसुतुएाँ और चेतन पुरुष- इन दोनों ◌ंका प्रशतशबम्ब पड़ता है उस समय पुरुष शचत्त की वृशत्तयों ◌ंके रूप में तद्रूप सा भासता है। यही संसार का कारण है।

पुरुष, ि◌ीव, क्ेषेत्रज्ञ और भोक्ा सब पयाथयवाची शब्द हैं। पुरुष, शिसका वणथन यहााँ है, वह परमात्मा नहीं ◌ं है। वह बद्ध-आत्मा है, वह आत्मा ि◌ो सुख - दुख भोगने और ि◌न्म-मरण के शलए बाध्य है, शववश है। परमात्मा तो संसार से सदा मुक् और शनशवथकार है।

प्रकृशत और पुरुष संसार का कारण हैं। प्रकृशत से शरीर, मन, इम्भिय, प्राण और बुम्भद्ध का उद्भव होता है। आत्मा सुख-दुःख भोगता है। संसार ही दुःख-सुख का अनुभव है। आत्मा संसारी है। वह सुख-दुःख की अनुभूशत लेता है। (शनरूपण-XV.9)

पुरुषः प्रकृडतथर्थो डि भुङ्क्क्ते प्रकृडतजान्बगुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योडनजन्मसु ।।२१ ।।

बिा्र्थम : पुरुषः पुरुष, प्रकृशतस्ः -प्रकृशत में म्भस्र्त, शह-शनशश्चत रूप से, भुङ्क्े-भोग करता है, प्रकृशतान् -प्रकृशत से उत्पन्न, गुणान् गुणों ◌ंको, कारणम् कारावया मैं ि◌ब गुणों ◌ंमें अनुराण, अस्य- इसकी, सदसद्योशनिन्मसुको, शुभ-अशुभ ि◌न्म।

अनुवाद : प्रकृशत में म्भस्र्त पुरुष ही शनशश्चत रूप से प्रकृशत से उत्पन्न गुणों ◌ंका भोग करता है। इन गुणों ◌ंमें अनुराग (आसम्भक्) ही अच्छी-बुरी यौशनयों ◌ंमें ि◌न्म लेने का कारण है।

व्याख्या : प्रकृशत में म्भस्त िीवात्मा, प्रकृशत के गुणों ंिारा कमथशील होता है और सुख, दु:ख, भ्राम्भन्त का अनुभव
करता है। वह सोचता है- "मैं प्रसन्न हाँ। मैं शोकग्रस्त हाँ। मैं भ्रम में हाँ। मैं बुम्भद्धमान् हाँ।" इस प्रकार वह स्वयं को गुणों ंके सार् तिूप कर लेता है, व्यम्भक् भाव को प्राप्त होता है तर्ा पशवत्र, अपशवत्र योशनयों ंमें िन्म लेता है। शरीर, मन और इम्भियों ंके माध्यम से िीवात्मा शवषयों ंको भोग कर भोक्ा बन िाता है। ब्ह्म मौन साक्षी है और अभोक्ा
है। सुख, दु:ख, भ्राम्भन्त आशद गुणों ंसे िीवात्मा की आसम्भक् ही इसके िन्म का मुख्य कारण है। यशद श्लोक के उत्तराद्धथ में संसार शब्द को रख शदया िाये तो अर्थ होगा-गुणों ंमें आसम्भक् ही अच्छी-बुरी योशनयों ंमें िन्म का कारण है और योशन से अर्थ अच्छी योशन देव आशद की है। असत् योशन अर्वा बुरी योशन शनकृष्ट पशु आशद की है। मानव योशन शमशश्रत कमों के कारण सत् भी है और असत् भी अर्ाथत् अच्छी भी है और बुरी भी है।

पुरुषः प्रकृशतस्र्: िीवात्मा िो प्रकृशत में म्भस्त है। यह अशवद्या है। प्रकृशत के गुणों ंमें आसम्भक् काम है। अशवद्या और काम संसार का कारण हैं।

ज्ञान और वैराग्य अशवद्या और काम को नष्ट करते हैं। (शनरूपण -XIV.5; XV.7)

उपद्रष्टाऽनुमता च भताम भोक्ता मिेश्वरः ।
परमािेडत चाप्युक्तो दिेऽन्द्रस्मनुपुरुषः परः ।।२२ ।।

शब्ार्थम : उपिष्टा साक्षी (िष्टा), अनुमन्ता-अनुमशत देने वाला, चऔर, भताथ-पालन करने वाला, भोक्ा-भोग करने वाला, महेश्वरः- महेश्वर, परमात्मा-परमात्मा, इशत-इस प्रकार, च-और, अशप-भी, उक्:-कहा िाता है, देहे देह में, अम्भस्मन्-इस, पुरुषः-पुरुष, परः परम।

अनुवाद : इस शरीर में म्भस्त परम पुरुष साक्षी िष्टा, अनुमन्ता (अनुमशत देने वाला अर्वा सन्मशत देने वाला), भताथ (पोषक), भोक्ा, महेश्वर और परमात्मा नाम से अशभशहत है।

व्याख्या : उपिष्टा िष्टा, साक्षी, देखने वाला, शकनारे ख़िा हुआ, पास बैठा हुआ। यशज्ञय अनुष्ठान करने के शलए िब पुरोशहत और यिमान आसन ग्रहण करते हैं तो एक अनुभवी शविान् भी उनके समीप आसनस् होता है शिसे इन शक्रयाओं ंका पूणथ ज्ञान और अनुभव होता है। वह यज्ञ में भाग नहीं ंलेता प्रत्युत् मौन िष्टा बन कर बैठता है। आवश्यकता प़िने पर वह उनका पर्-प्रदशथन करता है। उनके दोष दूर कर के उन्ें उशचत बात कहता है। इसी प्रकार परमात्मा शक्रया नहीं ंकरता। मन, बुम्भद्ध, शरीर की शक्रयाओं ंमें वह भाग नहीं ंलेता । वह उनसे सवथर्ा पृर्क् है। वह उनकी शक्रयाओं ंका मौन साक्षी है। वह प्रकृशत के समीप रहता है और उसके शक्रया कलापों ंपर दृशष्ट रखता है।

इसकी व्याख्या दूसरे ढंग से भी की िा सकती है। शरीर, नेत्र, मन, बुम्भद्ध और आत्मा िष्टा हैं। इनमें शरीर सवाथशधक बाह्य िष्टा है िबशक आत्मा सवाथशधक अन्तस्तम और शनकटतम िष्टा है। आत्मा से परे अन्य कोई अन्तिथष्टश नहीं ंहै।

अनुमन्ता-अनुमशत देने वाला। परमात्मा संमशत देता है। यह इम्भियााँ, मन, बुम्भद्ध िारा कृत कमों को अनुज्ञा अर्वा सनुतुशष्ट प्रदान करता है। रािा की अनुमशत शमलने पर प्राइम शमशनस्टर (मुख्य मंत्री) और अन्य आशफसर (कायथकताथ) कायथ करते हैं। इसी प्रकार परमात्मा आज्ञा देता है और इम्भियााँ, मन, बुम्भद्ध अपने-अपने कायथ करते हैं।

प्रतीशत तो यह होती है शक वह परम पुरुष भी कायथ रत है अर्वा उनकी सहायता में लगा है शकनु्तु क्योंशंक वह तो केवल साक्षी ि्रष्टा है अतः इम्भिय-मन-बुम्भद्ध के कायों में नहीं ंआता।

भताथ-पोषक । पशत शिस प्रकार अपनी पत्नी को सहारा देता है उसी प्रकार शरीर, मन, बुम्भद्ध, प्राण और इम्भियों ंको आत्मा सहारा देता है, यह उनसे पृर्क् है उसी प्रकार िैसे शपता अपने बिों ंका पालन करता है और उनसे पृर्क् है।

भोक्ा-भोग करने वाला । आत्मा िो शाश्वत और चैतन्य स्वरूप है। उष्णता शिस प्रकार अशग्न का नैसशगथक गुण है उसी प्रकार शनत्य चैतन्यता आत्मा का समवायी गुण है। मन की समस्त अवस्ायें-सुख दुःख, भ्रम आशद चेतन आत्मा से आच्छाशदत और ज्योशतत रहती हैं। शिस प्रकार भोिन ग्रहण करने वाला गोशवन्दन भोिन से पृर्क् है उसी प्रकार आत्मा, इम्भिय, मन और बुम्भद्ध से पृर्क् है शकनु्तु सुख-दुःख आशद प्रतीशतयों ंसे ग्रस्त हुआ सा प्रतीत होने के कारण चेतन आत्मा को भोक्ा कहा िाता है।

महेश्वर-महान् प्रभु । सब का आत्मा, सार तत्त्व और सब से स्वतन्त्र होने से वह महेश्वर है। आकाश बहुत शवशाल है। महेश्वर आकाश से भी शवशाल है और इसीशलए महेश्वर अशभशहत है। शिस प्रकार सम्राट अपनी प्रिा से पृर्क् होता है उसी प्रकार आत्मा प्रकृशत, उसके कायों और शवकारों ंसे सवथर्ा पृर्क् है।

परमात्मा-वह परम है क्योंशंक अव्यक् से लेकर भौशतक शरीर पयथन्त समस्त वसु्तओं ंमें श्रेष्ठ है शिसमें अज्ञानवश आत्मा का अध्यारोपण शकया िाता है। चुम्बक के समक्ष लौह खण्ड की भााँशत परमात्मा की शवद्यमानता में मन और बुम्भद्ध ि़ि होते हुए भी गशत करते हुए प्रतीत होते हैं। िैसे चिमा अपना प्रकाश सूयथ से लेता है उसकी प्रकार मन और बुम्भद्ध परमात्मा से प्रकाश ग्रहण करते हैं। परमात्मा स्वयं प्रकाश है, ज्योशत स्वरूप है, मन और बुम्भद्ध में अपना प्रकाश नहीं ंहै। वेदों ंमें भी उसे परमात्मा कहा गया है। अध्याय XV के श्लोक १७ में भगवान् कृष्ण कहते हैं- "शकनु्तु उत्तम पुरुष तो अन्य ही है शिसे परमात्मा कहा िाता है" "तुम भी मुझे सब क्षेत्रों ंमें क्षेत्रज्ञ िानो।" ऐसा भगवान् ने शवस्तार से उपदेश शदया है और यह शवषय यहााँ समाप्त होता है।

य एवं वेडत्त पुरुषं प्रकृडतं च गुणैः सि ।
सवमर्था वतमानोऽडप न स भूयोऽडभजायते ।। २३ ।।

शब्दार्थ: यः-िो, एवम् इस प्रकार, वेशत्त-िानता है, पुरुषम् -पुरुष को, प्रकृशतम् -प्रकृशत को, च-और, गुणैः-गुणों ंके, सह-सार्, सवथर्ा-सब प्रकार से, वतथमान रहता हुआ, अशप-भी, न-नहीं,ं स-वह, भूय-पुन, अशभायते िन्म लेता है।

अनुवाद : िो मनुष्य इस प्रकार पुरुष और गुणों ंसशहत प्रकृशत को िान लेता है वह कैसी भी अवस्ा में रहे, उसका पुनिथन्म नहीं ंहोता।

व्याख्या : गुणों ंसशहत प्रकृशत को और पुरुष को िानने वाला स्वयं को िन्म-मृतु्य के बन्धन से मुक् कर लेता है। चाहे वह िीवन की शकसी भी अवस्ा में कोई भी कायथ क्यों ंन करता हो । प्रकृशत और पुरुष के शववेकपूणथ ज्ञान का यही लाभ है। वह िानता है शक 'वह' शनत्य है, अपररवतथनशील है और िो भी पररवतथन होते हैं वे सब प्रकृशत के गुणों ंकी शवकृशत के कारण होते हैं। आत्मा शरीर के सार् एकत्व स्ाशपत कर के अशवद्या के कारण दुःखी होता है और पुनिथन्म के भंवर में फंस िाता है।

वह शकसी भी अवस्ा में हो, शकसी भी कायथ में शनयुक् हो-वे चाहे कतथव्य कमथ हों ंअर्वा शनशषद्ध कमथ, (िैसे इि ने पुरोशहत शवश्वरूप और अनेक संन्याशसयों ंकी शहंसा की), वह पुनः िन्म नहीं ंलेता क्योंशंक पुनिथन्म के

बिी रूप कमथ आत्म-ज्ञान से, पुरुष-प्रकृशत के ज्ञान से दग्ध हो चुके हैं, ज्ञानाशग्न ने उन कमों को भस्म कर शदया है। शिस प्रकार अशग्न में िले हुए बिी पुनः अंकुररत नहीं होते उसी प्रकार ज्ञानाशग्न में भस्मीभूत कमथ पुनः िन्म अर्वा शरीर प्रदान करने में शक्य नहीं होते। इस अवस्र्ा में उनकी म्भस्र्शत कमाथभास की होती है। वे प्रभावपूणथ कारण नहीं हैं और नया िन्म नहीं दे सकते। एक िला हुआ वस्त्र, वस्त्र का कायथ नहीं कर सकता।

फल की इच्छा से और अहंकारवश शकये गये कमथ पररणामदायी होंगें। एक शविान पुरुष अशवद्या, अहंकार और आसम्भक् के बीिों को ज्ञानाशग्न में भस्म कर देता है। इसीशलए उसका पुनिथन्म नहीं होता ।

वतथमान को िन्म दे कर शिन प्रारब्ध कमों ने अपना व्यापार पहले ही प्रारम्भ कर शदया है, वे नष्ट नहीं होते भले ही आत्मा के ज्ञान का सूयथ उदय हो आशाये । तरकस से शनकाल कर एक बाण िो लक्ष्य पर छोड़ा गया है। वह लक्ष्य अदन करने के उपरान्त भी शम्भक् समाप्त होने और धरा पर शगरने पयथन्त भोरयाशील रहता है। इसी भााँशत शरीर को स्वरूप देने वाले प्रारब्ध कमथ तब तक कायथरत रहते हैं िब तक समवाय शम्भक् पूणथ रूप से समाप्त नहीं हो िाती, इसी शरीर के माध्यम से ही चाहे शविान् पुरुष ने आत्म-ज्ञान क्यों न प्राप्त कर शलया हो, प्रारब्ध कमथ का फल तो उसे भोगना ही पड़ेगा। शकन्तु अवधारणा के योग्य तथ्य तो यह है वह शविान् पुरुष इससे शंकंशचत् मात्र भी प्रभाशवत नहीं होता क्यों शक उसने देह के सार् एकत्व स्र्ाशपत नहीं शकया है, वह तो ब्र्ह्म के सार् एक रूप हो गया है। शरीर में यशद कैंसर का िण भी हो िाये प्रारब्ध कमों के कारण, तो भी वह कदाशप व्याकुल नहीं होगा क्योंशंक वह देह-चेतना से ऊपर उठ चुका है और साक्षी बन कर स्वयं अपनी देह को देख रहा है। शकन्तु कोई देखने वाला राहगीर यह दोषपूणथ कल्पना करेगा शक मुक् संन्यासी भी सामान्य मनुष्य की भााँशत दुःख भोग रहा है। यह गम्भीर और कष्टप्रद भूल है। मुक्ात्मा के शवचार में न तो शरीर है और न ही प्रारब्ध कमथ है।

धनुष पर साधा हुआ बाण, िो अभी छोड़ा नहीं गया, वापस शलया िा सकता है, उसका प्रशतसंहरण हो सकता है। इसी प्रकार शिन कमों का पररणाम अर्वा प्रभाव अभी प्रारम्भ नहीं हुआ, वे आत्म ज्ञान िारा नष्ट शकये िा सकते हैं। अतः यह कहना उशचत ही है शक मोक्ष प्राम्भप्त के पश्चात् िन्म नहीं होता। शिस शरीर से आप्तकाम पुरुष ने आत्म-ज्ञान प्राप्त शकया वह नष्ट होने पर पुनः शरीर धारण नहीं करता । इस शरीर का कारण अशवद्या िब आत्म-ज्ञान से दूर हो िाती है तो अशवद्या का प्रभाव-दूसरा िन्म-वह भी नष्ट हो िाता है। साधारण मनुष्य िैसे शुभाशुभ कमों के कारण िन्म लेता है एक शविान् पुरुष ऐसे िन्म नहीं लेगा क्योंशंक आत्म-ज्ञान से उसके समस्त संशचत कमथ नष्ट हो िाते हैं। आत्म-ज्ञान प्राम्भप्त के पश्चात् शकये िा रहे उसके कमथ उसका स्पशथ भी नहीं कर सकते क्योंशंक वह इच्छा मुक् और अहंकार शून्य हो चुका है। (शनरूपण-XIII.32)

ध्यानेनिाडन पश्यन्द्रत केडचदिाानमिाना ।
अन्येसांख्येन योगेनकममयोगेनचापरे।।२४ ।।

बिार्थम : ध्यानेन-ध्यान के िारा, आत्मशन-आत्मा में, पश्यम्भन्त - देखते हैं, केशचत् कुछ, आत्मानम्-आत्मा को, आत्मना-आत्मा के िारा, अन्ये-अन्य, सांख्येन योगेन-सांख्य योग (ज्ञान योग) के िारा, कमथयोगेन कमथयोग के िारा, च-और, अपरे अन्य ।

अनुवाद : आत्मा में, आत्मा को, आत्मा के िारा कुछ (साधक) ध्यानयोग से देखते हैं, कुछ ज्ञान योग से और अन्य कमथयोग से देखते हैं।

व्याख्या : प्रत्येक व्यम्भक् के अपने स्वभाव और सामथ्यथ के अनुसार ज्ञान-प्राम्भप्त के अनेक पर् हैं। प्रर्म तो महशषथ पतञ्जशल का ध्यान योग का मागथ है। रियोगी आत्मा को (सूक्ष्म, तत्त्वदशी) बुम्भद्ध से पररमाशिथत हृदय में देखते हैं। तैलधारावत्, ध्यान, आत्म-सम्बद्ध शवचारों का अनवरत, अखण्ड प्रवाह है। ध्यान (एकाग्रता) के िारा कणथ आशद

इम्भियों ंको हृदय में संहत शकया िाता है। इम्भियों ंको उनके शवषयों ंकी ओर भागने से रोका िाता है। संहरण (प्रत्याहार) की प्रशक्रया से उन्हें पूणथतया वश में रखा िाता है, संयत शकया िाता है। तत्पश्चात् मन को ही आत्मा में सतत ध्यान के िारा आत्मा में प्रशतशष्ठत शकया िाता है। ध्यान से ही मन शुद्ध पशवत्र होता है। शुद्ध मन स्वभावतः आत्मा की ओर उन्मुख होगा। इम्भिय-शवषयों ंसे न तो यह आकृष्ट होता है और ही उनमें आसक् होता है।

सांख्य योग-यह ज्ञान योग है। साधक शवचारणा और आत्म शवश्लेषण के िारा स्वयं को प्रकृशत के तीन गुणों ंसे तीन शरीरों ंऔर पंच कोषों ंसे पृर्क् कर के साक्षी परमात्मा के सार् एकत्व प्राप्त करता है। वह शवचार करता और अनुभव भी करता है शक वह तीन गुणों ंसे अतीत है, मौन साक्षी है, अनासक् है, अकताथ है, अभोक्ा है, अमर है, अनश्वर है, स्वयंभू है, स्वयंप्रभा है, अखण्ड है, अिन्मा और अव्यय है।

कमथयोगी अपने कमथ और उनका फल प्रभु को समशपथत कर देता है। उसकी बुम्भद्ध ईश्वरापथण भाव से युक् होती है। इस भाव से मन में शुद्धता आती है और ज्ञानोदय होता है। मन की पशवत्रता से कमथयोग में, मन की एकाग्रता का शवकास होता है। इसी पशवत्रीकरण से मन आत्मा-परमात्मा के योग की ओर अग्रसर होता है इसीशलए इसे (कमथ को) भी योग की संज्ञा दी गई है।

सांख्य योग का अभ्यास करने वाले साधक सविो श्रेणी के हैं। ध्यान योग का अनुसरण करने वाले आध्याम्भत्मक साधक मध्यम श्रेणी के हैं और कमथयोग का अभ्यास करने वाले शनम्नतम श्रेणी के अन्तगथत आते हैं। आध्याम्भत्मक अभ्यास और कठोर साधना के िारा शनम्न और मध्यम श्रेणी के साधक शीघ्र ही उत्तम श्रेणी में आ िाते

51 (f7849-V.5;V1.46)

अन्ये त्वेवमजानतः शुरुत्वाऽन्येभ्य उपासते ।
तेऽडप चाडततरन्त्येव मृतुंयुं शुरुडतपरायणाः ।।२५ ।।

शब्दार्थ : अन्ये-अन्य, तु-शनश्चयेन, एवम् - इस प्रकार, अिानन्तःन िानते हुए, शुरुत्वा सुन कर, अन्येभ्यः दूसरों ंसे, उपासते-उपासना करते हैं, ते-वे, अशप भी, च और, अशततरम्भन्त-तर िा ते हैं, एव-ही, मृतुयुम् -मृतुयु को, शुरुशतपरायणा शुरुशतपरायण ।

अनुवाद : अन्य लोग भी इस का (योग का) ज्ञान न स्खाते हुए दूसरों ंसे श्रवण कर के उपासना करते हैं और वे शुरुशतपरायण लोग परमात्मा की शरण लेकर इस मत्यथ लोक hat H तर िाते हैं।

व्याख्या : ध्यान योग, ज्ञान योग और कमथयोग-ये तीन मागथ ज्ञान प्राम्भप्त के शलए पूवथ श्लोक में बताये गये हैं। इस श्लोक में उपासना योग का उपदेश शदया िा रहा है।

पूवथ श्लोक में वशणथत शवशधयों ंसे अनशभज्ञ लोग आध्याम्भत्मक गुरुिनों ंऔर शविानों ंसे उस महान् सत्य स्वरूप परमात्मा के शवषय में पूणथ शनष्ठा और अशवचल श्रद्धा से उपदेश श्रवण करते हैं। वे पूणथतया दूसरों ंके आशधकाररक उपदेश पर शनभथर करते हुए सतत स्मरण (िप) और ध्यान के िारा अमृतत्व की प्राम्भप्त करते हैं। वे अपने गुरु के प्रशत भम्भक्भाव रखते हैं। कुछ साधक साक्षात्कार प्राप्त ऋशषयों ंके ग्रन्थों ंका अध्ययन करते हैं, उनमें शलम्भखत उपदेशों ंको शनष्ठापूवथक ग्रहण कर के उनके अनुरूप िीवन यापन करते हैं। वे भी मृतुयु से तर िाते हैं। कोई शकसी भी मागथ का अनुसरण करे, अन्ततः आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर के िन्म-मृतुयु से तर कर मोक्ष की प्राम्भप्त करता है। शवशभन्न साधन युक् और शवशभन्न स्वभाव वालों ंके शलए उनके अनुरूप शवशभन्न मागथ हैं।

आत्म-ज्ञान से अपने अज्ञान और उसके प्रभावों ंसे स्वयं को मुक् करना संसार सागर से तरना है। यही अमृतत्व है, यही शनवाथण है, यही मृतुयु से तरना है।

यावत्सञ्जायते डकंडचत्सत्त्वं थर्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तडिन्द्रद्ध भरतषमभ ।। २६ ।।

बािर्थम : यावत् िो भी, सञ्जायते-उत्पन्न होता है, शंकंशचत् -कुछ भी, सत्त्वम् सत्त्व (अम्भस्तत्व), स्ावरिङ्गमम् -चर और अचर, क्षेत्रक्षेत्रसंयोगात् -क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से, तत्-वह, शवम्भद्धि–ानो, भरतषथभ - हे भरतवंशयों ंमें श्रेष्ठ
(अिुथन)।

अनुवाद : हे अिुथन, इस बात को िान लो शक स्ावर अर्वा िङ्गम कोई भी वसुतु कहीं ंभी उत्पन्न हुई है वह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न हुई है।

व्याख्या : हे अिुथन, संसार में स्ावरि–ङ्गम िो भी पदार्थ हैं उनें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग vec H उत्पन्न िानो ।

क्षेत्र को िानने वाले (क्षेत्रज्ञ) आकाश की भााँशत अखण्ड हैं। इसशलए क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का संयोग दो खण्डों ं के सम्पकथ से नहीं ंहो सकता िैसे िरम और म्भस्टक, रिु और पात्र आशद । क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का परस्पर सम्बन्ध कारण और कायथ का भी नहीं ंहै िैसे शसर और ग्रीवा, भिुा और कन्धा-इनका परस्पर संयोग अशवभाज्य है पुनरशप क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का संयोग इन सब से परे है, अतीत है, शवलक्षण है, अलौशकक है।

तो शफर क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का संयोग शकस प्रकार का है? यह संयोग एक मेरे पर अध्यारोपण का है अध्यास का है, भ्रम का है। यह गुणों ंसशहत एक का बरे में भ्राम्भन्त का संयोग है। रिु और सपथ, मुक्ा- शुम्भक् (मोती बनाने वाली अप) और चााँदी में शववेक के अभाव में भ्रम हो िाता है अर्ाथत् भ्रमवश मनुष्य अंधेरे में रिु को सााँप समझ बैठता है और िर िाता है। इसी प्रकार सूयथ के प्रकाश में उसे सीप में चााँदी का भ्रम हो िाता है। इसी प्रकार से आत्मा के गुणों ंका, अज्ञानी मनुष्य, शरीर में अध्यास कर लेता है अर्ाथत् शरीर को ही आत्मा मानने लगता है। िि शरीर को भ्राम्भन्त के कारण चेतन आत्मा मान कर प्रकृशत के शरीर की शक्रयाओं ंको मौन शनम्भिय आत्मा में शनशक्षप्त करता है। इस प्रकार के भ्रम का शनराकरण हो िाये यशद साधक आत्म-ज्ञान प्राप्त कर ले, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान प्राप्त कर ले, उन दोनों ंका भेद िान ले और वह क्षेत्रज्ञ से क्षेत्र को पृर्क् करने में इतना प्रवीण हो िाये िैसे मुंिमें से सींकं को मुंिघास से अलग शकया िाता है। िब वह िान लेता है शक ब्र्ह्म सब सीशमत उपाशधयों ंसे उसका अपना ही आत्म तत्त्व है और आभास मात्र है, वह सीप में चााँदी की भााँशत (आभास) है। वह आक् क्षेत्र तो वपशनक भवन (हवाई शकला) है अर्वा नगर है, स्वप्न में देखे गये दृश्य की शांशत है अर्वा एक िादूगर के िारा बनाये गये घोड़े, स्ान और वन आद की भााँशत है। ये समस्त भ्राम्भन्तयााँ दूर हो िायें और आत्म-ज्ञान हो िादे की न्मि-मरण के बन्धन से मुम्भक् शमलती है।

समं सवेषु भूतेषु डतितं परमेश्वरम् ।
डवनश्यत्स्वडवनश्यतं यः पश्यडत स पश्यडत ।।२७ ।।

बािर्थम : समम् -सम, सवेषु सब (में), भूतेषु-भूतों ं(प्राशणयों)ं में, शतष्ठन्तम्-म्भरूत, शनवास करते हुए, परमेश्वरम् - परमेश्वर को, शवनश्यतुसु - शवनाशशील में, अशवनश्यन्तम् - अशवनाशी को, यः- िो, पश्यशत-देखता है, सः- वह, पश्यशत-देखता है।

अनुवाद : ी मिनुष्य परमेश्वर को सब भूतों ंमें समभाव से म्भस्त और शवनाशशील िगत् में उस अशवनाशी को देखता है, वही यर्ार्थ देखता है।

व्याख्या : ो परमात्मा को ज्ञान-चकुषु से, ब्ह्मा से ले कर ीव िगत् के समस्त प्राशणयों ंमें शनवशसत देखता है और नश्वर पदार्ों के नष्ट होते हुए भी उनमें म्भस्त उस अशवनाशी परमात्मा के दशथन करता है वह आत्म-ज्ञानी कहलाता है।

शवशभन्न प्रकार की अशग्नयों ंमें उष्णता एक है। आभूषणों ंकी शवशभन्नता में स्वणथ एक है। पृर्क् पृर्क् दीपों ं से प्रकाश एक ही है। इसी प्रकार समस्त प्राशणयों ंमें आत्मा एक है। आत्मा सवथत्र समरूप है। चींटी, हार्ी, रािा, शभखारी, सन्त, और िाकू सब में आत्मा एक है।

आत्मा का शवनाश नहीं ंहोता। सब ीव िगत् के प्राणी शवनाश को प्राप्त होने वाले हैं। शरीर, मन, बुम्भद्ध, अव्यक् प्रकृशत और ीवात्मा-तुलना की ाये तो एक परमेश्वर ही है शिसकी यह सब माया है।

पररवतथन, शवकास, हास और मृतुयु आशद भाव-शवकारों ंका मूल कारण िन्म है।

परमात्मा एक है, अशवकारी है, अिन्मा है, अव्यय है और अमृत स्वरूप है। वह समस्त प्राशणयों ंमें एक चेतन है। वह यर्ार्थ देखता है ो इस प्रकार से वशणथत परमेश्वर को देखता है। वह ीवनुमुक् है। उसे क्षेत्रज्ञ का ज्ञान है, अमृत स्वरूप परमात्मा का ज्ञान है। वह वास्तशवक िष्टा अर्वा मुक्ात्मा है।

ज्ञानी ही वसुतुतः देखता है क्योंशंक वह ज्ञान से युक् है। सारा संसार अज्ञान वश शमथ्या दशथन ही करता है। शिसके नेत्र शतशमर रोग से दूशषत हों ंउसे अनेक चि शदखाई देंगे। वह गलत (अयर्ार्थ) देखता है। शकनुतु एक ही चि को देखने वाला सही (यर्ार्थ) देखता है। इसी प्रकार ो अमर, अखण्ड एक परमात्मा को सब प्राशणयों ंमें देखता है वह सत्य देखता है। केवल वही देखता है। अन्य लोग तो देखते हुए भी नहीं ंदेखते। उनकी दृशष्ट तो अनेक चिमा के दशथन करने वाले की भााँशत है। (शनरूपण-VIII.20)

समं पश्यन्द्रन्ह सवमत्र समवन्द्रथर्थतमीश्वरम् ।
न डिनस्त्यिनाऽऽनिं ततो याडत परां गडतम् ।।२८ ।।

बि्ार्थम : समम् -सम, पश्यन्-देखते हुए, शह-वसुतुतः, सवथत्र सवथत्र, समवम्भस्तम् -समान रूप से शवद्यमान, ईश्वरम्-ईश्वर को, न-नहीं,ं शहनम्भस्त-चोट पहुाँचाता है, आत्मना आत्मा से, आत्मानम्-आत्मा को, ततः-तब, याशत–ाता है, पराम् - उतूकृष्ट, सविो, गशतम् - गशत को ।

अनुवाद : क्योंशंक ो मनुष्य परमेश्वर को सवथत्र समान रूप से शवद्यमान देखता है वह आत्मा से आत्मा का हनन नहीं ंकरता, वह सविो पद (लक्ष्य), उत्तम गशत को प्राप्त करता है।

व्याख्या : यह आत्म-ज्ञान की दृशष्ट है। परमेश्वर सब रूपों ंमें शवद्यमान है। उससे पृर्क् कुछ नहीं।ं

एक अज्ञानी पुरुष अपनी देह, मनोशवकारों ंको ही आत्मा मान कर और सब प्राशणयों ंमें एक परमात्मा के दशथन न कर के, अपनी ही आत्मा को नष्ट करता है क्योंशंक वह भ्रम िाल में फंसा हुआ है। उसकी दृशष्ट दूशषत है। उसका मन अत्यन्त स्रूल है। वह सूक्ष्म आत्मा का शचन्तन भी नहीं ंकर सकता। वह अज्ञान के वशीभूत है। अपशवत्र

शरीर में वह पशवत्र आत्मा का अध्यास करता है। उसका ज्ञान अयर्ार्थ है, शववेक शून्य है। शकनु्तु ज्ञानी को आत्मा का ज्ञान होता है, सिा ज्ञान होता है और वह सवथत्र एक ईश्वर के दशथन करता है। अज्ञानी तो अपनी ही आत्मा का हनन करने वाला है। एक शरीर के नष्ट होने पर वह और-और शरीर धारण करता
रहता है। समिष्टा, आत्मा से आत्मा का करता। इसीशलए वह परम लक्ष्य, प्राम्भप्त करता है। आत्मा का ज्ञान मोक्षदायक है। परमात्मा का ज्ञान अमोल की पूणथ रूप से नष्ट कर देता है। अज्ञान और शमथ्या ज्ञान नष्ट हो ाियें तो सभी बुराइयााँ स्वतः ही नष्ट हो ाियें।

सब भूतों ंमें एकत्वदशी कभी आवागमन के चक्र में नहीं ंफंसते । वे तुयाथवस्र्ा को प्राप्त होते हैं िो ाग्रत, स्वप्न और सुषुम्भप्त अवस्र्ा से अन्य चतुर्थ अवस्र्ा है और िहााँ शब्द और रूप का अम्भस्तत्व नहीं ंहै। आत्मा ही सबका शमत्र (बनु्धु) है और आत्मा ही शतु्रु भी है। यह भाव पहले अध्याय VI के श्लोक ५,६ में आया है और यहााँ पुनरुम्भक् हुई है। (शनरूपण-XVIII.20)

प्रकृत्यैव च कमामडण डक्रयमाणाडन सवमिः ।
यः पश्यडत तर्थाऽऽनिमकतामरं स पश्यडत ।। २९ ।।

बि्ार्थम : प्रकृत्या-प्रकृशत के ारा, एव-ही, च-और, कमाथशण-कमथ, शक्रयमाणाशन-शकये ा रहे, सवथशः सब, यः-िो, पश्यशत-देखता है, तर्ा-वैसे ही, आत्मानम्-आत्मा को, अकताथरम्-अकताथ, सः- वह, पश्यशत-देखता है।

अनुवाद : वही देखता है िो यह देखता है शक समस्त कमथ पूणथ रूप से प्रकृशत के ारा शकये ा रहे हैं और आत्मा अकताथ है।

व्याख्या : समस्तचेष्टाओं ंके शलए प्रकृशत उत्तरदायी है। आत्मा कमथ से अतीत है। यह केवल साक्षी िष्टा है। ऐसा अनुभव करनेवालायर्ार्थतः ज्ञानी है।

यियिहान लेता है शक सारे कमथ िो कमेम्भियों ंऔर ज्ञानेम्भियों ंतर्ा मन-बुम्भद्ध से सम्पन्न हो रहे हैं उनमें प्रकृशत हेतुहैऔरआत्मा अकताथ है, वह वास्तव में देखता है। केवल वही देखता है। िो व्यम्भक् मूढ़ता वश इम्भिय-मन-बुम्भद्धसेएकीभाव कर लेता है और आत्मा को कताथ मानता है वह व्यम्भक् अशवद्या में पिा हुआ है। वह केवल चमथ चकु्षुओं ंसेदेखता है। उसके पास शदव्य ज्ञान का अन्तचथकु्षु नहीं ंहै। आकाश शनम्भिय रहता है शकनु्तु मेघ आकाश में गशतकरते हैं। इसी प्रकार आत्मा अकताथ है शकनु्तु प्रकृशत सब कुछ करती है। आत्मा में कोई सीशमत प्रशतबन्धक नहींहै।आकाश में िैसे कोई शवशभन्नता नहीं ंहै वैसे ही आत्मा एक है उसमें कोई शवशभन्नता नहीं ंहै। यह अशितीय समभावरूपी सार तत्त्व है। यह शकसी भी प्रकार के गुण, शवशेषण, लक्षण से अतीत है। (शनरूपण -

III.27, XIV.19, XVIII.16)

यदा भूतपृर्थग्भावमेकथर्थमनुपश्यडत ।
तत एव च डवस्तारं ब्रह्म सिद्यते तदा ।।३० ।।

बि्ार्थम : यदा–ब, भूतपृग्भावम् - भूतों ंका पृर्क्ा का भाव, एकस्म् - एक में म्भस्त, अनुपश्यशत-देखता है, तत-वहााँ से, एव-ही, च-और, शवस्तारम् शवस्तार को, ब्र्ह्म-ब्र्ह्म, सम्पद्यते (वह) हो ाता है, तदा तब ।

अनुवाद : शिस समय मनुष्य प्राशणयों ंके पार्थक्य भाव को एक में म्भस्त और उसी से शवस्तार को प्राप्त होते हुए देखता है तब वह ब्र्ह्म को प्राप्त होता है।

व्याख्या : अलौशकक ज्ञान िारा अनेक में एक को देखने वाला मनुष्य परब्र्ह्म से एकीभाव को प्राप्त होता है। िल में ऊशमथयााँ, पृथ्वी में अणु, सूयथ में शकरणें, शरीर में अवयव (अङ्ग), मन में शवचार, अशग्न में प्रसुफुम्भलंलंग (शचंगाररयााँ)
की भााँशत शनशश्चत रूप से समस्त रूप उस एक परमात्मा में बद्ध-मूल हैं। िब भी वह अपनी दृशष्ट परावृत करता है वह एक परमात्मा का ही दशथन करता है और आनन्द में रहता है।

बि वह भूतों ंकी शवशभन्नता गुरु और शास्त्रोपदेश के अनुरूप एक में बद्धमूल देखता है तब वह आत्म-ज्ञान की अनुभूशत से िान िाता है शक िो कुछ भी देख रहा है वह केवल आत्मा ही है इससे अन्य कुछ नहीं ंऔर उद्भव एवं शवस्तार केवल उसी एक (अशितीय) से है। छान्दोग्योपशनषद् ७.२६.१ में यही भाव एवंशवध वशणथत है -

आित: प्राण आित आिा आित: स्मर
आित आकाि आितस्तेेज आित आप:
आित आडवभामवडतरोभावाविातोऽम्ि् ।।

"(इस प्रकार देखने वाले शविान के शलए) आत्मा से प्राण, आत्मा से आशा, आत्मा से स्मृशत, आत्मा से आकाश, आत्मा से ति, आत्मा से िाये आशाला से आशवभाथव और शतरोभाव, आत्मा से अन्न-यह सब हो िातो िल,

अनाडदत्वाडिगुमणत्वात्परमािायमव्यय: ।
रिीरथर्थोऽडप कौतेय न करोडत न डलप्यते ।।३१ ।।

ि्ार्थम : अनाशदत्वात्-अनाशद होने से, शनगुथणत्वात् -शनगुथण होने से. अयम कान्यह, अव्यय: अशवनाशी, शरीरस्र्: हीरो याशन शलम होता हे। है कुन्ती पुत्र, न-नहीं,ं करोशत करता है, परमात्मा-परमात्मा, ३- नहीं,ं शलप्यते-शलप्त

अनुवाद : हे अिुथन, परमात्मा अनाशद, अव्यय और शनगुथण होने से सब प्राशणयों ंमें शवद्यमान होते हुए भी न तो कमथ करता है और न ही उसमें शलप्त होता है।

व्याख्या : परमात्मा प्रकृशत से परे है। इसशलए गुणों ंसे अतीत है। शनगुथण है। प्रकृशत में चेष्टा इसके अपने ही समवायी गुणों ंसे है। परमात्मा इस िीवात्मा के शरीर से पूवथ भी र्ा और इसके नष्ट होने के पश्चात् भी रहेगा। यह शाश्वत रूप से एक रस और अनश्वर है।

अव्यय:- आशवभाथव और शतरोभाव अर्वा िन्म-मरण से िो अतीत है। शिसका आशद है उसका अन्त भी है। उद्भव के उपरान्त वसुतु में पररणशत (शवकास, क्षय आशद) आती है। आत्मा िन्मरशहत होने से सब प्रकार के पररणामों ं(पररवतथन) से मुक् है अर्ाथत् इसमें उदय और क्षय (िन्म-मृतुयु) नहीं ंहोता, वृम्भद्ध और क्षय भी नहीं ंहोता और यह 'अम्भस्त', 'भाशत' के गुणों ंसे भी अतीत है। सब प्रकार की प्रशक्रयाओं ंसे स्वतन्त्र है इसशलए यह अव्यय है। लि में सूयथ का प्रशतशबम्ब भले ही गशत करता हुआ दृशष्टगोचर हो शकनुतु वास्तव में सूयथ गशत नहीं ंकरता। इसी प्रकार परब्र्ह्म कमथफल से असृपृष्ट रहता है क्योंशक यह कताथ नहीं ंहै, प्रकृशत के गुणों ंसे पररम्भच्छन्न भी नहीं ंहै, अशवभाज्य है, अखण्ड है, शनम्भिय है, अनाशद, अनासक् और कारण रशहत है।

परमात्मा तीन प्रकार के भेदों ंसे अतीत है अर्ाथत् -सिातीय भेद, शविातीय भेद और स्वगत भेद। एक आम का वृक्ष खिूर के वृक्ष से पृर्क् है, यह सिातीय भेद है। एक आम का वृक्ष पत्थर से पृर्क् है, यह शविातीय भेद है। उसी आम के वृक्ष के पत्तेे, फूल और फल पृर्क् पृर्क् हैं, यह स्वगत भेद है। शकनुतु परमात्मा अिैत है। कोई और ब्र्ह्म उसके समान नहीं ंहै। इसशलए ब्र्ह्म का सिातीय भेद नहीं ंहो सकता। यह संसार एक आभास

(प्रतीशत) है। यह हमारी कल्पना का भ्रम है। अज्ञानवश यह ब्र्ह्म पर अध्याशसत है। काल्पशनक पदार्थ का, अपना आलम्बन छिो़ कर अन्य कोई स्वतन्त्र अम्भस्तत्व नहीं ंहोता। िैसे रिु में सपथ का अपना स्वतन्त्र अम्भस्तत्व नहीं ंहै, वह अपने आलम्बन रिु में प्रभाशसत हो रहा है। इसशलए ब्र्ह्म में शवितीय भेद भी नहीं ंहो सकता। ब्र्ह्म अशवभाज्य है, भाग रशहत अव्यय है, गुणातीत है, रूप, रङ्ग, अङ्ग रशहत है अतः ब्र्ह्म में स्वगत भेद भी असम्भव है।

ब्र्ह्म अनाशद है। कारण रशहत है। स्वयंभू है। खण्ड रशहत है। गुण रशहत है। उपाशध रशहत है। अतः अमृत स्वरूप है। अनासक् होने से न कताथ है न भोक्ा है। ब्र्ह्म यशद कताथ और भोक्ा है तो वह ब्र्ह्म नहीं ंहै। शकसी भी प्रकार से यह हम सब से सवथश्रेष्ठ है। कतृथत्वभाव और भोकृ्भाव अज्ञान वश अहंकार में आरोशपत हैं। प्रकृशत ही कायथ करती है अर्वा गुण ही गुणों ंमें बरतते हैं। (शनरूपण-V.14, XV.9)

यर्था सवमगतं सौक्ष्म्म्यादाकिां नोपडलप्यते ।
सवमत्रावन्द्रथर्थतो दिे तर्थाऽऽिा नोपडलप्यते ।। ३२ ।।

बि्र्थम : यर्ा–िैसे, सवथगतम् -सवथव्याप्त, सौक्ष्म्म्यात् - सूक्ष्मता के कारण, आकाशम् आकाश, न-नहीं,ं उपशलप्यते-शलप्त होता है, सवथत्र सवथत्र, अवम्भस्र्त-म्भस्र्त, देहे-शरीर में, तर्ा-वैसे, आत्मा-आत्मा, ननहीं,ं उपशलप्यते-शलप्त होता है।

अनुवाद : सवथव्यापक आकाश शिस प्रकार से सूक्ष्मता के गुण के कारण शलप्त नहीं ंहोता उसी प्रकार आत्मा शरीर में सवथत्र होते हुए भी उसके गुणों ंसे शलप्त नहीं ंहोता।

व्याख्या : आकाश सवथत्र व्याप्त है। सवथस्व इसी में शवलीन होता है। ऐसा कोई कि-शबन्दु नहीं ंहै िहााँ से आकाश झांकता न हो और िहााँ व्याप्त न हो पुनरशप यह शकसी वसुतु से शलप्त नहीं ंहोता। इसी प्रकार आत्मा सारे शरीर में और पूणथ शवश्व में व्याप्त है। शरीर से सूक्ष्म होने के कारण यह न तो शरीर से न ही शकसी अन्य वसुतु से शलप्त होता है। यह अनासक् और कमथरशहत है। इसके कोई भाग (खण्ड) नहीं,ं कोई अवयव नहीं।ं यह सदा पावन और शनष्कलंक है।

यर्था प्रकियत्येकः कृत्स्नं लोकडममं रडवः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तर्था कृत्स्नं प्रकियडत भारत ।।३३ ।।

बि्र्थम : यर्ा- िैसे, प्रकाशयशत-प्रकाशत करता है, एक-एक, कृत्स्नम् -संपूणथ, लोकम् लोक को, इमम् यह, रशवः सूयथ, क्षेत्रम् एकः हो, क्षेत्री क्षेत्र का स्वामी, (परमात्मा), तर्ा वैसे ही, कृत्वनम् रामसेत करता है, भारत-हे' भरत वंशी (अिुथन)। प्रकाशयशत-प्रकाशत

अनुवाद : हे अिुथन, शिस प्रकार एक सूयथ समस्त ब्र्ह्माण्ड को प्रकाशत करता है उसी प्रकार परमात्मा, क्षेत्र का स्वामी, समूपूणथ क्षेत्र (शरीर) को प्रकाशत करता है।

व्याख्या : परमात्मा एक है। अव्यक् से लेकर तृण पयथन्त, 'पंच महाभूतों'ं के शमट्टी के ढेले से लेकर 'सत्त्व' और धृशत पयथन्त सब पदार्ों (प्रकृशत) को वह परमात्मा प्रकाशत करता है। शिस प्रकार सूयथ एक है, वह समूपूणथ ब्र्ह्माण्ड को आलोशकत करता है और स्वयं शनशलथप्त रहता है उसी प्रकार सब देहों ंमें आत्मा एक है, यह समस्त शरीरों ंको आलोशकत करता हुआ भी। स्वयं शुद्ध पशवत्र रहता है, शलप्त नहीं ंहोता।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमतरं ज्ञानचकुषुषा ।

भूतप्रकृडतमोक्ंषं च ये डवदुयामन्द्रत ते परम् ।।३४ ।।

बि्ाथ्म : क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः-क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के मध्य, एवम् - इस प्रकार, अन्तरम् -भेद को, ज्ञानचकुषुषा-ज्ञान चकुषु से, भूतप्रकृशतमोक्षम् - प्राशणयों ंका प्रकृशत से मोक्ष, च-और, ये–िो, शवदुः - िानते हैं, याम्भन्त-प्राप्त होते हैं, ते-वे, परम् - परमात्मा को ।

अनुवाद : िो लोग ज्ञान चकुषु के िारा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का अन्तर और प्रकृशत से िीवात्मा की मुम्भक् को िान लेते हैं वे सविो परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : शास्त्रों ंके अध्ययन और गुरु के उपदेश तऱ् ध्यानाभ्यास से खुले ज्ञान चकुषु के िारा िो यह िान लेते हैं शक क्षेत्र ि़ि है, कताथ है, पररणामी (पररवतथनशील) है और प्रमेय (पररशमत) है और क्षेत्रज्ञ (आत्मा) शुद्ध चेतन स्वरूप है, अकताथ है, अव्यय है, अप्रमेय है तऱ् प्राणी का (अम्भस्तत्व का) उपादान कारण अव्यक्, अशवद्या, प्रकृशत का असत् भाव है और इन सब का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं वे परम तत्त्व परमात्मा को प्राप्त होते हैं। आत्म साक्षात्कार से वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं, माया िाल और अशवद्या के चंगुल से पूणथ रूप से मुक् हो िाते हैं।

सांख्य दशथन के अनुसार बन्धन और मोक्ष आत्मा में नहीं ंहोते क्योंशंक यह सवथदा शवरक् है, अकताथ है, अभोक्ा है और अवयव रशहत अखण्ड है। प्रकृशत के सार् संयोगवश अध्यारोपण के िारा यह आत्मा कतृथत्वभाव को प्राप्त होता है। आत्म-ज्ञान से िब अशवद्या का शवनाश हो िाता है तब आत्मा से संयुक् प्रकृशत मुक् हो िाती है। तब आत्मा के समक्ष उसका नृत्य अर्वा क्रि़िा समाप्त हो िाते हैं। पुरुष के भोग और अपवगथ के शलए प्रकृशत ने िो कायथ करना ऱ् वह अब शनःशेष हुआ। इसीशलए सांख्यवादी घोषणा करते हैं शक बन्ध और मोक्ष प्रकृशत की ही अवस्ऱ्यें हैं। कुछ इस प्रकार व्याख्या करते हैं शक | प्रकृशत के चंगुल से और शवकारों ंसे आत्मा को मुक् शकया िाता है।

(इस अध्याय को प्रकृशत-पुरुष-शवभाग-योग भी कहा िाता है)।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषत्सु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
क्षेत्रक्षेत्रज्ञडवभागयोगो नाम त्रयोदिोऽध्यायः ।।१३ ।।
।। इडत क्षेत्रक्षेत्रज्ञडवभागयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर् चतुदथशोऽध्यायः
गुणत्रयशवभागयोगः

श्री भगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्याडम ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सवे परां डसन्द्रद्धडमतो गताः ।।१ ।।

बि्ाथम : परम् -परम, भूयः-पुनः, प्रवक्ष्याशम कहाँगा, ज्ञानानाम् - सब ज्ञानों ्में, ज्ञानम् ज्ञान, उत्तमम् - उत्तम, यत्-ि, ज्ञात्वा–ान कर, मुनयः मुशन ्न, सवे सब, पराम् -परम, शसम्भद्धम् -पूणथत्व को, इतः- यहााँ से (इहलोक से), गताः - प्राप्त हो गये।

श्री भगवान् ने का

अनुवाद : सब प्रकार के ज्ञान में उत्तम ज्ञान को अब मैं पुनः (तुमसे) कहाँगा शिसे ्ान कर समस्त मुशन ्न इस िविन के उपरान्त पूणथत्व को प्राप्त हुए हैं।

व्याख्या : के्षेत्र का आगे का वणथन इस अध्याय में शदया गया है।

अध्याय XIII के श्लोक २१ में यह उपदेश शकया गया है शक शुभाशुभ योशनयों ्में संसार में ्न्म लेने का मूल कारण आसम्भक् है। इस अध्याय में भगवान् कशतपय प्रश्नों ्के उत्तर देते हैं, वे प्रश्न इस प्रकार हैं-प्रकृशत के गुण

क्या है? वे मनुष्य को बन्धन में कैसे ालते हैं? इन गुणों ंकी शवशेषतायें क्या हैं वह शकस प्रकार व्यापार (चेष्टा) करते हैं? उन से मोक्ष कैसे सम्भव है? ीवनुमुक् की शवशेषतायें क्या हैं?

अध्याय XIII के श्लोक ७ से १० में सब ज्ञानों ंका कहीं ंवणथन नहीं ंहै शकनुतु यह यज्ञाशद से सम्बद्ध ज्ञान का उपदेश है। यज्ञाशद का ज्ञान मोक्षप्रद नहीं ंहै। शकनुतु इस अध्याय में ो ज्ञान शदया ायेगा वह शनशश्चत रूप से मोक्ष प्रदान कराने वाला है। भगवान् इस ज्ञान को 'परम' और 'उत्तम' शब्दों ंसे अशभशहत करते हैं। अुिथन को तर्ा अन्य साधकगण को उते्प्रेररत करने के भाव से ऐसा भगवान् ने कहा ।

इस परम ज्ञान की प्राम्भप्त पर मुशनिनों ंने (शिन्ोंनें मनन शकया) इस शरीर को त्यागने के उपरान्त मोक्ष प्राप्त शकया।

इतः इस ीवन के उपरान्त । देह बन्धन से मुक् होने पर।

इदं ज्ञानमुपाडश्रत्य मम साधम्यमागताः ।
सगेऽडप नोपजायते प्रलये न व्यर्थन्द्रत च ।।२ ।।

बि्र्थम : इदम् - इस, ज्ञानम्-ज्ञान, उपाशश्रत्य-शरण में आकर, मम-मेरे, साधम्यथम् - एकत्व, आगताः- आ गये (प्राप्त शकया), सगे-सृशष्ट के समय, अशप-भी, न -नहीं,ं उपायन्ते-उत्पन्न नहीं ंहोते, प्रलये-प्रलय काल में, न-नहीं,ं व्यर्म्भन्त-व्याकुल होते हैं, च-और।

अनुवाद : इस ज्ञान में आशश्रत मनुष्यों ंने मेरे सार् एकत्व प्राप्त कर शलया है। न तो सृशष्ट के उद्भव काल में वे िन्म लेते हैं और न ही प्रलय काल में व्याकुल होते हैं।

व्याख्या : इस ज्ञान का आश्रय लेकर मुशनिन मेरी ही प्रकृशत को अर्ाथत् मेरे सारूप्य-धमथ को प्राप्त होते हैं। वे मेरे भाव को प्राप्त हुए हैं। उन्ोंनें मेरे सार् एकत्व स्ाशपत कर शलया है। वे 'अहम्' और 'त्वम्' का शवचार त्याग कर मुझ में शनवास करते हैं तर्ा संसार चक्र को पार कर ाते हैं। उनके शलए सृशष्ट और प्रलय का कोई भाव नहीं ंरह ाता। मुझे प्राप्त कर के वे अमरत्व, शनत्यता और पूणथता को प्राप्त होते हैं। समुशचत साधनों ंिारा आत्म ज्ञानी ज्ञान प्राप्त कर के मुझमें एकीभाव हो कर न तो सृशष्ट के आशद में िन्म लेते हैं न प्रलय में शवनष्ट होते हैं। इस श्लोक में भगवान् ने आत्म-ज्ञान की प्रशंसा की है।

मम योडनममिद्ब्रह्म तन्द्रस्मिार्ंथं दधाम्यिम् ।
संभवः सवमभूतानां ततो भवडत भारत ।।३ ।।

बि्र्थम : मम-मेरी, योशनः-योशन (गभथ), महत् -महान, ब्र्ह्म-ब्र्ह्म, तम्भस्मन् - उसमें, गभथम् बिी, दधाशम-धारण करता हाँ, अहंम -मैं , संभवः- िन्म, सवथभूतानाम् -सब प्राशणयों ंका, ततः- वहााँ से, भवशत होता है, भारत-हे भरतवंशी अुिथन ।

अनुवाद : महत् ब्र्ह्म, हे अुिथन, मेरी योशन है, उसमें मैं बिी धारण करता हाँ ो समस्त प्राणी समुदाय को िन्म देने वाला है।

व्याख्या : मेरा गभथ महत् प्रकृशत है। उस (परमात्मा) की प्रकृशत से शवश्व का उद्भव होता है 'प्रकृशत' को महत् ब्ह्म कहते हैं क्योंशंक वह वैशश्वक मन और पााँच सूक्ष्म भूतों ंका आश्रय स्थल है। उसी अप्रकट से, सृशष्ट प्रकट होती है इसीशलए उसे महत् ब्ह्म कहते हैं।

इसी महत् प्रकृशत से समस्त शवकार उत्पन्न होते हैं। अतः इसे मूलप्रकृशत कहते हैं। अप्रकट होने से अव्यक् कहते हैं। वेदान्ती उसे माया कहते हैं। सांख्यवादी उसे प्रकृशत कहते हैं।

यह प्रकृशत महत् कही िाती है क्योंशंक यह अपने सब कायों (प्रभावों)ं से महती है। तीन गुणों ंसे युक् यह प्रकृशत सब भूतों ंकी उपादान कारण है। अपने समस्त शवकारों ंका स्रोत और अपनी शम्भक् के िारा उन शवकारों ं को म्भस्थशत प्रदान करने के कारण इसे ब्ह्म कहते हैं।

मैं इस महद्ब्रह्म में िीवन का बीि िालता हााँ तब सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। महद्ब्रह्म (प्रकृशत) में मैं शहरण्यगभथ का बीि शनक्षेप करता हााँ िो समस्त प्राशणयों ंको और वस्तुओं ंको रूप प्रदान करता है। शहरण्यगभथ अथवा ब्ह्मा (सृशष्टकताथ) का उद्भव प्राशणयों ंको अम्भस्तत्व प्रदान करता है। मूल प्रकृशत मानो शमट्टी के समान है। वह स्वयं से रूप प्रकट करने में असमर्थ है। प्रकृशत से ब्ह्मा का उद्भव होता है िो शत्रगुणात्मक प्रकृशत से सृशष्ट की उसी प्रकार रचना करते हैं िैसे एक कुम्हार शमट्टी का पात्र बनाता है। मैं अपरा और परा, दो शम्भक्यों ंसे युक् हााँ (VII.4.5.), क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ (आत्मा और प्रकृशत) का मैं संयोग करता हााँ। व्यशष्ट आत्मा अशवद्या, काम और कमथ के सीशमत प्रशतबन्धों ंसे प्रभाशवत होती है। अशवद्या के कारण िीवात्मा अपनी मूल शदव्य प्रकृशत को भूल िाता है और काम तथा कमथ के िाल में फंस कर िन्म-मृत्यु के चक्र में भ्रमण करता है। िीवात्मा अपनी वास्तशवक शदव्य प्रकृशत से अनशभज्ञ होने के कारण अशवद्या की ओर अशभमुख होता है। अशवद्या और प्रकृशत के शवकारों ंसे अशभभूत हो कर िीवात्मा अपनी पूवथ पशवत्रता को भूल कर शवशभन्न रूपों ंमें भ्रमण करता रहता है (अथाथत् िन्म-मरण के चक्र में फंस कर पृथक् पृथक् योशनयों ंके रूप धारण करता है)।

अव्यक् प्रकृशत अशमत शम्भक्यों ंका अन्धकारपूणथ गभथ है। यह कोई द्रव्य नहीं ंहै। ध्वशन और शम्भक् अव्यक् रूप में इसमें शनशहत हैं। महाप्रलयकाल में सम्पूणथ ब्ह्माण्ड इसी में शवलीन होता है। इस (प्रकृशत) के तीन गुणों ंके मध्य द्रव्य अथवा गुण का कोई सम्बन्ध नहीं ंहै। तैरैत साम्यावस्था में (तीन गुणों ंकी साम्यावस्था) गुण ही मूल प्रकृशत हैं और मूल प्रकृशत ही गुण है।

इस शत्रगुणात्मक िगत् की तुलना एक बटी हुई रस्सी से की गई है शिसके तीन वणथ हैं—साम्भत्त्वक-श्वेत वणथ है, राशसक-रक् वणथ है और तमस् श्याम वणथ है। प्रकट (व्यक्) िगत् में यह तीन गुण साम्यावस्था में नहीं ंहोते।

िल और बीि का पृथ्वी के साथ संयोग होने पर बीि अंकुररत होता है िो वृक्ष का रूप धारण करता है। प्रकृशत के गभथ में बीि आठ प्रकार के तत्त्वों ंमें शवकशसत होता है-पृथ्वी, िल, अशग्न, वायु, आकाश, मन, बुम्भद्ध और अहंकार । आत्मा का प्रकृशत के साथ संयोग का प्रथम फल (पररणाम) है महत्तत्त्व अथवा बुम्भद्ध । बुम्भद्ध से मन की उत्पशत्त होती है, मन से अहंकार और अहंकार से पााँच तत्त्व उत्पन्न होते हैं।

प्राशणयों ंकी चार प्रिाशतयााँ हैं–िरायुि, अण्डि, स्वेदि और उम्भद्भि। िरायु (गभथ का बशहवेष्टन, शझल्ली) से उत्पन्न होते हैं िैसे मनुष्य, गाय, हाथी, घोड़ा आशद। इस िाशत में पााँच ज्ञानेम्भियााँ शवद्यमान रहती हैं। अण्डि अण्डे से उत्पन्न होते हैं। इस प्रिाशत में वायु तत्त्व और आकाश तत्त्व की प्रधानता रहती है। स्वेदि की िाशत में िूाँ िू आशद िीव आते हैं िो पसीने (स्वेद) से उत्पन्न होने वाले हैं। इस प्रिाशत में अशग्न और िल तत्त्व प्रधान होते हैं। बीि से उत्पन्न होने वाले वृक्ष आशद उम्भद्भि की संज्ञा से अशभशहत हैं। इसमें पृथ्वी और िल तत्त्व की प्रधानता रहती है। (शनरूपण - VII.6; IX. 17; XV.7)

सवमयोडनषु कौतेय मूतमयः सम्भवन्द्रत याः ।
तासां ब्रह्म मिद्योडनरिं बीजप्रदः डपता ।।४ ।।

बि्ार्थम : सवथयोशनषु सब योशनयों ंमें, कौन्तेय-हे कुन्ती पुत्र, मूतथयः- भूताथकार रूप, सम्भवम्भन्त-होते हैं, या:ि–ो, तासाम्-उनमें, ब्र्ह्म-ब्र्ह्म, महत्-महान्, योशनः- योशन, अहम् -मैं, बीिप्रदः- बीि प्रदान करने वाला, शपता-शपता ।

अनुवाद : हे अिुथन, शकसी भी योशन में िो भी शरीराकार उत्पन्न होते हैं, महत् ब्र्ह्म (माया) रूप तो गभथ धारण करने वाली योशन है और मैं (ईश्वर) बीि प्रदान करने वाला (गभाथधान करने वाला) शपता हाँ।

व्याख्या : अहं शपता-महत् प्रकृशत माता है। समस्त प्रकट रूप शवश्व शशु है िो प्रकृशत ने मेरे संयोग से उत्पन्न शकया है। इसीशलए मुझे शवश्व का शपता कहा िाता है।

योशनयााँ-देव, शपतर, मनुष्य, घास चरने वाले पशु, वन्य पशु (मृग), पक्षी आशद।

मूतथयः रूप-पृर्क् पृर्क् अङ्ग, अवयवों ंसशहत शरीर ।

सतं्त्वं रजस्तम इडत गुणाः प्रकृडतसंभवाः ।
डनबध्नन्द्रत मिाबिाो दि देडिनमव्ययम् ।।५ ।।

बि्ार्थम : सत्त्वम् - पशवत्रता, रिः-काम, तमः- अशवद्या, िड़ता, इशत-इस प्रकार, गुणाः- गुण, प्रकृशतसंभवाः-प्रकृशत से उत्पन्न, शनबध्नम्भन्त-बााँधते हैं, महाबाहो - हे महाबाहो, अिुथन, देहे—शरीर में, देशहनम् - शरीरी (आत्मा) को, अव्ययम् अनश्वर ।

अनुवाद : हे अिुथन, (भगवान् की माया) प्रकृशत से उत्पन्न सतत्त्व, रि और तम ये गुण इस शरीर में अशवनाशी देही (आत्मा) को मानो बांध लेते हैं।

व्याख्या : सत्त्व गुण उत्तम है। रिस् इसके पश्चात् है और तमस् शनम्न और शनकृष्ट श्रेणी में शगना िाता है। तीन गुण तीन प्रकार की मानशसकता को उपलशक्षत करते हैं। वे िीवात्मा में आसम्भक् को िन्म दे कर उन्हें भ्रशमत करते हैं और संसार के बन्धन में िालते हैं। शैशव, यौवन और वृद्धावस्र्ा िैसे एक ही शरीर में अशभव्यक् होते हैं उसी प्रकार तीन गुण मन की स्वाभाशवक अवस्र्ा में अन्तशनथशहत हैं। प्रकृशत के गुणों ंऔर शरीर के सार् िब आत्मा एकरूपता समझने लगता है तो बन्धन में आता है। परमात्मा से एकरूपता करने तक की अवशध पयथन्त यह िन्म-मृतुयु, सुख-दुःख और हषथ-शोक आशद िन्मि िमें अनुभव लेता रहता है। गुण शब्द प्रायः शकसी िव्य के आशश्रत 'गुण' के अर्थ में शलया िाता है िो शकसी उपाशध, गुण अर्वा वसुतु शवशेष की ओर संकेत नहीं ंकरता िैसे शकसी वस्त्र का नील वणथ। यहााँ नील वणथ वस्त्र की शवशेषता अर्वा गुण को इशङ्गत करता है शकनुतु प्रकृशत के गुण वसुतुतः प्रकृशत के मूल घटक हैं और समस्त वसुतु शवषयों ंका आश्रय हैं। इसशलए इन गुणों ंको शकसी 'िव्य के आशश्रत' रूप में ग्रहण नहीं ंकरना चाशहए।

यशद तुम मुक् हो कर पूणथता की कामना करते हो और अशवनाशी बनना चाहते हो तो प्रकृशत के गुणों ंसे ऊपर उठो । शत्रगुणातीत बन िाओ।

पात्र में ि ल यशद शहल रहा है तो उसमें प्रशतशबम्भम्बत सूयथ भी प्रशतशबम्ब अध्यास के कारण शहलता हुआ ही दृशष्टगत होगा। इसी प्रकार अध्यास िारा शुद्ध स्वरूप आत्मा प्रकृशत के गुणों ंके बन्धन में आया हुआ प्रतीत होता है। वास्तव में आत्मा शनत्य मुक्, बन्धन रशहत शनरञ्जन और गुणातीत है।

अशवद्या रूप ये गुण सदा क्ेषेत्रज्ञ पर शनभथर रहते हैं। वे मानो क्ेषेत्रज्ञ को दृढ़ बन्धन में बांध लेते हैं। उसी को अपना आश्रय बना कर वे कायथ करते हैं।

गुणों ंका ज्ञान और उनके शक्रया कलाप (व्यापार) का ज्ञान अत्यावश्यक है। मुक् होने का साधन केवल इन्हीं ंगुणों ंका पूणथ ज्ञान ही है।

महाबाहो ि◌ानु तक लम्बी और अशतशय सामथ्यथ से युक् बाहु वाला पुरुष महाबाहु है। यह एक शुभ लक्षण है। योशगयों ंऔर ऋशष-मुशनयों ंकी ऐसी लम्बी सुन्दर भिुायें होती हैं।

तीन गुण सब मनुष्यों ंमें शवद्यमान हैं। प्रकृशत के इन तीन गुणों ंके कायथ से कोई भी मुक् नहीं ंहै। वे सतत नहीं ंहैं। कभी सत्त्व की प्रधानता (मनुष्य में) है तो कभी रिस् की और अन्य काल में तमस् की प्रधानता हो िाती है।

सत्व आलोक (प्रकाश) का प्रतीक है। इसमें समिय और अच्छाई अर्वा पशवत्रता शवशेष हैं। रिस् गशतशवशध (शक्रयाशीलता) का प्रतीक है तो तमस् ििता और शनम्भियता दशाथता है।

इन तीन गुणों ंके तत्त्वाधान में गोचर पदार्ों का शवश्ेलेषण करो। उनकी शवशेषताओं ंको िानो । इन गुणों ं के साक्षी िष्टा बन कर रहो । स्वयं को उनके सार् एकरूप मत करो। अपने को उनसे पृर्क् करो। शाश्वत आनन्द, शाम्भन्त और अमरत्व की प्राम्भप्त करोगे। (शनरूपण –XIII.22)

तन्त्र सतं्त्वं डनममलत्वात्प्रकािकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाडत ज्ञानसङ्गेन चानघ ।।६ ।।

बि◌ार्थम : तत्र-इनमें, सत्त्वम् -सत्त्वगुण (पशवत्रता), शनमथलत्वात् - शनमथल होने के कारण, प्रकाशकम् -प्रकाश देने वाला, अनामयम् स्वास्थ्य देने बाला, सुखसङ्गेन सुख की आसम्भक् से, बध्नाशत-बांधता है, ज्ञानसङ्गेन-ज्ञान की आसम्भक् से, च-और, अनघ हे शनष्पाप (अिुथन) ।

अनुवाद : हे शनष्पाप अिुथन, इनमें सत्त्व गुण शनमथल होने के कारण प्रकाशशील और स्वास्थ्यकर (सुखद) है शकनु्त सुख और ज्ञान के सङ्ग से बांधने वाला है।

व्याख्या : सत्त्व स्फशटक की भााँशत शनमथल है। यह सुख और ज्ञान का मानो िाल शबछाने वाला है। यह स्वणथ शंृ्खला है। साम्भत्त्वक मनुष्य स्वयं को दूसरों ंकी अपेक्षा श्ेरष्ठ समझ कर आनन्दमग्न होता है। अपने ज्ञान से वह फूला नहीं ं समाता । अपने सुखों ंऔर सुखद अनुभवों ंका शवचार कर के उसका हृदय दपथ से फूल उठता है। वह सोचता है- "मैं सुखी हाँ। मैं ज्ञानी हाँ।" इस प्रकार अहंकारवश वह बन्धन में आ िाता है। वसुतुतः यह गुण क्ेषेत्र अर्ाथत् अन्तःकरण का ही धमथ है शकनु्त सत्त्व के बल से, अध्यास िारा इसे आत्मा में आरोशपत शकया िाता है।

ज्ञान मागथ में रिस् और तमस् अंधकूप के समान हैं।

सुखासम्भक् एक भ्राम्भन्त है। अशवद्या है। शकसी शवषय का धमथ शवषयी का नहीं ंहो सकता। इच्छा से लेकर धृशत (XIII.6) पयथन्त सब धमथ (शवषय रूप) क्षेत्र के हैं। अशवद्या से अशववेक िन्म लेता है। इसी कारण िीवन शनत्य-अशनत्य और शवषयी शवषय के भेद का ज्ञान नहीं ंकर पाता।

ज्ञान, अन्तःकरण (मन, बुम्भद्ध, शचत्त, अहंकार) की शवशेषता है, आत्मा का नहीं।ं यशद यह आत्मा का धमथ होता तो इसमें आसम्भक् और बन्धन के भाव का अभाव होता । सत्त्व ज्ञान के िारा आत्मा को बांधता है।

रजो रागाकं डवन्द्रद्ध तृष्णासङ्गसमुिवम् ।
तडिबध्नाडत कौतेय कममसङ्गेन देडिनम् ।।७ ।।

शब्दार्थ : रिः रिस्, रागात्मकम् -राग स्वरूप, शवम्भद्धिानो, तृष्णासङ्गसमुद्भवम् - इच्छा और आसम्भक् से उत्पन्न, तत्-वह, शनबध्नाशत-बांधता है, कौन्तेय-हे कुन्ती पुत्र, कमथसङ्गेन-कमथ में आसम्भक् के िारा, देशहनम् -देही (आत्मा) को ।

अनुवाद : हे अिुथन, रिस् को रागात्मक स्वभाव वाला िानो िो तृष्णा और आसम्भक् का स्रोत है। यह देही को कमाथसम्भक् िारा बांधता है।

व्याख्या : रिोगुण गशतशीलता और आकांक्षा का प्रतीक है। रािशसक मनुष्य इच्छा और तृष्णा से पूणथ होता है। तृष्णायें उसे कमथ करने के शलए बाध्य करती हैं। उन तृष्णाओं ंकी पूशतथ में सहायक लोगों ंमें वह मनुष्य आसक् हो िाता है और उनसे घृणा करने लगता है िो तृष्णापूशतथ में बाधक बनते हैं। वह कमथ में आसक् हो िाता है। वह व्यवसाय में प्रवृत्त होता है। शवशभन्न प्रकार के यज्ञाशद, अनुष्ठान और दान कमथ करता है। इम्भिय-सुखों ंके पीछे वह भागता रहता है शकन्तु उसकी इच्छायें, शनरन्तर तेल िारा भिकती अशग्न की भाँशत कभी शान्त अर्वा पूणथ नहीं ं होती । आत्मा कताथ नहीं ंहै, साक्षी िष्टा है शकन्तु रिस् मनुष्य में यह भाव उत्पन्न करता है- "मैं कत्ताथ हाँ।" रिस् कामनाओं ंको सींच रखते हुए मन को प्रसन्नता प्रदान करता है।

रािशसक मनुष्य कभी सन्तुष्ट नहीं ंहोता। वह सदा लोभी और व्याकुल बना रहता है। शितना अशधक वह प्राप्त करता है उतना ही और अशधक वह लोभी-लालची बनता है। उसकी कामनायें गुशणत होती हैं (बढ़ती हैं)। उसे कोई सन्तुष्ट नहीं ंकर सकता। करोिपशत, अरबपशत बनना चाहता है। अशग्न में घृत िालते िायें तो और अशधक उग्रता से बढ़ती है। रािशसक मनुष्य की

शववेक शम्भक् और बुम्भद्ध नष्ट होने लगते हैं। उसकी मेधा बुम्भद्ध दपथ के अन्धकार से आवृत होने लगती है। वह धन-वैभव के नशे (मद) में चूर रहता है। उसकी बुम्भद्ध शवशक्षप्त हो िाती है। उसकी बुम्भद्ध शवकृत हो िाती है। बुम्भद्ध शवपयथय (भ्रंश) के कारण वह दुःख में सुख का, शोक में हषथ का और कष्ट में उत्सव का अध्यास करके आनम्भन्दत होता है। उसका लक्ष्य है स्त्री और धन (कंचन और काशमनी)। उसका आराध्य देव कुबेर अर्वा धन की देवी लक्ष्मी है।

नाम, आराम और यश के पीछे भागते हुए अनेक प्रकार की शक्रयाओं ंमें वह संलग्न हो िाता है।

नारी कटाक्ष, शवद्युत्वेग और मीन की गशत, िुतगशत से सम्बद्ध हैं, शकन्तु रिस् की गशत इनसे भी अशधक तीव्र है। वह सोचता है- "मेरी संपन्नता नष्ट होने पर मेरा क्या होगा ?" इस प्रकार स्वयं को अनावश्यक रूप से शचन्ता ग्रस्त कर लेता है और शवशभन्न शक्रया कलापों ंमें संलग्न हो िाता है।

प्राप्त में आसम्भक् और अप्राप्त की प्राम्भप्त की शपपासा उसमें बनी रहती है। वह प्राप्त वसुतुओं ंकी सुरक्षा का प्रयत्न करता है। यही सङ्ग है। "मैं यह करूँगा तो यह फल शमलेगा। यह अनुष्ठान करूँगा तो स्वगथप्राम्भप्त होगी।" इस प्रकार कमथ और कमथफल में आसम्भक् ही कमथ सङ्ग है।

तमस्त्वज्ञानजं डवन्द्रद्ध मोिनं सवमदेडिनाम् ।
प्रमादालस्यडनद्राडभस्तडिबध्नाडत भारत ॥८ ॥

शब्दार्थ : तमः ि िता, तु-परनुतु, अज्ञानिम् - अज्ञान से उत्पन्न, शवम्भद्ध िानो, मोहनम् - मोशहत (भ्रशमत) करने वाला, सवथदेशहनाम् -समस्त प्राशणयों ंका, प्रमादालस्यशनिाशभः -प्रमाद, आलस्य और शनिा के िारा, तत्-वह, शनबध्नाशत-बन्धन में िालता है, भारत- हे भरत वंशी (अिुथन) ।

अनुवाद : हे अिुथन, समस्त देहधारी मनुष्यों ंको भ्रशमत करने वाले तमस् को तुम अशवद्या से उत्पन्न िानो । यह (तमोगुण), प्रमाद, आलस्य और शनिा के िारा िीवों ंको बांधता है।

व्याख्या : तमस् - वह बन्धन में िालने वाली शम्भक् है शिसमें आलस्य, तिा (कायथशवमुखता) और मूखथतापूणथ कायथ करवाने की प्रवृशत्त शनशहत है। तमस् से मोह और अशववेक उत्पन्न होते हैं। शरीर पर आत्मा का अध्यास करने वाले को यह बन्धन में िालता है। तामशसक मनुष्य शरीर की अशनवायथताओं ंके दबाव में कायथ करता है। उसमें शनणथयात्मक बुम्भद्ध का अभाव होता है। शरीर के अभावों ंसे दुःखी हो कर िीशवत रहने के शलए वह कायथ करता है। उसके कमथ तकथ शवहीन होते हैं। वे तो अशशक्षत बोध के धरातल पर शवद्यमान रहते हैं। उसकी इम्भियााँ मूढ़ होती हैं। वह मोशहत हो िाता है और मूखथ भी बन िाता है। िम्हाई अशधक लेता है। अत्यशधक सोता है। सोने की अशभलाषा उसमें बनी रहती है। कब, कहााँ, कैसे कायथ करना चाशहए; इसका उसे ज्ञान नहीं ंहोता। शकससे शकस प्रकार बात करनी है, यह सदाचार भी उसमें नहीं ंहोता। गलत रासे्त पर चलने में वह हषथ का अनुभव करता है। कैसे व्यवहार करना है, दूसरों ंको कैसे सम्बोधन करना है, वह नहीं ंिानता। शवचार शून्य और अज्ञानी है वह। वह सूमृशतहास का शकार हो कर सब कुछ भूल िाता है। वह प्रमाशदन् (असावधान) और तंशिल बन िाता है। शनीव वसुतु की अपेक्षा बस थ्ोा अशधक उसे माना िा सकता है।

प्रमादी मनुष्य शनत्याशनत्यवसुतुशववेक नहीं ंकर सकता। प्रमाद तो प्रकाश का, िो सत्त्व का कायथ है, शतुरु है। आलसी मनुष्य संघषथ नहीं ंकर सकता । रिस् के प्रभाव-प्रवृशत्त का भी यह शतुरु है। शनिा लयवृशत्त है (अज्ञान में लीन होने की अवस्था है) िो तमस् पर आधाररत है। सत्त्व और रिस् के शकये कायों का यह शतुरु है।

सत्त्वं सुखे सञ्जयडत रजः कममडण भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयतुयुत ॥९ ॥

शब्दार्थ : सत्त्वम् सत्त्व, सुखे-सुख में, सञ्जयशत-शनयुक् करता है, रिः रिस्, कमथशण-कमथ में, भारत- हे भरतवंशी, ज्ञानम्-ज्ञान को, आवृत्य ढक कर, तु-शनस्सने्देह, तमः-तम, प्रमादे-प्रमाद में, संयिशत- लगाता है, उत-शकनुतु ।

अनुवाद : हे अिुथन, सत्त्व गुण सुख में, रिोगुण कमथ में और तमोगुण ज्ञान को आवृत कर के प्रमाद में शनयुक् करता है।

व्याख्या : सूयथ को शिस प्रकार श्याम मेघ ढक लेते हैं उसी प्रकार आत्म-ज्ञान रूपी प्रकाश को तमस् आच्छाशदत कर लेता है। कतथव्य कमथ के प्रशत शवमुखता, कतथव्य को भूल िाना, अशवद्या और असावधानी के प्रशत आसम्भक् का सृिन तमोगुण के कारण होता है।

रजस्तमश्चाडभभूय सतं्त्वं भवडत भारत ।
रजः सतं्त्वं तमशै्चैव तमः सतं्त्वं रजस्तर्था ।।१० ।।

ब्र्ार्थम : रिः रिस्, तमः-तमस् (ि्िता), च-और, अशभभूय- अशभभूत कर के (दबा कर), सत्त्वम् -सत्त्व, भवशत-होता है, भारत-है भारत, रिः रिस्, सत्त्वम् सत्त्व, तमः-तमस्, च-और, एव-ही, तमः-तमस्, सत्त्वम् - पशवत्रता, रिः-शक्रयाशीलता, तर्ा और।

अनुवाद : हे अिुथन, रिस् और तमस् को दबा कर सत्त्व का उदय होता है। सत्त्व और तमस् के दबने से रिस् उशदत होता है और सत्त्व और रिस् के अशभभूत होने पर तमस् अपना कायथ प्रारम्भ करता है।

व्याख्या : शरद् और ग्रीष्मतुथ के समाप्त होने पर िैसे शीत का प्रकोप होता है, मनुष्य िब न तो िाग्रत हो और न ही स्वप्नावस्र्ा में हो तो िैसे उस पर सुषुम्भप्त का आशधपत्य होता है अर्ाथत् उस समय वह शनिाधीन होता है वैसे ही रिस् और तमस् के दब िाने पर सत्त्व का प्रभुत्व होता है िो लोगों ंको सुखद अनुभूशत प्रदान करता है। सत्त्व के शवकास की साधना अध्याय XVII और XVIII में वशणथत है।

समय-समय पर प्रत्येक गुण अपना कायथ करता है। एक ही समय में सारे गुण समम्भित रूप से कायथ नहीं ं कर सकते। एक गुण िब अन्य दो गुणों ंको अशभभूत कर के प्रभुता को प्राप्त होता है तो वह अपना प्रभाव दशाथता है। सत्त्व से ज्ञान और सुख प्राप्त होता है। रिस् शक्रया को प्ेरेररत करता है। तमस् ज्ञान को आच्छाशदत कर के ि्िाि, िाि, आलस्य, शनिा और अशवद्या को िन्म देता है। सत्त्व के आरोहण काल में मनुष्य शववेकी बनता है। उतृ्कष्ट शवचार उसके मन में शहलोरें लेने लगते हैं। उसका अन्तःकरण शुद्ध हो िाता है। मन इम्भिय-शवषयों ंसे शनवृत्त हो कर अन्तमुथख होने लगता है।

कौन सा गुण शकस काल शवशेष में प्रधान है अर्वा उशदत हो रहा है, यह कैसे िाना िाये। इसके लक्षण अर्वा शवशेषतायें क्या हैं? उत्तर आगामी श्लोक में शनशहत हैं।

सवमिारेषु दिेऽन्द्रस्मन्प्रकाि उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा डवद्याडिवृद्ंधं सत्त्वडमत्युत ।।११ ।।

ब्र्ार्थम : सवथिारेषु -सब िारों ंमें (इम्भियों ंके िार), देहे -शरीर में, अम्भस्मन् -इस, प्रकाशः ज्ञान-प्रकाश, उपिायते-प्रदीप्त होता है, ज्ञानम् ज्ञान, यदा–िब, तदा-तब, शवद्यात्–िान लो, शववृद्धम्-बढ़ा हुआ, सत्त्वम् -सत्त्व, इशत-इस प्रकार, उत-शनशश्चत रूप से ।

अनुवाद : इस शरीर के इम्भिय रूप प्रत्येक िार से िब ज्ञान-प्रकाश प्रदीप्त हो तो सत्त्व की प्रधानता (वृम्भद्ध) समझनी चाशहए।

व्याख्या : शकसी गुण शवशेष का प्रादुभाथव होने पर मनुष्य में कुछ पृर्क् शवशेषतायें प्रकट होती हैं। मालती (चमेली) शिस प्रकार अपनी सुगन्ध दूर-दूर तक शबखेरती है उसी प्रकार सत्त्व सब शदशाओं ंमें शवकीणथ होता है। तमस् को रिसू में और रिस् को सत्त्व में पररणत करो और अब सत्त्व में दृढ़तापूवथक बने रहो। तुम्हें संवशधथत प्रकाश, शुशचता, शाम्भन्त और समिय प्राप्त होगा। सत्त्व तुम्हें आगे बढ़ायेगा। परम प्रकाश का ऊध्वाथकषथण शमलेगा। साम्भत्त्वक आहार, िप, ध्यान, शास्त्राध्ययन, एकान्तवास, सतं्संगशत, प्रभु का भिन-कीतथन और प्राणायाम सत्त्व के संवधथन में सहायक हैं।

अन्तपथरीक्षण करो। भीतर झांको । गुणों ंको अवधानपूवथक शनहारो। ािगरूक बनो। ािरपाल की भााँशत रहो। मानशसक फैक्ट्री के िार से केवल साम्भत्त्वक गुणों ंको ही भीतर ाने दो। रिस् को वश में करो। तमस् को शनयंशत्रत करो। सत्त्व की संवृम्भद्ध होने पर मन में शचर म्भस्र शाम्भन्त का वास होगा, आन्तररक समिय, पूणथ सौम्यता और शनश्चल धैयथ प्राप्त होगा। कल्पना शम्भक् स्पष्ट होगी। शववेक पर अज्ञान के मेघ आच्छाशदत नहीं ंहोंगें। सूक्ष्म ज्ञान (ममथज्ञता) का आभास होगा। अन्तज्ञाथन के िार खुलेंगे। इम्भियााँ बाह्य शवषयों ंकी ओर नहीं ंदौिेंगी।

इम्भियााँ शवषय ज्ञान की वीशयााँ हैं। वह आत्म दशथन के शलए तोरण िार (gateway) हैं। शरीर के चकुषु, कणथ आशद समस्त िारों ंमें िब ज्योशत का आशवभाथव होता है अर्वा अन्तःकरण में िब बुम्भद्ध वृशत्त प्रकट होती है तब ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान के लक्षण से सत्त्व की प्रधानता (संवृम्भद्ध) को समझा िा सकता है। प्रसन्नता, प्रफुल्लता सत्त्व का दूसरा लक्षण है। शिस प्रकार ज्ञान और प्रसन्न मुिा से साधक सत्त्व संवृम्भद्ध का संज्ञान लेता है उसी प्रकार यह भी ज्ञान से िान लेता है शक रिस् और तमस् कम हो रहे हैं।

श्रवण न करने योग्य शवषय का कणथ पररहार करेंगे। नेत्र अदशथनीय शवषय का दशथन नहीं ंकरेंगे। वाणी न बोलने योग्य बात नहीं ंकहेगी। मन इम्भिय-शवषयों ंसे आकृष्ट नहीं ंहोगा। िप, ध्यान और संयम के िारा शुशचता का शवकास होगा। सत्त्व की वृम्भद्ध से ज्ञान की भी वृम्भद्ध होगी। आत्म-ज्ञान की प्राम्भप्त हेतु सत्त्व ही एक शवश्वसनीय साधन है। यह ज्ञान की आधारशला है।

लोभः प्रवृडत्तरारम्भः कममणाडमिमः स्पृिा ।
रजस्येताडन जायते डववृद्धे भरतषमभ ।।१२ ।।

शब्दार्थ : लोभः लोभ, प्रवृशत्तः - शक्रयाशीलता, आरम्भः- आरम्भ, कमथणाम् कमों का, अशमः-व्याकुलता, सृपृहा- इच्छा, लालसा, रिशसरिस् में, एताशन-ये, िायन्ते-उत्पन्न होते हैं, शववृद्धे-बढ़ने पर, भरतषथभ - हे भरत श्रेष्ठ (अिुथन) ।

अनुवाद : हे अिुथन, रिस् के बढ़ िाने पर, लोभ, शक्रयाशीलता, कमों (कायों) का आरम्भ, अशाम्भन्त और लालसा- ये शचि उत्पन्न होते हैं।

व्याख्या : लोभः- लोभ । परिव्य को प्राप्त करने की आकाङ्क्षा। पयाथप्त धन होने पर भी और अशधक धन प्राप्त करने की इच्छा ।

प्रवृशत्तः-सामान्य भाव से सांसाररक शक्रया कलाप में लगना।

अशमः - अशाम्भन्त । सुख और आसम्भक् आशद में उशिग्नता।

"मैं यह करूाँगा शफर वह काम करूाँगा। दूसरा काम समाप्त करके तीसरा प्रारम्भ करूाँगा।" कमथ, इच्छा और तृष्णा का कहीं ंअन्त नहीं ंहै। इसे अशमः कहा िाता है।

सृपृहा-प्रायः सभी इम्भिय-शवषयों ंकी इच्छा (शपपासा)। ये समस्त लक्षण राशसक वृशत्त का संकेत देते हैं।

राशसक अशाम्भन्त और गशतशवशध को कमथयोग अर्वा शदव्य शक्रया समझ कर अन्यर्ा नहीं ंलेना चाशहए। लोग कहते हैं शक वे समाि की शनष्काम सेवा कर रहे हैं। शकन्तु शवश्लेषण शकया िाये तो कहीं ंन कहीं ंउनका स्वार्थ शनशहत होता है। बहुधा लोग क्षण भर के शलए भी शान्त नहीं ंबैठ सकते। वे सोचते हैं शक इतस्ततः

घूमनाशफरना और कुछ न कुछ कायथ करते रहना ही िीवन की पूणथता है। योगी अर्वा संन्यासी िो मन को प्रशान्त कर के म्भस्र्र बैठता है, शारीररक रूप से कोई कायथ नहीं ंकरता वह संसार का सवाथशधक कमथशील मनुष्य है। दूसरी ओर, इधर-उधर भागने वाला और हर समय व्यस्त रहने वाला व्यम्भक् सवथर्ा कुछ भी नहीं ं करता। तुम्हें यह लोकशवरुद्ध अर्वा असत्याभास लगता होगा। वसुतुतः इस कर्न के सत्य को ग्रहण करना और समझना अत्यन्त कशठन है। सत्त्व प्रचंगिशतशवशध है। अत्यन्त वेग से घूमने वाला चक्र म्भस्र्रता का आभास देता है। ऐसे ही सत्त्व है। ऐसा ही साम्भत्त्वक मनुष्य है।

अप्रकािोऽप्रवृडत्तश्च प्रमादो मोि एव च ।
तमस्येताडन जायते डववृद्धे कुरुनन्दन ।।१३ ।।

शब्दार्थ : अप्रकाशः प्रकाश का अभाव, अशववेक, अप्रवृशत्तः- शनम्भियता, च-और, प्रमादः -प्रमाद, असावधानी, मोहः- मोह, एव-ही, च-और, तमशस तमस् में, एताशन-ये, िायन्ते-उत्पन्न होते हैं, शववृद्धे-बढ़ िाने पर, कुरुनन्दन-हे कुरुनन्दन अिुथन ।

अनुवाद : अन्धकार (अशववेक), शनम्भियता, असावधानी, मोह, हे अिुथन, ये लक्षण तमस् के बढ़ िाने पर पररलशक्षत होते हैं।

व्याख्या : तमस् की वृम्भद्ध होने पर अशववेक, शनम्भियता (कुछ न करने की प्रवृशत्त), कतथव्य-शवमुखता और भ्रम आशद लक्षण उत्पन्न होते हैं।

अप्रकाशः - अन्धकार अर्ाथत् शववेक का अभाव ।

अप्रवृशत्तः- िड़ता, कमथ का अत्यन्त अभाव ।

प्रमादः असावधानी और मोह-भ्रम ये सब अन्धकार (अशववेक) के कायथ (प्रभाव) हैं। ये लक्षण तमस् की प्रधानता को इशङ्गत करते हैं। िीवन के शकसी भी मोड़ पर अर्ाथत् शकसी भी काल में आध्याम्भत्मक उन्नशत और सफलता प्राम्भप्त हेतु तमस् एक शवशाल प्रशतबन्धक है। शकसी भी मूल्य पर इसे नष्ट करना अशनवायथ है। कभी-कभी लोग तमस् में सत्त्व (शाम्भन्त) का अध्यास करते हैं। तामशसक मनुष्य को 'शान्त योगी' की उपाशध से अलंकृत करते हैं। "सब प्रारब्ध का खेल है। यह सब माया है। कोई संसार नहीं ंहै। मैं कमथ में क्यों ंसंलग्न होऊँ? कमथ मुझे बन्धनयुक् करेगा। मैं ब्र्ह्म हाँ।" यह आध्याम्भत्मकता नहीं ंहै प्रतुयुत् तमस् की पराकाष्ठा है।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याडत देिभृत् ।
तदोत्तमडवदां लोकानमलान्प्रडतपद्यते ।।१४ ।।

शब्दार्थ : यदा–िब, सत्त्वे सत्त्व में, प्रवृद्धे वृम्भद्ध होने पर, तु-शनस्सन्देह, प्रलयम् -मृतुयु को, याशत -प्राप्त होता है, देहभृत् - देहधारी मनुष्यात्मा, तदा तब, उत्तमशवदाम् -सविो (भगवान्) को िानने वालों ंके, लोकान् लोकों ंको, अमलान् -शवशुद्ध, प्रशतपद्यते -प्राप्त होता है।

अनुवाद : सत्त्व की प्रवृम्भद्ध काल में िब देहधारी िीव मृतुयु को प्राप्त होता है तो तत्त्वशवदों ंके शवशुद्ध लोकों ंको प्राप्त होता है।

व्याख्या : लोकानमलान्-शवशुद्ध लोक-ब्र्ह्म लोक आशद िहाँ रिस् और तमस् का सवथर्ा अभाव होता है।

उत्तम सवीो-शहरण्यगभथ आशद देवता ।

रजडस प्रलयं गत्वाकममसडङ्गषु जायते ।
तर्था प्रलीनस्तमडस मूढयोडनषु जायते ।।१५ ।।

बि्ार्थम : रिशसरिस् में, प्रलयम्-मृतुयु को, गत्वा-प्राप्त हो कर, कमथसशङ्गषु कमों में आसक् लोगों ंमें, ि ायतेि न्म लेता है, तर्-और, प्रलीनः-मृतुयु काल में, तमशस-तमस् में, मूढयोशनषु मूढ़ योशनयों ंमें, ि ायतेि न्म लेता है।

अनुवाद : रिस् के वृम्भद्धकाल में मृतुयु हो तो मनुष्य कमथ में आसक् पुरुषों ंमें ि न्म लेता है और तमस् की वृम्भद्धकाल में मृतूयूपरान्त मूढ़योशनयों ं(शनम्न योशनयों)ं में ि न्म लेता है।

रिशस प्रलयं गत्वा-रिस् के वृम्भद्धकाल में मरने पर उसका ि न्म कमथसशङ्गयों ंमें होता है और ि ब पूणथ रूप से तमस् छाया हो और उस समय मृतुयु प्राप्त हो तो मूढ़ योशनयाँ ि ैसे पशु, पक्षी, शसंह, कीट आशद में ि न्म लेता है।

मूखथ, शववेकशून्य शनम्न मनुष्य ि ाशत में भी उसका ि न्म हो सकता है। सम्भव है वह पशु-पक्षी आशद की योशन को प्राप्त न हो-यह एक अन्य शवचारधारा है।

कममणः सुकृतस्याहः सान्द्रत्त्वकं डनममलं फलम् ।
रजससुतु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ।।१६ ।।

बि्ार्थम : कमथणः-कमथ का, सुकृतस्य-शुभ कमथ का, आहुः-कहते हैं, साम्भत्त्वकम् -साम्भत्त्वक, शनमथलम् -शुद्ध, फलम् -फल (पररणाम), रिसः- रिस् का, तु-शनशश्चत रूप से, फलम् -फल, दु:खम् -दु:ख, अज्ञानम् अज्ञान, तमसः तमस का, फलम् -फल।

अनुवाद : शुभ कमों का फल साम्भत्त्वक और शनमथल कहा गया है और रिशसक कमों का पररणाम शनशश्चत रूप से (कमथ शवकृशत वश) दु:ख है और तामशसक कमों का फल अज्ञान है।

व्याख्या : सुकृतः साम्भत्त्वक कमथ। साम्भत्त्वक कमों का फल ज्ञान और आनन्द की प्राम्भप्त है।

आहुः- (वे) कहते हैं अर्ाथत् श्ेरेष्ठ पुरुष कहते हैं।

रिस् का अर्थ है रिशसक कमथ क्योंशंक इस श्लोक में कमथ की व्याख्या हो रही है। रिशसक कमों का फल कटु होता है। रिस् दुःख, शनराशा और असन्तोष देने वाला है। रिशसक कमथ लोभ की प्रवृशत्त को ि न्म देते हैं। मूल तृष्णा को पूणथ करते करते नव तृष्णायें अंकुररत हो उठती हैं और लोभ का ि ार खुलने लगता है।

तमस्-तामशसक कमथ, अधमथ कमथ । तमस् की प्रधानता में ज्ञान और दूरदशथता का अभाव रहता है।

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोिौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ।।१७ ।।

बि्ार्थम : सत्त्वात् -सत्त्व से, संियिते-उत्पन्न होता है, ज्ञानम् - ज्ञान, रिसः रिस् से, लोभः- लोभ, एव-ही, च-और, प्रमादमोहौ-प्रमाद और मोह, तमसः-तमस् से, भवतः - होते हैं, अज्ञानम्-अज्ञान, एव-ही, च-और।

अनुवाद : सत्त्व से ज्ञान का उदय होता है, रिस् से लोभ और तमस् से प्रमाद, मोह और अज्ञान उशदत होते हैं।

व्याख्या : सत्त्वात् सत्त्व से। सत्त्व के उत्कषथ में ज्ञान िाग्रत होता है। िैसे सूयथ शदवस का प्रकाश लाता है उसी प्रकार सत्त्व बुम्भद्ध को प्रकाशत करता है।

लोभ अशग्न की भााँशत असनुतुष्ट रहता है। लोभ दुःख और पिी़ा का िनक है। इसकी उत्पशत्त रिस् से होती है। रिस् कभी पूणथ न होने वाली तृष्णाओं ंको उत्पन्न करता है। रािशसक व्यम्भक् दूसरों ंके भाव और रुशच के प्रशत अन्धा सा हो िाता है। अपनी प्रगशत और उत्कषथ के शलए रािशसक व्यम्भक् दूसरों ंको भी साधन बनाता है।

तामशसक व्यम्भक् में दूरदशथता का अभाव, ि़िता और अज्ञान आशद लक्षण प्रधान होते हैं। भावी पररणामों ं के शवषयों ंमें तामशसक व्यम्भक् सवथरा् शवचारशून्य रहता है। वह पूणथ रूप से शरीर के सार् एकरूप होता है और यशद कोई व्यम्भक् उसे चोट पहुाँचाये अर्वा उसके शवषय में कुछ बुरा कह दे तो वह लिे़ने को आतुर रहता है। बदले के भाव में वह शकसी भी प्रकार का पाप कमथ करने को उद्यत रहता है। न तो उसका शचत्त शान्त होता है और न ही उसमें सनुतुलन होता है।

ऊधं्वं गच्छन्द्रत सत्त्वथर्था मधे्ये डतिन्द्रत राजसाः ।
जघन्यगुणवृडत्तथर्था अधो गच्छन्द्रत तामसाः ।।१८ ।।

बि्ार्थम : ऊध्वथम् - उि स्ान को, गच्छम्भन्त–िाते हैं, सत्त्वस्ाः सत्त्व में म्भस्र (मनुष्य), मधे्ये-मध्य में, शतष्ठम्भन्त-रहते हैं, रािसाः- रािशसक, िघन्यगुणवृशत्तस्ाः िघन्य (शनन्दनीय) गुणों ंमें म्भस्त (मनुष्य), अधः - शनम्न (योशनयों ंमें), गच्छम्भन्त–िाते हैं, तामसाः-तामशसक ।

अनुवाद : सत्त्व में म्भस्त पुरुष (देवाशद) उि योशनयों ंमें िाते हैं। रािशसक मध्य में अर्ाथत् मनुष्य आशद योशनयों ंको प्राप्त होते हैं और तामशसक मनुष्य िघन्य वृशत्त के कारण शनम्न योशनयों ं(पशु, पक्षी आशद) में उत्पन्न होते हैं।

व्याख्या : सत्त्वस् पुरुष इस शरीर को त्यागने के पश्चात् स्वगथ के अशधपशत बनते हैं। रािशसक मनुष्य पुनः इसी धरा पर िन्म लेते हैं। तामशसक व्यम्भक् का पशु, मृग आशद शनम्न योशनयों ंमें पतन होता है। मनुष्यों ंमें शनम्न वगथ में भी उनका िन्म हो सकता है। मनुष्य िाशत में शनम्नतम वगथ नृशंस, कू्रूर मनुष्यों ंका है िो मनुष्य का शरीर धारण कर के भी पशुतुल्य हैं। उनके कमथ कू्रूर होते हैं। अतः आवश्यक नहीं ंशक वे पशु िगत् में उत्पन्न हों।ं

शमथ्या ज्ञान अर्वा भ्राम्भन्त पूणथ ज्ञान के कारण मनुष्य प्रकृशत के गुणों ंमें आसक् होता है और प्रकृशत से एकरूप हो िाता है। उि अर्वा शनम्न योशनयों ंमें िन्म लेने का यही मुख्य कारण है। गुणों ंमें अनुराग के कारण ही वह कभी दुःखी, कभी सुखी और कभी भ्रशमत होने का अनुभव करता है।

गुणों ंकी प्रकृशत, उनके कायथ, वे (गुण) मनुष्य को संसार में बन्धक कैसे बनाते हैं, प्रते्येक गुण का कायथ (प्रभाव) िब उसकी प्रधानता होती है और पृर्क् पृर्क् गुण शवशेष की संवृम्भद्ध काल में शवलय होने पर मनुष्य कौन-कौन से धाम को िाता है, इन सब का वणथन पूवथ श्लोकों ंमें हो चुका है। अब भगवान् आगामी श्लोक में यह उपदेश देते हैं शक मोक्ष की प्राम्भप्त शत्रगुणातीत होने पर होती है।

नान्यं गुणेभ्यः कतामरं यदा द्रष्टानुपश्यडत ।
गुणेभ्यश्च परं वेडत्त मिावं सोऽडधगच्छडत ।।१९ ।।

बि्ार्थम : न-नहीं,ं अन्यम्-अन्य, गुणेभ्यः- गुणों ंसे, कताथरम् -कताथ, यदा–ि ब, ि ष्टा देखने वाला, अनुपश्यशत-देखता है, गुणेभ्यः- गुणों ंसे, च-और, परम् - उितर, वेशत्त–िनता है, मद्भावम् - मेरे भाव को, सः वह, अशधगच्छशत-प्राप्त
होता है।
अनुवाद : िब िष्टा गुणों ंके अशतररक् अन्य शकसी को कताथ रूप में नहीं ंदेखता और उन (गुणों)ं से ऊपर साक्षी परमात्मा को उनसे अतीत िान लेता है तब वह मेरे भाव को प्राप्त होता है।

व्याख्या : परमात्मा शकसी भी प्रकार से गुणों ंमें शलप्त नहीं ंहोता। मुक् 'संन्यासी घोषणा करता है- "मैं गुणों ंका साक्षी हाँ। न तो मैं कताथ हाँ और न ही भोक्ा हाँ। समस्त कमों के पीछे प्ेरेरक शम्भक् गुण ही हैं। मैं गुणों ंसे परे हाँ। समस्त कमों के शलए गुण ही उत्तरदायी हैं। मैं इन गुणों ंसे सवथर्ा पृर्क् हाँ। मैं शुद्धचैतन्य स्वरूप हाँ। गुण मेरा स्पशथ नहीं ंकर सकते। मैं आकाश वत् हाँ।

गुण ही शरीर, इम्भिय एवम् अन्य शवषयों ंरूपी शवकारों ंको प्राप्त होते हैं, गुणों ंके अशतररक् अन्य कोई कत्ताथ नहीं–इस प्रकार के ज्ञान से िब आत्मा

देदीप्यमान होता है तब मनुष्य को यह ज्ञान भली प्रकार हो िाता है शक समस्त पररणामों ं(शवकृशतयों)ं, अवस्र्ाओं ंऔर कमों में गुण ही कताथ हैं और परमात्मा शत्रगुणातीत, गुणों ंका मौन साक्षी और उनकी प्रशतशक्रयाओं ंका िष्टा है, तब वह मेरे सार् सारूप्य भाव को प्राप्त होता है। वह गुणातीत (गुणों ंसे परे) हो िाता है।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देसमुिवान् ।
जन्ममृतुयुजरादुःखैडवमुक्तोऽमृतमशुनुते ।। २० ।।

बि्ार्थम : गुणान् गुणों ंको, एतान्-इन, अतीत्य उल्लंघन करके, त्रीन्-तीन, देही देहधारी, देहसमुद्भवान् - देह शिनसे उत्पन्न हुआ है, िन्ममृतुयुिरादुःखैः िन्म, मृतुयु, िरा और दुःखों ंसे, शवमुक्ः मुक्, अमृतम् - अमृतत्व, अशुनुते - प्राप्त करता है।

अनुवाद : देह की उत्पशत्त के बिी स्वरूप इन गुणों ंका अशतक्रमण-कर के देहधारी पुरुष िन्म, मृतुयु, क्षय और दु:ख से मुक् हो कर अमृतत्व की प्राम्भप्त करता है।

व्याख्या : एक नदी िैसे सागर में शवलीन हो िाती है वैसे ही इस शरीर के बिी भूत गुणों ंका अपने िीवन काल में ही अशतक्रमण करने वाला पुरुष मुझ में लीन होता है। वह सदा शाश्वत शाम्भन्त का आनन्द लेता है। मोक्ष प्राप्त करता है। मेरे भाव को प्राप्त होता है। भगवान् ने िब कहा शक मनुष्य गुणातीत हो कर अमरत्व को प्राप्त कर सकता है तो अिुथन को और अशधक ज्ञान प्राम्भप्त की प्ेरेरणा हुई। अध्याय ।। के श्लोक ५४ में िैसे अिुथन ने म्भस्र्तप्रज्ञ की पररभाषा िानने के शलए भगवान् से प्रश्न शकया र्ा वैसे ही अब वह भगवान् कृष्ण से उस महापुरुष की शवशेषतायें िानने का इचुछुक है शिसने तीनों ंगुणों ंका अशतक्रमण कर शलया हो। वह कैसे चेष्टा करता है? उसका व्यवहार क्या है? वह तीन गुणों ंसे अतीत शकस शवध हुआ?

अजुमन उवाच

कैडलमङ्गैस्त्रीन्बगुणानेतानतीतो भवडत प्रभो ।
डकमाचारः करं्थं चैतांस्त्रीन्बगुणानडतवतमते ।।२१ ।।

बा्र्थम : कैः-शकन शकन, शलङ्गः लक्षणों ंसे, त्रीन-तीन, गुणान् - गुण, एतान् -इन, अतीतः-अतीत, भवशत-होता है, प्रभो हे भगवन्, शकमाचारः-कैसा आचरण, कर्म् -कैसे, च-और, एतान् -इन, त्रीन्-तीन, गुणान् गुणों ंको, अशतवतथते - अशतक्रमण करता है।

अनुवाद : हे प्रभो, शत्रगुणातीत पुरुष के लक्षण क्या है? उसका आचरण कैसा होता है और वह इन तीन गुणों ंसे अतीत कैसे पहुँचता है?

व्याख्या : अिुथन ने कहा- "शकन शकन शवशेषताओं ंसे शत्रगुणातीत शविान् का संज्ञान होता है? उसका आचार-व्यवहार कैसा होता है और वह संसार से और गुणों ंसे ऊपर कैसे उठता है? कृपया उपदेश करें।"

शत्रगुणातीत शविान् के यह लक्षण हैं। अन्य शविानों ंको भी इन गुणों ं(लक्षणों)ं का संवधथन करना चाशहए।

एक रािा शिस प्रकार अपने सेवकों ंके दुःख-ददथ की शनवृशत्त करता है उसी प्रकार भगवान् अपने भक्तों ं के कष्टों ंका शनवारण करते हैं। तभी तो अिुथन भगवान् कृष्ण को 'प्रभु' कह कर सम्बोशधत कर रहे हैं। इस शब्द का प्रयोग कर के अिुथन ने भगवान् को यह संकेत कर शदया है शक केवल वे ही उसकी पीिा का हरण करने में समर्थ हैं। (शनरूपण - II.54)

श्री भगवानुवाच

प्रकिां च प्रवृडतं्तं च मोिमेव च पाण्डव ।
न िेडष्ट् संप्रवृत्ताडन न डनवृत्ताडन काङ्क्षडत ।।२२ ।।

बा्र्थम : प्रकाशम् - प्रकाश, च-और, प्रवृशत्तम् - प्रवृशत्त (शक्रया- शीलता), च-और, मोहम् -मोह, एव-ही, च-और, पाण्डव-हे अिुथन, न-नहीं,ं िेशष्ट–िेष करता है, संप्रवृत्ताशन-उद्‌भूत, न-नहीं,ं शनवृत्ताशन-शनवृत्त होने पर, काङ्क्षशत-चाहता है (इच्छा करता है)।

अनुवाद : प्रकाश (सत्त्व), प्रवृशत्त (रिस्) और मोह (तमस्) की शवद्यमानता में वह (शत्रगुणातीत) इनसे िेष नहीं ं करता और इनके अभाव में इनकी अशभलाषा नहीं ंकरता।

व्याख्या : अिुथन के प्रर्म प्रश्न का यह उत्तर है। प्रकाश सतत्त्व का कायथ है, गशतशवशध रिस् का और मोह तमस् का कायथ है। शवषयभाव से उपलब्ध होने पर िीवन्मुक्त इनसे िेष नहीं ंकरता। सत्त्व का प्रकाश होने पर वह अहंकार नहीं ंकरता। वह यह नहीं ंसोचता - "मैं बहुत शविान हाँ।" शरीर िब कमथ में प्रवृत्त होता है अर्वा लोकसंग्रह हेतु उसे दैवी आज्ञा से कमथ करने की प्ेरेरणा होती है तो वह शकसी कमथ से िेष नहीं ंकरता और कमथ की समाम्भप्त पर पश्चात्ताप नहीं ंकरता । कमथ रत रहते हुए भी उनसे अनुशोक नहीं ंहोता। कमथ तो उसके शलए बालक का खेल है। मोह की संवृम्भद्ध पर वह भ्रान्त नहीं ंहोता।

अयर्ार्थदशी अशवद्यायुक्त मनुष्य ही ऐसा शचन्तन करेगा- "तमस् ने ये मझे घेर शलया है। मैं भ्रशमत हो रहा हाँ। मैं िििता, मूढ़ता, तिा, शनिा, आलस्य के आधीन हो रहा हाँ। अब मैं रिस् के वश में हाँ। अब मुझे कायथ करना

प्रिगा। यह दु:खद है। मैं स्वप्रकृशत से पशतत हो गया हाँ। इससे मुझे बहुत दु:ख हो रहा है। अब मैं सत्त्व के प्रभाव में हाँ। मैं ज्ञान और सुख में आसक् हो रहा हाँ। अपने ज्ञान और शवित्ता का मुझे अशभमान हो गया है।"

मुक् संन्यासी, ि ो शत्रगुणातीत है, उनकी शवद्यमानता में उनसे िेष नहीं ंकरता।

एक साम्भत्त्वक, रािशसक अर्वा तामशसक मनुष्य प्रकाश, प्रवृशत्त अर्वा मोह की कामना करता है ि ो अशभव्यम्भक् के पश्चात् लुप्त हो गये। शत्रगुणातीत िीवनुमुक् इन गुणों ंके लुप्त होने पर उनकी कामना नहीं ंकरता। यह लक्षण मानशसक अवस्ा का है। अन्य लोग इसे प्रत्यक्ष नहीं ंदेख सकते, न ही इसकी खिो कर सकते हैं। केवल मात्र स्वयं ही इस स्वयंवेद्य अवस्ा की पहचान की िा सकती है। अन्तचथक्षु अर्वा शदव्य दृशष्ट से ि ो शविान् इसका ईक्षण कर सकता है वह दूसरे मनुष्य के मन में िाग्रत हो रही इच्छा को भी स्पष्ट देख सकता है।

आगामी तीन श्लोकों ंमें भगवान् अिुथन के शितीय प्रश्न का उत्तर देते हैं-"शत्रगुणातीत पुरुष का आचरण कैसा होता है?"

उदासीनवदासीनो गुणैयो न डवचाल्यते ।
गुणा वतमत इत्येव योऽवडतिडत नेङ्गते ।।२३ ।।

ब्िार्थम : उदासीनवत् - उदासीन की भााँशत, आसीनः-म्भस्त, गुणैः गुणों ंके िारा, यः ि ो, न-नहीं,ं शवचाल्यते-शवचशलत होते, गुणाःगुण, वतथन्ते-बरत रहे हैं, इशत-इस प्रकार, एव-ही, यः-ि ो, अवशतष्ठशत-आत्मस् रहता है, न-नहीं,ं इङ्गते-शवचशलत होता है।

अनुवाद : उदासीन भाव से ि ो (शविान् संन्यासी) म्भस्त रहता है उसे गुण शवचशलत नहीं ंकरते और ि ो यह िान लेता है गुण ही शक्रयारत हैं (गुण ही गुणों ंमें बरत रहे हैं) वह आत्मम्भस्त पुरुष शवचशलत नहीं ंहोता।

व्याख्या : वह पक्षपात रशहत हो कर अपने भाव में म्भस्त रहता है। वह रागिेष से मुक् होता है। गुण और शरीर रहें या न रहें वह इन सब से सवथर्ा शवरक् रहता है। वह तो शक्रकेट मैच, फुटबाल मैच अर्वा शकसी नाटक का ष्टिा रूप बन कर रहता है। वायु चलने से िैसे आकाश अप्रभाशवत रहता है उसी प्रकार गुणों ंके कायथ से वह सवथर्ा उदासीन (शनशलथप्त) रहता है।

आत्म-साक्षात्कार के मागथ से वह शवचशलत नहीं ंहोता। दृढ़ संकल्प से वह मागथ का अशतक्रमण करता है। वह सोचता है और अनुभव करता है-"गुण ही शरीर, मन, इम्भिय रूप में पररणत हुए हैं। वे एक-दूसरे पर अन्योन्य भाव से कायथरत हैं, एक में एक बरत रहे हैं", ऐसा सोच कर वह उनसे शवचशलत नहीं ंहोता। वह अपनी आत्मा में मेरु पवथत के समान अशिग रहता है, दृढ़ता पूवथक म्भस्त रहता है। (शनरूपण - III.28.V.8-11)

समदुःखसुखः स्वथर्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यडप्रयाडप्रयो धीरसुतुल्यडनन्दिासंसुतुडतः ।।२४ ।।

ब्िार्थम : समदुःखसुखः सुख-दुःखख में समान, स्वस्ः स्वरूप में अवम्भस्त, समलोष्टाश्मकाञ्चनः-स्वणथ, पाषाण खण्ड और मृशत्तका खण्ड को समान देखने वाला, तुल्यशप्रयाशप्रयः - शप्रय, अशप्रय में समान, धीरः- धीर, दृढ़, तुल्यशनन्दात्मसंसुतुशतः-शनन्दा और सुतुशत में सम।

अनुवाद : सुख-दुःख में ो समान है, ो स्वस्त् है अर्ाथत् अपने स्वरूप में (आत्मा में) म्भस्त है, शिसके शलए स्वणथ, पत्थर और शमट्टी समान हैं, ो शप्रय-अशप्रय में भेद नहीं रखता, ो धीर है (बुम्भद्धमान है) और शिसे अपनी शनन्दा और सुतुशत दोनों समान प्रतीत होते हैं।

व्याख्या : धरा पर गढ़े हुए स्तम्भ के शलए अहोरात्र का कोई अशभप्राय नहीं है। इसी प्रकार आत्मम्भस्त यशत के शलए सुख और दुःख कोई प्रयोिन नहीं रखते। वह ि ों से ऊपर है। उसकी दृशष्ट में स्वणथ अर्वा गोमय (गोबर), मशण (हीरा) अर्वा प्रस्तर (पत्थर) समान मूल्य के हैं। आदान-प्रदान के भाव से वह मुक् है। शप्रय अर्वा अशप्रय वसुतु से वह सुखी और दुःखी नहीं हब से कूल-प्रशतकूल वसुतुओं में वह समभाव रहता है। शनन्दा और सुतुशत उसको प्रभाशवत नहीं करते। वह दृढ़ संकल्प रहता है। वह अपने सत्-शचत्-आनन्द स्वरूप में म्भस्त रहता है। वह सदा शान्त और सौम्य रहता है। (शनरूपण-V.18)

मानापमानयोसुतुल्यसुतुल्यो डमत्रारर पक्षयोः ।
सवामरम्भपररत्यागी गुणातीतः स उच्यते ।।२५ ।।

बि्ार्थम : मानापमानयोः मान और अपमान में, तुल्यः समान, तुल्यः समान, शमत्रारर पक्षयोः-शमत्र और शतुरु पक्ष में, सवाथरम्भपररत्यागी-दृष्ट अर्वा अदृष्ट फल के शलए शकये िाने वाले कमों (आरम्भ) का त्याग करने वाला, गुणातीतः गुणों से अतीत, सः-वह, उच्यते-कहा िाता है।

अनुवाद : ो मान-अपमान में, शमत्र और शतुरु में समान है और समस्त आरम्भों का त्याग करने वाला है वह गुणातीत कहलाता है।

व्याख्या : मान-अपमान में वह अपना मन सनुतुशलत रखता है। शमत्र और शतुरु के शलए वह समरूप है। वह िन्ि से शवचशलत नहीं होता। वह गुणातीत हो चुका है। वह अपने सम्भिदानन्द स्वरूप में अवम्भस्त रहता है। वह अपनी आत्मा में म्भस्त रहता है। वह प्रकृशत के गुणों का अशतक्रमण कर चुका है। अब वह गुणों की क्रीा से प्रभाशवत नहीं होता। सब शवकारों (पयाथसों) में वह समदृशष्ट रखता है। वह प्रशान्त साम्यावस्ा बनाये रखता है।

दृष्ट अर्वा अदृष्ट फल देने वाले समस्त कमों का वह त्याग कर देता है शकनुतु शरीर के शनवाथह हेतु अशनवायथ कमथ करता है। श्लोक २३.२४.२५ में उदासीनता आशद गुण मोक्ष प्राम्भप्त में साधन हेतु हैं। वे तुम्हारे समक्ष एक आदशथ प्रसुतुत करते हैं शिनका अनुकरण करना चाशहए। साधक को उन गुणों का शवकास करना चाशहए। शकनुतु स्वरूप म्भस्थशत में ही आत्म-ज्ञान सम्भव है। ये शवशेषतायें उसके स्वभाव का अशभन्न अङ्ग बन कर यह दशाथती हैं शक वह शत्रगुणातीत है।

अगले श्लोक में भगवान्, अिुथन के तृतीय प्रश्न का उत्तर देते हैं "तीन गुणों से ऊपर कैसे उठें?"

मां च योऽव्यडभचारेण भन्द्रक्तयोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।२६ ।।

बि्ार्थम : माम् -मुझे, च-और, यः- ो, अव्यशभचारेण - अशवचशलत भाव से, भम्भक्योगेन-भम्भक् योग से, सेवते-सेवा करता है, सः- वह, गुणान् गुणों को, समतीत्य-अशतक्रमण कर के, एतान् -इन, ब्ह्मभूयाय-ब्ह्म भाव के शलए, कल्पते-समर्थ होता है।

अनुवाद : अनन्य भम्भक्भाव से ◌ो मेरी सेवा करता है वह गुणातीत हो कर ब्र्ह्मभाव में म्भस्र्त होने के शलए समर्थ होता है।

व्याख्या : संन्यासी अर्वा कमथयोगी, सब के हृदयों ◌ंमें म्भस्र्त उस नारायण की अनन्य भम्भक्भाव से सेवा करता है उसे आत्म साक्षात्कार होता है तत्पश्चात् वह गुणातीत हो कर आवागमन के चक्र से मुक् होने, मोक्ष प्राम्भप्त करने अर्वा ब्र्ह्म स्वरूप बनने के शलए शक्य हो ◌िाता है।

भगवान् की अहेतुकी अनुकम्पा से वह आत्म-ज्ञान प्राप्त करता है। "पे्रेम भाव से मेरी उपासना करने वाले सदा समम्भित उन भक्ों ◌ंको मैं शववेक देता हाँ शिससे वे मुझे प्राप्त होते हैं।" "उनके प्रशत अनुग्रह के भाव से, उनके अन्तःकरण में म्भस्र्त मैं अशवद्या–शनत अन्धकार को प्रकाशमय ज्ञानदीप के ◌िारा नष्ट कर देता हाँ।" (शनरुपण - X .10.11)

अव्यशभचाररणी भम्भक्-भक् अनवरत रूप से भगवान् का ध्यान करता है। भक् का भगवान् के प्रशत अनन्य भम्भक् भाव रहता है। भगवान् के अशतररक् अन्य कोई शवचार उसके मन में नहीं ◌ंउठता। भगवत् भाव से मन पूणथ रहता है। तैलधारवत् उसके शवचार भगवान् के प्रशत शनरन्तर चलते रहते हैं। सिातीय-वृशत्त-प्रवाह अर्ाथत् शवचारों ◌ंकी अटूट शृंखला बनी रहती है। इम्भिय-शवषयों ◌ंके शवचारों ◌ंका पूणथ अभाव रहता है। शत्रगुणातीत बनने के शलए भगवद् भाव का सतत प्रवाह शवश्वस्त साधन है।

ब्रह्मणो डि प्रडतिाऽमिमृतस्याव्ययस्य च ।
िाश्वितस्य च धममस्य सुखसै्यैकान्द्रतकस्य च ।।२७ ।।

बि्र्थम : ब्र्ह्मणः ब्र्ह्म का, शह-शनस्सने्देह, प्रशतष्ठा-आश्रय, अहम् -मैं, अमृतस्य अनश्वर का, अव्ययस्य-अशवनाशी का, च-और, शाश्वतस्य-शाश्वत का, च-और, धमथस्य-धमथ का, सुखस्य-आनन्द का, एकाम्भन्तकस्य-सुख स्वरूप अर्ाथत् व्यशभचार रशहत, आनन्दमय, च-और।

अनुवाद : क्योंशंक मैं अव्यय और अमृत स्वरूप ब्र्ह्म का, धमथ का और परम आनन्द का आश्रय हाँ।

व्याख्या : अमर, अनश्वर आत्मा ◌ो आत्म-ज्ञान के शाश्वत धमथ के ◌िारा प्राप्य है और ◌ो कभी क्षय न होने वाला आनन्द है, मुझ परमात्मा में प्रशतशष्ठत है। मैं, अन्तरात्मा, परमात्मा की प्रशतष्ठा हाँ। आत्म-ज्ञान के पश्चात् शदव्य दृशष्ट िारा साधक देखता है शक अन्तरात्मा ही परमात्मा है क्योंशंक वही उसका शनवास स्र्ान है।

अपनी शम्भक् अर्वा माया से भगवान् अपने भक्ों ◌ंपर दया और कृपादृशष्ट करते हैं। शम्भक् और भगवान् अशभन्न हैं। अशग्न से ◌िैसे उष्णता पृर्क् नहीं ◌ंहै वैसे ही भगवान् की शम्भक् उनसे पृर्क् नहीं ◌ंहै। शम्भक् भगवान् में प्रशतशष्ठत है अतः पृर्क् नहीं ◌ंहो सकती।

एक और व्याख्या इस प्रकार है-ब्र्ह्म का अशभप्राय यहााँ सगुण ब्र्ह्म से है ◌ो सोपाशधक है। मैं, परब्र्ह्म, तीन गुणों ◌ंसे अतीत हो कर उपाशधरशहत शनगुथण ब्र्ह्म, पूणथ ब्र्ह्म (परमात्मा), सगुण ब्र्ह्म की प्रशतष्ठा (आश्रय) हाँ ◌ो शनत्य है और अनश्वर है। ज्ञान-शनष्ठा के परम धमथ का भी मैं आश्रय हाँ तर्ा अशवचशलत अनन्य भम्भक् से उत्पन्न एकाम्भन्तक आनन्द का भी मैं ही आश्रय हाँ।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषत्सु
ब्रह्मडवद्यायां योगिासे्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे

गुणत्रयडवभागयोगो नाम चतुदमोऽध्यायः ।।१४ ।।
।। इडत गुणत्रयडवभागयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर् पञ्चदशोऽध्यायः

पुरुषोत्तमयोगः

श्री भगवानुवाच

ऊध्वमूलमधःाखिमश्वत्ंथं प्राहरव्ययम् ।
न्दिांडस यस्य पणामडन यस्ंतं वेद स वेदडवत् ।।१ ।।

बि्ार्थम : ऊध्वथमूलम् ऊपर की ओर मूल वाला, अधःशाखम् - नीचे शाखा वाला, अश्वत्थम् - अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष, प्राहुः-कहते हैं, अव्ययम् - अनश्वर, छन्दांशस वेद, यस्य-शिसके, पणाथशन-पत्ेते, यःि-ो, तम् - उसे, वेद- िानता है, सः वह, वेदशवत्-वेदों ंका ज्ञाता है।

श्री भगवान् ने कि‍ा

अनुवाद : वे (शविन) अशवनाशी अश्वत्थ वृक्ष को ऊपर मूल और नीचे शाखा वाला कहते हैं शिसके पत्ेते छन्द अर्ाथत् ऋचायें हैं। िो इसे िानता है वह वेदों ंको िानने वाला है (वेदज्ञ है)।

व्याख्या : पीपल के वृक्ष रूप में शवश्व का वणथन केवल रूपक भेद से अलंकाररत है। यह पीपल शाश्वत कहा िाता है क्योंशंक ज्ञान रूप खि्ग से ही इसको काटा िा सकता है।

कमथफल के शलए सब मनुष्य भगवान् के आधीन हैं क्योंशंक केवल वही कमथ और फल के सम्बन्ध को ानिने वाला है। मनुष्यों ंको कमथफल प्रदान करने वाला केवल वही है। ज्ञानी पुरुष भी अपने ज्ञान का फल पाने के

शलए उसके आधीन है। अपनी कृपा दृशष्ट से ईश्वर ही अज्ञान रूप आवरण को शनवृत्त करता है। उसी की कृपा से वेदान्त-साधना की प्ेरेरणा होती है।

"भगवान् की कृपा से ही मन में एकत्व भाव उत्पन्न होता है ो सब प्रकार के भय से मुक् करने वाला है।"-अवधूत गीता १.१

अनन्यमनस्क हो कर भगवान् की आराधना करने वाले साधक उनकी कृपा से शत्रगुणातीत हो ाते हैं। उनकी दया से आत्म-ज्ञान प्राप्त कर के वे न्म-मृतुयु के बन्धन से परे हो ाते हैं। सम्यक् शववेक और यर्ार्थ ब्र्ह्म ज्ञान होने पर सहि ही मोक्ष की प्राम्भप्त होती है।

इस उपदेश में भगवान् ब्र्ह्म की यर्ार्थ प्रकृशत और आत्मा का उन तक पहुाँचने का साधन बताते हैं। संसार की प्रकृशत की उपमा भगवान् पीपल के वृक्ष से देते हैं, वे मनुष्य को शवरम्भक् का उपदेश देते हैं क्योंशंक शबना वैराग्य के आत्म-ज्ञान सम्भव नहीं।ं संसार को वृक्ष की उपमा दी गई है क्योंशंक वृक्ष की भााँशत इसका भी उचे्छेदन हो सकता है।

अन्य सभी वृक्षों ंकी मूल नीचे की ओर होती है शकनुतु इस संसार (माया) रूपी शवशेष, अद्भुत, अलौशकक वृक्ष की मूल ऊपर की ओर है। अन्य सभी वृक्षों ंकी अपेक्षा यह वृक्ष अनोखा है। सब पदार्ों का आश्रय ब्र्ह्म है। ब्र्ह्म शाश्वत है। ब्र्ह्म महान् है। ब्र्ह्म सविो है। ब्र्ह्म परम पुरुष है। ब्र्ह्म सब वसुतुओं ंसे श्ेरेष्ठ है। ब्र्ह्म सब पदार्ों का मूल स्रोत है। इसीशलए इसे एक अर्ाथत् अशितीय और ऊध्वथ कहा है। सवोतूकृष्ट होने से ब्र्ह्म ही इस संसार रूपी वृक्ष का मूल कारण है।

पुराण में शववशक्षत है- अव्यक् वृक्ष ब्र्ह्म से उत्पन्न हुआ। बुम्भद्ध इसकी मूल है, इम्भियााँ इसके कोटर (शून्य गभथ) हैं, महाभूत शाखा-प्रशतशाखा हैं, इम्भियों ंके शवषय पते्ते हैं, अधमथ और धमथ सुन्दर पुष्प हैं, दुःख और सुख फल हैं। आत्म-ज्ञान रूपी श्ेरेष्ठ खि्ग ारा इस शम्भक्शाली वृक्ष का छेदन कर के ब्र्ह्म का शाश्वत आनन्द प्राप्त कर के पुनः वहााँ से कोई नहीं ंलौटता।

इस वृक्ष का मूल ब्र्ह्म है। यह वृक्ष का ऊपरी भाग होने से ऊध्वथ अशभशहत है। यर्ार्थतः उस एक अखण्ड एकत्व में ऊध्वथ, शनम्न और मध्य रूप कोई भेद नहीं ंहै।

अश्वत्थ नाम अ-श्वत्थ से बना है शिसका अशभप्राय है- "कल तक र रहने वाला"। अ का अर्थ 8 - 75f । श्व- आने वाला कल है और र्-म्भरूरता के भाव में है। क्षणभङ्गुर, सदा पररवतथनशील संसार-वृक्ष के शलए यह (अश्वत्थ) समुशचत शब्द है।

कठोपशनषद् में भी इस अश्वत्थ वृक्ष का वणथन है (11.6.1)। गीता उपशनषदों ंका ही सार है।

संसार का अशभप्राय प्रायः इतना ही शलया ाता है शक मनुष्य की पत्नी हो, बिे हों,ं उनसे शघरा रहे और शनत्य कतथव्य-कमथ करता रहे। यह अत्यन्त संकुशचत अर्थ है। संसार का अर्थ है- 'समस्त सृशष्ट का प्रशक्रया-क्रम'। अर्वा "वैशश्वक अशभव्यम्भक्" अर्वा "शनत्य पररवशतथत होने वाला संसारचक्र"। शहरण्यगभथ, व्यशष्ट आत्मायें, वैशश्वक चेतना, अहंकार, मूल-महाभूत आशद इस संसार वृक्ष की शाखायें हैं। वे नीचे की ओर प्रवृत्त होती हैं। वे सू्ल से सू्लतम अवस्ाओं ंको प्राप्त होती हैं। इसशलए कहा ाता है शक वृक्ष की शाखायें नीचे की ओर हैं। अहंकार ही वह अंकुर है ो अधोगामी है और प्रकृशत के तीन गुण रूपी तीन शदशाओं ंमें प्रवृत्त होता है।

मन शाखा है। पंच महाभूत-पृथ्वी, िल, अशग्न, वायु, आकाश और पाँच ज्ञानेम्भियाँ शाखा-प्रशतशाखा हैं। इसके पश्चात् है ध्वशन ि कणों को मधुर संगीत श्रवण के शलए प्ेरेररत करती है। स्पशथ, त्वचा को कोमल स्पशथ का सुख लेने के शलए प्ेरेररत करता है। रूप चकु्षु को सुन्दर लुभावना दृश्य देखने को प्ेरेररत करता है। रसना, शिह्वा को स्वाशदष्ट पदार्थ के स्वाद के शलए प्ेरेररत करती है। गन्ध, नाशसका को सुगम्भन्धत शवषय का सुख प्रदान करती है।

कमों के मूल से और फल की आशा से पुनिथन्म रूपी नवीन शाखा उशदत होती है। खशनि पदार्थ, वनस्पशत संसार, पशु िगत् और मनुष्य िगत्-ये सब संसार वृक्ष की शाखायें हैं। मनुष्य शरीर की सहायता से शुभाशुभ कमथ करता है और पररणाम भोग हेतु पुनिथन्म लेता है। मानव काया इस संसार वृक्ष का िल है।

शरीर स्वयं ही पीपल का वृक्ष है। मूल मेरुदण्ड में म्भस्त सुषुम्ना और स्नायु मण्डल (मम्भस्तष्क) है। शवशभन्न शरायें उपशाखा रूप में शवभक् हो कर, शनम्नगामी होकर शरीर के शवशभन्न अंगों ंमें शवभक् हो िाती हैं।

अव्यय-शाश्वत । क्योंशक यह वृक्ष िन्मों ंकी अनाशद और अनन्त अटूट शृंखला पर आशश्रत है। इस प्रकार से यह शनत्य है। ब्र्ह्म-ज्ञान की खड्ग से इसे काटा िा सकता है। वृक्ष को िैसे पते्ते रक्षा प्रदान करते हैं वैसे ही वेद धमथ-अधमथ, उनके कारण और पररणाम को प्रकट करने वाले होने के कारण संसार रूपी वृक्ष की रक्षा करते हैं।

ऊपर वशणथत मूल सशहत इस वृक्ष (शवश्व वृक्ष) को िानने वाला, वेदों ंको अर्ाथत् वेदों ंके अर्थ को िानने वाला है। वह वेदों ंके उपदेश को िानने वाला है। मूल सशहत इस संसार वृक्ष से अन्य िानने योग्य वसु्तु अणुमात्र भी नहीं ंहै। इस प्रकार िानने वाला सवथज्ञ है। साधकों ंको इस ज्ञान की प्राम्भप्त हेतु प्ेरेरणा देने के शलए भगवान् ने संसार वृक्ष के ज्ञान की सुतुशत की है।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य िाखा
गुणप्रवृद्धा डवषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंतताडन
कमामनुबन्धीडन मनुष्यलोके ।।२ ।।

ब्र्ार्थम : अधः नीचे, च-और, ऊर्ध्वं-ऊपर, प्रसृताः-फैली हुई, तस्य-उसकी, शाखाः-शाखायें, गुणप्रवृद्धाः- गुणों ंसे पोशषत, शवषयप्रवालाः- िें, मूल, अधः नीचे, च-और, मूलाशनि-, मूल, अनुसंतताशन-शवसूतृत, कमाथनुबन्धीशन बन्धन में िालने वाली, मनुष्यलोके मनुष्य लोक में।

अनुवाद : गुणों ंिारा पोशषत इसकी शाखायें नीचे और ऊपर फैली हुई हैं। इम्भियों ंके शवषय कशलका (कशलयाँ) हैं। नीचे मनुष्य लोक पयथन्त इसकी िें (मूल) शवसूतृत हैं िो कमथ बन्धन में िालने वाली हैं।

व्याख्या : अनन्त शवषय, बडे और छोटे, िो िीवन शनवाथह हेतु आवश्यक हैं, पंच महाभूतों ंमें तीन गुणों ंकी चेष्टा से उत्पन्न होते हैं। इस संसार-वृक्ष का पोषण तीन गुणों ंसे होता है। इम्भियों ंके शवषय इसकी कशलयाँ हैं और नीचे की ओर िाने वाली मूल उन लोगों ंके शलए कमथबन्धन की शृंखलायें हैं िो इस िगत् में आसम्भक् और मोह का िीवन यापन करते हुए िों ं(रागि-ष आशद) के चक्र में फंस कर उनके वश में हो िाते हैं अर्ाथत् अपना संयम खो बैठते हैं। शब्द, स्पशथ, रूप, रस और गन्ध सशहत इम्भियों ंके लुभावने शवषय इस शवलक्षण वृक्ष के अंकुर हैं। पूवथिन्मों ंकी काशमथक वृशत्तयाँ िें हैं िो नीचे मनुष्य लोक में शवस्तार को प्राप्त हो कर कमों के अनुबन्ध उत्पन्न करने वाली हैं। ये िकिमों के िारा बन्धन को और दृढ़ करती हैं।

मौशलक मूल अशवद्या से अष्टधा प्रकृशत अशभव्यक् होती है। पााँच महाभूत, मन, बुम्भद्ध और अहंकार ये अष्टधा प्रकृशत के अन्तगथत हैं। वृक्ष के तने से स्वेिदि, अण्डि, िरायुि और उम्भद्धि नामक शाखायें शनकलती हैं। इनसे चौरासी लाख योशनयााँ अम्भस्तत्व में आती हैं।

एक शाखा ऊपर की ओर शवकशसत होती है। यह धमथ की शाखा है िो स्वगथ में सुख-भोग प्रदान करने वाली है। अन्य शाखा वैराग्य की है िो आत्म साक्षात्कार की फलदा शाखा है। सूयथ, नक्षत्र, शपतर, ऋशष-मुशन भी इस अलौशकक वृक्ष से उत्पन्न हुए हैं। इनसे ऊपर इिलोक तरा अन्य देव लोकों ंकी शाखायें हैं। और भी ऊपर संन्यासी, तपस्वी, यशतयों ंके लोक हैं। इससे भी और ऊपर सत्य लोक है िहााँ शहरण्यगभथ का वास है।

मनुष्य से लेकर नीचे अचल पदार्ों पयथन्त और उससे ऊपर ब्र्ह्मा के लोक तक ज्ञान और कमथ की प्रकृशत के अनुरूप िोि–ो भी लोक प्राप्त होते हैं वे सब संसार-वृक्ष की शाखाप्रशतशाखारूप से शवस्तार हैं। वे तीन गुणों ं िारा पोशषत और शवकशसत होते हैं शिनका आधार भौशतक िगत् है।

इम्भियों ंके शवषय शब्द, स्पशथ, रूप, रस और गन्ध कशलयों ंका प्रशतशनशधत्व करते हैं िो कमथ के पररणाम स्वरूप प्राप्त भौशतक शरीरों ंकी शाखाओं ंसे प्रसुफुशटत होते हैं।

इस अद्‌भुत संसार वृक्ष का परम मूल ब्र्ह्म है। गौण मूल (िडें) रागि–ष के सुप्त संस्कार हैं िो इस मत्यथलोक में शवस्तार को प्राप्त हो कर मनुष्य को शुभाशुभ कमथ में प्रेररत करके बन्धन में िालते हैं।

अब सुनो! इस वृक्ष का उनूमूलन कैसे शकया िाये। इस प्रकार बताये गये ढंग से आचरण करके िो इस संसार वृक्ष को काट देता है वह इस लोक में भी सुखी रह सकता है। उसके पास सविो ज्ञान है क्योंशंक वह उस वृक्ष का िष्टा बन कर रहता है और िैसा यह है उसका ज्ञान रखता है। उसके बन्धन में नहीं ंआता।

न रूपमस्येि तर्थोपलभ्यते
नातो न चाडदनम च संप्रडतिा ।
अश्वत्थमेनं सुडवरूढमूल-
मसङ्गिस्त्रेण दृढेन डित्त्वा ।। ३ ।।

ब्र्ार्थम : ननहीं,ं रूपम् -रूप, अस्य-इसका, इह यहााँ, तरा वैसा ही, उपलभ्यते-देखा िाता है, न-नहीं,ं अन्तः- (इसका) अन्त, ननहीं,ं च-और, आशदः-आशद, न-नहीं,ं च-और, संप्रशतष्ठा-आश्रय, अश्वत्थम् - अश्वत्थ, एनम्-यह, सुशवरूढमूलम् - दृढ़ मूलों ंवाले, असङ्गशस्त्रेण वैराग्य रूपी शस्त्र से, दृढेन-दृढ़ता से, शछत्त्वा-काट कर ।

अनुवाद : िैसा वणथन शदया गया वैसा स्वरूप इस संसार वृक्ष का यहााँ उपलब्ध नहीं ंहै। न तो इसका अन्त, न आशद और न ही म्भस्र्शत देखे िा सकते हैं। वैराग्य के दृढ़ शस्त्र से इस दृढ़ मूलों ंवाले पीपल वृक्ष को काट कर,

व्याख्या : भाव अगले श्लोक में पूणथ होगा।

मनुष्य िब तक अशवद्या के वश में है, तब तक वह इस वृक्ष के स्वरूप, आशद, अन्त और म्भस्र्शत (मध्य) को नहीं ंिान सकता। हे अिुथन, कदाशचत् तुम कल्पना करोगे शक इतने शवशाल वृक्ष को कैसे उखाडा िा सकता है। ऐसा नहीं ंहै। इसे तो आाँख झपकते ही, वैराग्य (अनासम्भक्) की शम्भक्शाली खड्ग से उखाडा िा सकता है।

इस वृक्ष को काट कर अन्तमुथखी हो िाओ, आत्मा पर ध्यान करो और ईश्वर के दशथन करो।

तऱ्ा इस प्रकार का्ैसा ऊपर वणथन शकया गया है।

क्या यह सम्भव है शक हम हवाई शकले नीचे उतारें (मनोराज्य करें), अर्वा खरगोश के सींगं तिो़ं अर्वा आकाश-कुसुम तिो़ं अर्वा मगरमच्छ के दुग्ध से नवनीत प्राप्त करें अर्वा पत्थर में से तेल शनकालें? एवंशवध, हे अिुथन, इस संसार वृक्ष में सत्य कुछ नहीं ंहै। अतः इसे काटा िाये अर्वा नहीं,ं तुम इसके शलए भयभीत क्यों ंहो रहे हो? इस शवश्व में इसका यऱ्ार्थ रूप कोई नहीं ंदेख सकता। यह स्वप्न की वसुतु है, मृगतृष्णा का िल है, मेघों ंिारा अर्वा शकसी िादूगर िारा आकाश में रशचत काल्पशनक नगर है। यह दृश्य रूप में आ कर अदृश्य हो िाता है। इस वृक्ष का िष्ट-नष्ट-स्वरूप है िो मृगतृष्णा के िल की भााँशत है। देखते-देखते नष्ट होने वाली वसुतु िष्ट-नष्ट है। शकसी ने अन्त नहीं ंदेखा इस मायाशवक वृक्ष का, और न ही इसका आशद और मध्य देखा है। कोई नहीं ंबता सकता शक यह अमुक स्ऱ्ान से अर्वा अमुक शबन्दु से प्रारम्भ होकर चल रहा है।

संसार-वृक्ष की मूलें अत्यन्त शम्भक्तशाली और गहरी हैं। इनका छेदन करने के शलए संघषथ करना होगा ताशक यह बिी सशहत अर्वा गहरी मूल सशहत उखिा़ िा सके िो और मूलों ंको िन्म देने वाली है।

असङ्ग-वैराग्य, पुत्ऱ्ेषणा, शवत्ेतेष्णा और लोकेष्णा से उपरामता ।

दृढेन-बलशाली ।

तुम्हें शववेक के अभ्यास रूपी पत्थर पर वैराग्य की तलवार को तेि कर के इस वृक्ष को काटना होगा। तुम्हारा मन परमात्मा की ओर इस भाव से उनुमुख होना चाशहए शक उसी में तुम शाश्वत शाम्भन्त प्राप्त कर सकते हो, वही एक सत्य है। इस परम आनन्द की प्राम्भप्त हेतु तुम्हें दृढ़ संकल्प करना होगा।

इम्भिय-शवषयों ंकी इच्छा सङ्ग है। इसके शवपरीत, असङ्ग है। तीन प्रकार की एषणाओं ं(पुत्र-शवत्त और लोकेष्णा) का त्याग असङ्ग है। कुल्हिा़ी िैसे वृक्ष को काटती है वैसे ही वैराग्य (असङ्ग) इस संसार वृक्ष को काटता है। इसशलए असङ्ग को खि्ग (कुल्हिा़ी) कहा गया है। संसार वृक्ष का उच्छ्ेछेदन करने का अशभप्राय है इम्भिय-मन के संयम और असङ्ग िारा अहंकार, अशवद्या, सुप्त संस्कार, और कमथफल का त्याग करना। (शनरूपण—VII.14)

ततः पदं तत्पररमाडगमतव्ं्यं
यन्द्रस्मन्ब्गता न डनवतमन्द्रत भूयः ।
तमेव चाद्ं्यं पुरुषं प्रपद्ेये
यतः प्रवृडत्तः प्रसृता पुराणी ।।४ ।।

बि्ार्थम : ततः तब, पदम्-लक्ष्य, तत्-वह, पररमाशगथतव्यम् खोिना चाशहए, यम्भस्मन् -शिसमें, गताः- गये हुए, न-नहीं,ं शनवतथम्भन्त-लौटते, भूयः पुनः, तम्-उस, एव-ही, च-और, आद्यम्-आशद, पुरुषम् -पुरुष, प्रपद्ेये -मैं शरण लेता हाँ, यतः िहााँ से, प्रवृशत्तः-प्रवृशत्त (आरम्भ), प्रसृता-शवस्तार को प्राप्त हुई, पुराणी पुरातन ।

अनुवाद : तब वह लक्ष्य खोिना चाशहए िहााँ पहुाँच कर पुनरावृशत्त नहीं ंहोती अऱ्ाथत् पुनिथन्म नहीं ंहोता। मैं उस आशद पुरुष की शरण में हाँ िहााँ से इस सनातन प्रवृशत्त का शवस्तार हुआ है।

व्याख्या : सत्-शचत्-आनन्द रूप से समस्त ब्ह्माण्ड को आपूररत करने वाला पुरुष है अर्वा इस देह रूप पुरी में वास करने वाला पुरुष है।

सतत भगवत्-ध्यान और अनन्यमनस्क भम्भक् आत्म-ज्ञान प्राम्भप्त के शवश्वस्त साधन हैं। आशद पुरुष की शरणागत होने से उस परम पद की प्राम्भप्त होती है िहााँ िा कर पुनः इस संसार में लौटना नहीं ंप़िता।

साधक को शवष्णु के धाम का ज्ञान होना चाशहए। वहााँ पहुाँचने के शलए कशठन पररश्रम करना चाशहए। आशद पुरुष की शरण में आकर इसे प्राप्त करना चाशहए। यशद साधक शवष्णु के शाश्वत धाम को अर्वा अनश्वर ब्ाशिक वास को िान लेता है, शिसकी मशहमा और प्रकाश अक्षय्य हैं, तो पुनः वह मत्यथ लोक में नहीं ंलौटता।

परम पुरुष, आशद पुरुष, सम्भिदानन्द ब्ह्म ही परम लक्ष्य है। वही शवष्णु धाम है। शिस प्रकार बािीगर की माया से हार्, घो़ आशद मायाशवक वसुतुएाँ अम्भस्तत्व में आ िाती हैं उसी प्रकार आशद मूल शदव्य शम्भक् अर्वा मायावी संसार वृक्ष की प्रवृशत्त उस आशद पुरुष से होती है।

उस आत्यम्भन्तक लक्ष्य की प्राम्भप्त शकसे होती है? सुनो...

डनमामनमोिा डजतसङ्गदोषा
अध्याडनत्या डवडनवृत्तकामाः ।
न्द्विैडविमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
गमच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ।।५ ।।

बाथम : शनमाथनमोहाः-मान और मोह से शवमुक्, शितसङ्गदोषाः-संग रूप दोष को िीतने वाले, अध्यात्मशनत्याः - शनत्य आत्मा के शवचार में शनरत, शवशनवृत्तकामाः समस्त कामनाएाँ शिनकी मूल सशहत शनवृत्त हो गई हैं, िन्द्वैः-(सुख-दुःख आशद) िन्द्विों से, शवमुक्ाः - मुक्, सुखदुःखसंज्ञैः-सुख-दुःख, संज्ञक, गच्छम्भन्त-प्राप्त करते हैं, अमूढाः-मोह रशहत, पदम् -पद (लक्ष्य), अव्ययम् शाश्वत, तत्वह ।

अनुवाद : मान और मोह शिनका नष्ट हो गया है, िो सङ्गदोष पर शविय प्राप्त कर चुके हैं, िो शनत्य अपनी आत्मा में ही म्भस्र्त हैं, िो आप्तकाम हो चुके हैं अर्ाथत् शिनकी कामनायें पूणथ हो चुकी हैं, िो सुख-दुःख आशद िंिों ंसे मुक् हैं ऐसे (प्रकाश प्राप्त) अमूढ़ (संन्यासी) उस शाश्वत पद को प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : िहााँ भी मान है वहााँ अहंभाव है। सत्य और असत्य में शववेक-शून्यता मोह है। वैपरीत्य मोह है, बुम्भद्ध-लोप मोह है। सुख अर्वा दुःख प्राप्त होने पर भी िो इनके सङ्ग से मुक् रहते हैं अर्ाथत् सुख में झूलूते नहीं ंऔर दुःख में शवचशलत नहीं ंहोते वे सङ्ग दोष पर शविय प्राप्त कर चुके हैं।

कतथव्य भाव-मैं कताथ हााँ-यह सङ्ग है। रागि्वेष दोष हैं। शीतोष्णता, सुख-दुःख, मान-अपमान, सुतुशत-शनन्दा आशद शवपरीत िन्द्व हैं। अज्ञान-अशवद्या को समूल नष्ट कर के आत्म-ज्ञान प्राप्त करने वाले ही अम्भन्तम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

अध्यात्मशनत्यः - परमात्मा के शवचार में सदा संलग्न ।

शनवृत्तकामाः- पूणथ रूप से समस्त कामनायें शिनकी नष्ट हो गई हैं। इस अवस्र्ा को प्राप्त करने वाले यशत अर्वा संन्यासी हो िाते हैं। ज्ञान की 37sqrt(17) में समस्त इच्छायें नष्ट हो गईं। वृक्ष अशग्न की चपेट में आ िायें तो िैसे उस वृक्ष के पक्षी उड़ िाते हैं इसी प्रकार ज्ञान प्राप्त पुरुष से सब कामनायें दूर चली िाती हैं।

तत्-वह लक्ष्य, शिसका वणथन ऊपर आ चुका है।

न तिासयते सूयो न शिांको न पावकः ।
यद्गत्वा न डनवतमते तद्धाम परमं मम ।।६ ।।

बिार्थम : न-नहीं, तत्-उसे, भासयते-प्रकाशत करता है, सूयथः आशदत्य, न-नहीं, शशांक:- चिमा, न-नहीं, पावकः - अशग्न, यत् िहााँ, गत्वा–िा कर, न-नहीं, शनवतथन्ते-लौटते हैं, तत्-वह, धाम- धाम, परमम् -परम, मम-मेरा ।

अनुवाद : उस तेिोमय धाम को न तो सूयथ प्रकाशत कर सकता है, न चिमा और न ही अशग्न । िहााँ िा कर मनुष्य पुनः नहीं लौटते वही मेरा परम धाम है।

व्याख्या : वह परम धाम अपनी ही ज्योशत से ज्योशतत है क्योंशक ब्रह्म स्वयं प्रकाश है। सृशष्ट काल में सूयथ, चिमा और अशग्न के अम्भस्तत्व से पूवथ भी उसका अम्भस्तत्व र्ा। प्रलय काल में इन सब की अव्यक् म्भस्र्शत होने पर भी उसकी सत्ता शवद्यमान रहती है।

इस श्लोक का भाव कठोपशनषद् से उद्भूत है-

"वहााँ सूयथ नहीं चमकता और न ही चिमा और तारे, न ही शवद्युत् वहााँ चमकती है शफर अशग्न की तो बात ही क्या! इसके प्रकाशत होने पर इसके प्रकाश से सवथस्व प्रकाशत होता है।" (अध्याय II.5.15) यही भाव श्वेताश्वतरोपशनषद् (6.14) और मुण्डकोपशनषद् (II.2.10) में शमलता है।

सूयथ, चााँद आशद पर-ब्रह्म से ही प्रकाश प्राप्त करते हैं शकन्तु उस स्वयं प्रकाश ब्रह्म को प्रकाशत करने के शलए शकसी बाह्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं है।

धाम परमम्-परम ब्रह्म का परम उतृकृष्ट धाम। सब को प्रकाशत करने की शम्भक् से युक् सूयथ भी उस परब्रह्म को प्रकाशत नहीं कर सकता ।

"यत् धाम वैष्णवं पदं गत्वा प्राप्य न शनवतथन्ते यत् च सूयाथशदशभः न भासयते तत् धाम पदं परमं मम शवष्णोः।"

"वह धाम, िहााँ से पुनरागमन नहीं होता और शिसे सूयथ, चि, शसतारे, शवद्युत् और अशग्न आभाशसत नहीं कर सकते वह परम धाम शवष्णु का है ।" (शनरूपण-VIII.21)

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषिानीन्द्रियाडण प्रकृडतथर्थाडन कषमडत ।।७ ।।

बिार्थम : मम-मेरा, एव-ही, अंशः - भाग, िीवलोके िीव लोक में, िीवभूतः िीवात्मा बन कर, सनातनः सनातन, मनःषष्ठाशन-शिसमें मन छठी इम्भिय रूप है, इम्भियाशण (पााँच) इम्भियााँ, प्रकृशतस्र्ाशन-प्रकृशत में म्भस्र्त, कषथशत आकशषथत करता है।

अनुवाद : इस िीवलोक (संसार) में मेरा अपना ही अंश िीव बन कर, प्रकृशत में म्भस्र्त पााँच इम्भियों ंऔर छठे मन को आकशषथत करता है।

व्याख्या : अब भगवान् समझाते हैं शक व्यशष्ट आत्मा अम्भस्तत्व में कैसे आता है। िीवात्मा परमात्मा की एक शकरण है। वह शकरण प्रकृशत में प्रवेश करती है, पााँच इम्भियों ंऔर मन को आकशषथत करती है और शरीर धारण कर के िीव बन िाती है। सूक्ष्म शरीर अर्वा शलङ्ग शरीर स्र्ूल देह में कैसे प्रवेश करता है, इसका वणथन शदया िाता है।

िल में प्रशतशबम्भम्बत होने पर सूयथ दूशषत कदाशप नहीं ंहोता । रक्त वणथ के वस्त्र अर्वा पुष्प के संयोग में स्फशटक मशण भी उसी वणथ की प्रतीत होती है शकन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं।ं इसी भााँशत परम पुरुष िीवात्मा के कमों से कदाशप शलप्त नहीं ंहोता ।

अशवद्या ही िीवात्मा का सीशमत प्रशतबन्धक है। अशवद्या–शनत सीमाओं ंके कारण िीवात्मा स्वयं को कताथ और भोक्ता समझ बैठता है। सार-रूप में िीवात्मा ब्रह्म का ही एकरूप है। अशवद्या-शनवृशत्त होने पर सीशमत प्रशतबन्ध नष्ट होता है और िीवात्मा भगवत्साक्षात्कार करता है।

घटाकाश और महाकाश में घट सीशमत प्रशतबन्ध है। घट के फूटने पर घट के भीतर का आकाश बाह्य आकाश के सार् एक हो िाता है। घट यहााँ पर सीशमत दीवार है इसी प्रकार िीव और ब्रह्म के मध्य अशवद्या एक बाधक है। अशवद्या नष्ट होने पर ज्ञान का सूयथ उशदत होता है और िीवात्मा की सशन्नशध प्राप्त करता है। घट के नष्ट होने पर िैसे घट का आकाश पुनः नहीं ंलौटता वैसे ही अन्तःकरण आशद सीशमत प्रशतबन्धों ंके नष्ट होने पर िीवात्मा पुनः नहीं ंलौटता। यह ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है।

प्रशतशबम्ब, शबम्ब (शवषय) का अंश मात्र है। प्रशतशबम्भम्बत सूयथ वास्तशवक सूयथ (सूयथ शकरणों)ं का एक अंश है। िल को हटा शलया िाये तो मानो प्रशतशबम्ब भी वास्तशवक सूयथ की ओर लौट िाता है। पुनः िल की ओर नहीं ं लौटता। इसी प्रकार अशवद्या अर्वा मन की शनवृशत्त होने पर ब्रह्म का प्रशतशबम्ब िीवात्मा शबम्ब ब्रह्म में समा िाता है। इस मत्यथ लोक में उसका प्रत्यावतथन नहीं ंहोता।

"िीवात्मा ब्रह्म का एक काल्पशनक अंश है, सत्य नहीं।ं क्योंशंक पर-ब्रह्म अखण्ड स्वरूप है। इसके भाग नहीं ंहो सकते। यशद इसके भाग हो शवनाश को प्राप्त होने वाला होता हो पूणथता भंग होती है और शवनाश की म्भस्र्शत अवश्यम्भावी है।

इम्भियााँ प्रकृशत में म्भस्र्त हैं। प्रकृशत में कणथ, त्वचा, मुख, नेत्र और नाशसका में इम्भियों ंके वास स्र्ान शनशश्चत हैं। शहमालय की गुहा में वास करने बाला संन्यासी स्वप्न देखता है शक वह एक शववाशहत गृहस्र् है और िीशवका के शलए व्यवसाय की खोि में इतस्ततः भटक रहा है। इसी प्रकार व्यशष्ट आत्मा अपनी शदव्य प्रकृशत को भुला कर अपशवत्र, नश्वर देह पर पशवत्र अनश्वर आत्मा का अध्यास करता है और स्वयं को कत्ताथ और भोक्ता मान बैठता है। वह कल्पना करता है शक वह संसार में एक बद्ध िीव है। कभी सुखी है और कभी दुःखी है। इस प्रकार वह सीशमतता के घेरे में बााँध िाता है।

वसुतुतः िीव ब्र्ह्म से पृर्क् नहीं ंहै। मोह, कल्पना अर्वा अध्यास के कारण वह ब्र्ह्म से पृर्क् हो िाता है। मन ही वह प्रशतबन्धक है िो पार्थक्य भाव का भ्रम उत्पन्न करता है। घट के आकाश की भााँशत यह िीव-ब्र्ह्म- भेद-भ्राम्भन्त का िनक है। घट के नष्ट होने पर िैसे घटाकाश-महाकाश में शमल िाता है वैसे ही मन के नष्ट होने पर िीव-ब्र्ह्म-भेद शमट िाता है। गहन सुषुम्भप्त की अवस्र्ा में मन संस्कारों ंऔर वासनाओं ंसशहत सूक्ष्म रूप में अपने कारण मूल-अशवद्या में आशश्रत होता है। िाग्रत होने पर पुनः वह अशवद्या की अवस्र्ा से बाहर आ िाता है। यशद कारण (अशवद्या) को ही आत्म-ज्ञान से नष्ट कर शदया िाये तो इसका कायथ रूप मन स्वयं ही नष्ट हो िाये।

शिस प्रकार मकर अपने शसर और पैरों ंको, िो लय की अवस्र्ा में शरीर में रे्, शवसूतृत करता है, फैलाता है, उसी प्रकार िीवात्मा सुषुम्भप्त अवस्र्ा में (अपने) मूल कारण अशवद्या में म्भस्त अपने मन और इम्भियों ंका शवस्तार करता है शिससे िाग्रतावस्र्ा में वह शवषय-भोग कर सके।

परम पुरुष की एक शकरण प्रकृशत में प्रवेश करती है और पााँच इम्भियों ंतर्ा मन को अपनी ओर आकृष्ट करती है। इस श्लोक में सूक्ष्म शरीर के स्वरूप का वणथन है। श्रुशत कहती है-

स एष इह प्रशवष्टः आनखाग्रेभ्यः तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राशवशत् ।।

"वह परम पुरुष इस शरीर की शसर से पैर तक संरचना कर के िीव रूप में स्वयं उसमें प्रवेश कर गया।"

वेदान्त के अनुसार इस शरीर की रचना में उन्नीस तत्त्वों ंका प्रयोग होता है-पााँच ज्ञानेम्भियााँ, पााँच कमेम्भियााँ, पााँच मुख्य प्राण (प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान), मन, बुम्भद्ध, शचत्त (अवचेतन अर्वा अपराचेतन मन) और अहंकार । सार रूप में, पााँच इम्भियााँ और मन शेष तेरह तत्त्वों ंकी ओर भी संकेत करते हैं।

अंश-इसका अशभप्राय पृर्क् शकये हुए कण अर्वा काटे हुए भाग से कदाशप नहीं ंहै। यह घट के आकाश की भााँशत एक अंश है। आकाश के टुकडे़ नहीं ंशकये िा सकते। वह तो वही एक पूणथ तत्त्व ही रहता है। घट की दीवार टूटने पर घटाकाश महाकाश में शवलीन हो िाता है। (शनरूपण-XIV.3)

रीरं यदवाप्नोडत यिापुयुत्क्रामतीश्वरः ।
गृिीत्वैताडन संयाडत वायुगमन्धाडनवाियात् ।।८ ।।

शब्दार्थ : शरीरम् - शरीर, यत्–ब, अवाप्नोशत-धारण करता है, यत्–ब, चऔर, अशप-भी, उत्क्रामशत-उत्क्रमण (त्याग) करता है, ईश्वरः ईश्वर (िीवात्मा), गृहीत्वा-ले कर, एताशन-इन्ें, संयाशत–िाता है, वायुः वायु, गन्धान् गन्ध को, इव–िैसे, आशयात् - आश्रय (पुष्पों)ं से।

अनुवाद : िीवात्मा िो शरीर धारण करता है उसका उत्क्रमण करते समय वह इन (इम्भियों ंऔर मन) को उसी प्रकार अपने सार् ले िाता है शिस प्रकार वायु अपने आश्रय स्र्ल (फूलों ंआशद) से गन्ध को सार् ले िाता है।

व्याख्या : समस्त देह का स्वामी िीवात्मा शरीर धारण करते समय इम्भियों ंऔर मन को अपने सार् ले कर आता है और शरीर के शवघटन काल में (मृतुयु काल में) वह इम्भियों ंऔर मन को सार् ले िाता है िैसे वायु पुष्पों ंसे गन्ध को ले िाता है। पुनः वह िहााँ भी िा कर शिस रूप को प्राप्त करता है वह उसी मन और इम्भियों ंके िारा ही कायथ करता है।

ईश्वरः िीव-शरीर आशद का स्वामी।

शरीर धारण करते समय िीवात्मा कताथ अर्वा भोक्ा प्रतीत होता है।

श्रोत्ं चक्षुः स्पिमनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अडधाय मनश्चायं डवषयानुपसेवते ।।९ ।।

बि्ार्थम : श्रोत्रम् श्रोत्र (कणथ), चक्षुः - नेत्र, स्पशथनम् त्वचा, च - और, रसनम् रसना, घ्राणम्-नाशसका, एव - एव -ही, च-और, अशधष्ठाय-आश्रय कर के, मन: -मन, च-और, अयम् - यह (िीवात्मा), शवषयान् - 3sqrt(34) के शवषयों ंको, उपसेवते -भोगता है।

अनुवाद : यह (िीवात्मा) कणथ, नेत्र, त्वचा, रसना, घ्राण और मन के आशश्रत होकर इम्भियों ंके शवषयों ंका उपभोग करता है।

व्याख्या : सूक्ष्म शरीर स्रूल शरीर में वास कर के शकस प्रकार शवषयों ंका सेवन करता है-इसका वणथन शकया िाता है।

िीवात्मा इम्भियों ंसशहत मन का आश्रय लेकर शब्द, स्पशथ, रूप, रस और गन्ध-इन शवषयों ंका सेवन करता है।

मन रूपी अद्भुत कार (वाहन) पर सवार हो कर श्रोत्र के िार से पलक झपकते ही यह दौ़ि िाता है और संसार के शवशवध संगीत का आनन्द लेता है। संवेदनशीन शराओं ंको पक़ि कर यह स्पशथ तन्मात्रा के राज्य में प्रवेश करता है और त्वचा के रोम कूपों ंके माध्यम से कोमल शवशवध शवषयों ंका सुख लेता है। सुन्दर सुन्दर पवथत शखरों ंपर आरोहण कर के चक्षु िार से सौन्दयथशील रूपों ंका सेवन करता है। मुख रूपी गुहा में प्रवेश हो कर रसनेम्भिय का आश्रय ले कर यह सुस्वादु, सरस खाद्य पदार्ों का सेवन करता है। नाशसका िार से सुगन्ध वन में पहुँच कर मन भर कर सुगन्ध ग्रहण करता है।

कणथ, चक्षु, त्वचा, रसना, नाशसका और मन में अपना वास बना कर यह िीवात्मा शवषय-वासनाओं ंका भोग करता है। मन, बुम्भद्ध, अवचेतन मन, अहंकार, दस इम्भियाँ और पाँच प्राणों ंकी सहायता से यह बाह्य िगत् के अनुभव लेता है।

घ्राणमेव च-च (और) शब्द इस बात का संकेत देता है शक हमें पाँच कमेम्भियाँ और अन्तःकरण चतुष्टय (मन, बुम्भद्ध, शचत्त, अहंकार) का भी समावेश करना है।

कठोपशनषद् में कहा है-"आत्ेम्भियमनोयुक्ं भोक्ेत्याहुमथनीशषण:", इम्भियाँ, मन और आत्मा संयुक् रूप से भोक्ा कहलाते हैं, ऐसा शविानों ंका कर्न है। (शनरूपण - V.15-29; IX.24; XIII.21-32)

उत्क्रामतं न्द्रथर्थतं वाडप भुञ्जानं वा गुणान्द्रन्वतम् ।
डवमूढा नानुपश्यन्द्रत पश्यन्द्रत ज्ञानचक्षुषः ।।१०।।

बि्ार्थम : उत्क्रामन्तम् - (शरीर) त्यागते हुए को, म्भस्र्तम् -म्भस्र्त रहते हुए को, वा-अर्वा, अशप-भी, भुञ्जानम् -भोग करते हुए को, वा-अर्वा, गुणाम्भितम् - गुणों ंसे संयुक् हुए को, शवमूढाः-अज्ञानी िन, न-नहीं,ं अनुपश्यम्भन्त-देखते, पश्यम्भन्त-देखते हैं, ज्ञानचकु्षुषः- ज्ञान रूप नेत्रों ंवाले ।

अनुवाद : अज्ञानी िन उस िीवात्मा को शरीर त्यागते हुए, (शरीर में) म्भस्र्त हुए, भोग करते हुए अर्वा तीन गुणों ं से युक् हुआ नहीं ंदेखते । शकनु्तु शिनके पास ज्ञान चकु्षु हैं वे ज्ञानी िन उसे देखते हैं।

व्याख्या : यद्यशप आत्मा मनुष्य के अत्यन्त समीप है और सुगमता से उसकी चेतना के क्षेत्र में आ सकता है शकनु्तु शवमूढ़ और भ्रान्त िन उसे देखने में असमर्थ हैं क्योंशंक वे प्रकृशत के गुणों ंके आधीन हैं, उनके मन अनवरत रूप से इम्भिय-शवषयों ंमें भटकते रहते हैं और मोह िाल में फंस िाते हैं, वे शरीर को ही आत्मा समझ बैठते हैं और उनकी दृशष्ट बाह्य रूपों ंमें अटक कर रह िाती है। शकनु्तु अन्तचथकु्षु शिनके खुल चुके हैं वे उसे देख सकते हैं।

यम ने नशचकेता से कहा - "स्वयंभू ब्ह्म ने इम्भियों ंको बशहगाथमी बनाया। इसशलए मनुष्य बाह्य िगत् देखता है भीतर का नहीं।ं" आगे वे कहते हैं-"शकनु्तु अमृतत्व के इचु्छुक शवििन शवषयों ंसे पराङ्मुख हो कर दृशष्ट अन्तमुथखी कर के भीतर आत्मा के दशथन करते हैं|" कठोपशनषद् (IV.1)

ज्ञानी िन ज्ञान-चकु्षु से िान लेते हैं शक आत्मा शरीर से सवथर्ा पृर्क् है। वे शरीर से पृर्क् आत्मा के अम्भस्तत्व का अनुभव कर के िान लेते हैं शक चुम्बक के समक्ष लौह खण्ड की भााँशत, आत्मा के समक्ष शरीर चेष्टा करता है|

यततो योडगनशै्चैनं पश्यन्त्यिान्यवन्द्रथर्थतम् ।
यततोऽप्यकृतािानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ।।११ ।।

बि्ार्थम : यतन्तः- (पूणथत्व की प्राम्भप्त हेतु) यत्न करते हुए, योशगनः-योगी िन, च-और, एनम्-इसे, पश्यम्भन्त-देखते हैं, आत्मशन-आत्मा में, अवम्भस्र्तम् -म्भस्र्त, यतन्तः-यत्न करते हुए, अशप -भी , अकृतात्मानः - अशुद्धशचत्त वाले, न नहीं,ं एनम्-इसे, पश्यम्भन्त-देखते हैं, अचेतसः- अज्ञानी ।

अनुवाद : पूणथत्व प्राम्भप्त हेतु यत्न करते हुए योगी िन उसे आत्मा में म्भस्र्त देखते हैं शकनु्तु अशुद्ध शचत्त वाले और अज्ञानी िन यत्न करने पर भी उसे देख नहीं ंपाते।

व्याख्या : िीवात्मा का, उद्भव सम्बन्धी वणथन पूणथ हुआ।

लौह (दृढ़) शनश्चय से, आगे्नेय संकल्प से, शनष्ठा से, उद्यम और समाशहत शचत्त से योगी िन अपने हृदयों ंमें उसे म्भस्र्त देखते हैं। वे अपने ही मन-बुम्भद्ध में उसे अवम्भस्र्त देखते हैं। वे उसे इस प्रकार पहचानते हैं- "यह मैं हाँ"। शकनु्तु मूढ़ बुम्भद्ध, चंचल मन और इम्भियों ंवाले मनुष्य िो तपश्चयाथ, शनःस्वार्थ सेवा और दान से शवशुद्ध नहीं ंहुए, शिनका मन संयत नहीं ंहै, शिन्ोंनें सतत ध्यान का अभ्यास नहीं ंशकया है, अपने अशुभ कमों का त्याग नहीं ंशकया है, काम, अशभमान, दम्भ, क्रोध, लोभ, उद्दण्डता का शनराकरण नहीं ंशकया है, वे शास्त्राध्ययन आशद िारा शकतना ही संघषथ क्यों ंन कर लें, उसे देख नहीं ंसकते। वे आत्म-साक्षात्कार करने में असमर्थ हैं। अशुद्ध मन वाला यशद शास्त्रों ंके अध्ययन से आत्म-प्रकाश पाना चाहे तो सवथर्ा असम्भव है। साधक का मन शान्त और एकाग्र होना चाशहए। उसे आत्मा पर अनवरत रूप से दृढ़ता पूवथक ध्यान करने का अभ्यास करना चाशहए। केवल तभी वह उस परम आत्म तत्त्व को अपने हृदय में अवम्भस्र्त देख सकता है, उसका अशभज्ञान कर सकता है और साक्षात्कार कर सकता है।

भौशतक ि गत् के अनुभवों ंका सार रूप केवल वही एक परम पुरुष है शिसे, अशग्न, शवद्युत्, सूयथ और चिमा आभाशसत नहीं ंकर सकते, शिसे प्राप्त हो कर ज्ञानी िन पुनः इस संसार में नहीं ंलौटते, िन्म-मृत्यु के बन्धन में नहीं ंफ़िते, ये मानव समुदाय शिसका एक काल्पशनक भाग है िो घटाकाश की भााँशत अशवद्यावश ऐसा सत्य प्रशतभाशसत हो रहा है।

शिस प्रकार घट फूटने पर घटाकाश महाकाश के सार् एक हो िाता है उसी प्रकार उपशनषदों ंके महावाक्य 'अहं ब्र्ह्माम्भस्म', 'तत्त्वमशस' के यर्ार्थ अर्थ का ज्ञान होने पर इन वाक्यों ंपर अनवरत ध्यान से प्राप्त आत्म-ज्ञान के िारा

अशवद्या नाश से िीवात्मा परमात्मा के सार् एक रूप हो िाता है। इस तादात्म्यता की म्भस्र्शत प्राप्त होने पर ज्ञानी शवचार करता है शक समस्त अनुभूशतयों ंका अवलम्ब और सार केवल वही परमात्मा है।

अिुथन को यह ज्ञान कराने के शलए भगवान् आगामी चार श्लोकों ंमें अपनी अशभव्यम्भक्यों ंका सारांश देते हैं।

यदाडदत्यगतं तेजो जगिासयतेऽन्द्रखलम् ।
यिमडस यिाग्नौ तत्तेजो डवन्द्रद्ध मामकम् ।।१२।।

बि्ार्थम : यत्–िो, आशदत्यगतम् सूयथ में, तिेः-तिे, िगत् िगत्, भासयते-प्रकाशत करता है, अम्भखलम् समस्त, यत्–िो, चिमशस-चिमा में, यत्–िो, च-और, अग्नौ-अशग्न में, तत्-वह, तिेः-प्रकाश, शवम्भद्ध–िानो, मामकम् -मेरा ।

अनुवाद : संसार को प्रकाशत करने वाला सूयथ का आलोक तर्ा चि और अशग्न में शवद्यमान तिे-यह सब मेरा ही िानो ।

व्याख्या : इस श्लोक में भगवान् की मशहमा का गुणगान उनकी सवथप्रकाशक आलोक चेतना के रूप में शकया गया है।

मैं संसार को प्रकाशत करने वाले सूयथ के आलोक का कारण और स्रोत हाँ। चि और अशग्न में प्रशतभाशसत सूयथ के आलोक का कारण भी मैं ही हाँ।

तिेः-प्रकाश । चेतना का प्रकाश ।

यशद ऐसा है तो एक आलोचक कहता है-"सूयथ का प्रकाश चराचर समस्त पदार्ों में समान रूप से रहता है तो भगवान् ने प्रकाश के इस शवशेष गुण की शवद्यमानता सूयथ, चांद और अशग्न में ही शवशेष क्यों ंकही है?" उत्तर है-"चेतना के प्रकाश की उिर अशभव्यम्भक् सूयाथशद में उनमें शवराशित सत्त्व पुंकी अशधकता के कारण है। उनमें सत्त्व अत्यन्त देदीप्यमान् और प्रकाशमान् है। इसी कारण से तिे का यह शवशेष गुण उनमें शनशहत कहा गया है।"

एक अन्य शचत्रण इस प्रकार है-मनुष्य की मुखाकृशत दीवार में, काष्ठ खण्ड में अर्वा प्रस्तर खण्ड में प्रशतशबम्भम्बत नहीं ंहोती शकनुतु वही आकृशत एक शनमथल दपथण में अत्यन्त सुन्दर रूप से प्रशतशबम्भम्बत होती है। दपथण में प्रशतशबम्ब की स्पष्टता का स्तर, दपथण के पारदशी स्तर पर अवलम्भम्बत है। दपथण शितना अशधक पारदशी होगा,

मुख का प्रशतशबम्ब उतना ही स्पष्ट होगा। इसी प्रकार परमात्मा का प्रकाश सूयथ में और भक् के पररमाशिथत हृदय में आलोशकत होता है।

गामाडवश्य च भूताडन धारयाम्यिमोजसा ।
पुष्णाडम चौषधीः सवामः सोमो भूत्वा रसिाकः ।।१३ ।।

बि्ार्थम : गाम् -पृथ्वी, आशवश्य-प्रवेश कर के, च-और, भूताशन-प्राशणयों ंको, धारयाशम धारण करता हाँ, अहम् -मैं, जिौसा अपनी शम्भक् से, पुष्णाशम-पोषण करता हाँ, च-और, औषधीः वनस्पशतयां, सवाथः सब, सोमः- चिमा, भूत्वा हो कर, रसात्मकः - अमृतमय ।

अनुवाद : पृथ्वी में प्रवेश कर के मैं ही अपनी शम्भक् से समस्त प्राशणयों ंका पोषण करता हाँ, रसमय चिमा बन कर समस्त औषशधयों ं(वनस्पशतयों)ं को पुष्ट करता हाँ।

व्याख्या : इस श्लोक में िगत् शनयन्ता (पालनकताथ) ईश्वर के स्वरूप का वणथन है।

जिौस् -ईश्वर की शम्भक् । शवसूतृत स्वगथ और धरती इसी शम्भक् पर आलम्भम्बत हैं। यह शम्भक् पृथ्वी में प्रवेश कर के िगत् का पालन करती है। आसम्भक् और मोह से यह शम्भक् शून्य है। ईश्वरीय शम्भक् पर आशश्रत होने के कारण यह धरती न तो शगरती है, न खण्डों ंमें शवभाशित होती है और न ही अन्य लोकों ंमें शवलीन होती है।

प्रवेशन िारा ईश्वर चर और अचर समस्त पदार्ों को शम्भक् प्रदान करता है।

रसात्मकः सोमः - रसमय सोम (चि) । चिमा सब रसों ंका भण्डार माना िाता है। मैं अमृतमय चिमा बन कर सब औषशधयों,ं वनस्पशतयों ंिैसे धान, गेहाँ आशद का पोषण करता हाँ, उनमें रस और स्वाद भरता हाँ। मैं अपने जिौस् के िारा वनस्पशत िगत् को पुष्ट करता हाँ िो शमट्टी में फैल कर (प्रवेश करके) मधुर रस अर्वा पेि़- पौधों ंऔर औषशधयों ंमें स्वाद भरता है। रसयुक् चिमा, सब पौधों ंऔर वनस्पशतयों ंमें रस और स्वाद भर कर उनका पोषण करता है।

और भी-

अिं वैश्वानरो भूत्वा प्राडणनां दिेमाडश्रतः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यिं चतुडवमधम् ।।१४ ।।

बि्ार्थम : अहम् -मैं, वैश्वानरः- वैश्वानर (अशग्न), भूत्वा हो कर, प्राशणनाम् -प्राशणयों ंके, देहम्-देह (में), आशश्रतः - आशश्रत, प्राणापानसमायुक्ः प्राण और अपान से युक् हो कर, पचाशम पचाता हाँ, अन्नम् अन्न को, चतुशवथधम् - चार प्रकार के।

अनुवाद : वैश्वानर अशग्न (िठराशग्न) बन कर मैं प्राशणयों ंके देह में म्भस्त हो कर प्राण और अपान की सहायता से चार प्रकार के अन्न को पचाता हाँ।

व्याख्या : समस्त प्राशणयों ंमें िठराशग्न के रूप में ईश्वर की अन्तम्भस्र्शत यहााँ वशणथत है।

वैश्वानर-उदरीय अशग्न । श्वास-प्रश्वास की प्रशक्रया से यह अशग्न प्रज्वशलत होती है और पयाथप्त पररमाण में भोिन इस सतत प्रशक्रया से पचता है। वैश्वानर अशग्न बन कर उदर रूपी अद्‌भुत लेबोरेटरी (laboratory) में प्रवेश कर के मैं भोिन को पचाता हाँ।

अि चतुडवमधम् -

(१) चबा कर खाने योग्य-भक्ष्यम् (रोटी आशद)

(२) शनगल कर ग्रहण करने योग्य भोिन-भोज्यम् (दूध आशद)

(३) चाट कर लेने वाला भोिन-लेह्यम् (चटनी)

(४) चूसा िाने वाला भोिन-चोष्यम् (ईख आशद)

एक अन्य वगीकरण एवंडवध िै-

(१) चावल, पृथ्वी-अन्नम् (स्थूल भोिन है) मनुष्यों ंके शलए

(२) िल, आप्यन्नम् (िलीय भोिन) चातक आशद पशक्षयों ंके शलए

(३) अशग्न, तैिसन्नम (उष्ण भोिन) शवशेष िीवों ंके शलए

(४) वायु, वाय्वन्नम् (वायव्य भोिन) सपथ आशद के शलए

अयमशग्नववश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषः येनेदमन्नं पच्यते।।
"यह अशग्न िो मनुष्य में शवद्यमान है और शिससे अन्न पचाया िाता है-वैश्वानर अशग्न है।"
(बृहदारण्यकोपशनषद् - 4.8 * 0.8)

िो मनुष्य यह सोचता है, ध्यान करता है अर्वा अनुभव करता है शक वैश्वानर अशग्न भोक्ा है, अशग्न िारा भुक् भोिन सोम (चिमा) है और दोनों ंसंयुक् हो कर अशग्न-सोम बनाते है, वह भोिन की अशुद्धताओं ंसे दूशषत नहीं ंहोता। भोिन करने से पूवथ िो व्यम्भक् ध्यानस्थ हो कर शवचार करता है शक भोक्ा और भोग्य रूप में यह समस्त संसार अशग्न और सोम से बना हुआ है, वह अशुद्ध भोिन से उत्पन्न होने वाली बुराई से शलप्त नहीं ंहोता ।

भोिन करने से पूवथ इस श्लोक का िप करने से तुम भोिन में अशुद्धता के पाप से मुक् हो िाओगे ।

सवमस्य चािं हृडद सडिडवष्टो
मत्तः स्मृडतज्ञामनमपोिनं च ।
वेदैश्च सवैरिमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदडवदेव चािम् ।।१५ ।।

शब्दार्थम : सवथस्य-सब का, च-और, अहम् -मैं, हृशद-हृदय में, सशन्नशवष्टः-म्भस्थत, मत्तः मुझ से, स्मृशतः-स्मृशत, ज्ञानम्-ज्ञान, अपोहनम् -हास (स्मृशत और ज्ञान का), च-और, वेदैः- वेदों ंके िारा, च-और, सववः सब (के िारा), अहम् -मैं, एव-ही, वेद्यः- िानने योग्य, वेदान्तकृत् वेदान्त का रचनाकार, वेदशवद्-वेदों ंका ज्ञाता, एव-ही, च-और, अहम् मैं।

अनुवाद : (अन्तयाथमी रूप से) सब के हृदयों ां में मैं म्भस्र्त हाँ, मुझ से ही सृ्मृशत और ज्ञान एवम् उनका हास है। वेदों ां के िारा ज्ञातव्य तत्त्व मैं ही हाँ। मैं ही वेदान्त का प्रणेता हाँ और वेदों ांका ज्ञाता भी मैं ही हाँ।

व्याख्या : सब चेतन प्राशणयों ांके हृदयों ांमें अन्तयाथमी रूप से मैं म्भस्र्त हाँ। सब प्राशणयों ांके आत्म रूप मुझ से सृ्मृशत, ज्ञान और उनका हास है। शुभ कमों के पररणाम स्वरूप पुरुष सृ्मृशत और ज्ञान से समम्भित होते हैं। अशुभ कमों के फलस्वरूप असाधुपुरुष सृ्मृशत और ज्ञान से शून्य होते हैं। सद्गुणों ांसे शाम्भन्त शमलती है और इसीशलए बौम्भद्धक शम्भक्यों ांका शवकास होता है।

अपोहनम् -शवनाश, हास, शून्यता अर्ाथत् ज्ञान और सृ्मृशत का हास और 'तकथ शम्भक्' का भी शवनाश। काम, क्रोध, लोभ और मोह तर्ा शोक से सृ्मृशत और ज्ञान का शवनाश होता है।

सृ्मृशत-स्मरण शम्भक्। यह अन्तःकरण की एक शवशेष वृशत्त है िो संस्कारि–शनत है और सांसाररक मनुष्य को, शिसने योग का अभ्यास न शकया हो, इस िीवन में पूवथ कृत् भोगों ांऔर इम्भिय-शवषयों ांका स्मरण कराती है। योगी को अपने पूवथ िन्मों ांके उस भावातीत ज्ञान की पुनचेतना होती है िो ज्ञान देश-काल-कारणत्व और दृश्य प्रकृशत से अतीत होता है।

मैं ही वेदों ांका प्रमुख शवषय हाँ। वेदों ांको समझने का अशभप्राय मुझे समझना है। सब वेदों ांमें मैं ही एक परम पुरुष िानने योग्य हाँ। यह 'मैं' हाँ िो वेदोपदेश और वेदार्थ को िानता है। वेदों ांसे भी परे उपशनषदों ांका मैं लेखक हाँ िो वेदान्त हैं और नाम-रूप-गुण से अतीत उस परम पुरुष का ज्ञान है।

भगवान् नारायण के गुणों ांका संशक्षप्त वणथन इन अशभव्यक् वाहन शवशेष चार श्लोकों ांके माध्यम से शकया गया है। अगले श्लोक से सब प्रकार के प्रशतबन्धों ांसे अतीत पुरुषोत्तम के स्वरूप का शवशद वणथन शदया गया है। (शनरूपण - X.20)

िाडिवमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सवामडण भूताडन कूटथर्थोऽक्षर उच्यते ।।१६ ।।

शब्दार्थ : िौ दो, इमौ-ये, पुरुषौ-पुरुष (िीव), लोके संसार में, क्षरः नश्वर, च-और, अक्षरः-अनश्वर, एव-ही, च-और, क्षरः नश्वर, सवाथशण समस्त, भूताशनि–ीव, कूटस्र्:-अव्यय (शनशवथकार), अक्षरः- अनश्वर, उच्यते-कहा िाता है।

अनुवाद : इस लोक में क्षर और अक्षर भाव से दो पुरुष हैं। क्षीण होने वाले नश्वर-क्षर पुरुष हैं और इसके शवपरीत अक्षर पुरुष हैं।

व्याख्या : अब भगवान् शदव्य सत्ता के तीन पक्षों ांका वणथन करते हैं। एक तो िीवात्मा है िो नश्वर है, शितीय भगवान् की माया शम्भक् िो अशवनाशी है और तृतीय है पुरुषोत्तम अर्वा परम पुरुष।

शवकार को प्राप्त होने वाला, यह सम्पूणथ पररवतथशील संसार नश्वर है। ब्र्ह्मा से लेकर तृण पयथन्त, सब चेतन और िि (चराचर) पदार्थ, वह सब, मन शिसकी कल्पना कर सकता है, पंचभूतों ांसे शनशमथत सब पदार्थ, वह सब िो शवकारी है, िो नाम और रूप से युक् है, िो खुले नेत्रों ांसे दशथनीय है, तेरहवें (त्रयोदश) अध्याय में शिसका शरीर और क्षेत्र के शवकार-वृशत्तयों ांके रूप में वणथन शकया गया-सब क्षर है, नश्वर है। पररवतथनशील ही क्षर है। यह पदार्थ का शनत्य पररवशतथत होने वाला स्वरूप है िो िि है, अचेतन है। अक्षर अपररवतथनशील अशवकारी है।

संसार में 'पुरुष' संज्ञा से अशभशहत, िीवों ंके दो पृर्क् शवभाग हैं क्योंशंक वे परम पुरुष के सीशमत प्रशतबन्धक हैं। नश्वर प्राशणयों ंका उद्भव भगवान् की माया शम्भक् से है िो बीि रूप में रहती है। शवशभन्न नश्वर िीवों ंके कमथ और सुषुप्त संस्कारों ंका वास स्ान यही मूल प्रकृशत है। माया शम्भक् अक्षर पुरुष है। अव्यक्ावस्ा प्रायः सुषुम्भप्त अर्वा गहन अशवद्या की अवस्ा कही िाती है क्योंशंक उस समय न तो चेतना और न ही अचेतना रहती है।

यह केवल संभाशवत अवस्ा होती है। यह ऐसी अवस्ा है शिसमें िीवन के समूपूणथ रूप अपनी सुप्त सीमाओं ंसशहत, फल के बीि में शछपे सुप्त वृक्ष की भाँशत शवद्यमान रहते हैं। इस अवस्ा में पदार्थ और ञाथ एक ही होते हैं। इस अवस्ा में शब्द, पदार्थ और ञाथ अशभन्न रूप में वतथमान रहते हैं। इस अवस्ा में गुण साम्यावस्ा में रहते हैं।

अशवनाशी को कूटस् कहते हैं अर्ाथत् िो अचल शर्पा की भाँशत शपा रहता है। सब प्राशणयों ंके मूल (कूट) में िो म्भस्त है वह कूटस् है। कूट को माया के अर्थ में ले सकते हैं और तब कूटस् का अशभप्राय होगा िो स्वयं को माया के अनेक रूपों ंमें प्रकट करता है। माया अर्वा कूट सत्य को आवृत करने वाले, शमथ्या दशाथने वाले और सांसाररक मनुष्यों ंको धोखे (भ्राम्भन्त) में रखने वाले हैं। आवरण-शवक्षेप-शम्भक् (veiling and vacillating power) कूटस् है। क्योंशंक माया शम्भक् को आत्म-ज्ञान के शबना नष्ट नहीं ंशकया िा सकता, इसी कारण यह अनन्त है। इसी कारण से इसे अक्षर भी कहते हैं। संसार के बीि का कोई अन्त नहीं ंहै अतः इसे इस भाव में अनश्वर कहते हैं शक

आत्म-ज्ञान की अशवद्यमानता में भी यह नष्ट नहीं ंहोता, शकन्तु ब्र्ह्म ज्ञान की प्राम्भप्त पर बीि पूणथ रूप से नष्ट हो िाता है। भ्राम्भन्त का शनवारण होता है और प्रत्येक वस्तु एक वैशश्वक चेतना के रूप में दृशष्टगत होती है। पदार्थ का केवल माया का आवरण नष्ट शकया िाता है।

पुरुषोत्तम अर्वा सवोथ उत्कृष्ट सत्ता पुरुष इन दोनों ंसे पृर्क् है। वह नश्वर और अनश्वर इन दोनों ंसे अतीत है। वह इन नश्वर और अनश्वर सीशमत प्रशतबन्धकों ंकी बुराई से प्रभाशवत नहीं ंहोता। वह शाश्वत है, पशवत्र है, चेतन स्वरूप है और स्वभाव से ही शनत्य मुक् है।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमीोतुयुदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाडवश्य डबभत्यमव्यय ईश्वरः ।।१७ ।।

बीिार्थम : उत्तमः उत्तम, पुरुषः-पुरुष, तु-लेशकन, अन्यः-अन्य, परमात्मा-परमात्मा, इशत-इस प्रकार, उदाहृतः-कहा िाता है, यः िो, लोकत्रयम् तीनों ंलोकों ंको, आशवश्य-व्याप्त हो कर, शबभशतथ - धारण करता है, अव्ययः-अशवनाशी, ईश्वरः ईश्वर ।

अनुवाद : शकन्तु उत्तम पुरुष अन्य है िो तीनों ंलोकों ंमें व्याप्त हो कर उनका पोषण करता है और शिसे परमात्मा, अशवनाशी, ईश्वर आशद नामों ंसे पुकारा िाता है।

व्याख्या : तीनों ंलोकों ंमें व्याप्त हो कर भी पुरुषोत्तम ब्र्ह्माण्ड से परे है। इसशलए इस लोक के मनुष्य और वेद उसे पुरुषोत्तम कहते हैं। वह तीन लोकों ंमें व्याप्त हो कर उन्ें धारण करता है । पुनरशप वह संसार में शलप्त नहीं ंहोता। वह संसार से अर्वा सांसाररकता से ऊपर है।

शिस प्रकार िाग्रतावस्ा, स्वप्न और सुषुम्भप्त की अवस्ाओं ंसे पृर्क् है, सूयथ मण्डल अपनी शकरणों ंसे और मरीशचका से (शिसका कारण शकरणें हैं) से पृर्क् है, उसी प्रकार पुरुषोत्तम नश्वर और अनश्वर पुरुष से पृर्क् है।

पुरुषोत्तम शाम्भन्त का संश्रय है। उसी में सब प्राणी आश्रय और शाश्वत शवश्राम लेते हैं। वह अनुपमेय है क्योंशंक वह स्वयं में म्भरूत है। उसकी उपमा शकसी से नहीं ंदी ि◌ा सकती। स्वयं उसी से ही उसकी उपमा दी ि◌ा सकती है-वह उपमान भी है और उपमेय भी है। अव्यक् और अक्षर ब्ह्म, ि◌ो लोकातीत है, मूलतः पुरुषोत्तम ही है ि◌ो क्षर और अक्षर दोनों ंसे अतीत है।

पुरुषोत्तम, क्षर और अक्षर से सवथर्ा पृर्क् है। वह परम पुरुष है। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर भी 'आत्मा' कहे ि◌ाते हैं शकनु्तु ये गौण आत्मायें हैं। परमात्मा, आशद आत्मा है। पुरुषोत्तम अर्वा परमात्मा अशवद्या ि◌शनत अन्य आत्माओं ंकी अपेक्षा परम, सविो और उतृ्कष्ट है। वह अन्तयाथमी रूप से सब प्राशणयों ंमें शवराशित है। प्राशणयों ंकी अन्तशनथशहत चेतना वही है। वह सब का आधार है। वह शनयन्ता है, अन्तः-शासक है। वह स्वतन्त्र है, आत्म शनभथर है, इसशलए वेदान्त में उसे परमात्मा कहते हैं।

अन्यः-अन्य, अन्य दो से सवथर्ा पृर्क् ।

लोकत्रयम् -तीन लोक-भूः (पृथ्वी), भुवः (अन्तररक्ष), स्वः (स्वगथ) -ये तीन लोक हैं।

पुरुषोत्तम का और अशधक वणथन इस प्रकार है-

वह अशवनाशी है, सवथज्ञ भगवान् नारायण हैं ि◌ो अपनी प्राणभूत शम्भक् से तीनों ंलोकों ंमें व्याप्त रहता है और मात्र अपनी सत्ता से उनका धारण-पोषण करता है।

अव्यय-अनश्वर । ि◌ो ि◌न्म-मृतु्यु आशद शवकारों ंसे रशहत है। एक रािा शिस प्रकार प्रिा पर शासन करते हुए, उनें् वश में रखते हुए उनसे पृर्क् रहता है उसी प्रकार परमात्मा, ि◌ो नश्वर और अनश्वर पदार्ों का शासक है, उनसे पृर्क् है। (शनरूपण-VIII.20)

यस्मात्क्षरमतीतोऽमिक्षरादडप चोत्तमः ।
अतोऽन्द्रस्म लोके वेदे च प्रडर्थतः पुरुषोत्तमः ।।१८ ।।

बि्ार्थम : यस्मात् -शिस से, क्षरम्नश्वर, अतीतः अतीत, अहम् -मैं, अक्षरात् - अनश्वर से, अशप-भी, च-और, उत्तमः-उत्तम, अतः इसशलए, अम्भस्म—(मैं) हाँ, लोके-लोक में, वेदे वेदों ंमें, च-और, प्रशर्तः घोशषत, पुरुषोत्तमः परम पुरुष ।

अनुवाद : क्योंशंक मैं नश्वर ि◌गत् से अतीत हाँ और अनश्वर से भी उत्तम हाँ, मुझे लोक में और वेदों ंमें पुरुषोत्तम कहा ि◌ाता है।

व्याख्या : पुरुषोत्तम भगवान् का सवथशवशदत नाम है। उशचत ही है यह नाम, क्योंशंक वह उत्तम पुरुष है।

क्षर-नश्वर संसार रूपी वृक्ष ।

अक्षर-अनश्वर । संसार-वृक्ष का बिी ।

क्योंशंक मैं शमथ्या नश्वर संसार-वृक्ष से परे हाँ और अनश्वर (बिी रूप में संसार वृक्ष) से भी अशत उत्तम (अतु्युत्तम) हाँ और इस प्रकार नश्वर (क्षर) और अनश्वर (अक्षर) इन दोनों ंसे अतीत हाँ, लोक में और वेदों ंमें मुझे पुरुषोत्तम कहा ि◌ाता है। भक् इसी नाम से मुझे ि◌ानते हैं। कशव भी इस नाम से मेरा वणथन करते हैं।

मैं सब प्रकार की सीमाओं ंसे अतीत हाँ। मुझमें ित का कोई लक्षण नहीं ंहै, इसीशलए वेद और लोक मुझे पुरुषोत्तम कहते हैं।

यो मामेवमसंमूढो जानाडत पुरुषोत्तमम् ।
स सवमडविजडत मां सवमभावेन भारत ।।१९ ।।

बि्ार्थम : यः ो, माम् -मुझे, एवम् - इस प्रकार, असंमूढः- ज्ञानी पुरुष, ानाशत ानता है, पुरुषोत्तमम् -पुरुषोत्तम को, सः-वह, सवथशवत् - सवथज्ञ, भिशत-पूिा करता है, माम् -मेरी, सवथभावेन-हृदय से, भारत- हे भारत ।

अनुवाद : ो ज्ञानी पुरुष मुझे इस प्रकार पुरुषोत्तम रूप में ानता है वह सवथज्ञ सवथभाव से, हे अिुथन, मुझे ही भिता है।

व्याख्या : आत्म-ज्ञान की मशहमा इस श्लोक में वशणथत है।

असमूमूढः-अभ्रान्त, ज्ञानी, मोह से मुक्। भ्रम रशहत मनुष्य भौशतक शरीर और आत्मा का एकीभाव नहीं ं देखता। वह शरीर, प्राण, मन, इम्भियााँ, बुम्भद्ध और कारण शरीर को अपना आत्म-स्वरूप नहीं ंसमझता क्योंशक वह तो अपने मूल सत्-शचत्-स्वरूप में अवम्भस्त रहता है और ब्र्ह्म के सार् तादात्म्य भाव रखता है।

वही साधक ज्ञानी है ो यह ानता है शक श्रीकृष्ण कोई मनुष्य नहीं ंहैं, वे पुरुषोत्तम हैं, परम पुरुष हैं। ऐसा भक् ही पूणथ हृदय से उन्ें भिता है। वही सवथशवद् है, सवथज्ञ है। वह ानता है शक भगवान् कृष्ण सब प्राशणयों ं के अन्तरात्मा हैं। वह अनेक में एक और एक में अनेक देखता है। उसके शलए कोई ऊाँचा-नीचा नहीं,ं दुःख-सुख नहीं,ं अच्छा-बुरा नहीं,ं गुण-अवगुण नहीं,ं रागि्ष नहीं।ं वह समस्त ितों ंसे अतीत है।

माम् -मुझे अर्ाथत् भगवान् को, शिनका वणथन ऊपर आया है। सवथशवत्ि्ो शवस्तार से सब प्रकार का ज्ञान रखता है।

ानाशति्ानता है शक "मैं वह हाँ"।

सवथभाषेन-समूपूणथ हृदय से, अन्तरात्मा से, सहृदयेन, अपना समूपूणथ शवचार पूणथ रूप से सब की आत्मा-परमात्मा में शनयुक्; परमात्मा में पूणथ मन से, अनन्य भाव से केम्भित ।

इडत गुह्यतमं ास्त्रडमदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुन्द्रद्धमान्ब्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ।।२० ।।

बि्ार्थम : इशत-इस प्रकार, गुह्यतमम् - अत्यन्त गोपनीय, शास्त्रम् - शवज्ञान, शास्त्र (शक्षा), इदम् - यह, उक्म्-कहा गया, मया-मेरे ारा, अनघ-शनष्पाप (अिुथन), एतद्बुद्ध्वा-इसे ान कर, बुम्भद्धमान् बुम्भद्धमान, स्यात् -हो ायेगा, कृतकृत्यः-कृतार्थ, च-और, भारत-हे भारत ।

अनुवाद : हे शनष्पाप अिुथन, इस प्रकार यह अशत गोपनीय शास्त्र मेरे ारा कहा गया। इसका ज्ञान प्राप्त कर के मनुष्य बुम्भद्धमान् और कृतार्थ हो ाता है।

व्याख्या : गुह्यतमम् - अत्यन्त रहस्यपूणथ ।

बुम्भद्धमान् यहााँ इसका अशभप्राय आत्म-ज्ञानी से है।

इस श्लोक में आत्म-ज्ञान की प्रशंसा की गई है शिसकी प्राम्भप्त ि‍न्म-मृत्यु और कमथ के बन्धन काटने वाली है। इस माशमथक तत्त्व ज्ञान को यर्ार्थ रूप में समझने वाला मनुष्य बुम्भद्धमान् बनता है और आत्म-ज्योशत प्राप्त करता है। इसके उपरान्त उसे कुछ प्राप्त करने की अशभलाषा नहीं ‍ंरह ि‍ाती न ही

कुछ ज्ञेय शेष रह ि‍ाता है। मानवीय अम्भस्तत्व का अर्वा ि‍ीवन का लक्ष्य उसे प्राप्त हो ि‍ाता है। उसकी यात्रा समाप्त हो ि‍ाती है। आत्म साक्षात्कार के शलए उसका संघषथ, उसका उद्यम अवसान को प्राप्त होता है। वह पूणथत्व की प्राम्भप्त कर लेता है। उसे परमात्मा का पूणथ ज्ञान शमल गया है। वह ब्र्ह्म ज्ञानी हो गया है। वह शदव्य चेतना में चेष्टा (गशत) करता है। सवथत्र आत्म तत्त्व के दशथन करता है। ब्र्ह्म में वास करता है। समस्त प्रशक्रयाओं ‍ंको अब वह दैवी क्रिीा समझता है, शदव्य लीला मानता है।

ब्र्ह्म ज्ञान होने पर ि‍ीवन के समस्त कत्तथव्य पूणथ हो ि‍ाते हैं। कमथ बन्धन से मोक्ष शमलता है। आत्म ज्ञानी, ि‍ीविनुमुक् अर्वा प्रकाश प्राप्त संन्यासी हो ि‍ाता है शिसने देह चेतना का अशतक्रमण कर शलया हो, ि‍ो तीन गुणों ‍ं से अतीत हो गया हो, ि‍ाग्रत, स्वप्न और सुषुम्भप्त-इन तीन अवस्र्ाओं ‍ंसे ऊपर उठ गया हो, रागि‍ेष आशद ि‍न्‍ि‍ों ‍ंसे मुक् हो कर ि‍न्म-मृत्यु के बन्धन से भी मोक्ष पा शलया हो। ऐसा ज्ञानी भली प्रकार ि‍ानता है शक उसकी पुनिथन्म की शृंखला नष्ट हो चुकी है, कतथव्य कमथ पूणथ हो चुका है, ि‍ीवन का सविो लक्ष्य प्राप्त हो चुका है और अब उसे और कुछ करना अर्वा सीखना शेष नहीं ‍ंरहा । उसने ि‍ीवन के गहन रहस्य को ि‍ान शलया है-ब्र्ह्माण्ड की प्रहेशलका सुलझ गई है। अब वह सवथशवत् है।

समूपूणथ गीता एक शवज्ञान कही ि‍ाती है। उसमें भी पञ्चदश अध्याय का उपदेश स्तवन हेतु उत्कृष्ट माना गया है। इस अध्याय में समूपूणथ गीता, उपशनषद् और वेदों ‍ंका सार शनशहत है। यह वेदों ‍ंके दुग्ध से प्रमशर्त नवनीत है। ऐसा वशणथत है शक पीपल वृक्ष का ज्ञान करने वाला वेदों ‍ंका ज्ञाता है (XV.1)। भगवान् ने यह भी कहा - "वेदों ‍ंके िारा ि‍ानने योग्य तत्त्व मैं ही हाँ" (XV.15) । ऊपर वशणथत ढंग से ि‍ो मनुष्य इस शवज्ञान को ि‍ान लेता है वही बुम्भद्धमान् है, अन्य नहीं।‍ं उि‍र्ब्ाह्मण ि‍ाशत में ि‍न्म लेने पर ि‍ो भी कत्तथव्य कमथ शवशहत हैं वे सब आत्म-ज्ञान की प्राम्भप्त में समूपूणथ हो ि‍ाते हैं। "आत्यम्भन्तक रूप में समस्त कमों का अवसान ज्ञान में होता है ।" (IV .33) यह ि‍न्म की, शवशेष रूप से र्ब्ाह्मण कुल में ि‍न्म की सफलता है, पूणथता है क्योंशक इस ज्ञान को प्राप्त कर के ही ि‍िशि अपने कत्तथव्य कमथ पूणथ करता है अन्यर्ा नहीं,‍ं ऐसा मनुसूमृशत में शनशदथष्ट है।

तुमने परमात्मा के शवषय में इस सत्य को मुझसे सुना है, तुम अत्यन्त सौभाग्यशाली हो, तुमने अपने सब कत्तथव्य पूणथ कर शलए है और अब तुम आत्म-ज्ञान को प्राप्त कर चुके हो।

अनघ और भारत-इन शब्दों ‍ंका प्रयोग कर के भगवान् कृष्ण संकेत देते हैं शक ि‍ब कोई सामान्य व्यम्भक् भी इस पञ्चदश अध्याय को ि‍ान कर, ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कृतकृत्य हो सकता है तो अि‍ुथन का तो कहना ही क्या, ि‍ो अनघ (पाप रशहत) र्ा और शिसने शदव्य गुणों ‍ंसशहत उि‍कुल में ि‍न्म शलया र्ा।

अनघ शब्द को प्रयोग कर के भगवान् यह तथ्य भी पररलशक्षत करते हैं शक ब्र्ह्म ज्ञानी गुरु को यह अत्यन्त गोपनीय ज्ञान केवल गुण संपन्न योग्य साधकों ‍ंको ही प्रदान करना चाशहए ि‍ो शुद्ध-हृदय हों,‍ं संयत हों,‍ं शान्त हों ‍ं और मोक्ष हेतु साधन चतुष्टय से युक् हों ‍ं(III.3) । अशुद्ध मन सत्य को ग्रहण करने में शक्य नहीं ‍ंहोता । पापी मनुष्य अपनी शवशशक्षप्त बुम्भद्ध से सत्य को भी शवकृत कर देगा और इस प्रकार अपने और शष्यों ‍ंके शवनाश का कारण बनेगा।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषत्सु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदिोऽध्यायः ।।१५ ।।
।। इडत पुरुषोत्तमयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अर् षोिशोऽध्यायः
दैवासुरसम्पशिभागयोगः

श्री भगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आजमवम् ।।१।।

बि्ार्थम : अभयम्-अभय, सत्त्वसंशुम्भद्धः- हृदय की शुशचता, ज्ञानयोग- व्यवम्भस्थशतः- ज्ञान और योग में दृढ़ता, दानम्-दान, दमः - इम्भियों ंका संयम, च-और, यज्ञः यज्ञ, च-और, स्वाध्यायः-शास्त्रों ंका अध्ययन, तपः-तपस्या, आिथवम् -सरलता।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : अभय (भय का अभाव), हृदय की शनमथलता, ज्ञान और योग में शनरन्तर दृढ़ म्भस्थशत, दान, इम्भिय दमन, यज्ञ, शास्त्राध्ययन (वेदों ंका पठन-पाठन), तपश्चयाथ और सरलता,

व्याख्या : राक्षस, असुर और देव इन तीन प्रकार के चेतन प्राशणयों ंकी प्रकृशत का वणथन भगवान् ने अध्याय 'नवम' श्लोक १२,१३ में शकया है। अब इस अध्याय में शवस्तार से यही वणथन शकया िा रहा है। प्रर्म, शितीय, तृतीय और चतुर्थ श्लोक में देवता, दैवी-मनुष्य और असुरों ंके मध्य में स्पष्ट रूप से भेद बताया है। दैवी प्रकृशत अर्वा देवताओं ंिैसा स्वभाव मोक्ष का साधन है। आसुरी प्रकृशत और राक्षसी वृशत्त बन्धन के कारण हैं। आत्म-ज्ञान-प्राम्भप्त में यह बाधक है। शदव्य प्रकृशत को स्वीकार करना और इसी का शवकास करना चाशहए। आसरी और राक्षसी वृशत्त का त्याग करना चाशहए। ये सभी गुण मनुष्यों ंमें होते हैं। साम्भत्त्वक मनुष्य दैवी गुणों ंसे सम्पन्न होते हैं। मनुष्यों ंमें भी असुर और राक्षस होते हैं िो राक्षसी गुणों ंसे युक् होते हैं और अत्यन्त तामशसक वृशत्त वाले होते हैं। सामान्य मानव में तीनों ंगुण शमशश्रत रूप से होते हैं। तमस् और रिस् की ओर ले िाने वाले हैं। होता है। तमस् और रिस् बन्धन के कारण हैं। सत्त्व मोक्ष में सहायक हररखम होत अनुशाशसत करो और सत्त्व का शवकास करो। यह योग की नीवं है। यह प्रर्म शसम्भद्ध साधन है। सत्व का शवकास कर के तुम आध्याम्भत्मक सोपान पद्ध का एक सोपान और ऊपर चढ़ िाते हो। मन साम्भत्वक होगा तो मन में शाम्भन्त रहेगी। मन सौम्य हो, प्रसन्न हो तो शदव्य ज्योशत का अवतरण होता है ।।

साम्भत्वक मनुष्य इम्भिय-दमन करता है, शनःस्वार्थ सेवा करता है, िप का अभ्यास, प्राणायाम, एकाग्रता, ध्यान, आत्म शवश्लेषण और पररप्रश्न "मैं कौन हाँ", इन का अभ्यास करता है। शवषय वासनायें उसे आकृष्ट नहीं करतीं।ं वह नम्र, उदार, दयालु, सहनशील, क्षमाशील और पशवत्र होता है। अपने कुषुि व्यम्भक्त्व को वह नष्ट कर देता है। रािशसक मनुष्य अशभमानी होता है। वह असशहष्णु, अहंभाव से युक्, स्वार्ी, कामी, क्रोधी, लोभी और ईर्ष्याथलु होता है। वह नाम, यश और आत्मोत्कषथ हेतु ही कायथ करता है। वह अपने कुषुि व्यम्भक्त्व का शवकास करता है।

गुणों ंऔर कमों में शनकट का सम्बन्ध है। कमों की प्रकृशत गुणों ंकी प्रकृशत पर शनभथर करती है। साम्भत्त्वक मनुष्य शुभ कमथ करेगा। रािशसक और तामशसक मनुष्य अशुभ कमथ में प्रवृत्त होंगें। गुण ही मनुष्य को कमथ करने के शलए प्ेरेरणा देते हैं। ब्र्ह्म अर्वा आत्मा कमथ से परे है। वह मौन साक्षी है।

प्रर्म तीन श्लोकों ंमें भगवान् दैवी मनुष्य के गुणों ंका उपदेश देते हैं, िो मोक्ष पर् गामी है। इसके पश्चात् वे आसुरी मनुष्य के गुणों ंका वणथन करते हैं। दैवी और आसुरी प्रकृशत के मध्य भेद शनरूपण इस अध्याय का सार है। गुण और अवगुण सापेक्ष (relative) पद हैं, अन्योन्य संबद्ध पद हैं। एक काल का गुण दूसरे काल में अवगुण हो िाता है। अलौशककता की दृशष्ट से गुण और अवगुण का अम्भस्तत्व ही नहीं ंहै।

बुराई होती क्यों ंहै, इसका अम्भस्तत्व कहााँ से है? ये अशतप्रश्न हैं। इन प्रश्नों ंका उत्तर आत्म-ज्ञान से ही प्राप्त हो सकता है। अनावश्यक रूप से ही लोग इन प्रश्नों ंका उत्तर पाने के शलए अपनी बुम्भद्धयों ंको (मन-मम्भस्तष्क को) संपीशित करते हैं। यह एक गम्भीर समस्या है, भूल है।

दैवी सम्पत् (दैवी सम्पदा अर्वा शदव्य गुणों ंका ऐश्वयथ) आत्म-ज्ञान प्राम्भप्त में सहायक है। अभय, हृदय की शुम्भद्ध, इम्भिय दमन आशद साम्भत्त्वक गुण हैं और दैवी सम्पदा हैं। वे साधक को शनशवथकल्प समाशध में पहुाँचाने में समर्थ हैं िो चेतना की सविो अवस्र्ा है और िहााँ िष्टा और दृश्य का सायुज्य भाव हो िाता है, ध्याता और ध्यान एक हो िाते हैं। दैवी गुण आत्मा के सविो आनन्द की वृम्भद्ध कराने में शक्य हैं।

दैवी गुणों ंमें अभय होना सवोपरर है। अशवद्या का प्रभाव (कायथ रूप) भय है। शरीर के सार् तादात्म्यता भय का कारण है। शरीर, स्त्री, बिे, गृह, सम्पदा आशद भय के कारण हैं। आत्म ज्ञानी सवथर्ा भय मुक् होता है।

"िहााँ से मन के सशहत वाणी उसे प्राप्त न करके लौट आती है उस ब्र्ह्म के आनन्द को िानने वाला भयभीत नहीं ंहोता।" (तैशत्तरीयोपशनषद् २.९.१)

अभय-शास्त्र के शनयमों ंका शबना शंका शकये भम्भक्पूवथक पालन करना अभय है। "मैंने सवथस्व त्याग कर शदया है, मेरी देखभाल करने वाला कोई नहीं,ं अब मैं कैसे रह सकता हाँ?" - इस प्रकार के भय से मुम्भक् अभय की अवस्र्ा है। संन्यास दीक्षा के समय संन्यासी संकल्प लेता है शक वह शकसी प्राणी में भय नहीं ंउत्पन्न करेगा। अभय-दान के इस संकल्प का मनसा-वाचा-कमथणा पालन करते हुए वह समस्त प्राशणयों ंको अभयदान देता है। यही 'अभयम्' है। आत्मा की अमृतमयी-आनन्दमयी प्रकृशत का शनरन्तर शचन्तन-मनन करने से अभय प्राप्त होता है। यशद तुम ईमानदारी और सत्य पर् का अनुसरण करते हो, शनःशंक हो कर शास्त्रों ंके शवशध-शवधानों ंका पालन करते हो, सदाचार का िीवन व्यतीत करते हो, सदा ईश्वर का स्मरण करते रहते हो तो शनशश्चत रूप से तुम भय से मुक् हो िाओगे। िब मनुष्य सवथत्र आत्म तत्त्व के दशथन करता है, उसका िैत भाव समाप्त हो िाता है, िब उसमें एकत्व भाव का उदय होता है तब वह कैसे शकसी से भयभीत हो सकता है और भय का भाव ही उसमें शकस प्रकार से आ सकता है? मोक्ष प्राप्त करना है तो प्रर्म अभय दान देने और स्वयं भयमुक् होने का यत्न करो। मुक्

संन्यासी की प्रमुख शवशेषता "अभयम्" है। शकसी भी साधक की आध्याम्भत्मक प्रगशत का यह यर्ार्थ मापदंड है। प्रकाश प्राप्त ज्ञानी का यह प्रधान गुण है। इसी कारण से शदव्य गुणों ंमें यह प्रर्म स्र्ान पर है। केवल मुक्त संन्यासी ही पूणथतया शनभथय हो सकता है।

साम्भत्त्वक शुभ वासना दैवी सम्पत् है। यह शववेक, वैराग्य, मनोशनग्रह और इम्भिय शनग्रह का अभ्यास करने के शलए मनुष्य को प्रेररत करती है िो आत्म-ज्ञान प्राम्भप्त में सहायक है। रागद्वेष की धाराओं ंमें कायथ करने को प्रेररत करने वाली, शास्त्र-शनशषद्ध कमों को करने में उत्साशहत करने वाली और आपशत्तिनक प्रभाव प्रदान करने वाली रािशसक और तामशसक वासनायें आसुरी प्रकृशत की हैं।

आसुरी प्रकृशत में शवषय-भोगों ंकी लालसा बनी रहती है िबशक राक्षसी प्रकृशत में द्वेष भाव की प्रधानता रहती है और राक्षस अनेक प्रकार से दूसरों ंको कष्ट और हाशन पहुँचाने का प्रयास करता है।

शुभ वासनायें मोक्ष प्रद हैं। अशुभ वासनायें बन्धन में डालती हैं। शुभ वासनाओं ंका शवकास करना चाशहए। अशुभ वासनाओं ंको दूर करना चाशहए। शुभ वासनाओं ंको अंकुररत करने और अशुभ वासनाओं ंका शनराकरण करने हेतु इन दोनों ंप्रकार की वासनाओं ंका ज्ञान, इनकी मूल प्रकृशत का ज्ञान होना आवश्यक है। षोडश अध्याय में इन दो वासनाओं ंका शवसूतृत वणथन है।

सत्त्वशुम्भद्धः - अन्तःकरण की शुम्भद्ध, हृदय में हर प्रकार से शनमथलता, मन की पशवत्रता आशद, लोगों ंके सार् व्यवहार में धोखा, दम्भ आशद का त्याग और पूणथ सत्य भाव (ईमानदारी) और एकता के भाव में रहने से सत्त्वसंशुम्भद्ध होती है।

िब शचत्त अमृत रूप आत्मा में शनरन्तर म्भस्र्रतापूवथक अवम्भस्त रहने लगे तो इसे शुम्भद्ध की अवस्र्ा समझनी चाशहए। शुद्ध मन ही आत्म-ज्ञान कर सकता है। शास्त्र-श्रवण से िब सन्देह-शनवारण हो िाते हैं, असम्भावना (आत्मा की सत्ता में सम्भावना के अभाव का शवचार) से मनुष्य मुक्त हो िाता है, तब सत्त्वसंशुम्भद्ध होती है। शबना भम्भक्भाव के मन की शुम्भद्ध सम्भव नहीं ंहै। अतः इन साम्भत्वक गुणों ंमें भम्भक्भाव को भी सम्भम्मशलत शकया िाता है।

ज्ञान-शास्त्रोपदेश अर्वा गुरु के उपदेश के अनुरूप आत्मा की प्रकृशत को समझना, उपशनषद् के महावाक्य 'अहं ब्र्ह्माम्भस्म' पर ध्यान के द्वारा आत्म साक्षात्कार ही ज्ञान है। िीवात्मा का परमात्मा के सार् सायुज्य योग है। आत्म संयम अर्वा इम्भिय-शनग्रह के द्वारा अनन्यमनस्क भाव से ध्यान द्वारा अपरोक्षानुभूशत (प्रत्यक्ष ज्ञान) योग है।

शास्त्र और गुरु से प्राप्त ज्ञान का अन्तचथक्षु के द्वारा प्रत्यक्षीकरण कर के साधक संज्ञान प्राप्त करता है। साधक को अपरोक्षानुभूशत होती है। वह परब्र्ह्म के सार् एक हो िाता है। शास्त्रों ंसे वह परोक्ष ज्ञान अर्वा मात्र, ब्र्ह्म का सैद्धाम्भन्तक ज्ञान प्राप्त करता है। योग के अभ्यास से अब वह अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करता है। सुप्त वासनाओं ं और मन के शवनाश हेतु अपेशक्षत प्रयास भी योग है।

ज्ञानयोगव्यवम्भस्र्शतः - भौशतकवाद में शलप्त मनुष्यों ंकी मानशसकता से पृर्क् ज्ञानयोग से प्राप्त िीवन्मुक्त की अवस्र्ा ज्ञानयोगव्यवम्भस्र्शत है।

शनभथयता, पशवत्रता तर्ा ज्ञान और योग में म्भस्र्रता-ये तीन गुण साम्भत्त्वक लक्षणों ंसे युक्त हैं शिनकी व्याख्या श्लोक १ से ३ में दी गई है। ज्ञान योग ही इन गुणों ंसे युक्त होता है। अन्य गुण ज्ञान योशगयों,ं कमथयोशगयों,ं

रियोशगयों ंऔर भक्ों ंमें समान होते हैं। साम्भत्त्वक गुणों ंके अभाव में शकसी भी प्रकार का योग असम्भव है। एक भी गुण का यशद तुम शवकास करोगे तो तुम्हारे भीतर अन्य गुण स्वतः प्रवेश करने लगेंगे। मनुष्य के आन्तररक नैशतक शनमाथण की आधारशला शनभथयता है।

स्वाध्याय और तपस् शक्रयायोग के अङ्ग हैं। ब्र्ह्म यज्ञ स्वाध्याय का रूप है। दान और यज्ञ कमथयोग के आत्मक (अङ्ग) हैं। यज्ञ, दान और आत्म-शनयंत्रण गृहम्भस्र्यों ंके शलए दैवी सम्पदा हैं। अध्याय XVI के श्लोक एक से तीन में वशणथत वे गुण, योग-शवशेष में अभ्यास रत और उस पर् पर आरूढ़ साधक के शलए दैवी सम्पदा से युक् हैं।

दान-शभक्षा देना, भोिन, वस्त्र आशद बांटना अपनी सामर्थ्यथ और साधन के अनुसार ।

दानी व्यम्भक् अशचरेण दीन-दुम्भखयों ंकी सहायता करता है। दान तीन प्रकार का है साम्भत्त्वक, रािशसक और तामशसक (देखो अध्याय XVII * 0.2, 21, 22) यह स्वगथ के िार खोलने वाली प्रशक्रया है। मुम्भक् के समीप ले िाने वाला कायथ है। फल देने वाले वृक्ष की भााँशत शबना शकसी भेद भाव के हशषथत हृदय से अशंकंचन को दान दो ।

दम-आत्म संयम, इम्भिय-शनग्रह। अन्तःकरण अर्वा मन के शनयन्त्रण पर शनरूपण अगले श्लोक में होगा।

आत्म संयम के अभ्यास से इम्भियों ंका उनके शवषयों ंसे सम्बन्ध छूटता है। इम्भियााँ शवषयों ंसे पृर्क् हो िायेंगी और साधक इम्भियों ंके िारों ंसे शवषयों ंकी वेगपूणथ आाँधी को प्रवेश नहीं ंकरने देगा। अब वह दृढ़तापूवथक इम्भियों ंको संयत रखेगा। शरीर के दसों ंिारों ंमें वह अनासम्भक् रूपी अशग्न प्रदीप्त करेगा। कठोर संकल्प लेगा। मौन और ब्र्ह्मचयथ का ित धारण करेगा। आहार में सनुतुशलत रहेगा। प्रते्येक कायथ में इस स्वशणथम शनयम का पालन करेगा। मन की तर्ा इम्भियों ंकी बशहमुथखी वृशत्तयों ंको वश में रखेगा। मन और इम्भियों ंको अपने मूल स्रोत की ओर उनुमुख होने के शलए पे्ररेरत करेगा। शस्त्र से िैसे शतुरु को काट शदया िाता है वैसे आत्म संयम से शवषयोनुमुखी वृशत्तयों ंका संहार शकया िाता है। इम्भियों ंके दसों ंिारों ंमें आन्तररक उते्तिनाओं, ं तृष्णाओं, ं वासनाओं ंको, पररत्याग की, वैराग्य की अशग्न में भस्मीभूत कर देना चाशहए। गृहस्र्ी पूणथ रूप से ऐसा संयम नहीं ंकर सकता शकनुतु शनयशमत और अनुशाशसत िीवन ही उसके शलए आत्म संयम है। सशहषुणुता, म्भस्र्रता, सत्य, अशहंसा और क्षमा आत्म संयम के अभ्यास में शनशहत हैं।

यज्ञ-वेद शवशहत अशग्नहोत्राशद, देव पूिा, शपतृ यज्ञ, भूत यज्ञ, मनुष्य यज्ञ और ब्र्ह्म यज्ञ िो सूमृशत शास्त्रों ंमें शवशहत हैं- ये सब शक्रयायें यज्ञ के अङ्ग हैं।

स्वाध्याय-अदृष्ट लाभ के शलए वेदों ंका अध्ययन करना ।

तपस् - शरीर का संयम तर्ा अन्य प्रकार के तप । यर्ार्थ तपस आत्म तत्त्व पर ध्यान एकाग्र करना है। यह आत्मा को स्र्ूल शरीर और अन्य चार कोषों ंसे पृर्क् करने के पश्चात् ब्र्ह्म सायुज्य करने की प्रशक्रया है। यह मन को अन्तमुथखी करने की प्रशक्रया है। अध्याय XVII के श्लोक १४ से १६ में व्याचशक्षत तीन प्रकार की तपश्चयाथ इसी तप का अङ्ग है।

आिथवम् -सरलता । ज्ञान प्राम्भप्त के शलए यह गुण अत्यन्त शहतकर है। साधक को सदा शनष्कपट, सत्यवादी और स्पष्ट-सरल होना चाशहए। आिथवता उसकी शनरन्तर बनी रहने वाली वृशत्त होनी चाशहए। एक न्यायशप्रय और सत्य पर आरूढ़ व्यम्भक् ही सरल हो सकता है। लोग उसको सम्मान की दृशष्ट से देखते हैं। वह सबका शप्रय होता है। वह समस्त कायों में सफलता प्राप्त करता है। वह कभी सत्य को शछपाता नहीं ंहै।

अडिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः ि◌ान्द्रतरपैुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्स्त्ंवं मादमवं ि◌ीरचापलम् ।।२ ।।

बि्ार्थम : अशहंसा-शकसी को कष्ट न पहुाँचाना, सत्यम् -सत्य (यर्ार्थ वचन), अक्रोधः क्रोध न होना, त्यागः-त्याग, शाम्भन्तः-शाम्भन्त, अपैशुनम् दोष दृशष्ट का अभाव, दया-दया, भूतेषु प्राशणयों ◌ंमें, अलोलुप्स्त्वम् - लोभ रशहत होना, मादथवम् -मृदुता (अकूरूरता), हीः-लि, अचापलम् - म्भरूरता ।

अनुवाद : अशहंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शाम्भन्त, दोष दृशष्ट का अभाव, प्राशणयों ◌ंके प्रशत दया का भाव, अलोभ, मृदुलता, लि, म्भरूरता,

व्याख्या : अशहंसा-मन, वचन, कमथ से शकसी को हाशन न पहुाँचाना। ि◌ीशवत प्राणधाररयों ◌ंके प्रशत अशहंसा भाव रखने से रिस् की शम्भक्याॉँ अवरुद्ध होती हैं। अशहंसा भौशतक, शाम्भब्दक और मानशसक तीन प्रकार की होती है।

सत्यम् - असत्य और अशप्रय वचन बोले शबना शकसी वसुतु का यर्ार्थ वणथन सत्य है। सत्य में आत्म-संयम, ईष्याथ का अभाव, क्षमा, सशहषु्णुता, धैयथ और दया आशद गुण शनशहत हैं।

अक्रोधः दूसरों ◌ंके ि◌ारा अपमाशनत होने पर, गाली दी ि◌ाने पर अर्वा ति़ाना शमलने पर क्रोध न करना अक्रोध है।

त्यागः-त्याग । कमथफल, अहंकार और वासनाओं ◌ंका त्याग । दान भी त्याग है, इसका वणथन पूवथ श्लोक में आ चुका है।

शाम्भन्तः- संकल्परशहत अन्तःकरण ।

अपैशुनम् -कुषिुता का अभाव।

दया-दुम्भखयों ◌ंपर करुणा भाव रखना। दयालु व्यम्भक् का हृदय कोमल होता है। वह संसार के कल्याण के शलए ि◌ीता है। अन्य प्राशणयों ◌ंके सार् ऐक्य भाव दया है।

अलोलुप्स्त्वम् लोभ न करना। लोभ न हो तो इम्भियााँ, अपने-अपने शवषयों ◌ंके सम्पकथ में आने पर भी उते्तेशित अर्वा प्रभाशवत नहीं ◌ंहोतीं।◌ं कूमथ के अङ्गों ◌ंकी भााँशत इम्भियों ◌ंका शवषयों ◌ंसे प्रत्याहरण हो ि◌ाता है।

ि◌ीः-समिा और वेदों ◌ंके शनयमों ◌ंके प्रशतकूल कायथ करने पर लिा का अनुभव ही है।

अचापलम्-शबना प्रयोिन हार्-पैर और वाणी की चेष्टा न करना और व्यर्थ की चेष्टायें न करना "अचापलम्" है। ओिथव, अशहंसा, अक्रोध आशद ब्राह्मणों ◌ंके शवशेष गुण हैं। ये उनके साम्भत्त्वक गुण हैं।

और भी-

तेजः क्षमा धृडतः ि◌ौचमद्रोिो नाडतमाडनता ।
भवन्द्रत संपदं दैवीमडभजातस्य भारत ।।३ ।।

बि्ार्थम : तिः-ति, क्षमा-क्षमा, धृशतः- धैयथ, शौचम् - पशवत्रता, अिौहः्िषहीनता, नाशतमाशनता-अत्यन्त अशभमानी न होना, भवम्भन्त-होते हैं, संपदम् गुण, दैवीम् - दैवी, अशभितस्य्न्म लेने वाले के, भारत-हे भरतवंशी अिुथन ।

अनुवाद : ति, क्षमा, धैयथ, पशवत्रता, िषहीनता, अशभमानी न होना-ये सब गुण दैवी सम्पत् को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष में होते हैं।

व्याख्या : तिस्-ति, शम्भक्, दीम्भप्त, त्वचा की आभा (चमक) । मोक्ष के शलए शिज्ञासु साधक आध्याम्भत्मक पर् पर साहस के सार् आरूढ़ होता है। उसकी उन्नशत में कोई शशर्लता नहीं ंला सकता। कोई वसुतु उसे आकशषथत नहीं ं कर सकती । आत्म साक्षात्कार हेतु यह सतत अटूट उत्कषथ तिस् है। यह तमस् की शनम्नगामी प्रकृशत का अशतक्रमण करता है।

क्षमा-इस गुण से युक् मनुष्य अपमाशनत होने पर, अपशब्द कहे िाने पर अर्वा तिाना शदये िाने पर भी क्रोध नहीं ंकरता, यद्यशप उसमें प्रत्यपकार अर्वा प्रशतशहंसा की शम्भक् होती है, तर्ाशप वह शहंसा अर्वा अपमान से अप्रभाशवत रहता है।

धृशत-यशत अपने भीतर समस्त शवपदाओं ंको शवलीन कर लेता है।

अत्यन्त पिीादायक परीक्षा की घिी में भी म्भस्र बना रहता है - यह एक शवशेष साम्भत्त्वक वृशत्त अर्वा मनोदशा है िो शरीर तर्ा इम्भियों ंकी शशर्लता में उनका अवसाद अर्वा कर्ावट दूर करती है। इस शदव्य गुण से युक् साधक कशठन से कशठन परीक्षण-काल में भी, कशठनाइयों ंमें भी उशिग्न नहीं ंहोता । शरीर और इम्भियााँ बि शशर्ल हों ंतो धृशत (वृशत्त) उस समय उत्तेिक शबथत की काम करती है।

शौचम् - पशवत्रता। यह दो प्रकार की है-बाह्य शुम्भद्ध और

भााँशत एक 'ट शनक' का अन्तः शुम्भद्ध । बाह्य शुम्भद्ध के शलए िल और शमट्टी साधन हैं। अन्तःकरण माया से मुक् हो िाए तो आन्तररक शुम्भद्ध होती है। माया क्या है? धोखा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईष्याथ्िष, दम्भ आशद ये दुगुथण माया के वश से हैं इनका शनराकरण ब्र्ह्मचयथ, क्षमा, शमत्रता, दान, नम्रता, सौम्यता, प्रेम, दया आशद गुणों ंके शवकास से होता है। ये सद्गुण आ िायें तो अन्तःकरण स्वतः शुद्ध हो िाता है। बाह्य शुम्भद्ध की अपेक्षा आन्तररक शुम्भद्ध अशधक महत्त्वपूणथ है।

अिौह-घृणा के भाव का अभाव, दूसरों ंको चोट पहुाँचाने के भाव का अभाव ।

अशतमाशनता-अत्यन्त अशभमान । अशभमानी मनुष्य स्वयं को दूसरों ंकी अपेक्षा श्रेष्ठतर समझता है और मान की आकाचा रखता है। नाशतमाशनता, इस गुण के शवपरीत है। तिस्, क्षमा और धृशत क्षशत्रयों ंके शवशेष गुण हैं। ये क्षशत्रयों ंके साम्भत्त्वक गुण हैं। शौच और अिौह वैश्यों ंके शवशेष धमथ हैं। ये गुण वैश्यों ंअर्ाथत् व्यापाररयों ंके वगथ के शलए साम्भत्त्वक गुण हैं। नाशतमाशनता अर्ाथत् अशभमान का अभाव शूि िाशत का शवशेष गुण है और यही उनका साम्भत्त्वक गुण है।

दैवी सम्पत् छब्बीस गुणों ंसे युक् है। यह परमात्मा की शवरल देन है। यह ऐसी अक्षय्य सम्पदा है शिसे िाकू लूट नहीं ंसकते। ये सम्पदा साधक को अशवनाशी, अनघ ब्राशिक पद प्राम्भप्त में सहायक है। यह मोक्ष प्राम्भप्त का सरल साधन है।

दम्भो दपोऽडभमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।

अज्ञानं चाडभजातस्य पार्थम सिदमासुरीम् ।।४ ।।

बि्ार्थम : दम्भः- धमथध्वशिन् (कपटी), दपथः- गवथ, अशभमानः अहंकार, व-और, क्रोधः क्रोध, पारुष्यम् -कठोरता, एव-ही, च-और, अज्ञानम्-अज्ञान, चऔर, अशभितस्य-उत्पन्न हुए (मनुष्य के), पार्थ- हे पार्थ, सम्पदम् लक्षण, आसुरीम् आसुरी ।

अनुवाद : दम्भ, कपट, गवथ, अशभमान (आत्म प्रवंचना), क्रोध, कठोरता और अज्ञान-ये सब लक्षण, हे पार्थ, आसुरी सम्पदा को ले कर उत्पन्न हुए मनुष्य के हैं।

व्याख्या : दम्भ-कपट । मनुष्य िो नहीं ंहै वही होने का नाटक करना, धाशमथक नहीं ंहै शकनुतु शफर भी धाशमथक और पशवत्र (धमथध्वी) बनने का शदखावा करना। इसमें आत्मश्लाघा भी शनशहत है। धाशमथक कपट तो शनकृष्ट कोशट का कपट है। दम्भ, धोखे और असत्य का शमशश्रत रूप है। अहंकारवश आत्म श्लाघा करने वाले पाप के भागी होंगें।

दपथ-गवथ। शवद्या, धन, मान आशद का गवथ। दपथयुक् व्यम्भक् अपने सहचरों ंको प्रसन्न नहीं ंदेख सकता। शमत्रों ंकी सुख-समृम्भद्ध और शवद्या-अिथन में वह उनके सौभाग्य पर क्रोशधत होता है।

पारुष्यम् - वाणी में कठोरता। अने्धे को कमलनयन वाला कहना, कुरूप को सुन्दर कहना, हीन िाशत वाले को उत्तम िाशत वाला कहना आशद ये आके्षेप अत्यन्त स्वार्थ भाव में शकये िाते हैं।

अज्ञानम् अपने कतथव्य के प्रशत गलत धारणा । अज्ञानी व्यम्भक् शंकंकतथव्यशवमूढ़ होता है। उसमें शववेक नहीं ं होता। शिस प्रकार एक शशु कोई भी वसुतु उठा कर मुख में िाल लेता है, स्वच्छ और दूशषत का ध्यान नहीं ंकरता, उसी प्रकार अज्ञानी व्यम्भक् शववेक-शून्य होने के कारण सत्य-असत्य, शुभ-अशुभ, गुण-अवगुण का शवचार नहीं ं करता। वह शवनाश पर् पर आरूद रहता है। मोक्ष पर् का तो उसे ज्ञान ही नहीं ंहोता । भौशतक अम्भस्तत्व के सागर में ही वह िूब िाता है।

ये छः आसुरी गुण हैं। ये बुरे गुण आसुरी सम्पदा के अन्तगथत माने िाते हैं। मोक्ष पर् के ये प्रशतबन्धक हैं।

अिुथन को 'पार्थ' कह कर, सम्बोधन कर के भगवान् यह संकेत दे रहे हैं शक अिुथन में ये आसुरी गुण नहीं ं हैं क्योंशंक वह पृर्ा के उि कुल में उत्पन्न हुआ है।

आसुरी प्रवृशत्त वाले मनुष्य शवश्वसनीय नहीं ंहोते । वे प्रते्येक शसद्धान्त पर तकथ करेंगे। वे परमात्मा की सत्ता को नकारते हैं। वे संसार चक्र को नहीं ंमानते और वेद-शवरुद्ध, नैशतक गुणों ंके शवरुद्ध चलते हैं। शवषयों ंका सङ्ग ही उनका धे्येय है। वे लोगों ंको लूटते हैं, पर-स्त्री को कुदृशष्ट से देखते हैं। कूररता से लोगों ंकी शहंसा करते हैं। वे पुनिथन्म और परलोक में शवश्वास नहीं ंरखते । आत्म संयम, सदाचार और शुशचता उनके शलए कोई अर्थ नहीं ंरखते ।

असुर वे मनुष्य हैं शिन्ोंने आक्रमण शकये और अभी भी स्वगथ में देवताओं ंके सार् युद्ध कर रहे हैं। आसुरी वृशत्त अर्वा दुगुथणों ंसे युक् मनुष्य ही असुर अर्वा राक्षस हैं। इस कशलयुग में वे बहुलता में हैं। कंस एक असुर र्ा। शहरण्यकश्यपु एक असुर र्ा।

शवश्वशवद्यालय से शक्षा एवम् उपाशध प्राप्त पढ़ा-शलखा व्यम्भक् भी यशद इन अशुभ वासनाओं ंसे युक् है तो वह असुर ही है।

अलौशकक रूप से असुर और देवताओं ंके मध्य आन्तररक युद्ध शुभ-अशुभ वृशत्तयों ंके रूप में अर्वा सत्त्व और रिस्-तमस् के रूप में मनुष्य में शनरन्तर चलता रहता है।

दैवी सिडिमोक्षाय डनबन्धायासुरी मता ।
मा ुिचः सिदं दैवीमडभजातोऽडस पाण्डव ।।५ ।।

बिार्थम : दैवी-दैवी, सम्पत् -सम्पदा, शवमोक्षाय-मोक्ष के शलए, शनबन्धाय-बन्धन के शलए, आसुरी-आसुरी, मता-मानी गई है, मा-नहीं,ं शुचः-शोक करो, सम्पदम् अवस्ा, दैवीम् - शदव्य (देव सम्बन्धी), अशभितः-उत्पन्न हुए, अशस-हो, पाण्डव- हे पाण्डव ।

अनुवाद : शदव्य प्रकृशत मोक्ष के शलए शहतकर है और आसुरी प्रकृशत बन्धन में िालने वाली है। हे अिुथन, तुम शोक मत करो, तुम शदव्य गुणों ंसे युक् हो कर िन्मे हो।

व्याख्या : सम्पत् सम्पशत्त, ऐश्वयथ की अवस्ा, प्रकृशत, गुण। मोक्ष-संसार चक्र, िन्म-मृतुयु के बन्धन से मुम्भक्। शदव्य प्रकृशत मोक्षप्रद है और आसुरी बन्धन के शलए है।

अिुथन पूवथतः ही शोकग्रस्त और अवसाद की म्भस्र्शत में र्ा, अतः भगवान् कृष्ण उसे सान्त्वना देते हुए
कहते हैं शक वह आसुरी गुणों ंके वणथन से दुःख का अनुभव न करे और मोह में न फंसे क्योंशंक वह तो मोक्षप्रद साम्भत्त्वक वृशत्तयों ंको ले कर उत्पन्न हुआ है। भगवान् के इन शब्दों ंको श्रवण कर के अिुथन ने सोचा होगा- "मैं शदव्य गुणों ंसे युक् हाँ अर्वा आसुरी प्रकृशत का हाँ?" भगवान् ने अिुथन का सने्देह शनवारण करने के शलए कहा- "हे अिुथन, शोक मत करो। तुम दैवी सम्पदा से युक् हो कर अवतररत हुए हो। तुम सौभाग्यशाली हो । तुम मोक्ष का आनन्द प्राप्त करोगे।"

"हे अिुथन, ऐसा मत सोचो शक युद्ध में संलग्न हो कर, शहंसा कर के तुम असुर बन िाओगे। इस पर शोक मत करो। इस धमथयुद्ध को लि़ कर तुम धमथ राज्य की स्ापना करोगे।"

ाि भूतसगों लोकेऽन्द्रस्मन् दैव आसुर एव च ।
दैवो डवस्तरिः प्रोक्त आसुरं पार्थम मे शृणु ।। ६ ।।

बिार्थम : िौ दो, भूतसगोंि–ीवों ंकी सृशष्टयााँ, लोके-लोक में, अम्भस्मन् - इस (में), दैवः - शदव्य, आसुरः- आसुरी, एव-ही, च-और, दैवः-शदव्य (दैवी), शवस्तरशः - शवस्तार से, प्रोक्ः-कहा गया, आसुरम् - आसुरी, पार्थ-हे पार्थ, मे-मुझे, शृणु सुनो।

अनुवाद : हे अिुथन, इस संसार में दो प्रकार के सृशित प्राणी हैं-दैवी और आसुरी। दैवी का वणथन शवस्तार से हो चुका है अब तुम आसुरी गुणों ंके शवषय में मुझ से श्रवण करो।

व्याख्या: दैवी और पैशाशचक दो प्रकार के सृशित प्राणी अपनी-अपनी स्वाभाशवक प्रवृशत्त के अनुरूप कायथरत रहते हैं।

बृहदारण्यकोपशनषद् में भी वणथन आता है-

“शनशश्चत रूप से सृशष्टकताथ के िीवों ंके दो वगथ हैं-देव और असुर ।" (१.३१)

भूतसगौं–िीवों ंकी सृशष्टयााँ। प्राशणयों ंकी िाशतयााँ। सृशष्ट का अशभप्राय यहााँ सृशष्ट में सृशित िीवों ंसे है। दैवी और आसुरी प्रकृशत वाले दो प्रकार से सृशित मनुष्य ही दो प्रकार की सृशष्टयााँ नाम से अशभशहत हैं। प्रत्ेयेक मनुष्य, इस संसार में एक अर्वा अन्य दो, दैवी और आसुरी वगथ के अन्तगथत आता है।

भगवान् कृष्ण अिुथन से कहते हैं-"अब मैं तुम्हें आसुरी गुणों ंसे युक् व्यम्भक्यों ंके लक्षण बताऊाँगा। यशद तुम्हें आसुरी गुणों ंका ज्ञान हो िायेगा तो तुम उनसे दूर रहोगे।" इस अध्याय के अन्त तक आसुरी वृशत्त का वणथन शवस्तारपूवथक शकया िाता है।

अध्याय IX श्लोक 9,11,12 में आसुरी वृशत्त का वणथन है। शकनुतु वणथन अपूणथ होने के कारण इस अध्याय में इसे शवस्तार से बताया िा रहा है।

श्री भगवान् ने दैवी प्रकृशत का शवसूतृत वणथन पूवाथध्यायों ंमें शकया है म्भस्र्तप्रज्ञ की अवस्र्ा अध्याय II में, भागवत पुरुष की अवस्र्ा अध्याय XII में और शत्रगुणातीत की अवस्र्ा का वणथन XIV तर्ा इसी अध्याय के प्रर्म तीन श्लोकों ंमें शकया गया है।

प्रवृडत्तं च डनवृडत्तं च जना न डवदुरासुराः ।
न िौचं नाडप चाचारो न सत्यं तेषु डवद्यते ।।७ ।।

बिार्थम : प्रवृशत्तम् -कतथव्य कमथ को, च-और, शनवृशत्तम्-अकमथ को, च और, िनाः मनुष्य, न-नहीं,ं शवदुः िानते, आसुराः आसुरी गुण वाले, न-नहीं,ं शौचम् - पशवत्रता, न-नहीं,ं अशप-भी, च-और, आचारः- आचरण, न-नहीं,ं सत्यम्
-सत्य, तेषु उनमें, शवद्यते - है।
अनुवाद : आसुरी व्यम्भक् ये नहीं ंिानते शक क्या करना चाशहए और क्या करने से बचना चाशहए । उनमें न तो पशवत्रता होती है न सदाचार और न ही सत्य भाषण ।

व्याख्या : आसुरी प्रकृशत वाले लोग कमथ और अकमथ (कमथहीनता) की प्रकृशत को नहीं ंिानते । शरीर के अशतररक् आत्मा का शवचार, शनम्भिय रह कर केवल गुणों ंकी लीला को देखना उनकी बुम्भद्ध से परे है। वे दूसरों ंकी रुशच का सवथर्ा ध्यान नहीं ंरख सकते। वे अपने शरीर अर्वा इम्भिय सनुतुशष्ट के शलए कायथ करते हैं। वे लोभी, स्वार्ी और क्रूरर होते हैं। अतः न तो उनका चररत्र अच्छा होता है और न व्यवहार। वे असत्यभाषी, अन्यायी और अपशवत्र होते हैं। वे नहीं ंिानते शक िीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के शलए उन्ें क्या करना चाशहए और बुराई से बचने के शलए क्या करना चाशहए।

आसुरी प्रकृशत के व्यम्भक् तो मानो अशवद्या रूपी पंक में िूबे हुए हैं। शनशषद्ध कमथ कौन-कौन से हैं और शास्त्र-शवशहत कमथ कौन से हैं, इससे वे सवथर्ा अनशभज्ञ रहते हैं। पशवत्रता की धारणा तो उनमें कदाशप नहीं ंहोती। उनके कमथ कुशटल होते हैं। न तो वे यर्ार्थ प्रवृशत्त का और न ही यर्ार्थ शनवृशत्त का ज्ञान रखते हैं। धमथ-अधमथ, शास्त्रोपदेश, शनदेश वे नहीं ंिानते। वे कभी शप्रय नहीं ंबोलेंगे। वे शमथ्याभाषी और दम्भी होते हैं।

असत्यमप्रडतिं ते जगदाहरनीश्वरम् ।
अपरस्परसमूभूतं डकमन्यत्कामैतुकम् ।।८ ।।

ब्रि्थम : असत्यम् - शमथ्या, अप्रशतष्ठम् - आधार रशहत, ते-वे, िगत् संसार, आहुः-कहते हैं, अनीश्वरम् - शबना ईश्वर के, अपरस्परसमूभूतम् - परस्पर संयोग से उत्पन्न, शकम् -क्या, अन्यत्-अन्य, कामहैतुकम् -काम के कारण ।

अनुवाद : वे कहते हैं- "यह िगत् असत्य है, प्रशतष्ठा रशहत है अर्ाथत् इसका कोई नैशतक आधार नहीं ंहै, इसका कोई स्वामी नहीं ंहै, यह काम से पे्रेररत स्त्री-पुरुष के परस्पर संयोग से उत्पन्न हुआ है और काम ही इसका कारण है अन्य कुछ नहीं।ं

व्याख्या : वे शवश्व को शबना शकसी आश्रय का अर्वा शबना शकसी शनत्य मूल सत्ता का मानते हैं।

यह चावाथक और अन्य भौशतकवादी नाम्भस्तक (अनीश्वरवादी) लोगों ंकी शवचारधारा है। वे ब्र्ह्म की सत्ता को नकारते हैं िो इस िग का आधार है। वे ईश्वर की सत्ता का भी शनषेध करते हैं। वे कहते हैं- "हम शमथ्या हैं इसशलए गित् भी शमथ्या है। सत्य की घोषणा करने वाले शास्त्र भी शमथ्या हैं। अशधक क्या? काम ही इस िगत् का कारण हो सकता है। परस्पर संयोग ही एकमात्र िीवों ंकी उत्पशत्त का कारण है। कमथ का शसद्धान्त कुछ नहीं ंहै। काम से पे्रेररत हो कर स्त्री-पुरुष के सम्भोग के कारण ही इस संसार का उद्भव हुआ है। अधमथ और धमथ कुछ नहीं ंहै। धमाथधमथ के अनुसार कमों के फल प्रदान करने वाला कोई ईश्वर नहीं ंहै। कामेच्छा ही इसका एकमात्र कारण है। यह संसार बस एक घटना है।" उनमें अन्तशनथरीक्षण की प्रशतभा नहीं ंहोती। वे क्षे्त्र और क्षे्त्रज्ञ से अनशभज्ञ होते हैं।

अपरस्पर समूभूतम् सम्भोग । इस का अशभप्राय अणुओं ंका संयोग भी हो सकता है। वैशेशषक मतानुसार संसार अणुओं ंके संयोग से सृशित है।

एतां दृडष्ट्मवष्ट्भ्य नष्ट्ाानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवनु्त्युग्रकमामणः क्षयाय जगतोऽडिताः ।।९ ।।

ब्रि्थम : एताम् -इस, दृशष्टम् - दृशष्ट (शवचारधारा) को, अवष्टभ्य- स्वीकार कर के, नष्टात्मानः नष्ट (अज्ञानी) आत्मायें, अल्पबुद्धयः - अल्प बुम्भद्ध वाले, प्रभवम्भन्त-उत्पन्न होते हैं, उग्रकमाथणः कू्रूर कमी, क्षयाय-नाश करने के शलए, िगतः- गित् का, अशहताः - शतु्रु ।

अनुवाद : इस शवचारधारा का अवलम्बन लेकर ये अल्पबुम्भद्ध, नष्टात्मा और कू्रूरकमाथ लोग संसार के शवनाश के शलए शतु्रु रूप में उत्पन्न होते हैं।

व्याख्या : वे दूसरों ंको लूटते हैं। दूसरों ंका शवनाश कर के उनकी धन-सम्पदा पर अशधकार करते हैं। अपने बुरे कमों का गवथ करते हैं।

नष्टात्मानः नष्ट आत्मायें शिन्होंनें आत्म साक्षात्कार के सब अवसर खो शदये और उितर लोकों ंमें भी प्रवेश पाना उनके शलए सवथर्ा असम्भव है।

अल्पबुद्धयः-वे अल्पबुम्भद्ध होते हैं क्योंशंक अशुम्भद्धयों ंसे पूणथ इस शरीर को ही वे आत्मा मानते हैं, परमात्मा का उन्ें कोई ज्ञान नहीं ंऔर उनकी वृशत्तयााँ शवषय-वासनाओं ंमें ही अटकी रहती हैं। खाना-पीना-सोना उनके िीवन का ध्येय बन िाता है।

उग्रकमाथणः - कूरूरकमाथ। वे शहंसक प्रवृशत्त के होते हैं। धन प्राम्भप्त के शलए शहंसा करने में भी शहचशकचाते नहीं।ं श्री और स्त्री को प्राप्त करने के शलए वे कोई भी घृशणत कायथ कर सकते हैं। भ्रम िाल फैला कर वे संसार की शाम्भन्त और समिय को नष्ट करते हैं।

गितः अशहताः संसार के शतुरु । िगत् का अर्थ यहााँ लोगों ंसे है िो संसार में रहते हैं।

काममाडश्रत्य दुषूपूरं दम्भमानमदान्द्रन्वताः ।
मिोद्गृीत्वासङ्क्ग्रााान्प्रवतमतेऽुडिचव्रताः ।।१०।।

बि्ार्थम : कामम् - इच्छा का, आशश्रत्य-शरण लेकर, दुषूपूरम् -कभी सनुतुष्ट न होने वाली, दम्भमानमदाम्भिताः- दम्भ (गवथ), मान (झूठूी प्रशतष्ठा), और मद से युक् हुए, मोहात्-मोह वश, गृहीत्वा-ग्रहण कर के, असद्ग्राहान् असत्य शसद्धान्तों ंके, प्रवतथन्ते-व्यवहार करते हैं, अशुशचिताः- अशुद्धाचारी, अपशवत्र संकल्प वाले ।

अनुवाद : कभी पूणथ न होने वाले काम का आश्रय लेकर, दम्भ, मान और अहंकार से युक्, भ्रम वश अशुभ शवचारों ंको ग्रहण कर के वे अपशवत्र संकल्पों ंसे व्यवहार करते हैं।

व्याख्या : ये अज्ञानी दुरात्मन् मनुष्य कूरूर पाप कमथ करते हैं। उनकी बुम्भद्ध दपथ, छल-कपट और अशभमान से पररपूणथ होती है। वे अशुभ संकल्प वाले और तकथरशहत शवचारों ंसे युक् होते हैं। वे अपने अन्तःकरण में कभी सन्तोष को प्राप्त न होने वाली इच्छाओं ंको सींचंते हैं। वानर को मशदरा पान कराई िाये तो और अशधक उन्मादक हो िाता है। ऐसे ही वे िैसे-िैसे वयोवृद्ध होते हैं वैसे ही और अशधक कामी और अशभमानी होते िाते हैं। वे अपने पररवेश के लोगों ंको नष्ट करते हैं और उनकी मृतुयु का कारण बनते हैं। उनें् अपने कमों पर अशभमान होता है। दूसरों ंको वे घृणा की दृशष्ट से देखते हैं। उनें् अपने शरीरों ंसे अत्यन्त आसम्भक् होती है। अपने शरीर की तो वे पूिा ही करते हैं। उनका मोह असीम होता है। वे मूखथ और हठी होते हैं अतः उनका कोई दृढ़ संकल्प नहीं ंहोता।

आशायें-इच्छायें अशग्न की भााँशत कभी सनुतुष्ट नहीं ंहोतीं।ं मनोरञ्जन से इच्छाओं ंकी सनुतुशष्ट नहीं ंहोती। अशधक सुख भोगते हो, अशधक ही इच्छायें िाग्रत होती हैं। एक शवषय का सुख भोगने के उपरान्त सदा-सदा के शलए सुख-भोग की इच्छा बनी रहती है। शवषयों ंके संरक्षण हेतु तुम हर प्रकार का साधन करते हो ।

धमाथवलम्बी न होते हुए भी मनुष्य धाशमथक होने का शदखावा करता है। यह दम्भ है। सम्मान के योग्य न होने पर भी वह सम्मान की आकाङ्क्षा करता है। यह मान है। यह झूठूी प्रशतष्ठा है। शमथ्या अनुभाव है। उतूकृष्ट वसुतुओं ंसे वंशचत होने पर भी वह उनें् स्वयं पर आरोशपत करता है। यह मद है।

असुर अशुभ संकल्प करते हैं- "मैं अमुक देवता की आराधना अमुक मन्त्र से करूाँगा और अमुक नारी पर अशधकार करूाँगा । अमुक मन्त्र का िप करके अमुक व्यम्भक् की शहंसा करूाँगा।"

डचतामपररमेयां च प्रलयातामुपाडश्रताः ।
कामोपभोगपरमा एतावडदडतडनडश्चताः।।११ ।।

बि्ार्थम : शचन्ताम् -शचन्ता, अपररमेयाम् - अपार , च -और, प्रलयान्ताम् - मृतुयु पयथन्त, उपाशश्रताः- आशश्रत, कामोपभोगपरमाः- इम्भिय तृम्भप्त को परम लक्ष्य मानने वाले, एतावत् - इतना ही, इशत-इस प्रकार, शनशश्चताः - शनश्चय करके ।

अनुवाद : मृतुयु पयथन्त सार् रहने वाली अगशणत अपार शचन्ताओं ंका आश्रय लेते हुए, इम्भिय-तृम्भप्त को िीवन का सविो लक्ष्य मानते हुए और यह शवषय-भोग ही परम पुरुषार्थ है-ऐसा सोचने वाले,

व्याख्या : अपररशमत शचन्ताओं,ं क्लेशों ंऔर उतुसुकताओं ंसे पररपूणथ उनके मन अगशणत इम्भिय शवषयों ंकी प्राम्भप्त और संरक्षण में लगे रहते हैं। उनका यह दृढ़ शनश्चय होता है शक इम्भियों ंका सुख भोग ही मानव िीवन का आत्यम्भन्तक लक्ष्य है। वे शवषय भोग में ही शनमम्भित रहते हैं। वे इसी को ही सवथस्व मानते हैं। शवषय-भोग को वे आनन्द का परम स्रोत मानते हैं। उनके शलए आत्मा के अलौशकक शाश्वत आनन्द िैसी कोई वसुतु नहीं ंहै। दूसरे लोक के सुख का उनें शवश्वास ही नहीं ंहै। इम्भियों ंकी पहुँच से परे (इम्भियातीत) सुख, इम्भियों ंकी आधीनता से मुक् अक्षय्य आनन्द की वे कल्पना भी नहीं ंकर सकते। उनकी बुम्भद्ध स्रूल और मूढ़ होती है। वे उतिर सूक्ष्म सत्य का ज्ञान नहीं ंकर सकते और न ही ज्ञान ग्रहण करने में समर्थ हैं। इम्भिय-भोग ही उनकी सविो प्राम्भप्त है।

आशापाशशतैबमद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहंते कामभोगार्थमन्यायेनार्थमसञ्चयान् ।।१२ ।।

बिार्थम : आशापाशशतैः- आशाओं ं के सैक्िों ं बन्धनों ं से, बद्धाः-बद्ध, कामक्रोधपरायणाः क्रोध और काम के आशश्रत, ईहन्ते-इच्छा करते हैं, कामभोगार्थम् -काम-भोग के शनशमत्त, अन्यायेन-अन्याय से, अर्थसञ्चयान् - धन का संग्रह।

अनुवाद : आशाओं ंके सैक्िों ंपाशों ंसे बन्धे हुए, काम-क्रोध परायण वे इम्भिय-भोग हेतु अवैध रूप से धन सञ्चय की कामना करते हैं।

व्याख्या : शवषय भोगों ंके शनशमत्त वे शहंसा और लूटमार के कुकृत्यों ंमें संलग्न होते हैं। धन संचय वे शवषय-भोग के शलए करते हैं शुभ कमों में लगाने के शलए नहीं।ं उनमें लेशमात्र भी दया भाव नहीं ंहोता। वे अत्याचारी होते हैं। आशाओं ंके शत-शत-पाशों ंसे वे बंधे होते हैं। अपने हृदय में वे अनेक प्रकार के शवषयों ंके भोग हेतु तृष्णाओं ंको आश्रय देते हैं। अनेक इच्छायें उनके मन में अंकुररत होती हैं। इच्छापूशतथ न होने पर वे शहंसक हो िाते हैं। अन्यायपूणथ ढंग से वे धन संशचत करते हैं। आशायें मनुष्य को संसार में आवृत करती हैं। इसीशलए आशा को पाश कहा गया है। उनकी तृष्णाओं ंका कोई अन्त नहीं ंहोता। शवशाल धन राश एकत्र कर लेने पर भी उनकी तृष्णायें शान्त नहीं ंहोतीं।ं वे तो शदन-शदन शिगुशणत होती हैं। ऐसे व्यम्भक् लोभ के व्यर्थ शकार बनते हैं।

इदमद्य मया लब्धडममं प्राप्स्ये्ये मनोरर्थम् ।
इदमस्तीदमडप मे भडवष्यडत पुनधमनम् ।।१३ ।।

बिार्थम : इदम् यह, अद्य-आि, मया-मेरे िारा, लब्धम् - प्राप्त शकया गया है, इमम् - इसको, प्राप्स्ये्ये-प्राप्त करूँगा, मनोरर्म् - इच्छा को, इदम् - यह, अम्भस्त-है, इदम्-यह, अशप-भी, मे-मेरा, भशवष्यशत - होगा, पुनः पुनः, धनम् - धन।

अनुवाद : "आि मैंने इस (िव्य) को प्राप्त कर शलया है, अपना अमुक मनोरर् भी पूणथ करूँगा। यह (धन) मेरा है और भशवष्य में यह धन भी मेरा हो िायेगा।"

व्याख्या : "मैं वह सब प्राप्त करने में समर्थ हो िाऊँगा िो कुछ भी संसार में है। तब मैं ऐश्वयथ का स्वामी हो िाऊँगा। इस धरा पर मेरे समान अन्य कोई न होगा।"

भशवष्य में- "आगामी वषथ में यह सम्पदा भी मेरी हो िायेगी। मैं संसार में एक समृद्ध (धनी) व्यम्भक् के रूप में िाना िाऊँगा। लोग मुझे 'मेरे स्वामी' कह कर पुकारेंगे।"

ये असुर (िो इस प्रकार सोचते हैं) अपनी सम्पशत्त के कारण ही आत्मप्रवञ्चना के शकार हो िाते हैं। अशभमान से वे फूले रहते हैं। दूसरों ंको वे तृणवत् व्यर्थ समझते हैं। धन का अशभमान उनके शववेक का हरण कर लेता है। वे सुख की आकाङ्क्षा करते हैं शकनुतु कभी सुखी हो नहीं ंपाते। वे मायाि-ाल में फंस िाते हैं। इहलोक और परलोक में पाप और दुःख ही उनका पाशणग्रहण करते हैं।

असौ मया ितः ितुरुिमडनषे्ये चापरानडप ।
ईश्वरोऽहिमि भोगी डसद्धोऽ बिलवानुसुखी ।।१४ ।।

बि्ार्थम : असौ-वह, मया-मेरे िारा, हतः- मारा गया, शतुरुः-शतुरु, हशनषे्ये-मारूँगा, च-और, अपरान् - अन्यों ंको, अशप-भी, ईश्वरः ईश्वर, अहम् -मैं, अहम् -मैं, भोगी-भोगने वाला, शसद्धः-शसद्ध, अहम् -मैं, बलवान् बलशाली, सुखी-सुखी ।

अनुवाद : वह शतुरु मेरे िारा मारा गया है अन्य शतुरुओं ंका भी संहार करूँगा। मैं ईश्वर हाँ। मैं भोगी हाँ। मैं शसद्ध हाँ, बलवान् और सुखी हाँ।

व्याख्या : मैं िो भी ईक्षण करता हाँ उस सब का ईश्वर बनूाँगा। मेरी सेवा न करने वालों ंको मैं िीशवत नहीं ंछोिूाँगा। वसुतुतः सृशष्ट का स्वामी मैं हाँ। मैं अपने कायों में सफलता प्राप्त करूँगा। मेरे पास प्रचुर भूशम, पशुधन और सम्पशत्त है। मेरे अनेक पुत्र-पौत्र हैं। इि भी मेरा सामना नहीं ंकर सकता, वह मेरे सम नहीं ंहै। मैं कोई सामान्य व्यम्भक् नहीं ं हाँ। मैं हर प्रकार से शम्भक्वान्, बलवान्, स्वस् और सुखी हाँ।

इस श्लोक में आसुरी प्रकृशत वाले लोगों ंकी व्यर्थ कल्पनाओं ंका वणथन है।

आढ्यो ऽडभजनवानन्द्रस्म कोऽन्योऽन्द्रस्त सदृिो मया ।
यके्ष्ये दास्याडम मोडदष्य इत्यज्ञानडवमोडिताः ।। १५ ।।

बि्ार्थम : आढ्यः- धनवान्, अशभिनवान् - अचे्छे कुल में उत्पन्न, अम्भस्म (मैं) हाँ, कः कौन, अन्यः-अन्य, अम्भस्त-है, सदृशः समान, मया-मुझसे, यके्ष्ये-यज्ञ करूँगा, दास्याशम-दान करूँगा, मोशदष्य-हषथ मनाऊँगा, इशत-इस प्रकार, अज्ञानशवमोशहताः- अज्ञान से मोहग्रस्त ।

अनुवाद : मैं धनवान् हाँ। कुलीन पररवार में मेरा िन्म हुआ है। मेरे सदृश और कौन है? मैं यज्ञानुष्ठान करूँगा। दान करूँगा। हषथ मनाऊँगा," इस प्रकार अज्ञान से शवमोशहत,

व्याख्या : "धन का देवता कुबेर धनवान् हो सकता है शकनुतु मेरे तुल्य नहीं ंहो सकता। और तो और, भगवान् शवषु्णु के पास भी इतनी सम्पशत्त नहीं ंहै शितनी मेरे पास है। मेरे कुलीन वंश और सगे सम्बम्भन्धयों ंकी तुलना में तो ब्ह्मा की कुलसंतशत भी तुच्छ है। वे मेरे समक्ष कुछ भी नहीं।ं समूपूणथ शवश्व में मेरे समकक्ष कौन हो सकता है?"

अशभिनवान् सात पीशढ़यों ंसे श्रोशत्रय आशद गुणों ंसे सम्पन्न वंश में िन्म हो शिसका वह अशभिनवान् है। "इस शवषय में मेरे समान दूसरा कोई नहीं।ं नाम और ख्याशत उपलब्ध करने के शलए मैं यज्ञाशद करूँगा। इसमें भी

मेरा उपमान कोई नहीं ंबन सकता। मेरी सुतुशत में नृत्य-गीत-संगीत करने वालों ंको मैं धन-दान और उपहार भेंट करूँगा। दान देने में मेरे समान कोई नहीं ंहोगा। मैं भक्षण, मशदरापान और नारी में प्रमोद मनाऊँगा।"

अनेकडचत्तडवरातामिोजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्द्रत नरकेऽुचौ ।।१६ ।।

बि्ार्थम : अनेक-अनेक, शचत्तशवभ्रान्ताः- (शचन्ताओं ंसे) भ्रान्त शचत्त, मोहिालसमावृताः- मोहिाल में फंसे हुए, प्रसक्ाः- आसक् हुए, कामभोगेषु शवषय-भोगों ंमें, पतम्भन्त-शगरते हैं, नरके-नरक में, अशुचौ-अशुद्ध ।

अनुवाद : मनःकम्भल्पत वासनाओं ंके कारण भ्रान्त शचत्त, मोहिाल में फंसे हुए और इच्छाओं ंकी तृम्भप्त के आशद बने हुए वे अपशवत्र नरक में शगरते हैं।

व्याख्या: उग्र ज्वर में शिस प्रकार मनुष्य असंगत शब्दों ंका उिारण करता है उसी प्रकार ये शपशाचोपम मनुष्य अपनी इच्छाओं ंऔर इम्भिय-भोगो का बहुत प्रलपन करते हैं। अनेक पाप करने के उपरान्त वे वैतरणी सदृश घोर अशुद्ध नरक में शगरते हैं। मोह एक िाल है क्योंशंक वह िाल की भाँशत फंसाने बाला है। मछली की भाँशत वे मोह िाल में फंस िाते हैं। चारों ंओर से वे िाल से शघरे होते हैं। वे भ्रशमत हो िाते हैं शक अब क्या करें और क्या न करें। अनेक प्रकार के कुशवचारों ंको आश्रय दे कर वे मोहग्रस्त हो िाते हैं। उशचत-अनुशचत, लाभप्रद-हाशनप्रद और कल्याण-अकल्याण के मध्य शववेक दृशष्ट रखना वे नहीं ंिानते । ज्ञान का अभाव अर्वा उशचत-अनुशचत का ज्ञान न होना ही मोह है। क्योंशंक मोह एक आवरण है और बन्धन का कारण है इसकी तुलना िाल से की गई है। उपशलथम्भखत समस्त गुण पतन की ओर ले िाते हैं।

आिसंभाडवताः स्तब्धा धनमानमदान्द्रन्वताः ।
यजते नामयजै्जैसे्ते दम्भेनाडवडधपूवमकम् ।।१७ ।।

बि्ार्थम : आत्मसंभाशवताः-अपने को श्ेरेष्ठ मानने वालो, स्तब्धाः - शवनयरशहत, धनमानमदाम्भिताः- धन तर्ा झूठी प्रशतष्ठा के मद से युक्, यिने्ते-यज्ञ करते हैं, नामयजै्ः- नाम मात्र के शलए यज्ञ, ते-वे, दम्भेन-पाखण्ड से (धमथध्विीपन से), अशवशधपूवथकम् - शबना शकसी शवशध शवधान के।

अनुवाद : स्वयं को श्ेरेष्ठ मानने वाले, शवनय रशहत, धन और मान के मद से युक्, पाखण्ड से, नाम के शलए, अशवशधपूवथक यज्ञों ंिारा पूिन करते हैं।

व्याख्या : असीम अशभमान् से वे फूलते हैं। स्वयं को श्ेरेष्ठ मानते हैं। साधुिनों ंिारा वे आदरणीय नहीं ंमाने िाते । अपनी महानता पर उन्ें शवशेष गवथ होता है। वे सोचते हैं वे सब प्रकार के सद्गुणों ंसे युक् हैं। वे नम्र नहीं ंहोते। उनमें शवनय और शीलता का अभाव होता है। उनके मन पूणथ रूप से अपनी ही महानता के भाव से पूणथ होते हैं। दूसरों ंको वे हेय दृशष्ट से देखते हैं। वे सोचते हैं शक अन्य लोग उनसे छोटे हैं। यशत, संन्यासी, वृद्ध अर्वा आध्याम्भत्मक गुरु को वे प्रणाम नहीं ंकरते, वे कभी अपना शीश नहीं ंझुकाते । धन की मशदरा से उन्मत्त वे स्तम्भ की भाँशत सीधे ख़िे रहते हैं। यज्ञ करने का पाखण्ड करते हैं।

न तो वे वेदी का ध्यान रखते हैं न पणथशाला अर्वा यज्ञ कुण्ड का अर्वा यज्ञ में प्रयोग की िाने वाली शकसी उशचत वसुतु का ध्यान करते हैं। शास्त्र-शवशहत शनयमों ंका वे शवचार नहीं ंकरते। अपनी ख्याशत बढ़ाने हेतु वे यज्ञ करते हैं। वे तो ब्र्ह्म का नाम भी सुन कर ध्यान नहीं ंदेते तो भगवान् उनके अनुष्ठानों ंपर कैसे ध्यान देंगे?

वे अनुष्ठान तो करते हैं शकनुतु अनेक ध्यान देने योग्य तथ्यों ंको नकार देते हैं िैसे शास्त्र के शनयमों ंके अनुसार मन्त्र िप, देव-पूिन, दशक्षणा दान आशद। वे श्रद्धा और आदर से यज्ञ नहीं ंकरते। उनकी इच्छा तो यह होती है शक लोग उन्हें 'सोमयािी', सोम यज्ञ करने वाला कहें शकनुतु उन्हें यज्ञ-फल की प्राम्भप्त नहीं ंहोगी। उनमें सेवा भाव का अभाव होता है। वे श्रद्धा अर्वा शवश्वास से यज्ञ नहीं ंकरते प्रतुयुत् संसार को धोखा देने के शलए करते हैं।

मान-स्वयं को धन-ज्ञान आशद के कारण बिा समझ कर आदरणीय मानना, मान है।

मद-धन के नशे में चूर व्यम्भक् गुरुिनों ंऔर शवििनों ंको भी घृणा की दृशष्ट से देखता है। धन और ज्ञान से वे मदाम्भित हो िाते हैं। और उनके शसर ही मानो घूम िाते हैं। यही मद है।

अिंकारं बलं दपम कामं क्रोधं च संडश्रताः ।
मामिपरदेिेषु प्रडिषतोऽभ्यसूयकाः ।।१८ ।।

बिार्थम : अहंकारम्-शमथ्या अशभमान, बलम् बल, दपथम् - दपथ (घमण्ड), कामम् -काम (शवषय भोग), क्रोधम् - क्रोध, च-और, संशश्रताः-अवलम्भम्बत, माम् -मुझे, आत्मपरदेहेषु-अपने और दूसरों ंके शरीरों ंमें, प्रशिषन्तःिेष करते हुए, अभ्यसूयकाः - ईष्याथलु ।

अनुवाद : अहंकार, बल, अशभमान, काम और क्रोध के वश में हो कर ये ईष्याथलु लोग अपने तर्ा अन्य शरीरों ंमें म्भस्र्त मुझ ईश्वर से ईष्याथ करते हैं।

व्याख्या : वे आत्म शनभथर हैं और मानशसक तर्ा भौशतक शम्भक् से गवाथम्भित हैं। वे अत्यशधक कृशत्रम िीवन िीते हैं। उन्हें कोई मान न दे तो कुशपत हो उठते हैं। शकसी भी अन्य वसुतु से अपना शरीर अशधक शप्रय है। वे केवल उसी के शलए िीशवत रहते हैं। उनकी योिनाओं ंको यशद कोई व्यर्थ कर दे तो वे उसके प्रशत कटुतापूवथक उग्र हो उठते हैं। बदले की भावना से वे शनदथयतापूवथक उसकी शहंसा कर देते हैं। वे अत्यन्त कृपण व अधम होते हैं। राशत्र के आगमन पर िैसे अन्धकार धीरे-धीरे बढ़ता है वैसे ही उनकी मूखथता, उनका अहंकार, दपथ, मान, मोह शदन-प्रशतशदन बढ़ने लगता है। अपने स्वार्थ की पूशतथ हेतु वे नृशंस शम्भक् प्रयोग में लाते हैं। सत्यभाषी, दानी और मुझ में भम्भक् भाव रखने वालों ंके सार् वे दुव्यथवहार करते हैं और उन्हें अपशब्द कहते हैं।

अहंकारम् - शमथ्या अशभमान-आत्मोद्धत-तत्त्व, अशवद्या का एक शवकार अर्वा कायथ है। यह मानव प्रकृशत में और समस्त बुरे कमों में समस्त दोषों ंऔर अनर्थकारी शवपरीत वृशत्तयों ंका मूल स्रोत है। काम, क्रोध, लोभ, अशभमान और दम्भ सब अहंकार के सेवक हैं। इस दुष्ट शतुरु को संयत करना अत्यन्त दुष्कर है। शकनुतु शवचारणा से इसका संहार हो सकता है।

अशवद्यावश तर्ा शमथ्या रूप से अपने ऊपर आरोशपत उतकृष्ट गुणों ंके कारण ये असुर अत्यन्त अशभमानी होते हैं। स्वयं को गुण सम्पन्न मानने वाले ये सोचते हैं शक वे अत्यन्त महान हैं। शमथ्या रूप से आरोशपत गुणों ंके कारण उनका अहंभाव भी और बढ़ िाता है। अपनी कोषिात (धन सम्बन्धी) वरीयता के कारण वे दूसरों ंको नीचा शदखाने का प्रयास करते हैं। शनि स्वार्थपूशतथ हेतु अर्वा झूठा प्रमाण (साक्ष्य) देने के शलए ररश्वत लेते हैं।

बलम् -काम और आसम्भक् से युक् शम्भक् । असुर दूसरों ंको अपमाशनत करने अर्वा नष्ट करने के शलए अपने बल का प्रयोग करते हैं। नैशतक पूणथता लाने वाले पााँच शवधान िो 'यम' के अन्तगथत बताये गये हैं अर्ाथत् अशहंसा, सत्य, असेतेय, ब्रह्मचयथ और अपररग्रह-यशद मनुष्य इनमें म्भस्र्त नहीं ंहै, हृदय की शुम्भद्ध नहीं ंहै, उसका मन

यशद अशुभ वृशत्तयों ंसे शसंशचत है (पूणथ है), और वह शकसी प्रकार की शम्भक् अशिथत कर लेता है तो वह उसका अनुशचत प्रयोग करेगा और दूसरों ंको नीचा शदखाने व अपमाशनत करने का प्रयास करेगा। मन की एकाग्रता से शसम्भद्ध और शम्भक् प्राप्त होना शनशश्चत है। शकनुतु यम-शनयम का पालन करने वाला मनुष्य उनका अनुशचत प्रयोग
नहीं ंकरेगा और उसका रहीं ंहोगा। यही कारण है पतञ्जशल महशषथ ने कहा- "योग मागथ में शम्भक्याँ अवरोध उत्पन्न
करती हैं। कठोरतापूवथक उनको संयत करो । लक्ष्य की ओर आगे बढ़ो। भगवत्-चेतना की परमावस्र्ा प्राप्त होने पयथन्त, योग की सीढ़ी पर आरूढ़ रहो, िब तक तुम अम्भन्तम सोपान तक नहीं ंपहुँच िाते ।" मुि कर मत देखो। [illegible]को यम में म्भस्त करो। अनेक साधकों ंका पतन ही इसी कारण होता है शक वे यम का अभ्यास नहीं ंकरते । प्रारम्भम्भक अवस्र्ा में इसका अभ्यास अशनवायथ है िब शक वे सीधा ही ध्यान में बैठ िाते हैं। यह एक शोचनीय भूल है।

दपथ-शमथ्या अशभमान (शिसके कारण मनुष्य धमथ का भी अशतक्रमण कर िाता है) दपथ से युक् हृदय वाला मनुष्य धृष्ट और अन्यायी बन िाता है और दूसरों ंके प्रशत उद्धत और सगवथ शासन करने की वृशत्त अपना लेता है, वह गुरुिनों ंकी अर्वा अन्य अपने से बड़ों ंका आदर नहीं ंकरता। यह एक शवशेष दोष है िो उसके अन्तःकरण में घर कर लेता है। इस गुण की अशभव्यम्भक् पर मनुष्य सदाचार से पर्भ्रष्ट हो िाता है।

क्रोध-अशप्रय अर्वा अरुशचकर समक्ष आने पर क्रोध की अशभव्यम्भक् होती है।
ये असुर मुझ से िेष करते हैं। मैं इनके शरीरों ंमें इनके शवचारों ंऔर कमों का साक्षी िष्टा बन के वास करता हाँ। वे मुझे भी मानव समझ कर मुझ से घृणा करते हैं। वे मेरी सवथव्यापक अनश्वर प्रकृशत को नहीं ंसमझ पाते। वेदों ंऔर स्मृशतयों ंमें शदये गये मेरे उपदेशों ंका और मेरी आज्ञा का वे अनुसरण नहीं ंकरते । शास्त्र शवशहत उपदेशों ंका उल्लङ्घन करने वाला शनशश्चत रूप से मुझ से घृणा का कमथ कर रहा है। ये असुर, अत्यन्त ईष्याथलु होते हैं। उनकी वृशत्त और उनके उद्देश्य अशुभ होते हैं। धमथ के पर् पर आरूढ़ गुणी लोगों ंके प्रशत वे िेष भाव रखते हैं। दूसरों ंके सद्गुणों ंको देख कर उनके हृदय स्पृहा से दीप्त होने लगते हैं। यह मात्सयथ है, एक प्रकार की ईष्याथ है। यशद कोई मनुष्य शकसी साधु पुरुष पर दुगुथणों ंका अध्यास (आरोपण) करे, िो सद्गुणों ंसे युक् है, तो यह भाव असूया कहा िाता है। दूसरों ंकी धन-सम्पशत्त और समृम्भद्ध देख कर िलन हो तो उसे ईष्याथ कहते हैं।

तानिं डिषतः कूरूरानंसंसारेषु नराधमान् ।
डक्षपाम्यजस्रमिुभानासुरीष्ेवेव योडनषु ।।१९ ।।

बि्ार्थम : तान् उन, अहम् -मैं, शिषतः िेष करने वालों ंको, कूरूरान् अत्याचारी, संसारेषु संसार में, नराधमान् नराधमों ंको, शक्षपाशम शगराता हाँ, अिस्रम् सदा, अशुभान् -अशुभ, आसुरीषु-आसुरी, एव-ही, योशनषु योशनयों ंमें।

अनुवाद : उन कूरूर, ईष्याथलु, अशुभकमथकारी नराधमों ंको संसार में सदा मैं आसुरी योशनयों ंमें शगराता हाँ।

व्याख्या : सब शरीरों ंके अन्तवाथसी मुझ ईश्वर से घृणा करने वाले, लोगों ंऔर पशुओं ंकी शहंसा में प्रसन्न होने वाले, इन आसुरी मनुष्यों ंके सार् मैं कैसे बरतता हाँ, सुनो। मैं उनें मानव योशन से नीचे शगरा कर पशु आशद शनम्न योशनयों ं में भिे देता हाँ। मैं उनें व्याघ्र, शसंह, शबचुछु, साँप आशद कूरूर योशनयों ंमें शगराता हाँ।

'सदा' शब्द से यहाँ अशभप्राय है- िब तक वे अपने हृदय पररमाशित नहीं ंकर लेते। शाश्वत शनपतन िैसा कोई दंनिहीं ंहै।

तान् - उन साधु पुरुषों ंसे ईष्याथ करने वाले और धमथ पर् पर आरूढ़ लोगों ंके शत्रु ।

नराधमान् -मनुष्यों ंमें अधम, क्योंशंक वे बुरे से बुरा कमथ करने के दोष से युक् हैं और धाशमथक (सदाचारी) मनुष्यों ंको चोट पहुँचाने और गुणीनों ंऔर मूक पशुओं ंकी कूरूरतापूवथक शहंसा करने में प्रमुशदत होते हैं।

आसुरीषु योशनषु-असुरों ंकी योशनयों ंमें। व्याघ्र और शसंह आशद की योशनयााँ ो अत्यशधक कूरूर हैं।

आसुरीं ंयोडनमापि मूढा जन्मडन जन्मडन ।
मामप्राप्यैव कौतेय ततो यान्त्यधमां गडतम् ।।२० ।।

बि्ार्थम : आसुरीम् - आसुरी, योशनम्-योशन को, आपन्नाः- प्राप्त हुए, मूढाः मूखथ, िन्मशन िन्मशनि–न्मों–िन्मों में, माम् -मुझे, अप्राप्य-न पा कर, एव-ही, कौन्तेय हे कुन्ती पुत्र, ततः-तत्पश्चात्, याम्भन्ति–ाते हैं, अधमाम् -शनम्नतर, गशतम् - गशत को ।

अनुवाद : हे अिुथन, आसुरी योशनयों ंमें प्रशवष्ट हो कर और िन्मि–न्मान्तरों ंतक मोशहत हुए ये मुझे न पा कर और शनकृष्ट योशनयों ंमें िन्म लेते हैं।

व्याख्या : ये पशतत असुर राक्षसी योशनयों ंमें शगराये ाते हैं। वे अत्यन्त पशतत और संत्रस्त अवस्ा को पहुँचते हैं। घोर अन्धकार में उन्ें ाला ाता है। उनकी अत्यन्त तामशसक प्रकृशत, पैशाशचक कमथ और इच्छाओं ंके कारण उन्ें शनम्न से शनम्नतम योशनयााँ प्राप्त होती हैं। व्याघ्र की योशन के उपरान्त वे सपथयोशन में प्रवेश करेंगे, सपथ से कीट योशन और इसके पश्चात् वृक्ष आशद योशन को प्राप्त होंगें। संसूकृत में 'तर' और 'तम' तुलनात्मक और सवोत्तम स्तर के शलए प्रयोग में आते हैं। ये असुर शनकृष्टतम योशनयों ंको प्राप्त होते हैं।

वे मुझ तक नहीं ंपहुँच पाते क्योंशंक उनके अन्तःकरण अशुद्ध हैं क्योंशंक वे धमथ पर् पर नहीं ंचलते और शास्त्रशवशहत उपदेशों ंऔर आदेशों ंका पालन नहीं ंकरते । पैशाची प्रकृशत आध्याम्भत्मक उन्नशत के शलए सवथा प्रशतकूल है (वैरी है)। अतः शनयशमत ध्यानाभ्यास और शदव्य गुणों ंका शवकास कर के तुम्हें अशुभ वृशत्तयों ंका शनराकरण करना होगा। केवल तभी तुम मोक्ष प्राम्भप्त कर सकते हो।

डत्रडवधं नरकस्येदं ारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तर्था लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।२१ ।।

बि्ार्थम : शत्रशवधम्-तीन प्रकार के, नरकस्य-नरक के, इदम् - यह, ारम् - ार, नाशनम् - शवनाशकारी, आत्मनः- आत्मा के, कामः काम, क्रोधः क्रोध, तर्ा तर्ा, लोभः- लोभ, तस्मात्-इसशलए, एतत् यह, त्रयम्-तीन, त्यैत्-त्याग देने चाशहए।

अनुवाद : आत्मा का शवनाश करने वाले ये तीन प्रकार के दोष-काम, क्रोध और लोभ नरक के ार हैं। अतः इन तीनों ंअवगुणों ंका त्याग कर देना चाशहए।

व्याख्या : काम, क्रोध और लोभ-ये महापर् के चोर मनुष्य को दुःख-क्लेश और नरक के अन्धकार से युक् गभीरगतथ में शगराने वाले हैं। ये तीन कष्ट के उद्गम स्रोत हैं। ये तीन शनम्नतम नरकों ंकी ओर ले ाने वाले ार रूप हैं। ज्ञान, भम्भक् और शाम्भन्त के ये शत्रु हैं। इन अशुभ वृशत्तयों ंके मन में प्रवेश करने पर मनुष्य अपना शववेक और मानशसक सन्तुलन खो बैठता है और अनेक बुरे कमथ करने लगता है।

काम, क्रोध और लोभ आत्मान्धता और अशवद्या के सूचक हैं क्योंशंक शुद्ध शाश्वत आत्म तत्त्व में अर्वा ब्र्ह्म में शवषय-वासना, अभाव, क्रोध, लोभ आशद शवकारों ंका अभाव है।

नरकस्य ािरम् नरक का ािर। नरक की ओर ले ािने वाला ािर। इस ािर पर प्रवेश करते ही आत्मा का शवनाश हो ािता है अर्ाथत् ािीवन का लक्ष्य प्राप्त करने के शलए यह संघषथ अर्वा पुरुषार्थ करने योग्य नहीं ंरहता।

यह ािर क्योंशंक आत्मा का हनन करने वाला है प्रत्येक व्यम्भक् को चाशहए शक वह इन तीन का त्याग करे। (शनरूपण - III.47)

इन तीनों ंका त्याग करने वाले मनुष्य की अगले श्लोक में प्रशंसा की गई है।

एतैडवमुक्तः कौतेय तमोिारैन्रैस्त्रडभनमरः ।
आचरत्यिानः श्रेयस्ततो याडत परां गडतम् ।।२२ ।।

ब्र्िार्थम : एतैः इनसे, शवमुक्ः - मुक्, कौन्तेय हे कुन्ती पुत्र, तमोिारैः - अन्धकारमय ािरों ंसे, शत्रशभः-तीन (के ािरो), नरः मनुष्य, आचरशत-आचरण करता है, आत्मनः- आत्मा के, श्रेयः कल्याण का, ततः-तब, याशत–ािाता है, पराम् - परम, गशतम् - गशत को (लक्ष्य को)।

अनुवाद : हे अिुथन, अन्धकारमय इन तीन ािरों ंसे मुक् हो कर मनुष्य आत्म कल्याण के शलए साधन करता है और इस प्रकार परम गशत को प्राप्त होता है।

व्याख्या : नरक के इन तीन ािरों ंका त्याग करने पर साधक के शलए मोक्ष का मागथ स्पष्ट हो ािता है। वह सन्तों ंका साशन्नध्य प्राप्त करता है ाो मोक्ष शदलाने वाला है। वह आध्याम्भत्मक उपदेश ग्रहण कर के उन्ें अभ्यास में लाता है। वह शास्त्रों ंका श्रवण करता है, मनन करता है, ध्यान करता है और अन्त में आत्म साक्षात्कार कर लेता है।

तमोिार - अन्धकारमय ािर ाो नरक की ओर ले ािने वाले हैं ाो कष्ट और भ्राम्भन्त से पूणथ हैं।

यः ािास्त्रडवडधमुत्सृज्य वतमते कामकारतः ।
न स डसन्द्रद्धमवाप्नोडत न सुखं न परां गडतम् ।।२३ ।।

ब्र्िार्थम : यः ाो, शास्त्रशवशधम् - शास्त्र की शवशध को, उत्सृज्य त्याग कर, वतथते-कमथ करता है, कामकारतः-काम से प्रयुक् हो कर, न-नहीं,ं सः वह, शसम्भद्धम् -शसम्भद्ध, अवाप्नोशत-प्राप्त करता है, न-नहीं,ं सुखम् -सुख, न नहीं,ं पराम् - परम, गशतम् गशत ।

अनुवाद : वह ाो शास्त्र की शवशध को त्याग कर अर्ाथत् शवशध-शनषेध और शवशधबोधक आदेशों ंका पालन न कर के कामना के वशीभूत हो कर कमथ करता है वह न तो शसम्भद्ध (पूणथता) प्राप्त करता है, न सुख और न ही परम गशत को प्राप्त करता है।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कायामकायमव्यवन्द्रथर्थतौ ।
ज्ञात्वा ािास्त्रडवधानोक्तं कमम कतुमडमिहामडस ।।२४ ।।

बि्ार्थम : तस्मात् - इसशलए, शास्त्रम् - शास्त्र, प्रमाणम् -प्रमाण, ते-वे, कायाथकायथव्यवम्भस्र्तौ -कत्तथव्य-अकत्तथव्य की
व्यवस्ा में, ज्ञात्वा–ान कर, शास्त्रशवधानोक्म् - शास्त्र के शवधान के अनुसार कही बात, कमथ-कमथ, कतुथम् -करने के शलए, इह-इस लोक में, अहथशस-योग्य हो, करना चाशहए।
अनुवाद : अतः कत्तथव्य और अकत्तथव्य की व्यवस्ा में शास्त्र ही तेरे शलए प्रमाण हैं। वेद शास्त्रों ंमें शवशहत अध्यादेश का ज्ञान कर के तुम्हें इस संसार में कमथ करना चाशहए।

व्याख्या : आत्म कल्याण के इच्छुक मनुष्य को शास्त्र के आदेशों ंकी अवज्ञा नहीं ंकरनी चाशहए। शाश्वत आनन्द प्राम्भप्त के शिज्ञासु को वेद और सूमृशत ग्रन्थों ंका सम्मान करना चाशहए ि◌ो सदाचार के शनयमों ंकी नींवं रखने वाले ग्रन्थ हैं। शास्त्रों ंमें शिन बातों ंका शनषेध हो उनका त्याग कर देना चाशहए और स्वीकायथ तथ्यों ंको ग्रहण करना चाशहए।

इस प्रकार पूणथ रूपेण वेदों ंके प्रशत शनष्ठावान व्यम्भक् कभी दुभाथग्य का सामना नहीं ंकर सकता। उसे शोक अर्वा मोह नहीं ंहो सकता। इन शास्त्रों ंसे बढ़कर कोई माँ इतनी दयालु नहीं ंहो सकती क्योंशंक ये हमें बुरे कमों से बचा कर

हम पर परम श्ेरेय (मोक्ष) की वृशष्ट करते हैं। इसशलए धमथग्रन्थों ंका सम्मान करो। इनमें शनशषद्ध कमों का त्याग करो। ि◌ो कतथव्य कमथ शवशहत हैं उनें् पूणथ हृदय और आन्तररक बल से करो।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषत्सु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
दैवासुरसंपडिभागयोगो नाम षोडिोऽध्यायः ।।१६ ।।
।। इडत दैवासुरसिडिभागयोगः ।।

ॐ श्री परमिाने नमः

अर्थ सप्तदिोऽध्यायः

श्रद्धात्रयडवभागयोगः

अजुमन उवाच

ये ि◌ास्त्रडवडधमुत्सृज्य यजते श्रद्धयाऽन्द्रन्वताः ।
तेषां डनिा तु का कृष्ण सत्त्वमािो रजस्तमः ।।१ ।।

बि्थम : येि्-ो, शास्त्रशवशधम् - शास्त्र की शवशध को, उत्सृज्य-त्याग कर, यिन्ते-यज्ञ करते हैं, श्रद्धया-श्रद्धा से, अम्भिताः- युक् हो कर, तेषाम् - उनकी, शनष्ठा-आस्ा, तु-शनशश्चत रूप से, का-क्या, कृष्ण-हे कृष्ण, सत्त्वम् - सत्त्व, आहो-अर्वा, रिः रिस्, तमः-तमस् ।

अजुमन ने कहा

अनुवाद : हे कृष्ण, शास्त्रों ◌ंके शवशध-शवधान अर्वा आज्ञा का व्यशतक्रम (उल्लंघन) कर के िो मनुष्य केवल श्रद्धापूवथक देवाशद पूिन करते हैं, उनकी म्भस्शत क्या होती है? ये साम्भत्त्वक है, रािशसक है अर्वा तामशसक ?

व्याख्या : तीन प्रकार की शनष्ठाओं ◌ंसे युक् तीन प्रकार के मनुष्यों ◌ंकी प्रकृशत का वणथन इस अध्याय में शनरूशपत है। प्रत्येक मनुष्य अपनी स्वाभाशवक वृशत्त-साम्भत्त्वक, रािशसक अर्वा तामशसक के अनुरूप व्यवहार करता है।

अिुथन कृष्ण से कहते हैं-"शास्त्रों ◌ंका शनगूढ़ अर्थ समझना अर्वा ग्रहण करना अत्यन्त कशठन है और शास्त्रवेत्ता को प्राप्त करना और भी दुष्कर है िो वेदों ◌ंका ज्ञान करा सके। अशधकांश मनुष्य पशवत्र, सूक्ष्म, कुशाग्र और एकाग्र (अशवचशलत, म्भस्र) बुम्भद्ध से युक् नहीं ◌ंहोते। िीवन की अवशध अल्प है। शास्त्र अनन्त हैं।

आध्याम्भत्मक पर् के प्रशतबन्धक अनेक हैं। ज्ञान प्राम्भप्त की सुशवधा सवथदा उपलब्ध नहीं ◌ंहोती। शास्त्रों ◌ंमें शवरुद्ध भाव समक्ष आते हैं, उनका शवरोध शमन करना है। आप कहते हैं शक शास्त्र-ज्ञान के शबना मोक्ष सम्भव नहीं ◌ं है। एक साधारण मनुष्य, यद्यशप वह शास्त्र के उपदेशों ◌ंको नहीं ◌ंिानता तर्ाशप दान करता है, यज्ञाशद कमथ करता है, शनष्ठापूवथक भगवान् की पूिा करता है, सन्तों ◌ंऔर ऋशष-मुशनयों ◌ंके चरणकमलों ◌ंका अनुसरण करता है, वह एक बालक की भाँशत है िो शलम्भखत वणों का वैसे ही प्रशतलेखन (copy) करता है अर्वा एक प्रज्ञाचकुषु शकसी दृशष्टवान् से सहायता लेता है, हे भगवन्, कृपया बतायें उसकी शनष्ठा शकस प्रकार की है, साम्भत्त्वक है, रािशसक है अर्वा तामशसक? शास्त्रों ◌ंका ज्ञानन रखनेवालोंकी गशत क्या है?

श्री भगवानुवाच

डत्रडवधा भवडत श्रद्धा देडिनां सा स्वभावजा ।
सान्द्रत्त्वकी राजसी चैव तामसी चेडत तां शृणु ।।२ ।।

बि्थम : शत्रशवधा-तीन प्रकार की, भवशत - होती है, श्रद्धा-श्रद्धा, देशहनाम् देहधाररयों ◌ंकी, सा-वह (श्रद्धा), स्वभावि - (उनकी) प्रकृशत के अनुरूप, साम्भत्त्वकी-साम्भत्त्वकी, रािसी-रािशसक, च-और, एव-ही, तामसी-तामशसक, च-और, इशत-इस प्रकार, ताम्-उसे, शृणु-सुनो।

श्री भगवान् ने कहा

अनुवाद : देहधाररयों ंकी स्वभाविन्य श्रद्धा तीन प्रकार की होती है-साम्भत्त्वक (शुद्ध), रािशसक (आसम्भक्युक्), तामशसक (अन्धकारयुक्) । अब इसके शवषय में तुम मुझसे श्रवण करो।

व्याख्या : समूपूणथ िगत् मानो आस्र्ावान् है। तीन गुणों ंके प्रभाव से यह आस्र्ा, श्रद्धा, तीन प्रकार की हो िाती है। सत्त्व का प्रबल शवकास होने पर िब मनुष्य में सत्त्व का अशतरेक (आशधक्य) होता है तो उसके शलए आत्म-ज्ञान, आत्म-साक्षात्कार सहि हो िाता है। रािसी वृशत्त की प्रधानता से तो श्रद्धा शक्रया-कमों की चेटी (दासी) हो िाती है। तमस् का आच्छादन हो िाये तो श्रद्धा लुप्त हो िाती है।

साम्भत्वक श्रद्धा से सम्पन्न व्यम्भक् मोक्ष को अपना लक्ष्य मान कर आगे बढ़ते हैं। रािशसक मनुष्य सांसाररक शक्रया-कलापों ंअर्वा कुषिु कत्तथव्यों ंमें संलग्न रहते हैं। तामशसक श्रद्धा वाले कूरूर प्रकृशत के होते हैं। वे पशुबशल देते हैं। आत्माओं ंका आह्वान करते हैं, प्ेरेतों ंसे प्रलाप करते हैं। श्रद्धा यशद सत्त्व-समम्भित हो िाये तो मोक्ष का साधन बन िाती है। रािशसक वृशत्त यशद प्रधान हो िाये तो श्रद्धा भी शवशवध-वणथ युक् हो कर शवशवध शक्रयाओं ंमें मनुष्य को संलग्न करती है। तमस् का अशतरेक (प्रधानता) होने पर तो समझ लो अन्धकार ही अन्धकार है। ज्ञान की शकरण नहीं ंशदखेगी।

मनुष्य के मन के सार् शमल कर श्रद्धा पूर्क् गुणों ंसे सम्पन्न होती है। मन के अनेक रूप-रङ्ग हैं। मशदरा के पात्र में यशद गङ्गा–िल िाल शदया िाये तो वह दूशषत हो िायेगा, इसी प्रकार दुििन की सङ्गशत में सिन भी अवगुणों ंसे युक् हो िायेगा । तीन गुण मनुष्य की श्रद्धा पर अपना रङ्ग चढ़ाते रहते हैं अर्ाथत् उसके मन को प्रभाशवत करते रहते हैं। अन्य दो गुणों ंके दब िाने पर प्रधान गुण की अशभव्यम्भक् के अनुरूप मानव मन कायथ करता है।

मनुष्य की स्वाभाशवक वृशत्तयों ंके अनुरूप मन शत्रशवध रूप धारण करता है। पूवथिन्म के संस्कारों ंके अनुसार मनुष्य का स्वभाव बनता है।

िैसी वृशत्त होती है, वैसी इच्छा उत्पन्न होती है, िैसी इच्छा होगी वैसा ही कमथ होगा, िैसा कमथ होगा मृत्यूपरान्त उसके अनुसार िन्म होगा। शरीर तो वृक्ष के बीि की भााँशत है, एक अशवम्भच्छन्न शृंखला है। वृक्ष के वृम्भद्धकाल में बीि का नाश होता है और वृक्ष पुनः नवीन बीि उत्पन्न करता है। सतत, शाश्वत रूप से यह क्रम चलता रहता है। इसी प्रकार मनुष्य, देह धारण करता है, कमथ करता है, वृशत्तयों ंका शवकास करता है, मृत्यु को प्राप्त होता है और अपनी वृशत्तयों ंके अनुरूप ही नव देह धारण करता है। िन्म-मृत्यु का मूल कारण अशवद्या का िब तक शवनाश नहीं ंहोता और मनुष्य शत्रगुणातीत हो कर आत्म-ज्ञान प्राप्त नहीं ंकर लेता, तब तक यह क्रम चलता रहता है।

श्रद्धा स्वभाविन्य होती है अर्ाथत् पूवथ िन्मों ंमें कृत शुभ-अशुभ कमों के सुप्त संस्कार िो मृत्यु के समय अशभव्यक् होते हैं उनके समुदाय का नाम स्वभाव है। (उनसे उत्पन्न हुई श्रद्धा ही शत्रशवध है।) शचत्त में अर्वा अवचेतन मन में पूवथ संस्कारों ंका मानो आगार है िो स्मृशत से पुनिीशवत होते हैं अर्ाथत स्मरण में आते हैं।

रािशसक-राक्षस और यक्षों ंकी पूिा रािशसक है िो रिस् का प्रभाव है।

साम्भत्त्वक-सत्त्व गुण से उत्पन्न हुई देव पूिाशद शवषयक श्रद्धा ।

तामशसक-तमोगुण से उत्पन्न प्ेरेतशपशाच आशद शवषयक श्रद्धा तामशसक है िो तमोगुण का कायथ है।

श्रद्धा मनुष्य का प्रमुख अवलंबन है। यह मात्र बौम्भद्धक शवश्वास अर्वा शप्रय नीशतयों ंका अन्धानुकरण नहीं ंहै। इसकी शवशेषताओं ंका ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। िैसे तुम फल को देख कर वृक्ष की पहचान करते हो, वाणी से मानव मन की और सांसाररक सुख-दु:ख के अनुरूप पूवथ कृत (िन्मान्तर) के कमों का ज्ञान करते हो इसी प्रकार श्रद्धा का भी स्पष्ट ज्ञान रखने का प्रयास करो।

स्वभाविा-स्वभाविन्य। पूवथ िन्म के संस्कारों ंसे उत्पन्न ।
तम् - उस । शत्रशवध श्रद्धा की ओर संकेत है यहााँ ।

सत्त्वानुरूपा सवमस्य श्रद्धा भवडत भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यचूछ्रद्धः स एव सः ।।३ ।।

बिर्थम : सत्त्वानुरूपा-स्वभाव के अनुरूप, सवथस्य-सब की, श्रद्धा-श्रद्धा, भवशत होती है, भारत- हे अिुथन, श्रद्धामयः श्रद्धायुक्, अयम्-यह, पुरुषः पुरुष, यः-िो, यचूछ्रद्धः- िैसी श्रद्धा, सः- वह, एव-ही, सः वह (है)।

अनुवाद : हे अिुथन, प्रत्येक मनुष्य की श्रद्धा उसकी प्रकृशत के अनुरूप होती है। पुरुष श्रद्धामय है। िैसी शिसकी श्रद्धा है वह स्वयं भी वही है।

व्याख्या : प्रत्येक मनुष्य की श्रद्धा स्वभाविन्य होती है। मनुष्य श्रद्धा से अनुरंशित है। पूवथ श्लोक में 'स्वभाव' शब्द और इस श्लोक में 'सत्त्व' पयाथयवाची हैं।

मनुष्य के चररत्र की पहचान उसकी श्रद्धा से की िा सकती है। उसकी श्रद्धा उसके चररत्र का दपथण है। श्रद्धा ने उसे िैसा बनाया है वही वह है। श्रद्धा से िीवन-चररत्र को स्वरूप शदया िा सकता है। श्रद्धा उसकी शनष्ठा को इशङ्गत करती है, उसका दोष शनणथय करती है। प्रत्येक मनुष्य की श्रद्धा उसकी स्वाभाशवक अशभव्यम्भक्, शवशेष वृशत्त, संस्कार अर्वा पूवथ िन्मों ंमें शकये गये अचे्छ-बुरे कमों के सुप्त संस्कारों ंके पुनिाथगरण के अनुरूप होती है। प्रत्येक मनुष्य की श्रद्धा, अपना स्वरूप और गुण, उसके अम्भस्तत्व की सामग्री, स्वभाव और संस्कारों ंसे ग्रहण करती है।

सत्त्व-प्रकृशत । स्वाभाशवक अशभव्यम्भक्, शवशेष प्रकार की वृशत्तयों ंसे युक् अन्तःकरण ।

सवथस्य-प्रत्येक प्राणी की।

पुरुष-मनुष्य । आवागमन के चक्र में शनगृहीत िीवात्मा । मन से प्रशतशष्ठत आत्मा ।

श्रद्धामयः श्रद्धा से युक् । अन्नमय कोष िैसे अन्न से पूणथ है, आनन्दमय कोष आनन्द से पूणथ है वैसे ही अन्तःकरण (मन, बुम्भद्ध, शचत्त, अहंकार) श्रद्धा से पूणथ है।

"पुरुष श्रद्धामय है, िैसी उसकी श्रद्धा है वही वह है।" यह शसद्धान्त अध्याय VII श्लोक २० और २३ तर्ा अध्याय IX श्लोक २५ में वशणथत की पुनरावृशत्त है।

यजते सान्द्रत्त्वका देवान्यक्षरक्षांडस राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजते तामसा जनाः ।।४ ।।

बि्र्थम : यिन्ेते-पूिा करते हैं, साम्भत्त्वकाः साम्भत्त्वक, देवान् देवों ंकी, यक्षरक्षांशस-यक्ष और राक्षसों ंका, रिसाः-रिशसक, पे्रेतान् -पे्रेत, भूतगणान् भूतों ंको, च - और, अन्ेये-अन्य, यिन्ेते-पूिते हैं, तामसाः-तामशसक, िनाः- लोग ।

अनुवाद : साम्भत्त्वक, शुद्ध प्रकृशत वाले पुरुष देवों ंका पूिन करते हैं। रिशसक अर्वा मनोशवकारी राग युक् प्रकृशत वाले यक्ष और राक्षसों ंका पूिन करते हैं। तामशसक अर्वा मोह ग्रस्त भूत-पे्रेत आशद को पूिते हैं।

व्याख्या : श्रद्धा की पररभाषा बताने के उपरान्त भगवान् कृष्ण अिुथन को बता रहे हैं शक श्रद्धा के अनुरूप पूिाहथ शवषय का चयन कैसे होता है। श्री की प्रकृशत (साम्भत्वक, रिशसक अर्वा तामशसक) का अनुमान शवशेष प्रमानों ंसे शकया िाता है िैसे देव पूिन आशद। प्रते्येक मनुष्य अपने अम्भस्तत्व के प्रधान गुण के अनुरूप पूिा के शवषय का चयन करता है। उसमें शिस गुण का अशतरेक होगा उसके अनुसार ही उसकी श्रद्धा की अशभव्यम्भक् होगी। साम्भत्त्वक मनुष्य की श्रद्धा की अशभव्यम्भक् साम्भत्वक होगी, रिगुण में म्भरुत मनुष्य की श्रद्धा रिशसक होगी और तमोगुण में म्भरुत मनुष्य की श्रद्धा की अशभव्यम्भक् तामशसक होगी।

साम्भत्त्वक पुरुष, सत्त्व भाव से युक् और देव पूिन करने वाले इस संसार में शवरल ही हैं।

यक्षगण कुबेर के बान्धव हैं। कुबेर धन के देवता हैं। भूत-शपशाच धन-सम्पशत्त की रक्षा करने वाले हैं।

राक्षस-बल और पराक्रम से युक् िीव िैसे नैर्ऋत (Nairrita), बृहत्काय राक्षस िो मायावी शम्भक्यों ंसे युक् होते हैं।

भूत-पे्रेतनर, वेताल, शनशाचर ।

अिास्त्रडवडितं घोरं तप्यते ये तपो जनाः ।
दम्भिांकारसंयुक्ताः कामरागबलान्द्रन्वताः ।।५ ।।

बि्र्थम : अशास्त्रशवशहतम्-शास्त्र में शिनका शवधान नहीं ंहै, घोरम् -घोर, तप्यन्ेते-तप करते हैं, येि्ो, तपः-तप, निाः मनुष्य, दम्भाहंकारसंयुक्ाः - दम्भ (घमण्ड) कामरागबलाम्भिताः-काम और राग (आसम्भक्) से बलपूवथक पे्रेररत । और अहंकार से युक्,

अनुवाद : वे मनुष्य िो शास्त्र की आज्ञा के शवरुद्ध घोर तप करते हैं, दम्भ और अहंकार से युक् हैं और काम तर्ा आसम्भक् िारा पे्रेररत होते हैं,

व्याख्या : कुछ लोग सोचते हैं शरीर को कष्ट पहुाँचाना लक्ष्य प्राम्भप्त का समुशचत साधन है। अन्य लोगों ंको आकृष्ट कर के इम्भियों ंकी तृम्भप्त के शलए धन अशिथत करना उनका धे्येय होता है। वे हार् ऊपर उठा कर एक टााँग पर ख़िे रहेंगे। यह कोई तपस्या नहीं ंहै। यह तो तामशसक तपस् है। शारीररक पीिा मोक्ष नहीं ंशदला सकती। ये लोग तो शास्त्रों ंके मूल तत्वों ंभी अनशभज्ञ हैं। शविानों ंकी धाशमथक प्रशक्रयाओं ंका वे उपहास करते हैं, वृद्ध िनों ंपर आके्षेप करते हैं। वे अपनी महानता के अशभमान में झूलूते हैं। उन्ें अपनी सम्पदा का अहंकार है। वे शास्त्र िारा अप्रमाशणत तपस्या करते हैं। अपने राग और इच्छा के बल पर वे अशास्त्रशवशहत घोर तप करते हैं।

अपने देवता को प्रसन्न करने के शलए वे बिों ंकी बशल चढ़ा देने में संकोच नहीं ंकरते। अहंकार को न मार कर वे यज्ञ बशल के नाम पर शनदोष पशुओं ंको मार िालते हैं। वसुतुतः अपनी रसना को सनुतुष्ट करने के शलए

वे उनें मारते हैं। नृशंस कमथ ! शास्त्रों ◌ंके शवषय में वे अपशब्द कहते हैं और स्वयं मोह-ममता के वन में शवचरण करते हैं। वे स्वयं भी दु:खी होते हैं और दूसरों ◌ंको भी दु:ख पहुाँचाते हैं। वे ऐसी तपस्या करते है ि◌ो स्वयं उनके शलए भी कष्टप्रद है और दूसरों ◌ंको भी (अन्य ि◌ीवों ◌ंको) हाशन पहुाँचाने वाली है। शोचनीय है उनका भाग्य । उनका शवनाश अपररहायथ है।

कामरागबलाम्भिताः का अर्थ यह भी हो सकता है-काम, राग और बल से युक् ।

दम्भ-ओिंबर, दम्भी मनुष्य आकांक्षा करता है शक सब लोग उसे सिन मानें। वह वसुतुतः गुणी तो नहीं ◌ं होता शकनुतु वैसा होने का ओिंबर करता है। ि◌ो वह नहीं ◌ंहै वह बनने या होने का बहाना करता है। शमथ्या अशभमान करता है।

अहंकार-अहंभाव । अहंकारी मनुष्य सोचता है और अनुभव करता है शक सभी सद्‌गुणों ◌ंसे वह युक् है तऱा अन्य लोगों ◌ंसे श्ऱेष्ठ है।

बल-ऐम्भिक शवषयों ◌ंके प्रशत राग (आसम्भक्) होने के कारण उग्र पि़ीा सहन करने की महान शम्भक्। (पि़ीा ि◌ो पदार्थ की प्राम्भप्त और उसकी रक्षा में सहन करती पि़ती है) ।

काम-कामना। शकसी भी शवषय की कामना ।

कषमयतः ि◌रीरथरं्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवातः ि◌रीरथरं्थं तान्द्रन्वद्ध्यासुरडनश्चयान् ।।६ ।।

बि़ार्थम : कषथयन्तः कष्ट देते हुए, शरीरस्थम् - शरीर में म्भस्र्त, भूतग्रामम् - भूत समुदाय को (पंच तत्त्वों ◌ंको), अचेतसः- अशववेकी, माम् मुझे, च और, एव-ही, अन्तःशरीरस्थम् - भीतर, शरीर में म्भस्र्त, तान् उनें, शवम्भद्ध–ि◌ानो, आसुरशनश्चयान् - असुर प्रवृशत्त वाले ।

अनुवाद : अशववेकी मनुष्य, शरीर में म्भस्र्त भूत समुदाय को तऱा अन्तरात्मा में म्भस्र्त मुझे भी कष्ट पहुाँचाते हैं, उनें तुम आसुरी संकल्पों ◌ंवाला ि◌ानो ।

व्याख्या : भूत ग्रामम् समस्त तत्त्वों ◌ंका समुदाय ि◌ो शरीर का शनमाथण करता है।
(भूत) ग्रामम् - इम्भियाशद करणों ◌ंके रूप में पररणत भूत समुदाय को।

माम् -मुझ को। वासुदेव को ि◌ो उनके कमों और शवचारों ◌ंका साक्षी है।

मुझे इस प्रकार कष्ट देने वाला मेरे उपदेशों ◌ंकी पूणथतया अवहेलना (अवज्ञा) करता है।

अचेतसः- बुम्भद्धहीन, अचेत, शववेकशून्य ।

ओािरस्त्वडप सवमस्य डत्रडवधो भवडत डप्रयः ।
यज्ञस्तपस्तर्था दानं तेषां भेदडममं शृणु ।।७ ।।

ब्िार्थम : आहारः - भोिन, तु-वस्तुतः, अशप-भी, सवथस्य-सब का, शत्रशवधः-तीन प्रकार का, भवशत-होता है, शप्रयः-शप्रय, यज्ञः यज्ञ, तपः-तप, तर्ा-और, दानम् दान, तेषाम् - उनके, भेदम्-भेद, इमम् - यह, शृणु-सुनो।

अनुवाद : भोिन भी िो सबको शप्रय है, तीन प्रकार का है। इसी प्रकार यज्ञ, तप और दान की शक्रयायें भी शत्रशवध हैं। इनके भेद अब सुनो।

व्याख्या : सवथस्य-प्रत्येक का अर्ाथत् आहार लेने वाले सब प्राणी ।

इमम् - इसको, िो बताने लगे हैं।

तेषाम् उनका अर्ाथत् भोिन आशद का।

गुणों ंके अनुसार मनुष्य के आहार-शवशेष का स्वरूप शनशश्चत होता है। आहार तीन प्रकार का है िो मनुष्य ग्रहण कर सकता है।

प्रत्येक आहार का अपना एक गुण होता है। मम्भस्तष्कीय कोषों ंपर पृर्क् पृर्क् प्रकार के आहार पृर्क् प्रभाव िालते हैं। गौरैया, माँस, मछली, अण्डा, प्याि और लहसुन उत्तेिक भक्ष्य पदार्थ हैं। फल, िौ आशद मन शान्त और सौम्य बनाते हैं। आहार की प्रकृशत मानव मन को प्रभाशवत करती है। अपने स्वभाव अर्वा गुण के अनुरूप मनुष्य आहार-शवशेष की अशभलाषा करता है।

शरीर रूपी उपकरण के िारा मनुष्य संसार में समस्त कायथ शनष्पन्न करता है। यह शरीर मानो अश्व है िो मनुष्य को अपने लक्ष्य (मोक्ष) तक पहुँचाता है। अतः इसे शुद्ध-पशवत्र, स्वस्र् और शम्भक्सम्पन्न रखना चाशहए। शक्रयाओं ं को स्वरूप देने के शलए शरीर, मन िारा शनशमथत साँचा है। मन और शरीर में शनकट का सम्बन्ध है। शरीर की दशा और प्रकृशत का मानशसक प्रशक्रयाओं ंपर सूक्ष्म प्रभाव पिता है। इसशलए शरीर और मन का शनमाथण करने वाले भक्ष्य पदार्थ

पशवत्र, पोषक, सौम्य, साम्भत्त्वक, मधुर (कोमल) तर्ा आरोग्यावह होने चाशहए। इस संसार में प्रत्येक वस्तु शत्रशवध है। आहार अपने-अपने लक्षणों ंऔर शरीर तर्ा मन पर िालने वाले प्रभावों ंके कारण साम्भत्त्वक, रािशसक अर्वा तामशसक हैं। मनुष्य िो आहार लेता है उससे उसके स्वभाव का अनुमान लगाया िा सकता है। तुम अपनी प्रकृशत को िान सकते हो शक वह साम्भत्त्वक है, रािशसक है अर्वा तामशसक । आहार शवशेष के प्रशत तुम्हारी रुशच के अनुसार यह अनुमान तुम लगा सकते हो और इसके पश्चात् रािशसक और तामशसक आहार का त्याग कर के साम्भत्त्वक आहार का सेवन करो।

यज्ञ, तपस् और दान में शत्रशवध शवभाग क्यों ंहैं? क्योंशंक यह शत्रशवध शवभाग गुणों ंकी प्रकृशत के अनुरूप है। रािशसक और तामशसक गुणों ंकी खोि करो, उनका त्याग करो और पूणथ रूप से साम्भत्त्वक प्रवृशत्त अपनाओ।

कृच्छ्र और चान्द्रायण व्रतों ंका अभ्यास शरीर को तर्ा इम्भियों ंको क्षीण करता है, यह तप है। ध्यान भी तप है। यह मुखाकृशत को ब्रह्म तेि, शदव्य आभा और आलोक से युक्त करता है।

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीशतशववधथनाः ।
रस्याः शस्नग्धाः म्भस्थरा हृद्या आहाराः साम्भत्त्वकशप्रयाः ।।८ ।।

बि्रथम : आयुः सत्त्वबलारोग्य सुखप्रीशतशववधथनाः- आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य, सुख और प्रीशत (हषथ और पाचन शम्भक्) बढ़ाने वाले, रस्याः रस युक्, शस्नग्धाः-शचकने, म्भरुराः-पोषक, हृद्याः रुशचकर, आहाराः भोज्य पदार्थ, साम्भत्त्वकशप्रयाः साम्भत्त्वक मनुष्य को शप्रय हैं।

अनुवाद : आयु, बुम्भद्ध, बल, स्वास्थ्य (आरोग्यता), सुख और प्रीशतवधथक खाद्य पदार्थ ि◌ो रसयुक्, शस्नग्ध (शचकने), म्भरुर (पोषक) और रुशचकर हैं, वे साम्भत्त्वक मनुष्य को शप्रय हैं।

व्याख्या : शुद्ध साम्भत्त्वक भिोन प्राण शम्भक् और बल प्रदायक हैं। यह मानशसक शम्भक् का भी शवकास करने वाले हैं।

सत्त्व-प्रसन्नता, शुद्धता, आन्तररक-नैशतक-आध्याम्भत्मक शम्भक् और बल ि◌ो मन को अवसाद के क्षणों ◌ं में म्भरुर रखता है।

बल-शम्भक्, कशठन कायथ करने पर भी कावट न होना।

प्रीशत-ओकाई (वमन) का अभाव, अच्छी पाचन शम्भक् ।

रस्याः - मधुर और रसयुक् ।

म्भरुराः-पोषक, ि◌ो दीघाथवशध तक शरीर में (सार रूप से) रह सकते हैं। ये शम्भक्प्रद हैं शकनुतु पाचन में कशठनाई नहीं ◌ं करते।

हृद्याः-आहार पर एक दृशष्ट ही मन को सुखद हो और धुँए की गन्ध से और दग्ध-अवस्ा से मुक् हो।

साम्भत्त्वक भिोन प्रसन्नता, सौम्यता और मानशसक स्पष्टता प्रदान करने वाला होता है। यह साधक को गहन ध्यान में प्रवेश करने, मानशसक शाम्भन्त और सनुतुलन बनाये रखने में सहायक है। इस से शरीर और मन को सवाथशधक शम्भक् प्राप्त होती है। यह सहि रूप से पच कर समीकरण को प्राप्त होता है।

साम्भत्त्वक मनुष्य को रसयुक् आहार तरा् अन्य आहार ि◌ो रूप में आकषथक, स्पशथ में कोमल, स्वाद में रुशचकर, पररमाण में कम, पोषक अशधक हों–शप्रय हैं। इनकी तुलना आध्याम्भत्मक गुरु के मुखारशवन्द से शनःसृत वचनों ◌ं से की ि◌ाती है ि◌ो कम होते हुए भी अत्यन्त माशमथक और सारगशभथत होते हैं। साम्भत्त्वक आहार आरोग्यता की दृशष्ट से अत्यन्त अनुकूल होता है।

सत्त्व वृम्भद्ध करने वाले आहार का सेवन करो। दुग्ध, नवनीत, तिाा पके फल, बादाम, हरी दाल, ि◌ौ, परवल, तोरई, करेला, कदली (केला) आशद साम्भत्त्वक हैं। माँस, मछली, अण्डा, मशदरा का कूरूरता से त्याग करो यशद तुम सत्त्व वृम्भद्ध कर के मोक्ष प्राम्भप्त चाहते हो तो । भिोन के सूक्ष्मतम भाग से मन बनता है, तभी तो कहा ि◌ाता है- "ि◌ैसा अन्न वैसा मन" । यशद तुम साम्भत्त्वक भिोन करते हो तो मन भी साम्भत्त्वक होगा। शरीर के सप्त धातु (सार रूप मूल तत्व) त्वचा, रक्, माँस, मेद, अम्भस्, मिा और वीयथ भिोन से बनते हैं।

इन सप्त धातुओं ◌ं के सदृश (अनुरूप) मन में शवचार उत्पन्न होते हैं। इन तत्त्वों ◌ं की ि◌ैसी दशा होगी वैसा ही मन बनेगा। ि◌ल से भरा हुआ पात्र अशग्न पर रखा ि◌ाये तो ि◌ल उष्ण हो ि◌ायेगा। वैसे ही मन की संरचना और प्रकृशत भी भिोन अर्वा सप्तधातु की संरचना और प्रकृशत सदृश होगी।

कवम्ललवणातुयुष्णतीक्ष्मणरूक्षडवदाडिनः ।
आिारा राजससे्येष्टा दुःखोिोकामयप्रदाः ।।९ ।।

बि्ाथथम : कट्म्लिलवणातुयुष्णतीक्ष्मणरूक्षशवदाशहनः क़िवे, खट्टे, नमकीन, गमथ, तीक्ष्मण (तीखे), रूक्ष (रूखे), दाहकारक, आहाराः - भोिन, रािसस्य-राि् गुण वाले को, इष्टाः रुशचकर, दुःखशोकामयप्रदाः- दुःख, शोक और रोग उत्पन्न करने वाले।

अनुवाद : क़िवे, खट्टे, लवणयुक्, अशत उष्ण, तीक्ष्मण, रूक्ष और दाहकारक आहार दुःख, शोक और रोगों ंको उत्पन्न करने वाले हैं तर्ा रािसी प्रकृशत के मनुष्यों ंको शप्रय हैं।

व्याख्या : अशत शब्द सभी सात गुणों ंके सार् िोना चाशहए िैसे अशत कटु, अशत लवण युक् आशद।

रािशसक भोिन मन में अशुभ शवचार, उत्तेिना, अन्य-अन्य वस्तुओं ंकी तृष्णा, दुःख, शोक और रोग उत्पन्न करते हैं। रािशसक मनुष्य अपनी रसना को सन्तुष्ट करने के शलए सदा शवशभन्न प्रकार के व्यञ्जन बनाने की योिना बनाता रहता है। वह नमक, शमचथ, तेल, लवंग, मसाले, खट्टे अचार आशद अशधकता में सेवन करता है। उसके नेत्रों ंसे पानी बहने लगे अर्वा नाशसका से बूाँदें टपकने लगें शफर भी वह उष्ण और खट्टे पदार्ों का त्याग नहीं ंकरता। िब तक शिह्वा शमचथ से िलने न लगे, खट्टे पदार्ों से उदर पूणथ रूप से भर न िाये उसका तालु (palate) असन्तुष्ट रहता है। शभंिी, पूरी, कचौरी, खट्टे मसाले, मााँस, मछली, अण्डा, शमठाई, आलू, तली हुई रोशटयााँ, दही, बैंगन, गािर, काला चना, प्याि, लहसुन, नीबू, मसूर, चाय, काफी, पान, तम्बाकू-ये सब आहार में रािशसक पदार्थ हैं।

यातयामं गतरसं पूडत पयुमडषतं च यत् ।
उन्द्रच्छष्टमडप चामेध्यं भोजनं तामसडप्रयम् ।।१०।।

बि्ाथथम : यातयामम् -सत्त्व रशहत, गतरसम्-नीरस, पूशत-दुगथन्धयुक्, पयुथशषतम्-बासी, रात्र्यंतररत (शिसको पके हुए एक रात बीत गई हो),च - और, यत् -िो, उच्छिष्टम् बचा हुआ (खाने के पश्चात् बचा), अशप-भी, च - और, अमेध्यम् अपशवत्र, भोिनम् - भोिन, तामसशप्रयम् - तामसी मनुष्यों ंको शप्रय।

अनुवाद : िो आहार सत्त्व रशहत, नीरस, दुगथन्धयुक्, बासी, झूठा (बचा हुआ), अपशवत्र हो वह तामशसक मनुष्यों ं को शप्रय है।

व्याख्या : गांिा (cannabis indica), भांग, अशहफेन (opium), कोकीन (cocaine), चरस, चन्डू (chandoo), ये सब सत्त्व रशहत और दुगथन्धयुक् पदार्थ हैं और तामशसक हैं।

यातयामम् - इसका शाच्छब्दक अर्थ है तीन घण्टे पूवथ पकाया गया। '

यातयामम्' और 'गतरसम्' पयाथयवाची हैं।

पयुथशषतम् दुगथन्धयुक् । पका हुआ रात भर का रखा भोिन ।

उच्छिष्टम् - भोिनोपरान्त र्ाली में बचा भोिन ।

तामशसक वृशत्त का मनुष्य एक शदन पूवथ का बना भोिन दूसरे शदन मध्याह्न में खायेगा। वह अधपका अर्वा अशधक पका (िला हुआ) भोिन भी स्वाद से सेवन करता है। भोिन िब तक बासी और खट्टा न हो िाये तब तक वह सेवन नहीं ंकरता। वह शनशषद्ध पेय और खाद्य पदार्ों को लेता है। वह मशदरा पान करता है, ताड़ी (शबथत शमली मशदरा) िो खट्टी हो चुकी है उसका सेवन करता है। राक्षसी वृशत्त से युक् यह अत्यन्त भयावह होता है।

अफलाकाङ्क्षडभयमज्ञो डवडधदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेडत मनः समाधाय स सान्द्रत्त्वकः ।।११।।

शब्दार्थ : अफलाकाशचशभ:- फल की इच्छा से रशहत मनुष्यों ंके िारा, यज्ञः-यज्ञ, शवशधदृष्टः-शास्त्रों ंके शनदेशानुसार, यः–िो, इज्यते-शकया िाता है, यष्टव्यम् - यज्ञ सम्पन्न होना चाशहए, एव-ही, इशत-इस प्रकार, मनः- मन, समाधाय- म्भस्र्र करके, सः वह, साम्भत्त्वकः साम्भत्त्वक ।

अनुवाद : वही यज्ञ साम्भत्त्वक है िो शनष्काम भाव से युक् पुरुषों ंिारा शवशध-शवधान से युक् अर्ाथत् शास्त्र के शनदेशानुसार अपना कतथव्य कमथ समझ कर शकया िाता है।

व्याख्या : िब कोई यज्ञाशद कमथ पूणथ साम्भत्त्वक भाव, शनष्ठा और भम्भक् से, शनष्काम भाव से, अनन्यमनस्क हो कर और अपना कत्तथव्य कमथ समझ कर शकया िाता है तो वह कमथ साम्भत्त्वक (शुद्ध) प्रकृशत का कहा िाता है। यह अनुष्ठान शनष्काम भाव से केवल आत्म-ज्ञान की प्राम्भप्त के साधन रूप में सम्पन्न शकया िाता है। मनुष्य की साम्भत्त्वक प्रकृशत ही उसे शबना शकसी कामना के शनःस्वार्थ भाव से कमथ करने को बाशधत करती है। वह अपने मोक्ष की भी कामना नहीं ंकरता प्रतुयुत् इसशलए करता है शक वह कत्तथव्य कमथ है और अवश्य शकया िाना चाशहए। वह कृत संकल्प होता है शक यज्ञ एक कत्तथव्य है और पूणथ होना चाशहए।

यज्ञ का अर्थ यहाँ नैशमशत्तक यज्ञ से नहीं ंहै। यह शवशाल अर्थ में प्रयोग होता है। कोई भी कमथ िो शनःस्वार्थ भाव से, कामना रशहत, आसम्भक् रशहत, अहंभाव रशहत, फलाकाङ्क्षा रशहत ईश्वर को समशपथत कर के शकया िाये वह यज्ञ है।

अडभसंधाय तु फलं दम्भार्थमडप चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं डवन्द्रद्ध राजसम् ।।१२ ।।

शब्दार्थ : अशभसंधाय-इच्छा कर के, तु-वसुतुतः, फलम् -फल, दम्भार्थम् - अशभमान के शलए, अशप-भी, च-और, एव - ही, यत्–िो, इज्यते-अशपथत शकया िा ता है, भरतश्रेष्ठ- हे भरतश्रेष्ठ (अिुथन), तम्-उस, यज्ञम् यज्ञ को, शवम्भद्ध–िानो, रािसम् -रािशसक ।

अनुवाद : हे अिुथन, िो यज्ञ फल की आकाङ्क्षा से अर्वा शमथ्या अशभमान वश शकया िाता है उसे रािशसक िानो ।

व्याख्या : पुत्रेष्णा, शवत्तेष्णा, लोकेष्णा अर्वा नाम और ख्याशत के शलए शकया गया यज्ञ रािशसक होता है। इस प्रकार का यज्ञकताथ अपना महत्त्व बढ़ाने के शलए, शवश्वशवख्यात होने के शलए, पररणाम में कुछ फल प्राप्त करने के शलए, स्वयं को महान दशाथने के शलए, पावन और शशशक्षत शविान सा शदखने का आिंबर रचाने के शलए और अपनी ही मशहमा का गुणगान करवाने हेतु अपी सम्पदा का प्रदशथन करने के शलए यज्ञ करता है। उसमें आत्म-ज्ञान की अशभलाषा कदाशप नहीं ंहोती।

डवडधीनमसृष्टाँ मन्त्रिीनमदडक्षणम् ।
श्रद्धाडवरडितं यजंञं तामसं पररचक्षते ।।१३ ।।

बि्ार्थम : शवशधहीनम् - शास्त्र शवशध से रशहत, असृष्टान्नम् - शबना प्रसाद शवतरण शकये, मन्त्रहीनम् मन्त्रिोारण शकये शबना, अदशक्षणम् - दशक्षणा रशहत, श्रद्धाशवरशहतम् श्रद्धारशहत, यज्ञम्-यज्ञ, तामसम्-तामशसक, पररचक्षते-कहा िाता है।

अनुवाद : वह यज्ञ तामशसक माना िाता है िो शास्त्र शवशध के शवपरीत हो, प्रसाद रशहत हो, मन्त्र रशहत हो, दशक्षणा रशहत हो और श्रद्धारशहत हो।

व्याख्या : तामशसक मनुष्य के िारा यज्ञ शास्त्र-शनदेशों ंके सवथरा् शवपरीत होता है, उसमें मन्त्रों ंका प्रयोग नहीं ं होता। इस यज्ञ में हर प्रकार की अशनयशमतता देखी िा सकती है। अन्न का प्रसाद शवतररत नहीं ंहोता। शास्त्र के शनदेश के अनुसार पुरोशहतों ंको दशक्षणा नहीं ंदी िाती । मन्त्रिोारण यर्ार्थ नहीं ंहोता । स्तोत्र गान, उिारण और छन्द भी दोषयुक् होता है। कभी-कभी तो गान होता ही नहीं।ं श्रद्धा का शनतान्त अभाव रहता है। ऐसा यज्ञ करने वाला मनुष्य कोई लाभ प्राप्त नहीं ंकरता ।

देवडिजगुरुप्राज्ञपूजनं ि**ौचमाजमवम् ।**
ब्रह्मचयमर्डिंसा च ि**ारीरं तप उच्यते ।।१४ ।।**

बि्ार्थम : देवशििगुरुप्राज्ञपूिनम् -देव, शिि (ब्राह्मण), गुरु और शविान् की पूिा, शौचम् - शुम्भद्ध, आिथवम् - सरलता, ब्र्ह्मचयथम् ब्र्ह्मचयथ, अशहंसा- अशहंसा, च-और, शारीरम्-शरीर का, तपः-तप, उच्यते-कहा िाता है।

अनुवाद : देव, शिि, गुरु और पूज्य व्यम्भक् की पूिा, शुशचता, सरलता, ब्र्ह्मचयथ और अशहंसा शारीररक तप कहे िाते हैं।

व्याख्या : तपस् -तप, आत्मानुशासन ।

चरणों ंका उपयोग तीर्थ में पावन मम्भन्दर में िाने के शलए हो, हस्त मम्भन्दर की स्वच्छता में लगें, भगवान् की पूिा की सामग्री एकत्र करने में लगें और अचथन-वन्दन में लगे । ब्राह्मणों,ं गुरुिनों ंऔर शविानों ंको साष्टाङ्ग प्रणाम और ब्र्ह्मचयथ और अशहंसा का पालन-ये शारीररक तप हैं। शरीर का उपयोग माता-शपता और गुरु तर्ा दीन-दु:खी रोगी की सेवा में है। यह भी शारीररक तप है। शरीर के िारा शकया िाने वाला तप शारीररक तप है। ऐसे तप करने के शलए शरीर ही साधन है। इसीशलए यह शारीररक तप कहलाता है। चोरी न करना (असे्तय) और दूसरे के धन का लालच न करना भी शारीररक तप है।

शिसने ब्र्ह्म-साक्षात्कार कर शलया है वह प्रज्ञावान् है। कोई शूि भी प्रज्ञावान् हो सकता है। शवदुर शूि होते हुए भी ज्ञानी र्ा। इसी कारण से भगवान् ने प्रज्ञावान् का संकेत पृर्क् रूप से शकया है।

ब्र्ह्मचयथ का अर्थ है संयम (मैर्ुन में रत न होना)। यहााँ उस वृशत्त को संयत करने के अर्थ में है, दबाने में नहीं।ं यशद मन ध्यान, िप, प्रार्थना, शास्त्राध्ययन, आत्मशवशे्लषण और "मैं कौन हाँ" के भाव से पूणथ होगा और रशतभाव से शून्य शुद्ध आत्म तत्त्व का शचन्तन करेगा तो मन के प्रत्याहरण के सार् ही सम्भोग की इच्छा भी शशर्ल

हो कर समाप्त हो ियेगी। मन तनु (सूक्ष्म) हो ियेगा। कामेच्छा यशद दबा दी िाये तो यह पुनः-पुनः आक्रमण कर के मन को अशान्त और उत्तेशित करेगी और इससे वीयथ स्खलन होगा। ध्यान, िप, भगवन्नाम संकीतथन और प्रार्थना से मन को शुद्ध रखना चाशहए। प्रर्म तो मन का संयम अशनवायथ है। इसके उपरान्त इम्भियों ंका संयम सहि हो ियेगा। यही कारण है शक षट् सम्पत् में शम (मन का संयम) प्रर्म स्र्ान पर है और दम (इम्भियों ंका शनयन्त्रण) शितीय स्र्ान पर आचशक्षत है। मन की सहायता के शबना इम्भियाँ चेष्टा नहीं ं कर सकीं।ं इसशलए कामेच्छा
का प्रभावशील उपचार और ब्रह्मचयथ का श्रेष्ठ साधन है मन का शनयन्त्रण एवं तदुपरान्त इम्भिय शनग्रह । इम्भिय-शवषयों ंका अत्यशधक शचन्तन वास्तशवक इम्भिय-तुशष्ट की अपेक्षा आन्तररक आध्याम्भत्मक िीवन को अशधक हाशन पहुँचाता है। साधना से यशद मन पशवत्र नहीं ंशकया तो मात्र इम्भियों ंका बाह्य शनयन्त्रण अपेशक्षत फल देने में असमर्थ होगा। यद्यशप बाह्य इम्भियाँ शनग्रहीत हों ंतर्ाशप उनके आन्तररक प्रशतरूप िो अभी बलवान और उग्र हैं, मन से बदला लेते हैं और उग्र मनोिोग तर्ा वन्य संकल्पनाओं ंको िन्म देते हैं।

"अहो चेष्टाप्रशतरूशपका काशमनो मनोवृशत्तः।"

-शाकुन्तलम्

नवसाधकों ंके शलए मनोशनग्रह दुष्कर है। यशद इम्भियों ंको स्वतन्त्र छोड़ शदया िाये तो मन को, शनग्रह करना कशठन हो ियेगा। इसी कारण भगवान् कृष्ण कहते हैं- "इसशलए हे अिुथन! इम्भियों ंको पहले वशीभूत करके िान और शववेक को नष्ट करने वाले काम को मार िालो।" (शनरूपण - III.41)

मन को प्रर्म संयत करने का शसद्धान्त उशचत है। यह अभ्यास प्रर्म श्रेणी के साधकों ंके शलए शहतकर है। मध्यम श्रेणी के साधकों ंको प्रर्म इम्भिय-शनग्रह करना होगा । इम्भियों ंकी वृशत्त बशहमुथखी होती है। मन इम्भियों ंके माध्यम से कायथ करता है। एक को संयत करने पर दूसरा भी संयत हो िाता है। इम्भिय संयम का अशभप्राय मन का संयम भी है क्योंशक मन इम्भियों ंका पुंि (समूह) ही है। इम्भियाँ न हों ंतो मन भी न हो।

शत्रु पर यशद दोनों ंअग्र भागों ंसे आक्रमण शकया िाये तो शत्रु पर शविय हो सकती है। इसी प्रकार मन पर भी शविय प्राप्त की िा सकती है यशद दो अग्र भागों ंसे यौगपशदक (सहि ही) आक्रमण शकया िाये-इम्भियों ंपर बाह्य आक्रमण और मन पर आन्तररक आक्रमण िो शक इच्छाओं,ं कामनाओं ंके शनराकरण िारा सम्भव है।

मन को प्रर्म संयत करो, ऐसा कहा िाये तो तुम प्रर्म इम्भियों ंको संयत करो-यह एक शवचारधारा है। दूसरी शवचारधारा है-इम्भियों ंको पहले वश में करो, मन सहि ही वशीभूत हो ियेगा। ये तकथ व्यर्थ ही पापवृत में फंसाने वाला है िैसे-"वृक्ष का अम्भस्तत्व प्रर्म र्ा अर्वा बीि का" अर्वा "तुम आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लोगे यशद तुम समस्त कामनाओं ंपर शविय प्राप्त कर लो-और तुम कामनाओं ंपर संयम तभी कर सकते हो िब तुम्हें आत्म-ज्ञान होगा।"

इस असत्यभाशसत तथ्य को देख कर तुम्हें शचन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं ंहै। दोनों ंमें से एक का अभ्यास करने का यत्न करो अर्ाथत् अपनी रुशच, सामथ्यथ और प्रकृशत के अनुसार मनोशनग्रह अर्वा इम्भिय-शनग्रह करो। अभ्यास िारा तुम स्वयं ही िान िाओगे, दोनों ंमें कौन सा श्रेष्ठ है। अभ्यास में आगे बढ़ने पर शनैः-शनैः शंकायें दूर होती िायेंगी और तुम परम सुख और शाम्भन्त का आनन्द लोगे ।

अनुिेगकरं वाक्यं सत्यं डप्रयडितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।। १५ ।।

शब्दार्थ : अनुद्वेगकरम् - उद्वेग (दुःख) न करने वाले, वाक्यम् वचन, सत्यम् -सत्य, प्रियहितम् - प्रिय और हितकर, च - और, यत्-जो, स्वाध्यायाभ्यसनम् वेदाध्ययन का अभ्यास, च-और, एव-ही, वाङ्मयम् - वाणी का, तपः-तप, उच्यते-कहा जाता है।

अनुवाद : उद्वेग न लाने वाले, सत्य, प्रिय और हितकर वचन बोलना तथा वेदों का अभ्यास-ये वाणी के तप कहे गये हैं।

व्याख्या : वाणी का तप करने वाले मनुष्य के वचन किसी के लिए दुःखकर नहीं हो सकते। उसके वचन दूसरों को सान्त्वना और हर्ष प्रदान करने वाले होंगें। उसके शब्द सब के लिए हितकारी होंगें। वाणी मन को विक्षिप्त (भ्रमित) भी कर सकती है। वाणी का संयम एक कठिन अनुशासन है किन्तु परम शान्ति के इच्छुक साधकों को इसका अभ्यास करना होगा। दृढ़ संकल्प, सहिष्णुता, कार्य में सत्य बर्ताव (ईमानदारी), और सतत प्रयास में रत साधक के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

मनुस्मृति में कहा है-"सत्य भाषण करो, असत्य भाषण मत करो, सत्य किन्तु अप्रिय मत बोलो। प्रिय वचन हो और सत्य न हो तो भी मत बोलो। यही सनातन धर्म है।"

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः ।।"

उद्वेगकरम् जीवों को दुःख देने वाले ।

वाङ्मयम् - वाणी का तप वही है जो इस श्लोक में वर्णित सभी गुणों से युक्त हो अर्थात्, अनुद्वेगकर (किसी को कष्ट न पहुँचाने वाला), सत्य, प्रिय और हितकर वचन । यदि इनमें से कोई एक भी अभाव में हो, शेष तीन हों तो इसे वाणी का तप नहीं समझना चाहिए। वाणी प्रिय तो है किन्तु अन्य तीन लक्षण (अनुद्वेगकर, सत्य और हितकर) इसमें विद्यमान नहीं हैं तो इसे वाणी का तप नहीं कहा जा सकता ।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।।१६ ।।

शब्दार्थ : मनःप्रसादः मन की सौम्यता, शान्ति, सौम्यत्वम् - अन्तःकरण की शुद्धवृत्ति, मौनम् -मौन, आत्मविनिग्रहः- आत्म संयम, भावसंशुद्धिः विभाव में निर्मलता, इति-इस प्रकार, एतत्-यह, तपः-तप, मानसम् - मानसिक, उच्यते-कहा जाता है।

अनुवाद : मन की प्रशान्तता, सौम्यता, मौन, आत्म संयम और मन की निर्मलता-यह मानसिक तप कहा जाता है।

व्याख्या : ऊर्मियों से रहित सरोवर जैसे सतह में अत्यन्त शान्त होता है वैसे ही विकार रहित मन जो इन्द्रिय-विषयों में भटकने वाला न हो, अत्यन्त प्रशान्त और सौम्य होता है।

सौम्यत्वम् -सब प्राणियों के कल्याण का भाव रखना।

यह मन की एक अवस्था है जो अपने प्रभाव, मुख के तेज आदि से अनुभव की जा सकती है।

मौनम् वाणी का मौन भी शवचार संयम के शलए अशनवायथ है, अतः यहााँ कायथ रूप को कारण के पीछे प्रयोग शकया गया है अर्ाथत् शवचार-शनग्रह। यह शवचार को संयत करने का ही पररणाम है शक वाणी मौन है, मन भी मौन है, शवचशलत कर देने वाली बाह्य म्भस्र्शतयों ंके रहते भी मन शान्त है, मौन है। मौन मुशन (ज्ञानी) की अवस्र्ा है, अनन्यमनस्क ध्यान ।

आत्मशवशनग्रहः - आत्म संयम अर्ाथत् अन्तःकरण अर्वा मन का संयम । असम्प्रज्ञात समाशध की अवस्र्ा शिसमें सब मनोवृशत्तयााँ संयत रहती हैं। मन इम्भियों ंके पीछे और इम्भियााँ शवषयों ंके पीछे नहीं ंभाग सकतीं। ं िहााँ तक वाणी का प्रश्न है, मौन, शवचारों ंका संयम है।

भावसंशुम्भद्धः - अन्तःकरण की शुम्भद्ध । ईमानदारी, छलकपट का अभाव, मन की वह अवस्र्ा शिसमें काम, क्रोध, लोभ आशद नहीं ंहोते।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तन्द्रत्त्रडवधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षडभयुमक्तैः सान्द्रत्त्वकं पररचक्षते ।।१७।।

शब्दार्थ : श्रद्धया-श्रद्धा से, परया-परम, तप्तम् - अभ्यास शकया गया, तपः-तप, तत्-वह, शत्रशवधम्-तीन प्रकार का, नरैः- मनुष्यों ंिारा, अफलाकांशक्षशभ -फल की इच्छा न चाहने वाले, साम्भत्वकम् -युक्तैः युक्, साम्भत्वक, पररचक्षते- कहा िाता है।

अनुवाद : यह तीन प्रकार का तप शिसका अभ्यास-युक्शचत्त वाले पूणथ श्रद्धा और शनष्काम भाव से करते हैं, साम्भत्त्वक तप कहलाता है।

व्याख्या : शत्रशवधम्-तीन प्रकार का-काशयक, वाशचक और मानशसक ।

युक्तैः समाशहत, युक् । सनुतुशलत मन, सफलता और असफलता में सम (अप्रभाशवत) ।

श्रद्धया श्रद्धा से, शवश्वास से। परमात्मा के अम्भस्तत्व में शवश्वास, गुरु के वचनों ंमें शवश्वास, शास्त्र के वचनों ंमें शवश्वास और स्वयं अपनी आत्मा में शवश्वास । 1

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
डक्रयते तडदि प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ।।१८ ।।

शब्दार्थ : सत्कारमानपूिार्थम् -सत्कार, मान और पूिा के उदे्देश्य से, तपः-तप, दम्भेन-शमथ्याशभमान िारा, च-और, एव-ही, यत्-िो, शक्रयते-शकया िाता है, तत्-वह, इह-इस लोक में, प्रोक्म् -कहा गया है, रािसम् -रािशसक, चलम् -अम्भस्र्र, अध्रुवम् क्षशणक ।

अनुवाद : िो तप सत्कार, मान और पूिा के भाव से तर्ा शमथ्या अशभमान वश शकया िाता है वह रािशसक तप है िो अम्भस्र्र एवं क्षशणक है।

व्याख्या : वह तप िो श्रद्धायुक् नहीं ंहोता, मात्र आडंबर होता है, अपना महत्त्व बढ़ाने के शलए होता है ताशक लोग तप करने वाले को मान- सम्मान प्रदान करें, उसका गुणगान करें, रािशसक प्रकृशत का कहा गया है।

इह-इस लोक में। ऐसा तप केवल इस भौशतक लोक में फल प्रदान करने वाला होता है।

सत्कार-अच्छा स्वागत, इन शब्दों ंमें-"यह महान तपस्वी ब्राह्मण है।"

मान-मान, आदर। अपने स्र्ान से उठ कर स्वागत करना और सम्मानपूवथक प्रणाम करना।
चलम् - अम्भस्र्र, क्षशणक प्रभाव वाला ।

अधुरुवम् -शबना शकसी शनयम के, अम्भस्र्र ।

ख्याशत प्राप्त करने के उद्देश्य से शकया गया तप सवथर्ा व्यर्थ है। इसका कोई पररणाम नहीं।ं अधूरा होने पर भी इसका त्याग कर शदया िाता है िब यह समझ आता है शक इसका कोई फल नहीं ंप्राप्त होगा।

मूढग्रोिणािानो यत्पीिया डक्रयते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ।।१९ ।।

बाि्र्थम : मूढग्राहेण-अशववेकपूणथ शनश्चय से, आत्मनः- अपने आप को, यत्-िो, पीिया-कष्ट से, शक्रयते-शकया िाता है, तपः-तप, परस्य-अन्य को, उत्सादनार्थम् नष्ट करने के शलए, वा-अर्वा, तत्-वह, तामसम् - तामशसक, उदाहृतम्-कहा िाता है।

अनुवाद : स्वयं को पीिा पहुँचा कर अर्वा शकसी अन्य को नष्ट करने के मूखथतापूणथ दुराग्रह से िो तप शकया िाता है वह तामशसक है।

व्याख्या : पात्र में गन्धक िला कर कुछ लोग अपने शसर पर रखते हैं। कुछ लोग लोहे की कीलें अपने शरीर में चुभोते हैं। अन्य अशग्न को नीचे प्रज्वशलत कर के ऊपर अपने शरीर को लटका कर धुंआ कर लेते हैं। कुछ लोग साधना के नाम पर कंठ तक शीत िल में खिे रहते हैं। अन्य अपने चारों ंओर अशग्न िला कर और पाँचवीं ंअशग्न ऊपर सूयथ की हो, इस प्रकार पञ्चाशग्न तप करते हैं। अन्य अशग्न के घेरे में बैठते हैं। ये तामशसक तप हैं। इनसे आत्म-ज्ञान की प्राम्भप्त असम्भव है।

दातव्यडमडत यद्दानं दीयतेऽनुपकाररणे ।
दिे काले च पात्रे च तद्दानं सान्द्रत्त्वकं स्मृतम् ।।२० ।।

बाि्र्थम : दातव्यम् -देना चाशहए, इशत-इस प्रकार, यत् िो, दानम्-दान, दीयते-शदया िाता है, अनुपकाररणे-अनुपकारी को (शिससे प्रत्युपकार की आकाक्षा न हो), देशे स्र्ान पर, काले-समय पर, च-और, पात्रे सुयोग्य पात्र को, च-और, तत्-वह, दानम् - दान, साम्भत्त्वकम् - साम्भत्त्वक, स्मृतम् -कहा िाता है।

अनुवाद : िो दान अनुपकारी के शलए अर्ाथत् शिसके प्रशत प्रत्युपकार की भावना न रख कर शदया िाये और देश (स्र्ान), काल (समय) और पात्र को देख कर शदया िाये वह दान साम्भत्त्वक होता है।

व्याख्या : दान उसे देना चाशहए िो बदले में (प्रत्युपकार में) लौटाने में असमर्थ हो अर्वा शिससे ऐसे प्रत्युपकार की अपेक्षा न की िाये।

कुरुके्षेत्र हो, वाराणसी हो अर्वा संसार में अन्य कोई भी तीर्थ स्र्ल हो, पावन भूशम हो, वहााँ दान देना उशचत है। समय सूयथ ग्रहण अर्वा चि ग्रहण का हो अर्वा अन्य कोई भी शुभ काल हो।

पाते्रे-शुद्ध अन्तःकरण वाला, तपस्वी िो वेद वेदाङ्ग सशहत समस्त शास्त्रों ंमें पारङ्गत हो। िो स्वयं की रक्षा कर सके और दान देने वाले की भी रक्षा करे ।

ऐसे काल और देश में सुयोग्य पात्र दान ग्रहण करने के शलए होना चाशहए िो मानो पशवत्रता का अवतार ही हो और सदाचारी हो। ऐसे अत्यन्त गवथ सुयोग्य पात्र को मुक् हस्त से दान देना श्रेयस्कर है। दान दाता को अपने दान का नहीं ंहोना चाशहए।

यतुतु प्रतुयुपकारार्ंथं फलमुडद्दश्य वा पुनः ।
दीयते च पररन्द्रक्लष्ंट् तद्दानं राजसं सूमृतम् ।।२१ ।।

बि्ार्थम : यत्–िो, तु-वसुतुतः, प्रतुयुपकारार्थम् - वाशपस लेने के भाव से (यह सोच कर शक कालान्तर में यह मेरा प्रतुयुपकार करेगा), फलम् फल, उशद्दश्य-उदे्देश्य से, वा-अर्वा, पुनः-पुनः, दीयते-शदया िाता है, च-और, पररम्भक्लष्टम् -क्लेशपूवथक, तत्-वह, दानम्-दान, रािसम् रािशसक, सूमृतम् माना िाता है।

अनुवाद : वह दान िो प्रतुयुपकार की भावना से अर्वा शकसी उदे्देश्य को समक्ष रख कर अर्वा क्लेशपूवथक शदया िाता है वह रािशसक कहा िाता है।

व्याख्या : दान अर्वा उपहार िो इस आशा के सार् शदया िाता है शक भशवष्य में इसका कुछ प्रशतफल शमलेगा और िन सामान्य में प्रशंसा होगी अर्वा इससे अदृश्य स्वशगथक सुख प्राप्त होंगें, रािशसक कहा िाता है। शकसी संन्यासी अर्वा ब्राह्मण को भी यशद इस भाव से दान शदया िाये शक इससे पाप-शनवृशत्त होगी तो वह भी रािशसक दान है। दान देने के पश्चात् यशद हृदय म्भक्लष्ट हो तो वह रािशसक दान है।

अदिकाले यद्दानमपाते्रेभ्यश्च दीयते ।
असतूकृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ।।२२ ।।

बि्ार्थम : अदेशकाले-अनुशचत देश-काल में, यत्–िो, दानम् दान, अपाते्रेभ्यः - अयोग्य पात्र को, च-और, दीयते-शदया िाता है, असतूकृतम् -शबना आदर के, अवज्ञातम् -शतरस्कार पूवथक, तत्-वह, तामसम् - तामशसक, उदाहृतम् - कहा गया है।

अनुवाद : अनुशचत स्र्ान पर, अनुशचत काल में, अयोग्य पात्र को शबना सम्मान के शतरस्कार पूवथक िो दान शदया िाता है वह तामशसक है।

व्याख्या : अदेशकाले-अयुक् स्र्ान और काल में। ऐसे स्र्ान पर िो पावन नहीं ंहै, िहााँ अधमी और शभखारी एकशत्रत हो िाते हैं, िहााँ अयुक् साधनों–चोरी, द्यूत आशद से अशिथत धन द्यूत के म्भखलाशियों,ं गाने वालों,ं मूखी, चोरों ंऔर बदनाम औरतों ंके मध्य शवभाशित शकया िाता है और ऐसे समय में िो शुभ नहीं ंहै। शकनुतु ये आदेश शकसी दीन-दुःखी और शनधथन को शभक्षा देने में बाधक नहीं ंहै।

असतूकृतम्-शबना मधुर वाणी के, शबना चरण-प्रक्षालन के अर्वा शबना पिू़ा के, यद्यशप दान समुशचत देश-काल में शदया गया है।

दान दाता प्रायः योग्य पात्र शमलने पर भी समुशचत श्रद्धा का अभाव रखता है। वह कभी श्रद्धा से शीश नहीं ं झुकाता। वह पात्र को आसन नहीं ंप्रदान करता प्रतुयुत् उससे शतरस्कार पूणथ व्यवहार करता है।

भगवान् कृष्ण अिुथन से कहते हैं- "मैं बता चुका हाँ शक श्रद्धा, दान, तप, आहार आशद पर शनशश्चत रूप से तीन गुणों ंका रङ्ग चढ़ा होता है। शनम्न वगथ का वणथन करने का मेरा कोई शवचार नहीं ंर्ा शकनुतु सविो शुशचता को (सत्त्व को) अन्य दो से पृर्क् लशक्षत करने के शलए मुझे इनका वणथन करना पिा। िब शनम्न दो को एक ओर कर शदया िाये तो तीसरा स्पष्ट रूप से श्लाघनीय बन कर, उभर कर आता है िैसे शदन और रात के मध्य संध्या काल । इसी प्रकार रिस् और तमस् का शनराकरण शकया िाये तो शुद्ध सत्त्व अत्यन्त स्पष्ट हो कर समक्ष आता है और उसकी सवाथशधक श्रेेष्ठ पशवत्रता का आभास शकया िा सकता है। अतः तुम्हें साम्भत्त्वक प्रकृशत प्रत्यक्ष कराने के शलए मैंने अन्य दो का भी वणथन कर शदया है शिससे तुम उनका त्याग कर के उतूकृष्ट सत्त्व का आश्रय लो और िीवन का लक्ष्य, मोक्ष प्राप्त करो।

ॐ तत्सडदडत डनदिेो ब्रह्मणन्द्रस्त्रडवधः स्मृतः ।
ब्राह्मणासे्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च डवडिताः पुरा ।।२३ ।।

िब्दार्थ : ॐ तत्सत् -ॐ तत्सत्, इशत-इस प्रकार, शनदेशः - शनदेश, ब्र्ह्मणः ब्र्ह्म का, शत्रशवधः-तीन प्रकार का, स्मृतः- कहा गया है, ब्र्ाह्मणाः - ब्र्ाह्मण, तेन-उसके िारा, वेदाः- वेद, च-और, यज्ञाः यज्ञ, च-और, शवशहताः- कहे गये, पुरा-प्राचीन काल में।

अनुवाद : "ॐ तत् सत्", यह तीन प्रकार का शनदेश अर्वा नाम ब्र्ह्म के शलए कहा गया है। सृशष्ट के पूवथ काल में उसके िारा ही ब्र्ाह्मण, वेद और यज्ञों ंका शवधान शकया गया।

व्याख्या : 'ॐ तत्सत्' समूपूणथ ब्र्ह्माण्ड का मूल है। ॐ अक्षर ब्र्ह्म है। तत् वह, अशनवथचनीय, सत्-ब्र्ह्म का वास्तशवक स्वरूप ।

परब्र्ह्म िो समस्त चराचर िगत् का आश्रय है, नाम और रूपिाशत से परे है, वेदों ंने उसे नाम देने का साहस शकया है। नवित शशु का कोई नाम नहीं ंहोता शकनुतु नाम शमलने पर वह उत्तर देता है। इस संसार के कष्टों ंसे दुःखी हो कर मनुष्य परम देव से आश्रय का आह्वान करते हैं। ब्र्ह्म को िब नाम से पुकारा िाये तो वह शनराकार होते हुए भी साधक के समक्ष अशभव्यक् होता है।

इन तीन शब्दों ंमें अपनी ही शदव्य शम्भक् शनशहत है। इनके उिारण से उत्पन्न होने वाली तरङ्गे, सुफुरण, कम्पन, मनुष्य की सुप्त शदव्यता को िाग्रत करती हैं और उस परम पुरुष का, शिसका आह्वान शकया िा रहा है, आवश्यक प्रशतवचन (उत्तर) भी प्राप्त कराती हैं।

यशद कोई यज्ञाशद अनुष्ठान में दोष हो िाये तो इस शम्भक्शाली मन्त्रोिारण से उस दोष को दूर शकया िाता है। इसमें अन्त में 'ॐ तत् सत्' का उिारण अर्वा इनमें से शकसी एक का उिारण पयाथप्त है। ॐ अर्वाॐॐ तत्सत् के उिारण से सभी धाशमथक कृत्य, शास्त्रों ंका अध्ययन, आध्याम्भत्मक अनुशासन और ध्यानाभ्यास प्रारम्भ होते हैं। इनमें से शकसी एक मन्त्र का िप करने से यिमान सफलता के मागथ में आने वाली समस्त बाधाओं ंको पार कर लेता है।

वेदान्त में ब्र्ह्मज्ञाशनयों ंने 'ॐ तत् सत्' यह शत्रशवध नाम ब्र्ह्म को शदया है। सृशष्टकताथ की सृशष्ट रचने की शम्भक् इसी से शनःसृत होती है। उस (परमात्मा) ने िब इस मन्त्र के अर्थ का ध्यान शकया और इसका शत्रशवध उिारण शकया तो उसने सृशष्ट की रचना करने की शम्भक् प्राप्त की। तब सृशष्टकत्ताथ ने ब्र्ाह्मणों ंका सृिन शकया उनके पर् प्रदशथन के शलए उन्हें वेदों ंका ज्ञान शदया तर्ा यज्ञाशद कमथ करने के शनदेश शदये।

पुरा-पूवथ काल में। सृशष्ट के प्रारम्भ में प्रिापशत के िारा।

ब्र्ह्मन् शब्द यहााँ वेद का वाचक है।

तस्मादोडमत्युदाहृत्य यज्ञदानतपः डक्रयाः ।
प्रवतमते डवधानोक्ताः सततं ब्रह्मवाडदनाम् ।।२४ ।।

शब्र्ार्थम : तस्मात् - इसशलए, ॐ-ॐ, इशत-इस प्रकार, उदाहृत्य- उिारण करके, यज्ञदानतपःशक्रयाः- यज्ञ, दान और तप की शक्रयायें, प्रवतथन्ते-प्रारम्भ होती हैं, शवधानोक्ाः-शास्त्रों ंके आदेशानुसार, सततम् -सदा, ब्र्ह्मवाशदनाम् वेद मन्त्रों ंका उिारण करने वालों ंकी।

अनुवाद : इसशलए शास्त्रशवशहत यज्ञ, दान, तप आशद शक्रयायें ब्र्ह्मवाशदयों ंिारा सदा “ॐ" के उिारण के सार् प्रारम्भ होती हैं।

व्याख्या : शास्त्रवेत्ताओं ंके मन में 'ॐ' का शवशद (सुस्पष्ट) संस्कार, ध्यान के कारण शनशहत रहता है और वे शुद्ध भाव से 'ॐ' का अर्वा प्रणव का सस्वर उिारण करते हैं। शफर ॐ का ध्यान कर के, उि स्वर से इसका उिारण करते हुए वे यज्ञाशद शक्रया करते हैं। शिस प्रकार पवथतारोहण हेतु एक यशष्ट (दंि) अशनवायथ है, शहतकर है, नदी पार करने के शलए नाव उपयोगी है उसी प्रकार शकसी भी मङ्गल कायथ अर्वा यज्ञाशद के प्रारम्भ में ॐ का उिारण अत्यन्त कल्याणकारी एवं महत्त्वपूणथ है।

ईश्वर का सायुज्य प्राप्त करने के शलए इन शुभ कमों का त्याग अपेशक्षत नहीं ंहै। आवश्यकता और अपेक्षा केवल इस बात की है शक पूणथ रूप से समपथण के भाव से (ईश्वर को समशपथत कर के) सब शुभकमथ करने चाशहए। यज्ञ, दान और तप आत्म साक्षात्कार में प्रशतबन्धक कदाशप नहीं ंहैं, प्रत्युत् इसके शवपरीत इन कमों को शनःस्वार्थ और शनष्काम भाव से करने पर मोक्ष सहि हो िाता है।

तडदत्यनडभसंधाय फलं यज्ञतपः डक्रयाः ।
दानडक्रयाश्च डवडवधाः डक्रयते मोक्षकाडङ्क्षडभः ।।२५ ।।

शब्दार्थ : तत् वह, इशत-इस प्रकार, अनशभसंधाय-शबना लक्ष्य के, फलम् -फल, यज्ञतपः शक्रयाः- यज्ञ और तप की शक्रयायें, दानशक्रयाः दान की शक्रयायें, च-और, शवशवधाः-शवशवध, शक्रयन्ते-की िाती हैं, मोक्षकाशचशभः मोक्ष की इच्छा रखने वाले साधकों ंिारा।

अनुवाद : मोक्ष के शिज्ञासु साधक फल की आकाङ्क्षा त्याग कर 'तत्' शब्द का उिारण करते हुए यज्ञ और तप तर्ा शवशवध प्रकार की दान की शक्रयायें करते हैं।

दानशक्रयाः दान कमथ िैसे भू दान, स्वणथ दान, अन्न दान, वस्त्र दान आशद ।

व्याख्या : तत् -"तत्" शब्द के उिारण के सार्।

फलम् -फल। यज्ञ, तप और दान का फल।

शाश्वत आत्मा िो समस्त ब्र्ह्माण्ड का अशतक्रमण कर के म्भस्त है, िो शत्रगुणातीत है, तीन शरीरों,ं िाग्रत, स्वप्न और सुषुम्भप्त की तीन अवस्र्ाओं ंसे परे है, सब को प्रभाशसत करने वाला है, सब का आधार है, सब का मूल तत्त्व है, इसी 'तत्' शब्द से अशभशहत है। तत् ही उसका सूचक नाम है। ज्ञानी और साधक 'तत्' पर ध्यान करते हैं। वे तत् का उिारण कर के कहते हैं-"हमारे समस्त कमथ और कमथफल 'तत्' (ब्र्ह्म) को समशपथत हों।ं

इस प्रकार वे अपने कमथ और कमथफल ब्र्ह्म को समशपथत कर के त्याग' का अभ्यास करते हैं। वे अहंभाव और कमथ बन्धन से मुक् हो िाते हैं। शनष्काम, शनरुद्देश्य, शनःस्वार्थ कमथ के िारा अन्तःकरण की शुम्भद्ध कर के वे आत्म-ज्ञान प्राप्त करते हैं।

िो कमथ ॐ के उिारण से प्रारम्भ कर के शुद्ध और श्रेष्ठ शकया िाता है और 'तत्' को समशपथत कर शदया िाता है वह ब्र्ाह्मी प्रकृशत में पररवशतथत हो िाता है। "हे अिुथन, समस्त कमों का समापन (शवलय) ज्ञान में होता है" (V.33)। यज्ञ-कमथ समझ कर िो कमथ शकया िाता है वह अन्ततः ब्र्ह्म रूप हो िाता है।

तत् शब्द, ऐसे समस्त कमों के फल को ईश्वर के शलए समशपथत भाव का सांकेशतक शब्द है। यशद तुम तत् शब्द का उिारण करते हो, तो उसका समर्थक भाव यही है-"वे (कमथ, कमथफल) मेरे नहीं ंहैं।" ॐ के उिारण से शिस कृत्य का प्रारम्भ शकया र्ा वह तत् के उिारण के सार् ब्र्ह्म को समशपथत हुआ। अगले श्लोक में सत् शब्द का प्रयोग शनरूशपत है।

सिावे साधुभावे च सडदत्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रिसे्ते कममडण तर्था सच्छन्दः पार्थम युज्यते ।।२६।।

बि्र्थम : सद्भावे-वास्तशवकता के भाव में, साधुभावे साधुभाव में अर्ाथत् अच्छाई के भाव में, च-और, सत्-सत्, इशत-इस प्रकार, एतत् यह, प्रयुज्यते-प्रयोग शकया िाता है, प्रशसे्ते-शुभ, कमथशण-कमथ में, तर्ा- और, सत् सत्, शब्दः -शब्द, पार्थ- हे पार्थ, युज्यते-प्रयोग होता है।

अनुवाद : सत् शब्द वास्तशवकता और भिता के अर्थ में प्रयोग शकया िाता है। हे अिुथन, शुभ कमथ के भाव में सत् शब्द का प्रयोग होता है।

व्याख्या : सत्-भाव-वह िो पररवतथनशील के मध्य अपररवतथशील है, अशनत्य के मध्य शनत्य है और िो भूत, भशवष्यत् और वतथमान में शवद्यमान है, वह सत् है। शनत्य पररवतथनशील नाम, रूपों ंमें शनशहत वास्तशवकता सत् है। शनत्य शवकार को प्राप्त होने वाले रूपों ंका आश्रय सत् है। शुभ, प्रशंसनीय कमथ सत् है।

साधु भाव-प्रकृशत के सार् समिय का वाच्य, शिससे संसार चक्र शनबाथध चलता रहे।

दोषपूणथ कमथ को शनदोष और पूणथ करने के शलए सत् शब्द अत्यन्त शम्भक्शाली है। िब शकसी मङ्गल कायथ में कोई त्रुशट रह िाने से 'असत्' की सम्भावना होती है तो 'सत्' शब्द का प्रयोग उसे दोषमुक् करता है और कायथ सफलतापूवथक सम्पन्न होता है। सत् शब्द कमथ के 'असत् भाव' को दूर कर के इसे पूणथ करता है क्योंशक इसमें पररमािथन और पूणथत्व की शम्भक् है।

सत् पर-ब्र्ह्म है। सत् शाश्वत, स्वयं प्रकाश, अखण्ड, असीम, अशनवथचनीय, गोपनीय ब्र्ह्म का वणथनातीत, अकथ्य लक्षण है।

शकसी शवषय की वास्तशवकता अशभव्यक् करनी हो ितो वसुतुतः, वास्तशवक (सत्य) नहीं ंहै अर्वा अपेक्षाकृत सत्य है िैसे अशवद्यमान पुत्र के िन्म होने में, ितो अवास्तशवक है शकनुतु सापेक्ष भाव में वास्तशवक है। शकसी मनुष्य को सदाचारी कहना िब शक वह सदाचारी नहीं ंहै अर्वा अपेक्षाकृत अच्छा है और यह कहना शक अमुक कृत्य शुभ है िब शक वह शुभ नहीं ंहै अर्वा अपेक्षाकृत शुभ है-ऐसे भावों ंमें ब्र्ह्म के सत् नाम का प्रयोग शकया िाता है।

ब्र्ह्म ही सत्य है। केवल वह सत् है, उसी का अम्भस्तत्व है। शकनुतु गोशवन्दन के पुत्र उत्पन्न होने पर हम कहते हैं शक गोशवन्दन का पुत्र अम्भस्तत्व में आ गया है। ब्र्ह्म शवचार शकया िाये तो गोशवन्दन का पुत्र तो अम्भस्तत्वमान् है ही नहीं।ं

सत् शब्द ितो ब्र्ह्म के नाम का वाचक है वह गोशवन्दन के पुत्र के शलए भी प्रयोग हो रहा है ितो वास्तशवक नहीं ंहै अर्वा अपेक्षाकृत सत्य है। केवल ब्र्ह्म ही पूणथरूप से शुभ और श्रेष्ठ है शकनुतु सत् शब्द ितो केवल ब्र्ह्म के शलए प्रयुक् होना चाशहए वह कमथ के शलए भी प्रयोग होता है ितो पूणथ रूप से तो शुभ नहीं ंहै शकनुतु अपेक्षाकृत शुभ है। सत् का प्रयोग अपूणथ कमों को पूणथता प्रदान करने के शलए होता है।

यजे्ञे तपडस दाने च न्द्रथर्थडतः सडदडत चोच्यते ।
कमम चैव तदर्थीयं सडदते्येवाडभधीयते ।।२७ ।।

बि्र्थम : यजे्ञेयज्ञ में, तपशस-तप में, दाने-दान में, च-और, म्भस्र्शतः-म्भस्र्रता को, सत्-सत्, इशत-इस प्रकार, च-और, उच्यते-कहा िाता है, कमथ-कमथ, च-और, एव-ही, तदर्ीयम् - इन के सम्बन्ध में अर्वा ब्र्ह्म के शलए, सत्-सत्, इशत-इस प्रकार, एव-ही, अशभधीयते-कहा िाता है।

अनुवादः यज्ञ, तप और दान में म्भस्र्रता सत् कही िाती है और इनसे सम्बद्ध कमथ (अर्वा परमात्मा के शलए कमथ) भी सत् कहे िाते हैं।

व्याख्या : यज्ञ, तप, दान और अन्य समस्त कमथ यशद तुम परमात्मा को समशपथत कर के अन्तःकरण की शुद्धता और सत्यता के सार् करते हो तो तुम िीवन का सविो लक्ष्य-मोक्ष, शाश्वत आनन्द प्राप्त करोगे । ब्र्ह्म के शलए और ब्र्ह्म के नाम पर यशद तुम कमथ करते हो तो तुम पर परमात्मा की परम शाम्भन्त और पूणथत्व की वृशष्ट होगी।

यशद तुम अपनी श्रद्धा 'ॐ' अर्वा 'ॐ तत्सत्' में एकाग्र करते हो तो तुम आवागमन के चक्र से मुक् हो िाओगे। कोई भी यज्ञ, तप अर्वा दान शक्रया और कमथ यशद तुम शनःस्वार्थ भाव से और शनष्काम भाव से प्रभु को कमथ और कमथफल सशहत समशपथत करते हुए श्रद्धा, भाव और भम्भक् से 'सत्' का उिरण करते हुए करते हो तो तुम्हें कमथ में शसम्भद्ध और सफलता प्राप्त होगी।

अपूणथ और असाम्भत्त्वक यज्ञ कमथ, तप, दान आशद की शक्रयायें भी पूणथ और साम्भत्त्वक हो िायेंगी।

तदर्ीयम् - तत्+अर्थ+इयम्-अर्ाथत् यज्ञ, तप और दान ।

अश्रद्धया हतं दत्ंतं तपस्तप्ंतं कृतं च यत् ।
असडदत्ुयुच्यते पार्थम न च तत्प्रेत्य नो इि।।२८ ।।

बि्र्थम : अश्रद्धया-शबना श्रद्धा के, हुतम् - शकया हुआ हवन, दत्तम् -शदया हुआ दान, तपः-तप, तप्तम् - शकया हुआ (तप), कृतम् -शकया हुआ कमथ, च-और, यत्–ि भी, असत् -असत् . इशत-इस प्रकार, उच्यते-कहा िाता है, पार्थ-हे पार्थ, न-नहीं,ं च-और, तत्-वह, पे्रेत्य-मरने के बाद,न -नहीं ं, इह-इस लोक में।

अनुवाद : शबना श्रद्धा के शकया हुआ हवन, शदया हुआ दान और शकया हुआ तप 'असत्' कहलाते हैं इसशलए हे अिुथन, ये न तो इस लोक में न ही मरणोपरान्त फल देने वाले हैं।

व्याख्या : असत्-शिसका रूप बदलता रहता है, म्भस्र अम्भस्तत्व नहीं ंहै। यहााँ इसका अशभप्राय यह नहीं ंशक शिसका अशस हो।

िो भी कृत्य यज्ञ, तप और दान शबना श्रद्धा अर्वा शकसी दबाव में अर्वा शकसी प्रकार की शवपशत्त को टालने अर्वा शकसी वासना की पूशतथ हेतु शकये िाते हैं, वे असत् प्रकृशत के हैं। वे शकसी को म्भस्र पररणाम नहीं ंदे सकते।

परमात्मा को समशपथत शकये शबना यज्ञ, तप और दान शक्रया अनुष्ठान कताथ को इहलोक अर्वा परलोक में कोई फल देने वाली नहीं ंहोगी। ये शक्रयायें उतनी ही व्यर्थ होंगी शितनी शक पवथतीय प्रदेश में चट्टानों ंपर शगरती वषाथ की बूाँदें अर्वा भस्मीभूत अशग्न में िाली गई घृत आहुशतयााँ। शबना श्रद्धा के मनुष्य अहंकारी और दम्भी बन िाता है। उसका हृदय कठोर हो िाता है। शबना श्रद्धा के शत-शत यज्ञ भी क्यों ंन शकये िायें और ईश्वर को समपथण भाव से क्यों ंन हों ंसमस्त शवश्व की सम्पदा भी यशद शबना श्रद्धा और समपथण भाव के दान कर दी िाये, इसका कोई मूल्य नहीं ंहोगा। यह व्यर्थ होगा। ज्ञानी िन इस प्रकार के यज्ञ और दान की सुतुशत नहीं ंकरेंगे। शम्भक्, धन और समय का ही व्यर्थ में नाश होगा ।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषत्ुसु
ब्रह्मडवद्यायां योगिास्ेत्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
श्रद्धात्रयडवभागयोगो नाम सप्तदिोऽध्यायः ।।१७ ।।
।। इडत श्रद्धात्रयडवभागयोगः ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अराष्टादशोऽध्यायः
मोक्षसंन्यासयोगः

अजुमन उवाच

संन्यासस्य मिाबािो तत्त्वडमच्छाडम वेडदतुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेि पृर्थक्केडिडनषूदन ।।१ ।।

बि्ार्थम : संन्यासस्य-संन्यास का, महाबाहो - हे महाबाहो, तत्त्वम् तत्त्व को, इच्छाशम इच्छा करता हाँ, वेशदतुम् - ानिने की, त्यागस्य-त्याग की, च-और, हृषीकेश- हे कृष्ण, पृर्क् पृर्क् रूप से, केशशनषूदन- हे केश को मारने वाले ।

अजुमन ने किा

अनुवाद : हे महाबाहो! हे हृषीकेश ! हे केशशनषूदन ! मैं संन्यास का और त्याग का यर्ार्थ अशभप्राय पृर्क् पृर्क् ानिना चाहता हाँ।

व्याख्या : इस प्रवचन में समूपूणथ गीता का सार अत्यन्त सुन्दर रूप में पररलशक्षत शकया गया है। इस अम्भन्तम प्रवचन अर्वा आदेश में पूवथ अध्यायों ंमें शदये गये ज्ञान का अप्रशतम सार शदया गया है। अिुथन संन्यास और त्याग के भेद को िानने का इचुछुक है।

केश एक असुर र्ा शिसका भगवान् कृष्ण ने संहार शकया र्ा इसशलए अिुथन उनें् केशशनषूदन कह कर संबोशधत कर रहे हैं।

पूवथ अध्यायों ंमें संन्यास और त्याग शब्दों ंका प्रयोग इतस्ततः हुआ है शकनुतु उनके अर्ों पर पृर्क्या प्रकाश नहीं ंिाला गया। इसशलए अगले श्लोक में भगवान् कृष्ण दोनों ंशब्दों ंके अर्थ स्पष्ट करते हैं।

श्री भगवानुवाच

काम्यानां कममणां न्यासं संन्यासं कवयो डवदुः ।
सवमकममफलत्यागं प्राहस्त्यागं डवचक्षणाः ।।२ ।।

बि्ार्थम : काम्यानाम् - इम्भच्छत, कमथणाम् -कमों का, न्यासम् - त्याग, संन्यासम् -संन्यास, कवयः- ज्ञानी, शवदुः- समझते हैं, सवथकमथफलत्यागम् - सब कमााँ के फल का त्याग, प्राहुः-कहते हैं, त्यागम्-त्याग, शवचक्षणाः बुम्भद्धमान् ।

श्री भगवान् ने किा

अनुवाद : इम्भच्छत कमों के न्यास को ज्ञानी िन संन्यास कहते हैं, अन्य बुम्भद्धमान् पंशितिन समस्त कमों के फल के त्याग को 'त्याग' कहते हैं।

व्याख्या : काम्य कमाथशण - अश्वमेध यज्ञ आशद शवशेष अनुष्ठान और शक्रयायें िो शवशेष लक्ष्ैयै की प्राम्भप्त हेतु शकये ाति हैं। बुम्भद्धमान् लोग कहते हैं शक सभी शनत्य और नैशमशत्तक कमों के फल के त्याग का अशभप्राय 'त्याग' है।

संन्यास और त्याग शब्द का मूल अर्थ है छोि़ देना (त्याग देना) । सामान्य भाव में ये दोनों ंशब्द पयाथयवाची माने िाते हैं। दोनों ंका अर्थ 'त्याग' है। इन दोनों ंका अर्थ फल और पत्थर अर्वा पात्र और वस्त्र की भााँशत सवथर्ा पृर्क् नहीं ंहै। अत्यल्प भेद से दोनों ंएक ही भाव को स्पष्ट करते हैं।

एक आलोचक का कर्न है- शनत्य और नैशमशत्तक कमों का फल नहीं ंहोता। तो शफर उनके फल त्याग का प्रश्न ही कहाँ उठता है? यह तो वन्ध्या के पुत्र त्याग की भाँशत हुआ!

हमारे शवचार से यह तकथ उशचत नहीं ंहै। भगवान् कहते हैं शनत्य और नैशमशत्तक कमों का भी फल होता है (XVIII.12) । केवल संन्यासी, शिन्होंनें कमथफल का त्याग कर शदया है वे फल प्राम्भप्त नहीं ंकरेंगे शकनुतु अन्य लोग तो शनत्य और नैशमशत्तक कमों का फल प्राप्त करेंगे।

आत्म साक्षात्कार के उपरान्त यशद समस्त कमों का त्याग कर के कोई िीवन के चतुर्थ आश्रम-संन्यास में प्रवेश पाता है तो यह शवित्-संन्यास कहलाता है। यशद कमों का त्याग कर के कोई पुरुष वेदान्त शवचार अर्वा वेदान्त दशथन के सत्य का शवश्लेषण आत्मा-परमात्मा का सायुज्य कराने वाले उपशनषदों ंके महावाक्य पर शवचार करने के शलए संन्यास ग्रहण करता है और इस शवशध के संन्यास से आत्म साक्षात्कार प्राप्त करता है तो इसे शवशवशदशा संन्यास कहा िाता है।

त्याज्ंयं दोषवडदत्येके कमम प्राहममनीडषणः ।
यज्ञदानतपः कमम न त्याज्यडमडत चापरे ।। ३ ।।

बिार्थम : त्याज्यम् -त्यागने योग्य, दोषवत्-दोष की भाँशत, इशत-इस प्रकार, एके कुछ, कमथ कमथ, प्राहुः कहते हैं, मनीशषणः-शविान, यज्ञदानतपःकमथ-यज्ञ, दान और तप के कमथ, न-नहीं, ं त्याज्यम् त्यागने चाशहए, इशत-इस प्रकार, च-और, अपरे अन्य ।

अनुवाद : कुछ शविानों ंका मत है शक दोष समझ कर कमों का त्याग कर देना चाशहए। अन्य पंशितिन कहते हैं शक यज्ञ, दान और तप आशद कमाँ का त्याग नहीं ंकरना चाशहए।

व्याख्या : कुछ सांख्य मतावलम्बी दशथनकार ऐसा सोचते हैं शक समस्त कमथ (शुभाशुभ) दोषवत् त्याज्य हैं।

दोषवत् बुराई मान कर। सभी कमथ त्याज्य हैं क्योंशंक वे दोषयुक् हैं, वे बन्धन का कारण हैं अर्वा उन्हें रिोगुण से युक् अर्वा अन्य अशुभ वृशत्तयों ंसे युक् मान कर त्याग देना चाशहए।

अन्य दाशथशनकों ंका यह मत है शक यज्ञ, दान और तप कमथ का त्याग, कमथयोग के योग्य लोगों ंको नहीं ं करना चाशहए।

अब सुनो, मैं इस समस्या का समाधान करूँगा और बताऊँगा शक त्याग का अभ्यास कैसे करना है।

यहाँ केवल कमथयोशगयों ंके शवषय में चचाथ हो रही है, उन योशगयों ंके शवषय में नहीं, ं िो इस पद् से ऊपर (परे) पहुँच चुके हैं। ये शवरोधी शवचारधारायें कमथयोशगयों ंके शवषय में चल रही हैं। सांसाररकता से अतीत ज्ञानी और संन्यासीवृन्द के शलए यह चचाथ नहीं ंहै।

डनश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो डि पुरुषव्याघ्र डत्रडवधः संप्रकीडतमतः ।।४ ।।

शब्दार्थ : शनश्चयम् - शनश्चय (अम्भन्तम सत्य), शृणु सुनो, मे—मेरा, तत्र-वहााँ, त्यागे-त्याग के शवषय में, भरतसत्तम- हे भरतवंशयों ंमें श्रेष्ठ, त्याग -त्याग, शह-शनशश्चत रूप से, पुरुषव्याघ्र- हे पुरुष श्रेष्ठ (पुरुषशसंह), शत्रशवधः-तीन प्रकार का,
संप्रकीशतथतः- कहा गया है।
अनुवाद : हे भरत श्रेष्ठ! हे पुरुष श्रेष्ठ ! अब त्याग के शवषय में मुझ से सुनो। शनशश्चत रूप से त्याग तीन प्रकार का कहा गया है।

व्याख्या : अब भगवान् अपना शनणाथयक मत देते हैं। शास्त्रों ंमें शनशदथष्ट है शक त्याग तीन प्रकार का होता है- साम्भत्त्वक, रािशसक और तामशसक । केवल भगवान् ही इस शवषय की यर्ार्थता पर अम्भन्तम प्रकाश िाल सकते हैं। इस संसार के दुःखों ंसे मुक् होने के सभी इचुछुक साधकों ंको त्याग की वास्तशवक प्रकृशत को समझना चाशहए।

यज्ञदानतपः कमम न त्याज्यं कायमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनाडन मनीडषणाम् ।।५ ।।

बिार्थम : यज्ञदानतपःकमथ-यज्ञ, दान और तप के कमथ, न - नहीं,ं त्याज्यम् - त्यागने चाशहए, कायथमेव-करने ही चाशहए, तत्-वह, यज्ञः यज्ञ, दानम् दान, तपः-तप, च-और, एव-ही, पावनाशन-पावन, मनीशषणाम् - शविानों ंके।

अनुवाद : यज्ञ, दान और तप का त्याग नहीं ंकरना चाशहए। ये कमथ करने योग्य हैं। यज्ञ, दान और तप कमथ बुम्भद्धमानों ंको पशवत्र करने वाले हैं।

व्याख्या : फल की आकाङ्क्षा से शून्य हृदय वाले शवितूवृन्द के शलए यज्ञ, दान और तप कमथ पशवत्र करने वाले हैं, उनके अन्तःकरण की शुम्भद्ध करने वाले हैं। ये कृत्य कमथ अवश्य करने चाशहए। कुशलतापूवथक शकये गये कमथ बन्धन में िालने की शम्भक् खो देते हैं और आत्मा को भौशतक बन्धनों ंसे मुक् करने वाले होते हैं।

अब हे अिुथन, मैं तुम्हें वह कौशल बताऊाँगा शिससे कमथ अपना प्रभाव स्वयं नष्ट कर देते हैं।

एतान्यडप तु कमामडण सङ्गं त्यक्त्वा फलाडन च ।
कतमव्यानीडत मे पार्थम डनडश्चतं मतमुत्तमम् ।।६ ।।

बिार्थम : एताशन-ये, अशप-भी, तु-शकनुतु, कमाथशण-कमथ, सङ्गम् - आसम्भक्, त्यक्त्वा त्याग कर, फलाशन -फल, च- और, कतथव्याशन करने योग्य हैं, इशत इस प्रकार, मे मेरा, पार्थ- हे अिुथन, शनशश्चतम् -शनशश्चत, मतम् -मत, उत्तमम् - उत्तम ।

अनुवाद : शकनुतु हे अिुथन, फल की इच्छा त्याग कर और आसम्भक् को भी त्याग कर ये कमथ शकये िाने चाशहए। यह मेरा शनशश्चत और उत्तम मत है।

व्याख्या : यह कमथ योग के शसद्धान्त का सार है शिसका वणथन पूवथतः अनेक श्लोकों ंमें आ चुका है। दोष कमथ में नहीं ंहोता प्रतुयुत् फल की कामना और आसम्भक् में होता है।

एताशन अशप-ये भी। यज्ञ, दान और तप भी। अन्य शनष्काम कमों की भााँशत । एतान्यशप, अन्य कमों के सार् यज्ञ, दान और तप कमों को लक्ष्य कर के कहा गया है। िो कमथ शनष्काम भाव से आसम्भक् को त्याग कर कतथव्य कमथ मान कर शकये िाते हैं वे मोक्ष में बाधक नहीं ंहोते । फल की आशा त्याग कर शकये गये कमों का रिस् और

तमस् नष्ट हो िाता है और वे सत्त्व से पूररत हो िाते हैं। शनष्काम भाव से शववेकपूणथ शकये गये कमथ, कमथ बन्धन की शृंखला (कारण और कायथ रूप) को नष्ट करने में सहायक होते हैं।

भगवान् ने कहा- "मुझसे त्याग के शवषय में मेरा शनश्चय सुनो" (श्लोक ४)! तब पूणथ अशधकार के सार् भगवान् ने कहा शक यज्ञ, दान और तप कमााँ का त्याग नहीं ंकरना चाशहए क्योंशंक वे बुम्भद्धमानों ंको पशवत्र करने वाले हैं। "ये कमथ भी करने चाशहए", ये मात्र, भगवान् का श्लोक ४ में उपशदष्ट अम्भन्तम शनणथय है।

'अशप' शब्द का अर्थ है शक यज्ञ, दान, तप कमथ यद्यशप आसम्भक् से युक् और फल की आकाङ्क्षा करने वाले साधक को बन्धन में िालने वाले हैं तदशप करने योग्य हैं।

शिस प्रकार वृक्ष के बीि भस्मीभूत कर के व्यर्थ कर शदये िाते हैं उसी प्रकार साधक फल की इच्छा त्याग कर कमथ की फल प्रदान करने की शम्भक् को िला देता है।

डनयतस्य तु संन्यासः कममणो नोपपद्यते ।
मोिात्तस्य पररत्यागस्तामसः पररकीडतमतः ।।७ ।।

बिार्थम : शनयतस्य-शनत्य (कमथ) का, तु-शकनुतु, संन्यासः-त्याग, कमथणः कमथ का, न - नहीं,ं उपपद्यते-उशचत है, मोहात्-मोह वश, तस्य- उसका, पररत्यागः-त्याग, तामसः-तामशसक, पररकीशतथतः-कहा गया है।

अनुवाद : शनशश्चत रूप से शनत्य कमों का त्याग उशचत नहीं ंहै। शास्त्र शवशहत शनत्य कमों का मोह वश त्याग तामशसक कहा गया है।

व्याख्या : शवशहत कमों का त्याग उशचत नहीं ंहै क्योंशंक यह अज्ञानी मनुष्यों ंके शलए शुम्भद्ध के हेतु माने गये हैं। शनयत कमथ तो अवश्य करने योग्य कतथव्य कमथ होते हैं, उनका त्याग कैसे हो सकता है? केवल तमस् की प्रधानता में मोह वश ही ऐसा हो सकता है। शनयत कमों का त्याग नहीं ंकरना चाशहए, यशद कोई ऐसा करता है तो शनशश्चत रूप से वह मोहान्धकार में पिा है, अज्ञान में है। तमस् ही अज्ञान है।

शनयत-स्व धमाथनुसार शनयत कमथ। शनयत कमथ तो अवश्य शकये िाने योग्य कतथव्य कमथ को कहते हैं। उसका त्याग तो आत्म-शवरुद्ध सत्य हो िाता है।

दुःखडमत्येव यत्कमम कायक्लेिभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ।।८ ।।

बिार्थम : दुःखम् दुःखद, इशत-इस प्रकार, एव-ही, यत्-िो, कमथ-कमथ, कायक्लेशभयात् - शारीररक क्लेश के भय से, त्यिेत्-त्याग दे, सः-वह, कृत्वा कर के, रािसम् - रािस्, त्यागम्-त्याग, न-नहीं,ं एव-ही, त्यागफलम् त्याग के फल को, लभेत्-प्राप्त करता है।

अनुवाद : शारीररक दुःख के भय से (क्योंशंक यह दुःखद है), कमथ का त्याग करने वाला त्याग के फल को प्राप्त नहीं ंकरता क्योंशंक यह रािशसक त्याग है।

व्याख्या : फलम् -फल, अनुदान । मोक्ष अर्वा आत्मसाक्षात्कार, िो शववेकपूणथ शकये गये कमों के फल के त्याग का प्रशतफल (पररणाम) है।

शास्त्र शवशहत कमथ और धाशमथक कृत्य करने के शलए दृढ़ संकल्प और सतत् एकाग्र शचत्तप्रवृशत्त की आवश्यकता होती है।

सम्भव है कोई व्यम्भक् इसे प्रारम्भ तो करे शकनुतु शारीररक अर्वा शकसी अन्य कष्ट के कारण इसे मध्य में ही त्याग दे।

तो साम्भत्त्वक त्याग क्या है? भगवान् कहते हैं-

कायमडमत्येव यत्कमम डनयतं डक्रयतेऽजुमन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सान्द्रत्त्वको मतः ।।९ ।।

बाि्र्थम : कायथम् -कतथव्य कमथ, इशत-इस प्रकार, एव-ही, यत्-िो, कमथ-कमथ, शनयतम् -शनत्य कमथ, शक्रयते-शकया िाता है, अिुथन-हे अिुथन, सङ्गम् आसम्भक्, त्यक्त्त्वा-त्याग कर, फलम्-फल, चऔर, एव-ही, सः-वह, त्यागः-त्याग, साम्भत्त्वकः-साम्भत्त्वक, मतः- माना िाता है।

अनुवाद : हे अिुथन! िो भी शनयत कमथ आसम्भक् और फलेच्छा त्याग कर केवल इसशलए शकया िाता है शक वह करना धमथ है अर्वा कतथव्य है, वह कमथ साम्भत्त्वक माना िाता है।

व्याख्या : साम्भत्त्वक प्रकृशत का मनुष्य अपने भाग्य से प्राप्त कमाँ को करता है िो उसे दैवात् उसकी योग्यता और सहि प्रकृशत के अनुरूप शमलते हैं। न तो उसे अपने कमों का अशभमान होता है न ही उन कमों के फल की आशा होती है।

अज्ञानी व्यम्भक् के मन में यह भाव उशदत हो सकता है शक शनत्य कमथ आत्म-शुम्भद्ध अर्वा पाप शनवृशत्त का फल अनुष्ठानकत्ताथ को प्रदान कर रहे हैं शकनुतु इस प्रकार की आशा अर्वा फल की इच्छा का भी त्याग करना अशनवायथ है। इस श्लोक में कमथ-फल-इच्छा के पररत्याग की सुतुशत की गई है।

कतृथत्व भाव को त्याग कर शनःस्वार्थ और शनष्काम भाव से िब मनुष्य अपने शनत्य कमथ करता है तो उसका अन्तःकरण शुद्ध हो िाता है, शदव्य ज्योशत को प्राप्त करने के शलए वह तैयार हो िाता है और आत्म-ज्ञान का अभ्युदय होता है। वह ज्ञान-शनष्ठ हो िाता है।

मुमुक्षु साधक को काशयक क्लेश सहन करने के शलए उद्यत रहना चाशहए। आत्म-अनुशासन अर्वा पररत्याग के समस्त कमथ शारीररक कष्टों ंसे िुिे होते हैं।

पुनः यही गीता का सार है-

आसम्भक् को त्याग कर शनष्काम भाव से अपना कतथव्य कमथ करें।

न िेष्ट्यकुिलं कमम कुिले नानुषिते ।
त्यागी सत्त्वसमाडवष्टो मेधावी ि्डिसंियः ।।१० ।।

शब्दार्थ : न - नहीं ं, िशष्ट्िष करता है, अकुशलम् -प्रशतकूल, अशप्रय को, कमथ-कमथ, कुशले अनुकूल, शप्रय, न-नहीं,ं अनुषिते-शलप्त होता है, त्यागी-त्यागी, सत्त्वसमाशवष्टः-सत्त्व से युक्, मेधावी-बुम्भद्धमान्, शछन्नसंशयः शिसके संशय नष्ट हो गये हों।ं

अनुवाद : वह त्यागी मनुष्य िो साम्भत्त्वक है, मेधावी है और शिसके संशय नष्ट हो चुके हैं, अशप्रय कमथ के प्रशत घृणा भाव नहीं ंरखता और शप्रय कमथ से अनुराग नहीं ंकरता ।

व्याख्या : त्यागी मनुष्य सब कमों का समान रूप से स्वागत करता है। वह सुख-दुःख से प्रभाशवत नहीं ंहोता। रुशचकर कमथ करने में वह हशषथत नहीं ंहोता और अशप्रय कमथ करने पर दुःखी नहीं ंहोता। न तो उसे पूवथ कमथ में आसम्भक् है न पश्चात् कमथ में िेष भाव है। शप्रय के प्रशत उसमें आकषथणथ नहीं ंऔर अशप्रय के प्रशत शवकषथण नहीं।ं शकसी भी कमथ अर्वा कमथ फल में शवरक् होने के कारण वह लोक कल्याण के शलए कमथ रत होगा।

अकुशलम् कमथ-अशप्रय कमथ अर्वा फल की इच्छा से कमथ करना, िो संसार में बन्धन का कारण है क्योंशंक पुनः शुभाशुभ कमथ फल भोगने के शलए िन्म लेना पड़ेगा। शकन्तु त्यागी तो सोचेगा "यह कमथ शकस उपयोग का?" और वह अशप्रय कमथ से घृणा नहीं ंकरेगा।

कुशले-शप्रय कमथ शिनमें शनत्य कमथ भी सम्भम्मशलत हैं। यह सोच कर भी, शक ये कमथ मोक्ष शदलाने वाले हैं, वह इनसे पे्रम नहीं ंकरता।

कमथ के प्रशत आसम्भक् और कमथ फल की इच्छा त्याग कर पूणथ शम्भक् से शनष्काम कमथ करने वाले साधक का अन्तःकरण सत्त्व से पूणथ हो कर उसमें सत्य और असत्य तर्ा शनत्य और अशनत्य का शववेक िाग्रत करता है। तब उसमें ज्ञान का सूयोदय होता है िो अज्ञानान्धकार से उत्पन्न समस्त संशयों ंका शवनाश कर देता है। अब उसे ज्ञान होता है शक परमानन्द, शाश्वत शाम्भन्त और अमृतत्व की प्राम्भप्त हेतु आत्म-ज्ञान ही हेतुक है। अब उसके सारे संशय दूर हो िाते हैं। संशय की प्रकृशत क्या है? "ब्र्ह्म का अम्भस्तत्व है अर्वा नहीं?ं" उपशनषदों ंमें सगुण ब्र्ह्म की चचाथ है अर्वा शनगुथण ब्र्ह्म की? व्यशष्ट आत्मा (िीवात्मा) समशष्ट आत्मा (परमात्मा) से एक रूप है अर्वा नहीं?ं मुझे आत्म-ज्ञान होगा अर्वा नहीं?ं प्रारब्ध, संशचत अर्वा आगम-इनमें से शकसी का मुझ पर प्रभाव पड़ेगा अर्वा नहीं?ं यह संसार, शिसकी प्रकृशत इस भाव की है शक 'मैं कताथ हाँ', 'मैं भोक्ा हाँ', मन से सम्बद्ध है, बुम्भद्ध से अर्वा आत्मा से ? मोक्ष के साधन कौन-कौन से हैं-योग, भम्भक्, कमथ अर्वा आत्म-ज्ञान? क्या आत्म- साक्षात्कार सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य, सामीप्य अवस्र्ाओं ंका स्वरूप है?

कमथ योग करने पर मनुष्य का हृदय पररमाशिथत होता है। हृदय की शुद्धता से वह स्वयं को शनशवथकार, शनम्भिय आत्म तत्त्व समझने लगता है िो अिन्मा है, न स्वयं कताथ है और न करवाता (V .13) । उसे कमथ से मुम्भक् और आत्म-ज्ञान के प्रशत भम्भक् की भावना प्राप्त होती है। इस श्लोक में ऊपर कहे गये कमथ योग का उपदेश शदया गया है।

मेधावी बुम्भद्ध से युक्। म्भस्र्तप्रज्ञ । शफर 'मेधा' क्या है? 'अहं ब्र्ह्माम्भस्म' अर्वा 'तत्त्वमशस' महा-वाक्यों ंका यर्ार्थ ज्ञान और उन पर शकये गये अनन्यमनस्क ध्यान िारा प्राप्त िीवात्मा और परमात्मा के एकत्व का सद्यः ज्ञान िो तीन प्रकार के संशय-संशय भावना (doubt), असम्भावना (improbability) और शवपरीत भावना (perversion) से मुक् है और पुरुषार्थ चतुष्टय (अध्याय III.3) के अभ्यास और ब्र्ह्मशनष्ठ गुरु की सेवा और सत्य-ज्ञान के श्रवण से प्राप्त होती है।

ऐसा मेधावी पुरुष यह नहीं ंसोचेगा शक शनशषद्ध कमथ ि◌ो अज्ञानी को बन्धन में ि◌ालने वाले हैं, उसे भी प्रभाशवत करेंगे अर्वा उसके प्रशतकूल होंगें। वह यह नहीं ंसोचेगा शक यशद उसे वे कमथ करने प़िेंगे तो वह भी बन्धन में आ ि◌ायेगा क्योंशंक वह अचे्छे-बुरे, गुण-अवगुण, सत्य-असत्य से परे पहुाँच चुका है। अब उसमें कतृथत्व का अशभमान नहीं ंहै। वह तो यह भाव रखता है शक वह अब कृतकृत्य है अर्ाथत् उसने समस्त कमथ समाप्त कर शलए हैं।

इसका यह अशभप्राय कदाशप नहीं ंशक वह अब अनुशचत कमथ करेगा I क्योंशंक उसकी इच्छा अब परमात्मा की इच्छा हो चुकी है, वैशश्वक हो चुकी है, वह शास्त्र शवशहत कमथ ही करेगा। वह णास्त्र के शनयमों ंके शवरुद्ध कदाशप नहीं ंि◌ायेगा। परमात्मा ही उसकी इम्भियों ंऔर मन के ि◌ारा कायथ करते हैं क्योंशंक उसकी व्यम्भक्गत इच्छा तो अब है ही नहीं।ं

रागि्◌ेष मनुष्य को संसार की ओर पे्ररेरत करने वाली वृशत्तयााँ हैं। मेधावी पुरुष और संन्यासी में इन वृशत्तयों ं का अभाव होता है अतः वे कमथ अर्वा कमथ फल त्यागने में शक्य होते हैं।

कुषुब्धाणथव (stormy ocean) शिस प्रकार शान्त रहता है अर्ाथत् प्रचंविात और लहरों ंके उठने पर भी सागर अपनी सीमा का उल्लंघन (व्यशतरेक) नहीं ंकरता, शान्त रहता है उसी प्रकार साम्भत्त्वक मनुष्य ि◌ीवन की शवपरीत पररम्भस्र्शतयों ंमें भी शान्त रहता है। वह ि◌ान लेता है शक ि◌ीवन की (दैव वशात्) घटनायें अशनवायथ अर्वा अपररहायथ हैं। वह शवशभन्न प्रकार से शक्रया करेगा शकनुतु समम्भित और म्भस्र्रशचत्त होने के कारण कुषुब्ध नहीं ंहोगा।

कतथव्य कमथ यशद अरुशचकर पररणाम देने वाला भी हो, खतरा अर्वा दुभाथग्यपूणथ फल दे रहा हो, शारीररक कष्ट देने वाला हो, अशप्रय हो, प्रशतकूल हो तो भी उसके प्रशत घृणा का भाव मन में नहीं ंलाना चाशहए। ऐसा कमथ भी सहृदय स्वीकार कर के पूणथ संलग्नता से करना चाशहए। इसका प्रयोिन और इसकी अशनवायथता के शवषय में तुम्हें यर्ार्थ और पूणथ समझ होनी चाशहए। भगवान् ि◌ारा प्रदत्त कमथ करने की आवश्यकता और महत्त्व को समझने में अिुथन प्रारम्भ में असफल रहा। वह अपना मूखथता पूणथ दशथन समझाने लगा। शनयत कमथ को वह करने में सफल न हो सका क्योंशंक अज्ञानवश उसने सोचा शक लोगों ंका संहार करना शुभ कमथ नहीं ंर्ा शकनुतु अन्त में िब भगवान् के अमोघ उपदेश से उसके नेत्र खुले तो वह कमथ की आवश्यकता और उसके अशभप्राय को ि◌ान गया यद्यशप वही कमथ उसे अशप्रय लग रहा र्ा। वह बोला- "मेरा मोह नष्ट हो गया है। हे कृष्ण, आपकी अहेतुकी कृपा से मैंने ज्ञान प्राप्त कर शलया है। अब मैं कृत संकल्प हाँ। मेरे संशय समाप्त हो गये हैं। मैं आपके उपदेश का अनुसरण करूाँगा।"

न डि दिभृता ि◌क्यं त्यकुंतुं कमामर्ण्षितः ।
यसुतु कममफलत्यागी स त्यागीत्यडभधीयते ।। ११ ।।

बि्ार्थम : न-नहीं,ं शह-वसुतुतः, देहभृता-देहधारी के ि◌ारा, शक्यम् -सम्भव, त्यकुम् -त्याग करना, कमाथशण-कमथ, अशेषतः- पूणथरूपेण, यःि्◌ो, तु-शकनुतु, कमथफलत्यागी-कमथ फल का त्याग करने वाला, सः- यह, त्यागी-त्यागी, इशत-इस प्रकार, अशभधीयते-कहा ि◌ाता है।

अनुवाद : शनशश्चत रूप से, शकसी देहधारी के शलए पूणथरूपेण कमों का त्याग सम्भव नहीं ंहै शकनुतु ि◌ो कमथ फल का त्याग करता है वह वसुतुतः त्यागी है।

व्याख्या : देह धारण कर के भी कमथ करने में ि◌ो व्यम्भक् खेद का अनुभव करता है वह वास्तव में मूखथ है। उष्णता के स्वाभाशवक गुण से युक् अशग्न क्या अपने गुण से छुटकारा प्राप्त कर सकता है? िब तक तुम इस देह को धारण

शकये हो, कमथ से मुक् नहीं ंहो सकते। भगवान् कृष्ण अिुथन से कहते हैं- 'कोई भी व्यम्भक् एक क्षण के शलए भी अकमथकृत् नहीं ंहो सकता क्योंशंक स्वाभाशवक गुणों ंसे आकृष्ट हो कर वह स्वयं ही कमथ करने के शलए गुणों ंिारा वशीभूत हो कर (कमथ करने को) बाध्य हो िाता है।' (III.5) प्रकृशत और तुम्हारा अपना स्वभाव भी तुम्हें कमथ के शलए प्रेररत करेंगे। तुम्हें कतृथत्वभाव और कमथ फल की आकाङ्क्षा का त्याग करना होगा। केवल तभी तुम सुरशक्षत हो, कोई कमथ तुम्हें बन्धन में नहीं ंिालेगा।

अज्ञानी मनुष्य िो देह में आत्मा का अध्यास करता है और सोचता है शक वही कताथ है, ऐसे व्यम्भक् को कमथ का त्याग नहीं ंकरना चाशहए। उसके शलए कमथ त्याग करना असम्भव है। फल की आशा त्यागने के शलए उसे समस्त शास्त्र शवशहत कमथ करने होंगें।

देहभृत्-देह को धारण करने वाला। आत्माशभमान रखने वाला अर्वा शरीर को आत्मा के सार् एकरूप (तादात्म्य रूप) मानने वाला देहभृत् है। सत्य-असत्य, शाश्वत और क्षणभङ्गुर के भेद को िानने वाला शववेकी पुरुष देहभृत् नहीं ंकहा िा सकता क्योंशंक वह स्वयं को कताथभाव से पृर्क् मानता है (II.21), िो मनुष्य, हे अिुथन, उसे िानता है िो अशवनाशी है, शाश्वत है, अिन्मा है, अक्षय्य है-वह शकसी को कैसे मार सकता है अर्वा मरवा सकता है?

तत्त्व ज्ञान से शून्य व्यम्भक् िब कमथ फल की इच्छा का त्याग कर के शनत्य कमों का अनुष्ठान करता है तो कमथ करते हुए भी त्यागी कहलाता है। सुतुशत के अशभप्राय से उसे यह उपाशध दी िाती है।

केवल तत्त्व ज्ञानी के शलए ही समस्त कमों का त्याग सम्भव है क्योंशंक बह देहातीत हो चुका है अब वह देहभृत् नहीं ंहै। (शनरूपण - 111.5)

अडनष्टडमषं्ट डमशं्र च डत्रडवधं कममणः फलम् ।
भवत्यत्याडगनां प्रेत्य न तु संन्याडसनां क्वडचत् ।।१२ ।।

शब्दार्थ : अशनष्टम् अशप्रय, अशुभ, प्रशतकूल, इष्टम् -शप्रय, शुभ, अनुकूल, शमश्रम् -शमश्र, च-और, शत्रशवधम्-तीन प्रकार का, कमथणः कमथ का, फलम् - फल, भवशत होता है, अत्याशगनाम्-त्याग न करने वालों ंका, प्रेत्य-मृतूयूपरान्त, न नहीं,ं तु-शकनुतु, संन्याशसनाम् -संन्याशसयों ंका, क्वशचत् -कोई।

अनुवाद : अत्याशगयों ं(कमथशनष्ठ अज्ञाशनयों)ं को मृतूयूपरान्त तीन प्रकार के फल-शप्रय, अशप्रय और शमश्र शमलते हैं शकनुतु ज्ञान शनष्ठ संन्याशसयों ंके कमों का फल शकसी काल में नहीं ंहोता।

व्याख्या : कोई तो कमथ फल शप्रय है, कोई अशप्रय और अन्य शमश्र हैं। शिनमें शुभ कमों का अशतरेक होता है वे देव रूप में िन्म लेते हैं। अशुभ कमथ करने वाले पशु िगत् अर्वा वनस्पशत िगत् में पुनिथन्म लेते हैं। यशद उनके शुभाशुभ कमथ समान हैं तो वे मनुष्य योशन में आते हैं। ये शुभ, अशुभ और शमश्र का भेद कमाथतीत संन्यासी के शलए नहीं ंहोता शिसने कताथपन के भाव, फल की इच्छा और अहंभाव का त्याग कर शलया है।

कमथत्यागी संन्यासी को कमथ के प्रशत आसम्भक् अर्वा इच्छा नहीं ंहोती। इसशलए उसका पुनिथन्म नहीं ं होता। शनष्काम भाव से शकये गये कमथ शकसी भी काल में बन्धनकारी नहीं ंहैं।

भगवान् को कमथ फल समशपथत करने वाले व्यम्भक् को कमथ बन्धन नहीं ंहोता। कुछ कमथ ऐसे हैं िो अशनवायथ हैं और समस्त प्राशणयों ंके शलए स्वाभाशवक हैं शकनुतु संन्यासी समस्त कमों के फल का त्याग कर के िीविन यापन करता है।

फलम् - फल। शवशवध बाह्य तथ्यों ंकी चेष्टायें इसका कारण हैं। अशवद्या (अज्ञान) ही इसका कारण है। यह मोहमाया के िंिाल में फंसाने वाला और भ्रान्त करने वाला है। फल शब्द नष्ट होने वाली शकसी वसुतु का संकेत करता है शकसी शचरस्ायी अर्वा स्रूल पदार्थ को पररलशक्षत नहीं ंकरता ।

कमथ-कमथ । शुभ और अशुभ ।

अशनष्टम् -अशुभ, अशप्रय िैसे नरक, पशु िगत् आशद।

इष्टम् - शप्रय अर्वा शुभ।

शुभ और अशुभ, अचे्छे और बुरे दोनों ंशमश्र । शिसके शमश्रम् - कारण मनुष्य िन्म है।

शववेक शून्य, ज्ञान ज्योशत से अप्रकाशत अज्ञानी व्यम्भक् ही इन तीन प्रकार के फलों ंका भोग करते हैं शिन्ोंनें पूवथतः कमथ फल का त्याग नहीं ंशकया र्ा। परम हंस पररीिाक वास्तशवक संन्यासी िो संन्यास की पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुके हैं, शनत्य आत्म तत्त्व में ध्यानस् हैं, केवल आत्म-ज्ञान को ही समशपथत हैं और अपने सत्-शचत्-आनन्द स्वरूप में वास करते हैं वे इन फलों ंका भोग नहीं ंकरते क्योंशंक ज्ञानाशग्न ने उनकी अशवद्या को भस्म कर शदया है और इस के कायथ रूप संसार के बिी को भी िला शदया है।

आत्म-ज्ञान-प्राप्त मुक् िीव अर्वा िीवनुमुक् ही सवथ कमथ फल त्यागी हो सकता है क्योंशंक वह देहातीत है। वह िानता है शक आत्मा सब कमों से परे है, अतीत है और केवल अशवद्या के कारण कमथ को आत्मा पर आरोशपत शकया िाता है। देहाशभमानी व्यम्भक् कमथ फल का त्याग नहीं ंकर सकता। वह सोचता है वह कताथ है, कमों को कायथ रूप देने वाला है और कमों के फल की इच्छा रखता है अतः इस अशभलाषा की पूशतथ हेतु अर्ाथत् कमथ फल भोगने हेतु उसे पुनः पुनः इस भवसागर में अवतररत होना पड़ता है।

पञ्चैताडन मिाबािो कारणाडन डनबोध मे ।
सांखे्ये कृताते प्रोक्ताडन डसद्धये सवमकममणाम् ।।१३ ।।

शब्दार्थ : पञ्च-पााँच, एताशन-ये, महाबाहो - हे महाबाहो, कारणाशन-कारण, शनबोध–िानो, मे—मुझसे, सांखे्ये-सांख्य में, कृतान्ते - िहााँ कमों का अन्त है, प्रोक्ाशन-कहे गये, शसद्धये-शसम्भद्ध के शलए, सवथकमथणाम् सब कमों की।

अनुवाद : हे महाबाहो, अिुथन ! समस्त कमों की शसम्भद्ध के शलए सांख्य दशथन में पााँच कारण बताये गये हैं िो कमों का अन्त करने वाले हैं। उनको तुम मुझ से िान लो ।

व्याख्या : आत्मा कमथ से सवथर्ा मुक् है। प्रकृशत ही सब चेष्टा करती है। आत्मा मौन साक्षी है। वह तटस् (समदशी) रहता है। संपूणथ मानवीय चेष्टाओं ंका मंशदर (भवन) पााँच कारणों ंका पररणाम है शिनका शनरूपण अगले श्लोक में शकया िायेगा।

एताशन-ये-शिनका वणथन शकया िाना है। सांख्य-वेदान्त । उपशनषदों ंमें शनरूशपत आत्म-ज्ञान िो समस्त कमााँ को समाप्त करता है (सवथ कमाथम्भखलं पार्थ ज्ञाने पररसमाप्यते)।

इसी कारण से 'कृतान्ते' शब्द का यहाँ प्रयोग शकया गया है। आत्म-ज्ञान उशदत होने पर सवथकमथ पररसमाप्त हो िाते हैं। ऐसा भगवान् ने अध्याय II, श्लोक 46 में कहा है- "आत्म शनष्ठ ब्राह्मण के शलए वेदों ंका
उतना ही महत्त्व है शितना बाढ़ ग्रस्त स्ान में रह रहे व्यम्भक् का एक िलाशय से है।" पुनः IV. 33. में कहा है- "हे अिुथन, समस्त कमों का अन्त ज्ञान में होता है।" अतः आत्म-ज्ञान प्रदान करने वाला वेदान्त कमों का अन्त है।
वेदान्त के आदेशों ंका पालन कर के आत्म ज्ञानी िीवनुमुक् कृतकृत्य हो िाता है (शिसने सब कमथ कर शलए हैं और अन्य कुछ करने को शेष नहीं ंरहता) ।

अडधिानं तर्था कताम करणं च पृर्थन्द्रिधम् ।
डवडवधाश्च पृर्थक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।।१४।।

ब्रि्र्थम : अशधष्ठानम् स्ान, शरीर, तर् और, कताथ-कताथ, करणम् - (उपकरण) इम्भियाँ, च-और, पृर्म्भिधम् - शवशभन्न प्रकार के, शवशवधाः - अनेक प्रकार के, च-और, पृर्क् पृर्क्, चेष्टाः-कमथ, दैवम् अशधष्ठातृ देव, च-और, एव-ही, अत्र-यहाँ, पञ्चमम् -पाँचवाँ ।

अनुवाद : स्ान (शरीर), कताथ, करण (इम्भियाँ), शवशवध प्रकार के कमथ और पाँचवाँ अशधष्ठातृ देव,

व्याख्या : अब इन पाँचों ंकी शवशेषताओं ंका ज्ञान करो शिनमें शरीर प्रर्म है। इसे स्ान अर्वा आश्रय कहते हैं। शरीर इच्छाद्वेष, सुख-दुःख और ज्ञान आशद का आश्रय स्ल है। िीवात्मा शवषयों ंके सम्पकथ में आकर शरीर के माध्यम से सुख-दुःख के अनुभव लेता है। 'अहं' कताथ अर्वा भोक्ा है। प्रकृशत चेष्टा करती है शकनुतु भ्रम वश मनुष्य अपने ऊपर कतृथत्व भाव से आरोशपत करता है इसीशलए वह कताथ कहलाता है।

कताथ-सम्पकथ में आने वाले सीशमत प्रशतबन्धकों ंके गुण, भवं, सम्पदा अर्वा प्रकृशत को भोगने वाला।

करणं पृर्म्भिधम् - शवशवध प्रकार के शब्दाशद शवषयों ंको ग्रहण करने वाले श्रोत्राशद कारण, ज्ञानेम्भियाँ, कमेम्भियाँ और मन ।

दैवम् अशधष्ठातृ देव िैसे नेत्र का अशधष्ठातृ देव सूयथ है तर् अन इम्भियों ंके भी पृर्क् पृर्क् देवता हैं शिनकी सहायता से इम्भियाँ अपना-अपना कायथ करती हैं; भाग्य।

चेष्टा-कमथ करते समय इम्भियों ंअर्वा अवयवों ंमें शम्भक् की क्रिया। इनमें से शकसी एक करण के अभाव में कमथ असम्भव है।

रीरवाङ्मनोडभयमत्कमम प्रारभते नरः ।
न्याय्ं वा डवपरीतं वा पञ्चैते तस्य ितवः ।।१५।।

ब्रि्र्थम : शरीरवाङ्मनोशभः-शरीर, वाणी और मन से, यत्द्यो, कमथ-कमथ, प्रारभते-करता है, नरः- मनुष्य, न्याय्यम् न्यायपूणथ, वा-अर्वा, शवपरीतम् न्याय शवरुद्ध, वा-अर्वा, पञ्च-पाँच, एते-ये, तस्य-उसके, हेतवः-कारण ।

अनुवाद : शरीर, मन और वचन से मनुष्य इस शरीर के िारा िो भी न्यायपूणथ अर्वा न्यायशवरुद्ध कमथ करता है-ये उसके पाँच कारण हैं।

व्याख्या : न्याय्यम् यर्ार्थ, धमथ शवरुद्ध ो न हो, शास्त्रसम्मत, न्याययुक् ।

शवपरीतम् - शवरुद्ध । ो धमथ शवरुद्ध हो, शास्त्र शवरुद्ध और न्याय शवरुद्ध हो (अन्यायपूणथ हो) ।

यत्कमथ-पलक झपकना और मूाँदना आशद ो ीवन के अशनवायथ कमथ हैं, वे न्याययुक् और शवपरीत शब्दों ं से इशङ्गत शकये गये हैं क्योंशंक वे पूवथ िन्म कृत पाप-पुण्य के फल स्वरूप हैं।

तस्य हेतवः - इसके कारण। प्रत्ेयेक कमथ के कारण। आलोचक तकथ करता है-"पूवथ श्लोक में कहा है शक शरीर, कताथ, शवशभन्न करण आशद प्रत्ेयेक कमथ के हेतुक हैं तो कमों में यह भेद कहााँ से आ गया शक 'ो भी कमथ मनुष्य शरीर, वाणी और मन से करता है ?"

यह दोष नहीं ंहै क्योंशंक शकसी भी कमथ को करने में अन्यों ंकी अपेक्षा शरीर, वाणी और मन-इन तीनों ंमें से एक अशधक प्रधान होता है। देखना, सुनना आशद अन्य चेष्टायें ो ीवन के सार् ुड़ी हुई हैं, वे इनकी अपेक्षा गौण हैं।

इसशलए समस्त कमथ तीन प्रकार से शवभक् हैं और शरीर, वाणी और मन ारा शकये ाने वाले हैं। कमथ का फल भी शरीर, वाणी और मन से भोगा ाता है और इनमें एक, अन्य दो की अपेक्षा अशधक प्रधान होता है। इसशलए यह कर्न उशचत ही है-"शरीर वामनोशभयथत्कमथ...।"

तत्ैरैवं सडत कतामरमािानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुन्द्रद्धत्वाि स पश्यडत दुममडतः ।।१६ ।।

बि्ार्थम : तत्र-वहााँ, एवम् - इस प्रकार, सशत-होते हुए, कताथरम् - कताथ को, आत्मानम्-आत्मा को, केवलम् -केवल, तु-शनशश्चत रूप से, यः ो, पश्यशत-देखता है, अकृतबुम्भद्धत्वात्-अपररषूकृत् बुम्भद्ध के कारण, न - नहीं ं, सः वह, पश्यशत-देखता है, दुमथशतः- शवपरीत बुम्भद्ध वाला।

अनुवाद : अब, इस प्रकरण में ो असंसूकृत (अपररषूकृत) बुम्भद्ध से युक् अज्ञानी मनुष्य आत्मा को, ो शक पृर्क् है, कताथ मानता है ऐसा शवपरीत बुम्भद्ध वाला मनुष्य देखते हुए भी नहीं ंदेखता ।

व्याख्या : आत्मा सदा शनम्भिय रहता है। आकाश की भााँशत वह अनासक् है। शनत्य मौन साक्षी है। कमों का ष्टा है। देहाशभमानी मनुष्य ही स्वयं को कताथ मान कर कमथ के बन्धन में फ़िता है और कमथ फल भोगने के शलए पुनः पुनः िन्म लेता है। शरीर को ही चेतन स्वरूप, ईश्वर अर्वा आत्मा मानने वाला तो शनस्सन्ेदेह उसी आत्मा को ही कताथ मानेगा। देह में आत्मा का अध्यास करने वाला, देह को ही शुद्ध आत्मा मानने वाला तो शनतान्त अन्धकार पूणथ अज्ञान का ीवन ीता है क्योंशंक उसने अपने ऊपर अशवद्या का आवरण ाल रखा है। वह कमों की शृंखला से बंध ाता है और सदा अपने शरीर रूपी शपंरे में बन्द रहता है।

शिस मनुष्य की बुम्भद्ध के सार् तादात्म्यता नहीं ंहै, शिसकी बुम्भद्ध असंसूकृत अर्वा कुम्भत्सत है, ो आत्मा को कमथ करने वाला कताथ मानता है, वह शनशश्चत रूप से शवपरीत बुम्भद्ध वाला है। वह भ्रशमत है; वसुतुतः वह अन्धा है। आाँखें होते हुए भी वह नहीं ंदेखता । वह वसुतु का सार रूप नहीं ंदेखता। उसे उस परम तत्त्व का कोई ज्ञान नहीं ंहै ो स्वयं कमथ रशहत है, ो सब मनुष्यों ंके समस्त प्राशणयों ंके अवयवों ंऔर अन्तःकरण की चेष्टाओं ंका साक्षी ष्टा है, ो अन्तःकरण, अवयव, प्राण शम्भक् और शरीरों ंको उसी प्रकार कमथ में प्ेरेररत करता है ैसे चुम्बक एक लौह खण्ड को गशत करने के शलए प्ेरेररत करता है। वह मनुष्य कमथ और आत्मा के सत्य को नहीं ंानता।

दुमथशतः-कुम्भत्सत बुम्भद्ध। शवपरीत बुम्भद्ध अर्वा अशवकशसत बुम्भद्ध वाला मनुष्य। वह स्वयं को ही कताथ मानता है। वह सत्य को समझने में असमर्थ होता है। आत्म-प्रकाश, शुद्ध, कमथ रशहत शनम्भिय आत्म तत्त्व का उसे शंकंशचदशप ज्ञान नहीं ंहै।

अशवद्या में प्िा दुबुथम्भद्ध मनुष्य पाँच कारणों ंके सार् तादात्म्य स्ाशपत कर के शनम्भिय आत्मा को कमों का कताथ समझता है िब शक कमों के करने वाले वास्तशवक करण, पाँच कारण ही हैं। इसका कारण क्या हो सकता है? वह ऐसा क्यों ंसमझता है? क्यों ंशक उसके पास शुद्ध, पररषृकृत, सूक्ष्म बुम्भद्ध नहीं ंहै। वेदान्त के अभ्यास से उसकी बुम्भद्ध पररषृकृत नहीं ंहुई है। वह पुरुषार्थ चतुष्टय (III.3) से अनशभज्ञ है। आध्याम्भत्मक गुरु अर्वा आचायथ के न्यायपूणथ तकथ से उसकी बुम्भद्ध प्रशशक्षत नहीं ंहुई है।

शुद्ध कमथ रशहत आत्मा को कताथ मानने वाला शनशश्चत रूप से असंसृकृत बुम्भद्ध वाला है। उसे शनष्काम कमथ और आत्मा का कोई ज्ञान नहीं ंहै। इसीशलए वह मूढ़ बुम्भद्ध कहलाता है। उसकी बुम्भद्ध की गशत सही शदशा की ओर कमथ नहीं ंकरती। वह शवषयों ंके घने वन में भटकने वाली है। दुष्ट अश्व की भाँशत दौ़ने वाली, आवागमन में िालने वाली है। गीता में शदया गया बुम्भद्ध योग पर उपदेश इसे रोकने में अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से सहायक है।

नेत्र होते हुए भी वह वसुतुओं ंका यर्ार्थ दशथन नहीं ंकर सकता। वह देखता है शकनुतु शवषयों ंके बाह्य, स्ूल, भ्रान्त (मायावी), शवकारी, नश्वर रूप को ही देखता है। सब के अवलंबन स्वरूप अमृत, अशवकारी, आनन्दमय सार रूप के दशथन वह नहीं ंकरता। वह मनुष्य पीशलया (jaundice) के रोगी की भाँशत है शिसे सब कुछ पीला ही शदखता है अर्वा शतशमर रोग वाले मनुष्य की

तरह है शिसे अनेक चि शदखते हैं अर्वा ऐसे मनुष्य िैसा है िो दौ़ते हुए बादलों ंमें चि को भी गशत करता हुआ समझता है अर्वा टेरन में बैठे उस व्यम्भक् की भाँशत है िो बाहर वृक्षों ंको देख कर कल्पना करता है शक वृक्ष चल रहे हैं िबशक वास्तव में शिस गाड़ी में वह बैठा है वही गशतशील है। (शनरूपण-V.15; XIII.30)

यस्य निांकृतो भावो बुन्द्रद्धयमस्य न डलप्यते ।
त्विाडप स इमाँल्लोकिा िन्द्रतनडनबध्यते।।१७ । ।

ब्िार्थम : यस्य-शिसका, न-नहीं,ं अहंकृतः- अहंभाव, भावः- भाव, बुम्भद्धः बुम्भद्ध, यस्य-शिसकी, न-नहीं,ं शलप्यते-शलप्त है, हत्वा मार कर, अशप-भी, सः वह, इमान्-इन, लोकान्-लोकों ंका, न-नहीं,ं हम्भन्त-मारता है, न नहीं,ं शनबध्यते-बन्धन में आता है।

अनुवाद : 'मैं कताथ हाँ', इस अहंभाव से िो मनुष्य मुक् है, शिसका अन्तःकरण शुभ-अशुभ के शवकार से दोषयुक् नहीं ंहै वह मनुष्य इन लोकों ंको (लोगों ंको) मार कर भी (मारने के पाप से) बन्धन में नहीं ंआता।

व्याख्या : हे अिुथन, कमाथतीत और कमथ बन्धन से भी अतीत मनुष्य की शवशेषतायें मैं तुम्हें बताता हाँ।

स्वार्थ भाव और अहंभाव िब नष्ट हो िाते हैं, िब इच्छा और व्यम्भक्गत लाभ का त्याग हो िाता है तब कमथ मनुष्य को बांध नहीं ंसकते। वह िानता है शक शरीर के शवनाश से आत्मा का शवनाश नहीं ंहोता। वह कतृथत्वभाव 1 से अतीत रहता है। समाि में शाम्भन्त और सनुतुलन बनाये रखने के शलए शहंसा का कायथ भी उसके शलए अशनवायथ सा हो िाता है। शबना शकसी कामना के शहंसा भी उस शहंसक व्यम्भक् के हनन समान हो िाती है, शिसे समाि की ओर से, संसार में शांशत और सनुतुलन के संरक्षण हेतु िि (न्यायाशधकारी) ने प्राणदंड शदया हो ।

शिसकी बुम्भद्ध प्रशशक्षत हो, अन्तःकरण शुद्ध हो और तकथ शम्भक् शवकशसत हो चुकी हो, शिसे शास्त्रों ं का समुशचत ज्ञान हो, िो शास्त्र-ज्ञान को समशपथत हो और न्याय दशथन के ज्ञान से युक् हो, िो आचार्यों िारा भली भााँशत प्रशशक्षत हो वह इस कताथपन के अहंकार पूणथ भाव से सवथर्ा मुक् है। वह अच्छी प्रकार से िानता है शक प्रकृशत, गुण अर्वा शनि स्वभाव ही सब कुछ कर रहे हैं। वह सोचता है- "मैं समस्त शक्रयाओं ंका मौन िष्टा हाँ। मैं कताथ नहीं ंहाँ। ये पााँच (शरीर, कताथ, करण आशद) िो शुद्ध अशक्रय आत्मा पर अज्ञान वरा अध्याशसत हैं, यही कमों के कारण हैं। मैं कुछ नहीं ंकरता। इम्भियााँ शवषयों ंमें शवचरण करती हैं। गुण इम्भियों ंके प्रशतरूप में, िो इन गुणों ंकी ही उपि हैं, शवचरण करते हैं। मैं गुणों ंके शवभागों ंका सार और उनकी प्रशक्रयाओं ंको िानता हाँ। मैं वसुतुतः शनरवयव हाँ। कमथ मुझ पर आरोशपत कैसे हो सकते हैं? मेरे हार् नहीं,ं पैर नहीं,ं टांग नहीं,ं श्वास नहीं,ं मन नहीं,ं मैं सवथदा शुद्ध
बुद्ध हाँ। शनरञ्जन हाँ, अचल हाँ और अशवकारी हाँ।" वह इस प्रकार कभी पश्चात्ताप नहीं ंकरेगा- "मैंने कोई अनुशचत कायथ शकया है। मुझे ऐसा करना चाशहए र्ा। मैंन बुरा कमथ कर शलया है। अब मुझे नरक में िाना प़िेगा।" वह शनत्य बुम्भद्धमान् है। वह अनुशचत कमथ कर ही नहीं ंसकता। उसकी इच्छा प्रभु की इच्छा हो गई है, वैशश्वक इच्छा हो गई है। भगवान् की इच्छा में उसकी इच्छा शमल गई है। वह िो कुछ भी करता है, भगवान् ही करता है। उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं ंहै। वह यर्ार्थ देखता है। हनन कर के भी वह शहंसा के कमथ से मुक् है। उस कमथ के पररणाम के बन्धन में वह नहीं ंआता। वह शुभ और अशुभ से परे है, िन्द्विंसे अतीत है क्योंशंक वह आत्म ज्ञानी है।

आलोचक कहता है-"मार कर भी नहीं ंमारता", यह कर्न शवपरीत है। शकनुतु हम कहते हैं-

यह कर्न शवपरीत नहीं ंहै। लौशकक दृशष्ट से मनुष्य, शरीर में आत्म बुम्भद्ध कर के 'मैं मारता हाँ' ऐसा सोचता है शकनुतु पारमाशर्थक दृशष्ट से िैसा शक ऊपर समझाया गया है, भगवान् कहते हैं, वह नहीं ंमारता और न ही बन्धन में आता है।

एक अन्य आलोचक कहता है-आत्मा शरीर आशद के सार् शमल कर कमथ करता है। 'िो मनुष्य आत्मा को शरीर से पृर्क् मान कर भी उसे कताथ समझता है वह भी अकृत बुम्भद्ध है।' (शनरूपण-XVIII.16)

उत्तर है- "यह दोष भी अनुशचत है। शिस प्रकार सवथव्यापक आकाश सूक्ष्मता के न्याय से प्रभाशवत नहीं ं होता, उसी प्रकार शवद्यमान (व्याप्त) होते हुए भी अप्रभाशवत रहता है। ये अनश्वर अशवकारी, अपररवतथनशील, शनराकार, शनगुथण आत्मा शरीरस् होते हुए भी न तो कमथ करता है और न ही कमथ से प्रभाशवत होता है। शिस प्रकार स्फशटक रक् वणथ पुष्प के सम्पकथ में आने पर अप्रभाशवत रहता है और सूयथ नेत्र रोग से अप्रभाशवत रहता है उसी प्रकार आत्मा भी इन सब प्रभावों ंसे अतीत है। शवकारशील वसुतु ही दूसरे के सार् शमल कर कताथ बन सकती है। आत्मा सदा पृर्क् है, स्वतन्त्र है, मुक् है। यह आत्मा शनशवथकार है (II.25)। गुण ही गुणों ंमें बरत रहे हैं, (III.28)। शरीर में वास करते हुए भी वह कमथ नहीं ंकरता (III.31)| कमथ गुणों ंके िारा शकये िाते हैं (III.27)।" बृहदारण्यकोपशनषद् (4.3.7 .) में आता है-

"मानो यह ध्यान करता है। मानो यही गशत करता है।" तकथ िारा भी हम इस तथ्य पर पहुाँचते हैं।

"यह शनरवयव है, भाग रशहत है, स्वतन्त्र है, मुक् है, शनशवथकार है। इसशलए शरीर के कमथ आत्मा के कतृथत्व पर आरोशपत नहीं ंशकये िा सकते।"

वसुतुतः एक के कमथ दूसरे के पास नहीं ंिा सकते शिसने वे कमथ शकये ही न हों।ं िैसे आकाश में आरोशपत नीशलमा आकाश की नहीं ंहै, सीप में आरोशपत चााँदी सीप की नहीं ंहो सकती, मृग मरीशचका में िल नहीं ंहो सकता इसी प्रकार अशवद्या के कारण आत्मा पर आरोशपत शवकार आत्मा के नहीं ंहो सकते। शरीर में होने वाले शवकार

शरीर के ही हैं, शुद्ध आत्म तत्त्व के नहीं ंहैं िो सदा साक्षी रूप में शवद्यमान रहता है। इसशलए यह कर्न सही है शक शववेकी मनुष्य िो अन्तःकरण की अशुम्भद्धयों ंऔर अहंभाव से मुक् है न तो शहंसा करता है और न ही शहंसा करने पर बन्धन में आता है।"

अध्याय II.19. में भगवान् ने कहा र्ा- "वह न तो मारता है और न ही मारा िाता है", 11.20. में उन्ोंनें कहा-"आत्माअिन्मा, शाश्वत, शनत्य, सनातन है। शरीर के मारे िाने पर आत्मा नहीं ंमरता।" इतस्ततः भगवान् ने स्पष्टशकयाहैशक आत्मा कमथ से प्रभाशवत नहीं ंहोता और बुम्भद्धमान् मनुष्य को कमथ करने की आवश्यकता नहीं ंहै। वे अन्तमेंकहते हैं- "ज्ञानी न तो मारता है, न बन्धन में आता है", और इसी से गीता का उपदेश समाप्त होता है। अहंभावसेमुक् संन्यासी कमथ से प्रभाशवत नहीं ंहोते। कमों के शत्रशवध पररणाम-शुभ, अशुभ और शमश्र (श्लोक १२)उनकेशलए नहीं ंहैं। कमथ से तो सांसाररक मनुष्य ही शलप्त होते हैं क्योंशक वे अहंभाव से और फल की आशा से युक्होतेहैं। वे कमथ फल भोगने के शलए बाध्य होते हैं इसशलए उन्ें पुनः पुनः िन्म लेना पड़ता है। (शनरूपण – II.19; V.7)

ज्ञानं ज्ेञेयं पररज्ञाता डत्रडवधा कममचोदना ।
करणं कमम कतेडत डत्रडवधः कममसंग्रिः ।।१८ ।।

शब्दार्थ : ज्ञानम् ज्ञान, ज्ेञेयम्–िानने योग्य, पररज्ञाता-ज्ञाता (िानने वाला), शत्रशवधा-तीन प्रकार के, कमथचोदना-कमों की प्ेरेरणा, करणम् -इम्भियााँ, कमथ-कमथ, कताथ-कताथ, इशत-इस प्रकार, शत्रशवधः-तीन प्रकार के, कमथसंग्रहः कमथ के
संग्रह (संचय) ।

अनुवाद : ज्ञान, ज्ेञेय और ज्ञाता, यह तीन कमथ के प्ेरेरक हैं। करण (इम्भियााँ), कमथ और कताथ, यह तीन कमथ के संघटक अर्ाथत् कमथ संग्रह हैं।

व्याख्या : ज्ञान, ज्ेञेय और ज्ञाता करने योग्य पदार्थ अर्ाथत् ज्ेञेय, सम्भम्मशलत रूप से संसार के बीि रूप हैं। इसे शत्रपुटी कहते हैं। इन तीनों ंका संयोग मनुष्य को शारीररक, वाशचक और मानशसक, यह शत्रशवध कमथ करने के शलए प्ेरेररत करता है। यह शत्रपुटी मनुष्य की शक्रयाओं ंकी संचालन शम्भक् है। वह मनुष्य मधुर स्वाशदष्ट शमष्टान्न देख कर तो हशषथत होता है शकन्ुतु कोबरा अर्वा शसंह को देख कर भयभीत हो िाता है। रुशचकर अर्वा अरुशचकर शवषयों ं को देख कर वह प्रभाशवत होता है और अनुकूल को ग्रहण करने का और प्रशतकूल को दूर करने का प्रयास करता है।

मन, बुम्भद्ध, शचत्त, अहंकार-ये चार शमल कर अन्तःकरण कहलाता है। कणथ, त्वचा, शिह्वा, नाशसका और नेत्र-ये पााँच ज्ञानेम्भियााँ हैं। इन पााँच इम्भियों ंसे प्ेरेररत हो कर िीवात्मा कमथ में प्रवशतथत होता है। वह पााँच कमेम्भियों– वाणी, हस्त, पाद, गुदा और उपस्र् की सहायता से कायथ करता है।

ज्ञानम् -कोई भी ज्ञान । सामान्य भाव में सवथ पदार्थ शवषयक ज्ञान ।

ज्ेञेयम्–िानने में आने वाला पदार्थ । समस्त सामान्य पदार्थ ।

पररज्ञाता-ज्ञाता, अनुभव कताथ, भोक्ता। अशवद्यायुक् मनुष्य िो सीशमत प्रशतबन्धकों ंकी प्रकृशत को धारण शकये हुए है।

"यह शत्रपुटी समस्त कमों के प्रशत शत्रशवध पे्रेरणा करती है। शकसी भी कमथ की प्रवृशत्त, प्राप्त करने अर्वा त्यागने की, तभी सम्भव है िब ज्ञान, ज्ञाता और जे्ञेय की शत्रपुटी हो।

करणम् - इम्भियााँ (साधन)। शिनके िारा कमथ शकया िाता है।

कमथ के पााँच कारणों–शरीर आशद िारा शकये गये कमथ, िो अपने-अपने स्र्ान के अनुरूप तीन वगों-मन, वाणी और शरीर में शवभक् हुए इम्भिय आशद के अन्योन्य संसगथ व चेष्टा से है।

कताथ-करने वाला। इम्भियों (करणों) को अपने-अपने कमथ में शनयुक् करने वाला अर्ाथत् िीव िो सीशमत प्रशतबन्धों की प्रकृशत वाला प्रतीत होता है और शरीर रूपी वाहन में रह कर चेष्टा करता है। समस्त कमथ इन तीनों के कारण सम्पाशदत होते हैं-कताथ, कमथ और करण (इम्भियााँ) । इसशलए ये कमथ के शत्रशवध संघटक हैं।

कमथ, कारक और फल, ये शत्रगुणात्मक होने से भगवान् इन का वणथन आगे के श्लोक में करते हैं।

ज्ञानं कमम च कताम च डत्रधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यर्थावच्छृणु तान्यडप ।।१९ ।।

शब्दार्थ : ज्ञानम् - ज्ञान, कमथ-कमथ, च-और, कताथ-कताथ, च-और, शत्रधा-तीन प्रकार का, एव-ही, गुणभेदतः- गुणों के भेद से, प्रोच्यते-कहे िाते हैं, गुणसंख्याने गुणों के शवज्ञान में (सांख्य दशथन) को, यर्ावत्–िैसे हैं, वैसे ही, शृणु-सुनो,
ताशन उनको, अशप भी।

अनुवाद : ज्ञान, कमथ और कताथ सांख्य दशथन में गुणों के भेद से कहे गये हैं। उनको भी यर्ावत् सुनो अर्ाथत् िैसा शास्त्रशवशहत है वैसा ही सुनो।

व्याख्या : अपनी शवशेष प्रकृशत के सार् तीनों गुण समूपूणथ शवश्व को अपने आधीन शकये हुए हैं। गुण की प्रधानता के अनुसार कताथ, कमथ और ज्ञान की प्रकृशत शत्रशवध है। यशद तीनों साम्भत्त्वक हैं तो कमथ मनुष्य को बांधने वाले नहीं होंगें।

कताथ-कमथ को करने वाला।

गुणों के शवज्ञान से यहााँ अशभप्राय कशपल मुशन के न्याय शास्त्र से यद्यशप सविो सत्य के शवषय में सांख्य दशथन वेदान्त के शवपरीत है अनंत िैतवाद का इसमें शवरोध है तर्ाशप गुणों के शवषय में यह प्रामाशणक है।

मैं ज्ञान, कमथ और कताथ तर्ा शवशभन्न गुणों के कारण उनके शवशवध भेलें का वैज्ञाशनक रूप से तर्ा न्यायानुसार शववेचन करूाँगा। हे अिुथन, अत्यन्न ध्यानपूवथक मेरे उपदेशों को सुनो। तुम्हारा कल्याण होगा।

सवमभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अडवभक्तं डवभक्तेषु तज्ज्ञानं डवन्द्रद्ध सान्द्रत्त्वकम् ।।२० ।।

शब्दार्थ : सवथभूतेषु सब प्राशणयों में, येन-शिसके िारा, एकम् - एक, भावम् -सत्य, अव्ययम् - अनश्वर, ईक्षते-देखता है, अशवभक्म् -समूपूणथ, अखण्ड, शवभक्ेषु पृर्क् पृर्क् (प्राशणयों में), तत्-उस, ज्ञानम् - ज्ञान को, शवम्भद्ध–िानो, साम्भत्त्वकम् साम्भत्त्वक ।

अनुवाद : वह (ज्ञान) शिसके िारा मनुष्य शवभक्ों ंमें अशवभक् उस एक अनश्वर सत्य-स्वरूप परमात्मा को देखता है उस ज्ञान को तुम साम्भत्वक िानो ।

व्याख्या : वह ज्ञान शुद्ध है िो दृश्य पदार्ों में शवशभन्न नहीं ंदेखता। दृश्य िगत् की दृश्यमान शवशभन्नता में िष्टा उस सवथव्यापक, अमृत-तत्त्व के ही दशथन करता है। वह शवशवधता में एकता, अनेकता में एकता और सब में एक को देखता है। वह देखता है शक सब पदार्थ उसी एक सार तत्त्व में मूल बद्ध हैं।

भावम् -सत्य । एक आत्मा ।

सवथभूतेषु सब प्राशणयों ंमें। अव्यक् से लेकर चराचर िगत् पयथन्त ।

अव्ययम् अनश्वर, अक्षय्य, अशवकारी, िो न तो स्वयं में क्षीण हो सकता है न गुणों ंमें। वह शनशवथकारी है।

शिस प्रकर आकाश अशवभाज्य है उसी प्रकार आत्मा भी अशवभाज्य है, उसके भाग नहीं ंहो सकते। सब शरीरों ंमें आत्मा वही है। सब प्राशणयों ंमें यही चेतना है। शवशवध शरीरों ंमें चेतना शवशभन्न नहीं ंहै। यह एक समम्भित, अखण्ड सार तत्त्व है िो सब शरीरों ंमें सब प्राशणयों ंमें शवद्यमान है। हे अिुथन, इस अपरोक्ष और यर्ार्थ दशथन को अिैत तत्त्व का साम्भत्वक (पशवत्र) दशथन । िानो। (शनरूपण - IV.35; VI.29; XIII. 16, 28; XVIII.30)

पृर्थक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावानृ्पर्थम्न्द्रधान् ।
वेडत्त सवेषु भूतेषु तज्ज्ञानं डवन्द्रद्ध राजसम् ।।२१ ।।

शब्दार्थ : पृर्क्त्वेन अन्योन्य पृर्क्ा के कारण, तु-शकनु्त, यत्–िो, ज्ञानम् - ज्ञान, नानाभावान् शवशवध भावों ंको, पृर्म्र्ग्धान् - शवशवध प्रकार के, बेशत–िानता है, सवेषु सब में, भूतेषु-प्राशणयों ंमें, तत्-वह, ज्ञानम् -ज्ञान, शवम्भद्ध–िानो,
रािसम् रािशसक ।

अनुवाद : शकनु्त वह ज्ञान िो समस्त प्राशणयों ंमें एक-दूसरे की पृर्क्ा के कारण उनमें अम्भस्तत्व की पृर्क्ा देखता है वह रािशसक है।

व्याख्या : ज्ञान िो देखता है-ज्ञान में कताथपन का अभाव होने के कारण उसका अशभप्राय ऐसे लेना चाशहए- ज्ञान, शिसके िारा मनुष्य देखता है।

भावान् -आत्मा अर्वा अम्भस्तत्व ।

पृर्म्र्ग्धान् - एक-दूसरे से पृर्क् । शभन्न-शभन्न शरीरों ंमें पृर्क् अम्भस्तत्व दशथन करना।

िैत दशथन कराने वाला ज्ञान रािशसक है। नानाशवध सृशष्ट को पृर्कत्व के आवरण से आवृत कर के प्रकृशत शविान् पुरुष को भी भ्रशमत करती है। रािशसक ज्ञान वश प्राणी पृर्क् पृर्क् शदखते हैं और एकत्व का दशथन भी लुप्त हो िाता है। वह ज्ञान िो सृशित पदार्ों में शवशवधता और अनेकता देखता है और उनके आकार और पररमाण के अनुरूप उनमें छोटा-ब़िा देख कर पृर्क्ा देखता है वह रािशसक ज्ञान है और कलुशषत है। रािशसक ज्ञान से युक् मनुष्य सवथत्र शवशवधता देखता है वह केवल अनेक ही देखता है।

हे अिुथन, अब मैं तुम्हें तामशसक ज्ञान के शवषय में उपदेश करूँगा शिससे तुम उसका शनराकरण कर सको ।

यतुतु कृत्स्नवदेकन्द्रस्मन्काये सक्तमैतुकम् ।
अतत्त्वार्थमवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ।।२२ ।।

बि्ार्थम: यत्ि्ो, तु शकनुतु, कृत्स्नवत् -मानो पूणथ, एकम्भस्मन् - एक (में), कायथ-कायथ में, सक्म् - आसक्, अहैतुकम् - शबना कारण (हेतु) के, अतत्वार्थवत् वास्तशवकता के ज्ञान से शून्य, अल्पम्-तुच्छ, च-और, तत्वह, तामसम् - तामशसक, उदाहृतम् -कहा गया है।

अनुवाद : शकनुतु ि्ो ज्ञान शकसी एक कायथ में समूपूणथ की भााँशत आसक् है और ि्ो हेतु रशहत, तत्त्व रशहत है और तुच्छ है वह ज्ञान तामशसक है।

व्याख्या : ि्ो ज्ञान प्रते्येक वसुतु अर्वा प्राणी के अम्भस्तत्व को स्वयं में पूणथ मानता है वह तामशसक है।

एकम्भस्मन् कायथ-शकसी एक कायथ में ि्ैसे शरीर, इसे आत्मा मान शलया ि्ाये, कोई प्रशतमा-उसे भगवान् माना ि्ाये और यह सोचें शक इससे उिपर अन्य कुछ नहीं।ं

शदगम्बर ि्ैनी मानते हैं शक आत्मा शरीर में रहने वाला है और शरीर के ही आकार का है। कुछ मानते हैं शक पत्थर का टुक्िा अर्वा काष्ठ खण्ड ही ईश्वर है। यह शकसी एक कायथ में आसक् ज्ञान कहा ि्ाता है। यह ज्ञान युम्भक्-युक् अर्वा न्याय पर आधाररत नहीं ंहै। यह ज्ञान तत्त्व दशथन से शून्य है। यह अल्प ज्ञान है क्योंशंक यह न्याय सङ्गत नहीं ंहै। यह तुच्छ पररणाम देने वाला है। यह एक सीशमत के्षेत्र तक व्याप्त है, सवथज्ञता की दृशष्ट से अत्यल्प है। यह तामशसक ज्ञान है क्योंशंक तामशसक वृशत्त वाले मनुष्यों ंमें ऐसा ज्ञान होता है ि्ो शववेक शून्य होते हैं।

डनयतं सङ्गरडितमरागिेषतः कृतम् ।
अफलपे्रेपुसुना कमम यत्तत्सान्द्रत्त्वकमुच्यते ।। २३ ।।

बि्ार्थम : शनयतम् - शनत्य, सङ्गरशहतम् - आसम्भक् रशहत, अरागिेषतः - रागि्ेष रशहत, कृतम् - शकया गया, अफलपे्रि्ुना-फल की इच्छा न करने वाले के ि्ारा, कमथ-कमथ, यत्ि्ो, तत्-वह, साम्भत्वकम् - साम्भत्त्वक, उच्यते-कहा ि्ाता है।

अनुवाद : फल की आकाङ्क्षा न रखने वाले पुरुष के ि्ारा शकया गया शनत्य कमथ ि्ो आसम्भक् रशहत है और राग-ि्ेष से रशहत है-वह साम्भत्त्वक है।

व्याख्या : शनयतम् - शनत्य । शास्त्र शवशहत कमथ। शनत्य कमथ राग अर्वा ि्ेष से पे्रेररत हो कर नहीं ंशकया ि्ाता।

यह पावन कमथ है। ऐसे पशवत्र कमथ को करने वाला अत्यन्त आह्लाद का अनुभव करता है। वह अपना कतथव्य अर्वा अन्य कोई कोई भी कायथ पूणथ मन से करता है। फल की इच्छा न रखते हुए वह स्वे्च्चछा से हरर चरणों ंमें कमथ फल समशपथत करता है। हे अिुथन, अब मैं रािशसक कमथ की प्रकृशत का वणथन करूाँगा। ध्यान पूवथक तुम श्रवण करो।

यतुतु कामेपुसुना कमम सिांकारेण वा पुनः ।
डक्रयते बहलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ।।२४ ।।

बि्र्थम : यत्-िो, तु-शकनुतु, कामेिुना-फल की इच्छा रखने वाले के िारा, कमथ-कमथ, साहंकारेण-अहंकार से युक्, वा-अर्वा, पुनः-शफर, शक्रयते-शकया िा ता है, बहुलायासम्-बहुत पररश्रम से, तत्-वह, रािसम् रािशसक, उदाहृतम् -कहा िाता है।

अनुवाद : शकनुतु िो कमथ इच्छा पूशतथ के शलए अर्वा शमथ्या अहंकार वश अर्वा कशठन पररश्रम से शकया िाता है वह रािशसक कमथ कहा िाता है।

व्याख्या : रािशसक मनुष्य शवशभन्न स्वार्थ-कमथ करता है। िनगण में वह अपने कायों का शमथ्या अहंकार शदखाता है। रिस् ही उसे वैसा करने को प्रेररत करता है। फल की इच्छा त्याग कर तो वह कमथ कर ही नहीं ंसकता।

कामेिुना, फलेिुना-रािशसक मनुष्य कमों के फल में सुख खोिता है। केवल िीवनुमुक् ही पूणथतया अहंकार-शून्य हो सकता है। वह तो स्वप्न में भी फल की इच्छा नहीं ंकर सकता क्योंशंक ब्र्ह्म साक्षात्कार कर के वह आप्तकाम हो िाता है। उसकी समस्त कामनायें पूणथ हो िाती हैं। (आप्तकामस्य का सूपृहा ?) आत्म-ज्ञान की अशग्न से शिस ज्ञानी में समस्त कामनायें सनुतुष्ट हो चुकी हैं अर्वा भस्म हो चुकी हैं, उसमें कामना कहााँ से आ सकती है?

साम्भत्त्वक कमथ करने वाला भी आत्म-ज्ञान के अभाव में अहंकार से युक् होता है। यशद ऐसा है तो रािशसक और तामशसक कमथ-कताथ तो और अशधक अहंकारी होते हैं। लौशकक भाषा में शकसी ज्ञानी पम्भण्डत के शवषय में हम कहते हैं-"यह पम्भण्डत अत्यन्त शवनम्र है, कुछ भी ग्रहण न करने वाला और अनहंकारी ब्र्ाह्मण है।"

हे अिुथन, अब तामशसक कमथ की शवशेषतायें सुनो।

अनुबन्ंधं क्षयं डिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोिादारभ्यते कमम यत्तत्तामसमुच्यते ।।२५ ।।

बि्र्थम : अनुबन्धम् - भावी पररणाम, क्षयम् -शवनाश, हाशन, शहंसाम् - शहंसा को, अनपेक्ष्य-शवचार न कर के, च-और, पौरुषम् -सामथ्यथ, मोहात् - मोह बश, आरभ्यते-शकया िाता है, कमथ-कमथ, यत्-िो, तत्-वह, तामसम् तामशसक, उच्यते-कहा िाता है।

अनुवाद : िो कमथ मोह वश भावी पररणाम, हाशन, शहंसा और अपनी सामथ्यथ का शवचार न कर के शकया िाता है वह कमथ तामशसक कहा िाता है।

व्याख्या : तामशसक कमथ दूसरों ंको हाशन पहुाँचाते हैं। तामशसक मनुष्य यह शवचार कदाशप नहीं ंकरता शक िो कमथ वह करने लगा है उसे करने की उसमें सामथ्यथ भी है अर्वा नहीं,ं वह तो मानो आाँख मूंद कर व्यर्थ के कमथ में संलग्न रहता है। शनतान्त शवचार शून्यता के कारण वह शकसी भी आभास अर्वा भावी पररणाम को न देखते हुए अर्वा कमथ की आने वाली कशठनाई को न सोचते हुए कमथ प्रारम्भ कर देता है। अपने अहंकारपूणथ ढंग से वह कायथ करता िाता है। अच्छा-बुरा और 3747 - 4(14) का भी शववेक न कर के वह आगे बढ़ता िाता है।

क्षयम् -शकसी कमथ के पररणाम स्वरूप शम्भक् और धन की हाशन ।

शहंसा-प्राशणयों ंको पीिा पहुाँचाना ।

पौरुषम् - अपनी योग्यता अर्वा कमथ समाम्भप्त की सामथ्यथ ।

अब साम्भत्त्वक कताथ के गुणों ंका श्रवण करो। अब भगवान् कताथ के भेद पर उपदेश करते हैं।

मुक्तसङ्गोऽनिंवादी धृतुयुत्सिासमन्द्रन्वतः ।
डसद्ध्यडसद्धयोडनमडवमकारः कताम सान्द्रत्त्वक उच्यते ।। २६ ।।

बि्ार्थम : मुक्सङ्गः- आसम्भक् रशहत, अनहंवादी- अहंकार रशहत, धृतुयुत्साहसमम्भितः - दृढ़ संकल्प और उत्साह से पूणथ, शसद्ध्यशसद्धयोः-सफलता और असफलता में, शनशवथकारः- शवकार रशहत (अप्रभाशवत), कताथ-कताथ, साम्भत्त्वक साम्भत्त्वक, उच्यते-कहा िाता है।

अनुवाद : िो कताथ आसम्भक् रशहत है, अहंकार शून्य है, दृढ़ संकल्प और उत्साह से युक् है और सफलता-शवफलता में उशिग्न नहीं ंहोता, सम रहता है, वह साम्भत्त्वक है।

व्याख्या : साम्भत्त्वक कताथ अशभमान त्याग कर पूणथ मन से कमथ करता है। वह समुशचत देश, काल की प्रतीक्षा करता है और शास्त्रों ंके शनदेशानुसार शवश्वय करता है शक अमुक कायथ करणीय है अर्वा नहीं।ं वह आत्म शम्भक् और उत्साह को शवकशसत करता है। वह भौशतक सुखों ंकी आकाला नहीं ंकरता। शकसी भी शुभ कायथ के शलए वह अपना िीवन उत्सगथ करने को उद्यत रहता है। सफलता में वह हशषथत नहीं ंहोता और शवफलता में दुःखी नहीं ं होता। कोई भी कायथ करते समय उसका मन सनुतुशलत रहता है। ऐसे गुणों ंसे युक् पुरुष, हे अिुथन, साम्भत्त्वक कहलाता है।

शसम्भद्ध-सफलता, कृत कमथ का पररणाम।

शनशवथकारः-अप्रभाशवत । शास्त्रों ंके आशधपत्य से पे्रररत हो कर कमथ करने वाला, फल की इच्छा से नहीं।ं

हे अिुथन, अब मैं तुम्हें रािशसक कताथ के गुण बताऊँगा।

रागी कममफलपे्रेपुसुलुब्धो डिंसिाकोऽिुडचिः ।
षिमिोकान्द्रन्वतः कताम राजसः पररकीडतमतः ।।२७ ।।

बि्ार्थम : रागी-आसक्, कमथफलपे्रिुः-कमथ फल की इच्छा रखने वाला, लुब्धः- लोभी, शहंसात्मकः - दूसरों ंको कष्ट देने वाला, अशुशचः-अपशवत्र, हषथशोकाम्भितः- हषथ और शोक में शवचशलत होने वाला, कताथ-कताथ, रािसः-रािशसक, पररकीशतथतः-कहा िाता है।

अनुवाद : राग युक् (आसक्), फल की कामना रखने वाला, लोभी, अत्याचारी, अपशवत्र, हषथ-शोक में शवचशलत होने वाला-ऐसा कताथ रािशसक कहलाता है।

व्याख्या : रािशसक कताथ समूपूणथ संसार के पदार्ों का लोभी और पापों ंका मानो आश्रय है। सांसाररक फल-प्राम्भप्त हेतु िहााँ कहीं ंभी उसकी कल्पना उ़िान भरती है वहीं ंपहुाँच कर वह अनन्यमनस्क भाव से उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। िो कुछ भी वह प्राप्त करता है वह केवल अपने और अपने पररवार तक सीशमत रखता है। कमथ फल शमल िाये तो प्रमुशदत होता है और यशद उसका प्रयास असफल हो िाये तो शोक करता है।

लुब्धः- लोभी। दूसरे के धन की तृष्णा करने वाला । योग्य पात्र को भी अपना धन न देने वाला।

शहंसात्मकः दूसरों ंको कष्ट पहुाँचाने वाला।

अशुशचः- अपशवत्र । अन्तः बाह्य दोनों ंप्रकार की शुम्भद्ध से रशहत। (काम, क्रोध, लोभ, अहंकार से रशहत होना और हृदय में दया, करुणा, क्षमा, अनासम्भक् और पे्रेम गुणों ंका शवकास करना आन्तररक शुम्भद्ध है।)

हषथ शोकाम्भितः - शप्रय (अनुकूल) की प्राम्भप्त पर हशषथत होना और अशप्रय (प्रशतकूल) की प्राम्भप्त पर शोक करना अर्वा शप्रय से शवयोग में शवचशलत होना। ऐसा व्यम्भक् सफलता में प्रसन्न होगा और शवफलता में शवलाप करेगा।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः िठो नैषृ्कडतकोऽलसः ।
डवषादी दीघमसूत्री च कताम तामस उच्यते ।।२८ ।।

शब्दार्थ : अयुक्: अम्भस्र्र, प्राकृतः-संस्कारहीन (असभ्य), स्तब्धः- हठी, शठः-कपटी, नैषृ्कशतकः-ईष्याथलु, अलसः आलसी, शवषादी- अवसाद युक् (शनराशायुक्), दीघथसूत्री-शवलम्ब से कायथ करने वाला, च-और, कताथ- कताथ, तामसः-तामशसक, उच्यते-कहा िाता है।

अनुवाद : अम्भस्र्र शचत्त वाला, संस्कार हीन, हठी, कपटी, ईष्याथलु, आलसी, अवसाद युक्, दीघथ सूत्री अर्ाथत् कतथव्य में शवलम्ब करने वाला-ऐसा कताथ तामशसक कहा िाता है।

व्याख्या : असभ्य प्रकृशत का होने के कारण वह शवशहत और शनशषद्ध कमों में शववेक बुम्भद्ध नहीं ंरखता। उसका हृदय शमथ्या अशभमान से पूणथ होता है। शकसी ज्ञानी अर्वा देवता के समक्ष वह प्रणाम नहीं ंकरेगा। वह आचार-व्यवहार में अत्यन्त हठी होता है, दण्ड की भााँशत सीधा रहेगा, झुकेगा नहीं।ं वह धोखेबािी और िुआ (द्यूत क्रीडा) आशद बुरे गुणों ंसे युक् होता है। बुरे कमथ करने को वह सदा उद्यत रहता है। कुछ शुभ कमथ करने का अवसर हो तो वह पूणथतया शनम्भिय और आलसी हो िाता है। शकन्तु बुरा करने में वह सदैव िागरूक है।

प्राकृतः - असभ्य । संस्कार शवहीन बुम्भद्ध से युक् और बालक की भााँशत व्यवहार करने वाला।

स्तब्धः - दण्ड की भााँशत न झुकने वाला। शकसी को भी प्रणाम न करने वाला।

शठः दुष्ट । अपनी वास्तशवक प्रकृशत को शछपाने वाला।

नैषृ्कशतकः- लोगों ंमें छोटी-छोटी बात पर झगडा करवाने वाला । अलसः आलसी । कतथव्य कमथ को भी न करने वाला।

दीघथसूत्री-अपने कायथ को कल तक छोडने वाला। सदा आलस्य से और युक्, कतथव्य कमथ को मास भर में भी समाप्त न करने वाला।

बुदे्धेभेदं धृतेशै्चैव गुणतन्द्रस्त्रडवधं शृणु ।
प्रोच्यमानमिषेण पृर्थके्त्वेन धनञ्जय ।।२९ ।।

बिार्थम : बुद्धेः बुम्भद्ध का, भेदम्-भेद, घृतेः दृढ़ता का, च-और, एव-ही, गुणतः गुणों ्के अनुसार, शत्रशवधम्-तीन प्रकार का, शृणु-सुनो, प्रोच्यमानम् ि◌ो कहा ि◌ा रहा है, अशेषेण-पूणथ रूप से, पृर्क्त्वेन पृर्क् रूप से, धनञ्जय- हे धनञ्जय ।

अनुवाद : हे अिुथन, अब तुम गुणों ्के अनुरूप बुम्भद्ध और धृशत के शत्रशवध स्वरूप को पूणथता से और पृर्क् पृर्क् रूप से, मुझसे सुनो।

व्याख्या : धनञ्जय-धन को ि◌ीतने वाला। अिुथन का नाम । शदम्भिय काल में धरती की चारों ्शदशाओं ्से अिुथन ने प्रचुर आध्याम्भत्मक और भौशतक सम्पदा अशिथत की री् इसशलए उसका नाम धनञ्जय पिा।

प्रवृडत्तं च डनवृडत्तं चकायामकाये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेडत्त बुन्द्रद्धःसा पार्थम सान्द्रत्त्वकी ।।३० ।।

बिार्थम : प्रवृशत्तम् -कमथ, बन्धन के हेतु कमथ मागथ, च-और, शनवृशत्तम् -मोक्ष का हेतु संन्यास मागथ, च-और, कायाथकाये-कतथव्य (करने योग्य) और अकतथव्य (न करने योग्य) कमथ में, भयाभये-भय और अभय में, बन्धम् बन्धन को, मोक्षम् मोक्ष, च-और, या-ि◌ो, वेशत्त - ि◌ानती है, बुम्भद्धः - बुम्भद्ध, सा-वह, पार्थ- हे पार्थ, साम्भत्त्वकी -साम्भत्त्वक है।
अनुवाद : ि◌ो बुम्भद्ध प्रवृशत्त और शनवृशत्त के पर् को, कतथव्य और अकतथव्य कमों को, भय और अभय तर्ा बन्धन और मोक्ष को ि◌ानती है, हे अिुथन वह साम्भत्त्वक बुम्भद्ध है।

व्याख्या : ज्ञान की शत्रशवध प्रकृशत श्लोक २२ में बताई ि◌ा चुकी है। अब बुम्भद्ध की शत्रशवध प्रकृशत का वणथन शकया ि◌ाता है। ज्ञान, बुम्भद्ध से पृर्क् है।

प्रवृशत्त-कमथ । बन्धन का कारण । कमथ का मागथ।

शनवृशत्त-अकमथ । मोक्ष का कारण । संन्यास मागथ ।

कायाथकायथ-देश-काल शवशेष में क्या करना चाशहए और क्या नहीं ्करना चाशहए, इसका ज्ञान साम्भत्त्वक बुम्भद्ध में होता है। दृष्ट अर्वा अदृष्ट पररणाम देने वाले कमों का भी इसे ज्ञान होता है। शास्त्र सम्मत और शास्त्र-शनशषद्ध कमों का ज्ञान भी साम्भत्त्वक बुम्भद्ध में रहता है। शास्त्र ि◌ारा शनशदथष्ट ि◌ीवन के शनत्य के शक्रया कलापों ्को करने वाले व्यम्भक् का यह साम्भत्वक बुम्भद्ध मागथदशथन करती है।

भयाभये-भय और शनभथयता । भय का और अभय का दृष्ट अर्वा अदृष्ट कारण।

बन्धमोक्षम् - बन्धन और मोक्ष कारणों ्सशहत ।

ज्ञान बुम्भद्ध की एक वृशत्त (अवस्र्ा शवशेष) है ि◌ब शक बुम्भद्ध कमथ में संलग्न होती है अर्वा अवस्र्ा के शवकार को प्राप्त होती है। धृशत भी बुम्भद्ध की एक शवशेष वृशत्त (अवस्र्ा) है। (शनरूपण - XVIII.20)

यया धममधमं च कायं चाकायमेव च ।
अयर्थावत्प्रजानाडत बुन्द्रद्धः सा पार्थम राजसी ।।३१ ।।

बि्ार्थम : यया-शिसके िा रा, धमथम् - धमथ, अधमथम् - अधमथ, च-और, कायथम् -कतथव्य कमथ, च-और, अकायथम् -
अकतथव्य कमथ, एव-ही, च-और, अयधावत् - अयर्ार्थ रूप से, प्रिानाशति◌ानती है, बुम्भद्धः बुम्भद्ध, सा-वह, पार्थ-हे पार्थ, रािसी -राशसक है।
अनुवाद : हे अि◌ुथन, िो बुम्भद्ध धमथ और अधमथ को तर्ा करने योग्य कमथ और न करने योग्य कमथ को यर्ार्थ रूप से नहीं ◌ंिानती अर्ाथत् इनके भेद को नहीं ◌ंिानती वह बुम्भद्ध राशसक है।

व्याख्या : धमथ शब्द के समकक्ष आंग्ल भाषा में कोई शब्द नहीं ◌ंशमलता। कतथव्य, सदाचार, गुण, न्याय आशद धमथ शब्द के अशभप्राय को पूणथ रूप से स्पष्ट नहीं ◌ंकरते। वह िो तुम्हें अपने लक्ष्य की ओर अर्ाथत् ब्र्ह्म ज्ञान अर्वा आत्म-ज्ञान के शलए प्रेेररत करे वह धमथ है। अशवद्या के गभीरगतथ (गड्ढे) में नीचे शगराने वाला अर्वा अध: पतन कराने वाला अधमथ है। शास्त्रों ◌ंमें शनशदथष्ट उपदेश धमथ हैं। शास्त्रों ◌ंमें प्रशतशषद्ध संदेश अधमथ है। राशसक बुम्भद्ध धमथ और अधमथ अर्वा यर्ार्थ-अयर्ार्थ कमथ का भेद करने में असमर्थ होती है।

अयर्ावत् अनुशचत ढंग से । सविो ज्ञान के िारा, शविान् के िारा अर्वा सवथतो भाव से शनणीत भाव के शवपरीत भाव को अयर्ावत् कहते हैं।

अधमम धममडमडत या मन्यते तमसाऽऽवृता ।
सवामर्थामन्द्रन्वपरीतांश्च बुन्द्रद्धः सा पार्थम तामसी ।। ३२ ।।

बि्ार्थम : अधमथम्-अधमथ, धमथम्-धमथ, इशत-इस प्रकार, याि◌ो, मन्यते मानता है, तमसा-अन्धकार से, आवृता-आच्छाशदत, सवाथर्ाथन्-समस्त वसुतुओं ◌ंको, शवपरीतान् शवपरीत, च-और, बुम्भद्धः बुम्भद्ध, सा-वह, पार्थ-हे पार्थ, तामसीतामशसक (तमोगुण से युक्) ।

अनुवाद : हे अि◌ुथन ! तमोगुण से आवृत िो बुम्भद्ध अधमथ को धमथ मानती है और अन्य सब पदार्ों को भी शवपरीत ही देखती है वह तामशसक है।

व्याख्या : वह बुम्भद्ध िो धाशमथक कृत्य को बुराई समझती है, यर्ार्थ को शमथ्या और प्रते्येक यत्न शवपरीत शदशा में करती है, गुण को अवगुण और शास्त्र शवशहत सत्य को अनुशचत कहती है वह तामशसक है। यह प्रते्येक वसुतु को शवपरीत भाव में ग्रहण करती है।

इस प्रकार, हे अि◌ुथन, मैंने बुम्भद्ध के तीन प्रकार तुम्हें बताये हैं। अब धृशत की शत्रशवध चचाथ करते हैं।

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियडक्रयाः ।
योगेनाव्यडभचाररर्णा धृडतः सा पार्थम सान्द्रत्त्वकी ।।३३ ।।

बि्ार्थम : धृत्या-धृशत (संकल्प) िारा, यया-शिस (के िारा), धारयते-धारण करता है, मनः-मन, प्राणेम्भियशक्रयाः - प्राण और इम्भियों ◌ंकी शक्रयाओं ◌ंको, योगेन-योग के िारा, अव्यशभचाररण्या-अशवचल, धृशतः- धृशत, सा-वह, पार्थ-हे पार्थ (अि◌ुथन), साम्भत्त्वकी-साम्भत्त्वक है।

अनुवाद : शिस अव्यशभचाररणी अर्ाथत् अचल, म्भस्र्र धृशत के िारा समाशध योग से मन प्राण और इम्भियों ◌ंकी समस्त चेष्टायें संयत की िाती हैं वह धृशत, हे पार्थ, साम्भत्त्वक है।

व्याख्या : मन में िब धारणा िाग्रत की िाती है तो मन, प्राण और इम्भियों ंके शक्रया कलाप शनयम्भन्त्रत हो िाते हैं। इम्भियााँ मन में संहत हो िाती हैं। प्राण और अपान सुषुफणा नाड़ी में चलने लगते हैं।

योग-समाशध अर्वा मन की एकाग्रता । केवल धारणा के िारा तुम मन प्राण और इम्भियों ंको वशीभूत नहीं ंकर सकते। मन की एकाग्रता के सार् संयुक् धृशत (संकल्प) के िारा ही तुम इन्हें शनयम्भन्त्रत कर सकते हो।

अशवचल धृशत के िारा मन, प्राण और इम्भियों ंका शनग्रह हो िाये तो वे बाह्य शवषयों ंकी ओर उन्मुख नहीं ंहो सकते, कोई अनुशचत कायथ नहीं ंकर सकते, शास्त्र शवरुद्ध पर् का अनुसरण नहीं ंकर सकते, वे अपने-अपने मूल कारणों ं में शवलीन हो िायेंगे, उनकी बशहमुथखी वृशत्तयााँ सवथर्ा शनग्रहीत हो िायेंगी। यह धृशत कोई दबाव अर्वा प्रशतरोध नहीं ं है प्रत्युत् एक शववेकपूणथ शवलय अर्वा आन्तररक रूपान्तरण है।

यया तु धममकामार्थान् धृत्या धारयतेऽजुमन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृडतः सा पार्थम राजसी ।।३४ ।।

बि्ार्थम : यया-शिसके िारा, तु-शकन्तु, धमथकामार्ान् - धमथ, काम और अर्ों को, धृत्या-धृशत के िारा, धारयते - धारण करता है, अिुथन-हे अिुथन, प्रसङ्गेन-आसम्भक् के कारण, फलाकाङ्क्षी-फल का इच्छुक, धृशतः- धृशत, सा-वह, पार्थ-हे पार्थ, रािसी -रािशसक ।

अनुवाद : शकन्तु, हे अिुथन, आसम्भक्वश और फल की इच्छा से युक् हो कर िब व्यम्भक् धमथ, काम और धन-अशिथत करने में संलग्न होता है-उसकी वह धृशत रािशसक कही िाती है।

व्याख्या : रािशसक धृशत धारण शकये हुए मनुष्य सोचता है शक वह िीवन के शत्रशवध लक्ष्य तो प्राप्त कर ही रहा है और ऐसा सोच कर वह उनमें आसक् हो िाता है। वह अपने कृत्यों ंका पररणाम चाहता है। वह धमथ, काम और अर्थ के शलए संघषथ करता है। ऐसे मनुष्य की धृशत रािशसक अशभशहत है। हे अिुथन, अब तीसरे प्रकार की धृशत तामसी धृशत के शवषय में सुनो।

यया स्वप्नं भयं शोकं डवषादं मदमेव च ।
न डवमुञ्चडत दुमेधा धृडतः सा पार्थम तामसी ।। ३५ ।।

बि्ार्थम : यया-शिसके िारा, स्वप्नम् -शनिा, भयम् -भय, शोकम् - शोक, शवषादम् अवसाद, शनराशा, मदम्-उन्मत्तता, एव-ही, च-और, ने-नहीं,ं शवमुञ्चशत-त्यागता, दुमेधा मूखथ, धृशतः- धृशत, सा-वह, पार्थ-हे पार्थ, तामसी-तामशसक ।

अनुवाद : हे अिुथन, शिस धृशत के िारा अशववेकी मनुष्य, शनिा, भय, शोक, अवसाद और मद का त्याग नहीं ं करता, वह धृशत तामशसक है।

व्याख्या : अशवद्या रूपी अन्धकार का मूशतथमान् मनुष्य, प्रत्येक सम्भव दुगुथण से शनशमथत है। वह अत्यन्त तंशिल और पापी है। वह असामान्य रूप से ही शनिा प्रसक् रहता है। वह शवषय सेवन को ही उपयुक् मानता है। अशुभ कमों के कारण वह दुःख का भोगी भी बनता है। अत्यन्त आत्माशभमानी (देह में आसक्) होने के कारण वह सदा भयग्रस्त रहता है। सन्तुष्ट तो कभी वह होता ही नहीं।ं वह कामी और आत्म प्रवंचक होता है। वह आचार-व्यवहार नहीं ंिानता। वह क्रोधी और उद्धत (उन्मत्त) होता है। वह इम्भिय-शवषयों ंमें सुख का अनुभव करता है।

सुखं न्द्रत्वदानीं ंडत्रडवधं शृणु मे भरतषमभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखातं च डनगच्छडत ।। ३६ ।।

बि्ार्थम : सुखम् -सुख, तु-शनशश्चत रूप से, इदानीम् - अब, शत्रशवधम्-तीन प्रकार का, शृणु सुनो, मे—मुझ से, भरतषथभ - हे भरत श्ेरेष्ठ, अभ्यासात् अभ्यास से, रमते-सुखी होता है, यत्र-शिसमें, दुःखान्तम् दुःख का अन्त, च-और, शनगच्छशत -प्राप्त करता है।

अनुवाद : हे भरत वंशयों ंमें श्ेरेष्ठ अिुथन, अब तुम मुझ से तीन प्रकार के सुख को सुनो (सुनने के शलए शचत्त को एकाग्र करो)। शिस सुख में मनुष्य अभ्यास से अर्वा पुनः पुनः उसकी आवृशत्त करने पर रमता है और शनशश्चत रूपेण वह दुःख की शनवृशत्त करने वाला है।

व्याख्या : आत्मा िारा आनन्द की अल्पानुभूशत सब दुःखों ंको शवराम दे सकती है। यह सुख अर्वा आनन्द भी तीन प्रकार का है। हे अिुथन, अब मैं उन के शवषय में पृर्क् रूप से उपदेश करूाँगा। (शनरूपण- VI.20.30)

यत्तदग्ेरे डवषडमव पररणामेऽमृतोपमम् ।
ततुसुखं सान्द्रत्त्वकं प्रोक्तमिाबुन्द्रद्धप्रसादजम् ।। ३७ ।।

बि्ार्थम : यत्–िो, तत्वह, अग्ेरे आरम्भ में, शवषम् - शवष, इव-समान, पररणामे अन्त में, अमृतोपमम्-अमृत के समान, तत्-वह, सुखम् -सुख, साम्भत्त्वकम् -साम्भत्त्वक, प्रोक्म् -कहा गया आत्मबुम्भद्धप्रसादिम् - आत्म बुम्भद्ध के प्रसाद (शुद्ध मन) से उत्पन्न । है,

अनुवाद : आरम्भ में शवष के समान और पररणाम (अन्त) में अमृत तुल्य-ऐसे सुख को शविानों ंने साम्भत्त्वक घोशषत शकया है क्योंशक यह आत्म बुम्भद्ध के प्रसाद रूप शनमथल मन से उत्पन्न हुआ है।

व्याख्या : अग्ेरे शवषशमव-आरम्भ में यह अत्यन्त श्रम साध्य होता है क्योंशक कठोर साधना और कशठन तपश्चयाथ के शलए शवश्राम और शवषय-वासनाओं ंका त्याग करना पि़ता है। यम, शनयम, तपस् एवम् अन्य ितों ंका अभ्यास करने के शलए साधक को अत्यन्त कशठन परीक्षा से साक्षात्कार करना पि़ता है। उसे इम्भिय-शवषयों ंसे वैराग्य और अनासम्भक् का शवकास करना होता है। प्रारम्भ में यह अत्यन्त कष्ट साध्य प्रतीत होता है। एकाग्रता और ध्यान का अभ्यास भी प्रारम्भ में दुःखद प्रतीत होता है। इम्भियों ंका वशीकरण अतीव म्भक्लष्ट है। वरस्वरा औषशध (Nux Vomica) प्रारम्भ में अशत कटु लगती है। इसका शमश्रण लेने पर मनुष्य पहले तो बहुत पीि़ा अनुभव करता है शकनुतु अन्त में उसे सुखद् अनुभूशत होती है िब वह शम्भक् प्राप्त करता है, उसकी पाचन शम्भक् बढ़ती है और मन्दाशग्न ठीक हो िाती है। एवंशवध, साधक अमरता का अमृतपान अन्त में करता है, सविो ज्ञान प्राम्भप्त करता है, उसका अन्तःकरण पूणथ सन्तोष को प्राप्त करता है और वह परम शाम्भन्त और शाश्वत आनन्द में रहने लगता है।

प्रोक्म् - शविानों ंिारा कशर्त ।

आत्मबुम्भद्धप्रसादिम् – (अपनी ही) आत्म बुम्भद्ध की शनमथलता से उत्पन्न अर्वा ब्ह्म के अपरोक्ष ज्ञान से उद्भूत। वह ब्ह्म िो अशवनाशी है, स्वयं प्रकाश है, शाश्वत है, परमात्मा है और सवथस्व है। उस सविो आत्म तत्त्व से तादात्म्यता स्ाशपत कर के िीवात्मा साम्भत्त्वक सुख का आनन्द लेता है।

इस प्रकार से उद्भूत सुख साम्भत्त्वक है। (शनरूपण - VI.1.2.)

डवषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रे ऽमृतोपमम् ।
पररणामे डवषडमव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ।।३८ ।।

बि्ार्थम : शवषयेम्भियसंयोगात् - इम्भियों ंका शवषयों ंके सार् संयोग, यत्–ि, तत्वह, अग्रे-आरम्भ में, अमृतोपमम् - अमृत सदृश, पररणामे-अन्त में, शवषम् - शवष, इव-समान, तत्-वह, सुखम् -सुख, रािसम् रािशसक, स्मृतम् -कहा गया है।

अनुवाद : इम्भियों ंका शवषयों ंके सार् संसगथ होने से िो सुख शमलता है, वह प्रर्म तो अमृत तुल्य प्रतीत होता है शकन्तु अन्त में शवष तुल्य होता है। ऐसा सुख रािशसक कहा है।

व्याख्या : इम्भिय सुख दुःख, भय और पाप से शमशश्रत होता है। राई समान इम्भिय सुख अन्त में पवथत समान दुःख में पररणत हो िाता है। ऐम्भिक सुख में आसक् रहने वाले व्यम्भक् को सार् ही सार् दुःख का सामना भी करना पि़ता है। उसे प्राप्त शवषयों ंके शवनाश का भय सताता है क्यों ंशक वह उनमें आसक् है। आसम्भक् मृत्यु है। यह व्यम्भक् को पुनः पुनः इस मत्यथ लोक में ले आती है। आसम्भक् और भय इम्भिय शवषयों ंके सहचर हैं। धन प्राम्भप्त हेतु उसे संघषथ करना पि़ता है। धन से वह सुख के शवषयों ंका क्रय कर सकता है। संघषथ की अवशध में वह अनेक पाप कमथ करता है शिसका पररणाम उसे नरक में भोगना पि़ेगा। अगला िन्म अत्यन्त शनम्न श्रेणी में होगा। धन के शलए वह शमथ्या भाषण और कपट करता है। इम्भियााँ भी वासना युक् हो कर शम्भक् हास कर बैठती हैं। व्यम्भक् अपनी शम्भक्, बल, धन, ऊिाथ का शवनाश कर लेता है। उसकी बुम्भद्ध क्षीण, दुबथल, मूढ़, अपशवत्र और शवपरीत हो िाती है। वह धन और शववेक खो देता है। (शनरूपण - V.22)

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
डनद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ।।३९ ।।

बि्ार्थम : यत्–ि, अग्रे-आरम्भ में, च-और, अनुबन्धे-पररणाम में, च-और, सुखम् -सुख, मोहनम् - मोशहत करने वाला, आत्मनः-अपना, शनिालस्यप्रमादोत्थम् -शनिा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न, तत्-वह, तामसम् - तामशसक, उदाहृतम् -कहलाता है।

अनुवाद : िो सुख प्रारम्भ में और अन्त में भी आत्मा को मोशहत करने वाला होता है और शनिा, आलस्य तर्ा प्रमाद से उत्पन्न होता है वह तामशसक कहा िाता है।

व्याख्या : अनुबन्धे-पररणाम में, उपभोग के उपरान्त । बुरी आदतों ंसे प्राप्त होने वाला सुख िैसे मशदरापान और अभक्ष्य पदार्ों का सेवन-ये आत्मा को मोह में िालने वाले होते हैं। मनुष्य अपने सत् पर् से च्युत हो िाता है शिस पर् से उसे चलना चाशहए र्ा । शनस्सन्देह ऐसा सुख तामशसक प्रकृशत का कहा िाता है।

न तदन्द्रस्त पृडर्थव्यां वा डदडव देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृडतजैमुमक्तं यदेडभः स्यान्द्रत्त्रडभगुमणैः ||४० ।।

बि्ार्थम : न-नहीं,ं तत्-वह, अम्भस्त-है, पृशर्व्याम् - पृशर्वी पर, वा-अर्वा, शदशवदेव लोक में, देवेषु-देवताओं ंमें, वा अर्वा, पुनः पुनः, सत्त्वम् - प्राणी, प्रकृशतिैः -प्रकृशत से उत्पन्न, मुक्म्-मुक्, यत्–ि, एशभः- इनसे, स्यात् -हो, शत्रशभः-तीन से, गुणैः- गुणों ंसे।

अनुवाद : भूलोक में अर्वा स्वगथ लोक में देवताओं ंमें भी ऐसा कोई प्राणी अर्वा वसुतु नहीं ंहै िो प्रकृशत के इन तीन गुणों ंसे मुक् हो।

व्याख्या : वस्त्र में धागे की भााँशत गुण प्रत्येक वसुतु में ताने-बाने की भााँशत शवद्यमान हैं, ग्रशर्त हैं।

मनुष्यों ंका भूलोक हो अर्वा देवों ंका द्युलोक हो-इह लोक और परलोक में कुछ भी ऐसा नहीं ंिो प्रकृशत के इन तीन गुणों ंसे बंधा हुआ न हो। धागे के शबना क्या वस्त्र के अम्भस्तत्व की कल्पना हो सकती है? अम्भस्र् और रुशधर के शबना क्या मानव संरचना की कल्पना हो सकती है? पत्थर के शबना क्या कोई पवथत हो सकता है? इसी प्रकार समूपूणथ ब्ह्माण्ड में कोई भी प्राणी ऐसा नहीं ंशिसकी रचना में तीन गुण प्रवेश नहीं ंपाते। समूपूणथ सृशष्ट इन्ीं ंतीन गुणों ंकी कारीगरी है। इन गुणों ंने शत्रदेव (ब्ह्मा, शवषुणु, महेश) को प्रकट शकया। इस मत्यथ लोक में कताथ, कमथ और फल का तै्रगुण्य (तै्रशवध्य) इन तीन गुणों ंसे उद्भूत है। वे ही चार वणाथश्रमों ंके शवशवध कमों का कारण हैं। इस संसार की उपमा अध्याय (XV.1) में पीपल के वृक्ष से दी गई है। इस संसार की रचना तीन गुणों ंसे हुई है और गशत अशवद्या की शम्भक् से हो रही है।

कमथ, कमथ का उपादान कारण और फल-इन तीन से संसार गशतशील है और यह चक्र अनाशदकाल से घूम रहा है। केवल मुक् संन्यासी ही, शिसने आत्म साक्षात्कार कर शलया हो, इस चक्र की गशत को शवराम देता है, कारण और कायथ से अतीत िा कर कमथ बन्धन की शंृखला को तिो़ देता है।

शवरम्भक् की अटूट खड्ग से संसार के इस रहस्यमय वृक्ष का उनूमूलन कर िालो। तीन गुणों ंसे अतीत गमन कर के अपनी मूल शदव्य प्रकृशत सत्-शचत्-आनन्द में शवश्राम करो।

ब्राह्मणक्षडत्रयडविां िूद्राणां च परंतप ।
कमामडण प्रडवभक्ताडन स्वभावप्रभवैगुमणैः ।।४१ ।।

बि्ार्थम : ब्ाह्मणक्षशत्रयशवशाम् - ब्ाह्मण, क्षशत्रय और वैश्यों ंके, शिूाणाम् - शिूों ंके, च-और, परंतप - हे परंतप, कमाथशण कतथव्य कमथ, प्रशवभक्ाशन शवभाशित हैं, स्वभावप्रभवैः- उनकी अपनी प्रकृशत से उत्पन्न, गुणैः गुणों ंसे।

अनुवाद : हे अिुथन, ब्ाह्मण, क्षशत्रय, वैश्य और शिूों ंके कमथ भी स्वभाव से उत्पन्न गुणों ंके अनुरूप ही शवभक् शकये गये हैं।

व्याख्या : ब्ाह्मण, क्षशत्रय और वैश्यों ंको वेद-पाठ का अशधकार प्राप्त है। शकनुतु हे अिुथन, चतुर्थ श्ेरेणी के लोगों ंको यह अशधकार प्राप्त नहीं ंहै क्यों ंशक उनका कतथव्य प्रर्म तीन श्ेरेणी के लोगों ंकी सेवा करना है। उन्ें वेद पढ़ने अर्वा यज्ञ करने का अशधकार नहीं ंहै। मानव समुदाय चार िाशतयों ंमें शवभक् है और प्रत्येक मानव के िीवन की चार अवस्ाायें हैं िो उनके गुणों ंऔर शवकास-स्तर पर आधाररत हैं। अब मैं गुणों ंके अनुरूप इन िाशतयों ंके शवशेष कतथव्यों ंका उपदेश करूाँगा शिससे वे स्वयं को िन्म-मृतुयु के बन्धन से मुक् कर के आत्म-ज्ञान का आलोक प्राप्त कर सकें। शंकंशचत् तमस् शमशश्रत रिोगुण से वैश्य िाशत का शवकास होता है, शिनका प्रमुख कमथ व्यापार है। रिस् शमशश्रत तमोगुण से शिू िाशत का उद्भव होता है।

तीन गुणों ंपर आधाररत एक मनुष्य िाशत चार िाशतयों ंमें शवभक् है। प्रकृशत से उत्पन्न गुणों ंके आधार पर उनके कमथ शनशश्चत शकये िाते हैं। प्रकृशत (स्वभाव) ईश्वर की प्रकृशत (माया) है िो सत्त्व, रिस् और तमस्, तीन गुणों ंसे युक् है।

ब्ा्ह्मण की प्रकृशत साम्भत्वक होती है। अतः वह शान्त और सौम्य रहता है। क्षशत्रय की प्रकृशत सत्त्व शमशश्रत रिस् है। उसमें रिोगुण की अपेक्षा सत्त्व गौण होता है, रिस् प्रधान होता है। इसशलए वह प्रभुत्व का अशधकार रखता है। वैश्य की प्रकृशत रिस् और तमस् है। इसमें तमस् गौण और रिस् प्रधान है। इसीशलए वह धन अशिथत करने के शलए शवशवध प्रकार की प्रशक्रयायें करता है। शूि की प्रकृशत तमस् है, उसमें रिस् गौण है। वह मूढ़ होता है।

कमथ-वह शक्रया िो पूवथ संस्कार और इच्छा के अनुरूप अशभव्यक् होती है। शबना कारण के गुणों ंकी अशभव्यम्भक् नहीं ंहो सकती। प्राशणयों ंमें स्वभाव उनकी वृशत्त, संस्कार और वासना के कारण है। पूवथ िन्मों ंमें उन्होंने यह प्राप्त शकया र्ा। वतथमान िन्म में यह स्वयं को अशभव्यक् करता है और प्रभाव उत्पन्न करता है। यह प्रकृशत गुणों ंका स्रोत है। प्रत्येक मनुष्य अर्वा नारी अपने स्वभाव से उत्पन्न है। मनुष्य की स्वाभाशवक वृशत्तयों ंके अनुरूप गुण उसे अपने स्वाभाशवक कायथ (पररणाम) के रूप में उसे अपना कतथव्य कमथ करने को प्रेररत करते हैं। व्यम्भक् शवशेष के गुणों ंके अनुरूप ही चारों ंिाशतयों ंमें कमथ शवभाशित शकये गये हैं। (शनरूपण - IV.13)

मिो दमस्तपः िौचं क्षान्द्रतराजमवमेव च ।
ज्ञानं डवज्ञानमान्द्रस्तक्यं ब्रह्मकमम स्वभावजम् ।।४२ ।।

ब्िार्थम : शमः -प्रशाम्भन्त, दमः - आत्म-शनग्रह, तपः-तपस्या, शौचम् - पशवत्रता, क्षाम्भन्तः-क्षमा, आिथवम् -सरलता, एव-ही, चऔर, ज्ञानम् - ज्ञान, शवज्ञानम् - शवज्ञान, आम्भस्तक्यम् - ब्र्ह्म में श्रद्धा, ब्र्ह्मकमथ-ब्ा्ह्मण के कमथ हैं, स्वभाविम् -स्वभाव िन्य (अपने स्वभाव से उत्पन्न) ।

अनुवाद : शम, दम, तप, शौच, क्षमा, आिथवता, ज्ञान, शवज्ञान, और परमात्मा के अम्भस्तत्व में शवश्वास- ये सब ब्ा्ह्मण के स्वाभाशवक कमथ हैं।

व्याख्या : शम मन का शनग्रह है। दम इम्भिय-शनग्रह है। शम और दम की XVII.2 में व्याख्या हो चुकी है। तीन प्रकार का तप भी XVII.14.15.16 में बताया िा चुका है।

आम्भस्तक्यम् गुरु के वचनों ंमें शवश्वास, शास्त्रों ंके उपदेश में श्रद्धा, परमात्मा की सत्ता में शवश्वास, इस िीवन के उपरान्त भी सत्ता में शवश्वास और सवोपरर आत्म तत्त्व में शवश्वास आम्भस्तक्य है।

मन आत्मा में शवलीन होता है और शाम्भन्त देता है। आत्म-शनयंत्रण शाम्भन्त में सहायक है। शास्त्रों ंके उपदेश का अनुपालन कर के तुम शाम्भन्त और आध्याम्भत्मक उन्नशत प्राप्त कर सकते हो। अशधक तकथ शवतकथ नहीं ंकरना चाशहए। शशक्षा के प्रशत सम्मान का भाव और श्रद्धा-शवश्वास होना चाशहए।

शिस प्रकार चन्दन का वृक्ष अपनी ही मधुर सुगन्ध से सुगम्भन्धत है, चम्पक वृक्ष अपने ही सुन्दर शप्रय पुष्पों ं से शवभूशषत है उसी प्रकार एक ब्ा्ह्मण भी इन नौ गुणों ंसे शवभूशषत है िो उससे पृर्क् नहीं ंशकये िा सकते।

हे अिुथन, अब क्षशत्रय के कतथव्य सुनो :

िौयिम तेजो धृडतदामक्ष्यं युदे्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कमम स्वभावजम् ।।४३ ।।

बि्ार्थम : शौयथम् - शूरवीरता, तिः-ति, धृशतः दृढ़ता, संकल्प, धारणा, दाक्ष्यम् - चुतराई, युदे्धे-युद्ध में, च-और, अशप-भी, अपलायनम् न भागना, दानम् दान, ईश्वरभावः नेतृत्व, प्रभुत्व (पीठ न शदखाना), च-और, क्षात्रम् - क्षशत्रयों ं का, कमथ-कमथ, स्वभाविम् स्वाभाशवक ।

अनुवाद : शूरवीरता, ति, धारणा, दक्षता, युद्ध में पीठ न शदखाना, दान और नेतृत्व-ये क्षशत्रय के स्वाभाशवक कमथ हैं।

क्षशत्रय (योद्धा अर्वा रि पुरुष) का प्रर्म कतथव्य है शक वह शौयथगुण और पौरुष से युक् हो । शूरवीरता वह उतृकृष्ट गुण है शिसके िारा मनुष्य स्वभावतः ही बलशाली, सुशवक्रान्त और साहसी होता है। अत्यशधक शवपदा काल में भी उसका मन शंकंशचदशप शवचशलत नहीं ंहोता। शकसी भी प्रकार की प्रशतकूल पररम्भस्र्शत में भी क्षशत्रय अशिग रहेगा। शवपरीत दशाओं ंमें भी अवसाद युक् अर्वा शोकाकुल नहीं ंहोगा। यह कौशल है, दक्षता है शिसके िारा शवचारणाशम्भक् शवपरीत पररम्भस्र्शतयों ंमें भी मागथ चयन कर के सहि ही लक्ष्य की प्राम्भप्त कर लेती है। यह धृशत है, धारणा है, साहस है।

दक्ष्य-कुशलता । अनेक कायों में िहााँ कुशाग्र अवधारणा की आवश्यकता हो वहााँ वह सद्यः उशचत शनणथय लेने में समर्थ होता है। ऐसे कतथव्य कमथ िो अनायास ही समक्ष आ पि़ते हैं उन्ें शबना शकसी प्रकार के भ्रम अर्वा व्याकुलता से पूणथ करना दक्षता है।

सूरिमुखी का पुष्प सदा सूयथ की ओर अपना मुख कर लेता है, ऐसे ही क्षशत्रय अपने शतुरु का सामना करता है।

युद्ध क्ेषेत्र में वह कभी पीठ नहीं ंशदखाता। वह सवथर्ा शनभथय है। शिस प्रकार वृक्ष अपने फूल और फल इसकी इच्छा करने वाले को बहुलता में प्रदान करता है, चमेली अपनी मधुर सुगन्ध सब शदशाओं ंमें प्रकीणथ करती है इसी प्रकार क्षशत्रय, मांगने वाले को मुक्हस्त से दान करता है। उसका दान असीम है।

नेतृत्व-एक क्षशत्रय रािा अपना शवश्वस्त रक्षण देने के शवश्वास से प्रिा पर राज्य करता है। शासन शिन पर शकया िाना चाशहए उन पर शासन करता है और अधमी तर्ा दुराचारी िनों ंको दण्ड देने के शलए धमथ का 'दण्ड' धारण करता है।

कृडषगौरक्ष्यवाडणज्ंयं वैश्यकमम स्वभावजम् ।
पररचयामिकं कमम िूद्रस्याडप स्वभावजम् ।।४४ ।।

बि्ार्थम : कृशषगौरक्ष्यवाशणज्यम् -कृशष, गौरक्षा और वाशणज्य, वैश्यकमथ- वैश्य के कमथ, स्वभाविम् -स्वाभाशवक, पररचयाथत्मकम् -सेवा रूप, कमथ-कमथ, शूिस्य-शूि के, अशप-भी, स्वभाविम् -स्वाभाशवक ।

अनुवाद : कृशष, गौरक्षा और वाशणज्य वैश्य के स्वाभाशवक कमथ हैं और सेवा आशद पररचयाथत्मक कमथ शूि के स्वाभाशवक कमथ हैं।

व्याख्या : मनुष्य िब अपने कतथव्य कमथ अपने वणथ और िीवन की अवस्र्ा के अनुसार समुशचत प्रकार से करता है, उसका हृदय पररषूकृत हो िाता है और वह स्वगथ का अशधकारी हो िाता है। अपस्तम्भ धमथसूत्र में कहा गया है- "शवशभन्न वगों और अवस्र्ाओं ंवाले मनुष्य मृतूयूपरान्त कमों का पररणाम प्राप्त करते हैं और अवशेष कमों के प्रभाव वश श्ेरेष्ठतर देश, वणथ, पररवार में िन्म लेते हैं िो अपेक्षाकृत अशधक श्ेरेष्ठ धमथ, िीवन की अवशध, शशक्षा,

चररत्र, सम्पशत्त, सुख और मेधा से युक् होता है' '(२,२,२,३) । िीवन की चार अवस्र्ाओं ंऔर वणथ व्यवस्र्ा के अनुरूप मनुष्य िारा शकये गये कमों और लोकों ंका वणथन पुराणों ंमें भी शवस्तार से शमलता है।

स्वे स्वे कममण्र्भरतः संडसन्द्रंद्ंध लभते नरः ।
स्वकममडनरतः डसन्द्रंद्ंध यर्था डवन्दडत तच्छृणु ।। ४५ ।।

बि्र्थम : स्वे स्वे-अपने अपने, कमथशण-कमथ में, अशभरतः संलग्न, को, लभते-प्राप्त करता है, नरः मनुष्य, संशसम्भद्धम् - सफलता स्वकमथशनरतः - अपने कमथ में संलग्न, शसम्भद्धम् - शसम्भद्ध को, यर्ा–िसे, शवन्दशत-प्राप्त करता है, तत्-वह, शृणु-सुनो।

अनुवाद : अपने अपने कमथ में शनरत प्रत्येक मनुष्य शसम्भद्ध प्राप्त करता है। वह अशधकाररक कमथ शनरत हो कर कैसे शसम्भद्ध प्राप्त करता है, वह सुनो।

व्याख्या : यह श्रम का शवभागीकरण है शिसमें प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रकृशत और वणथ के अनुरूप कायथरत है। शवशहत कतथव्य तुम्हारा एकमात्र अशधकार है और परमात्मा के प्रशत सविो सेवा यही है शक अपने कतथव्य का अनन्य मन से पालन करो और समस्त कमथ परम देव को समशपथत करते हुए फल की आकाङ्क्षा मत करो। शनशश्चत रूप से तुम आध्याम्भत्मकता में प्रगशत करोगे । कतथव्य कमथ पूणथ करने से तुम्हारा अन्तःकरण पररषृकृत हो िायेगा और तुम आत्म-ज्ञान के अशधकारी बन िाओगे।

स्वे स्वे कमथशण-अपने वणथ और गुण (प्रकृशत) के अनुरूप प्रत्येक व्यम्भक् अपने अपने कमथ में तत्पर। केवल कमथ करने से मोक्ष पाना तो असम्भव है शकन्तु कमथ हृदय को पररमाशिथत करता है और साधक को शदव्य ज्ञान ज्योशत प्राप्त करने के शलए अशधकारी बनाता है।

कमथ के शलए पूिा का भाव शवशहत है। अर्ाथत् कमथ ही पूिा है, ऐसा सोच कर तत्परता से अपने अपने कमथ में रुशच लेनी चाशहए।

यतः प्रवडत्तभूमतानां येन सवमडमदं ततम् ।
स्वकममणा तमभ्यच्यम डसन्द्रंद्ंध डवन्दडत मानवः ।।४६ ।।

बि्र्थम : यतः - शिससे, प्रवृशत्तः उत्पशत्त, भूतानाम् -प्राशणयों ंकी, येन-शिसके िारा, सवथम्-सब, इदम् - यह, ततम्-व्याप्त, स्वकमथणा-अपने कमथ से, तम् - उसे, अभ्यच्यथ पूिा करते हुए, शसम्भद्धम् -शसम्भद्ध, शवन्दशत-प्राप्त करता है, मानवः मनुष्य ।

अनुवाद : शिससे समस्त प्राशणयों ंका उद्भव हुआ है और शिससे यह सब व्याप्त है, अपने कमथ िारा, ईश्वर की आराधना कर के मनुष्य शसम्भद्ध प्राप्त करता है।

व्याख्या : शिस परम शपता परमात्मा से इस िगत् की उत्पशत्त हुई है उसके संकल्प को कायथ रूप प्रदान करना ही मनुष्य के शलए स्व स्व कमथ का पालन करना है। अपने कतथव्य कमथ रूप पुष्पों ंसे मनुष्य िब उस परम पुरुष की पूिा करता है वह अत्यन्त प्रसन्न होता है और पूिा से सन्तुष्ट हो कर आराधक पर शववेक और वैराग्य के वरदान रूप में वृशष्ट करता है।

प्रवृशत्तः-उद्भव अर्वा चेष्टा । यह ईश्वर से प्रवृत्त होती है ो सब का अन्तयाथमी है।

स्वकमथणा-अपने कमथ से, अपने वणथ के अनुसार, ैसे ऊपर बताया गया है।

भूतानाम् - प्राशणयों ंकी।

अपना कमथ करते हुए मानो ईश्वर की पूिा करते हुए मनुष्य शसम्भद्ध प्राप्त करता है अर्ाथत् वह ज्ञान योग का अशधकारी बन िाता है।

श्रेयान्ब्स्वधमो डवगुणः परधमामत्स्वनुडितात् ।
स्वभावडनयतं कमम कुवमिाप्नोडत डकन्द्रिषम् ।।४७ ।।

बिार्थम : श्रेयान् श्रेयस्कर, स्वधमथः- अपना कतथव्य कमथ, शवगुणः गुण रशहत, परधमाथत् -दूसरे के धमथ से, स्वनुशष्ठतात्- भली प्रकार अनुष्ठान शकये हुए, स्वभावशनयतम् स्वभाव से शनयत शकया हुआ, कमथ-कमथ, कुवथन् करते हुए, न-नहीं, ं आप्नोशत-प्राप्त करता है, शकम्भिषम् - पाप को।

अनुवाद : दूसरे के िारा भली प्रकार अनुष्ठान शकये हुए धमथ की अपेक्षा अपना गुण रशहत धमथ भी श्रेष्ठतर है। अपने स्वभाविन्य कमथ को करने वाला मनुष्य कभी पाप का अशधकारी नहीं ंबनता।

व्याख्या : शिस प्रकार शवष में उत्पन्न होने वाले कीट के शलए शवष हाशनकर नहीं ंहोता उसी प्रकार स्वभाविन्य कमथ (स्वधमथ) मनुष्य के शलए दोषयुक् अर्वा पाप कमथ नहीं ंहोता।

संसार के शलए िो शवष है, कीट के शलए वह शमठाई है पुनरशप ईख का मधुर रस उसकी मृतुयु का कारण बन िाता है।

अतः मनुष्य को, शनयत कमथ का पालन करना चाशहए िो कशठन तो है शकनुतु उसे बन्धन मुक् करने वाला होता है। दूसरे का कमथ भयावह होता है। अज्ञानी मनुष्य क्षण भर के शलए भी कमथ शकये शबना नहीं ंरह सकता। (शनरूपण -III.35)

सिजं कमम कौतेय सदोषमडप न त्यजेत् ।
सवामरम्भा डि दोषेण धूमेनाडग्नररवावृताः ।।४८ ।।

बिार्थम : सहिम् - िन्म के सार् उत्पन्न, कमथ-कमथ, कौन्तेय-हे कौन्तेय, सदोषम् दोष युक्, अशप-भी, न-नहीं, ं त्यिेत्-त्याग करें, सवाथरम्भाः समस्त कमथ, शह-क्योंशक, दोषेण-दोष से, धूमेन-धूम से, अशग्न -अशग्न , इव-भााँशत, आवृताः- आच्छाशदत है।

अनुवाद : हे अिुथन, सहि कमथ दोषयुक् होते हुए भी उनका त्याग नहीं ंकरना चाशहए क्योंशक धूम से अशग्न की भााँशत समस्त कमथ दोष से आवृत हैं।

व्याख्या : सहिम् - िन्म के सार् उत्पन्न ।

सदोषम् -दोष युक्, क्योंशक प्रत्येक वसुतु शत्रगुणात्मक है।

सवथरम्भाः समस्त कमथ, अपने हों ंअर्वा दूसरों ंके।

कोई वैश्य अर्वा क्षशत्रय ब्राह्मण के कमथ करने लगे तो शकसी प्रकार से भी वह उसके शलए श्रेयस्कर नहीं ं होगा। दूसरे का कमथ भय प्रदान करने वाला होता है। इसशलए दूसरे का कमथ करना शनशषद्ध है। आत्म-ज्ञान के शबना अशेषेण कमथ त्याग शकसी भी मनुष्य के शलए सम्भव नहीं ंहै। अतः कमथ का त्याग नहीं ंकरना चाशहए।

असक्तबुन्द्रद्धः सवमत्र डजतिाा डवगतसृ्पिः ।
नैष्कम्यमडसंद्धं परमां संन्यासेनाडधगच्छडत ।।४९ ।।

शब्दार्थ : असक्बुम्भद्धः - शिसकी बुम्भद्ध अनासक् है, सवथत्र-सवथत्र, शितात्मा-शिसने अन्तःकरण को वश में कर शलया है, शवगतसूपृहः- तृष्णा शिसकी नष्ट हो चुकी है, नैष्कम्यथशसम्भद्धम् - शनष्कमथता रूप शसम्भद्ध, कमथ के त्याग से होने वाली शसम्भद्ध, परमाम् -परम, संन्यासेन संन्यास से, अशधगच्छशत-प्राप्त करता है।

अनुवाद : शिसकी बुम्भद्ध सवथत्र सब शवषयों ंमें अनासक् है, शिसने आत्म संयम प्राप्त कर शलया है, िो आप्तकाम है (शिसकी तृष्णायें समाप्त हो चुकी हैं), वह संन्यास िारा कमथ से मोक्ष की परमावस्ा को प्राप्त होता है।

व्याख्या : शिस व्यम्भक् का मन स्त्री, पुत्र, देह, सम्पशत्त में आसक् नहीं ंहै, शिसने मन और इम्भियों ंका शनग्रह कर शलया है, शिसे अपने शरीर, िीवन अर्वा शवषय वासनाओं ंके शलए कोई इच्छा नहीं ंहै, वह भगवतोनुमुख होता है। सांसाररक शवषयों ंमें वह आकृष्ट नहीं ंहोता। वह शववेक और वैराग्य से युक् होता है।

शनैः-शनैः वह सत्-शचत्-आनन्द स्वरूप में अवम्भस्र्शत प्राप्त कर लेता है ऐसा आत्मज्ञानी कमथ से संन्यास िारा सविो शसम्भद्ध, मोक्ष को प्राप्त करता है।

आत्म-ज्ञान से अज्ञान नष्ट होता है। शक्रया को शवराम शमलता है। सम्भव है व्यम्भक् संसार की रुशच के शलए कमथ करे पुनरशप वह कमथ बन्धन में नहीं ंआता क्योंशक उसने आत्म-ज्ञान के िारा पूणथ रूप से कमथ से संन्यास ले शलया है। ज्ञानाशग्न ने कमों के फल लाने वाले प्रभाव को भस्म कर शदया है। कमों को ही शनष्फल कर शदया है। अहंकार से मुक् होने के कारण उसमें कतृथत्व भाव का सवथर्ा नाश हो गया है और वह परम पुरुष से एकरूप हो गया है।

नैष्कम्यथ शसम्भद्ध-इसका अशभप्राय शनष्कम्यथता से भी हो सकता है। इस उत्कृष्ट, मशहमाम्भित, अशनवथचनीय शदव्य आलोक की अवस्ा में मनुष्य शनम्भिय आत्मा के रूप में म्भस्र्त रहता है। यह वेदाम्भन्तयों ंकी सद्यः मुम्भक् अर्वा कैवल्य मोक्ष की अवस्ा है। आत्म-ज्ञान प्राप्त होने पर सम्यक् ज्ञान, संन्यास अर्वा सवथकमथ पररत्याग से इस अलौशकक अवस्ा की प्राम्भप्त होती है। "मनसा सवथकमथ पररत्याग और संयम िारा देही इस नौ िार की पुरी में, न तो स्वयं कमथ करता हुआ न दूसरों ंको कमथ में प्रेररत करता हुआ सुखपूवथक अशधशष्ठत रहता है।" (शनरूपण- V.13)

अब अगले श्लोक में भगवान् उपदेश करते हैं शक मनुष्य उपशलथम्भखत श्लोक ४६ के अनुसार शसम्भद्ध प्राप्त कर के भगवान् की सेवा में अपने कमथ समशपथत करता हुआ शकस प्रकार कमथ से मुक् हो सकता है। वह शववेक लाभ करता है, ध्यान का सतत अभ्यास करता है और शनशवथकार ब्रह्म के ज्ञान में शवश्राम लेता है। (शनरूपण—III.4, 19)

डसंद्धं प्राप्तो यर्था ब्रह्म तर्थाप्नोडत डनबोध मे ।

समासेनैव कौतेय डनिा ज्ञानस्य या परा ।।५० ।।

बि्ार्थम : शसम्भद्धम् -शसम्भद्ध, प्राप्तः - प्राप्त कर के, यर्ा–िसे, ब्र्ह्म-ब्र्ह्म, तर्ा-वैसे, आप्नोशत -प्राप्त करता है, शनबोध िानो, मे मुझ से, समासेन-संक्ेषेप में, एव-ही, कौन्ेतेय-हे कौन्ेतेय, शनष्ठा-शनष्ठा, अवस्र्ा, ज्ञानस्य-ज्ञान का, या-अर्वा, परा-सवोि ।

अनुवाद : हे अिुथन, शसम्भद्ध को प्राप्त हो कर अर्ाथत् कमों िारा ईश्वर की पूिा कर के मनुष्य शकस प्रकार ब्र्ह्म को प्राप्त होता है िो ज्ञान की चरम अवस्र्ा है, वह तुम मुझ से संक्ेषेप में सुनो।

व्याख्या : गुरु से अध्यात्म का उपदेश श्रवण करने का सौभाग्य शमलने पर मनुष्य का अहंभाव और िैतभाव शवनाश को प्राप्त होता है और उसका मन परमात्मा की सशन्नशध प्राप्त करता है। ऐसे मनुष्य को और कमथ करने की आवश्यकता नहीं ंरहती। उसके शलए करणीय कुछ भी शेष नहीं ंरहता। वह कृतकृत्य हो िाता है।

साधक ईश्वर की कृपा प्राप्त करता है क्योंशक उसने अपने कमों िारा ईश्वर की पूिा की है। भगवान् शवरम्भक्, शववेक और ज्ञान भम्भक् का दान देते हैं। उसके अशवद्या के आवरण को दूर करते हैं। "ऐसे सदा समम्भित रूप से आराधना करने वालों ंको मैं पे्रेम करता हाँ। मैं उन्ें शववेक योग देता हाँ शिससे वे मेरे पास आते हैं। उनके प्रशत अपनी अनुकम्पा मात्र से मैं उनकी आत्मा में वास करता हुआ ज्ञान के प्रकाश-दीप से उनका अशवद्या रूपी अन्धकार शमटा देता हाँ।"

शसम्भद्ध, ज्ञान में शनष्ठा अर्वा ज्ञान के प्रशत भम्भक् है शिसके िारा अशवद्या का आवरण हटने पर मनुष्य आत्म साक्षात्कार करता है। भम्भक्-ज्ञान योग प्राम्भप्त की शवशध संक्ेषेप में, कम शब्दों ंमें वशणथत की िायेगी। आत्म-ज्ञान की प्रशक्रया आगामी श्लोकों ंमें संक्ेषेप में शनरूशपत की िायेगी। वास्तशवक कला तो गुरु ही बता सकते हैं।

बुद्ध्या डविुद्धया युक्तो धृत्याऽऽनिं डनयम्य च ।
बि्ादीन्द्रन्वषयांस्त्यक्त्वा रागिेषौ वुयुदस्य च ।।५१ ।।

बि्ार्थम : बुद्ध्या-बुम्भद्ध से, शवशुद्धया-पशवत्र, युक्ः- युक्, धृत्या धृशत से, आत्मानम्-अपने को, शनयम्य-वश में कर के, च-और, शब्दादीन् शब्द आशद, शवषयान् - शवषयों ंको, त्यक्त्वा त्याग कर, रागिेषौ राग और िेष को, वुयुदस्य-त्याग कर, चऔर।

अनुवाद : शवशुद्ध बुम्भद्ध से युक् हो कर, धारणा िारा आत्म-शनयन्त्रण कर के, शब्दाशद शवषयों ंऔर राग–िेष का त्याग कर के,

व्याख्या : शनम्न प्रकृशत को पररषूकृत बुम्भद्ध से संकल्प िारा संयत करना चाशहए। चंचल इम्भियों ंऔर मन को पररषूकृत बुम्भद्ध अर्वा शववेक से संयत करना चाशहए। शवशुद्ध शववेक में महान् शम्भक् है। िब भी इम्भियाँ अपना शसर उठायें, शववेक के शम्भक्शाली दण्ड से उन पर आघात करना चाशहए। शववेक धृशत की शम्भक् है।

शवशुद्ध बुम्भद्ध-काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, संशय, शमथ्या अवधारणा से शून्य बुम्भद्ध शवशुद्ध है। यह शनमथल दपथण के समान है। शवशुद्ध बुम्भद्ध ब्र्ह्म स्वरूप है। सहि ही यह ब्र्ह्मैक्य प्राप्त कर सकती है। शवशुद्ध बुम्भद्ध ब्र्ह्म में शवलीन हो िाये तो प्रशतभाशसत बुम्भद्ध (शचदाभास), िीव भी ब्र्ह्म में लीन हो िाता है। िीव ब्र्ह्म के सार् एकरूप हो िाता है वैसे ही, िैसे घटाकाश, घट के टूटने पर महाकाश के सार् एकरूप हो िाता है।

आत्मानम् - शरीर और इम्भियों ंका समाहार (समुदाय) ।

प्रत्याहार और दम के अभ्यास से साधक इम्भियों ंको उन्् सवथस्व शवषयों ंसे शवमुख करता है। धीरे-धीरे इम्भियााँ आत्मा में म्भस्त हो िाती हैं। उनकी बशहमुथखी वृशत्त पूणथ रूप से संयत हो िाती है। सतत ध्यान के अभ्यास के िारा साधक इम्भियों ंपर शवशित होता है, अनासम्भक् के अभ्यास से राग को िीत लेता है और पशवत्र प्ेरेम, वैशश्वक शदव्य प्ेरेम के िारा िेष पर शविय प्राप्त करता है।

वह सब ऐश्वयों का त्याग कर देता है। शरीर के शनवाथह हेतु अशनवायथ बसुतुओं ंको ही वह रखता है। उन आवश्यक पदार्ों के प्रशत भी न तो उसे आसम्भक् होती है और न घृणा का भाव ।

डवडवक्तसेवी लघ्वािी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो डनत्ंयं वैराग्ंयं समुपाडश्रतः ।।५२ ।।

बि्ार्थम : शवशवक्सेवी-एकान्तवासी, लघ्वाशी-अल्पाहारी, यतवाक्कायमानसः-मन, वाणी और शरीर शिसके संयत हों,ं ध्यानयोगपरः- ध्यान और एकाग्रता का अभ्यास करने वाला, शनत्यम् - शनत्य, वैराग्यम्-वैराग्य, समुपाशश्रतः - आशश्रत ।

अनुवाद : एकान्त वास करता हुआ, अल्पाहार लेता हुआ, मन, वाणी और शरीर को वश में कर के ध्यान योग परायण हो कर सदा वैराग्य के आशश्रत हो कर,

व्याख्या : एकान्त का अपना ही आनन्द है। एकान्तवास में आध्याम्भत्मक संवेदन अद्भुत रूप से उन्नयनकारी होते हैं। शबना प्रयास के ध्यान सहि ही लग िाता है। आत्म-ज्ञान प्राप्त करने वाले ऋशष-मुशन वषों पयथन्त एकान्त देश में रहे। नदी तट, गुहा, सागर तट अर्वा वन्य प्रदेश ध्यान के शलए उशचत स्ान है। ईस्टर और शक्रसमस के अवकाश में तुम एकान्त प्रदेश की शांशत का आनन्द ले सकते हो। गृहम्भस्यों ंके शलए वषथ में पिह शदन अर्वा एक मास के शलए एकान्त वास आवश्यक है। अवकाश काल में कोलकाता अर्वा अन्य नगर में रह कर समय, शम्भक् और धन को व्यर्थ करने से अच्छा है शक ऋशषकेश, उत्तरकाशी अर्वा नैशमषारण्य आशद पावन तीर्थस्लों ंमें िा कर रहो और अनुष्ठान (शवशधशवधान सशहत कशठन अभ्यास), िप आशद करो और अमृतत्व के अशधकारी बनो। एक बार एकान्त का आनन्द ले लो तो कभी भूलोगे नहीं।ं इस आनन्द को पुनः ग्रहण करने का तुम्हारा प्रयास प्रत्ेयेक वषथ हो । अशधक खाने वाला आध्याम्भत्मक पर् पर चलने के शलए सक्षम नहीं ंहै। अशधक भोिन आलस्य का कारण है और तिा और गहन सुषुम्भप्त भी अशधक भोिन से होती है। रहने के शलए खाओ । सनुतुशलत आहार लो। तुम्हारा शरीर हल्का रहेगा, मन सौम्य और शान्त रहेगा। ध्यानाभ्यास में तुम्हें सहायता शमलेगी। सप्ताह के शलए अर्वा मास भर के शलए मौन ित धारण करो। प्रशतशदन दो घण्ेटे मौन रहने का ित लो। शरीर को संयत रखो। अशहंसा और ब्ह्मचयथ का अभ्यास करो। आत्मा पर ध्यान एकाशग्रत करो अर्वा चतुभुथि भगवान् शवष्णु अर्वा भगवान् कृष्ण अर्वा राम अर्वा शशव पर ध्यान लगाओ। ध्यान में शनयशमत रहो और धीरे-धीरे ध्यान की अवशध १५ शमनट से ३ से ६ घण्ेटे तक बढ़ाओ । पूणथ समय के साधक हो तो पूणथ समय ध्यान में लगाओ। ऐसा करने में समर्थ नहीं ंहो तो शलम्भखत िप और कीतथन करो। मध्यावकाश में धाशमथक ग्रन्थों ंका अध्ययन करो। उन्नत उतृकृष्ट साधक ही दीघाथवशध तक ध्यानस्् हो सकते हैं। मन का शनरीक्षण करो और वैराग्य वृशत्त का शवकास करो।

िागरूक न रहे तो इम्भियों ंके िारों ंसे ऊिथ क्षीण होने लगेगी। ऊिथ क्षरण होने पर अच्छा ध्यान नहीं ंहो सकता। इहलोक और परलोक में इम्भिय- शवषयों ंके प्रशत उदासीनता वैराग्य है-शवषय चाहे दृश्य हों ंअर्वा अदृश्य, उनके प्रशत उदासीनता और इच्छा का अभाव अशनवायथ है। वैराग्य म्भस्र, प्रतुयुत् शचरस्ायी होना चाशहए। यह क्षीण नहीं ंहोना चाशहए। यह मन का अनवरत स्वभाव बन िाना चाशहए। पूणथरूपेण वैराग्य में अशधशष्ठत हो िाओ।

चालीस शदन के अनुष्ठान के शलए दूध और फल अर्वा हल्का भोिन लो। केवल ३ अर्वा ४ वसुतुएँ भोिन में लो। एक ही बार भोिन करो। धरती पर शयन करो। ब्र्ह्मचयथ और मौन ित धारण करो। कक्ष से बाहर मत आओ। पूणथ मौन न रख सको तो अल्प भाषण करो। शकसी पावन नदी अर्वा गङ्गा तीर पर अनुष्ठान करो। अपने इष्ट मन्त्र के एक अर्वा अनेक पुरश्चरण कर िालो। मन्त्र में यशद पााँच वणथ हैं तो पााँच लाख बार मन्त्र की पुनरावृशत्त एक पुरश्चरण पूणथ करेगी।

अिेकारं बलं दपम कामं क्रोधं पररग्रिम् ।
डवमुच्य डनममः िातो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।५३ ।।

बिाथम : अहंकारम् - शमथ्या अशभमान, बलम्-बल, दपथम् गवथ, कामम् - इच्छा, क्रोधम् -क्रोध, पररग्रहम् -दूसरे के धन का लालच, शवमुच्य-त्याग कर, शनमथमः-अनासक्, 'मेरा' भाव से रशहत, शान्तः शान्त, ब्र्ह्मभूयाय-ब्र्ह्मभाव के शलए, कल्पते-योग्य है।

अनुवाद : अहंकार, बल, दपथ, काम, क्रोध, पररग्रह और "ममत्व" की भावना का त्याग करने वाला और शान्त शचत्त वाला ब्र्ह्मरूप होने के योग्य हो िाता है।

व्याख्या : अहंकार -शरीर में आत्मा का अध्यास । यह शरीर को ही आत्मा मानने की भूल है।

बलम् वह बल अर्वा शम्भक् िो आसम्भक्, इच्छा और मोह से संयुक् है, यह शारीररक शम्भक् के शलए नहीं ंहै प्रतुयुत् शारीररक शम्भक् तो स्वाभाशवक हुआ करती है शिसका आप त्याग नहीं ंकर सकते ।

दपथम् -गवथ, धृष्टता, आत्माशभमान, रािशसक प्रचंिता शिसके कारण मनुष्य स्वयं को बहुत महान् समझने लगता है। अशधक ज्ञान और धन का गवथ हो िाता है। दपथ आने पर मनुष्य धमथ का अशतक्रमण करता है और दुष्ट कायथ करने लगता है।

साधक तो शरीर के शलए अशनवायथ पदार्ों का भी त्याग कर देता है। वह परमहंस, पररिािक अर्वा भ्रमणशील संन्यासी बन िाता है। उसे देह में आसम्भक् नहीं ंरहती। वह िानता है शक यह शरीर भी अपना नहीं ंहै।

शान्त-सौम्य, उपरशत युक्, शान्त ।

ऐसा साधक िो आत्म-ज्ञान में रत है, ज्ञान शनष्ठ यशत है, वह ब्र्ह्म रूप होने के योग्य है।

ब्रह्मभूतः प्रसिाा न िोचडत न काङ्क्षडत ।
समः सवेषु भूतेषु मिन्द्रक्तं लभते पराम् ।।५४ ।।

बिाथम : ब्र्ह्मभूतः ब्र्ह्म से तादात्म्यता प्राप्त करके, प्रसन्नात्मा -प्रमुशदत मनुष्य, न-नहीं, ं शोचशत-शोक करता है, न-नहीं, ं काङ्क्षशत-इच्छा करता है, समः-सम, सवेषु सब में, भूतेषु प्राशणयों ंमें, मद्भम्भक्म् -मेरी भम्भक् को, लभते-प्राप्त करता है, पराम्परम।

अनुवाद : ब्र्ह्म को प्राप्त मनुष्य प्रमुशदत (प्रसन्न) रहता है। वह न तो शोक करता है और न ही कोई इच्छा करता है। वह समस्त प्राशणयों ंमें समभाव रखता है। ऐसा ज्ञानी मेरी परम भम्भक् को प्राप्त करता है।

व्याख्या : ब्र्ह्मभूतः-ब्र्ह्मभाव को प्राप्त हो कर । ब्र्ह्म के सार् तादात्म्यता और मोक्ष की अवस्र्ा का वणथन अगले श्लोक में शकया ियेगा।

वह प्रशान्त मन रहता है। वह युक् और समम्भित रहता है। तुच्छ व्यम्भक्त्व का कुछ भी शेष नहीं ंरहता ि उिसमें शोक या इच्छा उत्पन्न करे। यह अवस्र्ा प्राप्त होने पर शवषयों ंकी अनेकता धीरे-धीरे अदृश्य हो िाती है और वह सवथत्र एकत्व के दशथन करता है। िाग्रत और स्वप्नावस्र्ा की चेतना िो शमथ्या ज्ञान का कारण है, धीरे-धीरे समाप्त हो िाती है।

शारीररक अभावों ंके शलए वह शोक नहीं ंकरता। अभाव पूशतथ में समर्थ न हो तब भी वह व्याकुल नहीं ं होता। सफलता, असफलता में वह मन का सनुतुलन बनाये रखता है। अप्राप्त की प्राम्भप्त के शलए उसे कोई आकाङ्क्षा नहीं ंहोती।

न शोचशत न काङ्क्षशत-न शोक करता है न प्रमुशदत होता है।

'समं सवेषु भूतेषु' का अशभप्राय यह भी हो सकता है शक वह स्वयं को दूसरों ंके स्र्ान पर रखता है और उनके शलए भावना भी रखता है। यशद कोई अत्यन्त शोक अर्वा अवसाद की अवस्र्ा में होगा तो उसे भी वही अनुभव होगा। उसका हृदय अत्यन्त कोमल होता है। वह अत्यन्त दयालु स्वभाव का होता है। वह समस्त प्राशणयों ं के सुख-दुःख को अपना ही सुख-दुःख मानता है। दूसरों ंकी प्रसन्नता में वह प्रसन्न होता है और दूसरों ंके दुःख में दुःखी होता है। उसका हृदय इतना उदार होता है शक वह सब के शलए सुख-दुःख अनुभव करता है। मनुष्य को मनुष्य से पृर्क् करने वाले अवगुण-ईष्याथ, हृदय की संकुशचतता, तुच्छ भावना, पृर्कत्व, सब प्रकार के िेष और शकसी के शलए अरुशच आशद की भावनाओं ंके प्रशतबन्धक उसमें पूणथतया समाप्त हो िाते हैं। वह वैशश्वक प्ेरम से युक् होता है। वह शवश्व का कल्याण चाहने वाला हो िाता है। वह सब का शमत्र बन िाता है। उदारशीलता की अवस्र्ा का वणथन शब्दातीत है। इसकी अनुभूशत स्वयं ही करनी अपेशक्षत है। ऐसा साधक मेरे प्रशत अपार भम्भक् भाव रखता है। अध्याय VII के श्लोक १६ में शनशदथष्ट सविो भम्भक् अर्ाथत् ज्ञानी की ज्ञान के प्रशत भम्भक् उसे प्राप्त होती है। (शनरूपण-II.70)

भक्त्या मामडभजानाडत यावान्यश्चान्द्रस्म तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा डविते तदनतरम् ।।५५ ।।

ब्र्ार्थम : भक्त्या-भम्भक् से, माम् - मुझ को, अशभिानाशत िानता है, िावान् -शितना, यः िो, च-और, अम्भस्म (मैं) हाँ, तत्वतः तत्व से, ततः तब, माम् -मुझे, तत्त्वतः वास्तव में, ज्ञात्वा–िान कर, शवशते-प्रवेश करता है, तत्-उस, अनन्तरम् तत्पश्चात् ।

अनुवाद : भम्भक् के िारा वह मुझे तत्त्व से िान लेता है शक मैं क्या हाँ और कौन हाँ। तब मुझे इस प्रकार तत्त्व से िान कर वह मुझ में ही प्रवेश कर िाता है।

व्याख्या : हे अिुथन, मुझसे एकाकार हुआ भक् शनश्चय से मेरी ही आत्मा है, शिसने अनन्यमनस्क हो कर मेरी भम्भक् की है। भम्भक्, ज्ञान में पराकाष्ठा को पहुाँचती है। दो से प्रारम्भ हो कर भम्भक् अिैत में समाप्त होती है। परा भम्भक् और ज्ञान एक हैं। भम्भक् माता है, ज्ञान पुत्र है। भम्भक् से ही वह िानता है शक मैं सवथव्याप्त शुद्ध चैतन्य स्वरूप हाँ। वह िान िाता है शक मैं अिैत हाँ, अिन्मा, अव्यय, कारणरशहत, स्वयंप्रभा, अखण्ड, अशवकारी हाँ। वह िानता है शक सीशमत प्रशतबन्धों ंके सब भेदों ंसे मैं पृर्क् हाँ। वह िानता है शक मैं अवलम्ब, स्रोत, गभथ, आधार, प्रत्ेयेक वसुतु का आश्रय हाँ। वह िानता है शक मैं सब प्राशणयों ंका शनयन्ता हाँ, मैं परम पुरुष हाँ, मायापशत हाँ और यह संसार मात्र एक आभास है। इस प्रकार मुझे तत्त्व से िान कर ज्ञान प्राम्भप्त के उपरान्त वह मुझ में प्रवेश करता है।

' ज्ञान और प्रवेश' ये दो पृर्क् शक्रयायें नहीं ंहैं। िानना ही होना है। िानने का अशभप्राय है-आत्म-ज्ञान होना। शकसी वसुतु के ज्ञान का अशभप्राय है वही हो िाना। प्रवेश ज्ञान प्राम्भप्त है। ये सब शब्दों ंके खेल हैं। ज्ञान और प्रवेश पयाथयवाची हैं। भावातीत आध्याम्भत्मक तत्त्वों ंकी अवधारणा दुज्ञेय है। गुरुिन शवशभन्न प्रकार के तथ्य, गूढार्थ,
उपमा, दृष्टान्त, कर्ानक आशद से साधक को उस परम तत्त्व का ज्ञान कराने और स्पष्ट रूप से उसे ग्रहण कराने का प्रयास करते हैं। शब्द दोषयुक् हैं। भाषायें भी दोषरशहत नहीं ंहैं। वे आध्याम्भत्मक अनुभूशतयों ंको पूणथरूप से अशभव्यक् करने में असमर्थ हैं। येन केन प्रकारेण गुरु, शष्य साधक को यह आध्याम्भत्मक शवचार प्रदान करने का प्रयास करते हैं।
आत्म साक्षात्कार तो शष्य को ही करना होगा। िो शनशहतार्थ, उपमा, दृष्टान्त अर्वा शब्दों ंके रूप में अशभव्यम्भक् से परे है। उस अैित ब्र्ह्म की उपमा कैसे दी िा सकती है? ये शब्द एक प्रकार से साधकों ंको प्रारम्भ में आध्याम्भत्मक तत्व का अवगाहन करने में सहायक मात्र हो सकते हैं। आत्म-ज्ञान के उपरान्त इन शब्दों ंका कोई प्रयोिन नहीं ंरह िाता। वह स्वयं ही ज्ञान का मूतथरूप हो िाता है।

सवमकमामर्ण्डप सदा कुवामणो मद्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोडत िाश्वतं पदमव्ययम् ।।५६ ।।

बि्र्थम : सवथकमाथशण-समस्त कमथ, अशप-भी, सदा-सदा, कुवाथण:- करते हुए, मद्यपाश्रयः- मेरे आशश्रत हो कर, मत्प्रसादात्-मेरी कृपा से, अवाप्नोशत-प्राप्त करता है, शाश्वतम् - शाश्वत, पदम् -पद, धाम, अव्ययम् - अनश्वर ।

अनुवाद : सवथदा मेरे आशश्रत हो कर सब कमथ करते हुए, मेरे अनुग्रह से वह शाश्वत, अशवनाशी पद को प्राप्त करता है।

व्याख्या : शुभ कमों के प्रसूनों ंसे मेरी आराधना कर के वह मेरी अनुकम्पा से अक्षय्य िै युक् अशवनाशी ब्र्ाह्मी म्भस्र्शत को प्राप्त करता है। मेरे सार् एकत्व पा कर वह परम आनन्द का भोग करता है। यशद शकसी अवसर पर वह शनशषद्ध कमथ भी करता है तो उसके प्रभाव से वैसे ही अप्रभाशवत रहता है िैसे गङ्गा में नाले का पानी शमलने पर भी गङ्गा िल अप्रभाशवत रहता है।

ईश्वर की पूिा यशद अपने कतथव्य-कमों िारा की िाये तो साधक का हृदय पररष्कृत होता है और उसकी ज्ञान-शनष्ठा का शवकास होता है िो अनायास ही उसे ज्ञान प्राम्भप्त की ओर उन्नत करती है। यहााँ भम्भक्योग की श्लाघा की गई है।

सवथकमथ-शुभ कमथ तर्ा शनशषद्ध कमथ । मुझ वासुदेव भगवान् को सवथस्व अपथण कर देने वाला भक् शवष्णु के शाश्वत धाम को मेरे अनुग्रह से प्राप्त करता है।

चेतसा सवमकमामडण मडय संन्यस्य मत्परः ।
बुन्द्रद्धयोगमुपाडश्रत्य मन्द्रित्तः सततं भव ।।५७ ।।

बि्र्थम : चेतसा -शववेक बुम्भद्ध से, सवथकमाथशण-सब कमथ, मशय-मुझ में, संन्यस्य-अपथण कर के, मत्परः- मेरे परायण,
बुम्भद्धयोगम् - योग (म्भस्र्र बुम्भद्ध) का, उपाशश्रत्य-आश्रय लेकर, मम्भित्तः- मुझ में शचत्त लगाकर, सततम् -सदा, भवरहो ।

अनुवाद : शववेक बुम्भद्ध से सब कमथ मुझे समशपथत कर के, मुझे ही सविो लक्ष्य मान कर, बुम्भद्ध योग का आश्रय ले कर तुम अपना मन सदा मुझ में म्भस्र्र करो।

व्याख्या : हे अिुथन, शववेक बुम्भद्ध पर अपना शचत्त म्भस्र्र कर के अपने समस्त कमथ मुझे समशपथत कर दो। तब उस शववेक बुम्भद्ध के िारा तुम अपने आत्मा को शरीर से और चेष्टा से पृर्क् देखोगे िो मेरे शुद्ध अम्भस्तत्व में शनवशसत होगा।

चेतसा-शचत्त से। ज्ञान शनष्ठा से। वह ज्ञान िो मोक्षप्रद है और शिसकी प्राम्भप्त भगवान् को समशपथत शनष्काम कमथ के िारा हृदय पशवत्र होने पर होती है।

सवथकमाथशण-सब कमथ, िो दृश्यादृश्य प्रभाव देने वाले हैं।

मशय-मुझ में।

अध्याय IX.27. में उपदेश शकया गया है-तुम िो भी कमथ करो, िो भी भोिन करो आशद सब मुझे समशपथत करो।

मत्परः- मेरे परायण। मुझे ही परम लक्ष्य और आश्रय मान कर।

बुम्भद्धयोगमुपाशश्रत्य-अनन्य-आश्रय, बुम्भद्ध योग ।

मन्द्रित्तः सवमदुगामडण मत्प्रसादात्तररष्यडस ।
अर्थ चेत्त्वमिंकारिा श्रोष्यडस डवनक्ष्यडस ।।५८ ।।

बि्ार्थम : मम्भित्तः-अपना मन मुझ में म्भस्र्र कर के, सवथदुगाथशण-सब बाधायें, मत्प्रसादात् -मेरे अनुग्रह से, तररष्यशस-पार कर िा ओगे, अर्-अब, चेत् यशद, त्वम्-तुम, अहंकारात्-अहंकारवश, न-नहीं,ं श्रोष्यशस -सुनोगे, शवनक्ष्यशस नष्ट हो िाओगे।

अनुवाद : मुझ में अपना शचत्त म्भस्र्र कर के, मेरी कृपा से तुम सब बाधाओं ंको पार कर िाओगे और यशद अहंकार के कारण मेरी बात नहीं ंसुनोगे तो नष्ट हो िाओगे।

व्याख्या : हे अिुथन, िब तुम्हारा मन एकाग्र हो कर मुझ में म्भस्र्र होगा तब तुम मेरी अनुकम्पा से सब कशठनाइयों ं और बाधाओं ंको पार कर िाओगे। और यशद तुम मेरी शक्षाओं ंको ग्रहण नहीं ंकरोगे और अशभमान वश उनका शनरादर करोगे तो नष्ट हो िाओगे।

दुगाथशण बाधायें, कशठनाइयााँ, पाश गतथ (गड्ढा), प्रलोभन आशद ये सब आध्याम्भत्मक पर् की रुकावटें हैं और संसार की शवशवध प्रकार की कशठनाइयााँ भी इस पर् पर आरूढ़ व्यम्भक् को सहनी पड़ती हैं।

अहंकार-यह शवचार शक तुम शशक्षत हो। तुम्हें ऐसा नहीं ंसोचना चाशहए- "मैं स्वतन्त्र हाँ। मैं सब कुछ िानता हाँ। मैं बुम्भद्धमान् व्यम्भक् हाँ। मैं दूसरों ंकी सलाह क्यों ंलूाँ?"

यर्दिकारमाडश्रत्य न योत्स्य इडत मन्यसे ।
डमरै्थै्ष व्यवसायसे्ते प्रकृडतस्त्वां डनयोक्ष्यडत ।।५९ ।।

बि्ार्थम : यत् - यशद, अहंकारम्-अहंकार को, आशश्रत्य-आशश्रत हो कर, न-नहीं,ं योत्स्ये-युद्ध करूँगा, इशत-इस प्रकार, मन्यसे मानते हो, शमथ्या-व्यर्थ, एषः यह, व्यवसायः-संकल्प, ते तुम्हारा, प्रकृशतः-स्वभाव, त्वाम् - तुम्हें, शनयोक्ष्यशत - शनयोशित करेगी, प्ेरेररत करेगी।

अनुवाद : अहंकारवश यशद तुम सोचते हो शक तुम युद्ध नहीं ंकरोगे तो तुम्हारा यह संकल्प व्यर्थ है क्यों ंशक प्रकृशत तुम्हें (युद्ध के शलए) प्ेरेररत करेगी।

व्याख्या : मन का यह दृढ़ संकल्प तुम्हारी अपनी ही आन्तररक प्रकृशत ािारा व्यर्थ कर शदया ाायेगा क्योंशंक तुम्हारी प्रकृशत तुम्हें प्ेरेररत करेगी, योद्धा के रूप में तुम्हें लड़ने के शलए उत्साशहत करेगी, शववश करेगी। यह तो केवल भ्रम मात्र है शक तुम अिुथन हो, ये लोग तुम्हारे सम्बन्धी हैं और इन्हें मार कर तुम पाप के अशधकारी बनोगे ।

स्वभावजेन कौतेय डनबद्धः स्ेवेन कममणा ।
कतुं नेच्छडस यन्मोिात्कररष्यस्यविोऽडप तत् ।। ६० ।।

बि्ार्थम : स्वभाविेन-स्वभाव से उत्पन्न, कौन्ेतेय-हे कुन्ती पुत्र, शनबद्धः बंधा हुआ, स्ेवेन-अपने, कमथणा-कमथ से, कतुथम् -करने के शलए, न-नहीं,ं इच्छशस चाहते हो, यत्–ो, मोहात्-मोहवश, कररष्यशस करोगे, अवशः-शववश हो कर, अशप-भी, तत्-वह।

अनुवाद : अपने स्वभाव से उत्पन्न अपने कमथ में बंध कर तुम शववश हो कर वह कमथ करोगे ाो अब तुम मोह वश करना नहीं ंचाहते।

व्याख्या : हे अिुथन, तुम एक योद्धा के बल, पराक्रम, वीयथ और कौशल से युक् हो । अपनी प्रकृशत के तुम आधीन हो ााओगे। तुम्हारी इच्छा के शवरुद्ध तुम्हारी प्रकृशत तुम्हें युद्ध में प्रवृत्त करेगी।

ईश्वरः सवमभूतानां हृद्ेदिेऽजुमन डतिडत ।
रामयन्सवमभूताडन यन्त्रारूढाडन मायया ।।६१ ।।

बि्ार्थम : ईश्वरः ईश्वर, सवथभूतानाम् -सब प्राशणयों ंके, हृद्ेदेशे-हृदय में, अिुथन-हे अिुथन, शतष्ठशत-वास करता है, भ्रामयन्- घुमाते हुए, सवथभूताशन-सब प्राशणयों ंको, यन्त्रारूढाशन-यन्त्र पर आरूद, मायया-माया के ािारा।

अनुवाद : हे अिुथन, ईश्वर सब प्राशणयों ंके हृदय में शनवास करता है और शरीर रूपी यन्त्र पर आरूढ़ इन प्राशणयों ं को अपनी माया की शम्भक् से उनके कमाथनुसार भ्रमाता है।

ईश्वरः- संसार का शनयन्ता, नारायण।

ईश्वर सब प्राशणयों ंमें अन्तयाथमी रूप से म्भस्त है। शरीर रूपी यह अद्भुत यन्त्र उसी ने प्रदान शकया है। उसी की ही शम्भक् से सब प्राणी गशतशील हैं। ईश्वर तो वास्तव में हमारे अन्तःकरण का सिा नायक है।

मायया-भ्रम उत्पन्न कर के।

यन्त्रारूढ़ कठपुतशलयों ंकी भाँशत ईश्वर सब प्राशणयों ंको घुमा रहे हैं। (शनरूपण - X.20; XIII.18)

तमेव िरणं गच्छ सवमभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां िान्द्रतं थर्थानं प्राप्स्स्यडस िाश्वतम् ।। ६२ ।।

बि्ार्थम : तम् उसकी, एव-ही, शरणं गच्छ शरण में िाओ, सवथभावेन-पूणथ भाव से, भारत- हे भारत, तत्प्रसादात्- उसकी कृपा से, पराम् -परम, शाम्भन्तम्-शाम्भन्त को, स्र्ानम् - धाम को, प्राप्स्यशस-प्राप्त करोगे, शाश्वतम् - शनत्य ।

अनुवाद : हे अिुथन, तुम पूणथ भाव से (अपने समूपूणथ अम्भस्तत्व से) उसी की शरण में िाओ। उस प्रभु की अहेतुकी कृपा से तुम परम शाम्भन्त और शाश्वत धाम को प्राप्त करोगे।

व्याख्या : ईश्वर को पूणथ रूप से समशपथत हो िाओ। इच्छाओं ंको गुप्त मत रखो शक तुम उनकी मौन सनुतुशष्ट कर लोगे । इच्छा और अहंकार आत्म समपथण के मागथ में दो महान् बाधायें हैं। कूरूरतापूवथक उनें् मार िालो।

संसार चक्र के दु:खों,ं कष्टों,ं बाधाओं ंसे मुक् होने के शलए अपने पूणथ अम्भस्तत्व के सार् ईश्वर की ओर दौ़ि़ो। ईश्वर को ही अपना एक आश्रय मानो । तब उसकी कृपा से तुम परम शाम्भन्त और शनत्य परम धाम प्राप्त करोगे ।

इडत ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
डवमृश्यैतदिेषेण यर्ेच्छडस तर्था कुरु ।। ६३ ।।

बि्ार्थम : इशत-इस प्रकार, ते तुम्हारे शलए, ज्ञानम् - ज्ञान, आख्यातम् -कहा गया है, गुह्यात् - गुह्य से भी, गुह्यतरम्- गुह्यतर, मया-मेरे िारा, शवमृश्य-शवचार कर के, एतत्-यह, अशेषेण-पूणथतया, यर्ा-शिस प्रकार, इच्छशस इच्छा करते हो, तर्ा-वैसा, कुरु-करो।

अनुवाद : इस प्रकार गुह्य से गुह्यतर अत्यन्त रहस्यपूणथ गोपनीय ज्ञान मैंने तुम्हें शदया है। इस पर पूणथतया अच्छी प्रकार शवचार कर के िैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो।

व्याख्या : शकसी भी प्रकार के रहस्य से अतीत, गोपनीय रहस्य मैंने तुम्हें बता शदये हैं। यह उपदेश, वेदों ंका सार, गीता नाम से अशभशहत है। यशद कोई इसका अनुसरण करता है और इसके भाव में िीवन िीता है तो वह शनशश्चत रूप से परम शाम्भन्त, सविो ज्ञान और अमृतत्व की प्राम्भप्त करता है। इसमें कोई सनेे्दह नहीं।ं हे अिुथन, इस गुप्त कोष का रहस्य मैंने तुम्हारे समक्ष प्रकट कर शदया है क्योंशंक तुम मुझे शप्रय हो।

एतत् यह अर्ाथत् ऊपर शनशदथष्ट उपदेश । तुम्हें िो भी उपदेश शदया गया है उस पर पूणथ मन से शवचार करो।

सवमगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽडस मे दृढडमडत ततो वक्ष्याडम ते डितम् ।।६४ ।।

बि्ार्थम : सवथगुह्यतमम् -सवाथशधक रहस्यपूणथ, भूयः-पुनः, शृणु सुनो, मे-मेरा, परमम् -परम, वचः- वचन, इष्टः-शप्रय, अशस-हो, मे-मुझे, दृढम् - एकाम्भन्तक, अत्यन्त, इशत-इस प्रकार, ततः इसशलए, वक्ष्याशम कहूँगा, ते-तुम्हारे, शहतम् - शहत के शलए।

अनुवाद : तुम पुनः मेरे परम उपदेश को सुनो ि◌ो सवाथशधक गोपनीय है। क्योंशंक तुम मुझे अत्यन्त शप्रय हो इसशलए तुम्हारे कल्याण की बात कहाँगा ।

व्याख्या : पुनः अनन्यमनस्क हो कर मुझे सुनो। तुम मुझे अत्यन्त शप्रय हो। तुम सिै साधक हो। तभी तुम्हें यह सवाथशधक गोपनीय रहस्य बताने ि◌ा रहा हाँ। रहस्यों ◌ंके रहस्य को मुझसे श्रवण करो। तुम्हें अच्छी प्रकार समझाने के शलए पुनः कहाँगा, यद्यशप अनेक बार यह बात कह चुका हाँ। मुझे तुम से कोई उपहार नहीं ◌ंलेना है। तुम मेरे सवाथशधक शप्रय शशष्य और शमत्र हो। इसशलए तुम्हारे शहत की बात करूंगा। आत्म साक्षात्कार का साधन बताऊँगा। यही तुम्हारे शलए परम श्ेरेयस्कर और सविो कल्याणकारी है।

मन्मना भव मिक्तो मद्याजी मां नमसुकुरु ।
मामेवैष्यडस सतं्यं ते प्रडतजाने डप्रयोऽडस मे ।। ६५ ।।

बि्ार्थम : मन्मनाः मुझ में मन वाला, भव-हो, मद्भक्ः- मेरा भक्, मद्यािी-मेरे शलए यज्ञ करो, माम् -मुझे, नमसुकुरु-प्रणाम करो, माम् -मुझे, एव-ही, एष्यशस-प्राप्त करोगे, सत्यम् -सत्य, ते-तुम्हें, प्रशतािने-वचन देता हाँ, शप्रयः-शप्रय, अशस-हो, मे-मुझे।

अनुवाद : अपना मन मुझ में म्भस्थर करो, मेरे भक् बन िाओ, मेरे शलए यज्ञ करो, मुझे प्रणाम करो, इस प्रकार तुम मेरे ही शनकट आओगे (मेरा साशन्नध्य प्राप्त करोगे), मैं तुम्हें इस बात का सत्य वचन देता हाँ क्योंशंक तुम मुझे शप्रय हो ।

व्याख्या : मन की एकाग्रता का शवकास करो। अपना मन मुझमें एकाग्र करो । मन इतस्ततः दौिे तो पुनः अभ्यास िारा उसे ध्यान के कें द्र पर ले आओ । समस्त कमथ मुझे समशपथत कर दो। तुम्हारी वाणी मेरे नाम का िप करे । तुम्हारे हार् मेरे शलए कायथ करें, तुम्हारे पैर मेरे शलए ही गशत करें। तुम्हारे सब कमथ मेरे शलए हों।◌ं शकसी प्राणी के शलए घृणा-िेष का भाव मत रखो। मुझे वन्दन करो तब तुम मुझे ही प्राप्त करोगे ।

भगवान् अिुथन को सुशनशश्चत वचन देते हैं, उसके शलए उदात्त घोषणा करते हैं।

हे अिुथन, अपना लक्ष्य और केवल आश्रय मुझे मानने पर शनशश्चत रूप से तुम मेरा साशन्नध्य प्राप्त करोगे।

भगवान् के वचनों ◌ंमें श्रद्धा रखो और धमथसंस्कारयुक् प्रशतज्ञा करो। भगवान् को ही अपना आश्रय मानो, तुम मोक्ष को प्राप्त करोगे।

भगवान् की शरण ही भम्भक् का रहस्य है। अगले श्लोक में भगवान् आत्म समपथण का शवषय सार रूप में उद्घाशटत करते हैं। (शनरूपण -IX.34; XII.8)

सवमधमामन्पररत्यज्य मामेकं िरणं व्रज ।
अिं त्वा सवमपापेभ्यो मोक्षडयष्याडम मा िुचः ।।६६ ।।

बि्ार्थम : सवथधमाथन् -सब धमों को, पररत्यज्य-त्याग कर, माम् -मेरी, एकम् - एक, शरणम्-शरण, िि-लो, अहम्-मैं, त्वा-तुम्हें, सवथपापेभ्यः सब पापों ◌ंसे, मोक्षशयष्याशम-मुक् करूाँगा, मा-मत, शुचः-शोक करो।

अनुवाद : सब धमों को त्याग कर एक मेरी शरण में आ िाओ। मैं तुम्हें सब पापों ंसे मुक् कर दूँगा। शचन्ता मत करो।

व्याख्या : अध्याय दो के श्लोक सात में अिुथन िारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर भगवान् ने इस श्लोक में शदया है। प्रश्न र्ा- "मुझे शनश्चयपूवथक बतायें, मेरे शलए क्या शहतकर है। मैं आपका शष्य हाँ, आपकी शरण में आया हाँ। मुझे उपदेश दीशिए।"

सवथधमाथन्-धशमथक कृत्य और अधाशमथक कृत्य भी। समस्त कमथ, शुभ और अशुभ दोनों,ं क्योंशंक यहााँ समस्त कमों से संन्यास का उपदेश शदया िा रहा है।

मामेकं शरणं िि-यह भाव अैत शवचारधारा को प्रशतपाशदत करता है। "िान लो शक मेरे अशतररक् अन्य कुछ नहीं ंहै, मैं ही सब में अन्तयाथमी रूप से शवद्यमान हाँ। यशद तुम इस शनष्ठा में प्रशतशष्ठत हो िाओ तो मैं तुम्हें सब पापों ंसे मुक् कर दूँगा । तुम्हारे अपने ही आत्म तत्त्व के रूप में अपनी अशभव्यम्भक् कर के तुम्हें अधमथ और धमथ के बन्धन से परे कर दूँगा।"

रूप का दशथन चकु्षु का धमथ है। सब रूपों ंका आधार ब्ह्म है। िब शकसी शवषय को देखो तो उसमें ब्ह्म दशथन करो, शवषय को त्याग दो, वह भ्राम्भन्त है और अशनत्य है। अन्य इम्भियों ंके शवषयों ंके प्रशत भी इसी भाव को रखो। िीव धमथ त्याग दो िैसे-"मैं कमों का करने वाला (कताथ) हाँ। मैं भोक्ा हाँ। मैं ब्ाह्मण हाँ। मैं ब्ह्मचारी हाँ। मेरे पास अल्प ज्ञान और अल्प शम्भक् है आशद" । स्वयं को ब्ह्म भावना में म्भस्र्र करो अर्ाथत्- "मैं ब्ह्म हाँ" इस भाव को म्भस्र्र करो। वेदान्त के अनुसार भगवान् कृष्ण में शरण लेना इसी को कहा है।

भगवान् के शलए अनवरत कमथ करो शकनुतु कमथ फल भगवान् को समशपथत कर दो। उसे अपना एकाधार मानो । उसके शलए शियो। उसी का शचन्तन करो। उसका ही ध्यान करो। अपना िीवन, कमथ, भाव और शवचार भगवान् में समाशहत करो। तुम उसमें शवश्राम पाओगे। तुम उससे एकत्व प्राप्त करोगे। तुम अमर, परम शाम्भन्त और शाश्वत आनन्द प्राप्त करोगे। यह अन्य मतावलम्भम्बयों ंकी शवचारधारा है।

शंकराचायथ इस तथ्य का दृढ़तापूवथक शनषेध करते हैं शक ज्ञान कमथ के सार् शमल कर मोक्ष का साधन हो सकता है। उनके शवचार से कमथ और ज्ञान एक ही मनुष्य में सार्-सार् नहीं ंचल सकते क्योंशंक कमथ हृदय को पररषूकृत करने के शलए शकया िाता है और आत्मा का यर्ार्थ ज्ञान ही उसे संसार से पूणथतया मुक् करने में समर्थ है। उनके अनुसार कमथ और ज्ञान, अन्धकार और प्रकाश के समान हैं और कमथ तो इस शमथ्या प्रपञ्च (दृश्य सत्ता) में ही सम्भव है िो अशवद्या का शवस्तार है तर्ा अशवद्या रूपी अन्धकार का शनराकरण ज्ञान रूपी प्रकाश से होता है। (शनरुपण - III.30 .IX.22)

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चािुशूरूषवे वाच्ंयं न च मां योऽभ्यसूयडत ।।६७ ।।

ब्ार्थम : इदम् - यह, ते-तुम्हारे, न-नहीं,ं अतपस्काय-तप रशहत, न-नहीं,ं अभक्ाय-अभक् (के शलए), कदाचन-कभी भी, न-नहीं,ं च-और, अशुशूरूषवे-िो सुनने का इचुछुक न हो, वाच्यम् -कहना चाशहए, न-नहीं,ं च और, माम्-मुझे, यः िो, अभ्यसूयशत-िो शछिोषण करता है अर्वा मुझमें दोषदृशष्ट रखता है।

अनुवाद : यह सन्देश शकसी ऐसे व्यम्भक् को कभी मत कहना शिसने तप न शकया हो, शिसमें भम्भक् भाव न हो, शिसमें सेवा भाव न हो अर्वा ि सुनने का इचुछुक न हो और ि मेरे प्रशत दोष दृशष्ट रखता हो (मुझे ईश्वर न िानने से मुझ में आत्मप्रशंसा आशद दोषों ंका अध्यारोपण करके मेरे ईश्वरत्व को सहन न करता हो)।

व्याख्या : इदम् - यह शास्त्र शिसका तुम्हें आदेश शदया गया है। शुशूरूषा-गुरु की।

यह शास्त्र प्रत्येक के शलए नहीं ंहै। इसका उपदेश केवल उसी को शदया िाना चाशहए ि ईश्वर में दोष दृशष्ट नहीं ंरखखता, ि तपस्वी है, भक् है, ि श्रवण की शपपासा (शिज्ञासा) से युक् है और ि गुरु शनष्ठ है अर्ाथत् गुरु सेवा में तत्पर रहता है।

मां यः अभ्यसूयशत–ि मुझे साधारण मानव समझ कर मेरा अनादर करता है और मेरे ईश्वरत्व में शंका करता है अर्ाथत् कोई मुझे ईश्वर कहे उसे अच्छा नहीं ंलगता।

य इमं परमं गुह्यं मिक्तेष्वडभधास्यडत ।
भन्द्रक्तं मडय परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंयिः ।।६८ ।।

बि्ार्थम : यः–ि, इमम्-यह, परमम् -परम, गुह्यम् गोपनीय, मद्भक्तेषु मेरे भक्तों ंमें, अशभधास्यशत-कहेगा (सुनायेगा), भम्भक्म् - भम्भक्, मशय- मुझ में, पराम् -परम, कृत्वा कर के, माम् -मुझ को, एव-ही, एष्यशत-प्राप्त होगा, असंशयः - शनस्सन्देह ।

अनुवाद : मेरे प्रशत परम भम्भक् भाव रख के ि मनुष्य मेरे भक्तों ंको यह परम गोपनीय ज्ञान सुनायेगा वह मुझे ही प्राप्त होगा इसमें संशय नहीं ंहै।

व्याख्या : इमं परमं गुह्यम् -कृष्णिाुथन संवाद रूप में उपयुथक् गीता ज्ञान का गोपनीय उपदेश। इसे परम गुह्य क्यों ं कहते हैं? क्यों ंशक यह ज्ञान अमृतत्व प्राम्भप्त में और संसार चक्र से मुक् होने में सहायक है।

भम्भक्भाव से पूणथ मनुष्य ही गीता का उपदेश श्रवण करने के शलए योग्य है। अशभधास्यशत-कहेगा । भगवान् में परम गुरु का भाव रख कर और गुरु सेवा समझ कर ि इस ग्रन्थ को सुनायेगा (वह मुझे प्राप्त होगा) ।

असंशयः - इसका अर्थ यह भी हो सकता है-"संशयों ंसे मुम्भक्।"

न च तस्मान्मनुष्येयेषु कडश्चन्मे डप्रयकृत्तमः ।
भडवता न च मे तस्मादन्यः डप्रयतरो भुडव ।।६९ ।।

बि्ार्थम : न-नहीं,ं च-और, तस्मात्-उससे, मनुष्येयेषु-मनुष्यों ंमें, कशश्चत्-कोई, मे मेरा, शप्रयकृत्तमः- मेरा अशतशय शप्रय करने वाला, भशवता-होगा, न नहीं,ं च-और, मे-मेरा, तस्मात्-उससे, अन्यः- अन्य, शप्रयतरः- अशधक शप्रय, भुशव- भूलोक में।

अनुवाद : मनुष्यों ंमें उससे अशधक शप्रयतर मेरी सेवा करने वाला कोई नहीं ंऔर इस धरा पर उससे अशधक शप्रय भी मुझे और कोई नहीं ंहोगा।

व्याख्या : यह गीता ग्रन्थ का ज्ञान मेरे भक्ों ंमें शवतररत करने वाला मेरी अत्यशधक सेवा करता है। वह मुझे अत्यन्त शप्रय है। वतथमान पीढ़ी में मेरी इससे बढ़कर शप्रयतर सेवा करने वाला न कोई है और न ही भशवष्य में, इस शवश्व में होगा।

भुशव-धरा पर, शवश्व में।

अधेयेष्यते च य इमं धमं्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयजे्ञेन तेनिाडमष्टः स्याडमडत मे मडतः ।।७० ।।

बि्ार्थम: अधेयेष्यते-अध्ययन करेगा, च-और, यः िो, इमम् -इस, धम्यथम् -पावन, संवादम् -संवाद को, आवयोः- हम दोनों ंके, ज्ञानयजे्ञेन-ज्ञान यज्ञ के िारा, तेन-उसके िारा, अहम् -मैं, इष्टः- पूशित, स्याम् - होऊँगा, इशत-इस प्रकार, मे-मेरी, मशतः- मशत (हैं)।

अनुवाद : और िो मनुष्य हम दोनों ंके इस पावन संवाद का अध्ययन करेगा, वह मानो ज्ञान यज्ञ के िारा मेरी पूिा करेगा, ऐसा मेरा दृढ़ शनश्चय है।

व्याख्या : यज्ञ चार प्रकार के हैं-शवशध यज्ञ, िप यज्ञ, उपांशु यज्ञ और मानस यज्ञ । शवशध यज्ञ-अनुष्ठान शक्रया आशद है। मन्त्रोिारण िप यज्ञ है। शनम्न स्वर से मन्त्रोिारण उपांशु यज्ञ है। चतुर्थ है मानस यज्ञ िो शबना ओष्ठ शहलाये मन से शकया िाता है। यह सवथश्ेष्ठ यज्ञ है। गीता की सुतुशत ज्ञान यज्ञ है।

श्रद्धा और भम्भक् से इस ग्रन्थ का अध्ययन करने वाला ज्ञान यज्ञ करने का अर्वा देवताशद का ध्यान करने का फल प्राप्त करेगा।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादडप यो नरः ।
सोऽडप मुक्तः िुभाँल्लोकान्प्रापुनुयातुपुर्ण्कममणाम् ।।७१ ।।

बि्ार्थम : श्रद्धावान् श्रद्धा युक्, अनसूयः - ईष्याथ रशहत, च - और , शृणुयात् सुनेगा, अशप-भी, यः- िो, नरः- मनुष्य, सः वह, अशप-भी, मुक्ः मुक्, शुभान् शुभ, लोकान् लोकों ंको, प्रापुनुयात् प्राप्त करेगा, पुण्यकमथणाम् - पुण्यात्माओं ं के ।

अनुवाद : ईष्याथ रशहत और श्रद्धायुक् हो कर िो भी मनुष्य इस ग्रन्थ का (गीता-ज्ञान का) श्रवण करेगा, वह भी मुक् हो कर पुण्यात्माओं ंके लोक को प्राप्त करेगा।

व्याख्या : मुक्ः- पाप मुक् ।

पुण्यकमथणाम् - अशग्नहोत्र आशद शुभ कमथ करने वालों ंके।

सोऽशप वह भी। अशधक तो क्या, िो गीता के उपदेश का अवगाहन करता है, उसे समझता है, इसके भाव में रहता है और इसमें शनशहत अमूल्य उपदेशों ंका पालन करता है वह पुण्यकमी है।

कन्द्रिदेतचुछुतं पार्थम त्वयैकागे्रेण चेतसा ।
कन्द्रिदज्ञानसंमोिः प्रनष्टस्ेते धनञ्जय ।।७२ ।।

बि्र्थम : कम्भित् -क्या, एतत्-इस, शु्रुतम् -सुना गया, पार्थ-हे पार्थ, त्वया-तुम्हारे िारा, एकागे्रेण - एकाग्रशचत्त हो कर, चेतसा-शचत्त से, कम्भित् -क्या, अज्ञानसंमोहः-अज्ञान रूपी मोह, प्रनष्टः- नष्ट हुआ, ते तुम्हारा, धनञ्जय-हे धनञ्जय ।

अनुवाद : हे पार्थ, क्या तुमने इस ज्ञान को एकाग्रशचत्त होकर सुना? हे धनञ्जय, क्या तुम्हारा अशवद्या िशनत मोह नष्ट हुआ?

व्याख्या : गुरु का यह कतथव्य है शक वह शशष्य को इस प्रकार से पाठन कराये शक शशष्य ग्रन्थ के शनशहतार्थ को भली प्रकार ग्रहण कर सके और िीवन के लक्ष्य (मोक्ष) को भी प्राप्त करने में सफल हो सके। यशद शशष्य समझ नहीं ंरहा तो गुरु अर्वा आचायथ को उपमा, अनुरूप दृष्टान्त अर्वा अन्य शनदेशों ंसे उसका स्पष्टीकरण करना होगा। इसीशलए तो भगवान् कृष्ण अिुथन से पूछ रहे हैं- "क्या तुम्हारा अशवद्या रूपी मोह नष्ट हो गया है?"

एतत् - यह अर्ाथत् िो मैंने तुम्हें बताया है।

हे अिुथन, क्या तुमने एकाग्रशचत्त हो कर श्रवण शकया है? क्या तुमने मेरे उपदेशों ंको ग्रहण कर शलया है?

अज्ञान संमोहः अशवद्याशनत शववेकशून्यता िो स्वाभाशवक है। क्या तुम्हारा मूढ़ भाव शवनष्ट हो गया शिसके कारण तुमने शास्त्र श्रवण का पररश्रम शकया और मेरा गुरु के सम्बन्ध से शास्त्रोपदेश शवषयक पररश्रम हुआ है?

अजुमन उवाच

नष्टो मोिः स्मृडतलमब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
न्द्रथर्थतोऽन्द्रस्म गतसने्दिः कररष्ये वचनं तव ।। ७३ ।।

बि्र्थम : नष्टः नष्ट हो गया, मोहः- मोह, स्मृशतः स्मृशत (ज्ञान), लब्धा-प्राप्त कर के, त्वत्प्रसादात्-आपकी कृपा से, मया-मेरे िारा, अच्युत-हे कृष्ण, म्भस्र्तःअम्भस्म-म्भस्र्त हाँ, गतसने्देहः- शंका रशहत हो कर, कररष्ये-पालन करूँगा, वचनम् वचन, तव-आपके ।

अजुमन ने किा

अनुवाद : हे कृष्ण, आपकी कृपा से ज्ञान प्राप्त कर के मेरा मोह नष्ट हो गया है और इस स्मृशतलाभ से मेरे समस्त संशय शवम्भच्छन्न हो गये हैं। अब मैं आपके वचन (आज्ञा) का पालन करूँगा।

व्याख्या : मोहः- िीवों ंको वशीभूत करने के शलए माया का यह सवाथशधक प्रभावशाली शस्त्र है। इसकी उत्पशत्त का मूल यही मोह है। मोहातीत होना सागर को पार करने के समान दुष्कर है।

स्मृशतः- मैंने आत्मा की यर्ार्थ प्रकृशत का ज्ञान प्राप्त कर शलया है। आध्याम्भत्मक साधना और शास्त्राध्ययन का पूणथ उद्देश्य मोह का शवनाश और आत्म-ज्ञान की प्राम्भप्त है। ऐसी उपलम्भब्ध होने पर अशवद्या की तीन ग्रम्भन्थयाँ- अज्ञान, मोह और कमथ, नष्ट होती हैं। समस्त संशय शमट िाते हैं। सारे कमथ अवसान को प्राप्त होते हैं, शेष कुछ करने को नहीं ंरह िाता।

ईशावास्योपशनषद् में इस शवषय में कहा है-

"तन्त्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः" ई.उ.७.

"एकत्व की अनुभूशत करने वाले को मोह कैसा और शोक कैसा?"

कररषे्ये वचनं तव-अुिथन कहना चाहता है- "मैं आपकी आज्ञा पालन के शलए कृत संकल्प हाँ। आपकी कृपा से मैंने िीवन का लक्ष्य प्राप्त कर शलया है। अब और कुछ करने को शेष नहीं ंरहा।"

सञ्जय उवाच
इत्यिं वासुदेवस्य पार्थमस्य च िमिानः ।
संवादडमममश्रौषमद्भुतं रोमिषमणम् ।।७४ ।।

बिार्थम : इशत-इस प्रकार, अहम् -मैंने, वासुदेवस्य-कृष्ण का, पार्थस्य -पार्थ का (अुिथन का), च-और, महात्मनः- महान् आत्मा का, संवादम् - संवाद, इमम् यह, अश्रौषम् -सुना, अद्भुतम्-अद्भुत, रोमहषथणम् -रोमांचकारी ।

सञ्जय ने किा

अनुवाद : इस प्रकार मैंने भगवान् कृष्ण और महात्मा अुिथन का अद्भुत, अलौशकक, रोमांचकारी संवाद सुना ।

व्याख्या : अद्भुत योग और भावातीत आध्याम्भत्मक शवषयों ंसे सम्बद्ध गोपनीय शाश्वत ज्ञान होने के कारण यह अद्भुत है, शवस्मयकारी है।

बि कभी उितर कल्याणकारी शुभ भाव अन्तःकरण में अशभव्यक् होते हैं, साधक पुलशकत हो उठता है। भक् प्रायः इस रोमहषथण की अनुभूशत करते हैं।

व्यासप्रसादाचुछुतवानेतद्गुह्यमिं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कर्थयतः स्वयम् ।।७५ ।।

बिार्थम : व्यासप्रसादात् - भगवान् व्यास के अनुग्रह से, शुरुतवान् - (मैंने) सुना, एतत् यह, गुह्यम् -रहस्यपूणथ, अहम् - मैंने, परम् -परम, योगम्योग, योगेश्वरात् योगेश्वर से, कृष्णात् -कृष्ण से, साक्षात् साक्षात्, कर्यतः-कहते हुए, स्वयम् स्वयम् ।

अनुवाद : भगवान् व्यास की कृपा से मैंने यह परम गोपनीय योग योगेश्वर कृष्ण से साक्षात् स्वयं कहते हुए सुना है।

व्याख्या : व्यास प्रसादात्-व्यास िी की कृपा से शदव्यचकुषु प्राप्त करके ।

योग-कृष्ण और अुिथन के संवाद रूपी योग को मैंने साक्षात् भगवान् कृष्ण से सुना है (परंपरा से नहीं)ं । योग शवषयक होने के कारण यह संवाद ही योग है और यह भगवान् से एकत्व की प्राम्भप्त कराने वाला है।

राजनंसंसृमृत्य संसृमृत्य संवादडमममद्भुतम् ।
किवाजुमनयोः पुरंणं हृष्याडम च मुहमुमहः ।।७६ ।।

बि्ार्थम : रिान् -हे रिान्, संसूमृत्य-स्मरण कर के, संसूमृत्य-स्मरण कर के, संवादम् -संवाद को, इमम्-इस, अद्‌भुतम् - शवस्मयकारी, केशवािुथनयोः- केशव और िुथन का, पुण्यम् -पावन, हृष्याशम - हशषथत हो रहा हाँ, च-और, मुहुः पुनः, मुहुः पुनः ।

अनुवाद : हे रिान्, केशव और िुथन के इस अद्‌भुत, पावन संवाद को पुनः पुनः स्मरण कर के मैं पुलशकत हो रहा हाँ।

व्याख्या : रिान् रिा धृतराष्टर शिनको संयि ने गीता सुनाई।

पुण्यम् - श्रवण मात्र से साधक के पाप पुंिको नष्ट करने वाला, श्रोता को पशवत्र और ईश्वरोनुमुख करने वाला होने के कारण यह पावन है।

ति संसूमृत्य संसूमृत्य रूपमत्यद्‌भुतं िरेः ।
डवस्मयो मे मिान् राजन् हृष्याडम च पुनः पुनः ।।७७ ।।

बि्ार्थम : तत्वह, चऔर, संसूमृत्य-स्मरण कर के, संसूमृत्य-स्मरण कर के, रूपम् -रूप, अत्यद्‌भुतम् - अशत अद्‌भुत, हरेः- हरर का, शवस्मयः- आश्चयथ, मे—मेरा, महान् -महान्, रिान्- हे रिान्, हृष्याशम - हशषथत हो रहा हाँ, च-और, पुनः पुनः पुनः पुनः ।

अनुवाद : और हे रिान्, हरर के उस अत्यन्त अद्‌भुत स्वरूप को भी बारम्बार स्मरण कर के मैं पुनः पुनः हशषथत हो रहा हाँ।

रूपम् - शवश्वरूप (अध्याय XI)

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुधमरः ।
तत्र श्रीडवमजयो भूडतधुरुवा नीडतममडतमम ।।७८ ।।

बि्ार्थम : यत्र–िहााँ, योगेश्वरः- योगेश्वर, कृष्णः-कृष्ण, यत्र–िहााँ, पार्थः िुथन, धनुधथरः- धनुधाथरी, तत्र वहााँ, श्रीः समृम्भद्ध, शवियः-शविय, भूशतः - शवभूशत, प्रसन्नता, धुरुवा-अचल, नीशतः-नीशत, मशतः-मशत, मम-मेरी।

अनुवाद : िहााँ योगेश्वर कृष्ण हैं, िहााँ धनुधाथरी िुथन है वहीं ंश्री, शविय, शवभूशत और दृढ़ नीशत का साम्राज्य है, यह मेरा मत है।

व्याख्या : यह श्लोक 'एकश्लोकी गीता' नाम से अशभशहत है अर्ाथत् समूपूणथ भगवद्गीता एक श्लोक में। केवल इसी श्लोक की पुनरावृशत्त समूपूणथ शास्त्र के पढ़ने का लाभ प्रदान करती है।

यत्र-शिस पक्ष में।

योगेश्वरः-योग के ईश्वर । भगवान् कृष्ण को योगेश्वर कहा गया है क्योंशंक सब प्रकार के योग के बीिों ंका उद्भव उन्हीं ंसे है।

धनुधथरः गाण्डीव धारण करने वाले (िुथन) । तत्र-पाण्डवों ंके पक्ष में।

ॐ तत्सत् इडत श्रीमिगवद्गीतासूपडनषत्सु
ब्रह्मडवद्यायां योगिासे्त्रे श्रीकृष्णाजुमनसंवादे
मोक्षसंन्यासयोगो नाम अष्टादिोऽध्यायः ।।
।। इडत मोक्षसंन्यासयोगः ।।

ॐ िान्द्रतः ! िान्द्रतः ! िान्द्रतः !

पररशष्ट

१.गीता में भगवान् के आदेश

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थम नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौबमल्यं त्यक्त्वोडत्ति परतप ।।२/३।।

१. (इस समय) हे पार्थ, नपुंसकता को प्राप्त होना तुम्हारे शलए शोभनीय नहीं ंहै। हे शत्रुुु को सन्तप्त करने वाले (अिुथन), हृदय की इस कु्षिु दुबथलता को त्याग कर ख़िे हो िाओ।

मात्रास्पिामस्तु कौतेय िीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापाडयनोऽडनत्यास्तांन्द्रस्तडतक्षस्व भारत ।।२/१४।।

२. हे कुन्तीपुत्र, इम्भिय-शवषयों ंके संयोग तो उत्पशत्त-शवनाशशील तर्ा अशनत्य हैं और सरदी-गरमी एवं सुख-दुःख के देने वाले हैं। इन्हें सहन करो।

अतवत इमे दिा डनत्यस्योक्ताः िरीररणः ।
अनाडिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।२/१८।।

३. शनत्य, अशवनाशी, अप्रमेय शरीरधारी िीवात्मा के ये शरीर नश्वर हैं, ऐसा कहा िाता है। इसशलए हे अिुथन, तुम युद्ध करो।

तिो वा प्राप्स्यडस स्वगं डजत्वा वा भोक्ष्यसे मीिम् ।
तस्मादुडत्ति कौतेय युद्धाय कृतडनश्चयः ।।२/३७ ।।

४. मारे िाने पर स्वगथलोक को प्राप्त करोगे और शविय प्राप्त करने पर धरती का राज्य भोगोगे । अतः हे कुन्तीपुत्र, उठो, युद्ध के शलए संकल्प करो।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यडस ।।२/३८ ।।

५. सुख-दुःख, लाभ-हाशन, िय-पराि‍य में समभाव रह कर अब तुम युद्ध के शलए तैयार हो िाओ, ऐसा करने से तुम्हें पाप नहीं ंलगेगा।

कममर्ेण्वाडधकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कममफलितुभूमाम ते सङ्गोऽस्त्वकममडण ।।२/४७।।

६. तुम्हारा अशधकार केवल कमथ करने का है, फल की इच्छा करने का कदाशप नहीं।ं तुम्हारा उदे्देश्य कमथ-फल की प्राम्भप्त न हो और न ही कमथ के त्याग (अकमथ) में तुम्हारा अनुराग हो ।

योगथर्थः कुरु कमामडण सङ्ंगं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
डसद्ध्यडसद्ध्योः समो भूत्वा समत्ंवं योग उच्यते ।।२/४८।।

७. हे अिुथन, िय-पराि‍य की आसम्भक् त्याग कर योग में म्भस्र्त हो कर कमथ करो। मन का समत्व ही योग कहलाता है।

बुन्द्रद्धयुक्तो जिाडति उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कममसु कौिलम् ।।२/५० ।।

८. बुम्भद्धमान् मनुष्य इसी िन्म में अचे्छे और बुरे कमों से मुम्भक् प्राप्त कर लेता है। इसशलए हे अिुथन, योग-मागथ का अनुसरण करो। योग में संलग्न हो िाओ। कमथ में कुशलता ही योग है।

तस्मादसक्तः सततं कायं कमम समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कमम परमाप्नोडत पूरुषः ।।३/१९ ।।

९. इसशलए आसम्भक् रशहत हो कर तुम कतथव्य कमथ को करो,योंशक आसम्भक् का त्याग कर के कमथ करने से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करता है।

मडय सवामडण कमामडण संन्यस्याध्यािचेतसा ।
डनरािीडनममो भूत्वा युध्यस्व डवगतज्वरः ।।३/३०।।

१०. समस्त कमथ मुझे समशपथत कर के, चेतना को आत्मा में म्भस्र्र कर के, आशा (इच्छा) और अहंकारशून्य हो कर, शनरोग हो कर तुम युद्ध करो।

तस्मात्त्वडमन्द्रियार्ण्यादौ डनयम्य भरतषमभ ।
पाप्मानं प्रजडि ह्येनं ज्ञानडवज्ञाननािनम् ।।३/४१ ।।

११. अतः, हे भरतवंशयों ंमें श्रेष्ठ (अिुथन), पहले इम्भियों ंको वश में करो। तत्पश्चात् ज्ञान और शवज्ञान को नष्ट करने वाले इस पापी काम को मार िालो।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यािानमािना ।
जडि ितुरु मिाबािो कामरूपं दुरासदम् ।।३/४३ ।।

१२. एवंशवध, हे अिुथन, उसे िान कर, िो बुम्भद्ध से भी श्रेष्ठ है और आत्मा से आत्मा को संयत कर के, हे महाबाहु, तुम दुिेय काम रूपी शत्रु को िीत लो।

तस्मादज्ञानसंभूतं हृथरं्थं ज्ञानाडसनाऽऽनिः ।
डित्त्वैनं संियं योगमाडतिोडत्ति भारत ।।४/४२ ।।

१३. इसशलए हे अिुथन, उठो, योग की शरण लो और अज्ञानवश हृदय में उत्पन्न सन्देह को आत्म-ज्ञान की तलवार से शछन्न-शभन्न कर दो।

यतो यतो डनश्चरडत मनश्चञ्चलमन्द्रथर्थरम् ।
ततस्ततो डनयम्यैतदािन्येव विं नयेत् ।।६/२६ ।।

१४. शिस-शिस शनशमत्त से यह चञ्चल और अम्भस्र मन इतस्ततः भटकता है, उसी से हटा कर, वश में कर के (साधक) आत्मा में म्भस्त करे ।

तपन्द्रस्वभ्योऽडधको योगी ज्ञाडनभ्योऽडप मतोऽडधकः ।
कडममभ्यश्चाडधको योगीस्माद्योगी भवाजुमन ।।६/४६ ।।

१५. योगी तपम्भस्वयों ंसे श्रेष्ठ और शास्त्र ज्ञाशनयों ंसे भी श्रेष्ठ है। सकाम कमथ करने वालों ंसे भी योगी ही श्रेष्ठ है; अतः हे अिुथन, योगी बनो।

तस्मात्सवेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यडपमतमनोबुन्द्रद्धमामेवैष्यस्यसंियम् ।।८/७ ।।

१६. इसशलए समस्त कालों ंमें मेरा ही स्मरण करो और युद्ध करो। मन और बुम्भद्ध मुझे समशपथत कर के तुम शनस्सन्देह मुझे ही प्राप्त करोगे ।

नैते सृती पार्थम जानन्योगी मुह्यडत कश्चन ।
तस्मात्सवेषु कालेषु योगयुक्तो भवाजुमन ।।८/२७ ।।

१७. हे अिुथन, इन दोनों ंमागों का ज्ञान होने पर योगी मोशहत नहीं ंहोता, इसशलए, हे पार्थ, तुम सब कालों ं में योग युक् रहो अर्ाथत् योगी बनो ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छशत ।
तदहं भकुत्युपहृतमश्नाशम प्रयतात्मनः ।।८/(२७) ।।

१८. िो भी भक् भम्भक् भाव से मुझे पत्र, पुष्प, फल अर्वा िल अशपथत करता है, पशवत्र मन से और भम्भक् भाव से अपथण की उस भेंट को मैं स्वीकार करता हाँ।

डकं पुनबामह्मणाः पुर्ण्ा भक्ता राजषमयस्तर्था ।
अडनत्यमसुखं लोकडममं प्राप्य भजस्व माम् ।।९/३३।।

१९. और शकतना (सहि रूप से) ब्राह्मण और रािशषथ भक् लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। इस दुःखद क्षणभङ्गुर लोक को प्राप्त कर के अब तुम मेरी आराधना करो।

मन्मना भव मिक्तो मद्याजी मां नमसुकुरु ।
मामेवैष्यडस युकै्त्वैवमािानं मत्परायणः ।।९/३४।।

२०. अपना मन मुझ में एकाग्र करो, मेरे भक् बनो, मेरे शलए यिन करो, मुझे प्रणाम करो । इस प्रकार पूणथ मन से मेरे परायण हो कर मुझे ही अपना लक्ष्य मान कर तुम मुझे प्राप्त करोगे।

न तु मां िक्यसे द्रष्ट्टुमनेनैव स्वचकुषुषा ।
डदव्यं ददाडम ते चकुषुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।। ११/८।।

२१. शकनुतु अपने इन नेत्रों ंसे तुम मुझे नहीं ंदेख सकते। मैं तुम्हें शदव्य चकुषु प्रदान करता हाँ। मेरी ईश्वरीय योग-शम्भक् के दशथन करो।

तस्मात्त्वमुडत्ति यिो लभस्व
डजत्वा ितूरून् भुङ्क्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते डनिताः पूवमेव
डनडमत्तमात्रं भव सव्यसाडचन् ।।११/३३ ।।

२२. इसशलए, उठो और यश प्राप्त करो। शतुरु को िीत कर अप्रशतम राज्य का उपभोग करो। हे अिुथन, शनशश्चत रूप से वे पहले ही मेरे िारा मारे िा चुके हैं, तुम केवल शनशमत्त बनो।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कणं तर्थाऽन्यानडप योधवीरान् ।
मया ितांस्त्वं जडि मा व्यडर्थिा
युध्यस्व जेताडस रणे सपत्नान् ।।११/३४ ।।

२३. ोण, भीष्म, ियिर् और अन्य शूरवीर मेरे ारा पहले ही मारे ा चुके हैं। अब तुम भय से शवचशलत न हो कर इन्हें मारो। युद्ध करो, तुम शत्रुओं ंपर शविय प्राप्त करोगे।

मय्येव मन आधत्स्व मडय बुन्द्रंद्ंध डनवेिय ।
डनवडसष्यडस मय्येव अत ऊर्ध्वं न संियः ।। १२/८।।

२४. अपना मन मुझ में ही एकाग्र करो, अपनी बुम्भद्ध भी मुझ में ही म्भस्र्र करो। इसके पश्चात् तुम मुझ में ही वास करोगे, इसमें कोई संशय नहीं।ं

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कायामकायमव्यवन्द्रथर्थतौ ।
ज्ञात्वा ास्त्रडवधानोक्तं कमम कतुमडमिहाहमडस ।।१६/२४।।

२५. अतः कतथव्य और अकतथव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही तेरे शलए प्रमाण हैं। वेद-शास्त्रों ंमें शवशहत अध्यादेश का ज्ञान कर के तुम्हें इस संसार में कमथ करना चाशहए।

चेतसा सवमकमामडण मडय संन्यस्य मत्परः ।
बुन्द्रद्धयोगमुपाडश्रत्य मन्द्रित्तः सततं भव ।।१८/५७ ।।

२६. शववेक-बुम्भद्ध से सब कमथ मुझे समशपथत कर के, मुझे ही सविो लक्ष्य मान कर, बुम्भद्धयोग का आश्रय ले कर तुम अपना मन सदा मुझ में म्भस्र्र करो।

तमेव िरणं गच्छ सवमभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां ान्द्रतं थर्थानं प्राप्स्यडस ाश्वतम् ।।१८/६२ ।।

२७. हे अिुथन, तुम पूणथ भाव से (अपने समूपूणथ अम्भस्तत्व से) उसी की शरण में ाओ। उस प्रभु की अहेतुकी कृपा से तुम परम शाम्भन्त और शाश्वत धाम को प्राप्त करोगे।

मन्मना भव मिक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यडस सत्यं ते प्रडतजाने डप्रयोऽडस मे ।।१८/६५।।

२८. अपना मन मुझ में म्भस्र्र करो, मेरे भक् बन ाओ, मेरे शलए यज्ञ करो, मुझे प्रणाम करो, इस प्रकार तुम मेरे ही शनकट आओगे (मेरा साशन्नध्य प्राप्त करोगे), मैं तुम्हें इस बात का सत्य वचन देता हाँ; क्योंशंक तुम मुझे शप्रय हो।

सवमधमामन्पररत्यज्य मामेकं िरणं व्रज ।
अिं त्वा सवमपापेभ्यो मोक्षडयष्याडम मा ुिचः ।।१८/६६ ।।

२९. सब धमों को त्याग कर एक मेरी शरण में आ ाओ। मैं तुम्हें सब पापों ंसे मुक् कर दूँगा। शचन्ता मत करो।

२.उद्बोधक उपदेश

भगवान् कृष्ण ने शनम्नांशकत श्लोकों ंमें इन उपमा अलंकारों ंका प्रयोग शकया है :

१. शिस प्रकार से कोई व्यम्भक् िीणथ-शीणथ वस्त्रों ंको उतार कर नवीन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार यह देहधारी आत्मा पुराना शरीर त्याग कर नया शरीर धारण करता है। (२/२२)

२. सब ओर िल ही िल होने पर एक िलाशय का शितना महत्त्व रह िाता है, उतना ही महत्त्व अर्वा प्रयोिन एक ज्ञानी ब्राह्मण का वेदों ंसे होता है। (२/४६)

३. चारों ंओर से अपने अङ्गों ंका संहरण कर लेने वाले कछुए की भााँशत िब कोई पुरुष इम्भियों ंके शवषयों ं से अपनी इम्भियों ंको शवमुख कर लेता है, तब वह म्भस्र्र बुम्भद्ध वाला, प्रशतशष्ठत प्रज्ञा वाला कहलाता है। (२/५८)

४. शिस प्रकार सब ओर से पररपूणथ अचल, म्भस्र्र सागर में िल (उसे क्षुब्ध शकये शबना) प्रवेश कर िाते हैं, उसी प्रकार शिस मनुष्य में सब कामनाएँ उसे शवचशलत शकये शबना प्रवेश कर िाती हैं, वह शाम्भन्त को प्राप्त करता है, कामनाओं ंका इच्छुक नहीं।ं (२/७०)

५. हे भारत (अिुथन), शिस प्रकार से एक अज्ञानी पुरुष कमथ में आसक् हो कर कमथ करता है, उसी प्रकार से एक शविान् पुरुष लोक-कल्याणार्थ आसम्भक् रशहत हो कर कमथ करे। (३/२५)

६. शिस प्रकार अशग्न धुएँ से, दपथण धूल से और गभथ ज़ेर से ढके रहते हैं, उसी प्रकार यह (ज्ञान) उससे (रिोगुण से) ढका रहता है ।(३/३८)

७. इस शदव्य ज्ञान को पा कर ही पुरातन काल में मुमुक्षु िनों ंने कमथ शकये; इसशलए तुम भी अपने पूवथकाल के पूवथिों ंकी भााँशत अनासक् भाव से कमथ करो और अपने कतथव्य का पालन करो। (४/१५)

८. हे अिुथन, शिस प्रकार से प्रज्वशलत अशग्न ईंधन को भस्म कर देती है, उसी प्रकार ज्ञानाशग्न समस्त कमों को भस्म कर देती है। (४/३७)

९. अनासक् हो कर परमात्मा को समशपथत करके कमथ करने वाला मनुष्य िल में कमल-पत्र की भााँशत पाप से शलप्त नहीं ंहोता। (५/१०)

१०. आत्मा के सार् संयोग करने का अभ्यास करने वाले शितेम्भिय योगी की उपमा उस दीपक से की िाती है िो वायु रशहत स्र्ान में म्भस्र्त होने के कारण लोशलत (चलायमान) नहीं ंहोता। (६/१९)

११. शनशश्चत रूप से मन चञ्चल, उच्छृंखल, बलवान् और हठीला है। हे कृष्ण, इसको वश में करना वायु को वश में करने के समान कशठन है। (६/३४)

१२. हे महाबाहो (कृष्ण), दोनों ंओर से पशतत, आश्रय रशहत हो कर ब्रह्म के मागथ में भ्रशमत (शंकंकतथव्यशवमूढ़) हो कर शछन्न-शभन्न बादल की भााँशत नष्ट तो नहीं ंहो िाता? (६ /३८)

१३. इन दोनों ंप्रकृशतयों ंको समस्त प्राशणयों ंकी योशनयााँ ही समझो। अतः मैं ही इस िगत् का उद्भव और प्रलय हूाँ। (७/७)

१४. शिस प्रकार सवथत्र शवचरण करने वाला वायु सदा आकाश में ही म्भस्त रहता है, उसी प्रकार सारे प्राणी मुझमें म्भस्त हैं, ऐसा िानो। (९/६)

१५. आकाश में यशद एक सहस्र सूयों का ति एक सार् प्रकाशत तो वह ति भी कदाशचत् ही उस महान् शवश्वरूप पुरुष का हो। (११/१२)

१६. शिस प्रकार नशदयों ंकी वेगपूणथ धारायें समिु की ओर प्रवाशहत होती हैं, उसी प्रकार नरलोक के ये वीर प्रज्वशलत मुखों ंमें प्रवेश कर रहे हैं। (११/२८)

१७. शिस प्रकार (मोहवश) पतने अपने ही शवनाश के शलए प्रज्वशलत अशग्न में अत्यन्त वेग से प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार ये प्राणी अपने शवनाश हेतु अत्यन्त वेग से आपके मुखों ंमें प्रवेश कर रहे हैं। (११/२९)

१८. हे कुन्तीपुत्र (अिुथन), यह शरीर क्षेत्र कहलाता है और िो इसे िानता है उसे तत्त्वज्ञानी लोग क्षेत्रज्ञ कहते हैं। (१३/१)

१९. सवथव्यापक आकाश शिस प्रकार से सूक्ष्मता के गुण के कारण शलप्त नहीं ंहोता, उसी प्रकार आत्मा शरीर में सवथत्र होते हुए भी उसके गुणों ंसे शलप्त नहीं ंहोता। (१३/३२)

२०. हे अिुथन, शिस प्रकार एक सूयथ समस्त ब्ह्माण्ड को प्रकाशत करता है, उसी प्रकार परमात्मा, क्षेत्र का स्वामी, समूपूणथ क्षेत्र (शरीर) को प्रकाशत करता है। (१३/३३)

२१. वे (शर्विन) अशवनाशी अश्वत्थ वृक्ष को ऊपर मूल और नीचे शाखा वाला कहते हैं, शिसके पत्ते छन्द अर्ाथत् ऋचायें हैं। िो इसे िानता है, वह वेदों ंको िानने वाला है (वेदज्ञ है)। (१५/१)

२२. गुणों ंिारा पोशषत इसकी शाखायें नीचे और ऊपर फैली हुई हैं। इम्भियों ंके शवषय कशलका (कशलयााँ) हैं। नीचे मनुष्य-लोक पयथन्त इसकी िड़ें (मूल) शवसूतृत हैं िो कमथ-बन्धन में िालने वाली हैं। (१५/२)

२३. िीवात्मा िो शरीर धारण करता है, उसका उत्क्रमण करते समय वह इन (इम्भियों ंऔर मन) को उसी प्रकार अपने सार् ले िाता है, शिस प्रकार वायु अपने आश्रय-स्र्ल (फूलों ंआशद) से गन्ध को सार् ले िाता है। (१५ / ८)

२४. मुझमें अपना शचत्त म्भस्र्र करके, मेरी कृपा से तुम सब बाधाओं ंको पार कर िाओगे और यशद अहंकार के कारण मेरी बात नहीं ंसुनोगे, तो नष्ट हो िाओगे । (१८ / ५८)
पररशष्ट

२५. हे अिुथन, ईश्वर सब प्राशणयों ंके हृदय में शनवास करता है और शरीर रूपी यन्त्र पर आरूढ़ इन प्राशणयों ंको अपनी माया की शम्भक् से उनके कमाथनुसार भ्रमाता है। (१८/६१)

डविेष : ११, १२, १६ और १७ भगवान् कृष्ण को कहे गये अिुथन के वचन हैं।

३.सप्तश्लोकी गीता

१. ओडमत्येकाक्षरं ब्रह्म व्यिारन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाडत त्यजन्देिं स याडत परमां गडतम् ।।८/१३।।

२. थर्थाने हृषीकेि तव प्रकीत्याम जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांडस भीताडन डदिो द्रवन्द्रत सवे नमस्यन्द्रत च डसद्धसङ्घाः ।।११/३६ ।।

३. सवमतः पाडणपादं तत्सवमतोऽडक्षडिरोमुखम् ।
सवमतः शुरुडतमल्लोके सवमावृत्य डतिडत ।।१३/१३ ।।

४. कडवं पुराणमनुिाडसतार- मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सवमस्य धातारमडचन्त्यरूप- माडदत्यवणं तमसः परस्तात् ।।८/९ ।।

५. ऊध्वमूलमधः िाखमश्वत्थं प्राहरव्ययम् ।
न्दिांडस यस्य पणामडन यस्तं वेद स वेदडवत् ।।१५/१।।

६. सवमस्य चिां हृडद सडिडवष्टो मत्तः स्मृडतज्ञामनमपोिनं च ।
वेदैश्च सवैरिमेव वेद्यो वेदान्तकृिदडवदेव चािम् ।।१५/१५ ।।

७. मन्मना भव मिक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यडस युक्त्वैवमािानं मत्परायणः ।।९/३४ ।।

४. एकश्लोकी गीता

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुधमरः ।
तत्र श्रीडवमजयो भूडतधुरुवा नीडतममडतमम ।।

५. प्रशतज्ञा गीता

(भगवान् का आश्वासन)

भगवद्गीता मानवता के शलए सुख, शाम्भन्त, मोक्ष, पूणथत्व और ऐश्वयथ का सन्देश देती है। केवल गीता ही ऐसा ग्रन्थ है िि साधक को प्रत्येक अवस्था में सहायता और हर प्रकार के भय से रक्षा प्रदान करने वाला है। गीता में भगवान् शनम्नांशकत आश्वासन देते हैं :

नेिाडभक्रमनािोऽन्द्रस्त प्रत्यवायो न डवद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धममस्य त्रायते मितो भयात् ।।

इस योग में कोई भी प्रयास शवफल नहीं ंहोता और न ही कोई बाधा आती है (अरा्थत् शवपरीत पररणामों ंकी उत्पशत्त अर्वा उल्लंघन नहीं ंहोते)। इस ज्ञान का र्िोा-सा पालन भी महान् भय से रक्षा करता है। (२/४०)

पार्थम नैवेि नामुत्र डवनािस्तस्य डवद्यते ।
न डि कल्याणकृत्कडश्चदुगमडतं तात गच्छडत ।।

हे अिुथन, न तो इस लोक में न ही परलोक में उसका शवनाश सम्भव है। शप्रय पुत्र, अच्छे कमथ करने वाला कोई भी व्यम्भक् दुदथशा को प्राप्त नहीं ंहोता । (६/४०)

डक्षप्रं भवडत धमामिा ि श्वच्छान्द्रतं डनगच्छडत । कौतेय प्रडतजानीडि न मे भक्तः प्रणश्यडत ।।

वह शीघ्र ही धमाथत्मा हो कर शाश्वत शाम्भन्त को प्राप्त करता है। हे अिुथन, यह शनश्चय िानो शक मेरा भक् कभी नष्ट नहीं ंहोता। (९/३१)

अनन्याडश्चतयतो मां ये जनाः पयुमपासते ।
तेषां डनत्याडभयुक्तानां योगक्षेमं विाम्यिम् ।।

अनन्य भाव से मेरा शचन्तन करने वाले और मेरी ही आराधना करने बाले शनत्ययुक् साधकों ंका योग-क्षेम मैं स्वयं वहन करता हाँ। (९/२२)

अडप चेदडस पापेभ्यः सवेभ्यः पापकृत्तमः ।
सवं ज्ञानप्लवेनैव वृडजनं संतररष्यडस ।।

यशद तुम अन्य पाशपयों ंसे भी अपेक्षाकृत अशधक पापी हो, तो भी शनशश्चत रूप से ज्ञान रूपी नौका िारा पाप के सागर से तर िाओगे। (४/ ३६)

मन्मना भव मिक्तो मद्याजी मां नमसुकुरु ।
मामेवैष्यडस सत्यं ते प्रडतजाने डप्रयोऽडस मे ।।

अपना मन मुझमें म्भस्र करो, मेरे भक् बन िाओ, मेरे शलए यज्ञ करो, मुझे प्रणाम करो, इस प्रकार तुम मेरे ही शनकट आओगे (मेरा साशन्नध्य प्राप्त करोगे), मैं तुम्हें इस बात का सत्य वचन देता हाँ ; क्योंशंक तुम . मुझे शप्रय हो । (१८/६५)

तेषामिं समुद्धताम मृत्युसंसारसागरात् ।
भवाडम नडचरात्पार्थम मय्यावेडितचेतसाम् ।।

हे अिुथन, उन मुझमें शचत्त लगाने वाले भक्ों ंके शलए मैं अशचरेण ही इस मत्यथलोक रूप सागर से समुद्धार करने वाला होता हाँ। (१२/७)

सवमधमामन्पररत्यज्य मामेकं िरणं व्रज ।
अिं त्वा सवमपापेभ्यो मोक्षडयष्याडम मा िुचः ।।

सब धमों को त्याग कर एक मेरी शरण में आ िाओ। मैं तुम्हें सब पापों ंसे मुक् कर दूँगा। शचन्ता मत करो। (१८/६६)

६. गीता-अनुष्ठान

गीतानुष्ठान करने वाले साधकों ंको अनुष्ठान की अवशध में इन शनयमों ंका पालन करना चाशहए-

१. प्रातःकाल ब्राह्ममुहतथ में चार बिे उठना ।

२. हल्का साम्भत्त्वक आहार शदन में केवल एक बार मध्याि में।

३. ब्रह्मचयथ का पालन ।

४. मौन अर्वा शमतभाषण का ित और सत्यभाषण ।

५. 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का अनवरत मानशसक िप ।

दैशनक शौच के उपरान्त स्नान करो। शुद्ध वस्त्र धारण करो। स्वच्छ, पशवत्र स्ान पर कुशासन शबछाओ। पूवथ अर्वा उत्तर की ओर मुख करके बैठो। शनत्य कमथ-सन्ध्या-वन्दन, िप, ध्यान आशद पहले पूणथ करो। भगवान् कृष्ण के १०८ अर्वा १२ नामों ंकी पुनरावृशत्त करो अर्ाथत् १०८ बार अर्वा १२ बार भगवान् कृष्ण के नाम का िप करो। तत्पश्चात् श्री कृष्ण का ध्यान करो । अब संकल्प करो (शिस प्रयोिन से अनुष्ठान कर रहे हैं) । करन्यास और अङ्गन्यास करो (इनकी शवशध प्रारम्भिक पृष्ठों ंमें दी गयी है) । करन्यास और अङ्गन्यास उसी मन्त्र से करना है शिसका तुम िप करने लगे हो। **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** से भी न्यास हो सकते हैं।

इसके उपरान्त भगवान् श्री कृष्ण, व्यास और गीता की पूिा करो और षोिशोपचार करो। िप अशवचशलत, एकाग्र मन से पूणथ श्रद्धा-भम्भक् के सार् करना चाशहए। िप करते समय बीच में बोलना, कोई ध्वशन करना अर्वा संकेत करना वशिथत है। िप करते समय इधर-उधर देखना, िुमना और शहलना नहीं ंचाशहए तर्ा एक ही आसन में म्भस्र हो कर बैठना चाशहए। मन में एकमात्र भगवान् का ही शवचार होना चाशहए। एक अनुष्ठान में यशद आकाशङ्क्षत प्रभाव न शमले, तो शनष्ठा समाप्त नहीं ंहोनी चाशहए। श्रेयस्कर तो यह है शक भगवत्कृपा-प्रसाद की प्राम्भप्त के शलए तीन बार अर्वा सात बार अनुष्ठान की पुनरावृशत्त हो ।

िप के अन्त में मन्त्र िप के दशम भाग की आहुशत दे कर होम करना चाशहए। इसके पश्चात् उदकाशद दान से (देवतार्थ) आहुशतयों ंका दशम भाग तपथण करना चाशहए। अन्त में तपथण के दशम भाग की गणना से अर्वा यर्ासम्भव अशधकाशधक ब्राह्मणों ंको भोिन कराना चाशहए। होम में आहुशत घृत एवं seasamum, आटा, िव, चीनी और घी के शमश्रण से िालनी चाशहए। अतीव श्रद्धा और शवनम्र भाव से भगवान् को गेहाँ की मधुर माँि (काँिी) अशपथत करनी चाशहए और अपथण करते समय इस मन्त्र का उिारण करना चाशहए- **"एष बडलः श्री कृष्णाय नमः ।"** अगले शदन वही माँि गाय को दे दें।

दैशनक िप और पूिा करने के पश्चात् भगवान् से अनुष्ठान की अवशध में हुई शकसी प्रकार की भूल के शलए शनम्न मन्त्रों ःसे क्षमा-प्रार्थना करनी चाशहए :

आविानं न जानाडम नैव जानाडम पूजनम् ।
डवसजमनं न जानाडम क्षमस्व परमेश्वर ।।
अन्यर्था िरणं नान्द्रस्त त्वमेव िरणं मम ।
तस्मात्कारुण्भाविेन रक्ष रक्ष मिेश्वर ।।
मन्त्रीनं डक्रयािीनं भन्द्रक्तिीनं जनादमन ।
यत्पूडजतं मया देव पररपूणं तदसुतु ते ।।

अब साष्टाङ्ग प्रणाम करते समय इस मन्त्र को बोलें:

"अनया यर्थोपचारपूजया भगवान् श्रीकृष्णः डप्रयताम। "

इसके पश्चात् शनम्न मन्त्र का उिारण करते हुए चरणामृत ग्रहण करें और शसर पर धारण करें:

अकालमृत्युिरणं सवमव्याडधडवनािनम् ।
सवमदुःखोपिमनं डवष्णुपादोदकं िुभम् ।।

इससे अनुष्ठान का पूणथ लाभ शमलेगा। कम-से-कम ४१ शदवस पयथन्त अनुष्ठान, प्रशतशदन १०×१०८ बार (१० माला) मन्त्र िप करना

िप हेतु मंत्र

मन्त्र	प्रभाव
कापथण्यदोषोपहत...	आत्म-समपथण भाव लाने के शलए
एवं बुद्धेः परं...	काम-क्रोध आशद शत्रुओं ःका नाश
बहशन मे	भम्भक् में म्भस्थरता
व्यतीताशन... भोक्तारं	साधना में बाधाओं ःका शवनाश
यज्ञतपसां... शनैः	मनोिय
शनैरुपरमेत्... यतो	ध्यानार्थ युक्ता
यतो शनश्चरशत... यो	भम्भक् की पराकाष्ठा
मां पश्यशत सवथत्र...	शववेक की शववृम्भद्ध

सवथभूतम्भस्थतं यो

मां...

मत्तः परतरं नान्यत्...	सवथत्र भगवद्दशथन की योग्यता
अभ्यासयोगयुक्ेन...	कामाशद शतुरु-नाश योग-क्ेषेम की
अनन्याशश्चन्तयन्तो मां...	अवाम्भप्त भगवद्दशथन की योग्यता
पत्ंरं पुष्ंपं फलं...	दैवी कृपा की प्राम्भप्त
यत्करोशष यदश्नाशस...	आत्म-समपथण की योग्यता आत्म-
मां शह पार्थ व्यपाशश्रत्य...	समपथण की योग्यता योगयुक् होना
मन्मना भव मद्भक्ो...	शववेक-प्राम्भप्त भम्भक् का शवकास
तेषां सततयुक्ानां...	मन का संयम मोह का शवनाश
अनेकबाहदरवक्त्रनेत्ंरं...	भगवान् को प्रसन्न करने की योग्यता
त्वमाशददेवः पुरुषः...	भगवत्साक्षात्कार की योग्यता
वायुयथमोऽशग्नः...	भगवद्भम्भक् अन्तःकरण की शुम्भद्ध
नमः पुरस्तात्...	शववेक से ज्ञानोद्भव क्रोध की
शपताशस लोकस्य...	शनवृशत्त भम्भक् बाधा-शमन आत्म-
तेषामहं समुद्धताथ...	समपथण
ज्ेयं यत्तत्प्रवक्ष्याशम...	भगवत्कृपा
सवथतः पाशणपादं...	
अहं वैश्वानरो भूत्वा...	
सवथस्य चाहं हृशद...	
यो मामेवमसंमूढो...	
मम्भित्तः सवथदुगाथशण...	
सवथधमाथन् पररत्यज्य...	
यन्त्र योगेश्वरः..	

डविेष : पूणथ मन्त्र गीता में से देखे ि सकते हैं। शदये गये शब्दों ंसे मन्त्र प्रारम्भ होता है।

पि करते समय ध्यान भगवान् श्री कृष्ण पर होना चाशहए। शवशवध श्लोकों ंका शिस प्रकार से अनुष्ठान करते हैं, उसी प्रकार पूणथ गीता का अनुष्ठान भी कर सकते हैं। समूपूणथ गीता के अनुष्ठान में शवशवध श्लोक शवशवध

प्रयोिनों ंके शलए समुपुट श्लोक के रूप में शलये िा सकते हैं। समुपुट दो प्रकार के हैं। प्रर्म तो यह शक गीता-पाठ में प्रत्येक श्लोक के पश्चात् समुपुट श्लोक की पुनरावृशत्त की िाये और शफर गीता का श्लोक पढ़ा िाये। इसे समुपुट िप अर्वा समुपुट पाठ कहते हैं। शितीय शवशध यह है शक गीता के प्रत्येक श्लोक के पूवथ और पश्चात् समुपुट श्लोक पढ़ें अर्ाथत् गीता का एक श्लोक पढ़ने के उपरान्त समुपुट श्लोक दो बार पढ़ें, तब अगला श्लोक लें। इसे समुपुटावली कहते हैं। यह समुपुट से अशधक प्रभावशाली है।

व्यावहाररक रूप में गीता का प्रत्येक श्लोक ही मन्त्र है, शिसे समुपुट श्लोक के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। ऐसा सुना िाता है शक एक सन्त ने गीता का प्रत्येक श्लोक समुपुट श्लोक के रूप में प्रयोग करके गीता-अनुष्ठान के ७०० पुरुश्चरण पूणथ शकये और भगवत्-कृपा-प्रसाद से अनुगृहीत हुए। पुनरशप समुपुट श्लोक के प्रयोग के शलए कुछ श्लोक नीचे शदये िाते हैं।

समुपुट श्लोकों ंकी सूची

श्लोक	**सिुट में प्रयोग का प्रभाव**
कापथण्यदोषोपहत...	आत्म-समपथण की योग्यता
मत्तः परतरं नान्यत्...	सवथत्र भगवान् का साक्षात्कार
पत्रं पुष्पं फलं...	भगवद्दशथन की योग्यता
ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्ण	भगवद्भम्भक्
अहं वैश्वानरो भूत्वा...	शववेक से ज्ञान का उद्भव
सवथधमाथन् पररत्यज्य...	आत्म-समपथण
यत्र योगेश्वरः...	कामनापूशतथ

इनके अशतररक् अनेक अन्य श्लोक भी समुपुट में प्रयोग शकये िा सकते हैं। प्रत्येक गीता पाठ के प्रारम्भ से पूवथ और पश्चात् बारह माला अर्वा कम-से-कम एक माला िादशाक्षर मन्त्र का िप, करन्यास और अङ्गन्यास उसी मन्त्र से करना चाशहए। इस िप के शलए ध्यान इनसे करें :

डवषुंणुं िारदचिकोडटसदृं िंखं रर्थाङ्गं गदा-
मंभोजं दधतं डसताब्जडनलयं कान्त्या जगन्मोिनम् ।
आबद्धाङ्गदिारकुण्डलमिामौडलं सुफुरत्कंकणं
श्रीवत्सांकमुदारकौसुतुभधरं वन्दे मुनीिः सुतुतम् ।।

इसके उपरान्त गीता के ऋशष, छन्द, देवता, बीि, शम्भक्, कीलक, संकल्प, शवशनयोग, करन्यास, अङ्गन्यास और ध्यान की पुनरावृशत्त करनी चाशहए। प्रशतशदन समूपूणथ गीता का अध्ययन कर सकें, तो और अच्छा है। अर्वा दो शदन में करें-नौ अध्याय प्रशतशदन । यह भी सम्भव न हो, तो ६ अध्याय प्रशतशदन करें। इस प्रकार ३ शदन में

गीता पूणथ करें। ७ शदवस में समाप्त करने के शलए यह क्रम अपनायें- (१) अध्याय १,२; (२) अध्याय ३-५; (३) अध्याय ६-८; (४) अध्याय ९,१०; (५) अध्याय ११-१३; (६) अध्याय १४-१६; (७) अध्याय १७,१८ । अन्यर्ा २ अध्याय प्रशतशदन पढ़ कर ९ शदन में समाप्त कर सकते हैं। यह भी सम्भव न हो, तो प्रशतशदन १ अध्याय पढ़ें।

यशद समूपूणथ गीता का अनवरत रूप से शनरन्तर एक वषथ पयथन्त पाठ शकया िाये, तो पाठ करने वाले को परम आनन्द की प्राम्भप्त होगी। समूपूणथ पाठ न्यास आशद सशहत होना चाशहए।

यशद चालीस शदन तक संहार-क्रम में गीता पाठ तीन बार प्रशतशदन शकया िाये, अर्ाथत् अध्याय १८ से प्रारम्भ कर के शवपरीत क्रम में पढ़ते हुए अध्याय १ तक प्रशतशदन तीन बार शकया िाये, तो बन्धन से मोक्ष की प्राम्भप्त होती है।

म्भरुशत-क्रम में यशद गीता पाठ ४० शदवस पयथन्त शकया िाये अर्ाथत् अध्याय ६ से १८ और पुनः ५ से १ (शवपरीत), तो प्रचुर धन-धाम होता है।

संहार-क्रम संन्याशसयों ंके शलए है और म्भरुशत-क्रम गृहस्र् िनों ंके शलए शनशदथष्ट है।

पूणथ श्रद्धा और शवश्वास के सार् अनुष्ठान करना चाशहए। उत्सुकतावश, परीक्षण के शलए अर्वा दोष ढूाँढ़ने के भाव से नहीं ंकरना चाशहए। शकसी प्रकार की आन्तररक अशुम्भद्ध अर्वा पूवथकृत कमथ के प्रभाव से आयी बाधा के कारण सात अनुष्ठान पूणथ करने पर भी यशद अभीम्भित फल की प्राम्भप्त न हो, तो शनष्ठा कम नहीं ंहोनी चाशहए। आन्तररक बाधायें यशद अत्यशधक हैं, तो प्रभाव शीघ्र नहीं ंशमलेगा। अनुष्ठान का प्रभाव भौशतक दृशष्ट से अशभव्यक् न भी हो, तो भी इसमें शंकंशचत् भी सन्देह नहीं ंशक अन्तःकरण की शुम्भद्ध होती ही है। शनष्काम भाव से यशद अनुष्ठान शकया िाये, तो आत्म-पररषूकृशत और दैव-कृपा के अवतरण में संशय नहीं।ं कोई ऐसा कमथ नहीं,ं शिसका फल प्राप्त न हो। शफर गीता के अनुष्ठान की तो बात ही क्या, िो पूणथ शनष्ठा और एकाग्र मन से शकया गया हो? प्रभाव शनशश्चत है, इसमें कोई संशय नहीं।ं भगवान् कृष्ण के उपदेशानुसार श्रेयस्कर तो यही होगा शक अनुष्ठान शनष्काम भाव से, केवल आत्म-साक्षात्कार हेतु शकया िाये। अतः गीता का अध्ययन, पठन, िप और मनन सदा शुद्ध शनष्काम भाव से करना शहतकर है।

गीता पाठ के अन्त में, वराहपुराण में शदये गये गीता-माहात्म्य का पाठ करना चाशहए। यशद वह न कर सकें, तो महाभारत में गीता के तत्काल पश्चात् शदये गये माहात्म्य का पाठ अवश्य करें।

अनुक्रमशणकाएँ

१.श्लोकानुक्रमशणका
(अ)

(इ)

(ग)

(द)

(ध)

(प)

(ब)

(य)